कंब रामायण

[महाकवि कंबन-रचित मूल तमिल से अनूदित]

[भाग २]

अनुवादक

श्री न० वी० राजगोपालन

संपादक

श्रीअवधनन्दन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

वक्तव्य

तमिल-भाषा के अतिशय श्रेष्ठ रामकाव्य 'कंब रामायण' के हिन्दी-अनुवाद का यह दूसरा भाग भी अब साहित्य-मर्मज्ञों के समक्ष प्रस्तुत है। नित्य उन्नति और प्रगति की ओर अग्रसर होनेवाली हिन्दी-भाषा के भाण्डार में इस श्रेष्ठ साहित्य को समाविष्ट कर परिषद् ने एक और भी ठोस सोपान का निर्माण किया, यह निःसंकोच कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग का प्रकाशन आज से लगभग दो वर्ष पूर्व परिषद् द्वारा संपन्न हो चुका है, जिसमें बाल, अयोध्या, अरण्य और किष्किंधा—ये चार काण्ड सम्मिलित हैं।

प्रथम भाग की प्रकाशित प्रथम प्रति राष्ट्रमूर्त्ति स्व० डॉ० राजेन्द्र प्रसादजी के कर-कमलों में हमारे शिक्षा-मंत्री श्रीसत्येन्द्रनारायण सिंह ने सदाकत-आश्रम के आम्र-कानन में स्थित स्वर्गीय 'बाबू' के निवास-स्थान पर समर्पित की थी। उस मधुर मुहूर्त्त में इस ग्रन्थ के अनुवादक श्रीराजगोपालनजी भी सौभाग्यवश उपस्थित थे। 'बाबू' ने इस ग्रन्थ और ग्रन्थकार को अपना अशेष-विशेष आशीर्वाद दिया था। आज वह सारा दृश्य अपनी पूरी गरिमा और करुणा में उमड़ आया है और विशेष इसलिए भी कि वही उत्सव-समारोह राजेन्द्र बाबू के जीवन का अन्तिम समारोह था; क्योंकि उसके तीन-चार दिन बाद ही वे अपने भौतिक शरीर का परित्याग कर परम धाम को सिधारे। आज वे होते, तो इस अनुष्ठान की सविधि समाप्ति पर कितना आह्लादित हुए होते।

इस दूसरे भाग में शेष दो काण्डों—सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड का अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इस रामायण में प्रकरणों के स्थान पर 'पटल'का उल्लेख हुआ है। इनमें से सुन्दरकाण्ड में १५ और युद्ध काण्ड में ३६ पटल सन्निविष्ट हैं। सम्पूर्ण कंब रामायण का अनुवाद लगभग १२०० पृष्ठों में मुद्रित हुआ है, जिसमें से यह दूसरा भाग लगभग ६१२ पृष्ठों में समाप्त होता है। यही कारण था कि हमें इस ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त करना पड़ा है।

प्रथम भाग के निदेशकीय वक्तव्य में हमने लिखा था कि परिषद् का यह प्रकाशन उत्तर और दक्षिण के लिए एक नया 'सेतु' का निर्माण करेगा। हमारे इस कथन का इतना ही तात्पर्य था कि किसी काल में समस्त भारत को एक सूत्र में पिरोने का कार्य संस्कृत-भाषा ने किया था, जिसका वास्तविक स्थान आज हिन्दी ने ले लिया है। अतः, दक्षिण के सबसे दीप्त भाषा 'तमिल' के इस श्रेष्ठ महाकाव्य के हिन्दी-रूपान्तर का प्रकाशन अवश्य ही एक नवीन 'सेतु' प्रमाणित होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है।

ग्रन्थ, ग्रन्थनिर्माता और अनुवादक—इन तीनों का परिचयात्मक विवरण इसके प्रथम भाग के वक्तव्य और भूमिका में दिया जा चुका है। अब यहाँ उन बातों की पुनरुक्ति अनावश्यक है। दूसरे भाग के पढ़ने के पहले प्रथम भाग को आद्यन्त पढ़ लेना ही श्रेयस्कर होगा और तभी इस ग्रन्थ का मर्म और महत्त्व पूरा-पूरा आँका जा सकेगा।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् अपनी अनुवाद-योजना के अन्तर्गत यह तेरहवाँ ग्रन्थ अर्पित कर रही है। इस अनुवाद के संबंध में सुधी पाठकों से हमारा नम्र निवेदन है कि इसके अध्ययन-मनन से अपने को तथा परिषद् को धन्य करने की कृपा करें। एक बार पुनः हम इसके अनुवादक महोदय श्री न० वी० राजगोपालन (प्राध्यापक, केन्द्रीय हिन्दी-शिक्षक-महाविद्यालय, आगरा) के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं, जिन्होंने इस कठिन एवं अत्यन्त श्रमसाध्य कार्य को विधिवत् सम्पन्न किया है। वस्तुतः, 'कंब रामायण' का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर देने के बाद, इस पुनीत अनुष्ठान की पूर्णाहुति के लिए, हम परम आत्मतुष्टि का अनुभव कर रहे हैं : **सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।**

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
नागपंचमी, श्रावण, २०२१ विक्रमाब्द

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
निदेशक

विषय-सूची

सुन्दरकाण्ड

युद्धकाण्ड

●

कंब रामायण

सुन्दरकाण्ड

मंगलाचरण

हमारे जन्मों की यह परंपरा पंचभूतों के विविध विवर्त्तनों के कारण उत्पन्न होती है तथा विविधता से युक्त है। माला को देखकर जिस प्रकार सर्प की भ्रांति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार के भ्रमात्मक ज्ञान से (यह परंपरा) संयुक्त है। ऐसी यह जन्म-परंपरा जिस परमात्मा के दर्शनमात्र से मिट जाती है, उसी वेदों के परम अर्थभूत भगवान् ने कर में चाप धारण कर लंका में युद्ध किया था।

अध्याय १

समुद्र-लंघन पटल

[महेन्द्र शैल पर हनुमान् विराट् रूप धारण कर समुद्र को लाँघने के लिए उद्यत हैं।]

पराक्रमी (हनुमान्) ने उस समय, अपने समीप, देवताओं के लोक (स्वर्ग) को देखा[1] और यह संशय करने लगा कि कदाचित् जलधि से आवृत लंका यही है। फिर, इस तथ्य को जानकर कि वह दुष्प्राप्य देवलोक है, मन में निश्चय कर लिया कि दर्शनीय मयूरी-तुल्य (सीता) उस लोक में नहीं है और अपना ध्यान वहाँ से हटा लिया।

(फिर, हनुमान् ने महेन्द्र शैल पर से ही) पुरातन नगरी लंका के सुरभिपूर्ण उद्यानों, यंत्रों से युक्त स्वर्णमय और मंडलाकार प्राचीरों, विजय-पताकाओं से सुशोभित नगरद्वार, रत्नजटित श्वेत सौधों, कनक-निर्मित प्रासादों की विशाल वीथियों तथा अन्य दृश्यों को देखा। तब इस प्रकार अपनी भुजाओं को हिलाया कि आठों स्वर्गलोक और आठों दिशाएँ डगमगा उठीं।

---

१. हनुमान् इतना ऊँचा हो गया था कि देवताओं का स्वर्ग उसके समीप दिखाई देता था।—अनु०

उस अन्तहीन (अर्थात्, मरण-रहित) ने उस पर्वत पर खड़े होकर उसे दबाया, तो वह नीलवर्ण पर्वत टूटकर नीचे की ओर खिसक गया। तब उसकी स्वर्णमय कंदराओं से तीक्ष्ण दंत तथा रेखाओंवाले सर्प, अपने मुँह से प्रज्वलित अग्नि उगलते हुए, घिसटते-रेंगते बाहर निकल आये। वह दृश्य ऐसा था, मानों उस पर्वत का पेट फट गया हो और उसकी आँतें बाहर निकल आई हों।

प्रवेश करने के लिए दुर्गम कंदराओं में सोये हुए केसरी (सिंह) धारा में बहने-वाले रक्त (रक्त की धारा) को उगलते हुए निर्जीव होकर भीतर ही पिस गये। विहग ऐसा घोर शब्द करते हुए, जिससे प्रलय-जलधि का गर्जन भी लज्जित हो जाय, दिनकर के प्रकाश को भी ढकते हुए आसमान में छा गये।

वे मत्तगज, जिनके मेघ सदृश शरीर को दृढता के साथ पकड़े हुए हथिनियाँ खड़ी थीं और जो अपनी पूँछ को बादल-भरे आकाश में उठाये हुए खड़े थे—भयभीत हो गये और अपने बलिष्ठ कानों को अपनी पीठ पर फटकारने लगे। उस फटकार से जोर की हवा उत्पन्न करते हुए अपनी सूँड़ों से वृक्षों को पकड़कर चिग्घाड़ने लगे।

उस महेंद्र शैल का स्वर्णमय शिखर, विद्युत्-जैसा चमकता हुआ टूटकर गिरा, तो उससे चिनगारियाँ निकल पड़ीं। उस समय, वहाँ के व्याघ्र अपने उन नन्हें बच्चों को, जिनकी देह पर अभी रोंएँ नहीं उगे थे और जिनकी आँखें भी अभी खुली नहीं थीं, अपने मुँह में उठाकर वहाँ से भागे।

वह (महेंद्र) पर्वत, जिसके शिखर शाल के वृक्षों से भरे थे, हनुमान् के चरणों के भार से (अपने स्थान से) हिल गया और ढह गया। तब (उस पर के) विद्याधर-वीर अपने हाथों में ढाल और तलवार ताने हुए ऊपर की ओर उचककर उड़ गये। वह दृश्य ऐसा था, जैसे युद्ध करते समय शत्रु-योद्धाओं के द्वारा उनके पैरों को लक्ष्य करके खड्‌ग चलाये जाने पर, उनसे बचने के लिए झट ऊपर की ओर उछल पड़े हों।

वह विशाल उन्नत तथा शीतल पर्वत धरती में इस प्रकार धँस गया कि ज्योतिष्पुंज नक्षत्र (सूर्य और चंद्र) तथा मेघ उस पर्वत से एकदम दूर हट गये। वह दृश्य ऐसा था, जैसे वह पर्वत एक जलपोत हो, पैने नखों तथा उठी हुई भुजाओंवाला (हनुमान्) उस पोत का मस्तूल हो और सूर्य, चंद्र आदि नक्षत्र उस जलपोत के डूब जाने से उठे हुए बुलबुले हों। (उस पर्वत के) ऊपर से गिरनेवाली जलधाराओं में गैरिक, केसर, ईंगुर, टूटकर गिरी हुई सुगंधित और सुकुमार (रक्त) चंदन, शीतल पुष्पों से झड़े हुए स्वर्णवर्ण मकरंद इत्यादि रक्तवर्ण की वस्तुओं के मिल जाने से, वे लाल होकर नीचे झरने लगीं, तो ऐसा लगा, मानों उस (महेंद्र) पर्वत का शरीर चिर जाने से उसमें से रक्त की धाराएँ बह रही हों।

वह काला पर्वत इस प्रकार घूमने लगा, जैसे समुद्र में डाली गई मथानी हो। जो मुनि उस ऊँचे पर्वत पर रहकर अपनी बलवान् इंद्रियों पर विजय प्राप्त करके तपस्या करते थे, वे (अपने तप को) अधूरा ही छोड़कर अंतरिक्ष में उड़ गये और शरीर का संबंध तोड़े बिना ही (सशरीर ही) स्वर्ग जानेवालों के समान दिखाई पड़ने लगे।

दिनकर की कांति से युक्त वह पर्वत फट गया। देवांगनाएँ थरथराकर अपने

पतिदेवों के गले से लिपट गईं, तो उन देवताओं में से प्रत्येक उन शिवजी की समता करने लगा, जो तीक्ष्ण दंतवाले राक्षस (रावण) के द्वारा कैलास के उठाये जाने पर पार्वती से आलिंगित हुए थे।

(शरीर में) व्याप्त हुए मद्य तथा (अपने प्रति अपने पति द्वारा) किये गये अपराधों से बुद्धिभ्रष्ट हो जो देवांगनाएँ मान करने लगी थीं, वे अब (उस पर्वत के हिल जाने से) थरथरा उठीं, अपना क्रोध भूलकर अपने पतियों से लिपट गईं और उनके साथ अंतरिक्ष में उड़ गईं। फिर, (उस घबराहट में) पर्वत पर ही छोड़कर आये हुए अपने शुकों का स्मरण कर दुःखी होने लगीं।

जब इस भाँति के दृश्य उपस्थित हो रहे थे, तब देवता मुनि और तीनों लोकों के निवासी पंक्तियाँ बाँधकर शीघ्रता के साथ वहाँ आये और पुष्पों के गुच्छे, चन्दन, सुगंध-चूर्ण, रत्न आदि (हनुमान् पर) बिखेरकर कहा—'हे चतुर (दूत)! जाओ और विजयी बनकर लौटो।' वीर (हनुमान्) भी उत्साह से भर गया।

अति बलशाली (हनुमान् के) साथियों ने उससे कहा—विजय के निवास गिरि-सदृश कंधोंवाले, हे वीर! तुम यह सोचकर कि एक बौने मुनि के द्वारा (अपने चुल्लू में भरकर) पिये गये इस समुद्र को पार करना क्या बड़ी बात है, (इसे पार करना) मेरे लिए कौन-सा बड़ा काम है, (इस समुद्र को) तिरस्कार की दृष्टि से मत देखो। तुम (सावधानी से) जाओ। पर्वत-समान (हनुमान्) उनसे सहमत हुआ।[1]

उस समय, देवता आश्चर्य के साथ (हनुमान् के) उस विराट् रूप को देखकर सोचने लगे—इसने जो इतना बड़ा रूप धारण किया है, यह कदाचित् लंका तक ही नहीं, बल्कि उससे कहीं आगे जाने के लिए है। मालालंकृत वक्षवाले हनुमान् ने शरीर के अग्र भाग को झुकाकर अपने दोनों पैरों से दबाया, तो वह स्वर्णमय पर्वत तथा (हनुमान के) चरण धरती में धँस गये।

उस वीर ने अपनी पूँछ अतिशीघ्रता से ऊपर की ओर उठाई। अपनी बलिष्ठ टाँगों को झुकाया। वक्ष को संकुचित किया। ग्रीवा को इस भाँति झुकाया कि उसके भारी तथा स्फूर्त्ति-भरे दोनों कंधे ऊपर की ओर उभर आये। और, (गति को) तीव्र करने-वाले पवन-वेग से युक्त अपनी विशाल बाहुओं को आगे की ओर फैलाकर, तीव्र वेग से ऊपर उठ गया, तो उसका शिर ब्रह्मलोक से जा लगा। उस समय उसका वह रूप दृष्टि में नहीं समाता था।

---

१. इस पद्य के मूल की भाषा कुछ ऐसी है कि इससे एक दूसरा अर्थ भी निकलता है, जो इस प्रकार है—अति बलशाली (हनुमान् के) साथियों ने कहा—तुम जाओ और (रावण को देखकर) यह कहो कि कलभ-सदृश (राम) समुद्र के जल को सुखाकर ही सही, उसे पार करके यहाँ आयेंगे। अतः, (सीता को पाने की) तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं होगी। महान् कैलास पर्वत को उठाने के कारण दुर्वर्ती भुजावाले हे वीर (रावण) तुम्हारा यह कार्य अत्यंत क्षुद्र है। यह कहकर उसे धिक्कारना मत। जाओ, लोकमाता (सीता) के दर्शन कर आओ।—अनु०

इस प्रकार, जब हनुमान् अंतरिक्ष में उड़ा, तब भारी शाखायुक्त वृक्ष, ऊँचे बाँसों से युक्त पर्वत के शिखर, महान् गज तथा अन्य वस्तुएँ हनुमान् के साथ ही अंतरिक्ष में ऐसे उड़ चले, मानों राम की आज्ञा मानकर वे भी शीतल समुद्र से आवृत लंका की दिशा में उड़े जा रहे हों।

उस यशस्वी महानुभाव के गमन-वेग से पर्वत के अग्र भाग, हरे वृक्ष, मृग आदि तीव्र गति से उड़-उड़कर उसके साथ उस (दक्षिण) दिशा में जाने लगे, किन्तु समुद्र से आवृत लंका तक पहुँचने की शक्ति न रखने से वे समुद्र में यत्र-तत्र ऐसे गिरे, जैसे उसमें ढकेल दिये गये हों।

ऊर्ध्व गमन करनेवाले उस वीर के वेग के कारण प्राणिसमूह, वृक्ष, पत्थर, लताएँ तथा अन्य प्रकार की वस्तुएँ अंतरिक्ष में उड़ने लगीं और (समुद्र में) जहाँ-तहाँ गिर पड़ीं, जिससे समुद्र उमड़ उठा और वह ऊपर और भीतर से पट-सा गया। वह दृश्य ऐसा था, मानों श्रुति-समान वीर (रामचंद्र) के (समुद्र पर) क्रुद्ध होने के पूर्व ही उसमें एक सेतु बन गया हो।

समुद्र का वह प्रचुर जल (हनुमान् के गमन-वेग के कारण) फट गया। तब उसके अतल में विद्यमान नागों का प्रिय निवास (पाताल)-लोक सर्वत्र खुला हुआ दिखाई देने लगा और (नागों के मुकुट के) माणिक्य चमकने लगे। यह देखकर पराक्रमी हनुमान् ने सोचा—अहो, मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि सर्पराज के निवास के भी दर्शन कर सका।

नागलोक के निवासी—जो सदा यही याद करते रहते हैं कि किस प्रकार (गरुड) अपने विशाल पंखों से जलधि को आहत करके उसके जल-विस्तार को फाड़कर पाताल में पहुँच गया था और अति त्वरित गति से वहाँ के दुर्लभ अमृत को लेकर चला गया था—अब फिर, डरने लगे और कहने लगे कि वह महा बलशाली गरुड दुर्भाग्य से फिर आ पहुँचा है। हाय! अब हम कैसे जीवित रह सकेंगे। और, वे व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे।

तीक्ष्ण नख-युक्त उस वीर के प्रलयकालिक प्रभंजन जैसे वेग का सहन न कर सकने के कारण, कुछ ग्राह और मत्स्य छटपटा उठे, कुछ निःस्पंद होकर पड़े रहे, कुछ बड़े-बड़े मगरमच्छ झोंके से एक ओर फेंक दिये गये और वहीं तड़फड़ाते पड़े रहे। चमकते हुए कुछ मत्स्य मरकर तरंगों के बीच पड़े रहे। उथल-पुथल से भरे समुद्र में जो तरंगें उठीं, वे आगे बढ़कर लंका नगर से जाकर टकरा गईं।

प्रभु (राम) का दूत (हनुमान्) इतने वेग से चला कि आठों दिशाओं के दिग्गज इस डर से काँप उठे कि दिशाओं के मध्य-स्थित सभी वस्तुएँ, पता नहीं, किस दशा को प्राप्त होंगी! वह (हनुमान्) उस त्रिकूट पर्वत की समता करता था, जो आदिशेष के (बल की) स्पर्धा में प्रभंजन के द्वारा बड़े शब्द के साथ तोड़ा गया था और अति तीव्र गति से दक्षिण समुद्र में जा पहुँचा था।

हनुमान् ऐसे वेग से जा रहा था कि मंडलाकार गतिवाले अश्व (उच्चैःश्रवा)

और (इंद्र) भी उसे नहीं देख पाते थे। (वह ऐसा जा रहा था), मानों वह समुद्र तथा भूमि को अपने पदतल में करके समस्त ब्रह्मांड को ही पार करने जा रहा हो। उस समय वह लंका की ओर जानेवाले पुष्पक-विमान जैसा लगता था।

स्वर्गवासी प्रशंसा कर रहे थे। वेदज्ञ मुनि विस्मय से अभिनंदन कर रहे थे। पृथ्वी के निवासी नमस्कार कर रहे थे। इस प्रकार उड़नेवाला मारुति उस मनोहर कैलास-गिरि के सदृश दिखाई पड़ता था, जो गहरी वैर-भावना से (प्रेरित हो) महिमापूर्ण कठोर राक्षस (रावण) को और भी दबाने के निमित्त, काल-नेत्र से अलग हो उड़ रहा हो।

वह प्रतापी (हनुमान्), जो ब्रह्मचारी था, ज्ञान में कमलासन (ब्रह्मा) से भी बढ़ा हुआ था, जो समस्त लोक का आधार बनकर धर्ममय अर्थनीति को सुस्थापित करनेवाला था (यह भविष्य की ओर संकेत है), उस स्वर्णाचल (मेरु) के समान था, जो दीर्घकाल से वियुक्त अपने पुत्र, उन्नत त्रिकूट पर्वत को देखने के लिए वेग से जा रहा हो।

नक्षत्र मेघों को भेदकर नीचे गिर गये। तरंगायित समुद्र उमड़ चला। अंतरिक्ष शिथिल-सा हो गया। दिशाएँ फट गईं। मेरुगिरि हिल उठा। शिखरों और कंदराओं से युक्त पर्वत उखड़ गये। इस प्रकार, तीव्र गति से जानेवाला (हनुमान्) प्रलयकाल में अति वेग के साथ बहनेवाले और विनाशकारी अपने पिता (वायुदेव) की समता करता था।

बीस विशाल बाहुओं और दस शिरों से युक्त (रावण) ने अपनी पंचेंद्रियों को जीतकर जो तप किया था, उसका फल अब विनष्ट हो गया है। वह (रावण) भी अब विनाश को प्राप्त होगा, मानों इस (उत्पात) की सूचना देता हुआ सूर्य प्राची में उदित न होकर अब उत्तर में उदित हुआ हो और (दक्षिण में) लंका की ओर जा रहा हो, (हनुमान्) इसी प्रकार दिखाई पड़ता था।

पापकर्मी राक्षसों के निवास (लंका नामक) महानगर में रहने से डरकर, अन्य किसी निवास में भी न जाकर, मनु महाराज के वंशज अतिदक्ष राम नामक वीर की शरण में आनेवाले धर्मदेव नामक राजा के (शासन)-चक्र के समान (वह हनुमान्) शोभायमान हुआ।

वह हनुमान, जिसके कंधे अति उज्ज्वल चन्द्रिका-जैसी कांति को बिखेरकर अंधकार को दूर करते थे और दृढ मेरुपर्वत को भी लज्जित करते हुए आकाश तक उठे थे, प्रलय की वेला में, जब असहनीय अग्नि, जलधि से आवृत पृथ्वी को जला देती है, तब उत्तर दिशा में उदित होनेवाले पूर्ण-चंद्र के सदृश लगता था।

वह (हनुमान्) उस गरुड की समता करता था, जो अपनी समस्त शक्ति को दबाकर चक्रधारी मायावी (विष्णु) के अधीन रहता है, फिर भी अपना प्रताप दिखाने के लिए राक्षसों की आँतें निकालता हुआ, भूधर नामधारी सब टीलों को उड़ाता हुआ, दूरस्थ मेघों को बुहारता हुआ तथा अलौकिक शक्ति से भरे समुद्रों को भी उनके स्थान से विचलित करता हुआ उड़ा जा रहा हो।

(हनुमान्) अपनी पूँछ को इस प्रकार उठाये हुए चला कि स्वर्गवासी यह सोचते हुए विस्मय से स्तब्ध हो गये कि इस हनुमान् ने, कालपाश-सदृश अपनी पूँछ से, इस

अंडकटाह को ही नहीं, किन्तु उससे भी आगे बढ़कर सप्तलोकों को भी भयभीत करते हुए नाप लिया है, जिसे पूर्वकाल में विष्णु के एक पग ने नापा था।

बड़े कोलाहल के साथ समुद्र को लाँघनेवाले उस वीर की वह पूँछ, जिसने वेद-निरूपित भगवान् (राम) की करुणा का बल प्राप्त किये हुए हनुमान् नामक धर्ममूर्त्ति का योग प्राप्त किया था, कालपाश-सा लगता था। और, जो इस विचार से कि पापकर्मी राक्षस उसे देख न ले, उस हनुमान् के पीछे छिपकर जा रहा था।

(हनुमान् की) वह शोभायमान पूँछ इस प्रकार लहरा रही थी कि मेरु को पूरा लपेटकर पड़ा हुआ आदिशेष ही मेघवर्ण (विष्णु) भगवान् की आज्ञा से गरुड के आने पर भय से शिथिलचित्त हो, अपनी लपेटों को ढीला करके, उससे हटकर चल रहा हो।

पुष्ट, पर्वत-सदृश तथा विजयप्रद कंधोंवाले उस वानरश्रेष्ठ के गमन से उत्पन्न वेगवान् प्रभंजन ऐसे जोर से चला कि देवों को ले जानेवाले अति-उज्ज्वल गगनगामी विमान शीघ्रता से एक दूसरे के साथ टकरा गये और चूर-चूर होकर बड़े समुद्र में जा गिरे।

दक्षिण हस्त में वज्रायुध को धारण करनेवाले (इन्द्र) के निवास देवलोक में इस विचार से व्याकुलता छा गई कि समुद्र को लाँघनेवाले इस हनुमान् का, (जो इतने वेग के साथ जा रहा है) न जाने क्या उद्देश्य है ? इधर भूलोक भी इस विचार से सिकुड़-सा गया कि तीक्ष्ण तथा वक्र दंतवाले इस वीर का यह तीव्र वेग निष्ठुर राक्षसों के लंकानगर तक ही सीमित नहीं रहेगा (किंतु उसके आगे भी बढ़कर कुछ उत्पात करेगा)।

उस समय उस महिमा-भरे (हनुमान्) के शरीर (की गति) से उत्पन्न जो हवा चली, उससे दिगंत तक व्याप्त समुद्र हलचल से भर गया। जिन तिमिंगिलगिलों[1] के संबंध में लोक तथा शास्त्र में यह कथन प्रचलित है कि उनका शरीर असंख्य योजन-पर्यंत का होता है, वे भी दूसरी मछलियों के साथ मरकर उतराने लगे।

अनुपम आकारवाला वह (हनुमान्) जब (इस प्रकार से) जा रहा था, तब उसकी दोनों विशाल बाहुएँ—जो उसके वेग को बढ़ा रही थीं, तेजी के साथ आगे-पीछे हो रही थीं तथा अपना उपमान स्वयं ही बन रही थीं—यों शोभायमान हो रही थीं, जैसे चिरंतन सद्गुणों से भरित वरप्रद (राम) तथा उनके प्राणस्वरूप अनुज दोनों, हनुमान् के आगे-आगे चल रहे हों।

पर्वतोपम वह (हनुमान्) जब प्रचंड वायु के वेग से जा रहा था, तब मैनाक पर्वत समुद्र के भीतर से गगनोन्नत हो उसी प्रकार ऊपर उठ आया, जिस प्रकार दिग्गजों में श्रेष्ठ अति बलिष्ठ, पूर्व दिशा की रक्षा करनेवाला, शुंड-शोभित (ऐरावत) गज, पहले कभी क्षीर-सागर से ऊपर उठा था।

(वह मैनाक पर्वत ऐसा ऊपर उठ आया कि) उसके अत्युन्नत सहस्र स्वर्णमय शिखर प्रकाशमय किरणें फैलाने लगे। निरंतर बहनेवाले निर्झर-समूह उसके उत्तरीय-जैसे शोभित

१. कहा जाता है कि समुद्र के मत्स्यों में सबसे बड़ा मत्स्य 'तिमि' होता है। उससे बड़ा 'तिमिंगिल' होता है, जो तिमि मत्स्य को निगल जाता है। उससे भी बड़ा 'तिमिंगिलगिल' होता है, जो तिमिंगिल को भी खा जाता है।—अनु०

होने लगे। वह ऐसा लगा, मानों संसार में दुर्जनों के रहने के कारण उनके विनाश के लिए, मकरों से भरे समुद्र से विष्णु भगवान् ऊपर उठ आये हों।

शास्त्रों में प्रतिपादित ज्ञेय विषयों का (गुरु-मुख से) श्रवण न करने के कारण क्षुद्र व्यक्ति जिस प्रकार पहले इंद्रियों के विषयों का आस्वादन करके फिर उन्हीं में डूब जाते हैं, उसी प्रकार पृथ्वी समुद्र-मंथन के समय, पहले (मंदर-पर्वत को) धारण करके, फिर उसके भार का सहन न करने के कारण धँस गई थी और वह मंदर डूब गया था। फिर, विष्णु ने कच्छप के रूप में आकर उसे उठाया, तो जिस प्रकार वह ऊपर उठ आया, उसी प्रकार अब वह मैनाक भी समुद्र के भीतर से ऊपर उठ आया।

दोनों पार्श्वों में अपने अति दृढ तथा सुन्दर पंखों को फैलाकर, प्रशंसनीय शरीर-ज्योति से प्रकाशमान हो, सुपर्ण नामक पक्षिराज जब स्वर्ग से छीनकर लाये गये अमृत को लेकर विविध विभूतियों से पूर्ण जलधि को चीरकर (पाताल में) प्रविष्ट हुआ था और फिर, वह जिस प्रकार वहाँ से ऊपर उठ आया था, उसी प्रकार वह मैनाक भी समुद्र से ऊपर उठा।

सृष्टि के प्रारंभ में जब सर्वत्र जल-ही-जल व्याप्त था, तब सृष्टि का आदि और अन्त बनकर अदृश्य रूप में रहनेवाले परमात्मा के करुणामय संकल्प को प्रकट करता हुआ एक अनुपम स्वर्णमय अंड निकला था। उस अंड से वह ब्रह्मा निकला, जिसने तीनों लोकों को सृष्टि की और समस्त प्राणियों को उत्पन्न किया। उसी स्वर्णमय अंड के समान अब वह मैनाक समुद्र से ऊपर उठा।

आदिकाल में, यह सोचकर कि इस जल में मुझे उत्पन्न करनेवाले अपने पिता-परमात्मा को जबतक मैं प्रत्यक्ष न देखूँगा, तबतक कोई सत्कार्य नहीं करूँगा, वह प्रथम ब्राह्मण (ब्रह्मा) मानों शीघ्र उस जल में निमग्न हो गया हो और उसके भीतर ही अपनी तपस्या पूरी करके फिर ऊपर उठा हो। उसी प्रकार वह मैनाक समुद्र से ऊपर उठा।

पुष्पमाला के कारण उत्पन्न अपराध न सहन करके क्रोधी (दुर्वासा[1]) मुनि ने शाप दिया, तो उससे इन्द्र की जो संपत्तियाँ समुद्र में डूब गई थीं, उनको फिर वह अनादि प्रथम देव (विष्णु) बाहर निकालने लगे थे। उस समय, देवासुरों द्वारा मथित समुद्र से जिस प्रकार चन्द्रमा प्रकट हुआ था, उसी प्रकार अब मैनाक समुद्र से निकला।

उसके कुछ शिखर रंग में केसर पुष्प की समता करते थे, तो कुछ नील रंगवाले थे। कुछ शिखर जल में जड़ फैलानेवाली प्रवाल-लताओं से आवेष्टित थे, तो कुछ अरुण स्वर्ण से रंजित थे। इस प्रकार के शिखरों की घाटियों में जो मकर अपनी मादाओं के साथ सोये पड़े थे, वे अब निद्रा से जगकर निःश्वास भरते हुए इधर-उधर भागने लगे।

उसके शिखरों में वक्र रूपवाली तथा पूर्ण गर्भवाली शुक्तियाँ बोल रही थीं। वहाँ फैला हुआ शैवाल आकाश में छाये हुए बादलों की समता करता था। स्फटिक-शिलाओं

---

१. देवेन्द्र के प्रति दुर्वासा के शाप की कहानी बालकांड में वर्णित है।—अनु०

के तल पर, शंख अपने जाये बड़े-बड़े मोतियों के मध्य इस प्रकार प्रकाशित हो रहा था कि उससे नक्षत्रों से घिरे हुए धवलचन्द्र का महत्त्व भी मिट गया।

उस पर्वत के शिखर, जिनकी शिलाओं के मध्य नाना प्रकार के सहस्रों रत्न, अपने-अपने स्थान से चमक रहे थे—हाथों के समान ऊपर की ओर उठे हुए थे। अतः, वह दृश्य ऐसा था, मानों वह पर्वत पुराने समुद्र के अंतराल में निमग्न होकर, उज्ज्वल कांति-पूर्ण विविध रत्न-समूहों को हाथों में भरकर ऊपर उठा हो।

अट्टालिकाओं पर शोभायमान दीर्घ ध्वजाओं की पंक्तियों के समान उस (मैनाक) पर अति सुन्दर ढंग से उज्ज्वल निर्झर प्रवाहित हो रहे थे। इस प्रकार, वह मैनाक (हनुमान् को) सहायता करने के विचार से ज्योंही समुद्र से ऊपर उठा, त्योंही तिमि आदि बड़े-बड़े मत्स्य एक साथ उन निर्झरों की ओर लपक पड़े।[1]

छह संख्यावाले निष्ठुर शत्रुओं तथा तीन दोषों को दग्ध कर देनेवाले ज्ञान के प्रकट होने से, जिस प्रकार ज्ञानी पुरुष पूर्व के संदेहों से मुक्त हो जाते हैं, उसी प्रकार विषनाग, जो दीर्घ काल से उस पर्वत की कंदराओं में पड़े दुःखित हो रहे थे, अब समुद्र से बाहर निकलकर श्वास के अवरोध से उत्पन्न दुःख से मुक्त हो गये।

अविचल मनवाले (हनुमान्) ने देखा—स्वच्छ मुकुट पर रखा हुआ उड़द जितने समय के भीतर लुढ़क जाता है, उतने ही समय में वह महान् पर्वत आकाश और धरती के अंतराल को पूर्ण रूप से भरता हुआ ऊपर उठ आया। वह (हनुमान्) विस्मय में पड़कर सोचने लगा कि यह क्या है?

समुद्र को लाँघकर चलनेवाले हनुमान् ने यह सोचकर कि यह बड़ा पर्वत, जो समुद्र के मध्य उठकर खड़ा हुआ है, कोई हितकारक नहीं है, अपनी छाती से उसपर ऐसा धक्का लगाया कि वह पर्वत, शिखर नीचे की ओर और पदतल ऊपर की ओर होकर औंधा लुढ़क गया। हनुमान् त्वरित गति से स्वर्गलोक तक ऊपर उठ गया तथा अंतरिक्ष में (मैनाक को पार करता हुआ) आगे बढ़ने लगा।

उत्तुंग तरंग-पूर्ण समुद्र में छिपा रहनेवाला वह पर्वत हनुमान् के ढकेलते ही अत्यंत क्लान्त हो गया। फिर भी, मन में चिंताकुल होकर अदम्य प्रेम के कारण ऊँचा उठकर हनुमान् के पीछे-पीछे चला और छोटे मनुष्य का रूप लेकर कहने लगा—मेरे प्रभु, मैं जो कहता हूँ उसे सुनो—

"हे प्रभु! (तुम मुझे) पराया मत समझो। (प्राचीन काल में) सब पर्वत पंखोंवाले थे और मनमाने (जहाँ-तहाँ बैठकर) प्राणियों का विनाश करते थे, अतएव रुद्र (इन्द्र?) ने यह समझकर कि ये पर्वत दुष्ट प्रकृतिवाले हैं, लोक-कल्याण के लिए अपना वज्र चलाकर उनके पंखों को काट दिया। उस समय, वायुदेव ने मुझे इस समुद्र में छिपाकर मेरी रक्षा की तथा मेरे मन में अपने प्रति भक्ति उत्पन्न कर दी।

---

१. भाव यह है कि मैनाक के एकाएक बाहर आ जाने से उसके ऊपर रहनेवाले मीन जल की तलाश में झरनों की ओर दौड़ पड़े।—अनु०

हे उन्नत से भी उन्नत कंधोंवाले ! तुम उस वायुदेव के प्रिय पुत्र हो, अतः मैंने प्रेम से प्रेरित होकर तुम्हारा अन्य कोई उपकार न कर सकने के कारण यह सोचा कि यदि तुम मेरे स्वर्ण-शिखर पर (कुछ समय) विश्राम कर लो, तो मैं धन्य हो जाऊँगा।

हे न्याय पर दृढ रहनेवाले ! जलनिधि ने मुझसे कहा कि वायुदेव का प्रिय पुत्र देवताओं के उद्धार के हेतु कालमेघ-वर्ण (राम) की आज्ञा से सीता का अन्वेषण करता हुआ आ रहा है। अतः, तुम अनन्त अंतरिक्ष में उठ जाओ (जिससे वह तुम पर विश्राम कर सके)। इससे बढ़कर सौभाग्य की बात दूसरी क्या हो सकती है।

माला से अलंकृत स्वर्णमय विशाल वक्षवाले ! तुम यह जानो कि यह जन तुम्हारे लिए माता से भी अधिक हितकारी है। अभी कुछ क्षण मुझपर विश्राम करो। मैं यथाशक्ति तुम्हारा जो सत्कार करता हूँ, उसे स्वीकार करो। बंधुजनों का यह कर्त्तव्य होता है कि वे अपने यहाँ आये हुए प्रियजन का सत्कार करें।"—इस प्रकार मैनाक ने हृदय-पूर्वक वचन कहे।

सुगंधित कमल-सदृश कांति-पूर्ण वदनवाले वीर (हनुमान्) ने ये वचन सुनकर, उसे निष्कलुष जानकर मंदहास किया। मुस्कराकर जब वह अपनी दिशा में जाने लगा, तब इतने में उस पर्वत के अत्युन्नत स्वर्ण-शिखर को अपने निकट देखा।

"मैं थका नहीं हूँ। इसका कारण मेरे संरक्षक भगवान् (राम) की मेरे ऊपर करुणा ही है। जबतक मेरे मन का संकल्प पूर्ण न हो, तबतक मैं कुछ भी नहीं खाऊँगा। अमृत-धारा के प्रवाहों से भरे हुए तुम्हारे मन में जब मेरे प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया, तभी मैंने (तुम्हारे पास) विश्राम पा लिया। भोजन भी पा लिया। इससे बढ़कर अब तुम्हारा दूसरा कर्त्तव्य क्या होगा ?

याचकों की इच्छा को पूर्ण करते हुए—उत्तम दाता, मध्यम दाता तथा अधम दाता—सब प्रकार के दानियों में जो गुण समान रूप से रहता है (अर्थात्, प्रेम) वही सर्वश्रेष्ठ सत्कार है। वही प्रेम अस्थियों से भी बढ़कर शरीर का दृढ आधार होता है। उस अस्थि को भी दान[१] करने की प्रेरणा देनेवाले प्रेम से बढ़कर श्रेष्ठ सत्कार और क्या हो सकता है ?

मैं अब शीघ्र ही (त्रिकूट) पर्वत पर स्थित लंका में जा पहुँचूँगा। यदि मैं स्वामी की आज्ञा को दक्षता के साथ पूरा कर सकूँगा, तो (लंका से) लौटकर तुम्हारे सत्कार को—अच्छे भोज को—स्वीकार करूँगा।" यह कहकर उस सत्यव्रत (हनुमान्) ने मैनाक से आज्ञा ली और आगे चला। मैनाक की दृष्टि तथा प्रज्ञा भी उसका अनुगमन करती हुई उसके पीछे-पीछे चली।

नभ में, अरुणकिरण (सूर्य), शीतल चंद्रमा, देवों के विमान, नक्षत्र, मेघ तथा विश्व के विविध पदार्थ (हनुमान् के गमन-वेग के कारण) एक होकर मिल गये। उस

---

१. इस पद्य में दधीचि की कहानी की ओर संकेत किया गया है, जिसने अपनी अस्थियों का ही प्रेम से दान कर दिया था।—अनु०

समय वह (हनुमान्) उस प्रलयकालिक प्रभंजन के समान था, जिसके वेग से परस्पर न मिलनेवाले पदार्थ भी सम्मिलित हो जाते हैं।

समुद्र पर हनुमान् के गमन-वेग को देख सूर्य यह सोचकर आशंकित हो उठा कि जब यह अपने पैरों को सीधा करके चल भी नहीं सकता था, धरती पर घुटनों के बल चलता था, उस समय (शैशव) अवस्था में ही मेरे रथ पर लपक पड़ा था। इस समय न जाने किस पर आक्रमण करने के लिए यह इस प्रकार उड़ा जा रहा है ?

अपने प्रकाश से गगन को भरनेवाले सूर्य को ग्रसने के लिए आनेवाले, करवाल जैसे चमकनेवाले श्वेत दंतों की पंक्तियों से विभूषित ग्रह (राहु) की समता करती हुई उसकी पूँछ ऊपर उठी हुई थी। ऐसी पूँछ से विशिष्ट, आकाश को दो भागों में विभाजित करनेवाला उसका शरीर, एक दिवस के समान था—(क्योंकि, उसके कारण इस विश्व के ऊपर के भाग में प्रकाश और नीचे के भाग में अंधकार फैल रहा था)।

वहाँ एकत्र देवों ने सुरसा नामक परिशुद्ध चित्तवाली देवी से यह कहकर प्रार्थना की कि यह हनुमान् तीनों लोकों में बढ़ी हुई विपदा को दूर करने के हेतु सहायक होकर जा रहा है। इसकी यथार्थ शक्ति की परीक्षा करके तुम हमें बताओ। सुरसा एक राक्षसी का रूप लेकर हनुमान् के सम्मुख उपस्थित हुई।

वह सुरसा (हनुमान् से) यह कहकर कि हे अतिपुष्ट वानरजन्म ! यम को भी भयभीत कर जीवित रहनेवाले ! मेरे योग्य मांस का आहार बनकर तुम यहाँ आये हो, उसे निगलने का अभिनय करती हुई अपने विशाल मुँह-रूपी गह्वर को खोलकर, अत्युन्नत गगनतल में अपना सिर उठाये खड़ी रही।

सुरसा ने कहा—हे बलशाली ! तुम अग्नि-समान मेरी भूख की ज्वाला को शांत करने के लिए ही अतिशीघ्र मेरे निकट आ पहुँचे हो, अब तुम स्वयं ही मांस का स्वाद चाहनेवाले, वक्र दंतों से पूर्ण, मेरे मुख में समा जाओ। अब अंतरिक्ष में तुम्हारे आगे जाने के लिए और कोई मार्ग नहीं रह गया है।

तुम एक स्त्री हो और बड़ी भूख की ज्वाला से पीडित हो रही हो। स्वर्गवासी देवों के प्रभु राम की आज्ञा पूर्ण करके यदि मैं लौट आऊँगा, तो मैं (तुम्हारा आहार बनकर) अपने को तुम्हें सौंप दूँगा।—यों मित्रतापूर्ण वचन कहकर हनुमान् मुस्कराया।

तब उस (सुरसा) ने कहा—तुम्हारी सौगंध खाकर कहती हूँ कि सप्तलोकों के देखते हुए तुम्हें मारकर, तुम्हारे शरीर को आनंद से खाऊँगी और अपनी भूख मिटाऊँगी। उस ज्ञानी ने उसका उपहास करते हुए कहा—मैं एकाकी हूँ। तुम्हारे अति भीषण मुक्त वदन में प्रविष्ट होकर फिर जाऊँगा, यदि तुमसे हो सके, तो मुझे खाओ।

उस समय, वह राक्षसी अनेक अंडगोलों को एक साथ खाने पर भी न भरनेवाली अपने अति विशाल वदन-रूपी गह्वर (मुँह) को खोलकर विना हिचकी लिये ही (हनुमान् को) निगल जाने के लिए तैयार हो खड़ी रही। उसे देखकर वह वीर आसमान में इस प्रकार बढ़ गया कि सब दिशाओं में व्याप्त उस राक्षसी का मुँह भी उसके सामने छोटा दीखने लगा।

उस प्रकार बढ़ा हुआ वह (हनुमान्) झट अत्यंत लघु रूप लेकर, राक्षसी के विशाल वदन से उसके पेट में यों पहुँच गया कि उसका भोजन ही बन गया हो। किंतु एक बार उस (राक्षसी) के निःश्वास लेने के पहले ही वह बाहर निकल आया। उस विस्मयकारी कार्य को देखकर स्वर्गवासी देवों ने यह कहकर कि यह हमारी रक्षा करने में समर्थ है, पुष्प बरसाये और अनेक आशीर्वाद दिये।

कार्य-व्रतधारी वह हनुमान् पूर्ववत् अपने उज्ज्वल शरीर को फुलाकर अपने मार्ग में जाने लगा, तो उस सुरसा ने अपना प्राकृतिक रूप धारण करके माता से भी अधिक प्रेम के साथ कहा—'अब तुम्हारे लिए असाध्य कार्य कुछ नहीं है।' और, उसकी प्रशंसा करती खड़ी रही। कांचनमय देहवाला (हनुमान्) भी अनेक बधाइयाँ पाता हुआ आगे बढ़ा।

किन्नरों ने गीत गाये। देव-रमणियों ने गीतों के विविध भेदों को नर्त्तन के साथ निरूपित करके गाया। सब भूत (हनुमान् के) पीछे-पीछे जाते हुए उनका स्तवन करने लगे।[1] भूसुरों ने श्रेष्ठ वेद-पाठ किया। मंद मारुत बहुत सुखदायक हो बहने लगा।

मंदार—पुष्पों के परागों को लानेवाले मलयानिल (हनुमान् के) रक्तकमल-जैसे उज्ज्वल वदन पर के पसीने को पोंछ रहा था। उसके कान विद्याधरों से अपने-अपने स्थानों में, वादित होनेवाले वीणा-वाद्यों के मधुर गांधार का आनंद ले रहे थे।

(जब इस प्रकार हनुमान् समुद्र को पार कर रहा था, तब) हलाहल विष-सदृश अंगारतारा नामक राक्षसी समुद्र से इस प्रकार उठी, मानों भयंकर नील समुद्र पर, उमड़ते जल से युक्त एक दूसरा समुद्र छा गया हो। वह (राक्षसी) हनुमान् को देखकर गर्जन कर उठी—'मुझे पार कर जानेवाला तू कौन है?'

वह राक्षसी, जिसकी आँखें इतनी विशाल थीं कि उसके सामने माप के सब साधन समाप्त हो जाते थे (अर्थात्, वे मापी नहीं जा सकती थी) और जिसकी दृष्टि दस मील दूर तक जाती थी, अपने पदों की पायलों से समुद्र-घोष के समान शब्द उत्पन्न करती हुई, समुद्र से उठी। वह आदिकाल में, वेद-प्रतिपादित परम ज्योति के साथ युद्ध करने की इच्छा से प्रलयकालिक जलोदधि में गमन करनेवाले मधु-कैटभ की समता कर रही थी।

वह अर्धचंद्रसदृश खड्ग-दंतों से युक्त थी। नीलकंठ के सदृश, शुंड-सहित हाथी के चर्म को अपने शरीर पर डाले हुई थी। और, उसका अति विशाल मुँह ब्रह्मांड के लिए निर्मित आवरण (गिलाफ) जैसा था।

वह राक्षसी, सिर ऊँचा करके खड़ी हो गई, तो उसके बलिष्ठ चरणों को लहराते हुए सागर का जल धोने लगा और उसका शिर आकाश से टकराने लगा। तब विचारवान् हनुमान् ने जान लिया कि यह एक ऐसी स्त्री है, जिसने करुणा के साथ-साथ धर्म को भी चबा डाली है।

हनुमान् ने देखा कि (उस राक्षसी के) खुले मुँह में से होकर जाने के अतिरिक्त,

---

१. हनुमान् रुद्र का अंश माना जाता है। अतः, भूतगण उसका स्तवन करने लगे।—अनु०

विशाल धरती को ढके हुए अनंत गगन में जाने का कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसपर पहले वह चिंताग्रस्त हुआ, किन्तु फिर सोचा कि उसके उदर को चीर दें। अतः, उसके समीप जाकर इस प्रकार बात बढ़ाने लगा—

(हनुमान् ने राक्षसी से कहा—) तुम्हें देखने से लगता है कि तुमने छाया-ग्रहण का वर प्राप्त किया है (किसी की परछाईं को पकड़कर उसे आक्रांत करने का वर पाया है)। तुम्हारे द्वारा मेरी परछाईं को ग्रहण करने पर भी, किंचित् भी श्रांत हुए बिना मैं जाता रहा। मेरे वैसे वेग को देखकर भी तुमने मुझे पहचाना नहीं और अपने वदन-रूपी गह्वर से समस्त अंतरिक्ष को भरकर मेरे मार्ग को रोककर खड़ी हो गई। तुम कौन हो और क्यों यहाँ आकर खड़ी हो?

(हनुमान् के वचन सुनकर अंगारतारा ने उत्तर दिया—) तुम यह विचार छोड़ दो कि मैं केवल स्त्री हूँ। (मेरे पास आने पर), देवताओं का भी मरण निश्चित है। स्वयं यम ही आ जाये (और मेरे शिकार को बचाने की चेष्टा करे), तो भी मेरे दृष्टि-पथ में आगत प्राणियों को खाने की मेरी इच्छा का दमन नहीं कर सकता।

(इस प्रकार कहकर) उस राक्षसी ने, खड्ग-दंतों से युक्त अपने कराल मुँह को विशाल रूप में खोला। उस महिमापूर्ण (हनुमान्) ने उसके उदर में प्रवेश किया। 'हनुमान् मर गया'—यह सोचकर धर्मदेव भी रो पड़ा। देवता व्याकुल हो उठे। किंतु, एक क्षणमात्र के भीतर ही, (उसके उदर से) वह इस प्रकार बाहर निकल आया, मानों भीमकाय नरसिंह ही (स्तंभ को भेदकर) बाहर निकला हो।

मद्य प्रवाहित करनेवाले मुँहवाली वह राक्षसी दहाड़ कर रो उठी। इधर क्षण-भर में उसकी आँतों को अपने विशाल दीर्घ हस्तों में लिये हुए हनुमान् अंतरिक्ष में प्रकट हुआ। तब वह उस अतिबली गरुड जैसा लगा, जो कँटीले वृक्षों से भरे पर्वत की कंदरा में घुसकर वहाँ के कठोर नागों को लेकर बड़ी शीघ्रता के साथ ऊपर उड़ा हो।

अमरत्व का वर पाये हुए महापुरुषों में तिलक के समान वह (हनुमान्) उस (राक्षसी) के मुँह में घुसकर उसकी आँतों को उखाड़कर झट ऊपर उठ गया। वह ऐसा लगा, जैसे तेज हवा में कोई पतंग उड़ रहा हो, जिसकी डोरी धरती से आसमान तक फैली हुई हो और जिसकी पूँछ लहरा रही हो।

(वह दृश्य देख) दानव चिंताकुल हो पसीने-पसीने हो गये। स्वर्गवासी आनंद से कोलाहल कर उठे। ब्रह्मा ने आनन्दित होकर प्रशंसा करते हुए पुष्प बरसाये, जिससे वह समुद्र भी पट-सा गया। विशाल कैलास पर स्थित अविनाशी भगवान् भी देखता रह गया और ऋषि आशीर्वाद देते रहे।

उस राक्षसी को मुँह से उदर तक (उस हनुमान् ने) चीर डाला, जिससे उसका अंत हो गया। इधर हनुमान् क्षणमात्र में मेरु को भी नीचा करता हुआ ऊपर उठा और मन से भी अधिक वेग से अंतरिक्ष में सूर्य के मार्ग से होकर उड़ा।

उस हनुमान् ने सोचा—'यह अपार समुद्र वर्णन से परे है। यह अंतरिक्ष भी अन्तहीन है। अभी (बाधा देने के लिए) आये हुए इस प्राणी-जैसे किसी भी प्राणी

के आने पर मुझे विचलित नहीं होना चाहिए। मुझे आगे बढ़कर अवश्य लंका में पहुँच जाना चाहिए। तभी सब विघ्न दूर होंगे (अर्थात्, जबतक मैं लंका में नहीं पहुँच जाऊँगा, तबतक कोई-न-कोई विघ्न होता ही रहेगा)। अतः, अब मुझे विलंब नहीं करना चाहिए। शीघ्र लंका पहुँचना चाहिए।

हितकारी धर्म की उपेक्षा करके अज्ञ राक्षस जो पाप करते रहते हैं, उनसे अनेक विपदाएँ उत्पन्न हो गई हैं। उन विपदाओं को दूरकर, उद्धार पाने का मार्ग क्या है? 'राम' कहते ही समस्त विपदाएँ दूर हो जायँगी। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है— इस प्रकार सोचकर उस (हनुमान् ने) उसी (राम-नाम) का आश्रय दृढतापूर्वक लिया।

मधुस्रोत से भरे अलौकिक कल्पवृक्ष से शोभायमान देवलोक के समीप में, अंतरिक्ष-मार्ग से जानेवाले वह हनुमान्, स्वर्णमय कलशों तथा यंत्रों से युक्त और (प्रहरियों से) सुरक्षित प्राचीर पर न उतरकर लंका नामक उस पुरातन नगरी से कुछ दूर हटकर, हरे-भरे उद्यानों से शोभायमान एक भारी तथा अनुपम प्रवाल-पर्वत पर जा उतरा।

बहुत ऊँचाई पर चलनेवाला वह (हनुमान्) जब उस (प्रवाल-पर्वत) पर झपटकर उतरा, तब जलधि से घिरी लंका का वह पर्वत विचलित होकर, इधर से उधर और उधर से इधर होकर डूबने-उतराने लगा, जैसे कोई नाव, आँधी और वर्षा के आघातों से प्रताडित होकर डगमगा उठी हो और (नाव में) रखी गई वस्तुएँ छितरा रही हों।

(लंका के) सम्मुख स्थित इस प्रवाल-पर्वत पर, जिसका मूल धरती के अधो-भाग तक गया था और शिखर स्वर्ग की सीमा को छूता था—खड़े होकर उस हनुमान् ने निहारा, तो (सामने) उस लंकापुरी को अति स्पष्ट रूप में देखा, जो स्वर्गपुरी नामक सुन्दरी के अपना सौंदर्य देखने के लिए रखे हुए मुकुर के सदृश थी।

उस अति रमणीय नगर को देखकर अपने कमल-करों को बाँधे हुए हनुमान् सोचने लगा—यह कहना कि देवों की स्वर्णपुरी (अमरावती) इस नगरी के समान है, अज्ञता है। आह ! वह अमरावती क्या इससे अधिक सुन्दर हो सकती है? समस्त ब्रह्मांड पर शासन करनेवाला रावण इस नगरी में निवास करता है, यही तथ्य इसके महत्त्व का सबसे बड़ा कारण है।

'स्वर्ग महिमापूर्ण है और अनुपम सौंदर्य से युक्त है'—ऐसा कहना सत्य नहीं है। क्योंकि, स्वर्ग वही होता है, और वेदों का निश्चय भी यही है कि, जहाँ सब अभीष्ट वस्तुएँ पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हों और अलभ्य भोगों को अनंत परिमाण में इस प्रकार भोगने का संयोग मिले कि उनसे कभी तृप्ति न हो।

कहते हैं कि इस नगरी का प्रसार सात सौ योजन है। तीनों लोकों के श्रेष्ठ पदार्थ इस नगर में भरे पड़े हैं। अति सूक्ष्म मति से ग्रहण करने योग्य शास्त्रों के ज्ञाता और उनका विवेचन करने में चतुर पुरुष भी (इसके वैभव को) देख नहीं सकते; क्योंकि देखने-वाली इंद्रियाँ असीम नहीं हैं, किन्तु इस नगर के वैभव निस्सीम हैं। (१–६४)

अध्याय २

नगरान्वेषण पटल

धनी घटाओं को पार कर चंद्र को छूनेवाले (लंकानगर के) प्रासाद, ऐसा संशय उत्पन्न करते थे कि क्या ये सोने को ढालकर उसमें रत्नों को जड़कर निर्मित किये गये हैं, या ये बिजली के बने हैं, या सूर्य की कांति से निर्मित हुए हैं, या और किसी पदार्थ से बने हैं ?—कुछ निश्चय नहीं किया जा सकता।

(इस नगर के सौध) इतने उन्नत थे कि उन्हें देखने पर ऐसा भान होता था कि देव-सौधों के सहित देवलोक भी इस नगरी का एक भाग ही है। देवताओं को भी भयभीत करते हुए, विशाल मेरु को विचलित करनेवाले वायुदेव जो मंद लहरें उत्पन्न करता था, वे उन (सौधों) में ही प्रवाहित होती थीं।

चाशनी के समान मधुर बोलीवाली (दासियाँ) विशाल घन-घटाओं की बिजलियों को पकड़-पकड़कर (उनका झाड़ू बनाकर) उनसे (प्रासादों के) बाहरी भाग में बिखरे हुए सुगंधि-चूर्ण को बुहार देती थीं और अँगुलियों में भरकर आकाशगंगा से जल लाकर उनपर छिड़कती थीं।—उस नगरी में इस प्रकार के सौध थे।

महावर से रंजित और संगीत उत्पन्न करनेवाली किंकिणी से भूषित (राक्षस-स्त्रियों के) पैर, मनोहर तथा रक्तवर्ण प्रवाल के समान अपनी कांति बिखेरकर मेघों के अंजन-वर्ण को मिटा देते थे (उन्हें रक्तवर्ण कर देते), अतः उन (राक्षसियों) के शरीर के उपमानभूत वे मेघ अब उनके आभरण-भूषित (रक्तवर्ण) केशों के उपमान बन गये थे।

आकाश-गंगा, उस नगर के प्रासादों के आँगनों में प्रवाहित होती थी, जिससे सद्योविकसित कस्तूरी-गंधयुक्त कल्प-पुष्प की सुगंध वहाँ फैल जाती थी। (उन कल्प-पुष्पों के) मधु का इच्छा-भर पान करके ऊबे हुए भौंरे, अन्य मधु की चाह से वहाँ के सुरभित रक्त-कमलों पर आ बैठते थे।

वंशी, वीणा, याक् इत्यादि के नाद को परास्त करनेवाली, प्रासादों के शुकों को भी मृदु-मधुर बोली सिखानेवाली राक्षस-रमणियाँ तथा चारों ओर स्थित मनोहर, उन्नत, रत्नमय भित्तियों में दृष्टिगत होनेवाले उनके प्रतिबिंब—दोनों की वास्तविकता को पहचानना कठिन था। वहाँ के सौध इस प्रकार के थे।

यदि यह कहा जाय कि इस प्रकार के वे सौध इंद्र के आवासभूत भव्य प्रसाद जैसे थे, तो यह कथन भी दोषपूर्ण होगा (क्योंकि, इनमें उपमान-उपमेय भाव उचित नहीं है।)[1] यदि इस कथन को सत्य माना जाय, तो राक्षसों के ऐश्वर्य की एक सीमा निर्धारित हो जाती है, (जो वास्तव में नहीं है।) इतना ही नहीं, वह उपमा भी उसी प्रकार की होगी (अर्थात्, सौध ही नहीं, राक्षसों की संपत्ति का भी उपमान इंद्र की संपत्ति होगी।)

---

१. तात्पर्य यह है कि इन्द्र का ऐश्वर्य सीमित है और राक्षसों का असीम। अतः, इनमें उपमान-उपमेय भाव संगत नहीं है।—अनु०

कोई रत्न, चाहे वह कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, (उसके संबंध से) यह नहीं कह सकते कि वह विष्णु के वक्ष पर शोभित (कौस्तुभ नामक) रत्न से भी श्रेष्ठ है। (उसी प्रकार) उत्तम देवशिल्पी विश्वकर्मा ने, श्रेष्ठकला-निर्माण का दृढ संकल्प करके, अपने हाथों से, शिल्प-चातुरी से युक्त जिस अति सुन्दर (लंका) नगरी का निर्माण किया है, वह भी उसी प्रकार की है (अर्थात्, कौस्तुभ मणि के समान ही श्रेष्ठ है और तीनों लोकों में कोई नगरी इसकी तुलना नहीं कर सकती है)।

वह (लंका) नगरी, (संसार के) सब प्राणियों के अपने भीतर एक साथ निवास करने योग्य होने से; लोकनायक विष्णु के उदर की समता करती थी। वर्तुलाकार ब्रह्मांड के भीतर रहनेवाले, सूर्य के सात अश्वों को छोड़कर, बाकी सब अश्व इसी नगरी में रहते थे।

(यहाँ के) वृक्ष सब कल्पवृक्ष ही थे। सब प्रासाद कांचनमय ही थे। राक्षस-स्त्रियों की सब दासियाँ अप्सराएँ ही थीं। यहाँ देवता अपनी शक्ति खोकर राक्षसों की चाकरी करते हुए इधर-उधर दौड़ते रहते थे। यह सारा ऐश्वर्य, किसी को अनायास ही प्राप्त होनेवाला नहीं है, यह तो बड़ी तपस्या का ही फल हो सकता है।

युद्ध में पराजित होकर (रावण से) तिरस्कृत होने से आठ गज दूर-दूर, आठों दिशाओं की सीमा में भाग खड़े हुए और एक अनुपम तथा महिमामय पंचहस्तवाले गज (अर्थात्, विनायक) तथा सूर्य का विलक्षण एकचक्र रथ—यही उस नगर में नहीं थे। (अर्थात्, शेष सब हाथी और रथ आदि उसी नगरी में ही थे।)

देवता कहलानेवालों में कौन ऐसा था, जो इस शोभामयी नगरी के अधिपति (रावण) की सेवा न करता हो? अष्ट रूपवाले[1] त्रिमूर्तियों से भी यदि वह (रावण) अधिक प्रतापी था, तो उसका यह प्रभाव उसके द्वारा अति उत्साह से आचरित तपस्या का ही फल था। नहीं तो, और कौन इतना महान् ऐश्वर्य दे सकता है?

शब्दायमान भेरियों का बड़ा नाद, सुन्दर महागजों के गर्जन का नाद समुद्र के गर्जन से भी बढ़कर शब्द करते थे। सुनिर्मित वंशी की-सी मधुर बोलीवाली (राक्षस)-रमणियों के नूपुर-नाद से भेरी आदि के नाद भी दब जाते थे।

मरकत तथा अन्य रत्नों से सुन्दर रूप में निर्मित उत्तम अश्व जुते हुए विशाल रथों से युक्त (वहाँ के) मार्ग इस प्रकार चमकते थे कि (उन्हें देखकर) सूर्य की किरणें भी लज्जित हो जाती थीं। अत्युत्तम स्वर्गलोक भी इस नगर की तुलना में नरक-तुल्य था।

पीने योग्य सौंदर्य से युक्त (अर्थात्, जिसके अत्यधिक सौंदर्य को दर्शक अपने नेत्रों से पी-से जाते हैं) इस नगरी की कांति लगने से वैर उत्पन्न करनेवाले, क्रोध से भरे, राक्षसों का काला रंग भी मिट जाता था। (उस नगर के) समीप जाने पर चंद्रमा भी कलंक-हीन हो जाता था; तथा पृथ्वी को घेरे रहनेवाला सागर भी ऐसा लगता था, जैसे बारहवानी (?) सोना पिघल रहा हो।

---

१. अष्टरूप = परमात्मा के आठ रूप हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्र और अग्नि।

ऊँचाई पर रहनेवाली प्रखर किरणें, धरती को आवृत करनेवाले अंधकार को हटा देती हैं। उस अति सुन्दर नगर के अतिदीर्घ गृहों की किरणें समस्त अंधकार को निगल जाती थीं।—इन दोनों की किंचित् भी तुलना अनुचित है (अर्थात्, सूर्य गगन पर रहकर जो काम करता है, उसे ये प्रासाद धरती पर रहकर ही कर देते थे)। यदि सूर्य के साथ इस नगर की कांति की तुलना करेंगे, तो वह सूर्य इसके सम्मुख उतना भी नहीं चमकेगा, जितना उसके सामने जुगनू चमकते हैं।

(फूलों से बहनेवाले) मधु, चन्दन, कस्तूरी-मिश्रित सुगंध-रस, स्वर्ग के कल्पवृक्ष के नवविकसित पुष्पों के रस, अति बलिष्ठ मत्तगजों का मद-रस, इन सब (रसों) के समुद्र-नीर में बहने से समुद्र की दुर्गन्धि (मिट जाती थी) और उसमें रहनेवाले मीन अति उत्तम सुगंधि से भर जाते थे।

देवशिल्पी (विश्वकर्मा) की प्रशंसा करें या क्रोधारुण नेत्रवाले राक्षस ने सत्य पर दृढ रहकर जो तप किया था, उसकी प्रशंसा करें, या ब्रह्मा ने संदेह-रहित होकर जो वर (रावण को) दिया था, उसकी प्रशंसा करें—यह न जाननेवाले शिथिलचित्त हम किसकी क्या कहकर प्रशंसा करें ?

(यहाँ के) वन और उद्यान यद्यपि स्वर्ण तथा रत्नों से निर्मित थे, तथापि वे मधु, पुष्प और फल देते थे। ऐसा विचित्र निर्माण-कौशल क्या और कोई भूमि या आकाश प्राप्त कर सकेगा ?

जल, भूमि, अग्नि, ऊपर बहनेवाली वायु तथा इनके संचरण का क्षेत्र आकाश (इस नगर के औन्नत्य के सामने) अपनी महत्ता के कारण प्रशंसित नहीं होते। यदि मेरुपर्वत भी इस नगर के गोपुर की ऊँचाई को जान ले, तो वह लज्जित हो अपने सारे अंगों से सफेद हो जाय।[1]

प्राचीरों की अमंद कांति से दृष्टि चौंधिया जायगी, इसी डर से सूर्य उस लंका नगरी से दूर हटकर संचरण करता था। इस तथ्य को न जानकर ही लोग दीर्घकाल से यह कहते आ रहे थे कि रावण के क्रुद्ध हो जाने के डर से ही वह (सूर्य) उस स्वर्णनगर से होकर नहीं जाता था।

कैलास को उठानेवाले (रावण) ने यह सोचा कि हम (राक्षसों) का अहित करनेवाले यदि कोई हैं, तो वे देवता ही हैं। अतः, उनके आने के मार्ग से भी अधिक उन्नत प्राचीर बनाऊँगा। फिर, उसने असंख्य देवों के संरक्षण-क्षेत्र अंतरिक्ष से भी अधिक ऊँचा तथा दृढ प्राचीर बनाया।

उस सुन्दर प्राकार को पार कर, परिभ्रमण कर चलनेवाली वायु भी उस नगर में प्रविष्ट नहीं हो सकती थी। दिनकर की किरणें भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकती थीं। यमराज का कठोर कौशल भी वहाँ नहीं चल सकता था। अब यह कहना व्यर्थ है कि

---

१. जल की गंभीरता, भूमि की विशालता, अग्नि का तेज, वायु का प्रसार और आकाश की विभुता—ये सभी लंका नगरी की महत्ता की समानता नहीं कर पाते थे।—अनु०

देवता भी उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकते थे। (यहाँतक कि) वह धर्मदेवता भी, जो प्रलयकाल में सबका विनाश होने पर भी अविनश्वर रहता है—उस नगर में प्रवेश नहीं कर सकता था।[1]

यह नगर, उत्तुंग तरंगों से शब्दायमान समुद्र के मध्य स्थित होकर, अनन्त आकाश को छूनेवाले शिखरों से शोभित था। इस लंकापुरी का आकार सर्पराज पर शयन करनेवाले (विष्णु) की नाभि से उद्भूत अंडगोल के सदृश था।

(इस नगर में) यदि संगीतज्ञ अनेक थे, तो नृत्य करनेवाले उनसे भी अधिक थे। उन नृत्य-कलानिपुणों से भी अधिक, नृत्य के अनुकूल (ताल) के अनुसार चर्मबद्ध सुन्दर मद्दल (वाद्य) बजानेवाले थे। वे (राक्षस) कारागारों से मुक्त किये गये देवों से नृत्य कराकर उसे देखते रहते थे।

(वहाँ) देवांगनाओं से भी अधिक सुन्दर ढंग से विद्याधर-स्त्रियाँ नृत्य करती थीं। उन (विद्याधर-स्त्रियों) से भी अधिक सुन्दर ढंग से यक्ष-स्त्रियाँ नृत्य करती थीं। निरंतर वर्षा करनेवाले कालमेघ-सदृश केशवाली राक्षसियाँ उन (यक्ष-स्त्रियों) से भी अधिक सुन्दर ढंग से नृत्य करती थीं। उस प्रकार उनके नृत्य करते समय, अन्य लोकों की स्त्रियाँ, उनके अपूर्व नृत्यों का अवलोकन करके आनन्द उठाती रहती थीं।

नवनिधियों, आभरणों, मालाओं, वस्त्रों और चन्दन को लेकर उन राक्षसों के निकट दासियों के सदृश खड़ी रहती थीं। क्या यहाँ के ऐसे भोगों की कामना अन्य कोई कर सकता था? यदि अपने मुँह से इसका वर्णन करने लगें, तो वाणी ही कुंठित हो जायगी। यदि मन से उसकी कल्पना करने लगे, तो मन उसे दोष के रूप में लेगा (अर्थात, मन भी उसकी कल्पना करने में असमर्थ हो, बुरा मान लेगा)।

(इस नगर के निर्माण के समय) चतुर्मुख (स्वयं) सोच-समझकर, समीप में खड़े होकर, कर्त्तव्य कार्यों के विषय में आदेश देता रहा होगा। पहले जिस शिल्पी (अर्थात्, विश्वकर्मा) के संबंध में कहा गया है, उसने सोच-समझकर, स्वर्णमय उत्तम मेरु-गिरि से लाये गये बहुत-से रत्नों को स्थान-स्थान पर जड़कर, अनेक काल तक परिश्रम करके, प्रशंसनीय रूप से इस नगर का निर्माण किया होगा।

(वहाँ की) मकरवीणा के गंभीर नाद से सागर का बड़ा गर्जन भी मंद पड़ जाता था। वहाँ के सौधों के भीतर, जिनके शिखरों को चतुर्मुख अपने हाथ से छू सकता था (अर्थात्, जो शिखर सत्यलोक तक पहुँचते थे), रहनेवाली रमणियाँ जो अगरु-धूम अधिक परिमाण में उत्पन्न करती थीं, उससे मेघ-समूह अदृश्य हो जाते थे।

(वहाँ राक्षस) स्फटिकमय गृहों में, नवमधु बरसानेवाले कल्पवृक्षों से भरे शीतल उद्यानों में तथा अन्य स्थानों में, (दास-दासियों के द्वारा) दिये जानेवाले मधु का पान करके नाचने, गाने और आनन्द मनाने में मस्त रहते थे। वहाँ के रहनेवालों में कोई भी व्यक्ति चिन्तामग्न नहीं दिखाई देता था।

---

१. ध्वनि यह है कि वहाँ धर्म के लिए कोई स्थान नहीं था।—अनु०

राक्षसियों के प्राणतुल्य राक्षस कहीं मदिरा-पान करते थे, कहीं मधु-सदृश संगीत-पान करते थे। कहीं (राक्षसियों के) अधरामृत का पान करते थे। कहीं मधुर संलाप का (पान) करते थे। कहीं मन के कोप-पूर्ण वचनों का पान करते थे और उन मानवतियों को नमस्कार करके उनके उमड़ते हुए कोप की शांति का पान करते थे (अर्थात्, उनको शांत करके उससे आनन्द उठाते थे)।

कुछ राक्षसों के काले शरीर (उनपर लगे हुए) राक्षसियों के स्तनों पर रक्त कुंकुम-रस से लिखित पत्र-लेखाओं से शोभायमान हो रहे थे। (कुछ) राक्षस-पुरुषों के केश, प्रणय-कलह में रूठकर क्रोध-भरी दृष्टि से देखनेवाली (राक्षसियों) के चरण-कमलों के महावर से उत्पन्न चिह्नों से शोभायमान हो रहे थे।

गर्जन करनेवाले जलधि से आवृत लंका 'धैवत' स्वरवालियों के (लाल-लाल) अधरों के कारण समुद्र में बढ़े हुए प्रवाल-वन के समान शोभित हो रही थी। (उन रमणियों के) शूल-तुल्य नेत्रों के कारण कमल-सर के सदृश शोभित हो रही थी तथा उन रमणियों के शीतल वदनों के कारण रक्त-कमलवन के सदृश शोभित हो रही थी।

वहाँ के राक्षस उस अंडगोल में उड़कर सर्वत्र संचरण करते रहते थे, फिर भी अबतक यह (अंडगोल) टूटकर गिरा नहीं। अंडगोल की इस दृढता पर ही आश्चर्य प्रकट करना है। इसके अतिरिक्त (राक्षसों की संख्या जानने के लिए) चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? कमलभव (ब्रह्मा) से लेकर समस्त प्राणी (इस नगर के) राक्षसों की गणना करते समय चिह्न के रूप में रखने के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं।

आकार में बड़े, वीरता में अपरिमेय, लोकों का विनाश करने के लिए सदा तत्पर, बाहुबल में असीम तथा अज्ञेय माया से पूर्ण राक्षस जिस नगर में रहते थे, क्या उसकी कहीं सीमा हो सकती है? (उस नगर में) एक वीथि में रहनेवाले का दूसरी वीथि में जाना एक देश के निवासियों का दूसरे देश में जाने के समान था।

वीर-वलय से रहित पैरवाले, यमतुल्य शूल से रहित करोंवाले और प्रज्वलित अग्नि से रहित नेत्रोंवाले पुरुष (उस नगर में) नहीं थे। वहाँ ऐसी वीणा-स्वरवाली रक्ताधरा स्त्रियाँ भी नहीं थीं, जिनके (चरणों के) महावर-चिह्न, मधुमत्त हो गानेवाले भ्रमरों से गुंजरित (पुरुषों के) केशों से न मिटे हों।

मुखपट्टों से भूषित वहाँ के हाथी, जो प्रेम के साथ भ्रमरों से अनुगत रहते थे, जो इस प्रकार तीव्र गति से जाते थे कि उनकी देह से मांस की गंध चारों ओर फैल जाती थी, जो श्वेत तथा दृढ दंतवाले थे, जिनके मन में आनन्द भरा रहता था तथा जो पहाड़-जैसे ऊँचे थे, (वे हाथी उस नगर के) पुष्पों से स्रवित मधु से युक्त लाल केशवाले राक्षसों के ही समान थे।

मधुपान करके राक्षस-स्त्रियाँ मन के मोद से लास्य-नृत्य करती थीं और उसे देखनेवाली लता-समान सूक्ष्म कटिवाली देवांगनाएँ (जो उनकी सेवा में नियुक्त रहती थीं) उनके ताल-विशुद्ध नृत्य को देखकर अपने मन में शिथिल हो जाती थीं। जब उन विशाल

नयन-युक्त राक्षस-रमणियों का रजत उज्ज्वल मंदहास प्रकट होता था, तब वे देवांगनाएँ भी लज्जित हो जाती थीं।

(हनुमान् उस नगर को देखकर अपने मन में सोचने लगा—) हमारी श्रेष्ठ वानर-सेना के लिए एक साथ इस नगर में आ पहुँचना भले ही संभव हो, पर उससे क्या होगा? हमारे द्वारा इस नगर का विनाश होना तो दूर की बात है, क्या वे वानर (इस नगर में पैर रखकर) चल भी पायेंगे? (क्योंकि) कालवर्ण राक्षसों और राक्षसियों ने जो आभरण घृणा से उतारकर फेंक दिये हैं, उनसे इस नगर की सारी वीथियाँ पटी हुई हैं।

इस नगर की वीथियों में स्वर्णहार, कर्णाभरण, अन्य आभूषण, पुष्पमालाएँ, चन्दन-रस, हाथियों का मद-जल, लगाम-लगे घोड़ों के मुँह से बहता हुआ फेन, अपरिमेय मात्रा में गिरे हैं। उस नगर से नदियों के द्वारा बहाकर लाये गये उन पदार्थों को यदि समुद्र अपने में समा सका है, तो क्या समुद्र-सदृश गहरा स्थान कोई अन्य हो सकता है?

(हनुमान् आगे सोचने लगा) मैं जब अपने प्रभु को (इस नगर के संबंध में) बताऊँगा, तब क्या कहूँगा? क्या यह कहूँगा कि य हाँ की धनुर्धारी सेना बड़ी है, या यह बताऊँगा कि शूलधारी सेना बड़ी है, या मल्ल योद्धाओं की सेना को श्रेष्ठ बताऊँगा, अथवा खड्गधारी सेना को अधिक कहूँगा, अथवा यह कहूँगा कि यहाँ गदा, भिंडिपाल, अरिगंड इत्यादि आयुधों से युक्त सेना सबसे श्रेष्ठ है?

(हनुमान्) लंकानगर को देखकर इसी प्रकार सोचता रहा। फिर, यह विचार-कर कि यहाँ रहनेवाले निष्ठुर राक्षस कदाचित् मेरा सामना करने के लिए आ जायें—अपने उस विराट् स्वरूप को छोटा कर लिया और मनोहर सानुयुक्त उस (प्रवाल) पर्वत पर ही खड़ा रहा। उसी समय उष्णकिरण (सूर्य) गर्जन करनेवाले समुद्र में निमग्न हुआ।

तब अंधकार सर्वत्र उसी प्रकार बढ़ गया, जिस प्रकार (अपने) मनमाने कामों से (दूसरों का) नुकसान करके धन उपार्जन करनेवाले का, पुण्य-पाप का विचार न करने-वाले का, विज्ञ व्यक्तियों के (सद्) वचनों को स्वीकार न करनेवाले का, अपने दुष्परिणामों का विचार न करनेवाले का तथा सत्य से रहित आचरणवाले का पाप बढ़ता है।

वह अंधकार समस्त विश्व को आवृत करनेवाली विशालता से युक्त था, मानों त्रिपुरों को जलानेवाले, परशुधारी (शिव) भगवान् ने मुनियों के द्वारा होमाग्नि से उत्पन्न किये गये गज का चर्म निकालकर उससे सारे विश्व के लिए एक आवरण (खोल या गिलाफ) तैयार कर दिया हो।

वह अंधकार ऐसा फैला, मानों दुःखदायक सर्पराज (आदिशेष) असंख्य वर्षों से, अपने सब फनों से जो विष बहा रहा था, उससे संपूर्ण विश्व को क्रमशः अपने वश में लाता हुआ, अग्नि और धूम के साथ, उमड़ चला हो।

(वह अंधकार ऐसा फैला, मानों) उदारता को न त्यागनेवाले अतिश्रेष्ठ (सूर्य)-कुल में अवतीर्ण (राम) की, स्त्रीत्व (अर्थात्, स्त्री-सहज लज्जा, संकोच, निष्कपटता और मुग्धता) को न त्यागनेवाली साध्वी को, पराक्रम को न त्यागनेवाले (रावण) ने बंदी

बनाया है—इस कारण से ही मानों श्वेतवर्ण को त्यागनेवाला अपयश[१] सर्वत्र फैल गया हो।

उस स्थान में जब उस प्रकार का अंधकार व्याप्त हुआ, तब राक्षस, यद्यपि वे यथाक्रम उपदेश-प्राप्त मंत्रबल से दिशाओं में उड़ सकते थे, अपने अति क्रूर मार्ग पर अंधकार को रौंदते हुए सब दिशाओं में बढ़ चले।

उनमें (निशाचरों में), रावण की आज्ञा पाकर, कोई इंद्र के ऐश्वर्य-संपन्न नगर को जा रहा था, कोई शक्ति-पूर्ण चंद्रलोक को जा रहा था और कोई कोलाहल करते हुए अंतक (यम) के विनाश को जा रहा था।

स्वर्ग-नगर (अमरावती) में निवास करनेवाली सुन्दरियाँ, विद्याधर-स्त्रियाँ, नागकन्याएँ और यक्ष-रमणियाँ (उन राक्षसों के द्वारा) सोचे गये (बताये गये) कार्यों को ठीक ढंग से संपादित करने के लिए एक के आगे एक बढ़ती और बिजलियों के दल के समान आकाश-मार्ग से जाती थीं।

देवता, असुर, रक्तनेत्र नाग, रमणीय रूपवाले यक्ष, विद्याधर तथा अन्य लोग (राक्षसों द्वारा) निर्दिष्ट कार्यों को ठीक ढंग से पूरा करने के लिए इस प्रकार भीड़ लगाकर आकाश-मार्ग पर चलते थे कि (उनके शरीर की कांति से) अंधकार मिट जाता था।

पंक्तियों में लिखे चित्रों के सदृश (सुन्दर ढंग से) मंदगति प्रकृतिवाले देवता (सूर्यास्त होने पर) यह सोचकर कि हमने इतना विलंब कर दिया, (रावण) क्रुद्ध हो जायगा, ऐसे दौड़ पड़ते थे कि उनके मुक्ताहार, केशों में बँधे पुष्पहार और उत्तरीय वस्त्र उड़ने लगते थे।

अस्पृश्य पापकर्म-रूपी ग्रीष्म से दग्ध होकर धर्म-रूपी जो अंकुर झुलसकर शुष्क हो गया था, वह मानों मारुति नामक प्रतापवान् वर्षा के आगमन से, रक्षित होकर, फिर सजीव हो उठा हो, उसी प्रकार चंद्र उदित होकर प्रकाशमान हुआ।

प्राची दिशा में चंद्र उदित हुआ। वह दृश्य ऐसा था कि 'राघव का दूत आया और मेरे नायक इंद्र पुनः जीवित हो गये'—यों सोचकर अंत-रहित प्राची-रूपी, उज्ज्वल केशों तथा ललाट से संयुक्त सुन्दरी आनन्दित हो उठी हो और उसका वदन प्रकाशमान हो रहा हो।

शीतल तथा श्वेत चंद्रमंडल इस प्रकार चमक उठा, मानों इंद्र का श्वेत छत्र हो, जिसके पार्श्वों में समुद्र की धवल तरंगों के सदृश पुंजीभूत चामर डुल रहे थे—यह सोचकर कि राक्षस अब मिट गये, ऊपर उठ आया हो।

गगन-रूपी महापुरुष उदित होकर, उज्ज्वल दिखाई पड़नेवाले चंद्रमंडल-रूपी रजतघट को लेकर, वीचीमय क्षीरसागर (के क्षीर) को भर-भरकर उड़ेल रहा हो—इस प्रकार धवल चंद्रिका, उस क्षीर के बुलबुले-जैसे लगनेवाले नक्षत्रों के साथ, ऊपर और नीचे फैली।

---

१. यश श्वेतवर्ण का और अपयश काले वर्ण का माना गया है।

आदिगगन ही अपूर्व तपस्या-संपन्न (वसिष्ठ) की सुरभि था। विशाल चन्द्रमा का उदय-स्थान ही उस गाय का अंक था। चन्द्रमा ही उसका क्लेश-रहित थन था (क्लेश-रहित इसलिए कि उसे दुहने की आवश्यता नहीं होती थी, वह स्वयंस्रावी था)। (चन्द्र की) किरणें ही उसकी दुग्ध-धाराएँ थीं तथा चन्द्रिका का दृश्य ही फैलते हुए दूध के समान था।

सब नक्षत्र ऐसे लगते थे, मानों प्रशंसनीय हनुमान् के ऊपर (देवों के द्वारा) जो पुष्प बरसाये गये थे, वे प्रतापी खड्गधारी राक्षस (रावण) के डर से धरती पर न गिरकर और फिर ऊपर भी न जाकर उज्ज्वलकिरण (सूर्य आदि) के संचरण-क्षेत्र नभ में ही अटक गये हों।

मल्लिका-पुष्पों पर भ्रमर मँडराते थे। वे भ्रमर और पुष्प इस प्रकार लगते थे, मानों निशा में बिखरे अंधकार-खंड तथा उस अंधकार को मिटानेवाली धवल चन्द्रिका के खंड, एक दूसरे को वैरी समझते हुए परस्पर युद्ध कर रहे हों।

शीतल किरणपुंज-रूपी छिटकती हुई चाँदनी शीघ्र ही (उस नगर में) सर्वत्र व्याप्त हो गई। वह दृश्य ऐसा था, मानों रत्न-जटित सुरक्षित प्राचीरों से घिरी हुई लंका नगरी पर श्वेतवस्त्र का आवरण लगाया गया हो।

वह चाँदनी लंका में इस प्रकार व्याप्त हुई, मानों अनिन्दनीय उत्तम गुणशाली राम के द्वारा प्रयुक्त बाण की गति से जब हनुमान् वहाँ आ पहुँचा, तब उसके सहारे उन (राम) की कीर्त्ति भी वहाँ आ गई हो और परिखा तथा प्राचीरों को लाँघकर, लंका में प्रविष्ट होकर सर्वत्र व्याप्त हो गई हो।

उस समय (हनुमान् ने) मन में यह विचार करते हुए कि मैं इस लंकापुरी में किस प्रकार प्रवेश करूँ? अंत में सीधे मार्ग से (अर्थात्, सब जिस राजमार्ग से जाते हैं, उसी से) भीतर जाने का निश्चय किया और देवों से प्रशंसित होता हुआ दुष्टमार्ग पर चलनेवाले राक्षसों के नगर में (सीधे मार्ग से) प्रवेश करने लगा।

(हनुमान्, लंका के) उस प्राचीर के निकट जा पहुँचा, जिसे घेरकर समुद्र ही परिखा के रूप में पड़ा था, जिसका शिखर देवताओं के निवासभूत सत्यलोकों के परे शून्य स्थान तक उठा हुआ था, जो अनुपम स्वर्ण से निर्मित था और जो प्रलयकालिक जल-प्रवाह से सारे विश्व के विनष्ट होने पर भी नहीं मिटता था।

'अपने स्थान से विचलित न होनेवाले तीव्रगामी (सूर्य, चन्द्रादि) ज्योतिष्पुंज, विजयप्रद शूलधारी वंचक (रावण) से डरकर ही (उसकी नगरी के) ऊपर शीघ्रता से नहीं चलते'—यह कथन सत्य नहीं है। (किंतु) यह सोचकर कि इस लंका के प्राचीरों को लाँघकर जाना असंभव है, वे वहाँ से शीघ्रता से हट जाते थे—यों विचार करता हुआ (हनुमान्) विस्मित हुआ।

यदि यह कहें कि यह प्राचीर असंख्य शत्रुओं के रहने योग्य विशाल है, तो यह उतने में ही सीमित नहीं है। ब्रह्मांड के मध्य जितना अवकाश है, वह सब इस प्राचीर में समाया हुआ है। इसकी सीमा भी वह (ब्रह्मांड) ही है, (अर्थात् ब्रह्मांड की सीमा तक

यह प्राचीर फैला हुआ है); के उस नगर शासक अति बलवान् राक्षस के बारे में मन में विचारकर वह (हनुमान्) विस्मित हुआ।

लंबे केसरोंवाले सिंह तथा महान् मत्तगज को लज्जित करते हुए एकाकी ही चलकर (उस प्राचीर के द्वार पर) पहुँचनेवाले उस शूर ने उस अतिप्राचीन और अतिविशाल नगर-द्वार को सामने देखा, जो असंख्य सेनाओं से सुरक्षित था तथा शूलधारी यम की आज्ञा पूरी करनेवाले भयंकर और शक्ति-पूर्ण मुख के समान था।

(हनुमान् ने उस नगर के सिंहद्वार को देखकर) सोचा कि क्या यह (द्वार) मेरु को ही यहाँ खड़ा करके उसमें छेद बनाकर निर्मित किया गया है, या स्वर्गलोक में जाने के लिए निर्मित सीढ़ी के चौखट को ही लाकर यहाँ रखा गया है, या सप्तलोकों को स्थिर रखने के लिए बीच में खड़ा किया हुआ कोई स्तंभ है, या समुद्र के समस्त जल के बहने का ही मार्ग है ?

सप्तलोकों के समस्त प्राणी यदि एक साथ मिलकर (रावण का) सामना करने आयें, तो वे एक के पीछे एक न चलकर सब एक साथ इस मार्ग से प्रवेश कर सकते हैं। यदि यह कहें कि यह विशाल द्वार (इस नगर के) निवासियों के जाने के लिए बनाया गया है, तो वह भी ठीक नहीं है; क्योंकि हमारे शत्रु-(राक्षसों) की संख्या सप्तसमुद्रों में भी नहीं समा सकती है।

उस पराक्रमी (हनुमान्) ने देखा कि सामने अनेक शत-सहस्र अक्षौहिणी संख्या में वीरता, माया तथा कठोरता से युक्त राक्षस अपने दोनों ओर फैले काँटे-जैसे खड्ग-दंतों के साथ, अपने दोनों हाथों में करवाल लेकर पंक्ति बाँधे खड़े हैं।

वे बलशाली (राक्षस) त्रिशूल, परसा, करवाल, भाला, तोमर, मूसल, यम-तुल्य बाण, लौह-काँटे, भुशुंडि (नामक आयुध-विशेष), दंड, वक्रदंड, चक्र, कुलिश, छुरिका, कुंत, भिंडिपाल इत्यादि आयुधों को दृढ़ता से धारण किये खड़े हैं।

उनके हाथ, अंकुश, पत्थर फेंकने का दीर्घ जाल, अति तीक्ष्ण शब्द करनेवाले दाभ (काटनेवाले) के समान पाश इत्यादि भयंकर आयुधों से युक्त हैं। उनके घने केश रक्त-जैसे लाल हैं। वे क्रोध से भरे हैं, अतः वे फाल्गुन में पुष्पित होनेवाले पलाश-वन के समान दीखते हैं।

(उसने) सम्मुख देखा कि असंख्य दीप अंधकार को निगलकर प्रकाश उगल रहे हैं। अति कठोर हृदयवाला यम भी जिस मनोहर द्वार में प्रवेश करने से डरे, ऐसे द्वार पर समुद्र-जैसी फैली हुई अतिदृढ सेना खड़ी है।

हनुमान् ने सोचा—अहो ! कोलाहल से पूर्ण इस विशाल द्वार को पार कर सकनेवाले देवता, असुर या अन्य कोई हैं ? शत्रुओं ने कैसी रक्षा की है ? महावीर (राम) और हम (वानर) यदि (यहाँ आकर) घोर युद्ध छेड़ेंगे, तो उसका परिणाम क्या होगा ?

हनुमान् ने और सोचा—काले समुद्र को भी लाँघना कठिन नहीं है। किंतु, इस नगर की रक्षा करनेवाली बड़ी वाहिनी को पार करना दुष्कर है। यदि (मैं) सोच-

विचार में किंचित् भी त्रुटि करूँगा, तो मेरे कठिन कार्य की पूर्त्ति असंभव होगी। यदि मैं इन सैनिकों से युद्ध छेड़ दूँ, तो वह कई दिनों तक चलता रहेगा।

इस द्वार से प्रवेश करना कठिन है, यही नहीं, विचार करने पर शूरों को दूसरों के बनाये मार्ग से होकर शत्रुनगर में प्रवेश करना शोभा भी नहीं देता। अतः, उष्णकिरण (सूर्य) भी जिसे लाँघ नहीं सकता, उसी प्राचीर को त्वरित गति से लाँघकर नगर में प्रवेश करूँगा—यों निश्चय करके प्राचीर के एक ओर गया।

दीर्घकाल से अपने द्वारा सुरक्षित उस अति विशाल नगर की आयु का उस दिन अंत होने के कारण, (उस नगर की देवी) स्तंभ-सदृश भुजाओंवाले (हनुमान्) को देखकर अग्निमय नेत्रों को लिये हुए उसके मार्ग में आकर खड़ी हो गई, जिस प्रकार सूर्य को देखकर (उसे निगलने के लिए) चक्षुःश्रवा (सर्प) आ गया हो।

वह (लंकादेवी) आठ भुजा तथा चार मुखवाली थी। उसकी शरीर-ज्योति सातों लोकों में प्रतिबिम्बित हो लौटनेवाली थीं। वह चक्र के समान घूर्णित नयनोंवाली थी। यदि युद्ध करने लगती, तो तीनो लोकों को समूल बाँधकर क्रोध उगलने लगती, (वह) उस नगर की रखवाली करने के योग्य शक्ति रखनेवाली और क्षमाहीन थी।

उसके पैरों में नूपुर पड़े थे (जिनके शब्द) दूसरों को भयभीत कर देते थे। वह बिजली-जैसे चमकनेवाले आभरण पहने हुए थी। वह इस विचार से कि उस (हनुमान्) के साथ और कोई तो नहीं आ रहा है, आठों दिशाओं में दृष्टि फेर रही थी। उसकी देह से पसीना बह रहा था और वह वर्षा के मेघ के समान गर्जन कर रही थी।

वह अपने आठों हाथों में त्रिशूल, करवाल, भाला, गदा, परशु, घोर शब्द करनेवाला शंख, दंड और चमकता हुआ भाला धारण किये हुए थी। देखने में मेरुपर्वत के सदृश थी। मुख पर चंद्रमंडल के दो खंडों के समान दो खड्गदंत चमक रहे थे। वह अपने मुख से धुआँ निकाल रही थी और यम को भी भयभीत करनेवाले क्रोध से भरी थी।

वह पंचवर्ण वस्त्र पहने हुए थी। सर्पों को डरानेवाले गरुड़ के समान थी। करुणाहीन थी। सुन्दर स्वर्ण की कला से पूर्ण उत्तरीय धारण किये हुए थी। उसने ऐसा एक उज्ज्वल हार पहना था, जो तरंग-भरे समुद्र में उत्पन्न मनोहर तथा भारी सीपों से उत्पन्न मुक्ताओं से बना था।

वह सुवासित चन्दन-रस से लिप्त थी। शास्त्रोक्त रीति से वादित याक् के 'निषाद' स्वर के स्वच्छ संगीत की समता करनेवाले वचनों से युक्त थी। उसके मुकुट पर मंदारमाला हिल रही थी, जिसमें 'गांधार' स्वर गानेवाले भ्रमर आनंद से विश्राम कर रहे थे।

वह सब प्राणियों के लिए भयदायक समुद्रों से आवृत उस लंका नामक शक्तिशाली नगरी का हित करनेवाली थी। उसके ऐसे अतिविशाल नयन थे, जो उस पूरे नगर को अपने अंतर्गत कर लेते थे और उस (नगर) के आवरण-जैसे थे। ऐसी वह लंकिनी यह गर्जन करती हुई कि, 'रुको! रुको!' उस (हनुमान्) के सामने कुछ सोच-विचार करने के पहले ही (सहसा) आ उपस्थित हुई। मारुति ने उसे देखा और 'आओ' कहकर उसका आह्वान किया।

प्रज्वलित अग्नि-तुल्य, धूम-पूर्ण नयनोंवाली लंकिनी ने कहा---हे बुद्धिहीन ! तुमने अनुचित कार्य किया है, तुम डरो नहीं। पत्ते और कंदमूल खाकर जो जीवित रहते हैं, उनपर क्रोध क्यों करना चाहिए ? सुधा पीते हुए इस मनोहर प्राचीर को लाँघने के लिए उतावला न बनो। यहाँ से हट जाओ।

सुख के उद्वेगों से रहित मनवाले उस महात्मा हनुमान् ने (अर्थात्, सुख-दुःख के भाव से रहित, स्थितप्रज्ञ हनुमान् ने) मन के क्रोध को दबाकर नीतिपूर्ण ढंग से उस (लंकिनी) के व्यापारों को जानने के लिए उसका आह्वान करके कहा---प्रेम से इस नगर को देखने की इच्छा से आया हूँ। मैं, गरीब, यदि इस नगर में प्रवेशकर जाऊँ भी, तो तुम्हारी क्या हानि होगी ?

ज्योंही हनुमान् के ये वचन निकले, त्योंही वह कह उठी---मैं 'हटो' कहती हूँ, तो तू हटे विना, मुझे उत्तर देता हुआ अभी तक खड़ा है। कौन है रे, तू ? प्राचीन नगर त्रिपुर को जलानेवाले (रुद्र) जैसे व्यक्ति भी (इस नगर में) आने से डरते हैं। तू भीतर जाना चाहता है, तो क्या तू जा सकेगा ? यह कहकर वह ठठाकर हँस पड़ी।

उस हँसनेवाली को देखकर आर्य (हनुमान्) भी भावपूर्ण मंदहास कर उठा। वह देख, लंकिनी ने पूछा---' ऐ हँसनेवाले ! तू कौन है ! किसके कहने से यहाँ आया है ? अपने प्राणों को खोने से तुझे क्या मिलेगा ? अभी तू यहाँ से भाग। उत्तर में प्रख्यात-कीर्त्ति (हनुमान्) ने कहा---अब इस नगर में गये विना मैं हटूँगा नहीं।

तब हनुमान् की कठोर दृढता को देखकर, स्तब्ध हो वह सोचने लगी---'यह वानर नहीं है, यह कोई मायावी है। काल भी मुझे देखकर डरता है। अतः, यह यम नहीं है। यह तो तरंगायित समुद्र से उत्पन्न विष का पान करनेवाले ललाटनेत्र (रुद्र) के सदृश हँस रहा है।

यह सोचकर कि 'इसे मार दें, नहीं तो इस नगरी की हानि हो सकती है', उस (लंकिनी) ने यह कहती हुई, 'यदि जीत सकता है, तो (मुझे अब) जीत ले। यदि तुझे (इस नगर के भीतर) जाना है, तो सिंहद्वार से ही होकर जा।' अपनी आँखों और मुँह से तीक्ष्ण अग्नि उगलती हुई त्रिशूल को तान कर (हनुमान् पर) फेंका।

बिजली के सदृश अपने सम्मुख आनेवाले उस जाज्वल्यमान शूल को हनुमान् ने पकड़कर सर्प को अपने मुँह में उठा गगन में ले जाकर तोड़नेवाले गरुड के समान अपने हाथों से तोड़ डाला। यह देख देवता उमंग से भर गये और दीर्घकाल से (उस शूल को) पकड़े रहनेवाली और कभी व्यर्थसंकल्प न होनेवाली उस लंकिनी का हृदय धड़क उठा।

जब त्रिशूल टूट गया, तब अग्नि-तुल्य वह (लंकादेवी) अन्य अनेक अलौकिक आयुधों को लेकर युद्ध करने लगी। (यह स्त्री है) यह सोचकर, अपयश का विचार करनेवाला हनुमान् उसपर झपटा और उसने अपने हाथों से उसके सम्पूर्ण आयुधों को छीन-कर आकाश में फेंक दिया।

क्षमारहित वह (लंकिनी) प्रयोग के योग्य अपने सब आयुधों को खोकर अत्यंत

क्रुद्ध हुई। अब वह मेघ के समान गर्जन करके, पहाड़ों को गोटी बनाकर खेलनेवाले अपने विशाल हाथों को ऊँचा उठाकर, अपने विरुद्ध युद्ध करनेवाले (हनुमान्) पर इस प्रकार आघात करने लगी कि जिससे शब्द के साथ भड़कनेवाली चिनगारियाँ भी निकलने लगीं।

(किंतु) उसके आघात करने के पूर्व ही (हनुमान् ने) उसके हाथों को अपने एक ही हाथ से पकड़ लिया और फिर, यह सोचकर कि, 'अहो! यह तो स्त्री है, अगर इसको मारूँगा, तो पाप लगेगा', उसके अशिथिल बलवान् कंठ पर जोर से प्रहार किया। (उस चोट से) वह धरती पर यों गिरी, जैसे कोई वज्राहत पर्वत हो।

(उस प्रकार) गिरी हुई (लंकिनी) दुःखित हुई और उष्णरक्त-रूपी अरुण-जल-प्रवाह में निमग्न हो वह (पूर्वकाल में) चतुर्मुख की करुणा का (अर्थात्, करुणा-पूर्ण आज्ञा का) स्मरण करके उठी तथा सब लोकों के महत् (नर, देव आदि) तथा अमहत् (पशु-पक्षी आदि) प्राणी-वर्ग से वंदित चरणवाले वीर (राम) के दूत के सामने खड़ी होकर ये वचन कहने लगी—

हे महात्मन्! सुनो। लोकों की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा की आज्ञा से मैं इस प्राचीन नगर में आकर इसकी रक्षा करती आ रही हूँ। मेरा नाम लंकादेवी है। अपने कार्य में उत्साह के कारण मैंने (तुम्हारे प्रति) अपराध किया है। भ्रम से ऐसा क्षुद्र कार्य कर दिया है। यदि तुम कृपा करके मुझे जीवित रहने दोगे, तो मैं एक रहस्य की बात तुम्हें बताऊँगी।

वह आगे कहने लगी—मैंने चतुर्मुख से पूछा था कि मैं कबतक इस बड़े नगर की रखवाली करती रहूँगी? तब चतुर्मुख ने मुझसे कहा था कि जिस दिन एक अति बलिष्ठ वानर अपने हाथ से आघात करके तुझे कष्ट देगा, उस दिन तू मेरे पास चली आना। उसके पश्चात् वह सुन्दर नगर (लंका) भी निश्चय ही विनष्ट हो जायगा।

हे महाभाग! वैसा ही सब हुआ है। क्या यह बताने की आवश्यकता है कि धर्म विजयी होता है और पाप पराजित। इसके पश्चात् वह सब घटित होगा, जो तुम चाहते हो। क्या तुम्हारे लिए कोई भी कार्य असंभव है? अब तुम इस स्वर्णपुरी में जाओ।—यों कहकर वह (हनुमान् की) प्रशंसा करके, नमस्कार कर, चली गई।

वीर (हनुमान्) आनंदित हुआ और सोचा कि सदा सत्य ही सफल होता है। फिर, आर्य के कमल-चरणों को मन में नमस्कार किया और क्षुद्र जनों (राक्षसों) के उस विशाल लंकानगर के स्वर्ण-प्राचीर को फाँदकर (उस नगर में) ऐसे प्रविष्ट हुआ, जैसे श्रेष्ठ क्षीर से पूर्ण समुद्र में थोड़ा-सा जामन छिड़क दिया गया हो। (अर्थात्, जिस प्रकार थोड़े से जामन से बहुत-सा दूध विकृत हो जाता है, उसी प्रकार छोटे आकारवाले हनुमान् से विशाल लंका विनष्ट होनेवाली है।)

रत्नों से निर्मित तथा त्रुटिहीन गगन-चुंबी सौध-पंक्तियाँ (सर्वत्र) व्याप्त घने अंधकार को मिटाकर दिन के समान कांति बिखेर रही थीं। उस दृश्य को देखकर, वह ज्ञानी (हनुमान्) भी यह संदेह करता हुआ विस्मित हुआ कि कदाचित् एक चक्रवाले महान् रथ पर चलनेवाला (सूर्य) ही तो उदयाचल पर प्रकट नहीं हुआ है?

वह (हनुमान् आगे) सोचने लगा—'अपरिमेय रत्नों से खचित प्रासादों से भरी यह पुरातन नगरी, समस्त अंधकार को दूर कर देगी। अब वह खर-किरण दिनकर भी (इस प्रकाश को देखकर) सचमुच लज्जित होगा और (इस नगर में अपनी किरणों को फैलाना) अनावश्यक समझकर हट जायगा। यदि वह प्राकारों से आवृत इस लंका के मध्य आ भी जाय, तो वह अपने सम्मुख आये हुए खद्योत के सदृश ही दीखेगा (अर्थात्, लंका के सम्मुख सूर्य जुगनू जैसा लगेगा)।

अहो ! इस महती नगरी के रहनेवाले राक्षस यदि निशाचर बन गये हैं, तो इसका कारण यही है कि पिघलनेवाले पीले स्वर्णपर्वत-सदृश प्राचीरों के मध्य स्वच्छ प्रकाश से चमकनेवाले और ज्योतिर्मय रत्नों से निर्मित प्रासादों के कारण, यह अनश्वर लंकापुरी अंधकारहीन है। (अर्थात्, यहाँ रात भी दिन की तरह प्रकाश से भरी रहती है। अतः, राक्षस रात में संचरण करने के अभ्यस्त हो गये हैं।)

देवों को अमृत देनेवाले (मंदर) पर्वत के समान और अयोध्या-नरेश की कीर्त्ति के समान पुष्ट स्कंधोंवाला (हनुमान्), उपयुक्त प्रकार से विचार करता हुआ—वीथियों के बीच जाना ठीक नहीं समझकर अपनी गंभीर आकृति को संकुचित बनाये ही—सौधों के किनारे-किनारे चलने लगा।

गायों के गौड़ों में, हाथियों की शालाओं में, सेना में, प्रमुख रथों तथा अश्वों की शालाओं में, पहरे से सुरक्षित पण्यशालाओं में, नील समुद्र को पार करने में सहायक बने अपने पैरों के सहारे वह इस प्रकार चला-फिरा, जिस प्रकार पुष्पों के पास उड़नेवाली तथा गानेवाली रंग-बिरंगी तितली हो।

नक्षत्रों की कांति से युक्त नाना प्रकार के भारी रत्नों से जटित दीवारें, जो उज्ज्वल प्रकाश बिखेरती थीं, उसके कारण वह वायुकुमार (भक्तिहीनों के लिए) दर्शन-दुर्लभ होकर भी भक्तों के लिए दर्शन-सुलभ होनेवाले अपने हृदयंगम सुन्दर (राम) के समान ही, कभी नीलवर्ण, कभी श्वेतवर्ण और कभी रक्तवर्ण हो जाता था।

देवांगनाएँ दिव्य नदी (आकाश गंगा) से स्वच्छ नीर लातीं और उस जल से, मधु-प्रवाह से युक्त पुष्पोद्यानों में, स्नान करतीं। ऐसी उन राक्षस-रमणियों को (हनुमान् ने) देखा, जो वन्य मयूरियों तथा मत्त मरालियों के सदृश थीं और जिनके मुख विकसित कमल के समान शोभायमान थे।

'जो तपस्या का फल अर्जित करते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य प्रकार की वस्तुओं का अर्जन करनेवालों का कोई हित नहीं होता।' इसे विधि ने प्रत्यक्ष दिखाया है। यदि कोई देखना चाहे, तो (लंका में) आकर देखे। अहो ! उस नगर में कंचुकाबद्ध स्तन-भार वहन न कर सकनेवाली देव-नारियाँ अपनी झूठी (अतिसूक्ष्म) कटि को दुखाती हुई, स्वच्छ जल लेकर स्नान कराती हैं और राक्षस-स्त्रियाँ भी स्नान करती हैं।

वहाँ की स्त्रियाँ महावर-लगे पल्लव-समान अपने हाथों को दुखाती हुई (संगीत के लक्षणों के) विधान के अनुसार निर्मित सप्तविध तंत्रियों से युक्त उत्तम शकोटयाल् (वीणा) के स्वर में तालयुक्त संगीत करती थीं। उस संगीत के लिए तब बाधक बनकर मेघ गरज

उठते थे और तब दासियाँ सौधों पर स्थित मेघों के मुँह अपने पुष्पकोमल करों से बंद कर देती थीं।

(हनुमान् ने देखा—) सब का अभीष्ट प्रदान करनेवाले दिव्य रत्न-दीपों से प्रकाशित पर्यंकों पर लेटी हुई कुछ राक्षस-रमणियाँ, सुन्दर पुष्प-वितानयुक्त स्वर्णमय नृत्य-रंग में द्रुतलय-विशिष्ट, रसिकजनों से प्रशंसित, ताल का अतिक्रमण न करनेवाले, गंधर्व-रमणियों के नृत्य देख रही थीं।

(हनुमान् ने देखा—) राक्षस-रमणियाँ सुडौल स्फटिक-वेदियों पर बैठकर दुर्लभ मदिरा का पान कर रही हैं। मानों (वियोग) में वेदना देनेवाले अपने प्रियतमों के प्रति, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अपने असीम प्रेम-रूपी सस्य को जल से सींच रही हों। उन रमणियों के मनोभावों को प्रकट करनेवाले उनके अंजनांचित मीनतुल्य नयन, स्वच्छ चकचक करनेवाले बरछे की-सी तीक्ष्ण कांति बिखेर रहे हैं।

(उन राक्षसियों के) त्रुटिहीन नीलोत्पलतुल्य नेत्र (मदिरा पान करते-करते) उनके पतियों के नेत्रों की समता करने लगे (अर्थात्, लाल हो गये)। उनके बिम्बारुण अधर श्वेत वर्ण हो गये और युवक-युवतियाँ, परस्पर के प्रेम के सदृश ही, बारी-बारी से मदिरा का पान कर रहे थे।

उस स्थान में कल्पतरु सब वस्तुओं को देता रहता था। उससे ले-लेकर राक्षस-रमणियाँ अपने प्रकाशमान प्रवाल-सम पैरों में महावर, अपने शरीर पर अपार सुरभि से पूर्ण नवीन चंदन-रस, अपने विस्मयकारी तीक्ष्ण नयनों में अंजन तथा आभरणों को चुन-चुनकर यथास्थान धारण कर लेती थीं।

(हनुमान् ने देखा—) व्याघ्र को भी मारनेवाले बलिष्ठ पुरुषों के द्वारा किया गया नया अपराध (मन में) प्रविष्ट होकर जब प्राणों को सताने लगता, तब शूल-सदृश नयनोंवाली (राक्षसियाँ) अपने अमृतमय मुख से विष-समान निःश्वास भरती हुई (अपने पतियों पर) इस प्रकार पदाघात करतीं कि उनकी बिजली-जैसी कमर लचक जाती, नूपुर झनझना उठते और राक्षसों के शरीर में रोमांच होने लगता।

उन राक्षसियों के अंजन-रंजित नयन अंतर की मादकता के कारण लाल हो गये थे। उनके मुख श्वेत हो गये थे। स्पन्दित भृकुटि-युक्त भौंहें झुक गई थीं। उनके अवयव काँप रहे थे। शरीर से स्वेद बह रहा था। शून्य-जैसी कटिवाली वे रमणियाँ मदिरा में प्रतिबिम्बित अपने मुख को किसी अन्य स्त्री का मुख समझकर, अपने प्रियतमों के लिए चिन्तित हो रही थीं।

(हनुमान् ने) उन राक्षसों को देखा, जो ईख के कोल्हुओं में, पर्वत की कंदराओं में, अमृत-सदृश जल से सिंचित उद्यानों में, सोनक (एक म्लेच्छ-जाति) लोगों के घरों में, स्वच्छ (क्षीर) सागर में भी अप्राप्य, शूल-सदृश नयनोंवाली स्त्रियों के कुमुद-सम अरुण अधर तथा धवल दंतों के मधुर रस को पीकर मत्त हो उठते थे।

अपने सुन्दर पतियों के अपराध के कारण उनसे रूठकर बिछुड़ी हुई राक्षसियाँ—जिनके स्तनों पर लिप्त चंदन-रस सूख गया था—अपनी खुली हथेली पर अपने वदन को रखे

बैठी थीं, मानों एक कंटकरहित रक्तकमल पर दूसरा कमल खिला हो। वे इस प्रकार निःश्वास भर रही थीं कि मानों उनके प्राण अब-तब हो रहे हों।

अपने आयुधधारी मनोहर पतियों से मान करने के कारण अपने पुष्प-पर्यंक पर प्राणहीन-सी बनकर पड़ी हुई कुछ राक्षस-रमणियाँ अधिक वेदनाजनक कामपीडा से प्रेरित होकर (अपने पतियों के आने के) रास्ते पर टकटकी लगाये पड़ी थीं और (पति से भेजी गई) दूती के मंदहास को देखकर पुनः जीवन पाकर तड़पने लगती थीं।

(हनुमान् ने देखा—) विविध वाद्य बज रहे हैं और सुवासित केशों एवं रक्त अधर से युक्त अप्सराएँ हाथ से तालियाँ बजाती हुई मंगल गीत गा रही हैं। उन राक्षस-रमणियों के शंख, वलय, नूपुर, पादसर (एक पदाभरण), मेखला आदि शिथिल पड़ गये हैं और वे अपने गृह-देवताओं की पुष्पों से अर्चना कर रही हैं।

(हनुमान् ने देखा—) कुछ राक्षस-सुन्दरियाँ मंगलोत्सव के समय नगर-परिक्रमा करती आ रही थीं (अर्थात्, जुलूस में आ रही थीं)। उनके आभरणों की तेज कांति-रूपी बाण और खड्ग अंधकार का नाश कर रहे थे। कर्णाभरण को छूनेवाले उनके नयन-रूपी तीखे बरछे युवकों के हृदय को भेद रहे थे। रंध्रवाले शंख तथा नगाड़े मेघों के समान बज रहे थे। और, उन मेघों के पीछे-पीछे चलनेवाली मयूरियों के सदृश राक्षसियाँ चल रही थीं।

(हनुमान् ने देखा —) पर्यंकों पर लेटी हुई कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, काम-समर के लिए उमगती होती हुई अपने पतियों के प्रति किये गये मान को त्यागकर धीरे-धीरे अपनी पलकें खोल, अंजन-रूपी तेल से सिक्त, कपट तथा कांति से पूर्ण, अपने दीर्घ नयन-रूपी कर-वालों को उनके कोशों से निकाल रही थीं।

प्रतिमा-समान स्त्रियाँ जो मान करने लगी थीं और जिनकी प्रज्ञा, मन तथा अन्य इंद्रियाँ उनके पतियों के संग ही चली गई थीं, वे बिजली के सदृश चमकती हुई, सुन्दर पंखोंवाली मराली के समान चलकर, अपने प्राण एवं स्वयं (अर्थात्, एकाकी ही) कक्षाओं में जाकर कपाट बंद कर लेती थीं।

(हनुमान् ने देखा —) किन्नर-मिथुन गा रहे थे। नागकन्याएँ जयगान कर रही थीं और कुछ राक्षस-स्त्रियाँ (जो नव-विवाहिता थीं) घटा को चीरकर चमकने-वाली विद्युत् के समान, मुक्तालंकृत श्वेत विमानों पर आरूढ होकर, अपनी दासियों के साथ उस स्वर्णपुरी की वीथियों से होकर अपने नये पति के गृह को जा रही थीं।

कहीं बादल नगाड़े बजा रहे थे। देवता अभिनन्दन कर रहे थे। ऋषि प्रशस्तियाँ गा रहे थे। रमणियाँ गान करती हुई घेरकर चल रही थीं। देवांगनाएँ जयगीत गा रही थीं और हार तथा कर्णाभरणों से चमकते हुए कुछ राक्षस नव-विवाहोत्सव मना रहे थे।

यक्ष-स्त्रियों, राक्षस-स्त्रियों, नागकन्याओं तथा कलंकहीन चन्द्र के समान मुखों-वाली विद्याधर-रमणियों आदि को देखते हुए जानेवाले मारुति ने एक स्थान पर पर्वत के समान लेटे हुए निर्विघ्न निद्रा में मग्न कुंभकर्ण को अपनी आँखों से देखा।

वह मंडप (जिसमें कुंभकर्ण) सो रहा था, सतयोजन विशाल था। स्वर्गलोक में इन्द्र के मुकुटाभिषेक के लिए निर्मित मंडप-सदृश था। अपने स्वच्छ प्रकाश से अष्ट दिशाओं के अंधकार को निःशेष रूप से मिटा रहा था।

उस प्रकार के मंडप के मध्य, एक पर्यंक पर (वह ऐसा सो रहा था), जैसे सर्पराज हो, समुद्र हो या समस्त घना अंधकार एक स्थान पर आ इकट्ठा हुआ हो या अविचारणीय पाप-समूह ही साकार हो पड़ा हो।

मधुर मलय-मारुत समीप के शब्द-पूर्ण समुद्र में निमग्न होकर, त्रिविध गति से चलकर, परागों से पूर्ण दीर्घ कल्पवन में विश्राम करके, उस (कुंभकर्ण) पर आ लगता था।

देवांगनाएँ उसके पैर सहला रही थीं। उनके चन्द्रमुखों को देखकर उस मंडप के उज्ज्वल स्तंभों की चन्द्रकान्त-शिलाएँ स्वच्छ जलबिंदुओं को उसके मुख पर बरसा रही थीं।

(कुंभकर्ण के) अविच्छिन्न क्रम से चलनेवाले उच्छ्वास-निःश्वास-रूपी तीव्र प्रभंजन ने हनुमान् को मंडप के द्वार पर ही रोक दिया और फिर नासिका तक खींच ले चला। यह देखकर हनुमान् आशंकित हुआ (कि कहीं उसकी नासिका के भीतर न खींच लिया जाऊँ), अतः, हाथों को उछालता हुआ एकदम उछलकर दूर भाग गया।

सोनेवाले (कुंभकर्ण) की साँस इस प्रकार बाहर निकलती कि धूल आकाश तक उठ जाती और फिर, लौटकर उसकी नासिका में घुस जाती थी। वह तीव्र वायु यों चक्कर लगा रही थी, मानों समस्त विश्व को उड़ा देनेवाली अविनश्वर (प्रलयकालिक) प्रचंड वायु, प्रलयकाल की प्रतीक्षा करती हुई वहाँ घूम रही हो।

उसके हास-हीन (कठोर) विशाल मुँह में—जहाँ से लम्बी साँस घोर शब्द करती और धुआँ उठाती हुई उमड़ रही थी—वक्रदंत चमक रहे थे। मानों (उसने) पूर्ण चन्द्र को अपना शत्रु जानकर उसे तोड़कर अपने बेढंगे मुँह के दोनों पार्श्वों में खोंस लिया हो और उन्हें खा रहा हो।

वह इस प्रकार की विघ्नहीन निद्रा में डूबा था, जैसे कोई बड़ा नाग मंत्र से हत होकर पड़ा हो या विशाल समुद्र प्रलयकाल की प्रतीक्षा करता हुआ चारों ओर न उमड़कर शान्त पड़ा हो।

त्रिमूर्त्तियों में से एक कहलाने योग्य (हनुमान्) ने उस राक्षस को देखकर यह सोचा कि राक्षसराज कहलानेवाला वह सद्गुण-रहित (रावण) यही है। और, (शरणागत की) रक्षा में आसक्त अपनी आँखों से क्रोधाग्नि की चिनगारियाँ उगलने लगा।

उस (हनुमान्) ने फिर समीप जाकर गौर से देखा, तो दस सिर और अति बलिष्ठ बीस भुजाओं को उस निद्रित राक्षस में न देखकर, भयंकर रूप से मन में उत्पन्न क्रोध नामक वडवाग्नि को अपने विवेक नामक विशाल समुद्र के जल से शांत कर दिया।

कर्णामृत के रूप में राघव की कीर्त्ति को बढ़ानेवाले उस कपिनायक ने, अपने कोप को दबाकर, हाथ उठाकर कहा— यह चाहे कोई भी हो, इसके विनाश के लिए अब कुछ ही दिन शेष हैं। इसके बाद वह उसके पास से हट गया।

रामचन्द्र का यश वर्णन करने योग्य वह (हनुमान्) मंडपों में, प्रासाद-पंक्तियों में, स्त्रियों की नृत्य-शालाओं में, सभा-भवनों में, देवालयों में, संगीत-वेदिकाओं पर, विद्या-शालाओं में तथा अनेक स्थानों में (सीता को) खोजता हुआ घूमता रहा।

हनुमान्, अति सुन्दर गृहद्वारों में, झरोखों की शलाकाओं में, सूक्ष्मता से देखने योग्य पुष्पनालों में, सर्वत्र, हवा बनकर, धुआँ बनकर घुस जाता और खोजता। कहीं वह अति सूक्ष्म रूप धारण करता, कहीं बहुत विशाल रूप धारण करता। (सच पूछिए, तो) उसकी उस स्थिति का वर्णन कोई नहीं कर सकता है। अणु में तथा मेरु में भी जिस प्रकार चक्रधारी (विष्णु) व्याप्त रहता है, वैसे ही वह भी सर्वत्र प्रवेश करता चलता रहा।

इस प्रकार, सब प्रकार के स्थानों में जाकर रक्तकमल-जैसी-उँगलियोंवाली स्त्रियों को देखता हुआ चलनेवाला वह उत्तम (हनुमान्) उस पुण्यवान् (विभीषण) के विस्तीर्ण सौध में पहुँचा, जिसका जन्म राजाओं, ब्राह्मणों, ऊपर के लोकों तथा नीचे के लोकों के निवासियों के लिए मंगलदायक था।

नवमधु की वर्षा करनेवाले कल्पवृक्षों की छाया में, स्फटिक-वेदिकामय प्रवाल-सौध में स्थित उस विभीषण के समीप जा पहुँचा, जो ऐसा था, मानों धर्मदेवता यह सोचकर कि काले रंग के राक्षसों के मध्य धर्मदेवता के रूप में जीवित रहना कठिन है, अतः वह राक्षसों की आकृति अपना कर ही गुप्त रूप में रह रहा हो।

उसके समीप खड़े होकर (हनुमान् ने) उसके स्वभाव को अपने सूक्ष्म ज्ञान के द्वारा पहचाना और यह जाना कि वह (विभीषण) अकलंक और गुणवान् है। अतः, उसके प्रति क्रोधहीन होकर वहाँ से हट चला और पर्वत-सदृश एक करोड़ प्रासादों में खोजता हुआ क्षणमात्र में उन्हें पार कर गया।

वह (हनुमान्) श्रेष्ठ देवांगनाओं, पूर्णचन्द्र के समान वदन और रक्ताधर से शोभायमान रमणियों को देखकर और यह समझकर कि इनमें से कोई (सीता) नहीं है, अनेक प्रासादों को पार करता हुआ, मन से भी अधिक वेग से चलने लगा और वह उस प्रासाद के द्वार पर पहुँचा, जहाँ इन्द्र बंदी था।

अनेक आयुधों को अपने हाथों में धारण करनेवाले, चन्द्रकला-सदृश खड्गदंतों-वाले, पुरानी कहानियों-पहेलियों आदि को परस्पर सुनानेवाले (शत्रुओं का) वध करने-वाले क्रोधोत्साह से भरे, गिनने में सहस्र-सहस्र संख्यावाले, ज्ञानहीन राक्षसों के पहरे को पार करके, वह (हनुमान्) इन्द्रजित् के गृह में गया।

धुआँ भी जहाँ प्रवेश न कर सके, वहाँ भी जानेवाले उस (हनुमान्) ने (इन्द्र-जित् के गृह में) प्रवेश करके अपने योग्य सुन्दरियों के मध्य निद्रा करनेवाले उस इन्द्रजित् को देखा, जो ऐसा था, मानों त्रिनेत्र का कुमार (कार्तिकेय) अपने छह मुखों और दिशाओं में फैले (बारह) हाथों में से कुछ को छिपाकर वहाँ सो रहा हो।

हनुमान् ने अनुमान किया कि पर्वत-कंदरा में निवास करनेवाले सिंह-तुल्य यह (इन्द्रजित) उज्ज्वल वक्रदंतों से युक्त राक्षस है, परशुधारी (शिव) का कुमार (कार्त्तिकेय) है,

या कोई और है ? मैं नहीं जानता। हाँ, मेरे प्रभु (राम) और उनके अनुज (लक्ष्मण) को इसके साथ अनेक दिनों तक श्रम-साध्य युद्ध करना पड़ेगा।

युद्ध-कुशल रावण ने जब इसे युद्ध में अपने साथी के रूप में पाया है, तब उस (रावण) के द्वारा त्रिभुवन का विजय होना कोई आश्चर्य का विषय नहीं है। और, इसकी क्या प्रशंसा की जाय ? यह कहना भी विवेक की बात न होगी कि शिव, चतुर्मुख और लक्ष्मीनाथ (विष्णु) को छोड़ अन्य कोई इसकी समता भी कर सकता है।

यों सोचता हुआ, हाथ को सिकोड़कर गाल पर रखे हुए (अर्थात्, आश्चर्य करता हुआ) खड़ा रहा। फिर, यह सोचकर कि यहाँ खड़े रहकर समय व्यतीत करना उचित नहीं है, अन्यत्र जाना ही श्रेयस्कर है, वहाँ से हट चला। उसके बाद सहस्रों प्रासादों की पंक्तियों में सन्देह-रहित रूप से (सीताजी का) अन्वेषण करता हुआ आगे बढ़ा।

उसने अक्षयकुमार के घर को पार किया। फिर, अतिलाप के निवास में गया। अन्य योद्धाओं के गृहों में खोजा। फिर, मंत्रणा करने में चतुर (मंत्रियों) के गृहों में प्रविष्ट हुआ। राघव के चरण[1] के रूप में प्रसिद्ध वह (हनुमान्) फिर वहाँ से भी हट गया।

इस प्रकार, बड़े बड़े सेनापतियों के निवासों में तथा सहस्रकोटि स्वर्ण-प्रासादों में प्रवेश करता हुआ, वह (हनुमान्) उस अनश्वर महानगर के मध्य-स्थित रावण के विशाल गुप्त प्रासाद को देखने के लिए (शिल्प) शास्त्रोक्त तीनों परिखाओं में बीचवाली परिखा के समीप जा पहुँचा।

अनुपम मत्त गज के सदृश, जिसे किसी अन्य साथी की अपेक्षा नहीं थी, प्राची दिशा में समुद्र से उदित होनेवाले सूर्य को जो फल समझकर पकड़ने के लिए चल पड़ा था, वह (हनुमान्) उस परिखा को देखकर सोचने लगा—मेरे द्वारा लाँघे गये शीतल समुद्र-रूपी देवता का (एक वानर से लाँघे जाने के कारण) जो अपमान हुआ, मानों उसका प्रतीकार करने के लिए ही सातों समुद्र इस अलंघ्य परिखा के आकार में एकत्र हो गये हैं।

यदि कोई इसे देखकर कहे कि यह अति विस्तृत तथा दीर्घ परिखा है, तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि, यदि असंख्य जन कल्पांत तक सारी धरती को खोदते रहें, तो भी इतनी बड़ी परिखा निर्मित नहीं कर सकेंगे। अतः समुद्र-सदृश, अति क्रोधी राक्षस (रावण) से डरकर अवश्य ही सातों अगाध समुद्र इस लंका को घेरे पड़े हैं।

उस प्रकार की जलपूर्ण विशाल परिखा के निकट पहुँचकर प्रभु (राम) की कीर्त्ति जहाँ-जहाँ गई, वहाँ सर्वत्र पहुँचनेवाला हनुमान् मन में कहने लगा कि जिस वेग से मैंने समुद्र को लाँघा था, उससे दुगुने वेग के साथ चलने पर भी इसे पार करना कठिन है।

वह परिखा इस प्रकार जल से पूर्ण थी कि उसके जल को पीने के लिए गगन-स्थित चारों प्रकार के मेघ नीचे उतर आते थे और उस परिखा का जल ऊपर उमड़

१. वैष्णव-संप्रदाय में गरुड और हनुमान् विष्णु के चरण कहलाते हैं। तमिल में गरुड को 'स्पेरिय तिरुवडि' = ज्येष्ठ श्रीचरण, और हनुमान् को 'शिरिया तिरुवडि' = कनिष्ठ श्रीचरण, कहा जाता है।—अनु०

उठता था। वह दुःखदायक (रावण) की सेना के सदृश थी। उसका वर्णन करना भी संभव नहीं है।

उस परिखा के जल में, हाथियों का त्रिविध मदजल, अश्वों की लार का जल, देवांगनाओं का कुंकुम-लेप, (अन्य) स्त्रियों के सुवासित केशों की कस्तूरी और अगरु (पुष्पों से प्रवाहित), मधु, चन्दन-रस, अन्य सुगंधित काष्ठों का लेप आदि मिलते थे और उसके जल को सुवासित कर देते थे।

उस परिखा में, ध्यान-निरत सारस, क्रौंच, 'पुदा', हंस, जल-कुक्कुट, चक्रवाक, किन्नर, बक, 'किलुक्कम', 'शिरल', जल-काक, कुणाल आदि विविध जलचर पक्षी कलरव करते रहते थे।

वहाँ की सुन्दरियों के (शरीर से प्राप्त) अगरु, कस्तूरी, महावर आदि से संयुक्त होने के कारण वह परिखा, अपने जल में स्नान करनेवाले उत्तम लक्षणवाले हाथियों तथा उत्तम जाति की मृदु गतिवाली हथिनियों के मध्य एक विचित्र कलह उत्पन्न कर देती थी। (तात्पर्य यह है कि स्नान करने पर हाथी के शरीर में विविध रंग और गंध लग जाते थे, जिससे उसे कोई दूसरा प्राणी समझकर हथिनी उससे हट जाती थी, इसी प्रकार हथिनी के प्रति हाथी का भी भाव हो जाता था।)

मधु-गंध से युक्त नव-विकसित कमलपुष्प उस परिखा के घाटों में (संध्या के समय) मुकुलित हो गये थे। क्योंकि, बंदिनी बनाई गई (सीता) देवी के वदन से जो बन्धुत्व रखते हैं, वे कमल (सीता के दुःखी होने पर) स्वयं विना म्लान हुए कैसे रह सकते थे?

स्फटिक-शिलाओं को काटकर निर्मित उज्ज्वल घाट तथा जल, दोनों में ऊपर से कुछ अंतर नहीं दिखाई देता था।[1] जब स्वच्छहृदय पुरुष नीच जनों से मिलते हैं, तब उनकी सरलता के कारण उन्हें एक दूसरे से पृथक् नहीं पहचान सकते।

(उस परिखा के घाटों पर) जल से ऊपर के भाग में, और जल के अंतर के भाग में इन्द्रनील आदि विविध रत्न तथा मोती जड़े थे। उनकी कांति बिखेरने से वह परिखा ऐसी लगती थी, मानों क्षीरसागर आदि विविध समुद्र, प्रभंजन के कारण, सम्मिलित हो एकाकार हो गये हों।

उस समय, (हनुमान् ने) उस परिखा को भी समुद्र के सदृश ही पार कर लिया। उसके साथ की प्राचीर को भी पार कर लिया और नगर के उस मध्य भाग में जा पहुँचा, जहाँ उसकी सुरक्षा के कारण कोई उसके पास भी नहीं फटक सकता था।

आगे क्या हुआ? अब हम कहेंगे।

यमराज भी जिनसे भयभीत होकर भाग जाता था, वैसे राक्षसों के निवास-भूत उस दुर्गम नगर में, अर्धरात्रि के समय, वह (हनुमान्) एकाकी ही, बारह योजन विस्तीर्ण तीन लाख वीथियों में (सीताजी का) अन्वेषण करता रहा।

---

१. स्फटिकमय घाट उत्तम जन का तथा परिखा-जल, जिसके अंतराल में कीचड़ है, नीच जन का उपमान है।—अनु०

(उस नगर के मध्य भाग में) मधुशालाएँ सूनी पड़ी थीं, विशाल जलधि-हृदय उन राक्षसों का शब्द भी थम गया था। संगीत थम गये थे। दास-दासियाँ भी अपने-अपने कार्य समाप्त करके विश्राम कर रही थीं। त्रिविध वाद्य भी (गीतांग, नृत्तांग और उभयांग के वाद्य) मौन हो गये थे तथा सर्वत्र निद्रा की तैयारी हो रही थी।

उत्तम वर्ण के अश्व आनंद से शिर झुकाकर निद्रा-मग्न थे। प्राचीर के बलिष्ठ पहरेदार रह-रहकर नगाड़े बजाते थे, जिससे सर्वत्र प्रतिध्वनि हो उठती थी। उज्ज्वल पुष्पों से अलंकृत, सुवासित कुंतलोंवाली स्त्रियाँ—जो अपने प्रेमपात्र पतियों से वियुक्त नहीं हुई थीं, या अपने पति के किसी कार्य से मन में ताप पाकर भी जो अपना मान बाहर प्रकट करना नहीं चाहती थीं—निद्रा-मग्न थीं।

हारधारी, उन्नत भुजावाले नवयुवक, काम-समर से श्रांत हो आनन्दमत्त मयूरिणी-सदृश तरुणियों के स्तनों पर बेसुध पड़े थे। सुरत-केलि के ऐसे दृश्य वहाँ दिखाई पड़े।

कुछ लोग मधुर मदिरा के घाटों में बेसुध पड़े थे और कुछ सुगंधित धूम से आवृत भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाले मधु से पूर्ण पुष्पों की सेज पर, कामानुभव-रूपी मदिरा से मत्त हो अचल पड़े थे।

मदिरा-पान से मत्त नर्त्तकों के संगीत की राग-रूपी पलकें बंद थीं। घने अंधकार के कारण आकाश-तट की प्रकाश-रूपी आँखें बंद थीं। वीणाओं के मधुर स्वर-रूपी नेत्र बंद थे। बजनेवाले मृदंग आदि वाद्यों के नाद-रूपी नेत्र भी बंद थे। सर्वत्र कपाट बंद हो गये थे।

सुगंधित कस्तूरी आदि के लेप और श्वेत पुष्पों से सुशोभित अपने वक्ष पर लगनेवाले मलय-मारुत के द्वारा प्राणों पर भी आघात होने से, वियोगिनी रमणियों के काले नेत्र उमड़ते हुए जल-बिंदुओं से पूर्ण थे। उनके मन, जिनकी वहाँ कोई कमी नहीं थी, अब विरह-ताप से जल रहे थे।

(दीपों में) पिघले हुए घी के कम हो जाने से मंद पड़े हुए अगणित दीपों को मंदमारुत—शत्रुओं को दुर्बल पाकर उनका विनाश करके बढ़नेवाले (किसी राजा) के सदृश—बुझाने लगा। (उस समय वहाँ की रमणियों के) शरीर की उज्ज्वल कांति, समुद्रों तथा अपार दिशाओं में दीप बनकर प्रकाश फैलाने लगी।

नित्य-नियमों का यथाविधि पालन करनेवाले पूर्ण ज्ञानी उत्तम व्यक्ति भी निद्रा-ग्रस्त हो गये। योगी लोग भी निद्रित हुए। मद की उष्णता से मत्तगज भी सो गये। विक्षिप्त चित्तवाले भी निद्रा-मग्न हुए। ऐसी स्थिति में अब दूसरों के बारे में क्या कहा जाय?

उस समय, कर्म-रूपी शत्रु को जीतनेवाला (अर्थात्, कर्मसंग-रहित हनुमान्) उस नगर के बीचवाले प्राचीरों के मध्य[1] दो करोड़ उत्तम राज-वीथियों में अन्वेषण करता रहा।

---

१. लंकानगर के मध्यभाग में स्थित एक परिखा और प्राचीर का वर्णन पहले किया गया था। अब इस पद्य में उस नगर के मध्यभाग में स्थित अन्य परिखा और प्राचीर का उल्लेख है, जो रावण के आवास के चारों तरफ बने हुए थे।—अनु०

फिर, दुराचारी (रावण) के निवास के निकट पहुँचा। उसने वहाँ की खाई और प्राचीर को पार कर भीतर प्रवेश किया।

युद्ध करने की प्रकृतिवाले रावण का वह स्वर्णमय प्रासाद चन्द्रवत् था और उसको घेरकर रहनेवाले नारियों के निवास नक्षत्रों के समान थे। उनमें वह (हनुमान्) जा पहुँचा।

वह (हनुमान्) उस वीथी में जा पहुँचा, जहाँ समस्त यक्ष-रमणियाँ एक साथ निवास करती थीं। वे (यक्ष-स्त्रियाँ) दुर्लभ अमृत-समान थीं तथा उनके वदन इस प्रकार कांतिपूर्ण थे कि यदि खरगोश के आकारवाले कलंक से हीन कोई चन्द्रमा उत्पन्न हो, तो वह भी उनके सामने तुच्छ जान पड़ेगा।

आसक्ति-रूपी दृढ कर्म मूल को सपूर्ण रूप से उखाड़ डालनेवाला (हनुमान्) अपने आकार को बारीक सूत और मंद मारुत से भी अधिक सूक्ष्म बनाकर, अति उज्ज्वल कांति को बिखेरनेवाले हीरकमय तालों के छिद्रों में से होकर, भीतर चला जाता और (सीता का) अन्वेषण करता।

कुछ स्त्रियाँ पर्वत-सदृश हाथियों के बल से युक्त रावण पर अत्यधिक अनुरक्ति के कारण (विरह-पीडा से) निःश्वास भरती थीं,[1] और कमल-पत्र के समान अपनी पलकों को स्पन्दित किये बिना चित्र-लिखित-सी बैठी थीं।

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) निरन्तर बाण बरसानेवाले मन्मथ से डरकर या मृदुल सुख-स्वप्न का फल प्राप्त करने की इच्छा से, या न जाने किस गुप्त भावना से अपने नेत्र बन्द किये, अन्तर में निद्रा न होने पर भी, बाहर से निद्रित-सी पड़ी थीं।

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ), जिनके स्तन, मन्मथ के अभग्न कठोर शरों के द्वारा अनेक बार प्रताडित हो चुके थे और जिनके श्वास झूल रहे थे (अर्थात्, मरण की-सी दशा हो गई थी) वे यह सोचती थीं कि सोने से क्या प्रयोजन है? शासक रावण का चित्र ही क्यों न बनावें? (जिससे उनका दुःख किंचित् कम हो।)

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) आँखों में आँसू भरकर, इस प्रकार बोल उठीं, मानों चित्र-प्रतिमाएँ बोल उठी हों। वे पक्षियों से कहने लगीं कि तुम मेरे प्राणों को (अर्थात्, प्रियतम रावण को) यहाँ नहीं बुला रहे हो, वहाँ जाकर मेरी दशा का वर्णन भी क्यों नहीं करते हो? तुम मुझपर दया करके कोई भी उचित सहायक कार्य तो करो।

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) शीतल मलयानिल के लगने से अत्यन्त व्याकुल हो उठती थीं और अपने भारी स्तनों पर दृष्टि डालकर (विरह की) पीडा देनेवाले (रावण) की बलशाली भुजाओं की पुष्टता का स्मरण करके ऐसे तड़प उठती थीं कि उनके प्राण अत्यन्त शिथिल हो जाते थे।

कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) उन पर्यंकों पर, जिनके दोनों ओर लगे उज्ज्वल तथा लाल रत्नों की, सदा एकरूप रहनेवाली, कांति बिखरती रहती थी, अनेक दिनों से अपनी

१. यहाँ अर्थ ध्वनित है कि रावण सीता के प्रति अपने मोह के कारण अन्य स्त्रियों के प्रति उपेक्षा दिखाने लगा था, जिससे उसपर अनुरक्त स्त्रियाँ विरह-पीडा का अनुभव कर रही थीं।—अनु०

इच्छा के व्यर्थ होते रहने के कारण (अर्थात्, अपने प्रियतम रावण के न आने से) कृश हो पड़ी थीं और लाल आकाश में उदित चन्द्र के समान दिखाई पड़ती थीं।

कांति से प्रज्ज्वलित कल्पलता के समान कुछ यक्ष-स्त्रियाँ (विरह-पीडा से) अपने कंधों के समान ही काँपनेवाले पलंगों पर लेटी थीं और (उन्हें सुलाने की चेष्टा करनेवाले गायकों की) वीणा का नाद उनके कानों में प्रवेश करके बिच्छू के डंक-सदृश पीडा उत्पन्न करता था, जिससे वे बेसुध हो जाती थीं।

जिस (शिव) ने मेरु को (धनुष बनाकर) झुकाया था और कठोरता से अपने लक्ष्य पर लगनेवाले अग्निमुख बाण को (त्रिपुरासुर पर) चलाया था, उसके पर्वत (कैलास) को भी उखाड़कर उठा लेनेवाली (रावण की) भुजाओं पर लिप्त चन्दन-रस को अपने पीन स्तनों पर लगा हुआ देखकर (विरह में भी) कुछ (यक्ष-स्त्रियाँ) आनन्द प्राप्त करती थीं।[1]

चारों दिशाओं के समुद्र जिस समय उमड़ उठते हैं, उस (प्रलय के) समय जिस (रावण) ने, अपनी सुन्दर बाहुओं की नसों[2] को मीड़ते हुए, चारों प्रकार के मधुर रागों[3] में, तांडव नृत्य करनेवाले (शिव) की स्तुतियाँ गाई थीं, उस (रावण) की प्रशंसा के गान कुछ यक्ष-स्त्रियाँ कर रही थीं।

इस प्रकार की यक्ष-रमणियों के निवासभूत प्रासादों को पारकर धर्म-मार्ग पर चलनेवाला वह (हनुमान्), उस (रावण) की जाति की सुन्दरियों के आवास में जा पहुँचा।

उन प्रासादों में, जहाँ अग्नि-सदृश प्रज्ज्वलित कांतिवाले लाल रत्नों के अरुण बालातप ने निर्बाध रूप से फैलनेवाले अंधकार को पी लिया था, जिससे वे (प्रासाद) सर्वदा दीप के बिना भी स्वयं-प्रकाशित रहते थे, कुछ राक्षस-रमणियाँ दासियों के चले जाने पर 'कामना-द्वितीय' होकर (अर्थात्, अकेलेपन में अपनी कामना के साथ रहकर) क्रोध किये बैठी थीं।

उनके लाल केशों पर धूम-सदृश भ्रमर मँडरा रहे थे, जो अग्निज्वाला पर कस्तूरी-निर्मित लेप लगाये जाने का दृश्य उपस्थित कर रहे थे। वे राक्षसियाँ, नवपुष्पों से आवृत पलंग को अपना शत्रु मानकर, वहाँ से हट गई थीं और विशाल स्फटिकमय शीतल वेदी पर जाकर लेटी हुई थीं। वे उत्तरोत्तर बढ़ती हुई काम-व्याधि से पीडित थीं।

---

१. तात्पर्य यह है कि रावण की भुजाओं से पूर्व-आलिंगित स्त्रियों के स्तनों पर चन्दन के चिह्न लगे थे, जिससे ध्वनित है कि विरह-पीडा में रहनेवाली वे नारियाँ, स्नान, अनुलेपन, अलंकरण आदि नहीं करती थीं।—अनु०

२. उत्तरकांड में यह कहानी वर्णित है कि जब कैलास को रावण ने उठाया था, तब शिव ने उसे पर्वत के नीचे दबा दिया था। उस समय रावण ने अपना एक सिर काटकर एक बाहु में लगा लिया और उस बाँह की नसों को तंत्री बनाकर—वीणा के जैसे बजाकर गाया और शिव को प्रसन्न किया।—अनु०

३. इसमें उल्लिखित चार प्रकार के राग तमिल के अनुसार—(१) पालै, (२) कुरिंजि, (३) मरुदम और (४) शेव्वलि हैं।—अनु०

(कुछ राक्षसियाँ ऐसी थीं कि) उनका अनुपम शरीर ही सूर्य-किरणों से लसित विशाल गगन था। उनके मुक्ताहार, नक्षत्रों की पंक्तियाँ थे। उनकी कटि विद्युत् थी। घने केश लालिमा से भरा आकाश था। काजल से अंजित नयन बादल थे। ललाट प्रकाशमान अर्धचन्द्र था। उनका वह रूप संध्याकालीन आकाश की समता करता था।

(कुछ राक्षसियाँ) दासियों के साथ अत्युन्नत अट्टालिकाओं के चन्द्रिकापूर्ण आँगनों में पहुँच जाती थीं और नभ के नक्षत्रों को अपने हाथों से उठाकर उन्हें गोटी बनाकर खेलने लगती थीं। उस समय उनके नीलोत्पल-सदृश कज्जलांकित नेत्र बार-बार अपना रंग बदलते थे (अर्थात्, उन नक्षत्र-रूपी गोटियों को ऊपर उछालने पर उनकी छाया से नेत्र धवल पड़ जाते थे और वर्षा के समान मधु को बहानेवाले (अर्थात्, मधु-पूर्ण पुष्पों से अलंकृत) उनके घुँघराले केशपाश शिथिल हो जाते थे।

कर्णाभरणों से शोभायमान वदनवाली देवांगनाएँ, जो वहाँ दासियों की तरह सेवा करती थीं, कई स्थानों में फैले हुए आकाश-गंगा के प्रवाह से (स्नान के लिए) जल भरकर ला देतीं, किन्तु (विरहिणी) राक्षस-स्त्रियाँ उस जल को शीतलता-हीन कहकर कुपित होतीं और रत्नों को जड़कर बनाये गये प्रकाशमान सौधों की छतों पर अपनी कटि को लचकाती हुई चढ़ जातीं तथा वहाँ स्थित मेघों में छेद करके उनसे बरसनेवाले जल-धारा में स्नान करती थीं।

कुछ राक्षसियाँ (विरह के कारण) निद्रा न आने से स्वर्ण-फलकों को रखकर जूआ खेल रही थीं और यह सोचकर कि मधुर प्राणनायक (रावण) ने सर्पराज के फनों से बलात् छीनकर जो लाल माणिक्य ला दिये हैं, उन्हें अपने पास ही सुरक्षित रखना चाहिए, वे उन माणिक्यों को अपने पास रख लेती थीं और अपने अन्य आभरण, विद्या-धरों से छीनकर लाये गये किरीट, हार, आदि को दाँव पर रखती थीं।

कल्प-वन में स्थित स्वर्ण-प्रासाद में, मुक्ता-वितान के नीचे सिद्ध-स्त्रियाँ अति मधुरनाद-युक्त मृदंगों को बजाकर गा रही थीं। उधर मधुरभाषिणी नागकन्याएँ 'तण्णुमै' (नामक वाद्य) को अपने करों से ध्यान के साथ बजा रही थीं और मनोहर कंधों तथा मधुर हार से युक्त अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं, जिन्हें देखकर कुछ राक्षस-स्त्रियाँ आनन्द उठा रही थीं।

कील के समान, दृढ़ता से (मन में) गड़े रहनेवाले प्रेम के कारण, हृदय में उत्तप्त होकर, विरह की पीडा के कारण काजल-लगे नेत्रों से अश्रु-निर्झर बहानेवाली कुछ राक्षसियाँ (उस विरह को दूर करने का) कोई उपाय न जान पाती थीं, तो अमृत-तुल्य मधुरिमा को अधिकाधिक बरसाती हुई अपने करों से ताली बजाकर गाने लगती थीं। उस समय वीणा, मुरली और उनका कंठ—तीनों के नाद किंचित् भी विभिन्नता न रखकर एक हो जाते थे।

कुछ राक्षस-सुन्दरियाँ, जिनके नेत्र, तीक्ष्ण मदिरा-पान करने के कारण घूम रहे थे, कुरवै नृत्य करती थीं। उस समय उद्यान के कदलीवृक्ष-सदृश उनकी जंघाओं पर पहने हुए सुन्दर वस्त्र तथा कटि पर पहनी हुई मेखला, शिथिल हो खिसकने लगती थी।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, नाग-सर्प के विष के समान (अति मादक) मदिरा को तथा (विविध प्राणियों के) रक्त को पीकर झुँड बांधकर कुचरी (गूर्जरी ?) वाद्य के समान कंठस्वर से गा रही थीं। वे (उस समय) करताल की ध्वनि करती हुई लज्जा त्यागकर इस प्रकार लड़खड़ा रही थीं कि कटि-वस्त्र और मेखलाओं के खुल-खुलकर गिरने पर भी कुछ ध्यान नहीं देती थीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जिनका मन दही के रंगवाली मदिरा पीने के कारण अत्यन्त भ्रांत हो गया था और जिनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, शोर मचाती हुई यह कहती थीं कि 'देखो, मुझपर देवता का आवेश हो गया है।' फिर, वे दोनों हाथों को अपने सिर के ऊपर फैलाये, काँपती हुई मुँह को बाकर चिल्ला उठतीं और फिर, शिथिल पड़कर चुप हो जाती थीं।

हनुमान् इस प्रकार की राक्षस-स्त्रियों के चार करोड़ गृहों से भरी विशाल दिव्य वीथियों को देखकर, फिर सिद्धजाति की स्त्रियों के आवासों को भी पार कर विद्याधर-स्त्रियों की वीथी में जा पहुँचा।

अधिक बढ़े हुए प्रेमवाली कुछ विद्याधर-स्त्रियाँ, मकराकार दीर्घ किरीटधारी (रावण) के न आने से यों उद्विग्न हो उठी थीं कि उनका मन उनकी (नृत्यरत क्षीण) कटि से भी अधिक चंचल हो रहा था। गायक लोग अपने कंठस्वर से अविभिन्न ध्वनि-वाले उत्तम वाद्यों को लेकर शास्त्र-सम्मत रीति से गाने लगते थे, तो उनके गान घोर सर्प बनकर उन विद्याधर-रमणियों के कानों में प्रविष्ट हो जाते थे, जिससे वे अत्यधिक व्याकुल हो उठती थीं।

जिस रावण ने प्रशंसनीय सन्मार्गों पर चलनेवाले मुनियों तथा देवताओं को आश्रयहीन करके सताया था और उनके समस्त बल को अपनी प्रज्ज्वलित कोपाग्नि से जला दिया था, ऐसे भयंकर प्रतापवाले (रावण) पर ये स्त्रियाँ सदा आसक्त रहती हैं, यह सोचकर ही, मानों कठोर वैर के साथ, शीतकिरण (चन्द्रमा) उष्ण किरणों की बौछार करके उन (विद्याधर) स्त्रियों के उमड़े हुए स्तनयुगों को जलाता था और वे पुष्प-लताओं के समान झुलस गई थीं।

विद्याधर-स्त्रियाँ, जो विरह-पीडा से इस प्रकार व्याकुल थीं कि स्वल्प काल भी उनको कल्प के समान लगता था, और जो पहले (रावण के द्वारा) आलिंगन-पाश में बद्ध हुई थीं, अब अपने स्तनों पर (उस आलिगंन-पाश के कारण) घनीभूत चन्दन-लेप को तथा (रावण द्वारा) चित्रित चिह्नों (नख-क्षत, पत्र-लेखा आदि) को प्रेम से निहारतीं, तो उनके प्राण बिंध जाते थे, उनके करवाल-सदृश नेत्र लाल हो जाते थे और वे दुःख से निःश्वास भरने लगती थीं।

इस भाँति की विद्याधर-स्त्रियों के निवासभूत बारह करोड़ गृहों से युक्त दीर्घ वीथी में खोजता हुआ अविनश्वर (हनुमान्) तीनों भुवनों के नायक (रावण) के ऊँचे प्रासाद के निकट जा पहुँचा और वहाँ के उस भवन को देखा, जहाँ पूर्णचन्द्र को परास्त करनेवाले उज्ज्वल वदन से शोभायमान मयपुत्री (मंदोदरी) निवास करती थी।

उस मंदोदरी के भवन को अपनी आँखों से देखकर, मन में तर्क-वितर्क करता हुआ हनुमान् यों सोचने लगा—मेरा उद्देश्य (सीता का अन्वेषण) अब पूर्ण हो गया। यह सौध (लंका के अन्य स्त्रियों के निवासों से) विलक्षण है। कदाचित् यही वह स्थान है, जहाँ प्रभु की प्राणाधिका प्रिया को (रावण ने) चुराकर ला रखा है। रत्न-सदृश अन्य प्रासादों के मध्य यह सौध इसी प्रकार है, जिस प्रकार विष्णु के विशाल वक्ष का (कौस्तुभ) रत्न हो। यह सोचकर वह विस्मय से भर गया।

रंभा, मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी आदि अप्सराएँ मंदोदरी के उन मृदुल चरणों को सहला रही थीं, जो मन्मथ के पुष्प-शरों के तूणीर के समान थे। उनमें से कई पंखा झल रही थीं। इक्षुरस को भी फीका कर देनेवाली अतिशय मधुरभाषिणी अप्सराओं के द्वारा बजाई गई वीणा की मृदुल ध्वनि उस (मंदोदरी) के कानों को तृप्त कर रही थी और कल्प-वृक्ष के पुष्पों की सुरभि उसकी नासिका को तृप्त कर रही थी।

(संसार की) आसक्ति से रहित उत्तम प्रकृतिवाले लोग भी, यदि नीच जनों के कोप-भाजन बनते हैं, तो उससे उनकी हानि होती है या कुछ लाभ होता है, न जाने क्या होता है?—इस प्रकार की आशंका से विकल होता हुआ अति उत्तम मंदमारुत भी वहाँ के सेवकों के बुलाने पर पास जाकर पूछता था कि क्या आज्ञा है? फिर (वह आज्ञा पूरी करके) लौट आता था। यों बार-बार आता-जाता हुआ वह (मंदमारुत) झूले के समान झूल रहा था।

इस प्रकार, प्रकाशमान रत्न-दीपों की ज्योति को मंद कर देनेवाली अपनी शरीर-कांति को बिखेरती हुई, निद्रा-मग्न उस सुन्दरी (मंदोदरी) को, निर्निरोध गतिवाले उस (हनुमान्) ने देखा। वह सोचने लगा कि (कदाचित्) यह सीता ही हैं? मन में उमड़ने-वाली तीक्ष्ण क्रोधाग्नि से उसका शरीर और अपूर्व प्राण दोनों जल उठे और वह असमान घोर दुःख से व्याकुल हो उठा। फिर, मन में वह कहने लगा—

अस्थि-पंजर के सहारे बढ़नेवाले इस शरीर से जो फल प्राप्त हो सकता है, वह मैं नहीं प्राप्त कर सका (अर्थात्, अपने प्रभु की सेवा नहीं कर सका)। इतना ही नहीं, यदि प्रेमपाश को, कुलीनता को तथा अपने अलौकिक पातिव्रत्य को त्यागकर सीता ही इस रूप में यहाँ पड़ी है, तो काकुत्स्थ का यश, उनका सौंदर्य, मैं, यह लंका, ये राक्षस—अभी-अभी और सभी विनाश को प्राप्त हो जायँगे।

फिर, हनुमान् ने सोचा—वे (सीता) देवी मनोहर मानवरूपधारिणी हैं। किंतु, यह तो (मानवी से) भिन्न आकारवाली है? इससे सन्देह उत्पन्न होता है कि यह या तो कोई यक्ष-स्त्री है, या असुर-स्त्री? सुरभिपूर्ण उत्तम पुष्प-माला को धारण करनेवाले (श्रीराम) को देखकर जिस रमणी के मन में प्रेम उत्पन्न हुआ था, क्या उसका मन मीनकेतन (मन्मथ) की ओर भी आकृष्ट हो सकता है? (इसको देखकर मैंने सीता की) जो भ्रांति की, वह अपराध है।

आगे हनुमान् ने सोचा—यद्यपि इस (मंदोदरी) के शरीर में कुछ उत्तम लक्षण दृष्टिगत हो रहे हैं, तथापि इसका शरीर यह घोषणा कर रहा है कि इसपर ऐसी एक बड़ी

विपदा आनेवाली है, जिसकी कोई सीमा नहीं होगी। यह (जो निद्रा-मग्न है) जिसके पुष्प-शोभित काले केश बिखरे पड़े हैं, कुछ विपरीत वचनों का प्रलाप कर रही है। अतः, शीघ्र ही इसका पति मरनेवाला है और इस महान् नगरी का भी विनाश होनेवाला है।

ऐसा अनुमान करके और यह विचार कर कि 'यह सीता है'—इस भ्रांति के कारण उत्पन्न मेरी व्याकुलता अब दूर हो गई। वह स्वस्थमन हुआ। फिर, उस भवन को पीछे छोड़कर आगे बढ़ा। और, वह (हनुमान्), जो इस प्रकार के पर्वत-सदृश भुजाओं से विशिष्ट था, जिसे रावण भी उठा नहीं सकता था, एक ऐसे अत्युन्नत प्रासाद के भीतर जा पहुँचा, जिसके सम्मुख ऊँचा मेरु भी छोटा पड़ता था।

(उस समय उस प्रदेश में) धरती काँप उठी। बड़े पर्वत भग्न होकर गिर पड़े। राक्षस-कुल की स्त्रियों के नेत्र, भौंहें और कंधे उनकी डमरु-सदृश कटि के जैसे ही फड़क उठे। दिशाएँ काँप उठीं। चन्द्र से प्रकाशमान गगन में बिजली के न होने पर भी गर्जन के विविध नाद सुनाई पड़े। मंगलसूचक पूर्ण कलश टूट गये।

उस प्रासाद में प्रवेश करके हनुमान्, अपनी आँखों से (उन उत्पातों को) देखकर और अपने अनुपम शुभचिंतक मन के पिघल उठने से इस प्रकार सोच-विचार करने लगा—हाय ! इस विशाल नगरी का ऐश्वर्य मिट जानेवाला है। (मनुष्य) किसी भी कुल में उत्पन्न हो, चाहे कोई भी हो, सबके लिए द्विविध कर्म (पुण्य पाप या संचित और प्रारब्ध) समान ही होते हैं। पूर्व कर्मों से अधिक बलवान् और क्या हो सकता है ?

शास्त्र-रूपी महासमुद्र के पारगंत, गंभीर श्रुतिवाले (उस हनुमान्) ने उस विशाल भवन में; जिसके चारों ओर के खुले प्रदेशों में दृढ चरण तथा तीक्ष्ण शूलधारी (सेना-रूपी) समुद्र निरन्तर प्रवाहित होता रहता था, निद्रा में मग्न उस रावण को देखा, जो ऐसा दृष्टिगत होता था, मानों विशाल क्षीरसागर पर, विविध रत्नों को बिखेरनेवाला, बहुत रंगों से भरित तथा विस्तृत वेलाओं से आवृत कोई महान् नीलसमुद्र विश्राम कर रहा हो।

बाल-सूर्य (उदय) गिरि पर आरूढ हो, ऐसा दृश्य उपस्थित करनेवाले, भारी रत्नों से जटित (रावण के) दीर्घ किरीट, अन्य आभरणों के साथ, अरुण प्रकाश बिखेर रहे थे, जिससे रात्रि नामक पदार्थ ही मिट गया था। वह निद्रा-मग्न (रावण) ऐसा लगता था, जैसे प्राचीन काल में हिरण्य को मारनेवाले पराक्रमी सिंह (अर्थात्, नरसिंह) अपनी अनेक भुजाओं और शिरों को फैलाये कन्दराओं से सुशोभित मेरु-पर्वत के मध्य सो रहा हो।

स्वर्ण-नगर की रहनेवाली (अर्थात्, स्वर्गवासी), श्रेष्ठ वलयों को धारण करनेवाली अप्सराएँ, सहस्रों की संख्या में, पंक्ति बाँधकर खड़ी थीं और स्वच्छ स्वर्ण की मूठवाले चामर डुला रही थीं। उनसे जो मंद पवन संचरित होता था, वह कल्प-पुष्प के मधु की बूँदें (उस रावण पर) बिखेरता था। उससे उसका दीर्घ शरीर उत्तप्त हो जाता था और उत्तम कंकणधारिणी सीता का स्मरण करके निःश्वास भरता हुआ वह व्याकुल-प्राण हो जाता था।

बालचन्द्र को अपनी शिखा पर धारण करनेवाले (शिव) के महान् पर्वत (हिमाचल को) जिन भुजाओं ने उखाड़ा था, उनको अनंग के कठोर बाण छेदते थे और उनके मध्य क्षण-भर छिपकर उस पार निकल जाते थे। दिग्गजों के साथ किये गये घोर समर में, उन गजों के दाँतों के लगने से जो घाव हो गये थे, उनमें अब (मन्मथ के बाणों से) कुछ हरे घाव उत्पन्न हो गये थे और उनसे मवाद बहने लगा था—(ऐसे रावण को हनुमान् ने देखा)।

हनुमान् ने उस रावण को देखा, जिसके शरीर पर चन्दन आदि का लेप लगा हुआ था और उस लेप पर मंद-मंद शीतल पवन ऐसा बह रहा था, मानों उस रावण की उमड़ी हुई कामाग्नि को और बढ़ाने के लिए भाथियों से हवा निकल रही हो। उसकी मन आदि इन्द्रियाँ, रक्तकमल-समान मृदुल अंगुलियोंवाली जानकी के निकट चली गई थीं, जिससे उसका द्रवित हृदय उसी प्रकार शून्य हो गया था, जिस प्रकार साँपों के निकल जाने पर बाँबी सूनी पड़ जाती है।

हनुमान् ने उस रावण को देखा, जिसके (दसों मुखों से) धवल खड्ग-दंत (निकलकर) ऐसा दृश्य उपस्थित करते थे, मानों पूर्वकाल में, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए उत्साह के साथ सभी दिशाओं में बलपूर्वक जाकर घोर युद्ध करके देवताओं के जिस यश को अपने युद्ध-निपुण हाथों से भर-भरकर उसने पिया था; उस यश का प्रवाह ही उसके खुले मुँहों से उमड़कर बाहर निकल रहा हो।

उसके (विरह से) तप्त शरीर पर, जिसके स्पर्श-मात्र से रजत-समान धवल पुष्प-पर्यंक झुलस जाता था और उससे चिनगारियाँ निकलने लगती थीं, पसीने की बूँदें श्वेत रंग के बुलबुलों के समान उठ रही थीं। उसकी मधुभरी पुष्प-मालाओं पर जो भ्रमर बैठते थे, वे भी झुलसकर भस्म हो जाते थे। वह निःश्वास भरता था, तो उसके उज्ज्वल पुष्पहार जल जाते थे---ऐसे रावण को हनुमान् ने देखा।

उसका मन साक्षात् लक्ष्मी (स्वरूपिणी) सीता के पास चला गया था और वह पुष्पमय पर्यंक पर उसी प्रकार झूठी नींद सो रहा था, जिस प्रकार दिव्य चक्रायुधधारी विष्णु हो। वह नीलोत्पल के समान नयनोंवाली (सीता) के प्रति उत्पन्न अपने प्रेम-रूपी जल को डालकर, निःश्वास-रूपी लोढ़े से अपने प्राणों को पीस रहा था।

(सीता के विषय में) चिन्तन के निरन्तर बढ़ते रहने के कारण, (सीता का) रूप उसके सम्मुख प्रकट होने लगा, तो उसे देखकर उसके मुख पर मंदहास खेलने लगा। काम-वासना के कारण उसका शरीर कंपित होने लगा और यह सोचकर कि मधुवर्षिणी बोलीवाली (सीता) किसी प्रकार मुझसे पहले ही इस कक्ष में आकर ठहर गई है, वह सम्पूर्ण शरीर से पुलकित हो उठा।

सूक्ष्म चित्रकला से चित्रित कलापवाले मयूर, कामना की अधिकता होने पर भी, अपने आवास-पर्वत को छोड़कर दूसरे पर्वत पर बड़ी कठिनाई से ही जा पाते हैं। उसी प्रकार कलापी-सदृश रमणियाँ उस रावण की, कार्य करने में चतुर, विजयशील एक भुजा को

आलिंगन करके, दूसरी भुजा पर कठिनाई से ही जा पाती थीं—ऐसी अनुपम भुजाओं की श्रेणी से युक्त रावण को हनुमान् ने देखा।

हनुमान् ने उस रावण को देखा, जिसके वक्ष पर उज्ज्वल हार डोल रहा था। वह हार चारों ओर नील-समुद्र पर अपनी किरणों को बिखेरनेवाले और उदयगिरि पर उठनेवाले सूर्य के सदृश चमक रहा था। उसके उस वक्ष ने त्रिभुवन की रक्षा करनेवाले प्रमुख त्रिदेवों (शिव, विष्णु तथा इन्द्र) के आयुध परशु, चक्र तथा कुलिश की अमोघ शक्ति को भी विफल कर दिया था।

हनुमान् ने उस रावण को देखा, जिसके वक्ष पर कभी दिग्गजों के दंत इस प्रकार आघात करते थे कि उसके हारों के पुष्पों पर लगे भ्रमर तथा दिग्गजों के मद-जल पर लगे भ्रमर—दोनों चक्कर काटते हुए उड़ जाते थे और चारों ओर मँड़राने लगते थे और उस (रावण) के वक्ष का चन्दन-लेप तथा बलिष्ठ दिग्गजों के मुख का सिंदूर-लेप स्थानांतरित हो जाते थे। उस रावण के तीक्ष्ण शूल के प्रताप से त्रस्त होकर जो शत्रु-राजा उसके चरणों पर नतमस्तक होते थे, उनके किरीटों की रगड़ से उसके चरणों में घट्टे पैदा-हो गये थे।

श्रीविष्णु के वामन-रूप से भी अधिक लघु आकार में स्थित वह (हनुमान्), बलिष्ठ दस सिर एवं बीस भुजाएँ देखकर समझ गया (कि यह रावण ही है)। यह समझते ही, उसके मन से पहले ही, उसके नेत्र कालाग्नि उगलने लगे ; जिसकी उग्रता से ऊपर और नीचे के सभी लोक फटने लगे।

इस (रावण) के भुजबल का ही क्या प्रयोजन है ? चिरकाल से स्थिर रहने-वाला इसका यश ही किस काम का है ? (अर्थात्, ये दोनों व्यर्थ हैं)। शूल-सम नयनोंवाली (सीता) को धोखा देनेवाले इसके रत्न-किरीटों को अपने पैरों से यदि मैं न गिराऊँ और इसके दसों सिरों को चूर-चूर करके यदि मैं अपना पौरुष न दिखाऊँ, तो मेरा रामदासत्व अपूर्ण ही रह जायगा।

सेवक की वृत्ति क्या केवल दिखावे से ही पूर्ण हो सकती है ? (अर्थात्, सेवा करने का अभिनय करने-मात्र से सेवक का कार्य पूरा नहीं होता)। मनोहर ललाटवाली (सीता) को धोखे से लानेवाला यह कठोर राक्षस मेरे पहचानने के पश्चात् भी क्या जीवित रह सकता है ? मैं उसकी सारी दीर्घ भुजाओं को तोड़ दूँगा, दसों सिरों को पदाघात से गिरा दूँगा। यों इसे मारकर इस नगरी का भी विध्वंस करूँगा। उसके पश्चात् चाहे जो भी घटित हो।

इस भाँति विचार करके वह हनुमान् उत्साह से भर गया। वह दाँतों को पीसता हुआ, हाथों को मलता हुआ उठा और कुछ क्षण मौन खड़ा रहा। फिर, ध्यान से सोचता हुआ मन-ही-मन कह उठा कि (रावण का) वध करने के लिए राम की आज्ञा नहीं मिली है और एक कार्य करने जाकर दूसरा कार्य करना बुद्धिमानी है। और भी विचार करने पर यह कार्य (रावण का वध) अत्यन्त त्रुटिपूर्ण हो सकता है। यों (विचारकर) वह रावण का वध न करके वहाँ से पीछे हट गया।

जान-बूझकर विष का पान करनेवाले (शिवजी) के समान शक्तिशाली होने पर भी, अपने शील की रक्षा करनेवाले महान् लोग, क्या बिना सोचे-समझे कोई काम करते हैं ? (अर्थात्, नहीं)। हनुमान्, उस समय, उस समुद्र के समान ही रहा, जो तीनों लोकों को डुबोने की अपनी शक्ति को पहचानता हुआ भी, (कल्पांत के) समय की प्रतीक्षा करता हुआ, अपने किनारे को थोड़ा भी नहीं लाँघता हुआ पड़ा रहता है।

अब युद्ध करने के लिए जो क्रोध मेरे मन में उमड़ा है, वह मेरे मन में ही दब जाये (किसी दूसरे पर वह प्रकट न हो)। पुष्पालंकृत कुंतलोंवाली देवी को बंदिनी बनानेवाले कंटक को एक वानर ने युद्ध करके मार दिया। यदि ऐसी बात प्रचलित हो जाय; तो (दुष्टों के विनाश के लिए) सन्नद्ध वीर (राम) के, युद्ध में विजय प्रदान करनेवाले धनुष की सारी कुशलता के लिए कलंक उत्पन्न होगा—यह विचार कर हनुमान् ने अपने को दबा लिया।

इस प्रकार, अपनी प्रकृतिस्थ दशा को प्राप्त हुआ (हनुमान् फिर अपने मन में) कहने लगा—श्रेष्ठ कंकण और अन्य आभरणों से भूषित कोई रमणी (रावण) के साथ नहीं सो रही है और यह अति जघन्य काम-ताप से पीडित हो रहा है। इसकी ऐसी दशा ही यह शुभ सूचना दे रही है कि (सीता) देवी अभी अच्छी दशा में हैं।

यह सोचकर कि अब यहाँ रहने से कोई प्रयोजन नहीं है, पर्वतसम कंधोंवाले उस (रावण) के सौध को पीछे छोड़ता हुआ हनुमान् आगे बढ़ गया और खड़ा होकर दुःख के साथ सोचने लगा—हाय ! क्या इस विशाल नगर में रत्नजटित स्वर्णाभरण धारण करनेवाली (सीता) देवी नहीं हैं ?

पातिव्रत्य से च्युत न होनेवाली, कुलीन देवी की इसने कहीं हत्या तो नहीं कर दी है ? या कदाचित् अपने कठोर कृत्य के अनुसार उन्हें खा ही तो नहीं डाला है ? नहीं तो क्या (लंका से) अन्यत्र कहीं बंदिनी बनाकर रखा है ? मैं कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ। किसी भी उपाय से सफल न होनेवाला मैं अब लौटकर (राम से) क्या कहूँगा ? यदि मैं जीवित रहूँगा, तो मुझे (असफलता का) कठोर दुःख भी कभी नहीं छोड़ेगा।

काकुत्स्थ यह सोचते हुए प्रतीक्षा करते होंगे कि मैं (सीता देवी को) देखकर आऊँगा। कपिकुल के प्रभु (सुग्रीव) यह सोचते होंगे कि मैं (सीता को) अपने साथ ही ले आऊँगा। किंतु, मेरा कार्य तो इस प्रकार (विफल) हो गया है। अब मैं क्या पुंडरीकाक्ष (राम) के पास जा सकता हूँ ? मेरे प्यारे वानर-वीर (अंगद, आदि) जब प्राण त्यागने के लिए उद्यत हुए थे, तब उनके साथ मैं मरने को तैयार नहीं हुआ। किंतु, अब क्या विफलप्रयत्न होकर मुझे मरना ही होगा ?

(सीता के अन्वेषण के लिए सुग्रीव के द्वारा) निश्चित अवधि बीत गई है। मैंने घने केशपाशवाली (देवी) को देखा तक नहीं। (प्राण त्याग कर) स्वर्ग को जायँगे—यों कहनेवाले वानर-वीरों को वहाँ छोड़कर आया हुआ मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सका हूँ। क्या मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर सकने पर भी जीवित रह सकता हूँ ? हाय ! पुण्य नामक वस्तु ही मेरे पास से दूर चली गई है।

सात सौ योजन दीर्घ प्राकार से आवृत इस लंकापुरी में निवास करनेवाले श्रेष्ठ प्राणियों में कोई भी ऐसा नहीं है, जिसे मैंने देखा नहीं है। एकमात्र सर्वलोक के प्रभु (राम) की महामहिम देवी को ही मैं नहीं देख सका। एक समुद्र को तो मैं लाँघ सका हूँ। पर, क्या अब दुःख-समुद्र (को पार न कर सकने से) उसके मध्य डूबकर मुझे मर जाना ही पड़ेगा ?

क्या इस निष्ठुर राक्षस (रावण) को मैं पहाड़ को भी तोड़ देनेवाले अपने हाथों से इस प्रकार दबाऊँ कि उसके मुँहों से खून बह निकले और उससे यह पूछूँ कि (सीता देवी को) दिखाओ। (सीता देवी को) देखूँ, या सूर्य के प्रकाश को मंदकर देनेवाले शूल को धारण करनेवाले इस रावण को तथा इस नगरी को उग्र अग्नि-ज्वाला से जलाकर लाख के समान पिघला दूँ ?

यदि मैं देव आदि सहृदयहृदयों से (सीता के रहने के स्थान के संबंध में) पूछूँ, तो भी वे निष्ठुर राक्षस के कारण, कुछ कहने का साहस नहीं रखने से, नहीं बतायेंगे। अन्य व्यक्ति भी कैसे कहेंगे ! यह मैं, जो कृशगात्र होकर उड़ न जानेवाले अपने प्राणों को ढोने की अज्ञानता कर रहा हूँ, कैसे जान सकता हूँ (कि सीता देवी कहाँ रहती हैं) ?

गृद्धों के सरदार (संपाति) ने कहा था कि मैं लंकापुरी में उस देवी को देख रहा हूँ। उसका कथन भी असत्य ही सिद्ध हुआ। (सीता को) अपने भीतर छिपा रखनेवाली इस बड़ी नगरी को समुद्र में डुबो न देकर अपने शरीर को लिए कबतक दुःख भोगता रहूँ ?

'धरती और आकाश के जानते हुए, यह कठोर राक्षस, उत्तम पुष्पों से भूषित कुंतलोंवाली (देवी) को उठा ले गया'—यह प्रसिद्ध प्रवाद झूठा नहीं हो सकता। अतः, समुद्र से घिरी लंका को उखाड़कर इस बड़े सागर में ही मिला दूँगा और इस (रावण) को भी समाप्त कर दूँगा। उसके पश्चात् ही मेरा मरना निश्चित रूप से उचित हो सकेगा—इस प्रकार हनुमान् मन में सोचता रहा।

वह हनुमान्, जो तिल-भर स्थान को भी (खाली) न छोड़कर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले तथा उसके मन में भी स्थित रहनेवाले सुन्दर (विष्णु) के समान ही (उस लंका में) सर्वत्र व्याप्त हो रहा था, (सीता को) खोजता रहा। उपर्युक्त विकलता के साथ सोचता हुआ वह भ्रमरों से युक्त उद्यान में खोजने की इच्छा से उसके निकट जा पहुँचा और (उसने वहाँ) मधुपूर्ण पुष्पों से युक्त एक फुलवारी को देखा। (१–२३४)

●

अध्याय ३

सीता-दर्शन पटल

(हनुमान् ने मन में सोचा—) समीपस्थ उस अति सुन्दर फुलवारी में पहुँचकर वहाँ भी खोज लूँगा, तो मेरी हीनता दूर हो जायगी। उस उद्यान में भी यदि (देवी को) नहीं देखूँगा, तो फिर मेरा कर्त्तव्य और कुछ नहीं रह जायगा। (केवल यही कार्य बाकी रहेगा कि) लंका को उखाड़कर इस त्रिकूट पर्वत पर पटककर ध्वस्त कर दूँ और अपने प्राण त्याग दूँ।

यह विचार करके राघव दूत (हनुमान्) उस (अशोक) वन के भीतर जा पहुँचा। तब देवता एकत्र होकर उसपर पुष्प-वर्षा करके आनंदित हुए।

अब हम यह वर्णन करने का साहस करेंगे कि उस उद्यान में आयुधधारी राक्षस (रावण) के द्वारा बंदिनी बनाकर रखी गई, घने अंधकार-सदृश केशपाश से युक्त देवी (सीता) की क्या दशा थी।

प्रस्तर के मध्य उत्पन्न होकर कभी एक बूँद पानी भी न पाने कारण कुम्हलाई हुई संजीवनी लता के सदृश कांतिहीन, वह देवी, शरीर के अन्य अंगों से भी अपनी कृश कटि के समान ही कृश हो गई थी। (उस सीता को) भीम कटिवाली, करवालधारिणी, राक्षसियाँ उस स्थान पर रहकर धमकियाँ दे रही थीं।

मयूर-सम रूप तथा कोकिल-सम बोली से युक्त उस देवी ने आँखें खोलना और मींचना तथा निद्रा करना भी छोड़ दिया था। उनका शरीर धूप में रखे दीप के समान प्रकाशहीन हो गया था। वह, तीक्ष्ण दंतों से युक्त भयंकर व्याघ्र-समूह के मध्य फँसी हुई बाल-हरिणी जैसी थी।

श्रीरामचन्द्र का ध्यान करके धरती पर (मूर्च्छित हो) गिरना, खुलकर रोना, शरीर का अत्यन्त उत्तप्त होना, भयग्रस्त होना, उठना, अकुलाना, दीन होना, (राम के प्रति) नमस्कार करना, शिथिल होना, कंपित होना, दुःख से पीडित होकर निःश्वास भरना, अश्रु बहाना—इन व्यापारों को छोड़कर वे अन्य कोई कार्य ही नहीं जानती थीं।

धागे से भी अधिक सूक्ष्म कटिवाली वह देवी यह सूचित करती थीं कि उनके परस्पर अनुरूप नयनों को मेघ की संज्ञा देना सकारण ही है। क्योंकि उन नयनों से निरन्तर बहनेवाली अश्रुजल की धारा, नालों में बहते हुए जल-प्रवाह के समान निरन्तर झरती रहती थी और उमड़कर सुनहले चिह्नों से युक्त उनके स्तनों पर बह चलती थीं।

विरह की व्याधि से पीडित वह (देवी) ऐसी लगती थीं, मानों संसार में तुल्य अनुराग-युक्त पति-पत्नी के परस्पर वियोग का दुःख ही साकार होकर आ गया हो। अपूर्व मेघ, अंजन आदि अत्यन्त काले रंग की वस्तुओं को देखने-मात्र से (रामचन्द्र के शरीर की कांति का स्मरण होने से) इस प्रकार रो पड़ती थीं कि अश्रुजल की धारा समुद्र में जा गिरती थी।

प्रवाल-निर्मित करों एवं चरणों से युक्त वह देवं', वर्षाकालिक मेघ की समता करनेवाले (श्रीराम) का ज्यों-ज्यों ध्यान करतीं, त्यों-त्यों उनके विशाल नयनों से अश्रुधारा बह चलती और उनके झीने वस्त्र भींग जाते, किन्तु तुरन्त ही (वे वस्त्र) अत्यन्त वेदना-पूर्ण निःश्वास की उष्णता से सूख भी जाते। वे वस्त्र एक ही बार नहीं, बार-बार इस प्रकार की दशा को प्राप्त करते थे।

यह सोचकर कि यदि मैं अपने प्राणों का त्याग कर दूँ, तो भी विधि के प्रभाव से मुक्त होना दुष्कर ही है, वे ऐसा कार्य करने से सहम जातीं। फिर, यह निश्चय करके कि श्रुतियों के प्रभु (राम) सूर्यवंश (की महत्ता) को, एवं अब उस कुल के लिए उत्पन्न हीनता का विचार कर ही सही, अवश्य आयेंगे उन (देवी) के नेत्र सब दिशाओं को निहारने लगते।

उस क्षमामयी (सीता देवी) के केशभार, सघन जटा बनकर उनके सुन्दर वदन के पार्श्वों में कपोलों को दृढता से पकड़े हुए थे और इस प्रकार दृष्टिगत होते थे, मानों कोई तीक्ष्ण दंतोंवाला सर्प धरती पर स्थित एक निष्कलंक चंद्रमा को पूर्णरूप से निगलकर फिर उसे उगल रहा हो।

पूर्व धारण किये हुए, धुएँ के समान झीने, एक वस्त्र को छोड़कर दूसरे वस्त्र को उन्होंने जाना भी नहीं (अर्थात्, उस वस्त्र के अतिरिक्त अन्य नये वस्त्रों को धारण नहीं किया)। उनकी देह पंख-शोभित हंसों के निवासभूत स्वच्छ जल में कभी निमग्न नहीं हुई। उनका रूप ऐसा था, मानों स्वच्छ (क्षीर) सागर से उत्पन्न दिव्य अमृत को लेकर मन्मथ ने कोई सुन्दर चित्र निर्मित किया हो और अब वह धुएँ के लगने से कांतिहीन हो गया हो।

कदाचित् लक्ष्मण ने (माया-हरिण के पीछे-पीछे जाते रामचन्द्र को) देखा नहीं। (यदि देखा भी हो, तो) कदाचित् यह समाचार उन (लक्ष्मण और राम) को विदित नहीं हुआ कि लोक-कंटक (रावण) मुझे हरकर ले गया है। (यदि जाना भी हो, तो) कदाचित् यह जाना नहीं कि शब्दायमान समुद्र के मध्य लंका नामक नगर स्थित है। इस प्रकार के विचार करती हुई दुःखित होकर वे यों पीडित हो रही थीं, जैसे घाव के छिद्र में अग्निकण रख दिया गया हो।

कदाचित् वह गृद्धराज (जटायु) मर गया। उन (जटायु) को छोड़, (रावण के द्वारा मेरे हरे जाने का) समाचार (राम को) बतानेवाला और कौन है? अब इस जन्म में (राम का) दर्शन दुर्लभ ही है। यों विविध प्रकार विचार करती हुई वह रो पड़ती, व्याकुल होती और बार-बार यों पीडित होती, जैसे (घाव में) आग लग गई हो।

मुझ पापिन ने अपने देवर का थोड़ा भी आदर किये बिना, जो कठोर वचन कहे थे, उन्हें सुनकर प्रभु (राम) ने बुद्धिहीन समझकर कदाचित् मुझे त्याग दिया है। या पिछले जन्म में मेरे पाप का ही यह परिणाम हुआ है?—यों विविध प्रकार से एक के पश्चात् एक वचन कहते रहने से उनकी जिह्वा प्यास से सूख गई। प्रज्ञा शिथिल पड़ गई और प्राण तड़प उठे।

(कभी) यह सोचकर कि खाने योग्य कोमल फल-मूल आदि पदार्थों को किसके परोसने पर (रामचन्द्र) खायेंगे, वे रो पड़तीं। (कभी) यह सोचकर कि अतिथियों के आगमन पर (सत्कार करनेवाली गृहिणी के न रहने से) न जाने, वे कितना दुःख करते होंगे, सिसकने लगतीं। उनके बैठने के स्थान पर दीमक आदि के उपद्रव होने पर भी वे वहाँ से उठती नहीं थीं और यह सोचती हुई कि क्या मेरी व्याधि का औषध भी कुछ है, मूर्च्छित हो जाती थीं।

वे देवी, दिन और रात्रि का भेद भूलकर, सर्वदा इसी चिन्ता में पड़ी रहती थीं कि कदाचित् राम ने यह सोचकर कि निष्ठुर और वंचक राक्षसों ने इतने दिनों तक (सीता को) जीवित नहीं छोड़ा होगा, अब करना क्या है (अर्थात्, अब ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है), कदाचित् मुझे खोजना ही छोड़ दिया है, या इस विचार से कि अपने कुल के सहज गुण क्षमा को स्वयं भी अपनाना चाहिए, कोप को शांतकर रह गये हैं।—मैं क्या समझूँ ?

कदाचित् (कौसल्या आदि) माताएँ और भाई (भरत) दुबारा आकर (राम को) विजयी महानगरी (अयोध्या) को वापस ले गये हैं। (नहीं, ऐसा नहीं हुआ होगा)। चौदह वर्ष की निश्चित अवधि तक (वन में) निवास किये विना (राम) नगर को वापस नहीं लौटेंगे, अतः अभी वे वन में ही रहते होंगे। इस प्रकार विचार करती हुई, दुःख से संतप्त होकर, पूर्व में कभी किसी के द्वारा अननुभूत पीडा को प्राप्त होतीं।

मुर नामक असुर के समान भुजबल-विशिष्ट, पहले (जनस्थान में) युद्ध करने के लिए आये हुए राक्षसों के ही सदृश, असीम वरों, माया और वंचना से युक्त अन्य राक्षसों ने कदाचित् एक भयंकर युद्ध छेड़ दिया होगा—यह सोचकर सीता दुःखित होतीं और यों विकल होतीं, जैसे आँखों के सामने ही खर को (राम का) सामना करते हुए देख रही हों।

जब कैकेयी ने यह कहा था कि 'शत्रु-रहित यह विशाल राज्य तुम्हारे भाई का है' (तुम्हारा नहीं है), तब सिंह-सदृश श्रीराम का मुख तिगुनी कांति से शोभायमान हो गया था। उस रूप का स्मरण करके (सीता देवी) व्याकुल हो उठतीं।

यह कहने पर कि 'सत्य ही तुम समस्त विश्व का राज्य प्राप्त करो' या यह कहने पर कि 'इस राज्य की संपत्ति को छोड़कर तुम चले जाओ'—दोनों अवस्थाओं में (राम का) जो वदन चित्रलिखित, प्रफुल्ल रक्तकमल के समान (शान्त) रहा था, (सीता देवी) सदा उसी (वदन) का स्मरण करती रहतीं।

जब लोग संशय-ग्रस्त हो खड़े थे (कि राम शिव-धनुष को चढ़ा सकेंगे या नहीं), तब गंगा के विश्रामभूत जटा एवं अग्निमय नेत्रों से युक्त (शिव) के चढ़ाये हुए, मेरु के अंशभूत, सुन्दर धनुष को जिस भुजा ने दो टुकड़े कर दिये थे, उस भुजा का स्मरण कर (सीता) व्याकुल होतीं।

(कभी वे) देवेन्द्र के लिए अनेक उपद्रव उत्पन्न करनेवाले, बल-पौरुष से युक्त

(खरदूषण आदि) चतुर्दश सहस्र संख्यावाली सेना को तीन ही घड़ियों में विनष्ट करते हुए, दोनों सिरों में झुक जानेवाले धनुष का गुण-गान करती हुई व्याकुल होतीं ।

(कभी) गंभीर जल-युक्त गंगा नदी में नाव चलानेवाले गरीब केवट के प्रति (राम के) कहे हुए शब्दों को कि 'मेरा भाई तुम्हारा भी भाई है। तुम (मेरे) मित्र हो। मेरी स्त्री तुम्हारी भाभी है'—कहनेवाले (राम) के मित्र-धर्म का स्मरण कर मुग्ध होतीं।

सच्चरित्र जनक ने जब प्रेम से (सीता के) कर को (राम के) कर में थमाया था (पाणिग्रहण कराया था), तब (राम ने) अपने हाथ में सीता के हाथ को लेते हुए जनक के हाथ को छुड़ाया था, और अन्य वैवाहिक विधानों को करते हुए कुश-सदृश (पवित्र) सीता के पद को पत्थर (शिला) पर उठाकर रखा था। इस प्रकार, विवाह-वेदी पर घटित उन सब बातों का (कभी) स्मरण करता।

अपने भाई (भरत) को, मधुपूर्ण पुष्पों के योग्य अपने सिर पर उत्तम स्वर्ण-मुकुट को न पहनकर लाल जटा धारण किये हुए देखकर, रामचन्द्र अपने मन में पिघल उठे थे और दुःखी हुए थे। उस बात का स्मरण करके (सीता देवी) व्याकुल होतीं।

अपने योग्य राज्य-संपत्ति को खोकर जब वनवास के लिए चल पड़े थे, तब (राम ने) एक लालची ब्राह्मण[1] को गो-समूह दान किया और फिर भी उस ब्राह्मण की इच्छा का अन्त न देखकर प्रभु (राम) मुस्करा उठे थे। (सीता) उनका वह हँसना स्मरण कर अब रो पड़ीं।

जिस (परशुराम) ने अपने परशु आयुध से इक्कीस बार क्षत्रिय-कुल (के राजाओं) का वध करके मांसगंध से युक्त रक्त में स्नान किया (पितृ-तर्पण किया) था, उसके तपोबलपूर्ण धनुष को चढ़ा देनेवाले (राम) के प्रभाव का स्मरण करके पीडित हो उठतीं।

इन्द्र के पुत्र (काक-रूप में आकर सीता को पीडा देनेवाले जयंत) पर एक अनुपम अस्त्र का प्रयोग करके जबसे उस काक के एक नयन को (राम ने) नष्ट कर दिया,[2] तबसे सब काकों को एक नयन बनानेवाले (राम) की विजय को (सीता देवी) अपने सिर पर धारण करतीं (अर्थात्, राम की विजय की प्रशंसा करती)।

भयंकर विराध के अधिकाधिक बढ़ते हुए अपराधों को रोककर, उसके अनिवार्य शाप को भी मिटानेवाले (राम) के स्वभाव का स्मरण करके सीता देवी अपने प्राणों में अत्यन्त विकल होतीं और प्रज्ञा-हीन होकर अत्यन्त कृशगात्र हो जातीं।

मधुर भाषण में निपुण तथा सीता के प्रति सहानुभूति रखनेवाली राक्षसी त्रिजटा के अतिरिक्त, रखवाली करनेवाली अन्य सभी असीम बलवती राक्षसियाँ, अर्धनिशा के होते ही, निद्रारूपी मधु का पान करके मस्त हो पड़ रहीं।

---

१. यह 'त्रिजट' नामक ब्राह्मण का वृत्तांत है, जिसका वर्णन अयोध्याकांड में वन-प्रस्थान के प्रसंग में आया है।—अनु०

२. यह ध्वनित है कि राम ने, सीता को पीडा देने के अपराध में समस्त काक-कुल को ही एकाक्ष बना दिया था। अब अपनी पत्नी का हरण करनेवाले रावण का विनाश करने को क्यों उद्यत नहीं हैं?—अनु०

उस समय माता से भी अधिक हितकारिणी तथा स्नेहपूर्ण त्रिजटा को देखकर, सीता देवी यह कहकर कि 'तुम पवित्र स्वभाववाली हो, मेरी सखी हो, अतः, सुनो' सुन्दर वचन कहने लगीं—

हे मनोहर डमरु-सदृश कटिवाली ! भलाई ही (मेरे पास आने के लिए) तड़प रही है अथवा मेरे पूर्वकृत पाप की कठोरता ही अभी बढ़कर मुझे दुःख देने को तड़प रही है। न जाने क्या कारण है कि मेरे दक्षिण भाग की भौं, नयन आदि अंग नहीं फड़क रहे हैं (अर्थात्, वाम भाग के मेरे ये अवयव ही स्पंदित हो रहे हैं। मैं कुछ नहीं समझ पा रही हूँ कि अब मुझे क्या प्राप्त होने वाला है) ?

जब प्रभु (राम) मुनिवर (विश्वामित्र) के साथ मिथिला आये थे, तब मेरे स्वच्छ भ्रू, कंधा और नयन आनन्दप्रद हो स्पंदित हुए थे। आज भी अब उसी ढंग से (ये अवयव) फड़क रहे हैं। तुम विचारकर कहो (कि इसका क्या फल होनेवाला है)।

(पहले ही) कहना भूल गई। उसे भी सुन लो—धर्म-चिन्तनशील मेरे प्राण-नायक, राम (राज्य) उनके अनुज (भरत) को प्राप्त हो, इस विचार से जब सारी धरती का त्याग कर, वन को चलने लगे, तब मेरे दक्षिण अंग फड़क उठे थे।

जिस दिन विष-सदृश (रावण) दंडकारण्य में छल करके आया था, उस दिन भी मेरे दक्षिण अंग फड़क उठे थे। यदि ये अवयव सत्य से हीन नहीं हैं (अर्थात्, परिणाम की सच्ची सूचना देनेवाले ही हैं), तो न जाने वाम अंगों के फड़कने से अब कौन-सा कृपापूर्ण कार्य मुझे भय से मुक्त करने के हेतु घटित होनेवाला है ?

(सीता के इस प्रकार कहते ही) त्रिजटा यह सोचकर कि 'ठीक ! ठीक ! यह मंगलप्राप्ति की सूचना है', प्रेमपूर्ण हो (सीता से) कहने लगी—'तुम अपने पति से मिलेगी, यह निश्चय है। और भी सुनो।' वह आगे बोली—

हे विद्युत्-समान कटिवाली ! एक सुनहली तितली, तुम्हारी शरीर-कांति को पीला करती हुई और तुम्हारे प्राणों को संजीवित करती हुई, मंद मधुर गति से निकट आई और कान में सुवर्ण-मधु के समान मधुर गान करके अभी उड़ गई।

इसके संबंध में विचार करने पर विदित होता है कि तुम्हारे प्राणनाथ के द्वारा प्रेषित दूत का आना निश्चित है और पापकर्मियों का विनाश भी निश्चित है। मेरे साथ जो घटित हुआ, उसे भी सुनो—यों कहकर त्रिजटा आगे बोली—

'हे शूलसम नयनोंवाली, (तुम्हें) निद्रा न आने से स्वप्न नहीं होते, (किन्तु) मैंने एक स्वप्न देखा है। अपराधों से पूर्ण इस नगर में भी जो (स्वप्न आदि) घटनाएँ दिखाई पड़ती हैं, वे व्यर्थ नहीं होतीं।'—यों कहकर सूर्य से भी (अधिक) सत्य होने-वाले (अर्थात्, सूर्य का उदय और अस्त जैसे नित्य सत्य हैं, वैसे ही सत्य बने हुए) वचन कहने लगी—

हे निष्कलंक पातिव्रत्य से शोभित होनेवाली ! (मैंने स्वप्न में देखा) महिमा से पूर्ण वह रावण लाल रंग का वस्त्र पहने हुए अपने दसों सुन्दर सिरों में तेल लगाये,

असंख्य बड़े-बड़े बलवान् गर्दभों और प्रेतों से जुते हुए रथ पर आरूढ होकर, दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है।

उसके पुत्र, बंधुजन और अन्य राक्षस भी उसी दिशा में जा रहे हैं। किसी को लौटते हुए (मैंने) नहीं देखा। मैंने देखने में कोई त्रुटि नहीं की। दूसरे भयंकर उत्पातों को भी सुनो—यों कहकर वह आगे बोली :

पराक्रमी रावण के द्वारा आहुत होमाग्नियाँ एक साथ बुझ गईं। पुंजीभूत रक्तज्वाला से युक्त और स्वयं प्रकाशमान रत्नदीपों से प्रकाशित (रावण का) पुरातन सौध प्रभातकाल में, नभ से वज्र के गिरने से हिल उठा है।

हथिनियाँ मद-जल बहा उठीं। बहुत-से भेरीवाद्य बिना बजाये ही वज्र के समान गरज उठे। निष्कलंक आकाश, बिजली से युक्त बादलों के बिना ही, इस प्रकार गरजा कि सारा ब्रह्माण्ड टूट-सा गया और नक्षत्र झर पड़े।

प्रकाशमान दिन के न होने पर भी, रात्रि के अंधकार को दूर करता हुआ सूर्य अपने अर्धभाग में जलता हुआ दृष्टिगत हुआ। बलिष्ठ कंधोंवाले वीरों के द्वारा धारण की हुई कल्प-पुष्प की मालाएँ मांसगंध-सी महँकने लगी (दुर्गन्ध करने लगीं)।

यह लंकापुरी तथा उसके प्राचीर घूमने लगे। सब दिशाएँ जल उठीं। सर्वत्र गंधर्व दिखाई पड़े। मंगलकलश अपना मुँह खोले टूट-फूट गये और अंधकार दीप को आवृत कर निगलने लगा।

तोरण टूटकर गिर पड़े। मुखपट्ट से शोभित महान् गजों के बलिष्ठ और प्रकाश-पूर्ण दंत टूट गये और वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा अभिमंत्रित कर रखे गये पूर्ण-कुंभों के पवित्र जल मद्य बनकर उफन उठे।

आकाशगामी चंद्र को भेदकर नक्षत्र निकल पड़े। उमड़नेवाले बादल, क्षतों से प्रवहमाण रक्त की वर्षा कर उठे। गदा, चक्र, करवाल, धनुष आदि आयुध, समुद्र को भी अपने घोष से परास्त करते हुए, स्वयं ही घोर संघर्ष करने लगे।

स्त्रियों की ताली[1] (नामक मंगलसूत्र) किसी के हाथों से तोड़े न जाकर भी टूटकर (उनके) स्तनों पर गिर पड़े। इसी प्रकार के और भी आश्चर्यजनक उत्पात सुनो :

लंकाधिपति की देवी मयपुत्री के केश स्वयं ही बंधन (-मुक्त) हो गिर पड़े और दीप की ज्वाला की लपेट में पड़कर झट जल गये। (राक्षसों की) विपद् उत्पन्न होने का यह भी संकेत है।

इस प्रकार वह (त्रिजटा) फिर आगे कहने लगी—हे देवी ! सुनो। आज और अभी इसी स्थान में एक स्वप्न दिखाई पड़ा। परस्पर समान बलवाले दो सिंह एक अनुपम पर्वत से (अपने साथ) मनोहर व्याघ्र-दल को साथ लेकर आये और—

१. दक्षिण भारत में यह प्रथा है कि विवाह के समय वर अपनी वधू के गले में ताली (मंगलसूत्र) बाँधता है। वही सौभाग्य का चिह्न होता है, जिसे सधवा स्त्रियाँ सदा अपने गले में धारण किये रहती हैं। उसका टूट जाना अमांगल्य का चिह्न समझा जाता है।—अनु०

(उन्होंने) असंख्य मत्तगजों से पूर्ण एक अरण्य को चारों ओर से घेर लिया और (उन गजों के साथ) युद्ध करके अगणित शवों को गिरा दिया। उस वन में आया हुआ एक मयूर (उन सिंहों के) आवास की ओर चला गया।

हे मृदुभाषिणी, अरुण वर्णवाली एक स्त्री सहस्र दीपशिखाओं से युक्त एक महान् रक्तवर्ण दीप को लेकर नायक (रावण) के प्रासाद से निकलकर विभीषण के सौध में चली गई।

जब वह स्त्री (विभीषण के) स्वर्ण-प्रासाद में पहुँची, तब तुमने मुझे जगा दिया। अतः, (वह स्वप्न) पूरा नहीं हुआ।[1]—त्रिजटा ने इस प्रकार कहा, तो उत्तम आभरणधारिणी देवी ने यह कहकर कि 'हे माता, उस शेष स्वप्न को भी देखो।' त्रिजटा से फिर सो जाने के लिए हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगी।

उसी समय, महाभाग (श्रीराम) के द्वारा भेजा गया महान् वृषभ-समान, युद्ध में निपुण वीर, दूत (हनुमान्), सावधानी से (सीता का) अन्वेषण करता हुआ, उस स्थान पर आ पहुँचा और क्षीण कटिवाली (सीता) देवी के रहने के स्थान को देखा।

उस समय राक्षसियाँ निद्रा से जग पड़ीं और यह कहती हुई कि अहा! यह बुरी निद्रा भी कैसे हमारी नींद को बिगाड़ने के लिए आई है, कर्कश शूल, परशु, वक्रदंड, बरछा आदि को अपने घोर हाथों में लिये हुई चारों ओर से दौड़ पड़ीं।

उनमें से कुछ के पेट में ही मुँह थे। कुछ के टेढ़े माथों पर आँखें थीं। उनकी दृष्टि अत्यंत भयंकर थी। उन राक्षसियों के दाँतों के मध्य हाथी, शरभ (एक मृग), भूत आदि सोये पड़े थे और उनके मुँह भयावनी पर्वत-गुहा के सदृश गहरे थे।

(उनमें से कुछ) दो हाथोंवाली थीं, तो कुछ दस हाथोंवाली। कुछ एक सिर-वाली थीं तो कुछ बीस सिरोंवाली। सब भयोत्पादक रूपवाली थीं और विकट वेषों से युक्त थीं। उनके पर्वत-जैसे पीन स्तन भी नीचे लटक रहे थे।

(वे) त्रिशूल, खड्ग, चक्र, अंकुश, तोमर, यमतुल्य भाले, कप्पण (छोटे बरछे) आदि का प्रयोग करने के अभ्यस्त हाथोंवाली थीं। उनका रूप ऐसा (काला) था, मानों विष ही उनके आकार में आ गया हो। वे इतनी बलिष्ठ थीं कि श्वेत गंगाजलधारी रुद्र भी (उन्हें देखकर) भयभीत हो जाते थे।

(वे) हाथी, घोड़े, बाघ, भालू, शरभ, भूत, सिंह, शृगाल, श्वान—इनके जैसे मुखों से युक्त थीं। कुछ की पीठ पर मुँह थे और कुछ तीन नयनोंवाली थीं। उनके मुँह से धुँआ निकलता था और उनके काम भयंकर होते थे।

(वे) अवर्णनीय बल से युक्त थीं। अपने नेत्रों से भयंकर आकारवाली थीं (नेत्र बहुत छोटे थे)। स्त्री नाम से संचरमाण पौरुष से युक्त थीं। इस प्रकार की वे (राक्षसियाँ) झट नींद से जगकर सीता को घेरती हुई दौड़ आईं।

उस समय, सुन्दर (राम) की देवी, अवाक् रहकर, अग्नि-सदृश उन राक्षसियों

---

१. ऊपर के १४ पदों में त्रिजटा के स्वप्न का वर्णन है।—अनु०

के मुख की ओर देखती हुई (भय से) मलिन हो गई। नायक का दूत (हनुमान्) भी शीघ्र वहाँ पहुँचकर, अनन्त रूप से बढ़े हुए एक वृक्ष की शाखा पर आ बैठा।

वह (हनुमान्) यह सोचने लगा कि अनेक राक्षसियाँ, यहाँ भाला आदि आयुध हाथों में रखे, घनी भीड़ लगाये, जागती बैठी हैं। इसका क्या कारण है? उसने उस स्थान की ओर अपनी दृष्टि दौड़ाई।

काले रंगवाली राक्षसियों के झुंड में, फैले हुए वर्षाकालिक बादलों को चीरकर चमकनेवाली बिजली के समान स्थित, शरीर-कांति से अपूर्व, सजल मेघ-सदृश, अविनश्वर भगवान् (विष्णु) के विशाल वक्ष पर रहनेवाली—मेरे (लेखक के) लिए परमपूज्य सुन्दरी (लक्ष्मी के अवतारभूत सीता) को उस हनुमान् ने देखा।

स्पर्श करने में भी घृणित राक्षसियों की रखवाली में रहनेवाली कोमल पुष्पलता तुल्य यह देवी, समुद्र-सम विशाल नयनों के जलप्रवाह के मध्य-स्थित हंसिनी के सदृश रहती हैं, अतः, यह सीता देवी ही हैं।

अभी धर्म विनष्ट नहीं हुआ है। मैं भी नहीं मरूँगा। (क्योंकि) देवी की खोज में आये हुए मैंने (उन्हें) देख लिया है। यह वही देवी हैं—यह सोचकर आनंद-मधु का पान करके वह (हनुमान्) नाच उठा, गाने लगा और इधर-उधर उछल-उछलकर दौड़ने लगा।

(इन देवी के) अनिंद्य रूप के सब सुलक्षण वरद (राम) के कथित वचनों से भिन्न नहीं हैं। आह! वंचक, करवाल-सदृश भयंकर रावण ने, मनोहर कमल-सम नयनवाले (राम) की शरीर के अंतर्गत प्राण-सदृश (रहनेवाली) देवी को किस प्रकार छिपाकर रखा है?

तीनों लोकों को सन्मार्ग से हटानेवाले पापी रावण ने अपने प्राणों के विनाश के लिए ही ऐसा कर्म किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है। वह (रामचन्द्र) आदिशेष के शयन से हटे हुए (विष्णु) देव ही हैं और यह देवी, कमल पर आसीन रहनेवाली (लक्ष्मी) ही हैं।

धूलि-धूसर रत्न-सदृश यह देवी, प्रकाशमान उष्णकिरण (सूर्य) की प्रभा के सम्मुख चंद्रमा की तरह कांतिहीन हो गई हैं। इनके केश मलिन हो गये हैं। (तो भी) इनका पातिव्रत्य तथा इनकी अपनी रक्षा करने की शक्ति दोषहीन ही है। अतः, धर्म का अंत कैसे हो सकता है?

वीर-वलयधारी राघव की भुजाओं की प्रशंसा करूँ या स्तुत्य वनिताओं के तिलकभूत इन देवी (सीता) के मन की प्रशंसा करूँ? अथवा वीर-कंकणधारी, क्षत्रियोचित उदारगुण से विशिष्ट जनक महाराज के वंश की प्रशंसा करूँ?—मैं किसकी महिमा का गान करूँ?

अब देवों के भी कोई अपराध नहीं रह गये। भूसुरों के भी कोई अपराध नहीं रह गये। धर्म भी अविनश्वर हो गया। अब हमारे प्रभु (राम) के लिए इस संसार में कौन-सा कार्य दुस्साध्य है? सब कार्य अनायास ही संपन्न हो जायेंगे। मेरा दासत्व भी तो दोषरहित ही है।

मैंने आशंका की थी कि अनुपम देवी (सीता) का पातिव्रत्य यदि थोड़ा भी गलित हुआ, तो चक्रधारी (राम) का कोप नामक समुद्र उमड़ उठेगा और प्रलयकाल निकट आ जायगा। अब सब लोग अनंतकाल तक स्थित रह सकेंगे।

गृहस्थ-धर्म के अनुकूल गुणों एवं आचरणों से युक्त, कुलीन स्त्रियों की मन की धृति नामक तपस्या का वर्णन कैसे हो सकता है ? (नहीं हो सकता)। इन साध्वियों के सम्मुख, पंचाग्नि के मध्य रहकर, पंचेन्द्रियों का दमन कर तथा अन्न-जल का त्याग कर भी जो तपस्या करते रहते हैं, वे लोग भी किस गिनती के हैं ? (अर्थात्, साध्वी स्त्री की तुलना में महान् तपस्वी भी कुछ नहीं हैं।)

इन देवी के अवतीर्ण होने से, सबकी प्रशंसा के योग्य पुण्यवान् उच्च कुल, स्त्रीजाति, एवं (महिलोचित) लज्जा आदि सद्गुण भी धन्य हो गये। किंतु, यहाँ अलौकिक तपस्या में निरत, इस प्रकार रहती हुई इन देवी को अपने कमल-नयनों से देखने का भाग्य (राम को) नहीं मिला।

राक्षसियाँ क्रोध करती हुई नीतिभ्रष्ट हो गई हैं। अपने को छोड़कर अन्य कोई सद्गुणवती (स्त्री) भी यहाँ इनकी संगिनी नहीं है। ओह ! एकांतवास, स्त्रीत्व और (पातिव्रत्य की) तपस्या इसी प्रकार की तो होती है। सद्धर्म के सब फल स्त्रियों को प्राप्त हों।

धर्म ने इन (सीता) की रक्षा की, या पापी (रावण) के कर्म ने ही इन्हें बचाया, अथवा पातिव्रत्य ने ही इनकी रक्षा की ? ऐसी अपूर्व रक्षा कौन कर सकता है ? मुझ जैसा व्यक्ति कैसे इसका बखान कर सकता है ?

रावण का ऐश्वर्य तो ऐसा है कि देवता दिन-रात उसकी सेवा में लगे रहते हैं, और उससे प्रेरित राक्षसियों द्वारा दी जानेवाली यातनाएँ भयंकर कठोर हैं ! इस स्थान में, इस प्रकार पातिव्रत्य की रक्षा करते हुए रहना क्या दूसरों के लिए संभव है ? इससे बढ़कर अब और क्या विपदा हो सकती है ? (पर) पाप क्या सचमुच धर्म को परास्त कर सकता है ?

इस प्रकार विविध रीति से विचार करता हुआ हनुमान् एक सुन्दर गगनोन्नत घने सुनहले वृक्ष की सघन शाखा पर छिपकर बैठा रहा। उसी समय पुष्प-पुंज से युक्त उस उद्यान में रावण भी आ पहुँचा। (१–७७)

●

अध्याय ४

निन्दन पटल

वह (रावण उस अशोक-वन में) आया। उसके दोनों ओर अति पुष्ट कंधे (बीस कंधे) शोभायमान थे, जो ऐसे लगते थे, मानों ऊँचे शिखरों से युक्त अनेक पर्वत एकत्र हों और जिनपर हीरक-जटित मकर-कुंडल डोल रहे थे। उसके प्रत्येक सिर पर प्रकाशमान

अनेक किरीट थे, जो सागर के जल को आलिंगित करनेवाले बाल-सूर्य के सदृश थे और जो अपने प्रकाश से अर्धरात्रि को भी दिन बना रहे थे।

उर्वशी (अप्सरा) कटि में बाँधने योग्य करवाल को लिये उसके साथ चली आ रही थी। मेनका तांबूल लिये आ रही थी। तिलोत्तमा जूते उठाये आ रही थी और अन्य अप्सराएँ उसे चारों ओर से घेरे आ रही थीं। (उसके शरीर के) कर्पूर-चन्दन-मिश्रित लेप तथा पुष्प-मालाओं की सुगंध (मिलकर), दंतों से शोभायमान पर्वत-सदृश महान् दिग्गजों की बिंदियों से युक्त सूँडों के रंध्रों को भर रही थी।

आठ सहस्र रमणियाँ पुनुगु[1] तेल के दीपों को अपने सुन्दर करों में उठाये आ रही थीं। उन (रमणियों) के शरीर पर उज्ज्वल दिखाई देनेवाले रत्नाभरणों से छिटकनेवाली कांति (वहाँ के) सारे अंधकार को मिटा रही थी। उनके चरणों में पहने हुए नूपुरों, पायलों तथा (कटि पर स्थित) मेखलाओं की ध्वनि के कारण ऐसा लगता था, मानों दुग्धसम हंसों की श्रेणियाँ चल रही हों और अपने मधुर शब्दों से दिशाओं को भर रही हों।

वह (रावण) यह विचार कर कि उसकी इच्छा (-पूर्त्ति) में बाधा उपस्थित हुई है, क्रुद्ध हो मधुर निद्रा से रहित हो गया। (यह देखकर) इंद्रादि देवता सोचने लगे कि क्या इसका यह क्रोध उस शीतल सुरभित उद्यान तक ही रुका रहेगा, जहाँ वह चंद्र-वदना अरुन्धती (पतिव्रता सीता बंदिनी बनकर) रहती है? अथवा न जाने वह (क्रोध) और कहाँतक फैलेगा? इस (रावण) का ठिकाना ही क्या है? — यह विचार करते हुए (देवता) निर्निमेष हो, श्वास को भी रोककर (भयभीत) खड़े रहे।

(रावण आ रहा था, मानों) नील पर्वत से जैसे कोई धवल दीर्घ जलधारा बह रही हो, उसी प्रकार उसका शुभ्र दुग्ध-समान क्षौम (रेशमी) उत्तरीय माला के रूप में सुशोभित हो रहा था, उसके पीत स्वर्णहारों की स्वच्छ छटा भूमि के लिए वस्त्र-समान समुद्र पर व्याप्त होनेवाली सहस्रकिरण (सूर्य) की कांति की समानता कर रही थी और उसके वक्ष पर स्थित यज्ञोपवीत सजल नील मेघ को भेदकर चमकनेवाली विद्युत् के समान चमक रहा था।

उसकी भुजाओं पर क्रम से शोभायमान हीरकमय और कमल के आकारवाले बाहु-वलयों की उज्ज्वल किरणें शब्दों के आश्रयीभूत गगनांगन में प्रतिदिन चमकनेवाले नक्षत्रों तथा ग्रहों का उपहास कर रही थीं। उसके दोनों पैरों में धारण किये गये शब्दायमान स्वर्ण-वलयों की महान् छटा, विशाल धरती को छूती हुई जा रही थी तथा उसके बंधुजनों के समीप फैलते रहनेवाले मंदहास नामक उज्ज्वल ज्योत्स्ना से उसके मुख-कमल, रात्रिकाल में भी विकसित थे।

उसके शरीर की कांति से विलक्षण दीखनेवाली तथा गाँठ एवं चुनन डालकर धारण की गई सुनहली धोती इस प्रकार दीखती थी, जैसे काले रंग के पर्वत के मध्य भाग पर बालातप छाया हुआ हो। उसकी अँगुलियों पर (पहनी हुई) विद्युत् के जैसे

---

१. पुनुगु—एक वन्य मृग के शरीर से निकलनेवाला सुगंधित तेल। —अनु०

प्रकाश देनेवाली, पीत-स्वर्ण की बनी, वत्तुलाकार मुद्रिकाओं में खचित उज्ज्वल रत्नों की कांति अत्यंत प्रकाशमान पुष्पों से भरे विशाल कल्पवन के समान शोभायमान थी।

उसके स्वर्णमय विजयहार के धवल मोती, युगांत में अकेले खड़े रहनेवाले दीर्घ स्वर्ण-पर्वत (मेरु) पर दिखाई पड़नेवाले ग्रह-नक्षत्रों की समता करते थे। (उसके) चमकनेवाले दस किरीट ऐसा प्रकाश फैलाते थे, मानो उन्नत बारह उष्णकिरण (सूर्य) में से, दो को छोड़कर शेष (दस) सूर्य उदयगिरि पर एक साथ उदित हुए हों।

दिशाओं की रक्षा करनेवाले महान् गज, जो अपने दृढ दंत-युगों के (रावण के साथ संघर्ष में) टूट जाने से धरती पर अपमान वहन करते हुए रहते थे और जिनका मदजल मयूर-चरण के आकार में (अव्यवस्थित क्रम से) बहता था, (अब उस रावण को आते हुए देखकर) उसी प्रकार भय से व्याकुल हो उठे, जिस प्रकार कैलास (पर्वत)-सदृश पुष्ट कंधोंवाले हिरण्यकशिपु के उत्तम वरों को निस्सार बना देनेवाले कराल दंतविशिष्ट सिंह (नरसिंह) के, पद-चिह्नों को अपनी सूँड़ से छूनेवाला कोई बड़ा गज हो।[1]

मनोहर मीन-सदृश नयनोंवाली यक्ष-स्त्रियाँ, आलस्यहीन अप्सराएँ, विद्याधरों की रमणियाँ, नाग-जाति की सुंदरियाँ, सिद्ध-स्त्रियाँ, राक्षसियाँ आदि एवं कुंकुमांचित मुकुलित स्तनों, बिंब-सदृश अधरों तथा कोकिल को लज्जित करनेवाली मधुर वाणी से युक्त युवतियों का समाज, उन्नत पर्वत को घेरे रहनेवाले मयूरों के समान, रावण को घेरकर चला आ रहा था।

युवतियों का कंठनाद छिद्रोंवाली वंशी की ध्वनि के साथ एकरस होकर ध्वनित हो रहा था। किन्नरियों के द्वारा यथाविधि बजाये जानेवाली 'किंगरी' (वाद्यों) की ध्वनि, खँजरी और झाल की ध्वनि तथा माजंना-युक्त मर्दल (वाद्य) की ध्वनि—सब एक होकर नभ और धरती पर इस प्रकार व्याप्त हुई कि बाँबियों में रहनेवाले सर्प भी (उस संगीत का श्रवण करके) अमृत उगलने लगे।

(रावण के मार्ग के) चतुष्पथों पर, कल्पनातीत स्वर्ण और रत्न-निर्मित आभरणों को धारण किये हुऐ हरिणों के झुंड की समता करनेवाली, विद्युत्-कटि, रक्ताधरों, पीनस्तनों, पुष्ट बाँस-सदृश कंधों तथा रथ के मध्य-सदृश नितंबों से सुशोभित सुन्दरियाँ, चाँवर, पताका आदि गौरव-चिह्नों को उठाये हुए इस प्रकार चलीं, जिस प्रकार वर्षाकालीन अति श्याम मेघों को देखकर नर्त्तनशील मयूर आनंदित हो उठते हैं।

स्वर्ग-लोक की रमणियाँ, शास्त्रोक्त विधि से बजनेवाली वीणा से सप्त स्वरों का मधुर शब्द उत्पन्न करती हुई, मींड़ती हुई और इक्षुरस के समान (मधुर) गीतों को, छोटी लकड़ी से बजानेवाली डुग्गी, खँजरी, ताल के अनुकूल, मधुर रागों के साथ गाती हुई, विविध भंगिमाओं के साथ निर्दुष्ट रूप में उस (रावण) के समीप नृत्य करती हुई चली आ रही थीं।

उस समय, धवल चंद्र की किरणें छिटक पड़ीं, मानों अनंग के द्वारा प्रयुक्त अग्नि उगलनेवाले तीक्ष्ण बाणों ने (रावण के मन में) जो घाव उत्पन्न कर दिये थे, उनमें

---

१. सिंह से भयभीत होकर गज उसके चरण-चिह्नों को छूता हुआ चलता है।—अनु०

बरछे घुस रहे हों, मंदमारुत के द्वारा पुष्पों से बटोरकर लाये गये द्रवित मधु के बिन्दु इस प्रकार झर पड़े, मानों पिघले ताँबे की बूँदें झर रही हों।

(रावण के साथ चलनेवाली) उन रमणियों के बड़े-बड़े मनोहर स्तन उत्तरोत्तर इस प्रकार बढ़ते नजर आ रहे थे कि (दर्शकों को) लगता था, इनकी सूत्र-सम कटि अब टूटी, अब टूटी। उनपर उत्तरीय वस्त्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, जैसे वे दो लोटों को ढके हुए हों। वे मृदु मंदगति से चलती हुई, ताटंक तक फैली हुई अपनी कमल-सदृश आँखों से वंकिम दृष्टि फेंक रही थीं। रक्तकुमुद-सदृश उनके अधरों पर मंदहास खेल रहा था। उन रमणियों के मेघ-सदृश, विशाल और रक्त रेखाओं से युक्त नयन-कोरों (अपांगों) का पुंज (रावण के) वक्ष तथा भुजाओं पर फैलता रहता था।

सघन कल्पवृक्ष और नौ निधियाँ (अपने हाथों में) पुष्पमालाएँ, चंदन-रस, आभरण, उज्ज्वल सूक्ष्म वस्त्र, रत्न आदि लिये पीछे-पीछे आ रही थीं। धवल चामर इस भाँति डुल रहे थे, मानों श्वेत क्षीरसागर की तरंगें किसी काले पर्वत पर डोल रही हों। इसके सिर पर श्वेतच्छत्र शोभित हो रहा था, जो समुद्र से उठनेवाले कलंक-रहित पूर्ण चन्द्र के सदृश था।

जब-जब वह (रावण) अपने चरणों को बारी-बारी से उठाकर रखता था, तब-तब जलनिधि की परिधि से घिरे हुए (त्रिकूट) पर्वत पर स्थित लंका धँस जाती थी और चारों ओर के समुद्र की लहरें चारों दिशाओं में उमड़कर वह चलती थीं। विषदंतों से युक्त आदिशेष का सिर उसके पदभार से जब दब उठता था, तब वे अपने मुँहों को खोलते हुए पीडित हो उठते थे और समुद्रवसना भूमिदेवी भी अपनी पीठ के दबने से कराह उठती थी।

ताटका से भी दुगुने बलवाली, बड़े पर्वत को भी उठा सकनेवाली, वलयों से भूषित विशाल बाहुवाली और क्रोध उमड़ने पर विध्वंसक युद्ध करनेवाली राक्षसियाँ, खेटक, परसा, लौह-मुसल, त्रिशूल, अंकुश, लौह-कंटक, 'किडुडु' (आयुध-विशेष) स्वर्णमय करवाल, बरछे, धनुष, कुलिश इत्यादि आयुध सिरों पर उठाये चली आ रही थीं।

उस (रावण) का निःश्वास अग्नि-ज्वाला को फैलाता हुआ आगे-आगे बढ़ता आ रहा था, जिससे विकसित पल्लव, अंकुर, पुष्प, पत्र, टहनियाँ आदि से मनोहर तथा स्वर्णसम ऊँचे वृक्षों से शोभित वह उद्यान, चारों ओर से झुलस जाता था। लक्ष्मी (सीता) के स्थान को जानते हुए भी, वह रावण भ्रांतचित्त होकर, अनुपम माणिक्य को खोये हुए दीर्घ-दंत और अनेक सिरोंवाले सर्प के समान, स्थान-स्थान पर भटक रहा था।

उस अत्यंत बलवान् राक्षसराज को इस प्रकार आते हुए, उस अंजनि-पुत्र ने देखा, जो वहाँ के दृश्यों को देखता हुआ बैठा था और अपने कर्त्तव्य का ठीक विचार करके, यह सोचता हुआ कि अभी इस (रावण) का कपट-कार्य और उसके बाद का परिणाम सब स्पष्ट हो जायगा, वीर-वलय से भूषित श्रीराम के महिमामय नाम का स्मरण करता हुआ वहाँ से उठा और छिपकर खड़ा हो गया।

उस समय अप्सराओं का समाज तथा अन्य स्त्रियाँ दूर हटकर खड़ी हो गईं।

रावण वहाँ आ पहुँचा, जहाँ स्त्रीकुल-दीप-सदृश वह (सीता) थीं। तब वह देवी भयभीत हो, काँपती हुई गलित-प्राण-सी हो गई और उस हरिणी के समान सिकुड़ गई, जिसे खाने के लिए अतिबलिष्ठ, तीक्ष्ण कोपयुक्त तथा धूम उगलते हुए नयनोंवाला व्याघ्र आ गया हो।

(भय से) थरथराकर विकल प्राण होनेवाली देवी को और काम-मोह से शिथिलप्राण होनेवाले रावण को अपने निर्दोष नयनों के सम्मुख (हनुमान् ने) देखा और दुःख से पीडित और चिन्तित हुआ।

जानकी देवी की जय हो! राघव की जय हो! चारों वेदों की जय हो। वेदज्ञों की जय हो! सद्धर्मों की जय हो! प्रतियुग में नव-नव यश से युक्त होनेवाले उस (हनुमान्) ने हृदय से जय की कामना की।

भयंकर विष को अमृत मानकर उसे चाहनेवाले रावण ने उस स्थान पर पहुँचकर (सीता) देवी के प्रति कहा—हे दुखती कटिवाली कोयल! कहो, कब तुम मुझपर दया करनेवाली हो?

वह रावण, जिसने (इसके पूर्व) अपने इष्टदेव शिव से पराजित होकर भी, अपना गर्व थोड़ा भी कम न किया था (अर्थात्, अपने को परास्त करनेवाले देवता के सम्मुख भी नहीं झुका था), अब काम-वासना और लज्जा (सीता के सामने शिर झुकाकर प्रार्थना करने के कारण उत्पन्न) दोनों से व्याकुल होता हुआ मन में बड़े संकोच को छिपाकर यह वचन कहने लगा—

हे ताटंक तक फैलकर क्रूरता करनेवाले अरुण नयनोंवाली! अबतक कितने ही दिन एक-एक करके व्यतीत हो गये। कल भी इसी प्रकार व्यतीत हो जायगा। मेरे प्रति तुम जो (व्यवहार) करती हो, वह इस प्रकार का है। क्या तुम मेरे प्राणों को हरने के पश्चात् ही (मुझसे) मिलनेवाली हो?

हे तिलक[1] (समान)! मैं तीनों लोकों पर एक समान शासन करनेवाला हूँ। अनन्त विभूतियों से युक्त इस राज्य में मेरा जो शासनचक्र चलता है, उसमें तुम्हारे प्रेम के कारण, अनंग के द्वारा उत्पन्न किये गये कलह के अतिरिक्त क्या अन्य कोई ऐसा कार्य भी है, जो मुझे इस प्रकार अपमानित करता है? (अर्थात्, मेरा अन्य कोई कार्य इस प्रकार मुझे नीचा नहीं दिखाता, जितना कि तुम्हारे प्रेम के कारण उत्पन्न अपमान।)

हे पुष्पालंकृत दीर्घ केशों से युक्त, स्वर्णमय पल्लव-सदृश (रमणी)! कीर्त्ति-युक्त (मेरे) ऐश्वर्य की तुमने उपेक्षा की है। यदि तुम्हारा वह प्रिय प्राणनाथ मर न जाये (जीवित ही रहे) और वनवास (की अवधि) को भी पूरा कर दे, तो भी उसके पश्चात् का जो जीवन होगा, वह मनुष्य-जीवन ही तो होगा? (अर्थात्, मनुष्यों का जीवन अत्यंत अधम होता है)।

हे कंचुक में न समानेवाले स्तनों से युक्त (सुन्दरी)! बड़ी तपस्या करनेवाले ऋषि और शास्त्रीय सूक्ष्म विषयों का गंभीर अध्ययन करनेवाले महान् पुरुष जिस फल को प्राप्त करते हैं, यदि उस (फल) के बारे में विचार करके देखोगी, तो जानोगी कि वह

१. दक्षिण में सुन्दरी स्त्रियों को 'तिलक' कहकर संबोधन करने की प्रथा है। —अनु०

(फल) उन देवों के साथ निवास करना ही तो है, जो मेरी आज्ञा को सिर पर धारण करनेवाले हैं।

धरती की समस्त संपत्तियों में सबसे श्रेष्ठ संपत्ति—शिशु की तोतली वाणी, वीणा का नाद, धैवत स्वर, पक्षी के कलरव आदि को भी परास्त करनेवाली मधुर बोली से संपन्न (हे सुन्दरी)! ज्ञानी चतुमुख ने तुम्हारी यह जो अनुपम मूर्त्ति निर्मित की है, उसमें मन की दयालुता और बिजली के समान कटि का अभाव ही रह गया है।

जीवन के दिन और यौवन (व्यतीत होने पर) फिर लौटकर नहीं आते। ये धीरे-धीरे विनष्ट हो जानेवाले हैं। अगर (भोग का) अनुभव करने के ये दिन व्यर्थ ही बीत जायेंगे, तो सुख का जीवन कब मिलेगा? क्या तुम बड़े दुःख में ही पड़कर डूब जाना चाहती हो?

तुम (दुःख से) म्लान नयनोंवाली का मन यदि प्रतिकूल ही रहनेवाला है (अर्थात्, मेरे अनुकूल नहीं होनेवाला है), तो उससे मेरे प्राणों का भी विनाश हो जाय, तो वह भी ठीक ही है। (मेरे अतिरिक्त) और कौन ऐसा पुरुष रह जायगा, जो तुम्हारे सौंदर्य के अनुरूप, तुम्हारे साथ सहवास करने योग्य, अच्छे गुणों तथा प्रेम से युक्त हो?

स्त्रीत्व, (तथा उसके) अनुरूप सौंदर्य, अविचल धृति आदि सद्गुणों से पूर्ण रहने पर भी क्या जनक महाराज के वंश में उदारता, कृपायुक्त दानशीलता—(ये गुण) विनष्ट हो गये हैं?

हे शुकी! क्या मरते समय उसने जो कंठ-ध्वनि (हा सीते! हा लक्ष्मण! आदि) की थी, उस सच्ची कंठ-ध्वनि को सुनकर भी उस (राम) को फिर सजीव देखने की इच्छा करती हो? सत्य बात यह है कि, जब अत्यधिक पुण्य प्राप्त होता हो, तब हमें उसका तिरस्कार करना उचित नहीं है।

यदि मेरे प्राण (तुम्हारे विरह से) मिट जायेंगे, तो अविलंब ही मेरी सारी संपत्ति भी विनष्ट हो जायगी। तुम अनुपम सुन्दरी के आ जाने से (रावण की संपत्ति की) अभिवृद्धि हुई—इस प्रकार की अपनी कीर्त्ति को मिटाकर उसके विरुद्ध (सीता के आगमन से रावण की संपत्ति मिट गई—इस) अपयश को क्यों पाना चाहती हो?

हे उज्ज्वल आभूषणवती! देव और अप्सराएँ सब तुम्हारे रक्त-चरणों की सेवा में निरत हो जायेंगे। त्रिभुवनों का अविनश्वर अधिकार तुम्हारे पास आ पहुँचा है, जिसका तिरस्कार तुम कर रही हो। तुम्हारे सदृश मूढ और कौन होगा?

(अपने) अपयश का थोड़ा भी विचार न करनेवाले उस (रावण) ने, यह कहकर कि—'मैं, तीनों लोकों को अपना दास बना लेने की शक्ति से युक्त हूँ। तुम मुझे अपना दास स्वीकार करो'—अपने सिर पर हाथों को जोड़े हुए धरती पर गिरकर नमस्कार किया।

तप्त शलाकाओं के जैसे इन वचनों के कानों में प्रवेश करने के पूर्व ही सीता देवी के कान जल गये। मन विचलित हो गया। दोनों नयनों से लाल रक्त बहने लगा। तब उन्होंने अपने प्राणों का भी भय किये बिना, स्त्री के लिए उपयुक्त न होनेवाले, अति कर्कश वचन (रावण के प्रति) कहे—

(सीता ने रावण को तृण मानकर कहा —) हे तृण ! तुम्हारे कहे हुए कठोर वचन, गृहस्थी में जीवन वितानेवाली स्त्रियों के योग्य नहीं हैं। संसार में मन को शिला-तुल्य बनानेवाला पातिव्रत्य के अतिरिक्त और कोई गुण क्या तुमने देखा है ? मैं जो कहती हूँ, उसे ठीक से समझ लो— मल्लयुद्ध में शत्रु को मार सकनेवाली पुष्ट भुजाओं से युक्त, छली (रावण) के मन को बदल देने के लिए (सीता) कोप से भरे कठोर वचन कहने लगी।

हे बुद्धिहीन ! मेरु-पर्वत को छेदना हो, नभ को चीरकर उस पार जाना हो, चतुर्दश लोकों को विध्वस्त करना हो, तो भी (यह सब करने के लिए) आर्य (राम) के बाण समर्थ हैं, यह जानकर भी तू अनुचित वचन कह रहा है, क्या तू अपने दसों सिर गिरवाना चाहता है ?

तू (राम से) भयभीत था, इसीलिए उस समय, एक माया-मृग को भेजकर, राम को अनुपस्थित पाकर, अपनी माया से छिपकर आया। अब जीवित रहने की इच्छा करता है, तो मुझे मुक्त कर दे, तेरे वंश के लिए विष बने हुऐ (उन राम) के सम्मुख आ जाने पर क्या तेरी आँखें (उनको) देख भी सकेंगी ? (अर्थात् , तू उनको आँख उठाकर देख भी नहीं सकेगा, तू इतना डरपोक है ।)

मेरे हरण के समय जटायु से भूमि पर गिराये गये (हे तृण) ! तेरे दसों सिर और बीसों भुजाएँ उन धनुर्विद्या में निपुण (राम) के लिए, उनके बाणों का प्रयोग करने की क्रीडा के लिए उचित तथा विचित्र प्रकार की लक्ष्म-वस्तु बनेंगी, बस इतना ही है। इसके अतिरिक्त क्या तू युद्ध में उनके सम्मुख खड़े रहने की भी शक्ति रखता है ?

उस दिन, एक पक्षी (जटायु) से तू हार गया था, तब उमड़ती गंगा को सिर पर धारण करनेवाले शिव) के दिये हुए खड्ग की सहायता से तूने उस पक्षी पर विजय पाई। यदि उस खड्ग का बल नहीं होता; तो उसी दिन तू मर गया होता। तप के फलस्वरूप प्राप्त जीवन, वर इत्यादि तेरे कथित सब गुण यम से बचने के लिए ही तो तूने प्राप्त किये हैं, क्या ये सब गुण वीर (राम) के शरों से बचने के लिए भी कुछ उपयोगी हो सकते हैं ? (अर्थात् , तेरे सब वर भी तुझे राम से नहीं बचा सकते)।

तेरे प्राप्त किये हुए वर, तेरा जीवन, तेरी शक्ति, तेरी अन्य विद्याएँ तथा कमलासन ब्रह्मा) आदि देवों की (वरदान) वाणी—ये सब, ज्यों ही राम धनुष पर शर चढ़ाकर संधान करेंगे, त्योंही टूटकर विनष्ट हो जायेंगे, यह सत्य है। दीप के सम्मुख क्या अंधकार टिक सकता है ?

कैलास को जब तूने उठाया था, तब तुझे अपने अरुण-चरण की उँगली से (दबाकर) परास्त करनेवाले उन शिव ने जिस मेरु को त्रिपुरदाह के समय अपना शरासन बनाया था, वह मेरे प्राणनायक के बल का वहन करने की शक्ति न रखने से उस दिन (वह धनुष) टूटकर गिर पड़ा था, तब उससे उत्पन्न होकर सर्वत्र फैली हुई भयंकर ध्वनि को तूने कदाचित् सुना नहीं।

तू जो यह वीर-वचन कहता हुआ यहाँ फिर रहा है कि मैंने कैलास को

उखाड़कर अष्टदिग्गजों को उनके स्थानों से विचलित कर दिया था,[1] किन्तु जब मेरे छोटे देवर धनुष लिये खड़े थे, तब उनके निकट नहीं आया ! इतने पर भी तू क्या अपना सिर उठाने योग्य है और फिर स्त्रियों के चरणों पर भी तो गिरनेवाला तू ही है न ?

हे मूर्ख ! जब मेरे प्रभु यह जानकर कि तेरे छिपने का स्थान यही है, यहाँ आयेंगे, तब क्या इस समुद्र और इस लंका नगर के विध्वस्त होने से ही उनका क्रोध शांत होगा ? या प्रलयकालीन अग्नि को भी दग्ध कर देनेवाले तेरे प्राणों के साथ ही वह क्रोध शांत होगा ? (अर्थात् , तेरे प्राणों को जलाने के बाद भी वह क्रोध शांत नहीं होगा)।

या (वह क्रोध) निष्ठुर क्रोधवाले राक्षसों को मिटाकर ही शांत होगा। तेरे इस वंचक कृत्य के परिणामस्वरूप, उन उदार (राम) के क्रोध से समस्त लोक ही विध्वस्त हो जायगा। —यही मेरा भय है, धर्मदेव ही इसके साक्षी हैं।

इस सुन्दर धरती के निवासियों को त्रस्त करते हुए जीनेवाले, हे निष्ठुर। हे मूर्ख ! क्या तूने ऐसे नीच कृत्यों को छोड़कर अच्छे कार्य किये ही नहीं ? क्या तूने मेरे प्रभु को भी अरुणनयन (विष्णु), चतुर्मुख (ब्रह्मा) और शिव के समान ही समझ रखा है ?[2]

यदि (अनन्त राजा) एक मनुष्य (अर्थात् , परशुराम) से परास्त हो गये और यदि वह मनुष्य (परशुराम) भी (मेरे प्रभु के समीप) शक्ति-हीन हो गया, तो तू सोच सकता है कि मधुपूर्ण पुष्पधारी मेरे प्रभु के गुण कैसे हैं ?

(अपने कृत) अन्याय के कारण अनुपम ऐश्वर्य को खोकर (निकट भविष्य में) मिट जानेवाले हे तृण ! ये दो ही तो हैं—यदि ऐसी उपेक्षा तू करता है, तो यह सोच कि युगांत में लोकों का विनाश करनेवाला एक ही तो होता है।[3] जब युद्ध होगा, तब तू समझेगा कि मेरा वचन सत्य ही है।

हिरण्याक्ष और उसका अनुज (हिरण्यकशिपु) इन दोनों राक्षसों ने, जिनकी भुजाओं पर युद्ध करते रहने से, धनुष की डोरी के निशान पड़ गये थे तथा उनके जैसे अन्य राक्षस भी, यद्यपि वे धर्म के सन्मार्ग से भटक गये थे, तब भी, पर-नारी के विषय में सीमा का अतिक्रमण नहीं किया था, फिर भी वे मृत्यु को प्राप्त हुए। (तू तो उनसे भी बड़ा दुष्ट है, अतः अवश्य ही दारुण मृत्यु को प्राप्त होगा)।

(तू ही विचार कर देख—) पापों से मुक्त होकर रहनेवाले कमलासन प्रभृति देवता, जो इन्द्रियों के मार्ग में नहीं जाते, स्थिर (अमर) हैं। हे राक्षस ! (जो इन्द्रियों के वशीभूत होकर चलते हैं।) यदि तेरे पास इतना ऐश्वर्य एकत्र हुआ है, जिससे सब लोक-

---

१. ऐसी कथा है कि त्रिपुर-दाह के समय शिव ने मेरु को धनुष बनाकर और विष्णु को शर बनाकर उसपर चढ़ाया था। किन्तु, विष्णु का बोझ न वहन करने के कारण वह धनुष टूट गया था।—अनु०

२. यह कथा है कि रावण ने त्रिमूर्त्तियों को पराजित कर दिया था। महाकवि कंबन राम को त्रिमूर्त्तियों से भी श्रेष्ठ समझता है; क्योंकि राम ने रावण को पराजित किया था।—अनु०

३. ध्वनि यह है कि राम और लक्ष्मण दो ही हैं। ये क्या कर सकते हैं?—ऐसा तुम्हारा सोचना ठीक नहीं; क्योंकि प्रलयकाल में समस्त लोकों का नाश करनेवाला तो एक ही होता है।—अनु०

वासी तेरी आज्ञा को मानते हैं, तो सोचकर देख , यह क्या तेरे पापों का फल है, या तेरे पूर्व-कृत धर्म का ही परिणाम है ?

इस विशाल ऐश्वर्य को तुझे देनेवाले (शिव) यदि वैसी संपत्ति के स्वामी बने हैं, तो उसका कारण, उनका निरंतर तथा महान् तप करते रहना ही तो है। हे मूर्ख ! तेरी अनुपम संपत्ति मिट जायेगी। तू अपने बंधुजन-सहित विनष्ट हो जायगा। इसके लिए ही तू धर्म के मार्ग पर न चलकर, उसके विरुद्ध चल रहा है।

वीरता से च्युत न होनेवाले, दुर्विजय बलवान् भी धर्म-भ्रष्ट तथा प्राणियों के प्रति निष्करुण होने पर विनष्ट हो जाते हैं। अनासक्त रहकर, अपने महान् शत्रुत्रय (काम, क्रोध और मोह) को जो मिटा देते हैं, वे ही तो जन्म-मरण के पाश से मुक्त होते हैं ? नहीं तो और कौन मुक्त होते हैं ?—तू ही कह।

जब (रामचन्द्र ने) अरण्य में प्रवेश किया था, तब मधुर तमिल-भाषा की वृद्धि करनेवाले मुनि (अगस्त्य) ने तथा दोषरहित अन्य मुनियों ने (राम से) यह प्रार्थना की थी कि हे प्रभु ! नीचकर्म करनेवाले राक्षसों के उपद्रव सहने में हम समर्थ नहीं हैं। उनका निग्रह करने की कृपा कीजिए। तुम्हारे द्वारा अब राक्षसों का नाश होना निश्चित है।—यह मैंने स्वयं सुना था। तू ने भी इस प्रार्थना (की पूर्त्ति) के उपयुक्त पापकृत्य ही किया है।

ऋषियों ने तेरे संबंध में उसे और इस राक्षस-सेना के प्रभाव के संबंध में जो कुछ कहा था, उन सबको सुनने के पश्चात् भी (राम ने) तेरी बहन की नाक आदि अंगों को काटा था तथा तेरे भाई खरदूषण आदि की भुजाओं और चरणों को छिन्न-भिन्न कर दिया था—यह बात तू क्यों नहीं सोचता ?

सन्मार्ग को नहीं जाननेवाले, हे नीच ! तेरी बीसों बाहुओं को पकड़कर, तुझे, यों आहत करके, जिससे तेरे मुखों से रक्त बहने लगा था, बड़े कारागार में बंदी बनानेवाले, सहस्र विशाल बाहुओंवाले वीर (कार्त्तवीर्य) की वज्र-सम भुजाओं को जिस (परशुराम) ने काटकर फेंका था, उसके (राम के) सम्मुख शक्तिहीन हो जाने की बात तू क्या नहीं जानता है ?

काटकर मारनेवाला सर्प भी मंत्र को सुनकर दब जाता है, किन्तु, तू (मंत्र का उच्चारण करनेवाले के अबतक न आने से धृष्ट बना हुआ है) आनंदित हो मनमाना करता चला जा रहा है। यह कार्य उचित है, यह उचित नहीं है—यों युक्तिपूर्ण कारणों के साथ तुझे सीख देनेवाले और तुझे धिक्कार देकर कहनेवाले कोई नहीं हैं। तेरे पास जो रहते हैं, वे तेरे विचारों के अनुकूल स्वयं भी चलकर तुझे मिटा देनेवाले हैं। तो अब तेरे विनाश को छोड़कर और क्या परिणाम निकलेगा ?

इस प्रकार, धर्म-मार्ग को (सीता देवी के मुँह से) सुनते ही उस (रावण) के बीसों नयन बिजली के समान चमक उठे। क्रोध को सूचित करनेवाले अपने दसों खुले मुखों से इस भाँति धमकी देता हुआ चिल्ला उठा कि पर्वत भी हिल उठे। अब क्या कहना है ? उसका क्रोधी स्वभाव, उसके काम की उग्रता को भी लाँघ गया (अर्थात्, उसका क्रोध उसके काम को दबाकर अत्युग्र हो उठा)।

उसके मन में लज्जा का भाव उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। (क्रोध के कारण फूल उठने से) उसकी भुजाएँ सब दिशाओं को आच्छादित कर फैल गईं। उसकी आँखों से अग्नि-ज्वाला निकलने लगी। क्रोध से वह चिल्ला उठा कि इसको चीरकर खा जाऊँगा। (उसके मन में) कोप और काम—दोनों भाव, बारी-बारी से उमड़ने लगे। अतः, वह (सीता के पास तक) जाऊँ या न जाऊँ, यों आगा-पीछा करता हुआ खड़ा रहा।

उस समय, हनुमान् ने मन में यह निश्चय कर लिया कि अरुंधती-समान पतिव्रता, मेरे स्वामी की देवी के प्रति मेरे सम्मुख ही, इस प्रकार के दुर्वचन कहनेवाले इस नीच को, इसके अपने हाथों से (सीता देवी को) छूने के पूर्व ही, मैं अपने पैरों से कुचलकर फिर आगे का कार्य करूँगा।

फिर, यह भी सोचा कि अकेले खड़े रहनेवाले इस (रावण) के दसों सिरों को तीव्र गति से आहत करके गिरा दूँगा। शीतल समुद्र में लंका को धँसा दूँगा। और फिर, इन पवित्र महातपस्विनी (सीता देवी) को लेकर आनंद के साथ लौट जाऊँगा—यों सोंचता और हाथ मलता हुआ वह खड़ा रहा।

उस समय, करवाल-सदृश उस राक्षस का, ब्रह्मांड को मिटा देने के लिए उमड़ी हुई प्रलयाग्नि के समान उठा हुआ क्रोध, अति तीव्र काम-रूपी जल-प्रवाह से शांत हुआ, जिससे वह पूर्व-दशा में पहुँचकर इस प्रकार के वचन कह उठा—

तुम्हें मारने के लिए मेरे मन में क्रोध उमड़ पड़ा है। किंतु, मैं तुम्हें अब मार नहीं सकता हूँ। मेरे संबंध में तुमने जो वचन कहे, वे यथार्थ ही हैं। उन सब (घटनाओं) के कारण तुम्हें बताता हूँ, अब इस संसार में मेरे लिए 'यह कार्य संभव है, यह संभव नहीं है'—ऐसा कुछ नहीं? पूर्वकाल में मेरी जय और हार—दोनों तमाशा ही तो थे।

मेरी एक बात सुनो—तुम्हारे प्राण जैसे नायक को यदि मारकर मैं तुम्हें ले आता, तो तुम अपने प्राण छोड़ देती, जिससे काल मेरे प्राणों को भी हर ले जाता (अर्थात्, मैं भी जीवित नहीं रहता।) इसी विचार से मैं तुम्हें छल से हर लाया। युद्ध में मेरे सामने खड़ा रह सकनेवाला कौन है?

मधु-समान मधुर वाणीवाली! (मायामृग को) यथार्थ हरिण समझकर उसके पीछे गये हुए वे मनुष्य (राम-लक्ष्मण) लौटकर जब यह जानेंगे कि (तुम्हारा हरण करनेवाला) मैं रावण ही हूँ, तो वे तुम्हें छुड़ाने के लिए आयेंगे ही नहीं। यह सोचते हुए कि वे तुम्हें मुक्त करने के लिए आयेंगे (उनकी) प्रतीक्षा करना अज्ञता है। देवों में ही कौन ऐसा है, जो यह जानकर कि (तुम्हें हरण करनेवाला) उनका प्रभु मैं ही हूँ, पीछे न हटकर उसके विपरीत (आगे बढ़ने का) काम कर सके।

हे कोमल कंधोंवाली! तुम्हारे कथनानुसार मुझे पराजित करनेवाले भले ही हों। वे अविनश्वर, सर्वश्रेष्ठ त्रिमूर्त्ति भी हों। फिर भी, त्रिलोकों के निवासी यह भली भाँति जानते हैं कि चिरकाल से ही इन्द्र मेरी सेवा करता रहा है, अतएव असमान पराक्रमी मैं ही तो हूँ। मेरी इस महिमा का और कोई प्रमाण देने की आवश्यकता ही क्या है?

हे मधुरभाषिणी ! हे प्रतिमा-समान सुन्दरी ! त्रिभूतियों तथा देवों को पराभूत करनेवाली जो प्रभूत विजय मुझे प्राप्त है, उसको भी मैं तुम्हारे लिए कलंकित होने दे रहा हूँ। व्यर्थ तपस्यावाले उन बलहीन मनुष्यों को (अर्थात्, राम-लक्ष्मण को) मैं नहीं मारूँगा। तुम देखो, मैं उन दोनों को यहाँ ले आऊँगा और उनसे अपनी सेवा कराऊँगा।

हे दोषहीन ! क्षुद्रबल, नीच कर्म तथा अधमता से युक्त उन छोटे वीरों (राम-लक्ष्मण) के प्रति, परिपक्व महाबल से संपन्न मुझमें वीरोचित कोप यद्यपि उत्पन्न नहीं हो रहा है। फिर भी तुम देखो, मैं आज ही जाकर उन दोनों को कैसे एक ही हाथ से पकड़कर ले आता हूँ।

हे पीले (स्वर्ण के) कंकणों को धारण करनेवाली ! वे (राम-लक्ष्मण) यद्यपि (मेरे भोजन के योग्य) मनुष्य ही हैं, तो भी उन्होंने तुम्हें यहाँ लाकर मुझे देने का जो उपकार किया है, उसका विचार करने पर वे वध के योग्य नहीं हैं। यदि तुम उनका विनाश ही चाहती हो, (या) मेरे आगे के कार्यों का विचार करके यदि तुम्हें वही उचित लगता हो, तो मैं वैसा ही करूँगा (अर्थात्, राम-लक्ष्मण को मार दूँगा)। और देखो—

हे तीक्ष्ण आयुवाली ! तुमने मेरे पराक्रम को ठीक-ठीक नहीं आँका है। युगांत-कालीन अग्नि के समान, गहरे जल से समृद्ध अयोध्या पहुँचकर, वहाँ भरत आदि के प्राणों का हरण करूँगा। प्रवहमाण जलधाराओं से युक्त मिथिला के निवासियों का भी निर्मूलन करूँगा और अनायास ही लौटकर तुम्हारे प्राणों को भी हरूँगा।

इस प्रकार के वचन कहकर उसने अति क्रुद्ध हो, अपने उज्ज्वल कांतियुक्त करवाल की ओर देखा। फिर (सीता के प्रति) कहा—'तुम्हारे प्राणों की हानि करने का दिन भी अभी दो मासों में आ जायेगा। अतः, तुम पर घटनेवाली जो (विपदा) है, उसके विषय में सोचो।' और, आगे फिर कहा—'बुद्धिमानों की भाँति ही (अपने कर्त्तव्य के संबंध में) विचार कर लो।'—यों कहता हुआ वह (रावण) कमल-समान अरुण रेखाओं से अंकित नयनोंवाली उन (देवी सीता) को अपने अन्तर में बिठाकर, उनको डरा-धमकाकर वहाँ से चला गया।

फिर, वह (वहाँ स्थित) हास-रहित, फटे हुए मुँहवाली एवं उग्र क्रोध से युक्त राक्षस-स्त्रियों से यह कहकर चला गया कि डराकर या समझा-बुझाकर, किसी भी उपाय से, उस लता-समान रमणी (सीता) को राजी करो और मेरे पास (वह समाचार लेकर) आओ। अन्यथा मैं तुम लोगों के लिए विष बन जाऊँगा।

राक्षस (रावण) चला गया। फिर, फुफकारनेवाले राहु के द्वारा ग्रस्त होकर उगले गये विशुद्ध, धवल, पूर्णचन्द्रमा के समान उन (सीता) देवी को, असंख्य, अति-निष्ठुर राक्षस-स्त्रियों ने एक साथ घेर लिया और अति क्रोध से भरकर बड़े कर्कश स्वरों में धमकाने लगीं। फिर, अपने मनमाने वचन कहने लगीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, परस्पर एक को पीछे हटाकर आगे बढ़ती हुई, अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालती हुई, उतावली हो उठीं और चमकनेवाले त्रिशूल, भाला आदि को ऊँचा उठाये, कड़ककर कहने लगीं—'इसे मारो-मारो, टुकड़े-टुकड़े करके पेट भर खाओ-खाओ।'

कुछ राक्षसियाँ कहने लगीं—विश्व के स्रष्टा चतुर्मुख के पुत्र (पुलस्त्य मुनि) के जो पुत्र (विश्रवा) हुए थे, उनका पुत्र (यह रावण) त्रिलोकप्रभु है। सहस्र शाखामय वेदों का ज्ञाता है। महान् ज्ञानी है। (इसने अपनी तपस्या से) कर्मों को जीत लिया है। यह तुम पर सच्चा प्रेम रखता है। इसके अतिरिक्त उसने कौन-सा क्षुद्र कार्य किया है? (अर्थात्, तुमपर अनुरक्त होना उसकी उदारता का ही सूचक है और उसने कोई नीच कार्य नहीं किया है।)

कुछ राक्षसियाँ कहने लगीं—हे स्त्रियों में कठोरहृदय! जैसे (किसी ने) घाव में लकड़ी घुसेड़ दी हो, उसी प्रकार तुमने (रावण के प्रति) कठोर वचन कहकर ऐसी हानि उत्पन्न कर दी है कि इस संसार के सब मनुष्य अपने-अपने वंश-सहित मिट जायेंगे और तुम्हारा शरीर भी विनष्ट हो जायगा। (तुम) निष्पक्ष दृष्टि से सत्य को नहीं देख रही हो।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ कहने लगीं—हे विवेकहीन! तुम ऐसी जनमी हो, जो अपने पतिगृह तथा अपने पितृगृह—दोनों में एक साथ ही धुआँधार आग को उछालकर फेंकनेवाली हो। (यदि हमारा कथन नहीं मानोगी, तो) अभी तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। अब तुम जीवित नहीं रह सकती हो। पहले से ही हम सब बातों को ठीक-ठीक (तुम्हें) जतला देते हैं।

मारने की धमकी देनेवाली उन राक्षसियों की निष्ठुरता से तनिक भी विचलित न होती हुई वह साध्वी, उनके—जो अपने नायक (रावण) की विजय को निश्चित मानती थीं और उन साध्वी (सीता) को खाने के लिए उतावली हो रही थीं—(भयानक) आकार को और अति निष्ठुर रावण की आज्ञा को अपने मन में सोचती हुई अपने सुन्दर नयनों से अश्रु बहाती हुई हँस पड़ी।

जब इस प्रकार की घटनाएँ हो रही थीं तब वहाँ खड़ी रहनेवाली (त्रिजटा) ने यह कहा—'हे माता! अपने स्वप्न के फल को पहले ही मैंने सुना दिया है। उसपर भी यदि आप व्यर्थ ही उतावली या व्याकुल होंगी, तो यह अनुचित ही है'[1] (यह कहकर सांत्वना देने लगी)। त्रिजटा के वचन को समझकर सब राक्षसियों ने (त्रिजटा से) कहा कि हे माँ! आपका कथन ठीक ही है।

अपने प्रभु (रावण) से त्रस्त होकर, कोई दूसरा विचार न रखनेवाली, निकट-स्थित पाप-समान वे राक्षसियाँ, उस त्रिजटा के कथन से शान्त होकर धमकी देना बंद करके (चुप) रह गईं। घने कुंतलोंवाली देवी भी किंचित् स्वस्थ-प्राण हुई। (१—८२)

●

---

१. त्रिजटा की उक्ति ऐसी है कि एक ओर वह सीता के प्रति सांत्वना प्रकट करती है और दूसरी ओर राक्षसियों के प्रति सावधानता। विशेष करके, त्रिजटा का दूसरा वाक्य सुनकर राक्षसियाँ शांत हो जाती हैं। मूल में यह पद्य कंबन की वचन-चातुरी का एक सुन्दर उदाहरण है।—अनु०

अध्याय ५

स्वरूप-प्रकटन पटल

हनुमान् सोचने लगा—(सीता देवी के) दर्शन करने का यही उपयुक्त समय है, लेकिन अति कठोर और रखवाली करने में सतर्क चित्तवाली (राक्षसियाँ) अभी सोई नहीं हैं। मेरे केवल चाहने से ही ये सोनेवाली भी नहीं हैं। यह सोचकर हनुमान् ने ऐसी माया फैलाई की सब राक्षसियाँ मूर्च्छित होकर मृतवत् हो गईं।

अनेक दिनों से दुःखित देवी, एक दिन भी न सोनेवाली राक्षसियों को भी अब निद्रित देखकर, और भी असह्य वेदना से पीडित हो उठीं। वे उस कष्ट से मुक्त होने का कोई उपाय न सोच पाती थीं। उनका मन टूट गया और भय-विकंपित हो उठा। उस समय (श्रीराम के प्रति) उत्तरोत्तर उमड़ते हुए प्रेम के कारण ये वचन कहती हुई शोक से उद्विग्न हुईं—

हे बलवान् भाग्य ! कालमेघ, विशाल समुद्र और गाढ अंधकार (के रंग) की समता करनेवाले प्रभु (रामचंद्र), एकाकी होकर मुझ कष्ट भोगनेवाली के प्राणों को क्या पुनर्जीवन प्रदान करेंगे (अर्थात्, क्या मेरे प्राणों की रक्षा करेंगे)? क्या वज्रध्वनि-सदृश (उनके) भयंकर धनुष की प्रत्यंचा-ध्वनि यहाँ सुनाई पड़ेगी? तू कह !

हे मूढ चन्द्र ! हे उज्ज्वल चन्द्रिके ! हे व्यतीत न होनेवाली रात्रि ! हे बढ़ते रहनेवाले अक्षीण अंधकार ! तुम सब क्रुद्ध होकर मुझको ही सता रहे हो। (मेरी) चिंता न करनेवाले उस धनुर्धारी (राम) को क्या तुम किंचित् भी नहीं सताते ?

हे लताओ ! अग्नि बिखेरते हुए चलनेवाले उत्तर पवन को साथ लेकर तुम मुझे सता रही हो। क्या तुम्हें मेरे प्राणों की दशा विदित नहीं है? अपनी देह-कांति से समुद्र की समता करनेवाले उन (राम) के साथ, वन में चिरकाल से रहनेवाली तुम, क्या उन्हें (मेरी दशा को) नहीं जताओगी ?

हे अक्षीण पराक्रमी महावीर नारायण ! हे अनुपम प्रभु ! एक सहस्र करोड़ कष्टों का अनुभव करती हुई भी मैं, उनकी उदारता का स्मरण करके, यही सोचती हुई कि वे बिना आये नहीं रहेंगे, अबतक जीवित हूँ।

(सीता देवी राम का संबोधन कर कहती हैं वन के लिए प्रस्थान करते समय) तुमने (मुझसे) कहा था कि 'वृक्षों से भरे अरण्य में मेरे साथ चलने की बात तुम कह रही हो—यह विचार तुम छोड़ दो। मैं कुछ ही दिनों में लौट आऊँगा। इसी महान् (अयोध्या) नगरी में तुम रहो।' तुम्हारी करुणा-पूर्ण आज्ञा इस प्रकार की थी, तो अब एकाकी होकर रहनेवाली मुझ अबला के अनाथ प्राणों को क्या तुम कष्ट भोगने दोगे ?

यत्न से रक्षित हे मेरे विवेक ! मेरे प्राण ! चिरकाल से तुम निर्लज्ज होकर मुझे छोड़े बिना मेरे साथ ही भटक रहे हो। अपने अनुपम स्वामी को जबतक न देखूँ, तबतक

तुम कदाचित् मुझे छोड़कर नहीं जाओगे। किन्तु, क्या इस प्रकार (स्वामी से बिछुड़कर भी सजीव रहने के कारण) प्राप्त होनेवाले अपयश का भागी बनकर रहना मेरे लिए उचित है ?

किसी भी प्रकार से न मरनेवाले किरीटधारी चक्रवर्ती (दशरथ) मर गये। सप्त लोकों में विकट विपदाएँ छा गईं। ऐसे विपत्तियों को उत्पन्न करते हुए, अन्त-रहित मार्ग पर चलकर वन में प्रविष्ट होनेवाले वे निष्ठुर (राम) आयेंगे (और मेरी रक्षा करेंगे)—यह सोचकर संतुष्ट रहना क्या (मेरे लिए) उचित है ?

विद्युत्-सम कटि एवं उज्ज्वल आभरणों से युक्त वे (देवी) इस प्रकार कहकर निःश्वास भरती हुई वहीं जड़वत् रह गईं और शोक से व्याकुल हो उठीं। फिर सोचने लगीं—मेरे प्राण जबतक रहेंगे, तबतक विपदा भी (मेरे साथ) रहेगी। मेरे मरने पर ही (मेरे कष्ट निवृत्त होंगे और) मुझे यश मिलेगा।

शब्दायमान महान् वीर-वलयधारी (राम) को देखने की आशा से ही (सब कष्टों को) सहती हुई अपने प्राणों को रोककर मैं जीवित हूँ। तो भी) अनेक दिन राक्षसों के बड़े नगर में, बंदी बनकर रहने के कारण पवित्र गुणवाले वे राम क्या मेरा स्पर्श भी करेंगे ? (अर्थात्, मुझे कदाचित् वे नहीं अपनायेंगे।)

यह जानकर भी कि मैं पर-पुरुष की कामना का पात्र बन गई हूँ, मैं मरी नहीं। उन राक्षसों के बहुत प्रकार से कहे गये दुर्वचनों को सुनते हुए भी स्थिर रहनेवाले प्राणों को रखकर चिरकाल से जीवित हूँ। (अतः) मुझसे भी अधिक (कठोर) राक्षसी और कौन हो सकती है ?

निरन्तर लोगों में प्रचारित निन्दा का वहन करती हुई, (निश्चिंत हो) मैं सो रही हूँ। मेरी कुलीनता और लज्जाशीलता भी कैसी है ? उन नारियों में जिनका पातिव्रत्य कहानियों में प्रसिद्ध है, मेरे अतिरिक्त और कौन ऐसी है, जो गृहस्थ-जीवन के योग्य पति से वियुक्त होकर जीवित रही हो ?

'परगृह में गई हुई नारी को स्वीकार करना उचित नहीं है'—यह सोचकर मेरे प्राणनायक ने मुझे छोड़ दिया है। उधर वे दूसरों की निंदा का पात्र बने हैं, इधर मैं धर्म-रहित कार्य करती, व्यर्थ समय व्यतीत करती, कौन-सी भलाई की प्रतीक्षा करती हुई जीवित रह रही हूँ ?

जिस समय मैं इस घोर निंदा का पात्र बनी, उसी समय प्राण छोड़ देना मेरे लिए उचित था। (किन्तु) संसार के लोगों के उपमा-सहित बड़े अपयश-पूर्ण वचन कहने पर भी, अपनी महिमा खोकर, मेरा जीवित रहना क्या स्वर्ग प्राप्त करने के लिए है ?

(मेरे प्रति) प्रेम-रहित वे पुरुष (अर्थात्, राम और लक्ष्मण) भले ही अपनिंदा का वहन करें, (किन्तु) गगन-समान उन्नत, विपदा से अपरिचित, महान् यशस्वी बंश में उत्पन्न हुई मैं जिस निंदा का पात्र बनी हूँ, उसे मिटानेवाला मेरे अतिरिक्त और कौन है (अर्थात्, अपनी अपनिंदा को मुझे स्वयं ही दूर करना है) ?

मायामृग के पीछे (मैंने) अपने स्वामी को भेज दिया। फिर, अपने देवर

को भी कठोर वचन कहकर उनके पीछे भेजा। ऐसा करके मैं विष-समान (रावण) के गृह में आ पहुँची हूँ। अब संसार के लोग मेरा जीवित रहना भी क्या पसन्द करेंगे?

वे बलवान् वीर (राम-लक्ष्मण) अपना अपयश मिटाने के लिए भले ही (राक्षसों के साथ युद्ध करके) उन्हें युद्ध में जीत लें या युद्ध में मृत्यु प्राप्त करें। मैं गृहस्थ-धर्म से भ्रष्ट होकर इस प्रकार जब जीवित हूँ; तब मुझे प्राप्त होनेवाला अपवाद क्या उन्हें न लगेगा?

अपने सम्मान पर आघात लगने पर उत्तम तपस्या-संपन्न नारियाँ कवरी-मृग के समान अपने प्राण छोड़ देती हैं। वैसी नारियों के सम्मुख मैं किस प्रकार मूढ बनकर, यह अपवाद धारण करती हुई, जीवित रहूँ कि वह (सीता) अनुपम कालमेघ-सदृश (राम) से बिछुड़कर मायावी राक्षसों के गृह में (जीवित) रही।

वे अद्भुतगुणविशिष्ट (रामचन्द्र) अपने धनुष से राक्षसों को निर्मूल करके जब मुझे इस कठिन कारागार से मुक्त करेंगे, तब यदि वे कह दें कि तुम मेरे गृह में आने योग्य नहीं हो, तो मैं अपने इस दृढ पातिव्रत्य को किस प्रकार से प्रमाणित कर सकूँगी?

अतः, प्राणत्याग करना ही मेरा धर्म है। मुझे मरने से रोकनेवाली राक्षसियाँ भी मेरे तप के प्रभाव से, (अब) सोई पड़ी हैं। इससे अधिक उपयुक्त समय (मरने के लिए) नहीं मिलेगा—यों सोचकर पुष्पों के भार से हिलनेवाले माधवी-वृक्ष के निकट (सीता) जा पहुँचीं।

हनुमान् ने यह देखा। उन (सीता) के विचार को भी ताड़ लिया। उन देवी की देह का स्पर्श करने से संकोच करता रहा। फिर, यह कहता हुआ कि 'मैं देवी के प्रभु (श्रीराम) के द्वारा भेजा हुआ दूत हूँ', उन बिंबसम अधरों और मयूर-सदृश आकार-वाली (सीता) देवी को प्रणाम करता हुआ उनके सम्मुख आ उपस्थित हुआ।

हे देवी! यह दास राम की आज्ञा से (यहाँ) आया है, असंख्य वानर समस्त लोकों को छानकर तुम्हारा अन्वेषण करने के उद्देश्य से (यत्र-तत्र) गये हैं। उनमें से मैं ही अपनी तपस्या के प्रभाव से, यहाँ आकर तुम्हारे अरुण चरणों के दर्शन प्राप्त कर सका हूँ।

तुम्हारे वियोग में दुःखी वे वीर यह नहीं जानते कि तुम यहाँ हो। इसके लिए प्रमाण देने की क्या आवश्यकता है? इसके लिए यही प्रमाण है कि राक्षस लोग अभी तक समूल विध्वस्त नहीं हुए हैं।

हे तैल से समृद्ध दीप-समान (कांति-विशिष्ट) देवी! (मेरे बारे में) संदेह न करो। (मेरे पास, तुम्हारे संदेह को दूर करनेवाला) अभिज्ञान भी है। इसके अतिरि[illegible] आर्य (राम) के कहे हुए सत्य के परिचायक कुछ वचन भी हैं। तुम हथेली पर रखे आँवले के समान ही (मेरी सचाई को) पहचान सकती हो। अन्यथा न सोचो—इस प्रकार (हनुमान्) ने कहा।

यों कहकर वह (हनुमान्) प्रणत हो खड़ा रहा। सीता देवी उसे देखकर, करुणा तथा कोप—दोनों भावों से भर गईं और सोचने लगीं—यह (मेरे सम्मुख) उपस्थित व्यक्ति

राक्षस नहीं है। सन्मार्ग पर स्थिर रहकर पंचेंद्रियों को जीतनेवाला है। मुनि न हो, तो कोई देवता है। (क्योंकि) इसके वचन अच्छे ज्ञान का परिचय देते हैं। यह कोई पवित्र स्वभाववाला और पापरहित क्रियावाला है।

यह भले ही कोई राक्षस हो, या कोई देवता ही हो, या नहीं तो वानरों का नायक ही हो, स्वयं पाप ही हो, अथवा करुणा ही हो, (चाहे कोई भी हो), यहाँ आकर इसने मेरे स्वामी का नाम लेकर मेरी बुद्धि को द्रवित कर दिया है और मेरे प्राणों की रक्षा की है। इससे बढ़कर और क्या उपकार हो सकता है?

यों सोचकर, (सीता ने) हनुमान् की ओर निहारा और सोचा—मेरे मन में (इसके प्रति) करुणा का भाव उत्पन्न हो रहा है। इसके वचन मन में कपट रखनेवाले छली राक्षसों के जैसे नहीं हैं। भाव-पूर्ण वचनों को कहकर आँखों से अश्रुधारा को धरती पर गिराता हुआ रो रहा है। (अतः) यह पूछने के योग्य ही है। यों विचारकर सीता देवी ने हनुमान् से पूछा—हे वीर! तुम कौन हो?

(हनुमान् ने) उन देवी के मधुर वचनों को सिर नवाकर ग्रहण किया और निवेदन किया—हे माता, तुमसे वियुक्त होने के पश्चात् उन पवित्र गुणवाले (राम) ने अनादि उष्णकिरणों के धनी (सूर्य) के पुत्र, वानरों के स्वामी तथा दोष-रहित सुग्रीव नामक वानर को अपना मित्र बनाया।

उसका ज्येष्ठ भ्राता (वाली) ऐसा बलवान् था कि वह रावण के समस्त बल को विनष्ट करके, अपनी पूँछ से उसे बाँधकर, आठों दिशाओं में उड़ा था। वह ऐसे भुजबल से युक्त था कि उसने देवों की प्रार्थना सुनकर क्षीरसागर को मंदर-पर्वत से मथ डाला था[1], जिससे उस पर्वत में लपेटे गये वासुकि की देह घिस गई थी।

उस (पराक्रमी) वाली को तुम्हारे प्रभु (राम) ने एक ही शर से मार डाला और उसके अनुज (सुग्रीव) को राज्य देकर उसके साथ मित्रता कर ली। श्वान के समान उनकी दासता करनेवाला मैं राजा सुग्रीव का मंत्री हूँ। गगन में संचरण करनेवाले महान् वायु का पुत्र हूँ। (मेरा) नाम हनुमान् है।

५६० पद्म संख्यावाले वानर, जो समस्त लोकों को एक साथ ही अपने हाथ से उठा सकते हैं, जिनमें से प्रत्येक समुद्र को लाँघ सकता है और गगन से भी ऊँचा है, तुम्हारे नायक (रामचन्द्र) के विचार को इंगित से ही समझकर, उन्हें सुचारु रूप से पूरा करने के लिए सन्नद्ध होकर एकत्र हैं।

(वे सब वानर) प्रवाल-लताओं से पूर्ण सप्त समुद्रों में, उनसे आवृत सप्त द्वीपों में, इस धरती में, इसके नीचे स्थित नागलोक में, ऊपर के (स्वर्ग) लोक में—समस्त ब्रह्मांड में तुम्हारा अन्वेषण करके और यदि तुम्हें यहाँ कहीं नहीं देख पायें, तो इस ब्रह्मांड से परे भी जाकर खोजने के उद्देश्य से, (लौट आने की) एक अवधि निश्चित करके गये हैं।

---

१. कंबन ने किसी पुराण से यह वृत्तांत लिया है कि क्षीरसागर को देव और असुर मथ नहीं सके। उनकी प्रार्थना सुनकर वाली ने अकेले ही उसे मथ डाला।—अनु०

नीच कृत्यवाले राक्षस जब तुम्हें ले गया था, तब तुमने जिन आभरणों को वस्त्र में बाँधकर पर्वत पर बैठे हुए हम वानरों के निकट डाला था, उन्हें मैंने उन विजयी (राम) को दिया। तो, मुझ दास को एकांत में बुलाकर, उन्होंने कुछ वचन कहे और मुझे दक्षिण दिशा में जाने की आज्ञा दी। क्या उनकी करुणा व्यर्थ जायगी ?

हे माता ! विजयी (राम) को उस दिन, जब मैंने तुम्हारे आभरणों को दिखलाया था, तब उनकी जो दशा हुई, उसका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ ? उनके प्राण यदि अभी तक रुके हुए हैं, तो उसका कारण (तुम्हारे आभरणों के दर्शन के अतिरिक्त) और क्या हो सकता है ? उस दिन तुमने जिन आभरणों को उतारकर फेंक दिया था, उन्होंने ही तुम्हारे मंगलसूत्र को (सौभाग्य को) आजतक बचा रखा है।

उन राम का यह वृत्तांत है, (अब अपना वृत्तांत सुनाता हूँ)—वाली-पुत्र अंगद (सुग्रीव) की आज्ञा से सोलह समुद्र[1] संख्यावाली वानर-सेना को लेकर दक्षिण दिशा की ओर चला। समुद्र के किनारे उमड़कर आनेवाली वह सेना रुकी, तो अंगद ने मुझे समुद्र से आवृत इस पुरातन लंका को भेजा—यों निंदनीय गुणों से रहित हनुमान् ने कहा।

(दूत के रूप में) आये हुए उस (हनुमान्) के यों कहने पर सीता उमंग से भर गईं। विरह से तप्त तथा कृश उनका शरीर (आनन्द से) फूल उठा। 'मेरे पुण्यजीवन का समय आ गया है', यह कहकर नेत्रों से अश्रुधारा बहाती हुई (हनुमान् से) यह प्रश्न किया—'हे महान् ! कहो, श्रीरामचन्द्र के अंग-लक्षण (पहचान) क्या हैं ?'

डमरु-सदृश कटिवाली हे देवी ! (उन राम के) रूप का, उपमानों के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। (क्योंकि अपने स्वाभाविक धर्म से) परिपूर्ण सब उपमान उनके सामने अपने उपमानत्व को खो देते हैं। अतः, मैं जो पहचान कहनेवाला हूँ, उसी से तुम अनुमान कर लो—यों कहकर हनुमान् ने चरण से सिर तक (राम के शरीर का) वर्णन किया :

महान् विद्वानों ने चरणों के उपमान अरुण-दलवाले कमल कहे हैं। यदि स्वामी के चरणों से उस कमल की उपमा करने लगें, तो उन चरणों के सामने उन कमलों से बढ़कर क्षुद्र वस्तु और कुछ नहीं होगा। तरंग-पूर्ण समुद्र में उत्पन्न होनेवाला प्रवाल भी उन चरणों की कांति के सम्मुख नीलोत्पल के जैसे (काले) पड़ जाते हैं।

हे आभरणों से भूषित देवी ! दलों से शोभित कल्पक सुमनों तथा शीतल समुद्र-जल में उत्पन्न होनेवाली प्रवाल-लताओं को रहने दो। उनसे क्या प्रयोजन है ? उदित होनेवाले सूर्य की किरणें, कदाचित् उज्ज्वल कांतियुक्त (राम के चरणों की) अंगुलियों के उपमान बनें, तो बन सकती हैं।

छोटे और बड़े विविध आकारोंवाले कलंकहीन दस चंद्रमंडल (कहीं भी) नहीं हैं। छिटकती किरणोंवाला हीरा वर्त्तुलाकार नहीं होता। अतः, (रामचन्द्र के) नखों के उपमान बनने योग्य वस्तुओं को मैं नहीं जानता।

(वन-गमन के पूर्व) धरती का कभी स्पर्श न करनेवाले उनके चरण वन में

---

१. समुद्र—चार की संख्या। सोलह समुद्र—१६ × ४ = ६४।

जाकर पीडित होने पर भी (मृदुलता में) पुस्तक (ताल-पत्र) की समता करते हैं। समस्त भुवनों पर एक साथ (त्रिविक्रमावतार में) जा लगनेवाले उन चरणों का वर्णन मैं कैसे कर सकता हूँ ?

हे माता ! उनके सुन्दर जानुओं के उपमान, समुद्र-तीर पर मिलनेवाले शंख एवं चक्र धारण करनेवाले और आदिशेष की फूली हुई शय्या पर लेटे हुए विष्णु (के जानु) ही बतावें, तो भी वह उपमान यथार्थ नहीं होगा। क्या युद्ध के बाणों को रखने के कोश (तूणीर) उनके जानुओं का उपमान हो सकता है ?

पक्षियों का राजा धर्मरूप जो (गरुड) है, सौंदर्य से पूर्ण उसके उज्ज्वल कंठ की समता करती हैं उनकी जंघाएँ(अर्थात्, वे जंघाएँ सुनहले वर्ण से शोभित हैं)। अति प्रसिद्ध बलवान् मत्त गजों की सूँड़ें भी (उन जंघाओं से) लज्जित होती हैं। ऐसी उन जंघाओं के, इस संसार में, कौन-से उपमान मिल सकते हैं ?

उनकी उस सुन्दर नाभि का, जिससे कमलपुष्प-सहित समस्त विश्व उत्पन्न हुआ था—गंगा की धारा में दक्षिण की ओर घूमनेवाला भौंर उपमान हो सकता है—यह कथन भी असत्य होगा। तो क्या बकुल-पुष्प को उसका उपमान बतावें ? (यह भी ठीक नहीं है) दूसरे उपमान अब क्या हो सकते हैं ?

मेरी कुलदेवी-समान ! अनुपम छटा से युक्त कोई मरकत-पर्वत भी जिससे भीत हो जाये, इस प्रकार के विशाल तथा पुष्ट उनके वक्ष को निरंतर अभिन्न रूप से आलिंगन करने का सौभाग्य लक्ष्मी ने पाया, तो अब उस लक्ष्मी से भी अधिक भाग्यशाली और कौन है ?

उनके आजानुलंबी बाहुओं के, जिन्हें मुकुलित दलवाले कमल समझकर भ्रमर उन पर सदा मँड़राते रहते हैं, संबंध में कदाचित् इतना कहा जा सकता है कि वे पूर्वदिशा के दिग्गज के दाँतों से शोभित तथा दीर्घ सूँड़ के समान हैं।[1] और कौन उपमान उपयुक्त हो सकता है ?

उनके हाथों के नख हरे पत्तोंवाले और सूर्य के दर्शन से प्रफुल्ल रक्तकमल के कोरक के सदृश सुशोभित हैं। वे नख इस संदेह को दूर करनेवाले हैं कि इस राम ने (नर-सिंहावतार में) हिरण्यकशिपु के शरीर को अपने नखों से चीरा था या नहीं। (अर्थात्, राम के नख ऐसे लाल हैं कि मानों हिरण्यकशिपु को चीरने के कारण उनमें रक्त लगा हुआ हो)।

जो सम्यक् रूप से भरे हुए नहीं हैं, कांतिमय नहीं हैं, (जय) लक्ष्मी से युक्त नहीं हैं और जिनपर दृढ मेरु के धनुष को तोड़ने से उसकी डोरी लिपटकर नहीं पड़ी है, ऐसे पर्वतों को उनकी भुजाओं के उपमान कहना क्या उचित है ? (अर्थात्, नहीं)।

अनंत नाग पर सोये हुए (विष्णु) भगवान् के वाम कर में जब शंख है, तब (उसको छोड़कर) अन्य समुद्र-जन्य शंखों को अथवा सुपारी के नये पौधे को उनके कंठ का उपमान कहना अज्ञों का कार्य है। हम इसे कदापि नहीं मान सकते।

---

१. भुजाओं पर के अंगद (आभरण-विशेष) गज के दाँतों के समान हैं।

उन महाभाग का वदन यदि कमल बने, तो मैं (उनके) नेत्रों का क्या उपमान दूँ? धवल चंद्रमा कभी बढ़ता, कभी घटता रहता है। अतः, उनके वदन को शीतल चंद्र कहना भी उचित नहीं है।

चंदन और अगरु से लिप्त विशाल भुजाओंवाले अकलंक (राम) का मुख, जल से सिंचित, प्रफुल्ल रक्तवर्ण कमल के समान है—ऐसा कहने से स्वयं कमल लज्जित हो जाता है (क्योंकि वह राम के मुख की समता करने में असमर्थ है)। अब क्या वह प्रवाल भी यहाँ उपमान के रूप में वर्णित होने योग्य है, जो शीतल तथा अमृत बरसानेवाली मधुर वाणी भले ही न बोल सकता हो, लेकिन जिसके पास दाँतों का उज्ज्वल मंदहास भी नहीं है?

उनके दाँतों के उपमान क्या मोती हो सकते हैं? वे दाँत पूर्ण-चंद्र के टुकड़ों की पंक्तियाँ हैं या धवल अमृत की बूँदों को श्रेणी-बद्ध करके रखा गया है अथवा बहु प्रकार के धर्म के बीजों से फूटे हुए अंकुर हैं या सत्य-रूपी वृक्ष पर उत्पन्न कलियाँ हैं वा अन्य (कुंद आदि) वस्तुएँ हैं? (उपमा के लिए) मैं क्या बताऊँ?

उनकी नासिका क्या ऐसी (कम सुन्दर) है कि उत्कृष्ट स्थान पर रखे हुए इन्द्र-नील से छिटकते हुए किरण-पुंज और मरकत से निरन्तर फूटनेवाले पुंजीभूत प्रकाश—ये दोनों चाहने पर भी शायद ही उसके उपमान बन सकें? (अर्थात्, वे उपमान नहीं हैं)। बीरबहूटी को पकड़ने के लिए उसके समीप आया हुआ गिरगिट भी उनकी नासिका के उपमान नहीं हो सकता। फिर, क्या अन्य कोई उपमान मिल सकता है?

उनकी भौंहें इस प्रकार कुंचित थीं कि उन्हें देखकर दंडकारण्य में खर आदि राक्षस थरथरा उठे थे। उन राक्षसों के कबंध तथा अनेक भूतों के साथ ही राम के कर का धनुष भी नाच उठा था और यह सोचकर कि अब राक्षस-कुल मिट गया मुनि, देव, अद्वितीय धर्मदेव और चतुर्वेद आनंद से नाच उठे थे।

अष्टमी के दिन प्रकाशमान अर्धचंद्र, यदि अपने उदयकाल से ही दीखनेवाले अपने कलंक को कभी बढ़ने और कभी घटने की अपनी प्रकृति को, करवाल-सम कठोर सर्प (राहु) से ग्रस्त होने की विपदा को तथा अस्त और उदय होने के अपने गुण को छोड़ सके तथा चंचल अंधकार के सौंदर्य की छाया में चिरकाल तक स्थिर रह सके, तो वह उनके ललाट के सौंदर्य को प्राप्त कर सकेगा।

दीर्घ सघन, चमकते हुए, अंधकार-सदृश, स्वभाव से ही अत्यन्त काले सँवारे हुए, घुँघराले, (पीछे की ओर) गिरे हुए तथा अगरु, पुष्प आदि के बिना ही अलौकिक सुरभि से युक्त, उनके मनोहर केश अब घनी जटा बन गये हैं, अतः अब मेघ को उनका उपमान कहना अनुचित ही है।

उनकी गति ऐसी है कि वह, जब लक्ष्मी तथा भूमि उनको अपना आश्रय बनाना चाहती थीं और सप्त द्वीपों की संपत्ति स्वयं प्राप्त होने को थी एवं जब उस संपत्ति से रहित होकर दुःखप्रद वन में आकर रहना पड़ा था—दोनों अवस्थाओं में अपने सहज गुण को न छोड़नेवाली है। यदि यह कहें कि वह गति क्षुद्र बलिष्ठ वृषभ में है, तो मत्त गज दुःखी होगा

(हनुमान् के) इस प्रकार के वचन सुनकर, अग्नि में डाले गये मोम के सदृश सीता देवी द्रवित हो गईं। तब, ज्ञानी हनुमान् ने धरती पर झुककर दंडवत किया और यह कहकर कि मेरे स्वामी के बताये गये कुछ अभिज्ञान भी हैं और वैसे कुछ पहचान के वृत्तान्त भी हैं—हे मयूर तथा हंस-समान देवी ! उन्हें सुनो। वह आगे कहने लगा—

राम ने मुझसे कहा—अरण्य का मार्ग दुर्गम है। मैं कुछ ही दिनों के लिए वन को जा रहा हूँ। माताओं की योग्य सेवा करती हुई तुम यहीं रहो। यों जब मैंने (राम ने) तुमसे कहा था, उसपर तुम अपने पहने हुए वस्त्रमात्र के साथ, निष्प्राण-सी बनी देह के साथ तथा क्रोध-सहित मेरे समीप आ खड़ी हुई थी—यह वृत्तान्त तुम सीता से कहना।

दीर्घ मुकुटधारी चक्रवर्ती की आज्ञा मानकर समस्त संपत्ति को पहले स्वीकार करके (फिर) उसे त्यागकर जब (मैं वन जाने के लिए) निकल पड़ा था, तब नगर के प्राचीर के द्वार को पार करने के पहले ही उस (सीता) ने मुझसे प्रश्न किया था—(कहो) नगर[1] कहाँ है ?—यह विषय भी तुम उस (सीता) से कहना।

वन-गमन के समय भोले स्वभाववाली सीता ने सुमंत्र को जो संदेश दिये थे, सीता को उसकी याद दिलाकर कहना—'हे सारथि सुमंत्र ! दोष-रहित (उर्मिला आदि से) कहना कि रामचन्द्र के प्रिय वचनों से मैं अपने मन की वेदनाओं को भूल गई हूँ। यह कहकर मेरे प्यारे शुक-सारिकाओं को पालने का ठीक ढंग भी उन्हें बताना।

अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। 'यह (मुंदरी) सीता को देना, जिसपर मेरा नाम अंकित है'—यों कहकर (रामचन्द्र ने) इसे दिया। यह वचन कहकर हनुमान् ने अपने दीर्घ करों में एक अनुपम मुद्रिका को दिखाया। उसे उज्ज्वल ललाटवाली (सीता) ने देखा।

(उस अँगूठी को देखकर) मनोहर ललाटवाली (सीता देवी) को जो आनन्द हुआ, उसका मैं कैसे बखान करूँ ? (बिना कोई सत्कर्म किये ही) कोई व्यक्ति मरकर जन्म-फल (मोक्ष-पुरुषार्थ) को प्राप्त कर ले, (अलभ्य ज्ञान को) खोकर, पुनः कोई इसे प्राप्त कर ले या शरीर से निकले हुए प्राण फिर उसी शरीर में लौट आयें —क्या इनसे उत्पन्न आनन्द के साथ सीता के उस आनन्द की तुलना करें ? उस देवी के आनन्द के स्वरूप को हम कैसे पहचान सकते हैं ?

खोये हुए अपने माणिक्य को पुनः प्राप्त करनेवाले बाँबी में रहनेवाले सर्प के समान, खोई हुई प्राचीन संपत्ति को पुनः पानेवाले व्यक्ति के समान, चिरकाल से वंध्या रहकर संतान प्राप्त करनेवाली किसी नारी के समान तथा नेत्रहीनता के कारण दुःखी रहकर फिर नेत्र पानेवाले के समान, सीता आनन्द से अभिभूत हो गई।

(देवी ने) उस मुद्रिका को (अपने हाथ में) लिया, हृदय पर रखा, अपने पंकज-नेत्रों पर रखा, उनकी भुजाएँ (आनन्द से) फूल उठीं। उनका मन शीतल हुआ।

---

१. सीता के प्रश्न का यह भाव है कि राम के साथ रहने पर सीता के लिए अरण्य भी नगर ही है।—अनु०

वे फिर (रामचन्द्र को न देखने से) दुबली हुईं। चिंता-ग्रस्त हो मलिन हुइ। ठंडी साँस भरने लगीं। उस समय सीता देवी की जो दशा हुई, मैं उसके संबंध में क्या कह सकता हूँ ?

वह देवी उस अँगूठी को सूँघतीं, अपने स्तन पर रखकर उसका आलिंगन करतीं, दोनों नेत्रों में उमड़नेवाले अश्रु-प्रवाह को भली भाँति पोंछकर दीर्घकाल तक उस अँगूठी को देखतीं, जिससे पुनः-पुनः उनकी आँखों में आँसू छलक उठते। (उस अँगूठी से) कुछ कहने की चेष्टा करतीं। (किन्तु) कुछ भी कह नहीं सकती थीं। जब उनका कंठ रुँध जाता, तो (कंठ से निकलनेवाले वाष्प को) निगलने लगतीं।

दीर्घ नयनों एवं सुनिर्मित आभरणों से सुशोभित उन देवी का विद्युत्-सदृश सारा शरीर (उस अँगूठी की कांति से) स्वर्ण के रंग से चमक उठा। क्या सचमुच, पौरुषवान् रामचन्द्र की अँगूठी कोई पारस-मणि है, जो अपने स्पर्शमात्र से सब वस्तुओं को बदल देने की अलौकिक शक्ति रखती है ?

वह मनोहर मुद्रिका, भूख से पीडित व्यक्ति को प्राप्त सुभोज्य वस्तु की समता करती थी। गृहस्थ-धर्म का ठीक-ठीक पालन करनेवाले के यहाँ आगत अतिथि की भी समता करती थी। मरणासन्न प्राणों को जीवित रखनेवाली किसी ओषधि की भी समता करती थी। उस दिव्य मुद्रिका की जय हो !

इस प्रकार की दशा को प्राप्त होकर, आनंदितप्राण होकर, मुक्तासम दाँतोंवाली सीता (कुछ) कहने लगीं, तो उनके नयनों से अश्रुबिंदु स्तनों पर गिरकर बह चले। उनका कंठ गद्‌गद हो गया। फिर, उन्होंने कहा—हे उत्तम ! (मुझे) तुमने प्राण ला दिये।

सीता ने (हनुमान् से) कहा—तीनों लोकों की सृष्टि करनेवाले, आदि ब्रह्मा के भी कारणभूत जो भगवान् हैं (अर्थात्, उस परमात्मा के अवतारभूत रामचन्द्र हैं), उनके दूत बनकर तुमने मेरे प्राणों को ही प्रदान किया है। मैं इसके बदले में तुम्हें कौन-सी वस्तु दे सकती हूँ ? तुम, मेरी माता हो, पिता हो तथा देवता हो। करुणा के आगार हो। तुमने मुझे इहलोक का आनन्द, परलोक का फल तथा यश प्रदान किये हैं।

बलिष्ठ और पुष्ट कंधोंवाले ! तुम वदान्य (दाता तथा उपकारी) हो। मुझ निस्सहाय विपद्ग्रस्त का विपदा से उद्धार हुआ। तुम जीते रहो ! यदि मेरा मन कलंक-रहित है, तो तुम ब्रह्मदेव की आयु-पर्यंत—जिसमें अनेक युगों का एक दिन होता है—प्रलयों के काल में चतुर्दश लोकों के विध्वस्त हो जाने पर भी, आज जैसे हो, वैसे ही बने रहोगे।

पुनः सीता देवी ने पूछा—हे सद्‌गुणों से पूर्ण ! वह वीर (राम) अपने अनुज के साथ कहाँ रहते हैं ? तुम्हारा उनके साथ कहाँ परिचय हुआ ? पराक्रमी (रामचन्द्र) को मेरा समाचार किससे मिला ? प्रश्न सुनकर स्तंभ-सदृश भुजावाला हनुमान् सारा वृत्तान्त कहने लगा।

राक्षस (रावण) के कहने से, मेघ जैसे काले मायावी मारीच नामक राक्षस

अपनी भयानक माया के प्रभाव से, एक सुन्दर हरिण का रूप धरकर (पंचवटी में) आया। (यज्ञोपवीत के) सूत्र से शोभित वक्षवाले देव (राम) ने जब उसपर तीर मारा, तब गिरते हुए उस (मारीच) ने ऐसा शब्द किया कि उसे सुनकर तुम भ्रम में पड़ गई।

(मारीच की) वह ध्वनि सुनकर, अनुज (लक्ष्मण) भ्रांति में न पड़ जाय, यह सोचकर प्रभु (राम) ने तुरन्त ही अपने धनुष का टंकार किया। फिर भी, विधि का विधान ही सत्य प्रमाणित हुआ। (मारीच की) झूठी ध्वनि कहीं सत्य न प्रतीत हो जाय और उससे कहीं कुछ दुष्परिणाम न निकले—यह सोचकर शीघ्रगति से लौटनेवाले दृढ कोदंडधारी (राम) ने अपने अनुज को (सामने) आते हुए देखा।

(लक्ष्मण को) देखते ही (रामचन्द्र ने) उसकी मुखाकृति से ही उसके भाव को समझ लिया। फिर, उस पुंडरीकाक्ष (राम) ने सारा वृत्तांत सुना। वे भ्रमरों से गुंजित पर्णशाला में शीघ्रता से आये। वे वहाँ तुम्हारे भव्य रूप को न देखकर क्लान्त होकर मूर्च्छित हो गये, जिससे यह सन्देह होने लगा कि उनके शरीर में प्राण हैं या नहीं। ऐसी दारुण व्यथा का अनुभव करने के लिए क्या दूसरा कोई कारण हो सकता था ?

(तुम्हें) खोजता हुआ मैं आया और तुम्हारा साक्षात् कर सका हूँ। तुम्हारी जय हो। मेरे प्रभु (राम) बिना किसी अमंगल के (अर्थात्, सकुशल) हैं। उनके यथार्थ प्राण तुम्हीं हो। अब तुम्हारे बिछुड़ जाने से वे झूठे प्राणों के साथ जीवित-से रहते हैं। उन प्रतापी (राम) के मन से तुम कभी पृथक् नहीं होती हो। फिर, उन (राम) का अंत कैसे हो सकता है ? तुम (जो उनके प्राण-स्वरूप हो) यहाँ हो और श्रीरामचन्द्र वहाँ हैं। (अतः) वे प्राण छोड़ें भी, तो किन प्राणों को ?

हे माता ! प्रभु इस दशा में उस (पंचवटी की) पर्णशाला से निकलकर घने वनों, नदियों और पर्वतों में प्राणों के बिना ही चलनेवाली यंत्रमय मूर्त्ति के सदृश तुम्हारी खोज में चलते रहे और उस जटायु के निकट पहुँचे, जिसने यश के लिए अपने प्राण भी त्याग दिये थे।

हे सुन्दरी ! (रामचन्द्र) वहाँ आये और (रावण से आहत) जटायु को देखकर बहुत दुःखित होकर पूछा—'हे पिता ! तुम्हारी यह दशा क्यों हुई ?' उत्तर में जटायु ने यह समाचार दिया कि लंका के अधिपति ने किस प्रकार धोखा दिया। यह वृत्तांत सुनते समय ही रामचन्द्र की क्रोधाग्नि इस प्रकार भड़क उठी कि ऐसी आशंका होने लगी कि कहीं सब लोक ही न झुलस जायें।

(रामचन्द्र ने) क्षुब्ध होकर यह कहते हुए कि, 'तीनों लोकों को तीक्ष्ण अनी से युक्त इस शर से जलाकर भस्म कर दूँगा', अपने कर में स्थित कोदंड की ओर दृष्टि डाली, तब उस पितृसदृश जटायु ने उन्हें देखकर कहा—'किसी अधम ने तुम्हें दुःख दिया है, तो क्या तुम उसके लिए तीनों लोकों का विनाश करोगे ? (यह उचित नहीं है, अतः) तुम अपना मन बदलो।' यों कहकर (राम के) क्रोध को शांत किया।

तब राम ने प्रश्न किया—'हे सद्गुण-पूर्ण ! (वह रावण) किस दिशा में गया ? वह किस लोक में है ? उसका निवास कहाँ है ? बताओ।' इसके उत्तर में

जटायु कुछ कहने ही वाला था कि निष्ठुर विधि के प्रभाव से वह (जटायु) निष्प्राण हो गिरा। दृढ धनुर्धारी दोनों वीर (राम-लक्ष्मण) तब दुःख में डूब गये।

दुःखित होकर, फिर उस दुःख से किंचित् उपशांति पाकर, उन्होंने पौरुषवान् तथा पितृ-समान उस (जटायु) की अन्तिम क्रिया इस प्रकार की कि देव भी विस्मय में पड़ गये। फिर, यह विचार कर कि नीच कृत्यवाले राक्षस (रावण) को हम खोजकर उसे पहचानेंगे, मेघ को छूनेवाले पर्वतों तथा अरण्यों को पारकर आगे चले।

उन सभी स्थानों में तुम्हें न पाने से वे दोनों वीर दुःखी हुए। तब रामचन्द्र के लालिमायुक्त नयनों ने विशाल मार्ग को (अपने अश्रु-प्रवाह से) पंकिल बना दिया। उनका शरीर आग में गिरे मोम के समान गलने लगा। वे भ्रांतचित्त होकर इस प्रकार के वचन कहकर विलाप करने लगे।

इस संसार के निवासियों में कौन ऐसा है, जो कर्म (फल) को टाल सकता है? लक्ष्मी के निवासभूत कंधोंवाले (श्रीरामचन्द्र) बुद्धिभ्रांत हुए। उनकी सब इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं। अपनी सुध खोकर धतूरे के फूल को (अपनी जटा के) सर्पों के बीच धारण करनेवाले शिव के जैसे उन्मत्त हो गये।'[1]

कालमेघ-सदृश (राम) गोदावरी को देख क्षुब्ध हुए और उससे यों कहने लगे— 'प्रतिदिन सूर्योदय के समय, प्रवाल-लता के समान वह (सीता) तुम्हारे शीतल जल में स्नान करती थी—यह बात भी क्या झूठ है? उस (सीता) को तुम्हीं खोजकर ला दो। नहीं तो, (मेरे शर से) तुम आग बनकर सूख जाओगी।

(राम) पर्वत से कहने लगे—हे पर्वत! तुम शीघ्र ही दौड़कर आओ और सुन्दर पुष्पलता के समान मेरी देवी को दिखाओ। यदि नहीं दिखाओगे तो, तुम्हारे कुल के सभी पर्वतों को इसी समय तोड़ने, जलाने तथा भस्म करने के लिए मेरा यह एक बाण पर्याप्त है।

यह सोचकर कि स्वर्ण-हरिण के रूप में माया करने के कारण ही तो मेरी हरिणी (सीता) अब मुझसे बिछुड़ गई है, इसलिए मनोहर हरिणों को देखकर क्रोध से यह कहने लगे—धनुष से निकलकर मारने में समर्थ अपने इस शर से तुम्हारे नाम को भी मिटा दूँगा।

जब वे (राम) विश्रांतमन हो ऐसी दशा में थे, तब उनके अनुज के शांत चित्त से कहे हुए सद्वचन-रूपी दोषहीन औषध से उनका मन कुछ शांत हुआ। उसके पश्चात् का वृत्तांत हनुमान् ने इस प्रकार सुनाया—

उसके पश्चात् अपने अनुज के साथ वे चंदन-वृक्षों से भरे उस बड़े पर्वत पर आ पहुँचे, जहाँ मेरे कुल के नायक (सुग्रीव) रहते हैं, जो आकाश में श्रेष्ठ रथ पर चलनेवाले अमन्ददीप (सूर्य) से उत्पन्न हुए हैं। रक्तकमल-सदृश नेत्रोंवाले (राम) और उनके प्राण-समान प्रिय (सुग्रीव)—दोनों मित्र बन गये, जिससे देवता निस्तार पायें।

---

१. यह पद्य, दक्ष के यज्ञ में भवानी के भस्म होने का समाचार पाकर शिव की जो दशा हुई थी, उस ओर संकेत करता है।—अनु०

उत्तम वेदों से तथा ज्ञान से भी अज्ञेय वे (राम), अपने कष्टों तथा विपदाओं को सुनाकर मन में आहत-से होकर पीडित हुए। तब हमने तुम्हारे आभरणों को लाकर उन्हें दिखाया। उन्हें देखकर वे मूर्च्छित हो गिर पड़े।

उनके मन को स्वस्थ करने के लिए हमने जो वचन कहे वे उनके कानों में पहुँचे। तब अपनी चेतना पाकर उज्ज्वल शूलवान् उन (राम) ने तुम पवित्र स्वरूपवाली के आभरणों को देखा। तब उनके शरीर में ऐसी पीडा उत्पन्न हुई, जो अमृत छिड़कने पर भी शांत नहीं हो सकती थी, उनकी वह चिरकालिक पीडा अनिवार्य है।

यों व्याकुल हो, फिर किसी-न-किसी प्रकार स्वस्थ होकर, उन (राम) ने, उसके प्राणों को, जो वाली के नाम से उस ऋष्यमूक पर्वत के परे एक ऊँचे स्वर्ण-पर्वत पर रहता था, जो पर्वतसदृश आकारवाला था, जिसने प्राचीन काल में कभी रावण को अपनी पूँछ में बाँधकर भयंकर उन्नत पर्वतों और विशाल समुद्रों को लाँघ गया था, एक शर से हरण कर लिया। उसके बाद प्रीतिपूर्ण परिशुद्ध गुणवाले सुग्रीव को (किष्किधा का) राज्य सौंपा। फिर, सुग्रीव से यह कहकर कि 'तुम अपनी विशाल सेना के साथ (वर्षाकाल के उपरान्त) आओ'—भेज दिया। फिर उसके लौटने तक चार मास वहीं व्यतीत किये।

हे धनुष-समान ललाटवाली, लक्ष्मी! उसके पश्चात्, आई हुई सेनाओं को (तुम्हारे अन्वेषण के लिए) इस प्रकार भेजा कि विशाल दिशाएँ भी (उन वानर-सेनाओं की गति से) पीछे रह गईं। मुझे (उन्होंने) दक्षिण की ओर भेजा। यही मेरे यहाँ आने का वृत्तांत है।—इस प्रकार पूर्व-घटनाओं को त्रिकालज्ञ (हनुमान्) ने कह सुनाया।

प्यारे (हनुमान्) के ये वचन कहने पर, अत्यन्त दृढ चित्तवाले आर्य (राम) की पीडा के विषय में सोचकर सीता का मन दुःख तथा आनन्द से भर गया। उनकी अस्थियाँ पिघल उठीं। उनका मन पिघल उठा और वे दीनता का अनुभव करने लगीं।

सीताजी का शरीर अश्रु-प्रवाह से उत्पन्न भयंकर आवर्त्त में पड़कर चक्कर खाने लगा। द्रवित मन के साथ उन्होंने हनुमान् से प्रश्न किया—तुम अपार सागर को पार करके किस प्रकार यहाँ आये?

उस हनुमान् ने उत्तर दिया—हे सूक्ष्म कटिवाली देवि! तुम्हारे नायक के पवित्र चरणों का ध्यान करनेवाले ज्ञानी पुरुष, जिस प्रकार अविनाशी माया-समुद्र को लाँघ जाते हैं, उसी प्रकार मैं इस काले समुद्र को लाँघकर आया हूँ।

मुक्ता और चंद्रिका से भी जिन (दाँतों) की कांति अधिक उज्ज्वल है, ऐसे दाँतोंवाली देवी ने फिर प्रश्न किया—तुम्हारा यह शरीर अति विस्मयजनक रूप में छोटा है। ऐसे तुम समुद्र पारकर आये हो, तो क्या यह तपोबल से हुआ है? या किसी मंत्र की सिद्धि के प्रभाव से?

हनुमान् अपने उसी विराट् रूप को लेकर देवी के सम्मुख खड़ा हो गया, जिस (रूप) से उसने समुद्र पार किया था। वह कर जोड़े, कंधों को बाहर की ओर फैलाये और ऊँचा किये, दूसरों के लिए अस्पृश्य आकाश की ऊँचाई को छूते हुए तथा अपने

वाली का अनुज सुग्रीव, उसका पुत्र अंगद एवं मैन्द, द्विविद, विजयी कुमुद, नील, ऋषभ, कुमुदाक्ष, पनस, शरभ, वृद्ध, जांबवान्, यमसदृश दुर्मर्ष, कम्प, गवय गवयाक्ष, जगत्-प्रसिद्ध सत्कार्यशील शंख, विनत, दुर्विद, नल—

स्तंभ, स्वनामधन्य धूम, दधिमुख तथा शतवली—इन नामोंवाले सेनापति, रामचंद्र के वाण के सदृश वलवान् हैं। वे इस लोक को तथा अन्य सब लोकों को उखाड़ देने की शक्ति रखते हैं। ये राक्षस, उन (वानरों) की गणना के चिह्न-रूप में रखने के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। ऐसी वानर-सेना का कोई वार-पार भी है ?[1] (१—११७)

●

अध्याय ६

चूडामणि पटल

(उस समय) हनुमान् ने विचार किया कि दुःख भोगनेवाली, सब लोकों के आदिभूत प्रभु (राम) के प्राण-समान और कमलवासिनी (लक्ष्मी) की समानता करनेवाली इस देवी को अब यहाँ से ले जाना ही मेरा कर्त्तव्य है। अहो ! क्या इस संसार में ऐसे हनुमान् का कोई उपमान मिल सकता है।

(हनुमान् ने सीता से कहा—) इस दास के वचन सुनो। क्रोध मत करो। यदि शत्रु (रावण) तुम्हें मार देगा, तो फिर उसे जीतने से भी कोई बड़ा लाभ नहीं होगा। अब अधिक कहने से क्या प्रयोजन ? इसी क्षण तुम्हें रामचन्द्र के सम्मुख ले जाकर उनके चरणों पर नत होऊँगा ! मेरी शक्ति भी देखो।

स्वर्णमय लता-समान देवी ! कोमल रोमों से आवृत मेरे कंधे पर तुम, दुःख-मुक्त हो, मधुर निद्रा करती हुई आसीन हो जाओ। तुम्हें लेकर मैं बीच में कहीं विश्राम किये विना ही, क्षण-मात्र में, उस पर्वत पर कूद पड़ूँगा, जहाँ प्रभु रहते हैं।

हे घने कुंतलोंवाली ! यदि कुछ राक्षस ऐसे होंगे, जो यह जानकर (कि मैं तुम्हें ले जा रहा हूँ) मेरा पीछा करते हुए आयेंगे, तो किसी से भी अवध्य मैं उनका वध करके अपने मन के क्रोध को शांत करूँगा। अब तुम्हारी यह दशा देखने के पश्चात्, उस उदार (राम) के पास रिक्तहस्त मैं नहीं लौटूँगा।

हे माता ! यदि इस लंका के साथ ही तुम जाना चाहती हो, तो मैं इस नगर को उखाड़कर अपनी एक वलिष्ठ हथेली पर रख लूँगा और बाधा बनकर आनेवाले राक्षसों को (दूसरे हाथ से) पीस करके, दृढ धनुर्धारियों (राम-लक्ष्मण) के मनोहर चरणों के निकट पहुँचकर दंडवत करूँगा। यह मेरे लिए कोई कठिन कार्य नहीं है।

---

१. ऊपर के अंतिम नौ पद्य प्रक्षिप्त कहे जाते हैं।—अनु०

हे अरुन्धती (-सदृश देवी) ! उन अति सुन्दर (राम) के निकट जाकर यदि मैं कहूँगा कि आपकी अमृत-सदृश देवी अत्यन्त मायावी (राक्षसों) के बंधन में पड़कर पीड़ा भोग रही हैं और मुक्ति का कोई मार्ग नहीं देख रही हैं, तो मेरी किंकर-वृत्ति क्या होगी ? (अर्थात्, मेरी सेवा-वृत्ति व्यर्थ होगी)।

क्या मैं अक्षत भुजाओं के साथ (राम के समीप) जाकर शत्रुओं के बल का विवरण दूँ ? क्या उनसे यह कहूँ कि (आपकी देवी को) साथ नहीं लाया हूँ, किन्तु अपने प्राणों को बचाकर लौट आया हूँ ? या यह कहूँ कि (उन देवी के) दर्शन किये बिना ही आ गया हूँ ?

यदि तुम मुझे यह आज्ञा दो कि प्राचीरों से आवृत इस लंका को जलाकर पिघला दो, बली राक्षस (रावण) को मिटा दो, राक्षस-कुल का उन्मूलन कर दो और शीघ्र युद्ध समाप्त कर यहाँ से चलो, तो मैं वह सब इसी क्षण कर दूँगा।

हे चन्द्र के समान ललाटवाली ! यही उचित होगा कि अब वीर (राम) तुम्हें प्राप्त कर लें और अपने मन की दारुण वेदना को दूर करके प्रशान्त होकर अनन्त राक्षस-कुल को मिटाकर संसार का दुःख दूर करें।

हे मधुरभाषिणी, बाललता-सी देवी ! अब तुम्हें क्या आपत्ति है ? मुझपर ऐसी कृपा करो कि मैं अपने सुकृत के फलस्वरूप ऐसा भाग्य प्राप्त करूँ (अर्थात्, तुम्हें ले जाकर रामचन्द्र से मिलाने का यश प्राप्त करूँ)। फिर, तुम दुःख से निस्तार पा सको। शीघ्र ही मेरे कंधे पर आसीन हो जाओ।—हनुमान् यों निवेदन के साथ कर जोड़कर (सीता के) चरणों में प्रणत हो खड़ा रहा।

उचित वचन कहनेवाले, अपनी माँ के सामने खड़े गाय के बछड़े-जैसे दीखनेवाले उन (हनुमान्) को देखकर सीता ने सोचा कि यह काम इसके लिए कुछ दुष्कर नहीं है। फिर, ये दोषहीन वचन कहे—

यह (काम) तुम्हारे लिए कठिन नहीं है। तुमने जो सोचा है, वह तुम्हारे पराक्रम के अनुकूल ही है। जब तुम कहते हो कि मैं अमुक कार्य करूँगा, तब उसे अवश्य पूरा भी करोगे। (फिर भी) यह कार्य ऐसा है, जिसे मैं अज्ञ और मंदबुद्धि स्त्री होने के कारण अनुचित मानती हूँ।

यदि तुम मुझे ले जाओगे, तो समुद्र के मध्य निष्ठुर राक्षस आकर तुम्हें घेर लेंगे और तुम पर तीक्ष्ण बाण छोड़ेंगे। तब तुम विष-समान उन राक्षसों के साथ युद्ध भी नहीं कर पाओगे और मेरी रक्षा भी नहीं कर सकोगे। इस प्रकार अकेले ही व्याकुल होओगे।

यही नहीं, एक और भी कारण है। आर्य (राम) का विजयी धनुष कलंकित होगा, तो इससे कौन-सी भलाई हो सकेगी ? जिस प्रकार कुत्ता, पके अन्न को आँख बचाकर ले भागता है, क्या तुम भी उसी प्रकार का छल-भरा कार्य करना चाहते हो ?

जबतक मेरे पति सम्मुख युद्ध में देवताओं को विस्मय-विमुग्ध करते हुए, अपनी विशा का कौशल नहीं दिखायेंगे और मेरे शरीर को जिस (रावण) ने वासना-भरी दृष्टि

से देखा है, उसकी आँखों को जबतक कौए निकालकर न खायेंगे, तबतक क्या मुझे शांति मिल सकेगी ?

विजयी प्रत्यंचावाले कोदंडधारी (राम-लक्ष्मण), जबतक अपनी धनुर्विद्या की कुशलता को प्रकट न करेंगे और जबतक निर्लज्ज राक्षसियों के मंगल-सूत्र इस प्रकार न कट जायेंगे, जैसे उनकी नाक ही कट गई हो, तबतक क्या मेरी सहज लज्जाशीलता का कुछ महत्त्व होगा ?

स्वर्णमय (त्रिकूट) पर स्थित लंका जबतक शत्रुओं की अस्थियों के पर्वत से न भर जायगी, तबतक मैं कुलवती की महिमा को, सच्चारित्र्य को और अस्खलित पातिव्रत्य को किस प्रकार निरूपित कर सकूँगी ?

पीडा-जनक राक्षसों की लंका की क्या बात, अनन्त लोकों को भी अपने शाप से मैं जला देती। किन्तु, वैसा करना पवित्रमूर्त्ति (राम) की धनुर्विद्या की कुशलता को कलंकित करना है—यही सोचकर मैं वैसा न करके चुप रह गई।

हे सत्यशील ! कथन-योग्य एक और कारण है। वह भी सुनो। पंचेन्द्रियों पर संयम पाने पर भी तुमको यह संसार, पुरुष ही कहता है। उस उत्तम वीर (राम) के अतिरिक्त अन्य किसी का स्पर्श करना मेरी देह के लिए क्या उचित हो सकता है ?

यदि उस नीच (रावण) ने (मुझे) छू लिया होता, तो क्या इतने दीर्घ समय तक (उसके या मेरे) शरीर में प्राण बचे रहते ? उस समय वह (रावण), यह सोचकर कि मुझे छूने पर वह क्षणमात्र में विनष्ट हो जायगा, धरती के साथ ही मुझे उठा ले चला।

ब्रह्मदेव के द्वारा रावण के प्रति दिया हुआ ऐसा एक शाप है कि यदि वह अपने साथ मिलने की इच्छा न रखनेवाली किसी स्त्री का स्पर्श करेगा, तो उस पाप के फल-स्वरूप उसके बलिष्ठ सिरों के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। उसी शाप ने अबतक मेरे प्राणों की रक्षा की है।

वैसा एक शाप है—यह वृत्तांत मुझे, पराक्रमी उज्ज्वल किरीटधारी और सत्य-शील विभीषण की बेटी (त्रिजटा) ने मुझपर करुणा करके बतलाया और मेरे भय को दूर किया।

उस शाप के रहने से मैं भी, यह विचार कर कि धर्म कभी व्यर्थ नहीं जायगा, रामचन्द्र के पराक्रम को सोचकर एवं अपने परिशुद्ध चारित्र्य को भी प्रमाणित करने के लिए ही इतने दीर्घ काल तक जीवित रही हूँ। अन्यथा, निश्चय ही कभी अपने प्राण त्याग देती।

उस स्थान (दंडकारण्य) से, राक्षस ने जो धरती के साथ ही मुझे लाकर यहाँ रखा है, यह तुम सत्य को पहचाननेवाली अपनी दृष्टि से देखो। लक्ष्मण के द्वारा निर्मित पर्णशाला भी यहाँ वैसी ही रखी हुई है।

मैं कभी इस स्थान से हटती नहीं हूँ। हाँ, शिथिल होनेवाले अपने प्राणों को बचाने के लिए कभी-कभी उस सरोवर पर जाती हूँ, जो दंडधारी (राम) की शरीरकांति के सदृश जल तथा ऊर्ध्वमुख कमलों से भरा हुआ है।

अतः, वह तुम्हारा विचारा हुआ कार्य उचित नहीं है। हे उत्तम! अब तुम्हारा कार्य यही है कि उस वेदनायक (राम) को मेरा संदेश पहुँचा दो।—सीता ने कहा।

हनुमान् यह सोचकर कि सब लोकों के स्वामी (राम) की इस सहधर्मिणी, महिमामयी देवी की तपस्या भी कितनी श्रेष्ठ है, विस्मय-विमुग्ध हुआ। अपनी आशंकाओं से मुक्त होकर बड़े आनंद के साथ (सीता की) स्तुति करने लगा।

रावण के कारण अंधकार में डूबा हुआ यह संसार फिर प्रकाश पायेगा। कुछ दिन तक तुम अपने प्राणों को सुरक्षित रखो। दुःख से वेसुध हुए प्रभु के पास जो संदेश ले जाना है, उसे कहो।—इस प्रकार हनुमान् ने सीता के चरणों में नत होकर प्रार्थना की।

हे नीतिमान्! और एक मास पर्यंत मैं यहाँ जीवित रहूँगी। उसके बाद, उसी प्रभु (राम) की सौगंध खाकर कहती हूँ कि मैं अपने प्राणों को रोक नहीं सकूँगी। तुम्हें देखकर मैंने जो यह वचन कहा है, इसे मन में भली भाँति बिठा लो।

तुम उन (राम) से कहना—हारों से विभूषित वक्षवाले उन (राम) के लिए, भले ही मैं योग्य पत्नी न होऊँ, (मेरे लिए) उनके हृदय में भले ही दया न हो, तो भी उन्हें अपनी वीरता की लाज तो रखनी ही होगी।

प्रशंसनीय जयशील उन कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मण से यह एक वचन कहना—महिमा-मय (राम) की आज्ञा से वे मेरी रक्षा करते रहते थे। अब बीच में आये हुए इस दारुण बंधन से मुझे मुक्त करना भी उन्हीं का कर्त्तव्य है।

एक मास में मेरा प्राण समाप्त हो जायगा। अतः, इसी अन्तर में यदि वे यहाँ नहीं आयेंगे, तो वे (राम) नूतन जल से भरी गंगा नदी के किनारे इस दासी की अंत्येष्टि क्रिया अपने लाल करों से पूर्ण कर दें।

हे महान्! तुम उस धर्म के नायक (राम) से यह बात कहना कि लंका में मृत्यु प्राप्त करती हुई सीता ने अपनी तीनों उत्तम सासों के प्रति प्रणाम कहा है। दया की कमी से (वे राम) कदाचित् मुझे भुला भी दें, पर तुम मुझे मत भूलना।

उन (राम) के श्री-सम्पन्न कानों में यह बात पहुँचा देना कि जब उन्होंने (मिथिला में) आकर मेरा पाणिग्रहण किया था, तब उन्होंने यह वचन दिया था कि इस जन्म में (तुम्हारे अतिरिक्त) किसी अन्य स्त्री का मन से भी स्पर्श नहीं करूँगा।

उन (राम) से यह निवेदन करना कि यदि मैं यहीं रहकर अपने प्यारे प्राणों को त्याग दूँ, तो भी उनका नमस्कार कर यही प्रार्थना करूँगी कि वे मुझे ऐसा एक दोष-रहित वर प्रदान करें, जिससे मैं दुबारा जन्म लेकर पुनः उन्हीं की सुन्दर देह का आलिंगन कर सकूँ।

उन्हें (सिंहासन पर) अधिष्ठित होकर राज्य करते हुए, श्रेष्ठ रत्नों एवं सुन्दर कंठ-सूत्र से सुशोभित हाथी पर बैठकर वीथियों में जाते हुए तथा अन्य दृश्यों को देखने का सुकृत मुझे नहीं मिला है। अब बहुत कहने से क्या प्रयोजन? अपने भाग्य को सोचकर मैं रोती रहूँगी।

(वे प्रभु) अपने दुःख को देखकर दुःखित होनेवाले संसार के दुःख को, अपनी माताओं के दुःख को तथा भरत के द्वारा अनुभूत दुःख को मिटाने के लिए अयोध्या में जायेंगे। क्या वे मुझ एक व्यक्ति के दुःख को देखकर यहाँ आ सकेंगे? (अर्थात्, वे यहाँ नहीं आयेंगे।)

मेरे पिता-माता आदि सभी बंधुजनों को मेरा नमस्कार कहना। कपिराज (सुग्रीव) से कहना कि सुन्दर भुजावाले उस प्रभु का निरंतर साथ देते हुए उन्हें अविनाशी अयोध्यानगर का राजा बनाये।

इस प्रकार के वचन जब वह देवी कहने लगीं, तब यह कहकर कि 'हे सौंदर्यवती देवी! आपने अब भी अपनी पीडा को तजा नहीं है', हनुमान् सब प्रकार के कारणों से युक्त, योग्य तथा मधुर वचन कहकर उन्हें सांत्वना देने लगा।

(हनुमान् कहने लगा—)[१]

हाँ-हाँ, तुम सचमुच यहीं मृत्यु प्राप्त करोगी। उधर शिथिलप्राण हुए वे (राम) अपने मधुर प्राणों को सुरक्षित रखे रहेंगे। वे (अरण्य से) चलकर महिमापूर्ण उस (अयोध्या) नगर में जायेंगे और किरीट भी धारण करेंगे। यह सच बात ही तो है।

पातिव्रत्य से किंचित् भी स्खलित न होनेवाली तुमको, घृणित तथा भयंकर बंधन में डालनेवाला (रावण) अपने प्यारे प्राणों को रखकर जीवित रहेगा। अनुपम धनुर्धारी (राम-लक्ष्मण) हारकर चले जायेंगे। वाह! तुम्हारे ऐसे वचनों के समान सत्य वचन और क्या हो सकता है?

हे सद्गुणवती! हम सब, तुम्हें पीडा देनेवाले राक्षसों का विनाश किये बिना ही अपने प्राणों को सुरक्षित रखकर वहाँ (राम के समीप) चले जायेंगे और हमारे प्रभु (राम) भी अपने धनुष को हाथ में लिये (अयोध्या को) लौट जायेंगे।

अलंघ्य दुःख-सागर से हमारी रक्षा करने के लिए, हमें अघट सुख-संपत्ति जिस (राम) ने दी है, उसे तुम्हें प्रदान किये बिना हम मौन रह जायेंगे, तो हमसे बड़े लोग और कौन होंगे?

जिस (राम) ने यह प्रण किया था कि सद्धर्म का आचरण करनेवाले मुनियों को जो खा जाते हैं, उन (राक्षसों) को मारकर उनकी आँतों को जबतक पिशाचों को न खिलाऊँगा, तबतक (कोशल) देश में नहीं जाऊँगा, उस प्रभु के लिए ये काम (अर्थात्, रावण का वध करके तुम्हें मुक्त करना) क्या असाध्य है? (अर्थात्, असाध्य नहीं है)।

'शत्रुओं के द्वारा बंदी बनाई गई तुमको मुक्त कर लिया'—यदि ऐसा वे न कह सकेंगे और खाली हाथ लौट जायेंगे, तो क्या देशवासी सज्जन पुरुष और शास्त्रज्ञ विद्वान् हमारी बातों का आदर करेंगे?

पातिव्रत्य-धर्म का पालन करनेवाली, कभी किंचित् भी असत्य आचरण न करनेवाली वह (सीता) अस्पृश्य वंचक (राक्षसों) के द्वारा छुए जाने के पूर्व ही मृत हो गई—

१. नीचे के कई पदों में व्यंग्य की ध्वनि है।

यह समाचार पाकर भी संतुष्ट होकर यदि हम खाली हाथ लौट जायेंगे, तो उससे (राम की) वीरता खूब प्रकट होगी न ?

यह भी तुमने खूब कहा ! यदि तुम अत्यन्त शोक से अपने प्राण छोड़ दोगी, तो वे अपने विजयी बाणों से शत्रु-सहित सातों लोकों को ही क्यों न जला दें, तो भी उनका अपयश नहीं मिटेगा।

हे लक्ष्मी (के अवतार)! युद्ध के लिए सन्नद्ध कोदंडधारी (राम) पहले से ही तीनों लोकों को (अर्थात्, तीनों लोकों के राक्षसों को) मिटा देने की सोच रहे हैं। यदि तुम्हारी यह दशा भी उन्हें विदित हो जाय, तो फिर क्या वह अपनी शांति बनाये रखेंगे ? तुम्हारी बात भी कैसी है ?

(श्रीरामचन्द्र का) न उमड़नेवाला क्रोध (जब उमड़ उठेगा, तब) बलवान् राक्षसों के प्राण लेने मात्र से ही शांत नहीं होगा। जब वह क्रोध शांत न होगा, तब क्या यह धरती और गगन भी उनके क्रोध से न मिट जायेंगे ?

(जिस दिन राम को तुम्हारी अवस्था का ज्ञान होगा), उसी दिन चक्रांकित हाथोंवाले (राम) के बाण गंभीर और शीतल समुद्रों-सहित सातों लोकों को क्या प्रलय-काल की अग्नि के समान नहीं पी जायेंगे ? कहो तो सही।

राम ने देवों के शत्रुओं का नाश किया। सब पाप-कार्यों को रोका। सज्जनों की रक्षा की। पुण्यकर्मों को सुरक्षित रखा। ऐसा जो यश है, क्या तुम उसे नहीं मानती हो ?

तुम्हारे कारण सद्धर्म का निर्वाह होगा। इसलिए, यदि तुम कष्टों को सहती हुई यहीं रहो, तो सारे संसार के लिए उससे अच्छे दिन उत्पन्न होंगे। ऐसा करना ही उचित है न ?

घृणित कंटक-जैसे राक्षसों के रक्त-प्रवाह में स्नान करनेवाले भूत-पिशाच ज्यों-ज्यों डुबकी लगा-लगाकर क्रीडा करने लगेंगे, त्यों-त्यों (अब) छिपे रहनेवाले देवता (बाहर निकल आयेंगे और) आनन्दित होंगे।—क्या यह शुभ परिणाम तुम नहीं देखोगी ?

युगांत में मानों वज्र गिर पड़े हों—इस प्रकार गिरनेवाले विध्वंसकारी (राम के) बाणों से शत्रुओं के शरीर में जो घाव होंगे, उनसे इस प्रकार रक्त बहेगा कि तरंगों से भरे सातों समुद्र एक बनकर घोर गर्जन करेंगे।—क्या तुम वह दृश्य नहीं देखना चाहती ?

गर्भवती राक्षसियाँ अपने उदर को मलती हुई, शोक से उद्विग्न होकर, अपनी विशाल आँखों से आँसू बहायेंगी। उनके, तोड़कर फेंके गये मंगलसूत्रों से आकाश को छूने-वाला एक ऐसा पर्वत बन जायगा कि बाली भी उसे लाँघना चाहे, तो नहीं लाँघ सकेगा।—क्या ऐसा दृश्य तुम नहीं देखोगी ?

गगन से भी ऊँचे भूत तथा विशाल पंखोंवाले बड़े-बड़े असंख्य पक्षी (राक्षसों की) रक्त-नदी में डुबकी लगाकर फिर राक्षसियों की अश्रु-नदी में स्नान करेंगे।—वह दृश्य भी तुम देखोगी।

तुम देखोगी कि यहाँ की नृत्यशालाओं में, जहाँ मृदंग और वीणा आदि के मधुर संगीत के साथ अप्सराएँ नृत्य करती हैं, वहाँ किस प्रकार पराक्रमी वानर पंक्ति बाँधकर (रावण के वध पर) नृत्य करेंगे।

तुम देखोगी कि किस प्रकार पापी तथा नीच कर्मवाले राक्षसों के घावों से बहती हुई रुधिर-रूपी तरंगायमान नदी में पर्वताकार शव-राशियाँ बहती हैं और तट पर टकरानेवाली ऊँची लहरों से भरे समुद्र को (उन शवों से) पाट देती हैं।

तुम देखोगी कि पापी राक्षस-रूपी कोयले के बीच सीता-रूपी चिनगारी के रहने और अनघ (राम) के शर-रूपी अपार पवन के चलने के कारण किस प्रकार यह विशाल लंका नामक स्वर्ण (पिंड) पिघल उठता है।

तुम देखोगी कि (सब पर) आघात करने की शक्ति रखनेवाले रावण के सिरों पर किस प्रकार कौए लपककर उसकी उन आँखों को, जिन्होंने तुम्हारे पुण्यफल-जैसे स्थित शरीर को वासनामय दृष्टि से देखा था, अपनी नुकीली चोंचों से निकाल-निकालकर खाते हैं।

दीर्घ दिशाओं में स्थित दिग्गज पूर्वकाल में जिस रावण से हारकर लज्जित हो, अपना मुँह लटकाये खड़े हैं, ऐसे विष-समान उस (रावण) के सभी सिर युद्धक्षेत्र में कट-कटकर गिरेंगे और पैरों से टकरायेंगे।—तुम यह दृश्य भी देखोगी।

इस लंका में, जहाँ सुन्दर पताकाएँ इस प्रकार फहरा रही हैं, मानों यह सोचकर कि नीला आकाश स्वेद-बिंदुओं से भर गया है और (उस स्वेद को) पोंछने के लिए यत्र-तत्र वस्त्र उछाले जा रहे हों, (उस लंका में रामचन्द्र के) उज्ज्वल शरों की वर्षा होगी और पिशाच धूलि उड़ाते हुए आनन्द-तांडव करेंगे।—यह दृश्य भी तुम देखोगी।

तुम यह भी देखोगी कि काले रंगवाले राक्षसों की रुधिर-धाराएँ समुद्र में न समाकर उमड़-उमड़कर नदियों के मार्ग से लौटकर बह रही हैं। समुद्र से आवृत पृथ्वी युगांत में जब मिट जाती है, तब भी (प्राणियों को खा-खाकर) न अघानेवाला यम, अब (लंका के विध्वंस के समय) अघाकर अपने खाये हुए प्राणियों को उगलने भी लगेगा।

सुगंधित कल्पवृक्षों के उद्यानों में स्थित सरोवरों में जहाँ अब राक्षस, अप्सरा-समान स्त्रियों के साथ जल-क्रीडा करते हैं, वहाँ वानरों के समूह, एक दूसरे की मुड़ी हुई पूँछों को पकड़े, पंक्तियों में चलकर, स्नान करते हैं।—यह भी तुम देखोगी।

अब अधिक क्या कहना है? तुम देखोगी कि (राम के द्वारा) प्रयुक्त दिव्य अस्त्र इस लंका के राक्षसों का विनाश करके और आगे बढ़कर त्रिलोकों में स्थित राक्षसों का भी अन्त कर देंगे।

यहाँ इस बंधन में अब तुम्हें एक मास तक भी रहने की आवश्यकता नहीं होगी। मेरे उस वीर को देखने भर की देर है। उसके पश्चात् अधिक समय की आवश्यकता ही क्या है? फिर वे प्रतापी (राम) क्षण-मात्र का भी विलंब नहीं करेंगे।

हाँ, यह सच है कि उन (राम) के प्राण अबतक बचे हैं। किंतु, वहाँ के बड़े वनों में ऐसे फूल या पल्लव नहीं हैं, जो तुम्हारे अपूर्व प्राण-भृत वीर (राम) की सुन्दर देह

के स्पर्श से झुलस न गये हों। ऐसे वृक्ष भी नहीं हैं, जिनसे जल-जलकर चिनगारियाँ न निकली हों।

यदि मन में पीडा उत्पन्न होती है, तो वह किसी की स्मृति के कारण ही तो होती है? (जब रामचन्द्र तुम्हारे विरह की पीडा से मूर्च्छित हो जाते हैं, तब) गर्जन करनेवाले मेघों के टूटकर उनके ऊपर गिरने या पंचशिर नागों के झपटकर उनके वक्ष और भुजाओं में काटने पर भी उनकी चेतना नहीं लौटती।

उनके प्राण, मथे जानेवाले दही के समान, (शरीर में) आते और जाते हुए अंदर-बाहर के बीच लड़खड़ाते रहते हैं। इन्द्रियों के शिथिल हो जाने से वे उन्मत्त-से हो गये हैं। तुम्हारे वियोग के कारण उनकी जो दशा हुई है, उन सबका वर्णन करना क्या कभी संभव है?

ऐसे वे (राम), यदि तुम कहो कि (तुम्हें छोड़कर) जीवित रहेंगे, तो वह वचन, उनकी वास्तविक दशा का विचार करने पर, झूठा ही सिद्ध होता है। मैं जो कहता हूँ, इसकी सचाई तुम, हस्तामलक के समान, स्वयं पहचानोगी।

हे माता! हे देवी! तुम्हारा समाचार पाकर वह पवित्रमूर्त्ति (राम) और कपिकुल-नायक (सुग्रीव) आनन्दित हों, इसके पहले ही समुद्र को पारकर लंका को घेर लेनेवाले बड़े-बड़े वानरों के कोलाहल को सुनकर तुम आनन्दित हो उठोगी।

हे स्त्रियों में उत्तम! असंख्य वानर-सेना कल ही इस नगर में आ पहुँचेगी। उस समय उसके बीच में, आकाश के मध्य गरुड पर विराजमान विष्णु के सदृश, मेरे कंधे पर विराजमान प्रभु (रामचन्द्र) को तुम देखोगी।

अंगद के कंधे पर कनिष्ठ (भ्राता लक्ष्मण) उदयगिरि पर प्रकाशमान उष्णकिरण के समान विराजमान होंगे। इस प्रकार युद्ध के लिए सन्नद्ध हो वानरों की सेना यहाँ आ उतरेगी। तुम अपनी पीडा, सन्देह और आशंका को दूर कर दो। तुम (शीघ्र ही) वियोग से मुक्त होओगी।

हे पुष्पों की गंध से युक्त केशोंवाली! (तुम्हारे द्वारा) निर्दिष्ट अवधि के भीतर इस बड़े कारागार से यदि वे प्रभु तुम्हें मुक्त नहीं करेंगे, तो अपने अपयश और पाप के कारण वे रावण बन जायेंगे। और यह (रावण) राम बन जायगा।[1] यों हनुमान् ने कहा।

उस दोषहीन ने इस प्रकार के जो वचन कहे, उन्हें सुनकर मयूर-सदृश सीता स्वस्थचित्त हुईं और उमंग-भरे मन से फूल उठीं। मन में यह सोचकर कि अब इस (हनुमान्) का (शीघ्र) जाना ही अच्छा है, ये वचन कहने लगीं—

हे श्रेष्ठ गुणवाले महात्मा! तुम शीघ्र जाओ। सब बाधाओं पर विजय पाओ। अब मैं और कुछ नहीं कहूँगी। किंतु, मैं कुछ पूर्वघटित घटनाओंको, जो उनको प्रिय हैं, तुमसे कहती हूँ। उन (राम) को सुना देना।

---

१. भाव यह है कि राम को इतना अपवाद होगा कि उनके अपवाद को देखते हुए रावण का पाप बहुत कम दीखेगा। —अनु०

कभी एक दिन, स्वर्ग को छूनेवाले ऊँचे तथा सुन्दर (चित्रकूट) पर्वत पर एक काक आया था और मेरे वक्ष पर अपने तीक्ष्ण नखों से आघात किया था। उस समय क्रुद्ध होकर उन (राम) ने समीपस्थ पत्थर के पास उगी हुई एक घास लेकर उसे अत्युग्र ब्रह्मास्त्र बनाकर प्रयुक्त किया था। इसे धीरे से (राम को) सुनाना।

उस समय, वह काक भयभीत होकर काँप उठा था। जब वह भागकर ब्रह्म-लोक में गया, तब वहाँ (ब्रह्मदेव ने) क्रुद्ध होकर पूछा—'तू यहाँ क्यों आया है?' फिर, वह उमापति के पास और आठों दिशाओं में (दिक्पालकों के पास) भागता रहा। किन्तु, सभी देवों ने उसका तिरस्कार कर दिया।

काक के रूप में स्थित इन्द्र के पुत्र जयन्त को देखकर अंतरिक्ष के देवताओं ने कहा—'हाय! अब हमारे प्रभु के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है, अतः उन्हीं के चरणों पर जाकर गिरो।' तब वह काक लौट आया।

वह भयभीत होकर भूलोक में आया और यह कहता हुआ कि—'हे प्रभो! तुम्हारे चरण ही मेरी शरण हैं', प्रभु के चरणों पर जा गिरा। उदार (राम) ने भी मन में शान्त होकर यह कहा कि वह ब्रह्मास्त्र उस (काक) की एक आँख लेकर उपशान्त हो जाय। तब वह दिव्य अस्त्र वैसा ही करके उपशांत हो गया। यह सब उन्हें सुनाना।

'हे प्रभु! तुम्हारे चरण ही हमारी शरण हैं'—यह कहने पर प्रभु ने उस काक को अभयदान दिया और कहा—'तुम्हारे किये पूर्व अपराध को हम क्षमा करते हैं। तुम्हारी जाति के पक्षियों की दोनों आँखों के लिए एक ही पुतली होगी।' यह भी उनसे निवेदन करना।

जयन्त भयमुक्त हो अंतरिक्ष में चला गया। देवों ने पुष्प-वर्षा की। गजसदृश कनिष्ठ (लक्ष्मण) भी यह घटना नहीं जानते। इसे इक्षुरस-सदृश मधुर वचनों में उन प्रभु से कहना।

हे सत्य-मार्ग का अनुसरण करनेवाले! उन प्रभु से यह कहना कि उस दिन (अयोध्या में) जब मैंने उनसे यह पूछा था कि हे प्रभो! अपनी इस शुकी का क्या नाम रखूँ? तो उन्होंने प्यार से उत्तर दिया था—'मेरी माँ दोषहीन कैकेयी का नाम रखो।'

इस प्रकार के अभिज्ञान-वचन कहकर, उस देवी ने सोचा कि अब इतने अभिज्ञान बताने के पश्चात् और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। फिर, अपने मनोहर वस्त्र में बँधी हुई, अपनी कांति से ऊपर और नीचे के समस्त लोकों को प्रकाशित करनेवाली, सूर्य को भी (अपनी उज्ज्वलता से) परास्त करनेवाली,

चूडामणि को अपने कमल-कर में लिया। हनुमान् उसे आश्चर्य के साथ देख-कर सोचने लगा कि यह अद्भुत वस्तु क्या है? चारों ओर फैला हुआ घोर अंधकार भी, जो सप्त लोकों को भी निगल जाता है, (उस चूडामणि के प्रकाश से) अदृश्य ही गया।

कठोर नेत्रवाले राक्षस यह संदेह करने लगे कि कदाचित् मेघ-मंडल के ऊपर चमकनेवाला सूर्य ही इस नगर में उतर आया है। (रात्रि में वियोग के कारण) दुःखी

रहनेवाले चक्रवाक तथा मुकुलित कमल भी आनन्द से प्रफुल्लित हो उठे। सूर्यकांत पत्थरों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं।

सीतादेवी ने वह चूडामणि दिखाई, जो उनके शीतल मेघ-जैसे केशों पर चमकनेवाले नवग्रह-पति (सूर्य) की समता करती थी। सीता देवी की कोमल देह के समान ही कांतिपूर्ण थी, और असमान वीर (राम) के चरणों के समान प्रकाशमान थी। मारुति ने (उस चूडामणि को) देखा।

मेरी खोज में यहाँतक आकर मुझे प्राण प्रदान करनेवाले, हे पुरुषश्रेष्ठ! लो, इस चूडामणि को, जो मेरे नेत्र-तारा के समान है और दीर्घकाल से मेरे वस्त्र में बँधी पड़ी रही है, मेरे अभिज्ञान के रूप में ले जाओ—यों कहकर सत्य-यशवाली उस देवी ने चूडामणि (हनुमान् को) दी।

(हनुमान् ने) प्रणाम करके उस (चूडामणि) को लिया। बड़ी सावधानी से अपने वस्त्र में बाँधा। फिर, (सीता देवी को) नमस्कार करके आँसू बहाते हुए तीन बार परिक्रमा की और दंडवत किया। प्रतिमा-जैसी सीता देवी ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। वह हनुमान् लौट पड़ा। (१—८६)

●

अध्याय ७

वन-विध्वंसन पटल

उत्तर की दिशा में जाने का निश्चय करके उस (हनुमान्) ने विशाल रूप धारण किया और लक्ष्मी (सीता) के आवासभूत उस पुष्पोद्यान के मध्य त्वरित गति से चलने लगा। फिर, यह सोचकर कि एक छोटा-सा काम करके ही लौट जाना अच्छा नहीं है; यह निश्चय किया कि कोई ऐसा काम करूँ, जो मेरे लिए करने योग्य हो (अर्थात्, जिससे मुझ-जैसे एक व्यक्ति का यहाँ आने का कुछ प्रभाव पड़े)।

यदि मैं पापकर्मी शत्रुओं को न मार दूँ, प्राचीरों से आवृत इस नगर को समुद्र में न फेंक दूँ, हरिण-सदृश नेत्रोंवाली देवी को मनुकुलश्रेष्ठ (राम) के कमल-चरणों पर समर्पित न करूँ, तो मैं किस प्रकार उनका किंकर हो सकता हूँ?

मैंने अपनी लंबी पूँछ से उस छली राक्षस रावण के दसों सिरों को बाँधकर उसे कठोर कारागार में नहीं डाला या उसको युद्ध में पराजित भी नहीं किया। अब यह वचन कैसे सत्य हो सकता है कि आप्तजन परस्पर की सहायता करनेवाले होते हैं? (अर्थात्, यदि मैं रामचन्द्र का आप्त होऊँ, तो मुझे उनकी सहायतार्थ और भी कुछ कार्य करना चाहिए)।

यदि मैं अपनी शक्ति से, सम्मुख आनेवाले राक्षसों को पीडित कर दूँ, अति

बलवान् राक्षस (रावण) के देखते-देखते अपनी अनुपम दक्षता के साथ मंदोदरी को, उसके पुष्पालंकृत केशों को पकड़कर, खींच ले जाऊँ और बंदी बनाकर रखूँ, तो क्या इसमें कुछ दोष हो सकता है ?

इन राक्षसों को सताकर उन्हें भगा दूँ, और अपना बल इनपर प्रकट कर दूँ—इतना ही अब मेरा कर्त्तव्य शेष रह गया है। अब विचार करने की और कोई बात नहीं है। अतः, अब किस उपाय से इन राक्षसों के साथ युद्ध छेड़ूँ ?—वह उपाय सोचने लगा।

(उसने सोचा) इस उद्यान को शीघ्र ही तोड़-फोड़कर विध्वस्त कर दूँगा। उस बड़े शब्द को सुनकर राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध होकर मुझपर आक्रमण करेंगे। तब अपनी शक्ति से उन्हें पीसकर उनके प्राण पी लूँगा। यही अच्छा उपाय है।

मुझपर आक्रमण करने के लिए आनेवाले सब राक्षस जब मृत्यु को प्राप्त होंगे और यहाँ से नहीं लौटेंगे, तब वह बलशाली (रावण) भी अपनी अदम्य सेना-सहित आगे बढ़कर आयगा। तब उसके किरीटधारी सिरों को झुका दूँगा और अपने मन की दारुण पीडा से मुक्त होकर यहाँ से जाऊँगा।

यह सोचकर, उसने अपने उस विराट् रूप को, जो सूर्य-चन्द्र के द्वारा परिक्रान्त मेरु-समान कंधोंवाला था, धारण किया। वह ऐसा लगा, जैसे आदिकाल में इस धरती को अपने दंत पर उठानेवाला महावराह हो। फिर, घने अशोकवन को पैरों से रौंदने लगा।

(अशोक वन के पेड़) भग्न हुए, टूट गये, चूर-चूर हो गये, झुककर गिर गये, तहस-नहस हो गये, जल गये, झुलसकर काले पड़ गये, म्लान हुए, बिखरकर गिर पड़े और छिन्न-भिन्न हो गये।

कुछ पेड़ जड़ से उखड़ गये, कुछ (फेंके गये)आकाश पर मेघों के निकट जा पहुँचे, कुछ घास-पात के जैसे हवा में उड़कर समुद्र में जा गिरे, कुछ भ्रमरों-सहित स्वर्ग-लोक से जा टकराये, कुछ टूट-फूटकर अस्त-व्यस्त हो बिखर गये।

कुछ पेड़, जो (हनुमान् के द्वारा घुमाकर दूर) फेंके गये थे और अपने साथ मेघों को भी खींचते चले गये थे, दिशाओं में स्थित युद्ध-कुशल (दिग्) गजों का भोजन बने और कुछ जिन्हें (हनुमान् ने) जड़ से पकड़कर ऊपर की ओर फेंका था, गगन-मार्ग से स्वर्ग में जा गिरे और नंदन-उद्यान को भी विध्वस्त कर दिया।

समुद्र में हलचल उत्पन्न हो गई, राक्षसों के विशाल घर ढह गये, कुछ पेड़ कुलपर्वतों से टकराकर चूर-चूर हो गये, पेड़ों के श्वेतपुष्प विस्तृत आकाश पर बिखरकर, तारों से मिलकर नीचे गिर पड़े।

(हनुमान् ने) कुछ पेड़ों को जड़ से उखाड़कर इस प्रकार फेंका कि वे सत्यलोक से परे जा पहुँचे और फिर नीचे गिरकर दिग्गजों के दाँतों में उलझकर लटकने लगे। वे ऐसे लगे, मानों दिग्गज अपनी हथिनियों को देने के लिए उन पेड़ों को अपनी सूँड़ों से गगन तक उठाये खड़े हों।

(जब हनुमान् ने उन पेड़ों को सर्वत्र फेंका, तब) विष-समान (रावण) के

उद्यान के पुष्पों को विद्याधर के लोकों में, यक्षों के पर्वतों पर तथा मृत्युहीन देवों के लोकों में रहनेवाला महावर से अलंकृत चरणवाली स्त्रियाँ आकर चुनने लगीं।

जब स्वर्ण एवं श्रेष्ठ रत्नों से बने बड़े-बड़े वृक्ष, विभिन्न दिशाओं में उड़ते थे, तब वे संचरण करनेवाली बिजलियों के जैसे लगते थे। सूर्य के समान प्रकाश फैलाते थे। जब वे एक दूसरे से टकराकर नीचे गिरते, तब युगांत में आकाश से गिरनेवाले तारकों के समूह के समान लगते थे।

(हनुमान् के फेंके हुए वृक्षों से नीचे गिरनेवाले) पक्षियों, भ्रमरों, सुगंधित पुष्पों, मधु, कलियों, पल्लवों और सरस शाकों को जल-समृद्ध समुद्रों में रहनेवाले मत्स्य खा-खाकर उछलने लगे। फिर, उन पेड़ों के गिरने से कुचले जाकर तड़प-तड़पकर मर गये।

वीचियों से पूर्ण समुद्र, जो दुर्गंध से भरे रहते हैं, (हनुमान के फेंके वृक्षों से) गिरे पुष्पों से भर जाने पर सर्वत्र सुगंधित हो गये। वे उस समय ऐसे लगे, जैसे देवताओं के अपनी देवियों के साथ जल-क्रीडा करने के लिए बने हुए तालाब हों।

उखाड़ी गई रत्न-वेदियों और तोड़े गये वृक्ष एक के पीछे एक जाकर समुद्र में गिरे और उसे पाट दिया। (इन पेड़ों के कारण) सुरभि से भरे समुद्र में ऐसा मार्ग बन गया, जिसपर कोई भी पैदल ही चलकर उसे पार कर सकता था। वह मार्ग ऐसा लगा, मानों आकाश-मार्ग से आये हुए हनुमान् के लौटते समय पैदल ही जाने के लिए बना हो।

गगन में फेंके गये बड़े-बड़े वृक्ष, ग्रीष्म ऋतु में तपनेवाले सूर्य के सदृश चमकते हुए नीचे गिरे। उनकी चोट से दानवों के भवन इस प्रकार ढह गये, जिस प्रकार वज्र के गिरने से पहाड़ टूट जाते हैं।

उस समय, उखाड़कर फेंके गये असंख्य वृक्ष-समूह घने और शीतल मेघों के जैसे (आकाश पर) छा गये। वह दृश्य ऐसा था, मानों महिमामय हनुमान् ने क्रोध से बलवान् रावण के अनुपम उद्यान को गगन पर उठाकर रख दिया हो।

पुष्पों से भरे रत्नमय वृक्ष, मधु-बिंदुओं को छितराते हुए, आकाश में उड़ने लगे, तो उनमें रहनेवाले अनेक पक्षी कोलाहल कर उठे, आकाश में पंक्तियों में दिखाई पड़नेवाले वे पेड़, खड्ग और धनुष के आकार में ऐसे प्रकाशमान हो उठे, मानों गगन में उड़नेवाले बड़े-बड़े विमान हों।

युद्ध में दक्ष, अनुपम हाथी के समान (हनुमान्) के द्वारा फेंके जाने से, मोटे तने और अतिदीर्घ शाखाओं से युक्त विशाल वृक्ष आकाश में ऊँचे उड़कर समुद्र में ऐसे जा गिरे, मानों आकाश से विविध प्रकार के मेघ समुद्र का जल भरने के लिए उतर आये हों।

साधना में कमी हो जाने के कारण, धरती पर पुनः जन्म पाये हुए योगी, संपूर्ण ज्ञान पाकर मुक्ति प्राप्त करके जा रहे हों—ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए दानशील कल्पवृक्ष (जो रावण के द्वारा धरती पर लाये गये थे), हनुमान् के द्वारा फेंके जाकर आकाश-मार्ग से सर्वोत्तम स्वर्णनगर (स्वर्ग) में पहुँच गये।

(हनुमान् ने) रत्नवेदिकाओं को ढाह दिया। मंडपों को गिराकर टुकड़े-टुकड़े

कर दिये। समीपस्थ सरों को पाट दिया। चमकती हुई (मणिमय) दीवारों को विध्वस्त कर दिया। ऊँचे टीलों को मिटा दिया—इस प्रकार के अनेक दुष्कर कार्य किये।

'वेंगे' वृक्षों को भग्न किया। सालवृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया। ऊँचे कल्पवृक्षों को पुष्पों-सहित तोड़कर फेंक दिया। चंपक के पौधों को उखाड़ फेंका। फल से भरे आम्रवृक्षों की शाखाओं को तोड़ डाला—इस प्रकार उनको अस्त-व्यस्त कर दिया।

उसके पैरों से कुचले जाकर वह उद्यान अपने स्थान से ऐसे विचलित हुआ कि मन्मथ और उसके सखा वसंत के मुख कांतिहीन हो गये। चंदन वृक्ष ज्वालामय हो जलकर भस्म हो गये।

'कामर' नामक राग गानेवाले भ्रमर व्याकुल हो उठे। बड़े-बड़े वृक्ष मिट्टी में मिल गये। नाट्यशालाएँ गिर गईं। पुष्पवृक्ष एक दूसरे से टकराकर जल उठे।

झुकनेवाली टहनियाँ, पुष्पलताएँ, शीतल पल्लव-समुदाय, जहाँ कोयलें निवास करती थीं, कोमल पुष्पों से भरे प्रवेश-द्वार, सुगंधित कुंज, मनोहर मधुवर्षा, भ्रमर और मयूर, सब विध्वस्त हो गये।

श्रेष्ठ प्रवाल-लताएँ फेंकी जाकर पर्वतों पर गिरकर उनसे ऐसे लिपट गईं, जैसे मेघों से गिरनेवाली विद्युल्लताएँ हों। उज्ज्वल स्वर्णमय शाखावाले वृक्ष, गजों के मुख पर लगाये जानेवाले स्वर्ण-फलकों के समान (उन पर्वतों पर) जा गिरे।

विविध पक्षियों की ध्वनि, विविध वृक्षों के टूटने की गर्जन-जैसी ध्वनि, उस धर्म रूपी (हनुमान्) के चिल्लाकर गर्जन करने की ध्वनि—ये सब ध्वनियाँ इस ब्रह्मांड से परे भी शून्य में जाकर परिव्याप्त हो गईं।

पक्षियों के समूह अपने बच्चों के साथ व्याकुल हो उठे। गगनचुंबी 'कोंगु', 'पाथल' आदि वृक्ष मनोहर संगीत करनेवाले भ्रमरों के साथ असंख्य तरंगों से शब्दायमान विशाल समुद्रों में जा गिरे।

भ्रमरों से गुंजरित उस सुन्दर उद्यान के बड़े-बड़े वृक्ष, पंकिल मिट्टी से भरी, सुन्दर जल से पूर्ण कावेरी नदी में जा गिरे। आकाश-तल तक बढ़े हुए (कुछ अन्य) वृक्ष (ब्रह्मा के द्वारा) त्रिविक्रम के चरणों को धोने से गगन से प्रवाहित स्वच्छ जलवाली गंगा-नदी में जा गिरे।

हनुमान् के अनेक वृक्षों को फेंकने से, विशाल कमल-सर ऐसा लगा, मानों रक्त-चंदन के कीचड़ से भरा हो। अशोकवन के वृक्षों ने समुद्र को, संगीत गानेवाले मत्त भ्रमरों तथा मधु से युक्त पुष्पों का समुद्र बना दिया।

सिंधुवार-वृक्ष चारों दिशाओं में उड़े और सिंधु (समुद्र) के विशाल वीचियों में जा गिरे। चंदन-वृक्ष ऐसे टूटकर गिरे कि (उनके गिरने से) राक्षसों के घरों के द्वार और किवाड़ तहस-नहस हो गये।

सुगंधित नन्दनवन के सद्योविकसित पुष्प आकाश में अत्यन्त उज्ज्वल नक्षत्रों के जैसे प्रकाशमान हुए। इमली के पेड़ (सगर-पुत्रों के द्वारा खोदे गये) गढ़ों (अर्थात्, समुद्रों) में गिरे, तो वहाँ के श्वेत शंख इधर-उधर भागते हुए मनोहर मोती उगलने लगे।

विविध रत्न तथा स्वर्णमय विविध शाखाओं से युक्त वृक्ष जब आकाश में फेंके गये, तब वे रात्रि में दिखाई पड़नेवाले उस इन्द्रधनुष के समान लगे, जो (उत्पात को बताते हुए) यह संकेत कर रहा हो कि यह (हनुमान्) अभी इन (राक्षसों) को मिटा देगा।

अमंद प्रकाश से युक्त स्वर्णमय लता-समुदाय जब सभी दिशाओं में समुद्रों की ओर फेंके गये, तब वे ऐसे लगे, मानों सूर्य-किरणों के समुदाय टूटकर मेघों से पिये जानेवाले समुद्र के जल में गिर रहे हों।

उस महिमामय (हनुमान्) ने अशोकवन में भरे वृक्षों को दूर-दूर तक फेंका, तो उससे गजशालाएँ, अश्वशालाएँ, नाट्यशालाएँ, मधुशालाएँ तथा रथशालाएँ विध्वस्त हो गईं।

ऊँचे वृक्षों और बड़े पर्वतों को तोड़कर फेंकने से उज्ज्वल विशाल प्राचीर ढह गया, भवन जलकर भस्म हो गये और लंकापुरी सर्वत्र अस्त-व्यस्त हो गई।

उस समय चंद्र मानों यह सोचकर ही डर से अस्त हो गया कि यदि रावण यह सब देख ले, तो यह कहकर क्रुद्ध होगा कि बिंबाधरा सीता के प्रति प्रेम होने के कारण तूने मुझे जलाया है और अब विरोधी देवताओं के देखते हुए तू चुपचाप इस अशोकवन को विध्वस्त होते हुए देखता रहा।

दोष-रहित रत्न, स्वर्ण, सूर्यकांत और चंद्रकांत पत्थर—इनसे प्रकाशमान, मत्त-करनेवाले उस उद्यान के वृक्ष, हनुमान् के द्वारा सब दिशाओं में, दोनों हाथों से उठा-उठाकर फेंके गये और संसार-भर में महान् प्रकाश फैलाने लगे।

उस उद्यान के मृग भयभीत होकर व्याकुल हो उठे और बड़ा कोलाहल करने लगे। उनकी आँखें पानी से भरकर लाल हो गईं। उद्यान के पक्षी समुद्र में जा गिरे। जो पक्षी उस प्रकार न गिरे, वे उड़ने लगे। लेकिन वे भी कुछ दूर जाकर धरती पर गिर पड़े और अपने पंख फड़फड़ाकर सिमटकर निष्प्राण हो गये।

पर्वत-सदृश पुष्ट कंधोंवाले, विशाल तथा मनोहर सूर्य-सदृश वक्षवाले उस (हनुमान्) ने क्रोध से जब छुआ (अर्थात्, उखाड़कर फेंका), तब (उसके छूते ही), पक्षी घने दलवाले पुष्पों से भरे दिव्य वृक्षों पर स्थित अपने घोंसले के साथ स्वर्ग जा पहुँचे। वह (हनुमान्) यदि शांत होकर करुणा दिखाने लगे, तो उससे जाने कौन-सा पद प्राप्त होगा? (अर्थात्, जब हनुमान् के क्रोध करके छूने से ही पक्षियों को स्वर्ग की प्राप्ति हो गई, तो उसके करुणा से भरे करों से छूने पर तो और भी उच्च पद प्राप्त होगा।)

असत्य-मार्ग पर चलनेवाले राक्षसों से सुरक्षित, पक्षियों के निवासभूत उस नवीन तथा मनोहर उद्यान में केवल वह वृक्ष ही, जिसके नीचे दुःखी मनवाली हंसिनी (सीता) बैठी थी, उसी प्रकार अक्षत खड़ा रहा, जिस प्रकार तीनों लोकों के विनाश के समय विष्णु के आवास-भूत एक अक्षयवट वृक्ष खड़ा रहता है।

उस समय सूर्य उदित हुआ। वह ऐसा लगता, था मानों तरंग-भरे समुद्र ने, यह सोचकर कि अन्य आभरणों से रहित सीता ने अपनी अति उज्ज्वल चूडामणि को भी अपने प्राण-नायक के लिए अभिज्ञान के रूप में दे दिया है, अब इसके पास एक भी आभरण

नहीं रहा, अतएव घने केशोंवाली उस (सीता) के योग्य एक अपूर्व रत्न खोज कर ला दिया हो।

उस लहलहाते विशाल उद्यान का ध्वंस करके अकेले खड़ा हुआ वह (हनुमान्) ऊपर और नीचे के चौदह लोकों को नापनेवाले त्रिविक्रम-सा लगा; क्षीरसागर के मध्यस्थित मंदर-पर्वत-सा लगा; युगांत में सर्व-संहार करनेवाले रुद्र-सा लगा।

जिस समय यह सब हो रहा था, उस समय सब राक्षसियाँ जग उठीं, रोष से भर गईं और स्वर्णपर्वत-जैसे उस पुनीत (हनुमान्) को देखकर यह कहती हुई कि भाई! यह कैसी आकृति है? यह कौन है? भय से काँप उठीं। फिर, उज्ज्वल ललाटवती (सीता) को देखकर पूछा—'हे नारी! क्या तुम जानती हो?' सीता ने उत्तर दिया—

निष्ठुर राक्षसों की जो माया होती है, उसे छली और पापी लोग ही जानते हैं। तुम्हारे माया-प्रपंच को सच्चे व्यक्ति कैसे जान सकते हैं? एक राक्षस हरिण का रूप लेकर आया, तो लक्ष्मण के यह कहने पर भी कि यह राक्षसों की माया है, मैंने उसे सच्चा समझकर उसे माँगा था।

सीता ने यह वचन कहा। राक्षसियाँ अपनी छाती और पेट को पीटती हुई ऐसी भाग-दौड़ मचाने लगीं कि पहाड़, धरती, आकाश और समुद्र काँप उठे। अपने पिता (वायुदेव) के सदृश उस (हनुमान्) ने वहाँ स्थित क्रीडा-पर्वत को देखा और यह सोचकर कि इसे भी मिटा देना चाहिए, उसकी ओर अपनी लंबी बाहें फैलाकर उसे दृढ़ता से पकड़ लिया।

वह क्रीडा-पर्वत इस प्रकार ऊँचा बढ़ा हुआ था कि गगनतल तक व्याप्त मेरु-पर्वत भी (उसकी ऊँचाई देख) लज्जित होता था। उसे आँख उठाकर देखना भी असम्भव था। उसके ऊपर मेघ भी नहीं छा सकते थे। वेगवान् प्रभंजन भी उसे आक्रान्त नहीं कर सकता था। रात्रिकाल में अंधकार भी उसे आवृत नहीं कर सकता था। कदाचित् यह धरती भी उसके भार का वहन नहीं कर सकती थी।

कई दिनों तक उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रकाशवाले चंद्र को भी, जो नूतन दूध-सा (अपना प्रकाश) फैलाता रहता है, अंधकार निगलने लगता है, उस अंधकार को भी निगल जानेवाले प्रकाश से युक्त इस क्रीडा-पर्वत का, बीस भुजाओंवाले (रावण) की आज्ञा से ब्रह्मदेव ने स्वयं पीतस्वर्ण से निर्माण किया था।

(उस क्रीडा) पर्वत में (लगे हुए) स्तंभ उज्ज्वल रत्नमय थे। उसके दोनों ओर मुक्ता और स्वर्ण जड़े थे। पीछे का भाग अति मनोहर रत्न-पंक्तियों से अलंकृत था। इस प्रकार, अति प्रकाशमान वह (क्रीडा-पर्वत) उस सूर्य के लिए भी आभरण बन सकता था। जो आकाश-भर में फैलनेवाली रक्त किरणों से संपन्न रहता है।

उसने यह सुना था कि कठोर कृत्यवाले राक्षस (रावण) ने पहले कभी रजत-गिरि (हिमाचल) को समूल उठाया था। उस महान् हनुमान् ने उस कार्य को छोटा बनाते हुए अब तीक्ष्ण नखोंवाले अपने विशाल करों से उस क्रीडा-पर्वत को यों उठाया, मानों महान् मेरु को ही उठा रहा हो।

उसने उस (क्रीडा-पर्वत) को उठाकर लंका पर फेंका, तो गगनस्पर्शी प्रासाद उससे आहत होकर टूट गये। उनसे जो चिनगारियाँ निकलीं, उनसे आसपास की सब वस्तुएँ जल गईं। अनेक वीर राक्षस भी डर से मर गये। अहो, (दूसरों का) अहित करते रहने-वाले क्या कभी (बुरे फल के भोग से) बच सकते हैं?

लंका की भूमि में उगे हुए उस उद्यान की रखवाली करते रहनेवाले ऋतु-देवताओं के मन में भयरूपी अग्नि सुलग उठी। उनके वस्त्रों से जल चू पड़ा। उनकी देहों से (चोट लगने से) रक्त बह चला। उनकी टाँगें एक दूसरे से टकराकर उलझ गईं। वे अपने मुखों को खोलकर ऐसे चिल्लाये कि सारा नगर उस ध्वनि से गूँज उठा। वे भागकर (रावण के पास) गये।

वे जलानेवाले क्रोध से भरे उस (रावण) के पास जाकर (उसके) चरणों पर गिर पड़े और बोले—दिग्गजों से सुरक्षित दिशाओं में भी अपने शासन को चलानेवाले हे शासक! अब हम (तुम्हारे उद्यान की) रखवाली करने से असमर्थ हैं। पर्वत जैसे-पुष्ट कंधोंवाला एक वानर उद्यान में आया है और वृक्षों को तोड़ रहा है। आग-लगे वस्त्र के समान शीघ्र ही वह (उद्यान) विध्वस्त हो गया।

(उस वानर के कार्य के बारे में हमसे) कुछ कहते नहीं बनता है। उसने अपने पैरों और हाथों से (उद्यान को) इस प्रकार विध्वस्त कर दिया कि घास और धूल भी नहीं बची है। उसने स्वर्णमय क्रीडा-पर्वत को भी उखाड़कर फेंक दिया, जिससे दिव्य विभूति से संपन्न लंका का भी अधिकांश विध्वस्त हो गया है।

रावण ने उनके वचन सुने, तो हँसकर बोला—वाह! एक मर्कट ने स्वर्णमय वृक्षों से युक्त उद्यान को उजाड़ दिया। राक्षसों के द्वारा सुरक्षित उस क्रीडा-पर्वत को, जिसका उपमान खोजने पर भी कहीं नहीं मिलेगा, जड़ के साथ उखाड़कर फेंक दिया और लंका को विध्वस्त कर दिया। राक्षसों की यह कैसी विजय है? तुम्हारे जैसे वचन तो कोई मूर्ख भी नहीं कहेंगे।

तब उन देवताओं ने कहा—हे राजन्! इस धरती की सराहना करनी चाहिए, जो उस वानर का वहन करने की क्षमता रखती है। यदि हम यह कहें कि वह वानर त्रिमूर्त्तियों में से कोई है, तो भी उसके रूप का वर्णन नहीं हो सकेगा। प्रभु हमें सतानेवाले उस (वानर) को अभी चलकर देखिए।

उसी समय हनुमान् ने ऐसा गर्जन किया, जिससे भूमि फट गई और तरंगायमान समुद्र का जल उस दरार में भरने लगा। अष्ट दिशाओं की रक्षा करनेवाले दिग्गज और देवता अपना-अपना स्थान छोड़कर भागे। बिंब-समान रक्त अधरोंवाली राक्षसियों के गर्भ गलित हो पड़े; मानों ब्रह्मांड ही टूट गया हो! (१—६०)

अध्याय ८

किंकर-वध पटल

(हनुमान् की) वह गर्जन-ध्वनि, जो विशाल पर्वत की कंदराओं में प्रतिध्वनित होनेवाली वज्र की ध्वनि थी, भयंकर समुद्र-गर्जन की ध्वनि और शिवजी के धनुष के टूटने की ध्वनि की समता करती थी, सर्वत्र प्रतिध्वनित होकर उस (रावण) के बीसों कानों में जाकर गूँज उठी, जिससे उसके किरीट-अलंकृत शिरःपंक्ति कंपित हो उठी।

किंचित् मुस्कराकर और किंचित् ईर्ष्या-भाव के साथ उस (रावण) ने असंख्य राक्षसों में से किंकर-वर्ग को आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर आकाश के मार्ग को भी इस प्रकार रोक लो, जिससे वह वानर निकलकर न भाग सके और धीरे-से उसे जीवित ही पकड़कर शीघ्र यहाँ ले आओ।

त्रिशूल, करवाल, मूसल, भाला, तोमर, दंड, भिंडिपाल आदि शस्त्रों को अपने हाथों में लेकर, साकार विष बने हुए, असंख्य राक्षस सत्वर गति से इस प्रकार चल पड़े, जिस प्रकार समस्त संसार को मिटा देनेवाले प्रलयकाल में भयंकर समुद्र उमड़ पड़ा हो।

वे राक्षस ऐसे थे कि इस संसार में युद्ध होनेवाला है, यह कहने मात्र से उनके मन में मधु पीने से भी अधिक आनन्द उत्पन्न हो उठता था। यदि उनका वर्णन करना चाहें, तो वे अरण्य से बढ़े (भयंकर) थे, गर्जन करने में समुद्र से भी बड़े थे, अपनी ख्याति के कारण आकाश से भी बड़े थे।

(उन राक्षसों ने) परस्पर वैर करनेवाले देवों और दानवों, दोनों वर्गों में पारस्परिक सामंजस्य पैदा करने का यश पाया था। यह सोचकर कि यह मर्कट जो पुष्प आदि खाकर जीवित रहता है, क्या वस्तु है, इसे अपना शत्रु मानकर और उसे हराकर अपनी जय मानना भी एक अपयश ही है—उनका मन लज्जा के कारण दुःखी हुआ।

(राक्षस कैसे थे ?) वे करवाल लिये हुए थे, कवच धारण किये हुए थे, वीर-वलय से विभूषित थे, उनकी विशाल भुजाएँ दिशाओं को छूती थीं। उनके हाथ (ऐसे विशाल और काले थे कि) मेघों का उपहास करते थे। उनके सिर आकाश के ऊपर की सीमा को छूते थे। उनके पैर पहाड़ों से टकरा जाते थे (जिससे वे पहाड़ दूर हट जाते थे)। उनके वचन, एक साथ शब्द करनेवाले मेघ तथा नगाड़े की ध्वनि के समान थे।

उनकी भुजाओं पर, देवताओं के द्वारा प्रयुक्त दिव्य अस्त्रों के तथा उनके विरोधी असुरों द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों के आघात के चिह्न पड़े थे। उनके मुँह पर्वत की कंदरा के समान विशाल थे, जिनमें हाथियों और हथिनियों को उठाकर वे भर लेते थे। नवोदित उज्ज्वल तथा वक्र चंद्रकला के समान खड्ग-दंत उनके मुखों में दिखाई पड़ते थे। उनकी आँखों से क्रोध उमड़ रहा था।

चक्र, मूसल, गदा, करवाल, परिघ, शंख, मुद्गर, बरछे, भाले, त्रिशूल, काँटेवाले छड़, वज्रायुध, पाश, परशु, धनुष, दीर्घ बाण, नोकदार लौहदंड—ये सब (उनके हाथों में) चमक रहे थे।

स्वर्णमय आभरण (उनकी देह पर) चमक रहे थे। उनके शस्त्र, आँखें और देह, धूप की-सी ज्वाला उगल रही थीं। उनके कंधे पर्वत के समान पुष्ट और उभरे हुए थे। (वे एक दूसरे को धक्के देते हुए इस प्रकार जा रहे थे कि) पीछेवाले ढकेलते थे, तो आगेवाले पूछते थे कि क्यों ढकेल रहे हो ? उसके उत्तर में पीछेवाले कहते—आगे बढ़ते क्यों नहीं ? यह न जानते हुए कि आगे बढ़ने के लिए अब स्थान शेष नहीं रहा है, वे क्रोध से आगे रहनेवालों की पीठों को झुलस देते थे।

अपने ओठों को मरोड़-मरोड़कर रखनेवाले (अर्थात्, क्रोध करनेवाले) वे राक्षस, जिनके पास कठोर शस्त्र-रूपी विद्युत् चमकती थी, जो धनुष तथा बहते हुए निःश्वास से युक्त थे, जिनकी देह काले अंतरिक्ष में दिखाई पड़ती थीं, चारों ओर से इस प्रकार बढ़ आये, जैसे प्रलयकाल में वर्षा करनेवाले मेघ उमड़ आये हों।

एक वानर ने अकेले ही शीतल उद्यान को उजाड़कर, क्रीडापर्वत को भी जड़ से उखाड़ फेंका है। ओह, हमारा वीर दर्प भी कैसा अच्छा रहा!—वे यों सोचते थे। अब इससे बढ़कर अपमान की बात और क्या हो सकती है?—यह कहकर गर्जन करते थे। वे क्रोध से एक के आगे एक लपकते हुए चले जा रहे थे।

धनुष पर डोरी चढ़ाकर किये जानेवाले टंकार, वीर-वलयों से उठी ध्वनि, शंखों के नाद, धमकी और भर्त्सना के शब्द—ये सब पहले पृथक्-पृथक् और फिर, सब मिलकर बहुत बड़ा कोलाहल फैला रहे थे। उस घोर ध्वनि के सम्मुख प्रलयकालीन समुद्र का घोष तथा मेघ-गर्जन भी मंद पड़ जाते थे।

यह सोचकर कि रास्ते पर पैदल चलने के लिए स्थान नहीं है, कुछ (राक्षस) गगन-मार्ग से जा रहे थे। कुछ अपनी भौंहों और हाथ के धनुष दोनों को एक जैसे ही झुकाये, आह भरकर धुआँ निकाल रहे थे। कुछ एक के आगे एक बढ़कर, एक दूसरे के मार्ग को रौंदते हुए क्रोध प्रकट करते थे। कुछ लंका के कम विशाल होने से पर्याप्त मार्ग न पाकर आँखें फाड़कर देखते खड़े थे।

वे तलवारों को उछालते थे। ओठ चबाते थे। अपने बाजू पर ताल ठोकते थे, जिसकी ध्वनि से पत्थर भी टूट जाते थे। पैर उठाकर, फिर उसके रखने के लिए स्थान न पाने से क्रुद्ध हो, धक्का देते थे। अपने दृढ तथा वक्र दंतों को पीसते हुए आग-जैसे जल उठते थे।

सभी (राक्षस) पर्वत के जैसे थे। सभी अनेक शस्त्रों का प्रयोग करने में अभ्यस्त थे, वज्र के समान गर्जन करनेवाले थे, देवताओं पर विजय पाये हुए थे। असुरों के प्राणों को खा जानेवाले थे और वे इस प्रकार चलते थे कि उनके बोझ से धरती धमक जाती थी।

(उन राक्षसों में) राक्षस-नेता थे, नागजाति के वीर थे, जिनके शब्दायमान वीर-कंकण बिजली के समान चमकते थे। उनमें वे लोग भी थे, जिन्होंने भयंकर युद्ध में पराजित होकर भागनेवाले शत्रुओं को देखकर उपहास किया था। वे भी थे, जिन्होंने महान् निधियों के नायक कुबेर की कीर्त्ति के साथ (उसके नगर) अलकापुरी को विध्वस्त

किया था। वे भी थे, जो अपनी भुजाओं की खुजलाहट के कारण अपने साथ युद्ध करने-वाले बलवान् वीरों के अन्वेषण में, संसार-भर में घूम चुके थे।

यदि कहा जाय कि पहाड़ों को ठोकर मारकर हटा दो, समुद्र के जल को पी जाओ, सूर्य को धरती पर गिरा दो, उमड़ते बादलों को (अपने हाथ में लेकर) निचोड़ डालो, सर्पराज (शेषनाग) को पकड़कर भूमि पर पटक दो, पृथ्वी को उठा लो, तो उनमें से कोई अकेले ही, कोई भी काम कर सकता था। इतना ही नहीं—

उनके चलने से जो धूलि उड़ती थी, वह ऊपर के लोकों में पहुँचकर देवों की आँखों में भर जाती थी। वे भयंकर युद्ध के लिए जानेवाले सिंहों के समान, बलवान् तथा हिंस्र व्याघ्रों के समान, अंतरिक्ष में चलनेवाले भूतों के समान, क्षीर समुद्र से (उनके मथने के समय) उत्पन्न (हलाहल) विष के समान थे। वे युद्ध से कभी पीछे न हटनेवाले थे। वे (राक्षस) तीर के समान वेग से जा रहे, जैसे मेघ-समूह पहाड़ की ओर जा रहा हो।

उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। उनके श्वास के साथ धुआँ निकल रहा था। उनके त्रिशूल बिजली के समान (हनुमान् की ओर) बढ़ रहे थे। वे वज्र के समान गरज रहे थे। वे सब दिशाओं से वेग के साथ ऐसे आगे बढ़ रहे थे कि युगांतकालीन प्रभंजन और वज्रसमूह भी (उनके वेग से) लज्जित हो गये। उन्होंने मेघहीन आकाश-जैसे उजड़े हुए अशोकवन को चारों ओर से घेर लिया।

वह (हनुमान्) खुले स्थान में गगनस्पर्शी हिमालय के समान खड़ा था। उसे देखकर धूप फैलानेवाला सूर्य भी हट गया था। उसने शृगों, शंखों और वर्षाकालिक मेघ-सदृश नगाड़ों की ध्वनियों को, जो धरती के सब प्राणियों को भयभीत करनेवाले युद्ध की सूचना देती थी, अपने कान से सुना और उन राक्षस-वीरों को देखा।

सबसे उत्तम उस (हनुमान्) ने समझा—मैंने यह सोचा कि यह कार्य ही (अर्थात्, अशोक-वन को उजाड़ना ही) उचित है, सो ठीक ही निकला। बुद्धि की परिपक्वता से बढ़कर अच्छा गुण दूसरा क्या हो सकता है? वह हनुमान् यह सोचकर आनंदित हुआ कि सुरक्षित उद्यान को उजाड़ने के कारण एक ऐसा युद्ध छिड़ जायगा, जिसमें वह राक्षसों को हराकर भगा सकेगा।

'अब इसे पकड़ना है', यों कहते हुए हवा के जैसे आगे बढ़कर, दिन में ही रात्रि आ गई हो—ऐसे दिखनेवाले वे राक्षस उस (हनुमान्) को देखकर कह उठे—'यही, यही, यही!' और उज्ज्वल तथा विष-जैसे शस्त्रों का प्रयोग करने लगे, जिससे धरती, पहाड़, आकाश, अनुपम लंकानगर—सब एक साथ काँप उठे।

उन्होंने बड़े-बड़े नगाड़ों को इस प्रकार बजाया कि मेघ और तरंग-भरे समुद्र के घोष भी छिप गये। वे कंदरा-जैसे अपने मुखों को खोले हुए थे। अत्यन्त क्रोध के कारण (मुखों से) धुआँ निकल रहे थे। वे अपने भारी पैरों को इस प्रकार उठा-उठाकर रखते थे कि दोषहीन, अनेक फनवाले आदिशेष के सब कंधे और गले सिकुड़ गये। वे सब एकत्र होकर इस प्रकार शस्त्रों का प्रयोग करने लगे, जैसे बाँसों के वन में आग लग गई हो।

उस धर्म-स्वरूप ने वह सब समझ लिया। उसने अपने समीप सुन्दर युद्धवेष में

घेरा डाले हुए उन (राक्षसों) को मारने के लिए उपयुक्त एक दीर्घ और अति विशाल वृक्ष को एक हाथ में ले लिया। वह यह सोचकर आनंदित हुआ कि यह (वृक्ष), मन के अनुकूल सहायता करनेवाले मित्र के समान साथ देगा। वह इस प्रकार ऊँचा हो खड़ा रहा, जिस प्रकार भरे हुए समुद्र को मथने के लिए विशाल पादवाला मंदराचल खड़ा हो।

उसने (उस वृक्ष से, राक्षसों पर) इस प्रकार प्रहार किया कि उससे बड़े-बड़े पहाड़ों को विध्वस्त करनेवाला वज्र भी काँप गया। जैसे अनेक विशाल निर्झरों से युक्त पर्वत हों, वैसे ही पर्वताकार कंधोंवाले उन राक्षसों के, जो एक दूसरे के साथ लिपट गये थे, सिर पिस गये और उनके रक्त-प्रवाहों से धरती के तालाव भर गये।

कुछ ने पंक्तियों में खड़े होकर शस्त्रों का प्रयोग किया। किंतु वे नगाड़े के समान अपनी आँखों को खोकर धरती पर लंबे हो गिर पड़े, उनके चंद्रकलाकार खड्गदंत टूट गये, उनके शिर और कंधे फट गये, उनके रहे-सहे प्राण भी, भगदड़ में कुचल जाने से, निकल गये, उनकी आँतें और रक्त मिलकर कीचड़ बन गये। पूतिगंध (मांस की गंध) से युक्त उनके शरीर पिस गये।

कुछ वीरों के केश, जो युद्ध के उत्साह से उठ खड़े हुए थे, धक्के से निकली हुई ज्वाला में जल उठे। उनकी पीठ और जाँघें चिर गईं। उनके शरीर से रक्त का प्रवाह चक्कर काटता हुआ बह चला। उनकी भुजाएँ कटकर गिर पड़ीं, उनके शस्त्र चूर-चूर हो गये और उनके पेट फट गये। इस प्रकार वे यत्र-तत्र पहाड़ के जैसे पड़े दिखाई देने लगे।

भली भाँति गदा-युद्ध और शरवर्षा करनेवाले घने धनुर्धारी जो वीर घेरकर आनेवाले घने अंधकार के जैसे इकट्ठे हुए थे, उनकी छाती (हनुमान् की) लात लगते ही चूर-चूर हो गई। उनकी आँखों की पुतलियाँ उनके गर्जन के साथ ही निकल गईं। वे थरथराकर लहू उगलने लगे। वे देर तक धूल में लोटते रहे, फिर ऐसे मरे कि उनके प्राण बीजों के समान बिखर गये।

(हनुमान् ने उन राक्षसों को) आसपास के पहाड़ों पर दे पटका, जिससे कुछ (राक्षस) कुबेर की उस अलकानगरी में जा पहुँचे, जो उनको मारने के लिए सन्नद्ध थी। कुछ ऐसे उड़े कि उनसे आकाश ढक गया। वे ऊपर के सब लोकों में फैल गये। कुछ मेघों से पिये जानेवाले समुद्र में जा गिरे। कुछ चारों ओर छितरा गये। कुछ राक्षसों को हनुमान् ने ऊपर की ओर फेंका, तो वे सशरीर ही इस धरती को छोड़ चले।

हनुमान् ने उनको पकड़कर उनके पैर और हाथ चीर दिये और फिर उन्हें दूर फेंक दिया, तो वे ऐसे जा पड़े, जैसे गति देनेवाले पंखों के कटने पर गिरे हुए पहाड़ हों। हनुमान् ने अपनी विजयकारक पूँछ में कुछ निष्ठुर राक्षसों को लपेटकर ऐसा फेंका कि वे लट्टू के जैसे नाचने लगे।

(राक्षसों की) तलवारें टूट गईं। दृढ धनुष टूट गये, चमकते फरसे और त्रिशूल टूट गये। धवल प्रकाशवाले दाँत टूट गये। शस्त्रों को पकड़नेवाले विशाल कर टूट गये। उनकी आयु भी टूट गई।

(कुछ राक्षसों के) भारी सिर बिखर गये, उभरे हुए चमकते कवच बिखर गये, स्वर्ण के बने वीर-कंकण बिखर गये, स्वर्ण-मणियों के हार झनझनाहट के साथ बिखर गये, आभरणों के विविध रत्न बिखर गये, बड़ी-बड़ी चिनगारियाँ बिखर गईं, कुंडल बिखर गये और आँखों की काली पुतलियाँ भी बिखर गईं।

हाथों में धरे मुद्गर बिखर गये, 'भुशुंडि' (नामक शस्त्र) बिखर गये, चक्र बिखर गये, 'वप्पण' (नामक शस्त्र) बिखर गये, श्रेष्ठ रत्नकिरीट बिखर गये, दंतसमूह बिखर गये, हड्डियों के टुकड़े और चमड़े बिखर गये और देह के चिर जाने से प्राण भी बिखर गये।

कई (हनुमान् के) पैरों से मारे गये, कई विशाल हथेलियों से मारे गये, कई कंधे के धक्के से मारे गये, कई आग उगलनेवाली आँखों की रोशनी से मारे गये, कई (हनुमान् के) उत्तरोत्तर बढ़नेवाले बल को देखने से मर गये, कई घूँसों से मारे गये, कई अपने हाथों के करवालों से ही (हनुमान् के द्वारा उनके करवालों को छीनकर उन्हीं पर फेंकने के कारण) मारे गये और कई वृक्षों के आघात से मारे गये।

कुछ (हनुमान् के द्वारा) खींचे जाने से मरे। कुछ धक्के लगने से मरे। कुछ अपने स्थान से दूर उड़ा दिये गये; कुछ मुष्टि में पिसकर मरे। कुछ (हनुमान् की) गर्जन-ध्वनि सुनकर मरे। कुछ थप्पड़ खाकर मरे। कुछ (हनुमान् के) घूरकर देखने से मरे। कुछ भय खाकर मरे।

चक्र के समान (तीव्र गति से) चलनेवाले हनुमान् ने कुछ राक्षसों को उसके स्थान में ही पकड़कर मारा। कुछ को लताओं से आवृत बड़े वृक्षों पर पटककर मारा। कुछ को तमाचों से मारा। शव-राशियों में (छिपे हुए) कुछ राक्षसों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारा।

पर्वत के जैसे महान् आकारवाला हनुमान्, अपने ऊपर आकर टकरानेवालों से फिर टकराया। पंक्तियों में आ-आकर धक्का देनेवालों पर फिर धक्का दिया। पर्वत के समान रूपवाले जिन राक्षसों ने समीप आकर उसे बाँधने का प्रयत्न किया, उन्हें बाँध दिया। अपने हाथों से उसकी देह पर थप्पड़ मारनेवालों को थप्पड़ों से मारा।

वह (हनुमान्) ऐसा था कि यदि वे (राक्षस) उसे भूल जाते, तो भी उन्हें मारता। यदि वे उसका स्मरण करते, तो भी उन्हें मारता। विशाल आकाश में उड़ जाते तो भी उन्हें मारता। धरती पर पैदल चलते, तो भी उन्हें मारता। हाथों में चमकते हुए शस्त्र रखे वीर-कंकणधारी राक्षस जहाँ-जहाँ जाते थे, वहाँ-वहाँ वह (हनुमान्) चिनगारियाँ निकालता हुआ जा खड़ा होता और उनके प्रयुक्त सब शस्त्रों को अपने महान् कर में लेकर मसल देता।

उन राक्षसों की खोपड़ियों की गुद्दी और मज्जा, कीचड़ और पंकिल मिट्टी के समान धूल से भरी दीर्घ वीथियों में बह चली। नदी की बाढ़ जैसी प्रवहमाण रुधिर-धारा सारी लंका में लहरा उठी और असंख्य नगर-द्वार उस रक्त को उगलने-से लगे।

वेद-समान मारुति ने केवल कल्पना में आनेवाले क्षणमात्र काल में (राक्षसों को)

अपने हाथों और पूँछ में लपेटकर वृक्षों पर दे मारा, तो वे राक्षस-वीर ऐसे पिस गये, जैसे कोल्हू में डाला गया गन्ना हो। रुधिर-रूपी गन्ने का रस बहकर गरजते हुए समुद्र-रूपी पात्र में भर गया।

ज्योंही उसने राक्षसों को उठाकर फेंका, त्योंही उनके धक्के से ध्वजाओं से अलंकृत बड़े-बड़े प्रासाद ढह गये। मंडप गिर गये। बड़ी सूँड़वाले हाथी बैठ गये (मर गये)। गोपुर विध्वस्त हो गये। बड़ी-बड़ी हथिनियाँ और घोड़े भी मर गये।

ज्योंही मारुति ने अपनी दीर्घ बाहुओं से आघात करके उन्हें उठा कर फेंका, त्योंही कुछ राक्षसों ने (अपने प्रासादों पर गिरकर) अपने शरीर के टक्कर से ही उन प्रासादों को विध्वस्त कर दिया। कुछ ने अपने पैरों के आघात से अपनी स्त्रियों को मार दिया। कुछ ने अपने हाथ के शस्त्रों से अपने बच्चों को मार डाला।

हिलते-डुलते रहनेवाले महान् गज के समान उस (हनुमान्) ने राक्षस-स्त्रियों पर दया करके कुछ राक्षसों को यह कहकर कि, 'अब तुम अपने घर जाओ', उन्हें छोड़ दिया। कुछ नवविवाहिता युवतियों को, उनके प्राणसदृश पतियों को दे दिया (अर्थात्, उनको बिना मारे छोड़ दिया)। कुछ ऐसी राक्षसियों के पास, जो अपने पतियों से मान किये बैठी थीं, (क्योंकि वे राक्षस उन्हें छोड़कर युद्ध करने चले गये थे) उन राक्षसों को वापस भेज दिया।

वृक्षों में शव थे। चबूतरों पर शव थे। चौकों पर शव थे। समुद्र में शव थे। नगर के मध्य भाग में शव थे। आकाश में शव थे। राक्षस-वीथियों में शव थे। सारी लंका में शव-ही-शव बिखरे पड़े थे।

हनुमान् अकेले ही सब राक्षसों को मारता रहा। वह रुकता नहीं था। तब शरीरों से निकालकर जीवों को ले जानेवाला यम भी थककर ढीला पड़ गया (और अपना काम करना छोड़ दिया)। इसलिए चारों ओर नक्षत्र-मंडल में जीव-ही-जीव थे। मेघ-मंडल में जीव थे। आकाश में सर्वत्र जीव थे। अन्य सब अवकाशों में जीव-ही-जीव भरे थे।[1]

जब यह युद्ध हो रहा था, तब राक्षस मोहग्रस्त-से होकर, अधिकाधिक क्रोध से भरकर, विशाल गगन और दिशाओं में सर्वत्र ऐसे घिर आये, जैसे काले मेघ हों। (उनके बीच) हनुमान् सूर्य-जैसा लगता था।

वे बलवान् राक्षस, अपने कोलाहल से, हलचल से, अति विशाल भयानक शरीर से, काले रंग से, चमक से, दृढ त्रिशूल आदि के मछलियों के समान चमकते रहने से, उथल-पुथल से भरे समुद्र के सदृश थे और मारुति मंदर-पर्वत के सदृश था।

हनुमान् के अपने हाथों, पैरों और पूँछ से उन्हें जकड़ लेने से, पंक्तियों में रहने-वाले उनके किरीट-भूषित सिर टूटकर गिर जाते थे और वे (राक्षस) मरकर लुढ़क जाते थे। वह दृश्य ऐसा था, जैसे हनुमान् गरुड हो, जो देवों को भयभीत करके अमृत लिये जा रहा हो और राक्षस उसको घेरकर रहनेवाले सर्प हों।

---

१. भाव यह है कि जीव यमलोक में न जाकर इधर-उधर भटक गये।

वे राक्षस, जो बड़े अहंकार और वैर से क्रुद्ध होकर हनुमान् को घेरे हुए थे, मीन-भरे समुद्र से घिरी हुई धरती-भर में फैले हुए थे। वे हनुमान् के दृष्टिपथ में ज्यों-ज्यों आते थे, त्यों-त्यों मारे जाते थे, फिर भी वे समाप्त नहीं होते थे, किन्तु अधिकाधिक बढ़ते ही चले आ रहे थे। वे हाथियों के जैसे थे और हनुमान् मृगराज के सदृश था।

(राक्षसों के द्वारा अपने शस्त्रों को लेकर) ऊपर फेंकने से, आघात करने से, काटने से, गिराने से, चुभाने से, भोंकने से, छेदने से, चीरने से, टुकड़े करने से, लपेटने से, पकड़ने से, छेद में डालकर कुरेदने से—इस प्रकार की क्रियाओं के कारण, उस भीमाकार हनुमान् की भुजाओं में जो घाव किये गये थे, उनकी गणना करना असंभव था।

धवल दाँतवाले राक्षस अधिकाधिक संख्या में आ-आकर युद्ध करने लगते थे और ऐसा गर्जन कर उठते थे, जिससे अत्यन्त काले समुद्र और वर्षा करनेवाले मेघ भी लज्जित हो जाते थे। लेकिन, हनुमान् की प्रशंसा में देवता जो कोलाहल करते थे, वह उससे भी अधिक बढ़ा हुआ था।

अतिक्रोधी राक्षस पंक्तियों में आकर करोड़ों की संख्या में (हनुमान् पर) टूट पड़ते थे और विविध शस्त्रों का प्रयोग करते थे। उनसे जो घाव उत्पन्न होते थे और देवों, अप्सराओं तथा मुनियों के द्वारा बरसाये हुए जो पुष्प थे—दोनों हनुमान् की भुजाओं पर इस प्रकार लगे थे कि उनमें कोई अन्तर नहीं दिखता था।

उत्तम धर्मवीर (हनुमान्) एक स्थान से दूसरे स्थान में पतंग के समान संचरण करता, आठों दिशाओं में शीघ्रता से पहुँच जाता, उन्नत आकाश में उठ जाता और धरती पर आ खड़ा होता। इससे राक्षस तो थककर गिरते थे और मरते थे, किन्तु हनुमान की देह से पसीना तक नहीं निकलता था। उसने निःश्वास तक नहीं भरा।

रावण की आज्ञा से राक्षस, जो मानों विष खाये हुए हों, हनुमान् पर टूट पड़ते थे और युद्ध में मरते थे। उनमें से कोई भी डरकर पीछे पैर नहीं रखता था या साहस छोड़कर भागता नहीं था। अतः, उनकी संख्या का कम होना अंत तक नहीं ज्ञात हुआ। ऐसे राक्षसों से बढ़कर श्रेष्ठ वीर और कौन हो सकते हैं ?

किंकर-वर्गीय जो राक्षस हनुमान् से युद्ध करने आये थे, सब-के-सब दो मात्राकाल में ही मरकर समाप्त हो गये। तुरन्त ही उस उद्यान के प्रहरी (रावण के पास) भागकर गये। उनकी टाँगें पीछे की ओर मुड़ने के लिए आतुर हो रही थीं।[१] उनकी भुजाएँ काँप रही थीं, किंतु भय उनका कंठ पकड़कर आगे की ओर ढकेल रहा था। सहस्रों शवों पर गिरते-पड़ते और लड़खड़ाते हुए वे भाग चले।

वे शीघ्रता से (रावण के निकट) आ पहुँचे। (पर) दुःख और भय के कारण मुँह से कुछ नहीं बोल सके। सारी घटनाओं को हाथों के संकेत से ही कहने की चेष्टा करने लगे। वे धरती पर एक स्थान पर खड़े भी नहीं रह सके। वे चारों ओर

---

१. प्रहरी रावण के भय से उसके पास नहीं जाना चाहते थे, इसलिए उनके पैर पीछे की ओर मुड़ने के लिए आतुर हो रहे थे।

घूर-घूरकर देख रहे थे। थरथरा रहे थे। रावण ने उनकी वह दशा देखकर ही सारी बातें समझ लीं।

रावण अपने दसों मुखों से आग उगलने लगा, जिससे उसका काला रंग और भी निखर उठा। वह कह उठा—सब मर गये क्या, अथवा सब मेरी आज्ञा की अपेक्षा करके (युद्ध से) भाग गये, या युद्ध में हारकर सबको भूलकर कहीं जा छिपे? क्या हुआ?

तब प्रहरियों ने उत्तर दिया—क्रोधी वीर हारकर नहीं भागे, युद्ध करने से डरकर छिपे भी नहीं, किंतु एक वानर के हाथ वे इस प्रकार मिट गये, जिस प्रकार जान-बूझकर झूठी गवाही देनेवालों का वंश मिट जाता है।

रावण ने, जो क्रोध से ऐसा लगता था, मानों तीनों लोकों को निगलनेवाला हो, अपनी आज्ञा से आये हुए तथा निकट खड़े हुए अष्ट दिक्पालकों को देखा और मन में लज्जा का अनुभव कर फिर (उद्यान-राक्षसों से) कहा—कदाचित् तुमने सब घटनाओं को ठीक-ठीक नहीं जाना है।

वे उद्यान-राक्षस डर से थरथराते हुए फिर कुछ कह नहीं सके। तब विकसित पुष्पों से अलंकृत सिरवाले रावण ने कहा—एक वानर के हाथ से राक्षसों का हत होना, तुमने किसी से सुना या स्वयं तुमने देखा है?

तब उन उद्यान-पालकों ने कहा—एक ओर खड़े रहकर हमने अपनी आँखों से यह सब देखा। उस वानर ने समुद्र के समान उमड़कर आई हुई उस सेना को सब ओर घूम-घूमकर एक पेड़ से मार डाला। वह वानर अभी तक वहीं खड़ा है। (१—६१)

●

अध्याय ९

जंबुमाली-वध पटल

तब रावण ने, जंबुमाली नामक राक्षस को, जो अपने हाथ जोड़कर उसके सामने खड़ा था और जो पर्वत-जैसे पुष्ट कंधों और सर्प की प्रकृति से युक्त था, देखकर कहा—तुम तीव्रगामी अश्वों की सेना लेकर जाओ और उस (वानर) को घेर लो। उसे अपने वश में करके रस्सियों से बाँधकर ले आओ और मेरे क्रोध को शांत करो।

उस (जंबुमाली) ने प्रणाम करके (रावण से) कहा—हे प्रभो! असंख्य राक्षस-वीरों के रहते हुए, तुमने मेरा स्मरण किया है और मुझे यह आज्ञा दी है कि तुम यह कार्य पूरा करो। मुझसे बढ़कर भाग्यवान् और कौन है? यह कहकर जंबुमाली युद्ध करने के लिए यों चला, मानों युद्ध के लिए उत्पन्न रावण का सारा क्रोध साकार होकर चल रहा हो।[1]

---

१. आगे के कुछ पद्य प्रक्षिप्त-से प्रतीत होते हैं।—ले०

जंबुमाली, जिसे बड़ा युद्ध करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, अपनी सेना, रावण की आज्ञा से आई हुई एक सेना, अपने पिता की सेना तथा अपने मित्रों की बहुत बड़ी सेना को साथ लेकर चल पड़ा।

(उस सेना में) ऐसे हाथी थे, जो वज्र के जैसे चिंघाड़ते थे, लाल आँखोंवाले थे, उज्ज्वल दाँतोंवाले थे, मुखपट्ट से भूषित ललाटवाले थे तथा पर्वत के जैसे भारी रूपवाले थे। (उस सेना में) बड़े-बड़े रथ, विशाल चक्रों और लटकते हुए मुक्ताहारों से भूषित ध्वजाओं से युक्त ऐसे लगते थे, मानों कमलभव (ब्रह्मा) द्वारा सर्जन किये गये (सातों) मेघ एक साथ मिलकर जा रहे हों।

(उस सेना में) ऊँची जाति के अश्व थे, जो पंक्तियों में इस प्रकार जा रहे थे मानों हवा को ही चारों ओर से चार टाँगें लगा दी गई हों और उसमें प्राण डाल दिये गये हों तथा उसपर यम को बिठा दिया गया हो। पैदल सैनिक बड़े उल्लास के साथ इस प्रकार जा रहे थे, मानों विविध प्रकार के, पीली-पीली नाचती हुई पुतलीवाले बाघों को, पर्वतों के झुरमुटों से जगा-जगाकर, वहाँ एकत्र कर दिया गया हो।

(उस सेना में) तोमर, मूसल, तीक्ष्ण खड्ग, चमकते हुए परसे, कुलिश, अंकुश, भली भाँति पैनाये गये त्रिशूल, अग्नि की-सी ज्वाला से युक्त चक्र, चाप, दंड, लौह-शलाकाएँ, चमकते हुए कप्पण, कालपाश, बड़े पेड़, पहिये, तीक्ष्ण बाण आदि प्रकाशित हो रहे थे।

चित्र-विचित्र पताकाओं की पंक्तियाँ सब दिशाओं में यों उड़ रही थीं, मानों प्रशंसनीय तीक्ष्ण बरछे, त्रिशूल, लौहदंड आदि शस्त्रों के चुभ जाने से जल-भरे काले मेघों से पानी बरस रहा हो और वह पानी ही पताका के आकार में लहरा रहा हो।

विविध वाद्य बज रहे थे। बड़े-बड़े शंख बज रहे थे। स्वर्णमय रथों के पहिये गड़गड़ा रहे थे। घोड़े अपने-अपने स्थान में रहकर ही शब्द कर उठते थे। हाथी अपने मुँह खोलकर चिंघाड़ रहे थे—ये सब ध्वनियाँ उठकर अंतरिक्ष में जा पहुँचीं और वहाँ देवों के संभाषण को सुनना भी एक दूसरे के लिए असंभव कर दिया।

जब उस जंबुमाली की सेना चलने लगी, तब वह स्वर्णनगरी लंका पिस गई और उससे जो धूलि उठी, उसके छा जाने से साधारण पर्वत भी (स्वर्ण-पर्वत) मेरु के जैसे दीखने लगे और पुराने नगर स्वर्ग के समान हो गये।

उस पापी (जंबुमाली) के बड़े रथ को घेरकर जो सेना जा रही थी, उसमें बड़े चक्रवाले रथ, दस हजार थे। हाथियों की संख्या उससे दुगुनी थी। अश्वों की संख्या हाथियों से दुगुनी थी और पदाति-सेना अश्वों से भी दुगुनी थी।

(उस सेना में) जो रथी वीर थे, वे धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे। नाना माया-विद्याओं में चतुर थे। उन्हें अनेक वरों का भी बल प्राप्त था। उनकी आँखों से उनका प्रताप टपक रहा था। वे अपार शक्तिशाली दृढ भुजाओं से युक्त थे। प्राचीन वीर-जाति में उत्पन्न हुए थे। उनकी पीठ पर तूणीर बँधे थे। उनके वज्ररूपी पर्वत को रक्त-ताम्र के कवच ढके हुए थे।

मत्तगजों पर आरूढ हाथीवान, युद्ध-निपुण ऐरावत गजेन्द्र पर आसीन इन्द्र के

जैसे लगते थे। वे करवाल आदि शस्त्रों के प्रयोग में और अंकुश लेकर हाथी को चलाने की कला में निपुण थे। 'निरुति' (निर्ऋति ?) के वंश में उत्पन्न थे। उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। उनके शरीर सूर्य के जैसे चमक रहे थे।

अश्वों पर आरूढ वे वीर, जो अपने मार्ग की प्रकृति तथा अट्ठारह प्रकार की अश्वगतियों को भली भाँति जानते थे, युद्धोचित शस्त्रों के प्रयोग में पूर्ण निपुण थे। वे युद्ध-क्षेत्र की ओर चले जा रहे थे, किंतु उनके मन-रूपी घोड़े रथियों, हाथीवानों और अश्वारोहियों के सिरों पर पैर रखकर आगे-आगे भागे जा रहे थे।

इधर उज्ज्वल खड्ग-दंतवाले जंबुमाली को वह बड़ी सेना घेरकर जा रही थी, उधर देवों में भय व्याप्त हो रहा था। उसकी विशाल आँखें जाज्वल्यमान थीं। उसके वक्ष का कवच बिजली और धूप के जैसे चमक रहा था। वह स्वर्णमय रथ पर सवार होकर ऐसे जा रहा था कि पर्वत के मध्य से अग्नि उमड़ रही हो।

उधर अशोकवन में स्थित रामदूत भी, यह सोचता हुआ कि अभी तक राक्षस-वीर क्यों नहीं आये, खड़ा था। वह उनकी बाट जोहता हुआ, उद्यान के एक ऐसे (विशाल) तोरण पर चढ़कर खड़ा था, जो उस इन्द्रधनुष के समान ऊँचा था, जिसपर से चंद्र आदि ग्रहों और नक्षत्रों को छुआ जा सकता है।

वह हनुमान् उस तोरण पर ऊँचे स्थान पर खड़ा था, जिसके स्वर्ण और रत्न, बारी-बारी से अपनी कांति से अंधकार को दूर कर रहे थे। वहाँ खड़ा हुआ वह (हनुमान्), चारों ओर असंख्य किरणों को फैलाते हुए, समुद्र के मध्य दृष्टिगत होनेवाले सूर्य की समता करता था।

हनुमान् ने ऐसा गर्जन किया, जिससे वज्रों के साथ मेघ बिखर गये। तरंग-भरे समुद्र का घोष दब गया। पर्वतों पर झुरमुटों में रहनेवाले सर्प अपने प्राणों के सहित विष उगलने लगे। हिंस्र राक्षसों के मन में भय समा गया। देवता भी काँप उठे। वह निनाद ऐसा था, जैसे वीर राम ने धनुष का टंकार किया हो।

हनुमान् ने अपनी बाँह पर ताल ठोकी, तो अष्ट दिशाओं के दिग्गजों का मद दूर हो गया। दक्षिण दिशा के अधिपति यम का मन चौंक उठा। गगन में अविचल रूप में रहनेवाले नक्षत्र टूटकर पुष्पों के जैसे झर पड़े। धरती और पर्वत फट गये। समुद्र हलचलों से भर गया।

उस समय, राक्षस लहरों से भरे समुद्र के समान शब्द करते हुए, अपने बंधुओं के शवों से टकराकर गिरते-उठते हुए जा रहे थे। मार्ग में बड़ी शव-राशियों के पड़े रहने और उष्ण रक्तधारा के सर्वत्र फैले रहने से वे ठीक से नहीं चल पाते थे और इस दुविधा में पड़े रह जाते थे कि अब किस मार्ग से हम आगे बढ़ें।

जंबुमाली ने वहाँ से अपनी सेना को पृथक्-पृथक् पंक्तियों में (हनुमान् के) दोनों पार्श्वों और सामने से भेजा और स्वयं अपने बड़े रथ को आगे बढ़ाया। तोरण पर स्थित हनुमान्, जिस युद्ध की प्रतीक्षा करता हुआ बैठा था, उसके निकट आ जाने से उसकी भुजाएँ फूल उठीं।

वह उन्नत हनुमान् (युद्ध के लिए) सन्नद्ध खड़ा रहा। सुन्दर ऊर्ध्व-पुंड्र से सुशोभित उसका ललाट ही, जो घृत-भरी ज्वाला से युक्त दीपक के समान था, उसकी अग्र-गामी सेना थी। उसकी दोनों बाँहें, जिनके घने रोम पुलकित हो रहे थे और तीक्ष्ण नख रूपी खड्ग से युक्त थे, दोनों पार्श्वों की सेनाएँ थीं। उसकी श्रीयुक्त लम्बी पूँछ ही पीछे-वाली सेना थी।

वैरी राक्षस उमड़ते क्रोध के साथ उस वीर (हनुमान्) पर चारों ओर से चमकते हुए शस्त्रों को फेंकने लगे। उस समय शृंग और शंख बज उठे। दृढ धनुषों का टंकार गूँज उठा। विविध वाद्य घोष कर उठे। उनकी माया-विद्याएँ आनन्दित हो उठीं।

तोरण पर खड़ा हुआ हनुमान् ; अपने हाथों से, काले समुद्र-समान राक्षस-सेना द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों को पकड़-पकड़कर तोड़ देता और उन्हें समुद्र में फेंक देता। वह राक्षसों को पीस देता। चारों ओर चिनगारियाँ निकल पड़ीं। ज्वाला के समान क्रोध से भरे उस हनुमान् ने एक लौहदंड को कहीं से निकाल लिया।

वह (हनुमान्) कब बैठता, कब उठता, कब (तोरण पर से) उतरता, कब उछलकर ऊपर चढ़ता, कब इधर-उधर घूमता, यह जानना असंभव था। इधर राक्षस कहीं फैले हुए थे, कहीं जमा हुए थे, कहीं दूर खड़े थे, कहीं समीप खड़े थे। हनुमान् ने उन सबको (अपने लौहदंड से) मारकर गिरा दिया।

(हनुमान् ने) अपनी ओर फेंके गये और भयंकर वज्र के समान समीप आनेवाले सब शस्त्रों को बायें हाथ से पकड़कर छिन्न-भिन्न कर डाला और अपने दायें हाथ से (शत्रुओं के साथ) युद्ध करता रहा। उस आघातों से विनाशकारी हाथी पिस गये, बड़े-बड़े रथ टूट गये और अश्वसेना मिट गई।

वे हाथी, जिनके कपोलों से मद की धारा प्रवाहित हो रही थी, अपने ऊपर की ध्वजाओं के साथ अपने दाँतों को भी खो बैठे, अपनी लंबी सूँड़ खो बैठे, अपने विशाल पैरों को खो बैठे, अपने गर्जन को खो बैठे, मद-प्रवाह को खो बैठे और अपने भयंकर क्रोध को भी खो बैठे।

बड़े-बड़े रथ चारों ओर टूट गये। उनके दीर्घ दंड (जो सामने लगे रहते हैं), टूट गये। उनके पहिये टूट गये। ऊपर के वितान टूट गये। उनमें लगी उत्तम घंटियाँ टूट गईं। शीघ्रगामी अश्व टूट गये (अर्थात्, मर गये)। इस तरह वे रथ चूर-चूर हो गये।

अश्व-सेना की यह दशा हुई कि कुछ खंड-खंड होकर पड़े थे। कुछ धूल में लोट रहे थे। कुछ प्राणहीन हो गये थे। कुछ तड़प रहे थे। कुछ आहत हो गये थे। कुछ जल गये थे। कुछ टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। कुछ ऊपर उठ गये थे। कुछ मरकर नीचे दब गये थे। कुछ पैरों के टूट जाने से, पहाड़ के जैसे धरती पर बैठ गये थे--इस प्रकार उनका अन्त हो गया।

(हनुमान् के साथ) युद्ध करने के लिए आये हुए पदाति-सैनिक, भयभीत हो गये। आश्चर्य-विमुग्ध हो गये। गिरे और उठे। मोह में पड़ गये। बुद्धिभ्रष्ट हो गये। व्याकुल हो गये। पुनः युद्ध करने जाकरमर गये। कुछ के सिर कटकर गिरे। जो बच गये थे, वे अपनी शक्ति खोकर व्याकुलता से धरती पर लुढ़क गये।

हनुमान् ने हाथियों से ही हाथी को मारकर उन्हें ध्वस्त कर दिया। घोड़ों से घोड़ों को मार गिरा दिया। दृढ धनुर्धारी पैदल-सेना को पैदल वीरों से ही मिटा दिया। घंटियों की पंक्तियों से शोभित रथों को रथों से ही टकराकर भग्न कर दिया।

हनुमान् ने उन राक्षसों को यों रौंदा कि उनके पैर और सिर बिखर गये। विशाल पर्वत-सदृश उनकी भुजाओं और उनके खड्गों के साथ ही उनका भेजा और लहू खौलती हुई कढ़ी बन गये, जिसमें हाथी भी डूब गये।

हनुमान् ने, बलिष्ठ पर्वत-जैसी भुजावाले वीरों को, उनके मुँह के वक्रदंतों को, उनके दीर्घ सूँड़वाले हाथियों को, उनके बड़े-बड़े धनुषों और बरछों को तथा उनके श्लाघा-मय शब्दों को, उनके प्राणों के सहित ही कुचलकर धरती में रौंद दिया।

हनुमान्, (राक्षसों की) धुआँ उठानेवाली ज्वाला जहाँ-जहाँ जाती थी, वहाँ-वहाँ जाता था। ऊँचे शिखरवाले उज्ज्वल रथों की पंक्तियों में जाता था। हाथियों और घोड़ों की सेनाओं में संचरण करता था और वीरों के उज्ज्वल शस्त्रों के मध्य एवं उन (वीरों) के सिरों पर विचरण करता था।

(वह हनुमान्) शीघ्रगामी बड़े-बड़े घोड़ों की पीठ पर, वैरी राक्षसों के सुरभित हार-भूषित वक्षों पर, घंटियों से युक्त एक रथ से दूसरे रथ पर, मद-जल बहानेवाले, पर्वत-जैसे हाथियों पर प्रलयकालीन वज्र के समान कूद पड़ता था।

उस समय हनुमान्, सर्वत्र बिना बाधा के चलनेवाले वेत्रदंड के समान, दुर्वार्य दोनों कर्मों को मिटा देनेवाले ज्ञान के समान, धन के लिए हर किसी को अपने स्तनों को (आलिंगन के लिए) देनेवाली वेश्याओं के मन के समान तथा फिरनेवाले चक्र के समान घूम रहा था।

'विष्णु भगवान् के जो भक्त होते हैं, वे उन (भगवान्) के गुणों को प्राप्त करते है।' इस तथ्य को वह दोषहीन (हनुमान्) निरूपित करने लगा और भूमि पर, आकाश में, दिशाओं में, युद्ध करनेवाले बलवान् राक्षसों की आँखों में और मन में पृथक्-पृथक् रूप में विराजमान हुआ।

ध्वजा-युक्त बड़े रथ के साथ, घोड़ों के झुंड को अपने ही विशाल हाथों की मुट्ठी से मारकर धरती पर पीस दिया। क्रोध से गर्जन करनेवाले बड़े दाँतोंवाले पर्वत-सदृश हाथियों को दूसरे हाथ से पकड़कर उनके प्राणों को निचोड़ डाला।

काले रंगवाले, खड्गदंतवाले, पाश-आयुध धारण करनेवाले, क्रोध से अग्नि-सदृश आँखों से घूरनेवाले, तीक्ष्ण परसे धारण करनेवाले, भयंकर गर्जन करनेवाले, जिससे ऐसा लगता था, मानों विरोध करनेवाले अनेक यम ही आ गये हों, राक्षसों को पृथक्-पृथक् दंड देकर उन्हें इस प्रकार मारा कि मानों वह स्वयं रुद्र बन गया हो।

चक्र, तोमर, मूसल, गदाएँ, तीक्ष्ण खड्ग, अनेक रथ, घोड़े, छत्र, ध्वजाएँ— सब एक साथ मिलकर पड़े थे। (उस रण-क्षेत्र में) बहते हुए रक्त-प्रवाह की वीचियों में बड़े-बड़े हाथी भी बह जाते और समुद्र में जा गिरते थे।

हनुमान् से प्रयुक्त लौहदंड के आघात से राक्षसों के सिर उनके शरीरों से टूट-

कर आकाश में उड़ते थे, पहाड़ों से जा टकराते थे, सब दिशाओं में बिखर जाते थे। एक दूसरे से टकरा जाते थे। टुकड़े-टुकड़े होकर युद्धक्षेत्र में पहले गिरे हुए सिरों में फैल जाते थे।

वह यम-सदृश जंबुमाली, उस पर्वताकार मत्तगज के समान खड़ा रहा, जो क्रोध-भरे सिंह के द्वारा अपने यूथ के सब हाथियों के मारे जाने पर अकेले खड़ा रहता है। शहद की जैसी उसकी लाल-लाल आँखों से आग की ज्वालाएँ फूटने लगीं।

पवन से भी अधिक वेगवान् अश्वों की सेना जिन राक्षसों के पास थी, वे (राक्षस) खेत रहे। रक्तप्रवाह और मांस में बहुत गहरे कीचड़ के फैल जाने से रथ के पहिये भी उसमें धँस जाते थे। अब उनसे हटकर जाने के लिए भी मार्ग नहीं रहा। ऐसी दुःस्थिति में वह बेचारा (जंबुमाली) त्वरित गति से आगे बढ़ने लगा।

अपनी देह के घावों कारण पुष्पों से भरे पेड़ के जैसे दिखनेवाले हनुमान् ने (जंबुमाली से) कहा—तुम्हारे हाथ में अब एक ही शस्त्र बचा है। रथ भी वैसा ही (एक ही) है। अपने साथियों को बचाने की शक्ति भी तुझमें नहीं रही। अब तुम अकेले रह गये हो, अतः तुम निश्चय ही युद्ध में मारे जाओगे। तुम क्या कर सकते हो? बलहीन के प्राण लेना उचित नहीं है (अर्थात्, तुझ बलहीन के प्राण लेना नहीं चाहता)। तुम लौट जाओ।

जंबुमाली ने उत्तर दिया—अच्छा! अच्छा! तुम मुझपर दया दिखाने लगे।' और, इतना कहकर हँस पड़ा, तो चिनगारियाँ निकल पड़ीं। वह फिर, बोला क्या मुझे भी तुमने युद्ध में गिरे हुए अन्य राक्षसों के जैसा समझ लिया है?—यों कह-कर, अपने अतिदृढ धनुष से, भली भाँति तपाकर तेज किये गये तीरों को एक, दस, सौ और सौ हजार संख्या में छोड़ा।

जंबुमाली को देखकर हनुमान् ने कहा—अपने हाथ में धनुष लेकर तुम खाली हाथ रहनेवालों के साथ ही अच्छी तरह युद्ध कर सकते हो, किंतु मुझे पराजित करना तुम्हारे लिए असंभव है। यह कहकर अपने दाँतों को प्रकट करके हनुमान् हँस पड़ा और अपनी ओर आनेवाले तीरों को अपने लौहदंड से उसी प्रकार छितरा दिया, जिस प्रकार वर्षा की बौछार को प्रभंजन छितरा देता है।

तब वह राक्षस (जंबुमाली) अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। हनुमान् पर उसके आगे और पीछे छोड़े हुए बाणों को टूटकर गिरते हुए देखकर, वह उस (हनुमान्) के चारों ओर अपने बड़े रथ को चलाकर उसके समीप पहुँचने का मार्ग ढूँढ़ने लगा। परसा-जैसे अपने अति तीक्ष्ण बाणों से उसने हनुमान् के हाथ के लौहदंड को काट दिया।

हनुमान् (अपने हाथ के लौहदंड के टूट जाने से) मन में विचलित हुआ और जंबुमाली द्वारा प्रयुक्त बाणों को अपने हाथ से ही रोकता रहा। फिर, झट उसके रथ पर कूद पड़ा, जिसे देखकर पुष्पालंकृत देवता हर्षध्वनि कर उठे। जंबुमाली के टंकार करनेवाले धनुष को छीनकर उसे उसके कंठ में लगाकर इस प्रकार खींचा कि उस राक्षस का सिर कटकर उसके खुले मुँह को बंद करते हुए, धरती पर जा गिरा।

हनुमान् ने (रथ से बाहर) कूदकर उस रथ को, उसके सारथि को और घोड़ों को कुचलकर चटनी बना दिया। फिर, दीर्घ तोरण पर चढ़कर बैठ गया। तब उस उद्यान की रक्षा करनेवाले देव, जो भीतर से सूखे रहने पर भी बाहर से पुष्ट-से दिखते थे, असंख्य राक्षसों को मरे हुए देखकर भयभीत हो, युद्धक्षेत्र से (रावण को खबर देने के लिए) भाग चले।

प्रवहमाण रुधिर-धारा लंका की वीथियों में बह चली और राक्षस-वीरों के शवों को उनके घरों पर उनकी पत्नियों के सम्मुख, बहा ले गई। लंका-भर में घोर आर्त्तनाद उठा, जिससे वह नगर हिल गया। धर्म-देवता, यह सोचकर कि आज इस (हनुमान्) के द्वारा राक्षसों का बल क्षीण हुआ, प्रसन्न हुआ।

वे देवता (जो रावण के समीप भाग गये थे), स्वर्णहारों से भूषित रावण के प्रासाद में प्रविष्ट हुए। किंतु, रावण से कहने के लिए उनके मुँह से कुछ शब्द नहीं निकलते थे। वे सिसकियाँ भरते हुए खड़े रहे। रावण उन्हें देखकर हँसा और कहा—'डरो मत'। तब उन्होंने उससे निवेदन किया—हे प्रभो ! हमारे सब लोग मारे गये। जंबुमाली भी मारा गया। (यह सब करनेवाला) वह वानर अकेला ही है।

यह सुनते ही, रावण का क्रोध अत्यधिक मात्रा में भड़क उठा। (सारी घटनाएँ) सोचकर वह अपनी आँखों से रक्त की बूँदें गिराने लगा। फिर, यह कहकर कि 'उस वानर को मैं पकड़ूँगा'—वह उठा। यह देखकर पाँच सेनाधिपति उससे इस प्रकार निवेदन करने लगे—(१–५१)

●

अध्याय १०

पंचसेनापति-वध पटल

(पाँच सेनापतियों ने रावण से कहा—) हे पराक्रमी ! मकड़ी पकड़कर खानेवाले एक क्षुद्र मर्कट पर यदि तुम आक्रमण करने जाओगे, तो (उससे तुम्हारे पराक्रम का महत्त्व ही घट जायगा और) जिन दिग्गजों के साथ तुमने, अपनी आँखों से अग्नि-ज्वाला निकालते हुए युद्ध किया था और उन्हें मदहीन करके, उन पर्वतों के जैसे बना दिया था जिनके निर्झर सूख गये हों, अब (वे दिग्गज) पुनः मद प्रवाहित करने लगेंगे (अर्थात्, दिग्गज तुम्हारा भय छोड़ देंगे)।

तुम्हारा एक मर्कट पर झपटना ऐसा ही है, जैसे सुन्दर पंखों और अत्यन्त बल से युक्त गरुड, अपना क्रोध प्रकट करता हुआ, एक मच्छड़ पर झपटे। कैलास-पर्वत (जिसको तुमने पहले उखाड़ा था) लंबी जयमाला से भूषित तुम्हारी भुजाओं के बल को याद करके रात-दिन भय से काँपता रहता है। अब यदि तुम एक मर्कट पर चढ़ाई करने जाओगे, तो उस (कैलास-पर्वत) का वह भय दूर हो जायगा।

यदि तुम एक मर्कट पर आक्रमण करने लगोगे, तो उन त्रिमूर्त्तियों के मुख मंदहास से भर जायेंगे, जो तुम से परास्त हो गये थे। अपनी विजय की आशा छोड़कर तुम भाग गये थे और तुम्हारा नाम भी (डर के कारण) सुनना नहीं चाहते थे। अतः, इस कार्य से बढ़कर तुम्हारी प्रतिष्ठा को घटानेवाला कार्य और कौन होगा ? और, इससे लाभ ही क्या होनेवाला है ?

हे राजन्! इतना ही नहीं, शत्रु यह सोचेंगे कि तुम्हारी सहायता करनेवाले कोई योग्य साथी नहीं हैं। तुमने (उस वानर से) युद्ध करके उसपर विजय पाने के लिए आवश्यक बल से हीन राक्षसों को भेजा था। यदि तुम विजय चाहते हो, तो हमें इस कार्य पर जाने दो।—उन (पाँच सेनापतियों) ने रावण से इस प्रकार प्रार्थना की। तब रावण ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया।

वे सेनापति यों आनन्दित हुए, जैसे तीनों लोकों का राज्य उन्हें मिल गया हो। उन्होंने अपने ललाट से धरती को छूकर (रावण को) नमस्कार किया। फिर, राजप्रासाद से बाहर आकर, उन्होंने आज्ञा दी कि अतिदृढ रथों, गजों और तुरंगों की अपार सेना को लेकर राक्षस योद्धा शीघ्र ही आवें।

वल्लुव (घोषणा करनेवाले) लोगों ने हाथियों पर से नगाड़े बजा-बजाकर घोषणा की। उस घोषणा को सुनकर अपार राक्षस-सेना, आग-भरे समुद्र के समान, सभी दिशाओं से उमड़ आई। निरन्तर भारी वर्षा करनेवाले मेघों के समान भेरियाँ बज उठीं। शस्त्रास्त्र ऐसे चमक उठे, जैसे नक्षत्रों से पूर्ण आकाश के मध्य बिजलियाँ कौंध उठी हों।

उस सेना की दीर्घ श्वेत ध्वजाएँ, जिनके दंड मेघों में छिपे थे और जो आकाश-गंगा की तरंगों के सदृश थे, इस प्रकार हवा में फड़फड़ा रहे थे, मानों दुर्दम वीर मारुति के साथ युद्ध में मरकर वीरगति प्राप्त किये हुए उसके शत्रुओं का यश हो।

राक्षस-वीरों ने, अपने योग्य स्वर्णमय वीर-कंकण धारण किये, शरों से पूर्ण तूणीर कसे, कवच पहने, घोड़ों पर बढ़िया जीन रखे, रथ तैयार किये और हाथियों को सजाया।

हाथियों का मदजल नदी बनकर बह चला। उस नदी का जल रथ के पहियों से उठी हुई धूल के मिल जाने से कीचड़ बन गया। उस कीचड़ को घोड़ों के खुरों ने (उसपर दौड़-दौड़कर) धूल बना दिया। उन घोड़ों के लगाम-लगे मुखों से बहनेवाले फेन ने उस धूल को फिर कीचड़ बना दिया।

वेग से दौड़नेवाले रथों की गड़गड़ाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, बड़े हाथियों का चिंघाड़, (सिपाहियों के) वीर-कंकणों की ध्वनि, अनेक युद्धवाद्यों का घोष—इन सबके मिल जाने से प्रलयकालिक समुद्र के गर्जन से भी तिगुनी ध्वनि सुनाई पड़ी।

चक्रवाले रथों की संख्या पचास हजार थी। मुखपट्ट-भूषित हाथियों की संख्या भी उतनी ही थी। प्रलयकालिक पवन के जैसे घोड़ों की संख्या उससे दुगुनी थी। बल-शाली, श्रेष्ठ शस्त्रधारी पदाति-सेना की संख्या उससे भी दुगुनी थी।

ज्यों-ज्यों (सेनापतियों की) घोषणा सुनाई जाती थी, त्यों-त्यों भयंकर राक्षस-सेना बाढ़ के समान आ-आकर एकत्र होती जाती थी। यहाँतक कि उसके हिलने-डुलने

के लिए भी पर्याप्त अवकाश न होने से वह घनी होकर खड़ी थी ! भली भाँति तपाकर पैनाये गये चमकते हुए शस्त्र, एक दूसरे से रगड़ खाते थे, तो उनसे चिनगारियाँ इस प्रकार उठती थीं कि मेघसमूह झुलस जाता था।

युद्ध-सज्जा से अलंकृत सुन्दर हाथियों के पार्श्वों में लटकाई गई घंटियाँ ऐसी बजती थीं, जैसे मेघ गरज रहे हों। उनकी अग्नि के समान लाल-लाल आँखों की काली-काली पुतलियाँ तथा उनके कपोलों पर के रत्न इस प्रकार चमकते थे, मानों काले मेघों के मध्य सूर्य चमक रहा हो।

उस समय, घुँघराले केशोंवाली (उन सैनिकों की) पत्नियों, चूड़ियों से सुसज्जित करोंवाली बेटियों, माताओं तथा अन्य बन्धु लोगों ने बड़ी घबराहट के साथ उस घनी सेना के मार्ग को रोग लिया। (जब उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ, तब) वे यह कहकर विलाप करने लगीं कि 'अबतक जो लोग युद्ध करने गये, उनमें से एक भी नहीं लौटा, इसलिए हम भी उस वानर को अपने प्राणों की बलि दे देंगे। सब चलो।'

वे पाँचों सेनापति, जिन्होंने (अपनी आकृति से) साकार काले मेघों के उपमान को भी मिटा दिया था (अर्थात्, काले मेघ भी उनके उपमान नहीं हो सकते थे) और जिनके उपमान, साकार पंचभूत ही बन सकते थे, दोनों ओर से उमड़ती हुई चलनेवाली सेना के मध्य ऐसे जा रहे थे, जैसे विचित्र कलायुक्त रथ पर आरूढ हो सूर्य ही जा रहा हो।

उनके आगे-आगे विविध वाद्य बज रहे थे। वे चिनगारियों की पंक्तियाँ उगलते हुए जा रहे थे। धनुष पर बाण चढ़ाकर उनको टंकारित करते हुए जा रहे थे। वे (पाँचों सेनापति) उन पंचेन्द्रियों के सदृश थे, जो इन्द्रियों को विवेक की शिक्षा देनेवाले मुनियों और ऋषियों के लिए अति निष्ठुर अन्तःशत्रु बनकर रहते हैं।[1]

उनकी दीर्घ भुजाएँ ऐसी थीं कि उनमें इन्द्र का वज्रायुध, दक्षिण दिशा के पति (यम) का अपनी नोक में आग रखनेवाला दंडायुध, शिव का त्रिशूल, ये सब एक छोटी सूई के बराबर भी नहीं चुभ सकते थे।

उन्होंने अपने माथे पर ऐसी कलँगियाँ धारण कर रखी थीं, जिनमें शूरों के संहार-कर्त्ता (सुब्रह्मण्य) के (वाहन) मयूर से छीने गये पंख तथा सृष्टिकर्त्ता के (वाहन) हंस से छीने गये पंख लगे थे।

उनके कानों में सुन्दर कुंडल शोभित हो रहे थे, जो (कुंडल) पूर्वकाल में स्वर्णाभरण से भूषित भुजावाले रावण के वक्ष के धक्के से दिग्गजों के टूटे हुए दाँतों से बनाये गये थे। वे अष्ट दिशाओं के दिग्गजों के मुखपट्ट से बने वीरपट्ट (अर्थात्, कवच) पहने हुए थे।

पूर्वकाल में रावण ने नव निधियों के प्रभु (कुबेर) को परास्त करके और

---

१. भाव यह है—मुनि लोग ज्यों-ज्यों अपनी इन्द्रियों को सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं, त्यों-त्यों वे इन्द्रियाँ विपरीत मार्ग पर जाने का प्रयत्न करती हैं; अतः इन्द्रियाँ मुनियों के अन्तःशत्रु बनकर उन्हें पीडा देती रहती हैं। ये पंच सेनापति उन इन्द्रियों के जैसे ही विपरीत मार्ग पर जानेवाले थे।—अनु०

उसको उनकी नगर से भगाकर, वहाँ की सारी संपत्ति लूट ली थी और स्वर्णाभूषणों की राशियाँ वहाँ से उठा लाया था। वे पंचसेनापति उन्हीं आभूषणों को पहने हुए थे।

वे (पंचसेनापति) इतने बलवान् थे कि प्राचीन काल में जब (राक्षसों से युद्ध में पराजित होकर) अपमान को प्राप्त हुआ इन्द्र अपने गज पर आरूढ होकर तीव्र गति से भागने लगा था, तब इन्होंने उसके मंदर-पर्वत के समान गज की पूँछ को पकड़कर यह कहा था कि यदि तुम बलवान् हो, तो इस गज को आगे चलाओ।

एक बार जब लंका के निवासियों ने रावण से निवेदन किया था कि ब्रह्मदेव की आज्ञा का पालन करनेवाला यम, लोगों की विधि के अनुसार काम करता है (अर्थात्, लोगों की आयु के समाप्त हो जाने पर ही उनके प्राण हरण कर लेता है) और तुम्हारे शासन की उपेक्षा करता है, तब नीले रंगवाले रावण के क्रोध को शान्त करने के लिए, उन्हीं (सेनापतियों) ने यम के हाथ-पैर बाँधकर उसे बंदी बना लिया था।

उनके विशाल वक्ष पर्वतों का उपहास करते थे। उनकी दीर्घ भुजाएँ समुद्र की विशाल तरंगों का उपहास करती थीं। उनकी हिंसा-वृत्ति यम की मारक-वृत्ति का उपहास करती थी। उनकी आँखें इस प्रकार आग उगलती थीं कि वे लुहार की भट्ठी का उपहास करती थीं।

प्रज्वलित वडवाग्नि यदि प्रलय मचाती हुई भीषण चंचल ध्वनि के साथ सारे संसार को आवृत करने के लिए दिग्दिगन्तों में व्याप्त हो जाय, या प्रचंड मारुत अधिकाधिक वेग से बहने लगे, या विशाल समुद्र उमड़ उठे, तो भी वे सेनापति उनको दबाने की शक्ति रखनेवाले थे ।

इस प्रकार के वे पाँचों सेनापति, अपनी सेना के साथ चलकर उस सुदृढ तोरण-द्वार पर जा पहुँचे और वह सेना चारों ओर से उसे घेरकर खड़ी हो गई। हनुमान् उनके सब कार्यों को ध्यान से देखता रहा।

इन्द्रादि देवताओं ने उन पंचसेनापतियों के बल और उनकी अपार सेना के गर्व को देखा तथा उनके मध्य स्थित एकाकी हनुमान् को भी देखा, तो उनके मन में करुणा, वेदना और भय उत्पन्न हो गये।

विविध शास्त्रों का अध्ययन किये हुए मारुति ने, यह सोचकर कि ये सब राक्षस निश्चित रूप से आज ही मिट जायेंगे, आनंदित हुआ। उसने अपने को चारों ओर से घेर लेनेवाली अन्तरहित सेना को ध्यान से देखा और फिर अपनी भुजाओं को भी देखा।

तब वे असंख्य राक्षस यह सोचकर कि लघु सिरवाले इस मर्कट ने अकेले ही एक बड़े युद्ध में विजय पाई और देवताओं के यश को निर्मूल करनेवाले राक्षसों को विध्वस्त कर दिया, भयग्रस्त हो गये।

उस समय, देवेन्द्र के नगर-द्वार से उठाकर लाये गये और अशोकवन में रखे गये उस तोरण पर (बैठा हुआ) हनुमान् अपने शरीर को इस प्रकार फुलाकर विराट् बनाने लगा कि वह अपनी ऊँचाई के कारण अत्युन्नत आकाशपथ को भी पार कर गया।

वे राक्षस महान् आकारवाले उस हनुमान् को देखकर भयग्रस्त हुए। फिर,

क्रूर स्वभाववाले वे क्रोधोद्विग्न हुए। अपने धनुषों को झुका-झुकाकर बाण छोड़ने लगे। शंख-समूह बज उठा। नगाड़े गरज उठे।

राक्षसों ने अग्नि उगलनेवाले असंख्य आयुधों को हनुमान् पर फेंका। वे शस्त्र (हनुमान् की) देह के रोमों में उलझकर ऐसे लगते थे, जैसे वे (उसकी देह को) खुजला रहे हों। हनुमान् इस (खुजलाने के) सुख का अनुभव करता हुआ आँखें मूँदकर खड़ा रहा।

वीर-दर्प से युक्त सब राक्षसों ने एक साथ ही बड़े क्रोध के साथ हनुमान् पर बड़ा आघात किया। तब हनुमान् ने यह सोचकर कि अब शीघ्र ही उन राक्षसों का वध कर दूँ, जिससे दूसरे राक्षस युद्ध करने के लिए आ जायें, एक लौहदंड अपने हाथ में उठा लिया।

हनुमान् ने अपने लौहदंड से, अपने पर फेंके गये शस्त्रों को, क्रोधी वीरों को, आघात करने के लिए आये हुए अश्वों को, मार्ग को रोकनेवाले रथों को और मेघ-पंक्तियों के समान ध्वजायुक्त गजों को इस प्रकार मारा कि वे धरती पर गिरकर मिट गये।

(वह हनुमान्) मद-प्रवाह से युक्त गजों के दाँतों को उखाड़कर उनसे बड़े-बड़े रथों को मारकर उन्हें ध्वस्त कर देता। उन विध्वस्त रथों के चक्रों को लेकर युद्ध करने-वाले वीरों को मार गिराता। उन गिरे हुए वीरों के खड्ग लेकर घंटियों से भूषित घोड़ों को काट देता।

अपने हाथों में दो रथों को उठाकर ऐसा मारता कि बड़े-बड़े दो गज मरकर धरती पर लोट जाते। अपने दोनों हाथों में दो बड़े-बड़े गजों को उठाकर दोनों ओर से आनेवाले घोड़ों की पंक्तियों को विध्वस्त कर देता।

कभी एक विशाल पहाड़ को उखाड़ लेता और उससे सहस्रों रथों को तोड़कर धरती पर पीस देता। कभी सहस्रों हाथियों को एक बड़े वृक्ष से क्षण-मात्र में मार गिराता।

(राक्षसों के द्वारा) अपने ऊपर चलाये गये हाथियों को छितरा देता। रथों को रौंद देता। घोड़ों को पीस देता। वीरों को धरती पर पटक अपने लौहदंड से कुचल देता। उनके सिरों पर कूद पड़ता, उन्हें काटता और घूँसों से मारता।

वेगवान् घोड़ों से जुते रथों और हाथियों को उठाकर यों फेंक देता कि विशाल दिशाएँ और आकाश उनसे भर जाते। अपने बड़े-बड़े हाथों से, लगाम लगे शीघ्रगामी तुरंगों और विजयी शूलधारी वीरों को पीस डालता।

जब वह अग्निज्वाला उगलनेवाली लाल आँखों से युक्त भयंकर गजों को अपने विशाल करों से उठाकर आकाश में फेंक देता, तब वे गज अपने ऊपर की ऊँची ध्वजाओं के साथ ही समुद्र में गिरकर ऐसे डूबने लगते, जैसे ऊँचे मस्तूलवाली नौकाएँ समुद्र में डूब रही हों।

अनुपम वीर (हनुमान्) के द्वारा उसके विशाल हाथों से समुद्र में फेंके गये रथ, जो घंटियों एवं चक्रों से सुशोभित थे और जिनमें घोड़े जुते हुए थे, ऐसे लगते थे, जैसे समुद्र पर प्रकट होनेवाले, सहस्रकिरण (सूर्य) का रथ हो।

(हनुमान् के द्वारा) ऊपर फेंके गये घोड़े, आकाश से टकराकर, ऊँची तरंगों-

वाले समुद्र में गिर जाते थे, शक्तिहीन हो जाते थे और अपने मुँह से रक्त की धारा उगलते हुए ऐसे लगते थे, जैसी अपने मुख में अग्नि धारण की हुई वडवा (नामक घोड़ी) हो।

(हनुमान् के द्वारा) पूँछ में लपेटकर घुमा-घुमाकर बहुत दूर फेंके गये राक्षस-वीर, समुद्र में गिरकर भी चक्कर काटते हुए ऐसे लगते थे, जैसे वासुकि-रूपी रस्सी से बाँधकर (क्षीर-सागर में) घुमाया जानेवाला मंदर-पर्वत हो।

(हनुमान् के द्वारा) अपने बलिष्ठ हाथों से उठाकर फेंके गये मद-प्रवाहयुक्त हाथियों, रथों और घोड़ों से भी पहले उनके उष्ण रक्त की वेगवती धारा, घोर शब्द के साथ बहती हुई, भयंकर समुद्र में जा गिरती थी।

(मुँह के) दोनों ओर अर्धचंद्र-सदृश खड्गदंतोंवाले, गुहा-सदृश मुँहवाले, अपनी आँखों से मलिन रक्त-धारा और अग्नि-ज्वाला को उगलनेवाले राक्षसों के शव, जिनमें कोशों से बाहर निकाले गये शस्त्र धँसे हुए थे, ऐसे गगनचुंबी ढेर बनकर पड़े थे कि उनसे वह तोरण-द्वार बंद हो गया था।

पर्वत हैं, वृक्ष हैं, श्रेष्ठ लौहदंड भी अनेक हैं। प्राणों का हरण करके ले जाने के लिए यम भी प्रस्तुत हैं। क्रोध से युद्ध करनेवाले राक्षस-वीर भी अनेक हैं। ऐसी स्थिति में हनुमान् के हाथों मारे जाने के अतिरिक्त, वे अपने प्राणों को लेकर कैसे लौट सकते थे ?

त्रिमूर्त्तियों में एक भगवान् सुब्रह्मण्य के पिता ललाटनेत्र (शिव) के हाथ के फरसे के समान प्रज्वलित अति दृढ लौहदंड से हनुमान् ने मनोहर वीर-कंकणधारी योद्धाओं के विशाल समूहों को युद्धक्षेत्र में ही मारकर मिटा दिया।

राक्षसों की सेना मिट गई। उसे देखकर देवता आनन्दित हुए। समुद्र से आवृत उस लंका नगरी में हलचल मच गई। रुदन-ध्वनि रूपी समुद्र-घोष सर्वत्र व्याप्त हो गया। तब विजयी भुजाओं से युक्त पाँचों सेनापति आक्रमण करने लगे।

(शवों को) बहा ले चलनेवाले रक्त-प्रवाह के मध्य स्थित (शवों के) ढेरों में (राक्षस-सेनापतियों के) रथों के पहिये धँस जाते थे। फिर भी, उन्होंने बड़ी कठिनाई से आगे बढ़कर अंजना-पुत्र (हनुमान्) का सामना किया और बड़ा कोलाहल करते हुए अनेक सहस्र शर छोड़कर उनसे हनुमान् की देह को चारों ओर से घेर दिया।

उस समय (हनुमान् ने) अपने ऊपर प्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों को अपने हाथों से ही तोड़कर फेंक दिया। उन सेनापतियों में से एक[1] के रथ में लगे हुए, वेग-वर्धक यंत्र (चक्र ?) को विध्वस्त कर दिया।

वह सेनापति, अपने रथ के विध्वस्त होने के पूर्व ही अंतरिक्ष में उछल गया। तब हनुमान् ने अंतरिक्ष में स्थित उस राक्षस पर क्रोध के साथ काले स्वर्ण के (अर्थात्, लोहे से) बने दंड को चलाया। लेकिन, उस राक्षस ने अपने धनुष से उस दंड को रोक दिया।

---

१. इसमें वर्णित राक्षस का नाम वाल्मीकि-रामायण के अनुसार 'दुर्धर' है।—अनु०

जब उसका वह बड़ा धनुष टूट गया, तब उसने एक पहाड़ को उठाकर हनुमान् पर फेंका। विवेकी हनुमान् ने अपने हाथ के लौहदंड से ही उस राक्षस के प्राण हर लिये।

अब शेष चारों सेनापतियों ने प्रलयकालिक अग्निज्वाला के समान क्रुद्ध होकर, अपने भयंकर धनुषों को झुका-झुकाकर बाण बरसाये। उनकी आँखों से (क्रोध के कारण) धुआँ निकल रहा था। उस वीर (हनुमान्) की मनोहर भुजाओं से भी रक्त बह निकला।

उस समय वह वीर (हनुमान्) क्रोधोद्विग्न हुआ। मायावी राक्षसों के बल को पहचान लिया। आग उगलनेवाले एक पत्थर को उठाकर उनपर फेंका। किन्तु, उन भयंकर राक्षसों ने उसे चूर-चूर कर दिया।

वे राक्षस अपने धनुष पर जो बाण चढ़ाकर प्रयोग करते थे, वे उस (हनुमान्) के विशाल वक्ष में चुभकर निकल जाते थे। इसी समय बलशाली हनुमान् ने उन राक्षसों में एक को, उसके रथ के साथ ही, अतिशीघ्रता से उठाकर आकाश में फेंक दिया।

ऊपर फेंका हुआ वह रथ, पूरे आकाश में उड़कर, अपना वेग कम होने से, फिर नीचे गिरा। उसके पहले ही वह राक्षस[1] भूमि पर कूद पड़ा। उसके गिरते ही मारुति उसपर लपक पड़ा।

मत्त गज पर कोई भयंकर सिंह लपके—उसी प्रकार वह वीरातिवीर हनुमान् भयंकर क्रोध के साथ उसपर शीघ्रता से लपक पड़ा और उसे इस प्रकार रौंद डाला कि उस राक्षस का पर्वत-जैसा शरीर पिसकर रक्त से लथपथ हो गया।

शेष तीनों सेनापति क्रुद्ध होकर अपने रथ चलाते हुए बाण छोड़ने और भयंकर युद्ध करने लगे। वे हनुमान् के सम्मुख यह कहते हुए गये कि 'अब तुम कहाँ भागोगे?'

पुष्ट और उभरे कंधोंवाला अंजना का सिंह (अर्थात्, अंजना देवी का सिंह-सदृश पुत्र हनुमान्) अपने शत्रुओं के तीनों रथों में से दो को अपने हाथों में उठाकर चल पड़ा, जिसे देखकर देव भी भयभीत हो उठे।

तब उन (दोनों) रथों में जुते हुए वेगवान् घोड़े और सारथि प्राणहीन हो गये। पीन कंधोंवाले दोनों सेनापति (रथों पर से) अंतरिक्ष में उछल गये। उनको अंतरिक्ष में उछलते देखकर, उनके अदृश्य होने के पहले ही, विशाल रूपवाला मारुति उनके निकट जा पहुँचा।

उसने उनके दीर्घ धनुषों को अपने हाथ से तोड़ डाला। उनके तूणीरों और बाणों को छिन्न-भिन्न कर दिया। निःशस्त्र होने पर भी वे दोनों राक्षस पीछे नहीं हटे। किन्तु अंतरिक्ष में ही (हनुमान् के साथ) मल्लयुद्ध करने लगे।

धवल दाँतवाले, काले भयानक शरीरवाले, कंदरा के जैसे खुले हुए मुँहवाले वे राक्षस, क्रोध के साथ (चंद्र को) ग्रसने के लिए आये हुए भयंकर सर्प-ग्रहों (राहु और केतु) के जैसे लगे। अतिपराक्रमी वीर (हनुमान्) सूर्य के समान था।

---

१. इसमें वर्णित राक्षस का नाम वाल्मीकि-रामायण के अनुसार 'विरूपाक्ष' है।—ले०

(हनुमान् ने) रस्सी की जैसी अपनी पूंछ से, किंचित् भी थके बिना, युद्ध करने-वाले उन राक्षसों के लम्बे पैरों और भुजाओं को कसकर बाँधा और उन्हें तोड़ डाला। (सूर्य को ग्रसने के लिए आनेवाले) सर्प के जैसे ही वे राक्षस हट गये और मरकर गिर पड़े। तब कुमुद-शत्रु (सूर्य) के समान ही वह (हनुमान्) चमक उठा।

पाँचों में बचा हुआ एक सेनापति अब हनुमान् के सम्मुख आया। उसे अपने सम्मुख देखकर, पर्वत पर झपटकर चलनेवाले सिंह के समान ही (हनुमान्) उस राक्षस के उज्ज्वल सिर पर कूद पड़ा। वह राक्षस अपने प्राण त्यागकर अपने रथ के साथ ही भूमि में धँस गया।

छल, चौर्य आदि कर्मों को पसन्द करनेवाले, नीति-रहित मार्ग पर चलनेवाले, विष से भी अधिक भयंकर लगनेवाले, दूसरों का अहित करना ही अपना धर्म बना लेनेवाले, वे राक्षस (हनुमान् के द्वारा) विजित हुए! भयंकर वैर रखनेवाले वे पाँचों सेनापति पंचेन्द्रियों के जैसे थे और वह एकाकी वीर (हनुमान्) उत्तम ज्ञान के जैसा था।

उस उद्यान की रक्षा करनेवाले सब लोगों ने अपनी आँखों से देखा कि घृतसिक्त फलवाले उज्ज्वल शूलों को धारण किये हुए उन असंख्य राक्षसों में से, जो उस युद्ध में आये थे, जीवित लौट जानेवाला एक भी राक्षस नहीं रहा। इतना ही नहीं, बड़े कोलाहल के साथ सेना संगठित करके आये हुए, यम को भी भय-विकंपित कर देनेवाले, पाँचों सेना-पति भी मर मिटे।

अब यह वानर हमें भी मार देगा—उद्यान-रक्षक यह सोचकर दुःखी हुए और उस रावण के समीप जा पहुँचे, जो (सीता पर मुग्ध रावण के) वियोग के कारण दुःखी रहनेवाली स्त्रियों के प्रति कठोर दृष्टि से देखकर उनसे कठोर वचन कह रहा था तथा प्रलय-कालिक अग्नि के समान सत्यलोकों को झुलसा देनेवाली दृष्टि से देख रहा था। उन्होंने उसके कर्ण-द्वारों को झुलसानेवाले ये वचन कहे—

'हे प्रभो! उस (वानर) के आघात से वह सेना मिट गई। पंचसेनापति भी हत हो गये। युद्ध करने के लिए उन राक्षसों ने अति वेग से बाणों की वर्षा की, फिर भी उस वानर ने, अंतरिक्ष के निवासियों को भी हरा देनेवाले उन पाँचों वीरों को उनकी सेना के साथ ही विध्वस्त कर डाला और अब युद्ध करनेवाले किसी राक्षस के न रहने से चुपचाप बैठा हुआ है। (१–६७)

●

अध्याय ११

अक्षकुमार-वध पटल

ज्यों ही उस (रावण) ने (वनरक्षकों के) वचन सुने, त्यों ही क्रोधाग्नि से तप्त उसका निःश्वास उमड़ उठा, जिससे उसके वक्ष की विकसित पुष्पों की माला, उसपर के भ्रमरों के साथ ही, झुलस गई। उसकी आँखें लाख से अंकित-सी (लाल लाल) हो गईं। उसका मन (हनुमान् से युद्ध करने के लिए) सन्नद्ध हो गया। तब उसके पुत्र (अक्षकुमार) ने उसके चरणों पर नत होकर उसे रोका और प्रार्थना की कि मुझे (हनुमान् से युद्ध करने का) अवसर दो।

अक्ष ने रावण से प्रार्थना की कि हे पिता ! त्रिनेत्र (शिव) का वाहन (वृषभ), त्रिलोकों को अपने चरण से नापनेवाले (विष्णु) का वाहन वह पक्षी (गरुड), उस (विष्णु) की शय्या बना हुआ सर्प (आदिशेष) और अष्ट दिग्गज इनमें से कोई (तुम्हारे साथ युद्ध करने के लिए) नहीं रह गया, तो क्या तुम अब एक क्षुद्र मर्कट के साथ युद्ध करने जाओगे? यह कार्य मुझे सौंपकर तुम शान्ति से यहीं रहो।

मेरे रहते हुए, तुमने मेरे ज्येष्ठ भ्राता (इन्द्रजित्) को देवेन्द्र से युद्ध करके उसे बंदी बना लाने के लिए भेजा था। मेरे मन में यह शिकायत अभी तक शेष है। अब यह निर्बल मर्कट ही सही, (उससे युद्ध करके) अपनी उस पुरानी शिकायत को कदाचित् दूर कर सकूँगा। अष्ट दिशाओं में विजय पानेवाले तुम इस युद्ध के लिए मुझे भेजो।—इस प्रकार अक्ष ने रावण से प्रार्थना की।

तीन अपलक नेत्रवाले (त्रिनेत्र) स्वयं छल करके, लंका के लिए ऐसा अपमान-जनक कार्य करने के उद्देश्य से, कोमल पल्लवों को खाकर जीवित रहनेवाले क्षुद्र मर्कट का रूप लेकर क्यों न आये हों, तो भी मैं उन्हें अनायास ही पराजित कर दूँगा और अतिशीघ्र बंदी बनाकर तुम्हारे समीप लाऊँगा।

फटे खंभे से निकला हुआ बलशाली नृसिंह ही क्यों न हो, या अपने धवल दंत पर भूमि को उठानेवाला महावराह ही क्यों न हो, वे भी मेरे साथ युद्ध करने के लिए पर्याप्त बल नहीं रखते। यदि वह मर्कट भागकर इस ब्रह्मांड से परे भी चला जाये, तो भी मैं उसे पकड़कर तुम्हारे समीप लाऊँगा। यदि नहीं ला सकूँ, तो तुम मुझे दंड देना।

'मुझे आज्ञा दो'—यह वचन कहकर प्रार्थना करते हुए तथा नतसिर खड़े हुए, वीर-कंकणधारी और अति बलिष्ठ कंधोंवाले (अक्ष) कुमार को देखकर रावण ने कहा— शीघ्रगामी घोड़ों से जुते रथ पर चढ़कर जाओ। पुष्पमालालंकृत (अक्षकुमार) युद्ध-सज्जा करके चल पड़ा।

अक्ष उस रथ पर आरूढ हुआ, जिसे पहले कभी (युद्ध में परास्त होने पर) देवेन्द्र छोड़कर भाग गया था। उस रथ में दो सौ शीघ्रगामी, विजयप्रद घोड़े जुते थे।

राक्षसों ने आशीर्वाद दिये। भेरी-रूपी मेघ गरज उठे। उसके पीछे-पीछे एक विशाल सेना, प्रलयकालिक समुद्र के समान उमड़ती हुई चली।

यदि तरंगों से उमड़ते रहनेवाले समुद्र के मकरों को गिन सकते हैं, तो उस सेना के गजों की भी गिनती कर सकते हैं। उस समुद्र में विचरण करनेवाले मछलियों को गिन सकते हैं, तो उस सेना के रक्तस्वर्ण-निर्मित रथों की भी गणना हो सकती है। यदि (समुद्र की) वालू के कणों की गणना हो सकती है, तो उसकी पदाति-सेना को भी गिन सकते हैं। यदि एक के पीछे एक आनेवाली, (समुद्र की) तरंगों को गिन सकते हैं, तो फाँदकर चलनेवाले घोड़ों की गणना कर सकते हैं।

विजयशील राक्षस-कुल में उत्पन्न बारह सहस्र कुमार, जो प्रलयकाल की उमड़ती हुई अग्नि की घनी ज्वालाओं के सदृश थे तथा (अक्षकुमार के) अनन्यप्राण मित्र थे, रथों पर आरूढ हो, अक्ष को घेरकर चले।

मंत्रियों के पुत्र, ज्ञान एवं राजनीति-विशिष्ट सचिवों के पुत्र, सेनापतियों के पुत्र, रावण की देवस्त्रियों से उत्पन्न कुमार—ऐसे चार लाख वीर रथों पर चढ़कर चले।[1]

तोमर, मूसल, त्रिशूल, उज्ज्वल परशु, वज्र, अंकुश, बाण-युक्त दृढ धनु, बरछे, दंड, भाले, करवाल, गोले, बड़े वृक्ष, पाश, चक्र, पैने और दृढ दंड, सुन्दर वक्रदंड, कप्पण (काँटेदार शस्त्र) आदि—

अनेक शस्त्र एकत्र हो गये थे, जिससे ऐसा लगता था, मानों बहुत-सी बिजलियाँ इकट्ठी हो गई हों। उनसे धूप और चाँदनी, दोनों एक साथ बिखर पड़ती थीं। धरती की घनी धूल उड़कर गगन में छा गई, जिस कारण से धरती स्वर्ग बन गई—(भाव यह है कि धरती की धूल दूर हो गई है और शस्त्रों से धूप और चाँदनी का प्रकाश एक साथ फैल रहा है। अतः, भूतल में स्वर्ग-सा दृश्य उपस्थित हो गया है)।

कौए, भूत, गिद्ध, काल, चिरकाल से दृढता के साथ (राक्षसों के द्वारा) किये गये पाप—ये सब उस (राक्षस-सेना) के पीछे-पीछे चल रहे थे। चीनी की चाशनी के जैसे (मधुर) अधरोंवाली, बरछे-जैसी आँखोंवाली, पुष्ट बाँस-जैसी कंधोंवाली तथा कलापी-जैसी (राक्षस) सुन्दरियों के मन भी, भ्रमरों के झुण्ड के जैसे ही उन (राक्षसों) का अनुसरण करते हुए चले।

(हनुमान् के साथ युद्ध में) मृत हुए राक्षसों की हरिणी-जैसी आँखोंवाली स्त्रियाँ (अपने पतियों को) पुकार-पुकार कर रोती थीं। उनकी उस रुदन-ध्वनि से, समुद्र के गर्जन से, कोलाहल-युक्त सेना से उत्पन्न शब्द से तथा विविध वाद्यों के नाद से, (उन राक्षसों द्वारा) गगनस्थ मेघ-गर्जन की जैसी कंठ-ध्वनि से कहे हुए वचन भी दब जाते थे।

धूप के जैसे प्रकाश को फैलानेवाले रत्न, सूर्य की सर्वत्र फैलनेवाली किरणों को दबा देते थे। चमकते हुए बरछों से निकलनेवाली कांति उन रत्नों से प्रकट होनेवाले प्रकाश को दबा देती थीं। (राक्षसों के) अक्षीण चंद्र-कला जैसे दाँतों का प्रकाश, उनके

१. यह पद्य प्रक्षिप्त-सा लगता है।—ले०

आभरणों की कांति को मात कर देता था। इन विविधप्रकाशों के कारण ऐसा विचित्र भान होता था कि वह संसार में प्रकट होनेवाला रात्रिकाल भी नहीं है और दिवस का समय भी नहीं है। (किन्तु दोनों का सम्मिश्रण है)।

ऊँचे रथों में जुते हुए, केसरवाले बड़े-बड़े घोड़े ऊँघने लगे। (राक्षस-वीरों के) कंधे और नेत्र वाम-भाग में फड़कने लगे। घने बाल सर्वत्र रक्तवर्ण की वर्षा करने लगे। (भूख से) दुःखी रहनेवाले कौए (अब आनंद से) शोर करने लगे। मेघहीन आकाश से वज्र गिरने लगे।

वायुपुत्र (हनुमान्) ने देखा कि सेनाओं से घिरा हुआ पुष्पमालालंकृत अक्ष आ रहा है, जिसे देखकर देवेन्द्र भी भयभीत होता था। बहुत दुःखी रहनेवाला यम अब मुस्करा उठा। घूमती हुई (आँख की) पुतलीवाले तथा उछलनेवाले भूत ताल ठोंक-ठोंककर कोलाहल करने लगे।

अति क्रोध से भरे श्रेष्ठ वानर-वीर ने सोचा—'अब यह कौन युद्ध करने के लिए आ रहा है ? क्या इंद्रजित् है ? या स्वयं रावण ही है ?'—फिर उमंग से भर कर कह उठा —'अब मेरी इच्छा पूर्ण हो गई, 'श्रीरामचन्द्र की जय !' कहकर उनके प्रति प्रणाम किया और अपनी मनोहर भुजाओं को देखकर कहने लगा—

'यह मेरे सोचे हुए दोनों व्यक्तियों में से ही कोई है। पूर्वजन्म में मेरा किया हुआ पुण्य अभी शेष है। मेरे प्रभु (राम) भी तपस्या-संपन्न हैं, (अर्थात् , मेरे भाग्य से और राम के तपः प्रभाव से अब रावण या उसका बेटा इंद्रजित् दोनों में से कोई एक मेरे साथ युद्ध करने को आया है), मैं तैयार खड़ा हूँ। यम भी (इस राक्षस को प्राण ले जाने के लिए) समीप में ही आ खड़ा है। अपने विचारे हुए कार्य को मैं अभी पूरा करूँगा।'

(फिर, हनुमान् सोचने लगा—) यह दस सिरोंवाला राक्षस नहीं दिखता (अतः यह रावण नहीं है)। सहस्र नेत्रवाले (इन्द्र) को परास्त करनेवाला (इन्द्रजित्) भी नहीं दिखता। यह तो उन दोनों से भी अधिक श्रेष्ठ विदित हो रहा है। इसका रूप दोष-रहित है, किन्तु फिर भी यह युद्ध करनेवाला कार्त्तिकेय नहीं हो सकता। तब नीलपर्वत के समान, अक्षीण बलयुक्त यह कुमार कौन है ?

यों विचार करता हुआ मुदितमन होकर वह (हनुमान्) गगन के इन्द्रचाप-सदृश उस तोरण पर खड़ा रहा। उसे देखकर क्रूर-कृत्यवाला वह राक्षस (अक्षकुमार) अपने दाँतों को प्रकट करता हुआ हँस पड़ा और बोला—'राक्षस-समूह को मारनेवाला यही मर्कट है ?'

(अक्ष का) वह वचन सुनकर उसके सारथी ने कहा—हे प्रभो ! मेरी बात सुनो। संसार में घटित होनेवाली सब घटनाओं को यथातथ रूप में समझना कठिन है। इसके आकार-मात्र को देखकर इसका उपहास मत करो। पुराने काल में हमारे राजा (रावण) का सामना करनेवाला वाली भी एक वानर ही तो था। अब और क्या कहना है ? अपनी प्रतिज्ञा को दृढ रखकर आगे बढ़ो।—इस प्रकार (सारथी ने अक्ष को) समझाकर कहा।

उस वचन को सुनकर पुंजीभूत विष-सदृश उस अक्ष ने कहा—इस मर्कट ने हमारे

नगर में प्रवेश करके इतना उपद्रव किया है कि केवल इसके प्राण लेकर ही मेरा क्रोध शान्त न होगा। इसके प्राण लेकर, अपने शेष क्रोध को लेकर मैं आगे बढ़ूँगा और तीनों लोकों के समस्त मर्कटों को गर्भ में रहनेवाले भी मर्कटों के साथ ढूँढ़-ढूँढ़कर मिटा दूँगा।

राक्षस-सेना ने घोर शब्द करके अंजना के पुत्र-रूपी उस पर्वत को घेर लिया और उसपर अस्त्र बरसाने लगे, जिसे देखकर दिक्पाल भी भय से पसीने-पसीने हो गये। धरती और आकाश हिल उठे। विजयमाला से भूषित हनुमान् अकेले ही उस सेना पर टूट पड़ा।

राक्षसों ने विविध शस्त्रों का प्रयोग किया। वे सब शस्त्र उस वीर के शरीर पर लगकर टूट गये। घोर गर्जन करनेवाले हाथियों की सेना मर मिटी। रथ विध्वस्त हो गये। फाँदनेवाले घोड़े प्राण त्यागकर गिर पड़े और उनके शव लंका-भर में बिखर गये।

सूखे हुए सरकंडों के वन में आग लग गई हो, इस प्रकार वायुपुत्र उन राक्षस-समूह पर अति त्वरित गति से आक्रमण कर रहा था। उसके हाथों मरनेवाले राक्षसों की कुछ गिनती नहीं रही। मरे हुए जीव भी दक्षिण दिशा में (यमलोक में) प्रयाण करने लगे—ओह यम के पास भी क्या करोड़ों दूत रहते हैं ?

आये हुए, आते रहनेवाले और जो अभी आने को थे—सभी राक्षसों के अविराम युद्ध करते रहने पर भी वीर (हनुमान्) का उत्साह कम नहीं हुआ, बल्कि बढ़ता ही रहा। वह युद्ध-रंग से प्रलयकालिक सूर्य के समान प्रकाशमान हुआ और उस प्रकाश में बलिष्ठ भुजावाले सब राक्षस अस्थिहीन जन्तुओं के जैसे जलने लगे।

पंचेन्द्रियों को विषयों से हटाकर उनपर विजय प्राप्त करनेवाले हनुमान् ने राक्षसों को इस प्रकार निहत कर दिया, मानों यम ही, नौकाओं तथा मगरमच्छों से भरे समुद्र से आवृत लंका के सब प्राणियों को लूटकर लिये जा रहा हो। रक्त का प्रवाह ऐसा बहा कि सब प्राणियों को बहा ले चला। सभी के शरीर छिन्न-भिन्न हो गये। मुखपट्टधारी हाथी, रथ और घोड़े पिसकर कीचड़ बन गये और उस प्रवाह में बह गये।

(हनुमान् के साथ) सम्मुख युद्ध करनेवाले मरते रहे। जो युद्ध से हटकर दूर खड़े थे, वे भी ऐसे खड़े थे कि उनके प्राण भी शरीर में रह नहीं पाते थे और वे तड़फड़ा रहे थे। उनमें से कुछ कहते थे—'हाय ! सब रथ मिट गये।' कुछ कहते थे—'कठोर दृष्टि, लाल चेहरे तथा दृढ भुजावाले सब पदाति-सैनिक मिट गये।' कुछ कहते थे—'घोड़े ही अधिक संख्या में मिटे।' कुछ कहते थे—'मेघ-सदृश दीखनेवाले मुखपट्ट एवं मदजल से युक्त सब हाथी ही नष्ट हो गये।'

समुद्र के समान विशाल युद्ध-शस्त्रों से युक्त, अति बलिष्ठ राक्षसों की सेना, किसी ग्वालिन के द्वारा विशाल मुखवाले पात्र में जमाये हुए दही की जैसी थी और हनुमान् एक अनुपम मथानी के जैसा था। बरछों को धारण करनेवाले राक्षस सप्त लोकों के निवासी प्राणी थे, जो प्रलयकालिक समुद्र के जैसे उमड़ते हुए आ रहे थे। अपने बल के कारण वायु की समता करनेवाला हनुमान् (बडवा की) अग्नि की समता करता था।

आक्रमण करने के लिए आनेवाली उस राक्षस-सेना को (हनुमान ने) मारा।

बहुत-से राक्षस मारे गये। रक्त की धारा बह चली। कुछ राक्षस थरथराते हुए पीछे हटे। (अक्ष के) समीप खड़े रहनेवाले भी खड़े नहीं रह सके। अन्त में अक्ष अकेले रह गया। वह अपनी आँखों से आग उगलता हुआ, अति तीक्ष्ण बाणों को चुन-चुनकर प्रयोग करता हुआ अपने रथ को हनुमान् के सामने ले आया।

इन्द्रजित् का अनुज आ पहुँचा। एक ही दिन में अनेक लक्ष वीरों को मारने की शिक्षा पाया हुआ वह (हनुमान्) भी, उसके सामने हुआ। देवता, यह सोचकर कि अब हनुमान् की दशा जाने क्या होगी, व्याकुल हुए और यह विचार करते हुए कि 'अपलक देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त है, यह अच्छा ही हुआ', (अक्ष और हनुमान् का युद्ध देखने के लिए) उन दोनों के सम्मुख जा खड़े हुए।

अक्षकुमार ने अग्नि उगलनेवाले चौदह बाण (हनुमान् पर) छोड़े। हनुमान् ने उन बाणों को अपने हाथ के दंड से रोक दिया और उन्हें विफल बनाकर धरती पर गिरा दिया। तब अक्ष ने अनेक शरों का प्रयोग किया, जिससे वह लौहदंड चूर-चूर हो गया। निःशस्त्र होकर हनुमान् अपने बलिष्ठ हाथों से ही अक्ष के तीरों को रोकता रहा। फिर, अक्ष के अनेक चक्रवाले रथ पर वह झपटकर चला।

रथ पर कूदकर हनुमान् ने कोड़ा हाथ में लिये हुए सारथी को मार डाला। फिर, रथ को चकनाचूर कर दिया। घोड़े को मार डाला। अक्ष के कुछ तीर हनुमान् के वक्ष में प्रविष्ट हो गये, किन्तु उस वीर (हनुमान्) ने उन तीरों की परवाह न की। वह अक्ष के सामने पहुँचकर उसके झुके हुए दृढ धनुष को छीन लिया।

(हनुमान् ने) एक हाथ से उसके दृढ धनुष को पकड़ लिया। तब वह बलवान् (अक्ष) अपने दोनों हाथों से उस धनुष को खींचने लगा। (इस खींचातानी में) वह धनुष टूट गया। तब अक्ष कटार उठाकर हनुमान् की देह में भोंकने गया। किन्तु, इतने में (सीता के पास) संदेश लेकर आये हुए दूत (हनुमान्) ने अपने दृढ कर से उसके कटार को भी छीन लिया। उससे चिनगारियाँ निकलीं और बीच में ही उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

अपनी कटार के टूट जाने से, अक्ष अपनी मुष्टि से हनुमान् को मारने के उद्देश्य से लपककर उसके समीप आया। उसे अपने हाथों में बाँधना चाहा। लेकिन, इतने में हनुमान् की लंबी पूँछ, जिसपर बरछे के जैसे बड़े-बड़े रोम उठे हुए थे, उस (अक्ष) के शरीर से लिपट गई। जिससे वह इधर-उधर मुड़ भी न सका। इस प्रकार अक्ष को पकड़कर उसे हनुमान् ने दबाया।

(अपनी पूँछ से) पकड़कर हनुमान् ने उस (अक्ष) के गाल पर ऐसा तमाचा मारा कि उसके तीक्ष्ण खड्ग जैसे उज्ज्वल दाँत टूटकर गिर गये। उसके कुंडल आदि आभरणों के रत्न ऐसे झड़ पड़े, जैसे मेघों से गरजती हुई बिजलियाँ टूटी हों। उसकी बलिष्ठ ग्रीवा को अपने दृढ हाथ से पकड़कर हनुमान् ने उसपर ऐसा घूंसा मारा कि उसकी आँतें बाहर निकल पड़ीं। ऐसा करके हनुमान् हट गया।

रक्त-धारा जल बनी। युद्ध रंग लोहा बना। युगान्त में सप्त लोकों के मिट

जाने पर भी न मिटनेवाले यश से संपन्न हनुमान् ने उस अक्ष को, जिसके प्राण अभी नहीं निकले थे, अपने दोनों हाथों से पकड़कर रगड़ा। उसका छितराया हुआ चमड़ा ऐसे लगा, जैसे (लोढ़े से बाहर) बिखर जानेवाला पिसा हुआ चावल हो। स्वर्ग और धरती के रहनेवाले यह दृश्य देखते रह गये।

कुछ बचे हुए राक्षस, अपने घावों से बहते हुए रक्त में ही छिप गये। कुछ भूतों के भांडारों में (अर्थात्, शव-राशियों में) छिप गये। कुछ अतिभय से दिग्भ्रांत होकर मूर्च्छित हो पड़े। कुछ, व्याकुल होकर कहीं जाने में असमर्थ हो, खड़े रहे। जो जहाँ भाग सकता था, अपना हथियार छोड़कर भागा।

कुछ मछली का रूप लेकर समुद्र में जा छिपे। कुछ मृग आदि का रूप लेकर मार्गों के आसपास चरने (का अभिनय करने) लगे। कुछ, मांसभक्षी पक्षियों का रूप लेकर रहे। कुछ ब्राह्मण-वेष धारण कर छिपे रहे। कुछ हिरण की-सी आँखोंवाली (तरुणियाँ) बनकर (हनुमान् के) सम्मुख अपने बाल सँवारते खड़े रहे। कुछ ने यह कहा—'हे प्रभो! हम तुम्हारी शरण में हैं।' कुछ ने यह कहा—'ये ही तुम्हारे शत्रु हैं, हम तुम्हारे शत्रु नहीं हैं।'

कुछ राक्षस, जिनकी पत्नियाँ और बंधुजन उनके समीप आकर उनका आलिंगन करना चाहते (हनुमान् के डर से) यह कह उठे कि हम तुम लोगों के बंधु नहीं हैं, हम देवता हैं और वहाँ से हट गये। कुछ ने (अपने बंधुजन से) कहा कि हम मनुष्य हैं (तुम्हारे बंधु, राक्षस, नहीं हैं) और वहाँ से दूर चले गये। कुछ भ्रमर बनकर (स्वर्ग के) मंदार-वृक्षों के मध्य जा छिपे। कुछ किंकर्त्तव्यविमूढ होकर खड़े रहे और कुछ ने अपने चन्द्रसम वक्र खड्गदंतों को तोड़कर, अपने लाल केशों को काले रंग से रँग लिया।

कुंडल-भूषित कानों से शोभायमान मुखों और कुंकुम-रस से लिप्त स्तनोंवाली (राक्षस)-स्त्रियों के सुगंधित कुमुद-समान महावर-जैसे लाल मुख खुल गये और उनके केश (जिनकी सुगन्धि से उनपर भ्रमर बैठे रहते थे) भ्रमरों को छुड़ाते हुए खुलकर उनके चरणों पर लोटने लगे। उन स्त्रियों की बढ़ी हुई क्रन्दन-ध्वनि लंका-भर में फैल गई और ऊपर के लोकों में भी सुनाई पड़ने लगी।

उदयकालीन सूर्य के जैसे लाल मुखवाली तरुणियों के, जो अपने पतियों के (शवों के) पैर पर गिरकर रो रही थीं, सुन्दर पुष्पालंकृत केशों के साथ राक्षसों का रक्त भी ऐसा फैल गया कि दोनों में कुछ भेद नहीं दिखाई पड़ता था।

उस त्रुटिहीन युद्धक्षेत्र में, चित्र-लिखित प्रतिमा-समान कुछ राक्षस-सुन्दरियाँ (अपने पति के) शवों पर गिर पड़ती थीं और निःश्वास भरकर, अपलक होकर पड़ी रह जाती थीं। ऐसा होने का कारण कदाचित् यही था कि शरीर से पृथक् होने पर भी उन (राक्षस-वीरों और उनकी पत्नियों) के प्राण एक थे।

कुछ मुग्धाएँ, शरीर के अन्वेषण में चलनेवाले प्राणों के सदृश, (अपने पतियों के पीछे) चलकर मृत वीरों के मध्य अपने पति को पहचान लेतीं और स्वयं भी अपने प्राण त्याग कर स्वर्ग में अपने पतियों से जा मिलती थीं। इससे स्वर्गवासिनी अप्सराएँ (जो स्वर्ग में उन वीरों की संगति पाने की इच्छा रखती थीं) अप्रसन्न हो जाती थीं।

तीक्ष्ण करवाल-सम नयनोंवाली, लक्ष्मी-जैसी एक राक्षसी ने रणनृत्य करके थक-कर पड़े हुए एक कबंध से एक कटे सिर को जोड़कर[1] उससे करबद्ध प्रार्थना करने लगी कि मेरा प्राणपति कहाँ है, तुम मुझे दिखाओ।

चित्रित करने के लिए दुष्कर पुष्पलता-सदृश एक तरुणी अपने पति का (कटा हुआ) सिर हाथ में लिये, (अपने पति के) नाचते हुए कबंध को देखकर कहती थीं—'हे नाथ ! अब तुम थक गये हो। (नाचना) बंद करो।' और पुष्प-पल्लव जैसी अपनी बाँहों से उसे आलिंगन में बाँध लेती।

पुष्पित वृक्ष की शाखा-सदृश वे राक्षस-स्त्रियाँ अपने पतियों को ढूँढ़ती-ढूँढ़ती थक जातीं और अपने पतियों के शवों को पहचान कर अनेक वक्षों को आलिंगित करके स्वयं प्राण त्याग देतीं। उस समय उद्यान के रक्षक देवता भयभीत होकर राजा के पास भागे और सारा वृत्तान्त उससे कह सुनाया।

मयपुत्री (मंदोदरी) की मीन-समान आँखों से अश्रु बहने लगा। उसके काले मेघ-जैसे केश धूल पर लोटने लगे। वह ब्रह्मा के प्रपौत्र (रावण) के चरणों पर आ गिरी और छाती पीट-पीटकर रोने लगी।

दोषहीन सुन्दर लंकानगर की सब स्त्रियाँ (रावण के) पदतल पर गिरकर रोने लगीं। उद्यान-रक्षक देवता, यद्यपि आनन्द-चित्तवाले थे, तथापि दिखावे के लिए रावण के चरणों पर गिरकर रोने लगे। (१–५०)

●

अध्याय १२

बंधन पटल

उस समय, (अक्ष की मृत्यु का) वह समाचार पाकर, पौरुषवान् तथा इन्द्र-रूपी बड़े शत्रु को पराजित करके यशस्वी बना हुआ वह राक्षस (इन्द्रजित्) अतिक्रुद्ध हो उठा। उसके कठोर नेत्रों से अग्नि की ज्वाला निकल पड़ी, जिसके भय से सब लोक काँप उठे।

'सान पर चढ़ाया गया बरछा धारण करनेवाला अक्ष मारा गया'—यह बात उस (इन्द्रजित्) के मन को जलाने लगी। वह यों साँस भरने लगा कि उसके साथ चिन-गारियाँ निकल पड़ीं। उस समय वह उस परमज्योति-स्वरूप भगवान् (शिव) के सदृश देदीप्यमान दिखाई दिया, जिस (शिव) ने त्रिपुरों का नाश करने के लिए महामेरु को धनुषाकार में झुकाया था।

वह दृढ चक्रवाले एक ऐसे रथ पर आरूढ हुआ, जिसमें गगन की ऊपरी सीमा

---

१. कवियों ने ऐसा वर्णन किया है कि सिर कटने पर भी वीरों का शरीर कुछ समय तक हाथ में तलवार लेकर नाचता रहता है। इसी की ओर इस पद्य में संकेत किया गया है।—ले०

को छूनेवाले एक हजार दो सौ भूत जुते हुए थे। वह वीर जो दर्पपूर्ण वचन कह रहा था, उन (वचनों) की ध्वनियों के एक साथ आ टकराने से दीर्घ दिशाएँ फट गईं और ब्रह्मांड का गोला भी फट-सा गया।

उसके वीर-कंकण, मंजीर और भेरी ऐसी ध्वनि कर उठे कि उससे वज्र भी भयभीत हो गया, देवेन्द्र काँप उठा और पसीना-पसीना हो गया। सब देवों में श्रेष्ठ त्रिमूर्त्ति भी यह सोचकर कि अब अति भयंकर युद्ध होनेवाला है, अपने-अपने व्यापार से विरत हो गये (अर्थात्, सृष्टि, स्थिति और संहार-कार्य को छोड़ बैठे)।

अपने भाई का स्मरण करके, उसकी आँखों से अश्रु-धाराएँ बहने लगीं। वह अपने धनुष को देखकर क्रुद्ध हो उठा—(भाव यह है कि इस धनुष को रखकर भी मैं अपने भाई की रक्षा नहीं कर सका—यह सोचकर धनुष के प्रति उसके मन में घृणा का भाव उत्पन्न हुआ और अपने प्रति क्रोध भी)। वह अपने ओंठ चबाने लगा। (अपनी अशक्ति को सोचकर अपना उपहास-सा करता हुआ) वह हँस पड़ा। वह सोचने लगा—हाय ! वृक्षों पर विचरण करनेवाले एक क्षुद्रजीवी वानर से अक्षीण बलयुक्त मेरा भाई मारा गया। इससे मेरे पिता का यश कितना घट गया है !

बरछेधारी सैनिकों, धनुर्धारी वीरों और सम्मुख पड़नेवाले पर्वतों को भी तोड़नेवाले करवालों को लिये हुए राक्षसों की गणना मैं नहीं कर सकता। अपने दोनों ओर मदजल की धाराएँ बहाकर कीचड़ फैलानेवाले और छोटी आँखोंवाले हाथियों की संख्या बारह सहस्र थी। रथों की संख्या भी उतनी ही थी।

इन्द्रजित् की सेना में उतने ही (बारह सहस्र) संख्या में अश्व-सेना भी सम्मिलित थी। करवालधारी सेनापति आ मिले थे। तब निरन्तर अश्रुधारा बहानेवाली और क्रोध प्रकट करनेवाली आँखों से युक्त इन्द्रजित् रथ पर आरूढ होकर त्वरित गति से रावण के प्रासाद में जा पहुँचा।

(रावण के) चरणों पर वह गिरा और अपने भाई की मृत्यु पर रो पड़ा। भयरहित रावण ने भी उसकी बाँह पकड़कर उसे उठा लिया और अपनी छाती से लगाकर अश्रु बहाने लगा। शूल-जैसी आँखोंवाली मंदोदरी आदि स्त्रियाँ छाती पीटकर रोने लगीं। उस समय, सिंहबली इन्द्रजित् ने उन्हें वहाँ से हटाकर रावण से यों कहा—

हे राजन् ! आप कोई हितकारी कार्य नहीं सोचते। दुःख पाने के पश्चात् शोक करने लगते हैं। उस कठोर वानर के बल को ठीक-ठीक पहचानने के उपरान्त भी आपने राक्षसों की पंक्तियों को यह कहकर भेज दिया कि तुमलोग जाकर युद्ध करो। इसलिए आपने ही तो उस राक्षस-समूह को मरवा दिया है।

हे मेरे पिता ! किंकर, जंबुमाली, नाश-रहित पंचसेनापति इन वीर-कंकणधारी राक्षसों के साथ गई हुई सेनाओं में से एक भी सैनिक लौटकर नहीं आया (अर्थात्, सब रण-रंग में मारे गये)। वह वानर शंकर, ब्रह्मा और विष्णु—तीनों का स्वरूप माना जा सकता है।

आपने पहले दिग्गजों के बल को, त्रिपुरों का दाह करनेवाले त्रिनेत्र के कैलास

को और त्रिलोक को भी परास्त कर दिया था। अब अक्ष को निहत करनेवाले इस वानर की शक्ति की परीक्षा करना चाहते हैं। अब इतना होने के पश्चात् यदि आप यह कहें कि हम जाकर उस वानर से युद्ध करेंगे, तो वह अज्ञ-प्रलाप मात्र होगा।

हे प्रभो! उस प्रतापवान् वानर को, मैं स्वयं जाकर अतिशीघ्र पकड़कर यहाँ लाऊँगा। आप किंचित् भी दुःख न करें। आप चिरकाल तक जीते रहें।—यों कहकर वह, जो देवराज (इन्द्र) को उसके यश के सहित ही बाँध लाया था, चला गया।

काले वर्णवाले राक्षस इस प्रकार उमड़ आये कि लगता था, मानों अब यह विस्तीर्ण धरती भी (इनके लिए) पर्याप्त नहीं होगी। उनके शरीर पर अनेक आभरण चमक रहे थे। बलवान् शत्रुओं के शरीरों में चुभे हुए, विजय-युद्ध करनेवाले करवाल उनके हाथों में थे। उनको देखने से ऐसा लगता था, मानों (पहले सूर्य से) पराजित अंधकार ने तपस्या करके (उस तपोबल से) सूर्य को पराजित कर दिया हो और स्वयं अनेक रूप लेकर, धनी सूर्य-किरणों को अपना आभरण बनाकर पहन लिया हो।

चक्रों से शोभायमान उत्तम रथ, घोड़े, पदाति-सैनिक, क्रोध से लाल हुई आँखों और मुखपट्टों से युक्त हाथी—इनसे सम्मिलित वह सेना, प्रलयकालिक समुद्र के समान सर्वत्र उमड़ आई। उन विलक्षण वीरों के मध्य, वीरोचित कर्त्तव्य को पूर्ण करने के लिए कटिबद्ध वह (इन्द्रजित्) ऐसा लगता था मानों उस प्रलय-समुद्र के मध्य खड़ा हुआ बलवान् मेरु पर्वत हो।

वह (इन्द्रजित्) इस प्रकार चला। वह यद्यपि अष्ट दिशाओं के साथ समस्त लोकों को विजित करनेवाला था, तथापि उस समय, युद्ध करने के लिए सन्नद्ध वीर हनुमान् की दक्षता को सोचकर वह मन में आनंदित हुआ—(भाव यह है कि हनुमान् जैसे महावीर के साथ युद्ध करने का अवसर प्राप्त होने से इन्द्रजित् आनंदित हुआ)। उसे देखकर सब लोग भयभीत हो उठे।

बेल-बूटे की कला से युक्त आभरण पहने हुए (इन्द्रजित्) ने सोचा—अहो! यह युद्धक्षेत्र भी कैसा है? असंख्य शवयुक्त रक्त-प्रवाह में असंख्य शस्त्र-राशियों के पड़े रहने के कारण, यह अपार पर्वतों, समुद्रों और नदियों से युक्त एक विलक्षण लोक ही बन गया है।

वह, जिसने अबतक कभी दुःख का अनुभव नहीं किया था, अब मन में कुछ-कुछ वेदना का अनुभव करने लगा। वह यह विचार कर चिंतित हुआ कि सागर के सदृश महिमावाले और अपने प्रताप के लिए उपमान-रहित (राक्षस-वीर) सब मिट गये। यह वानर तो अकेला ही है। यदि राम आकर हमारा सामना करे तो, हम किस सेना को लेकर उसके साथ युद्ध करेंगे?

आँखों की पुतली-जैसे, प्राण-समान, उत्तम शस्त्रों के प्रयोग में निपुण रक्षक, अकथनीय गुणों से युक्त, अनेक वीरों को धरती पर मृत पड़े हुए देख-देखकर वह क्रुद्ध हो अपने ओंठ चबाने लगा। वह इस प्रकार (वेदना से) कुढ़ उठा, जिस प्रकार पके घाव में किसी ने छड़ी भोंक दी हो।

(दंडक) अरण्य में बुआ (शूर्पणखा) का जो अपमान हुआ, खर का जो संहार हुआ, जिसे मैं अपना सर्वस्व मानता था, वह मेरा भाई जो मारा गया और अन्य जो-जो दुःखद घटनाएँ घटीं—ये सब, दो मनुष्यों और एक वानर के द्वारा ही की गईं। अहो! मेरा पराक्रम भी किस काम का है?—वह इस प्रकार सोचता रहा।

बहनेवाले रक्त से वहाँ एक तरंगित समुद्र ही उत्पन्न हो गया था। मार्ग में पड़ी हुई भारी शवराशियाँ आगे जाने में रुकावट उत्पन्न करती थीं। इस प्रकार के मार्ग पर चलते हुए इन्द्रजित् ने, वहाँ रगड़े गये अपने भाई के मृत शरीर को, तपाये हुए ताँबे जैसी अपनी लाल-लाल आँखों से, क्रोध-भरे मन से, देखा।

उसने, तारक[1] के रक्त-प्रवाह जैसी रक्तधारा में अनुपम भयंकर नरसिंह के तीक्ष्ण नखों द्वारा चीरे गये हिरण्यकशिपु के शरीर जैसे, (अपने भाई के शरीर को) पड़े हुए देखा। (रक्त से उत्पन्न कीचड़ में) धँसकर उसका रथ रुक गया। उसके हाथ का विजय-प्रद धनुष खिसक गया। उसकी क्रोध-भरी आँखों से अश्रुजल, रक्त और अग्नि-कण बरस पड़े। वह स्तब्ध खड़ा रहा।

हे तात! पलाश-पत्र जैसे आकार का बरछा धारण करनेवाले तुम्हारे पिता (रावण) के क्रोध के भय से यम भी (तुम्हारे) प्राण हरण नहीं कर सकता था। अन्यान्य लोकों में रहनेवाले भी तुमसे भयभीत रहते हैं। हे तात, अब तुम हमें छोड़कर किस लोक में जा छिपे हो? (इस प्रकार इन्द्रजित् विलाप कर उठा)।

वह दुःख का सहन नहीं कर सका। प्रेम के (आवेश के) कारण उसकी बुद्धि भी मंद पड़ गई। इस प्रकार जब वह शिथिल हो रहा था, तब क्रोध के भाव ने अधिकाधिक उत्तेजित होकर उसके मन में उत्पन्न शोक को अंतर में ही ऐसे दबा दिया, जैसे नीचे से ठोकी जानेवाले कील को ऊपर से ठोकी हुई कील दबा देती है।

जब इधर यह सब हो रहा था, उसी समय सूर्य के रथ जैसे रथ पर सवार होकर रावण के पुत्र (इन्द्रजित्) को आते हुए वीर-कंकणधारी हनुमान् ने देखा, जो क्रोध से त्रिपुरनाश के लिए सन्नद्ध शिव के समान खड़ा था।

मेरे द्वारा कुछ राक्षस-वीरों के मारे जाने के कारण ही तो अब इसे यहाँ आना पड़ा है। अहो! अब मेरी जय या पराजय दोनों में से एक बात निश्चित है। अभी इसका फैसला हो जायगा। यह जो आ रहा है, वह इन्द्रजित् नामधारी है न?

सुरभित पुष्पों की माला से अलंकृत यह युवक यदि मेरे हाथों मारा जायगा, तो यही कार्य रावण के लिए सबसे कष्टदायक होगा। वह (रावण) अपना विनाश होता हुआ देखकर अकलंक पातिव्रत्यवाली देवी (सीता) को मुक्त कर देगा। इतना ही नहीं, इससे राक्षसों का गर्व भी चूर हो जायगा।

इस (इन्द्रजित्) को मारने से होनेवाला लाभ इतना ही नहीं है। यदि मैं इस प्रतापी को समाप्त कर सकूँ, तो इन्द्र भी अपने दुःख से मुक्त हो जायगा। राक्षसों की

१. तारक एक असुर था, जिसको सुब्रह्मण्य (कार्तिक) ने मारा था।

लंका का शासन भी मिट जायगा और मैं स्वयं उस रावण को संपूर्ण रूप से परास्त करनेवाला बन जाऊँगा।

उस समय, त्रिलोक को तीन बार पराजित करनेवाले उस (इन्द्रजित्) के आगे-आगे राक्षस, हाथी, रथ और घोड़े उमड़ते हुए चले आ रहे थे। वे घोर कोलाहल करने लगे, तो वह महान् (हनुमान्) भी क्रुद्ध होकर, एक सालवृक्ष को अपने हाथ में लेकर आगे बढ़ा।

(राक्षस-सेना के) कुछ हाथी (हनुमान् के) पदाघात से गिर पड़े। कुछ हाथी धक्के खाकर लुढ़क गये। इतना ही नहीं, कुछ हाथी उसके पैरों से रौंदे गये। कुछ हाथी (धकेले जाकर) एक दूसरे पर जा गिरे। कुछ हाथी (धरती में) धँस गये। कुछ हाथी अस्तव्यस्त हो गिर पड़े। यों युद्ध में मारे जाकर सारे हाथी धराशायी हो गये।

कुछ रथ विध्वस्त हो गये। कुछ टूट गये। कुछ तहस-नहस हो गये। कुछ ढीले पड़ गये। कुछ अपनी धुरी टूट जाने से गिर पड़े। कुछ टुकड़े-टुकड़े हो गये—इस प्रकार सब रथ मिट गये।

कुछ घोड़ों के सिर कुचल गये। कुछ की आँखों की पुतलियाँ निकल आईं। कुछ की बलवान् टाँगें टूट गईं। कुछ के घंटियों से भूषित वक्ष टूट गये। कुछ रक्त उगलने लगे। कुछ के स्वर्ण-मंजीरों से भूषित टाँगें टूट गईं। कुछ की ग्रीवाएँ टूट गईं।

राक्षस-वीरों में कुछ (हनुमान् से) पकड़ लिये गये। कुछ चीर दिये गये। कुछ (दाँतों से) काटे गये। कुछ की गरदन तोड़ी गई। कुछ हाथ से मारे गये और कुछ भय से मरे।

राक्षसों के द्वारा, खींचकर झुकाये गये धनुषों से छोड़े गये बाण तथा अन्य शस्त्र उस वीर (हनुमान्) पर जा लगे, किन्तु जिस प्रकार तपाया हुआ लोहा निहाई का कुछ बिगाड़ नहीं पाता, उसी प्रकार वे हनुमान् का कुछ नहीं कर सके। वे जहाँ भी (हनुमान् के शरीर पर) लगे, वहाँ से चिनगारियाँ निकलकर उन्हीं चिनगारियों के साथ इधर-उधर बिखर गये।

इन्द्रजित् ने उमड़ते क्रोध से भरे हुए हनुमान् पर ज्वालामय बाण छोड़े, उनमें कुछ स्वयं झुलसकर धुआँ निकालने लगे। कुछ जलकर भस्म हो गये। वे उस (हनुमान्) को थोड़ी भी पीडा न दे सके। तब इन्द्रजित् अट्टहास करने लगा, जिसे देखकर देवताओं की आँखें व्याकुलता से छलछला उठीं।

रथ, हाथी, घोड़े और राक्षस-वीर, धरती पर (मरकर) बिखरे पड़े थे और पुष्ट कंधोंवाला इन्द्रजित् अकेला खड़ा था। उसके क्रोध तथा अट्टहास बढ़ते जा रहे थे। 'आओ, आओ'—कहते रहनेवाले हनुमान् के निकट वह आ पहुँचा।

उस राक्षस ने अपने दारुण धनुष की डोरी को खींचकर टंकार उत्पन्न किया, तो उससे इन्द्र का सिर भय से काँप उठा। जल से भरे काले मेघों से उठनेवाले वज्रों का समुदाय भय से मोहित होकर काँपते हुए प्राणों के साथ स्थित रह गया। भूमि का निरन्तर वहन करते रहनेवाले महान् सर्प के सहस्र फन भय से थर्रा उठे।

(सब प्राणियों के) शासक प्रभु के दूत (हनुमान्) ने अपनी मनोहर भुजाओं से इस प्रकार ताल ठोका कि उसकी ध्वनि से मानों सारा ब्रह्मांड ही फट गया। पर्वत चूर-चूर होकर गिर पड़े। धरती फट गई। दीर्घ दिशाएँ कड़क गईं और उस इन्द्रजित् के दीर्घ धनुष की डोरी भी टूट गई।

(हनुमान् को देखकर) इन्द्रजित् ने इस प्रकार दर्पपूर्ण वचन कहे—तू बड़ा चतुर है, चतुर है। संसार में तेरे समान चतुर और कोई नहीं है, नहीं है। अपनी शक्ति के कारण तू किसी के साथ युद्ध करने में समर्थ है, समर्थ है। किन्तु, आज तेरी आयु अन्तिम है, अन्तिम है।

तब हनुमान् ने कहा—हे क्रूर राक्षस ! अब (तुम लोगों की) आयु का अन्त-काल आ गया है। राक्षस के रूप में लोकों को सतानेवाले तुम्हारे सिद्धान्तों का अन्तकाल आ गया है। तुम्हारे कठोर व्यापारों का अन्तकाल आ गया है और तुम्हारे शस्त्रों का भी अन्तकाल आ गया है। किन्तु, इनका अन्त करने के लिए पर्याप्त शक्ति रखनेवाली मेरी भुजाओं के बल का कोई अन्त नहीं है।

(हनुमान् के ये वचन सुनकर) इन्द्र-शत्रु ने यह सोचकर कि अब इसके इस विश्वास का अन्त कर दूँगा, वज्र से भी अधिक कठोर बड़े बाण उसपर इस प्रकार छोड़े कि उस (हनुमान्) के सिर और वक्ष से नवीन रक्त निकलकर बह चला और देवता तड़प उठे। तब हनुमान्—

अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने शरीर को इस प्रकार बढ़ाकर ऊपर उठाया कि उसे देखने से ऐसा लगा कि अब उसकी ऊँचाई के लिए आकाश भी पर्याप्त नहीं होगा। वह इस प्रकार विशाल होकर फैला, जैसे उसके प्रभु रामचन्द्र का यश ही हो, जिन्होंने अपनी सौतेली माँ के वचनों को सिर पर धारण करके उत्तुंग तरंगों से पूर्ण समुद्र से आवृत भूमि (भरत को) प्रदान कर और धर्म के मार्ग पर सुस्थिर थे।

विशाल अन्तरिक्ष, दसों दिशाओं तथा समस्त लोकों के एकमात्र स्वामी इन्द्र की दृढ बाहुओं को भी बाँधनेवाले उस मेघनाद ने, हनुमान् की उस आकृति के एक भाग को ही देखा, उसे पूरा नहीं देख सका और आश्चर्यचकित हो स्तब्ध खड़ा रहा।

विराट् आकारवाले वीर (हनुमान्) ने अपनी दीर्घ बाँहों को सामने फैलाया और अपने ऊपर (इन्द्रजित् के द्वारा) छोड़े गये बाणों को पकड़कर फिर उसी पर फेंका। उसके पश्चात् उसके दृढ रथ में जुते हुए भूतों और सारथी को ऐसा मारा कि वे सब धरती पर गिर पड़े।

तब युगांतकालिक प्रभंजन के जैसे घोड़ों से युक्त एक अन्य रथ उस (इन्द्रजित्) की सहायता के लिए जा पहुँचा। दृढ भुजाओंवाला वह (इन्द्रजित्) उस बड़े रथ पर झपटकर सवार हो गया और ऊपर कथित विलक्षण युद्ध-कौशल से युक्त विजयी मारुति की देह को चक्रायुध-सदृश अनेक शरों से ढक दिया।

विजयशील मारुति ने अपने वक्ष पर लगे बाणों को इस प्रकार झाड़ दिया कि वे सब नीचे गिर गये। फिर, वह इन्द्रजित् के रथ पर कूद पड़ा और उसके युद्ध-कुशल दारुण

धनुष को, जिसने अनेक बार सब लोकों को परास्त किया था, अपने सुदृढ़ हाथों से छीन लिया और फिर (रथ से) बाहर निकलकर उस धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

अपने धनुष के टूटने की ध्वनि दिशाओं में फैलकर विलीन हो जाने के पूर्व ही इन्द्रजित् ने अपने हाथ में उस धनुष को उठा लिया, जिसे वज्रायुध से महान् पर्वतों के पंखों को क्रोध के साथ काट देनेवाले इन्द्र ने पहले कभी युद्ध में पराजित होकर भेंट के रूप में उसे समर्पित किया था।

कभी न घटनेवाले क्रोध से युक्त रावण-पुत्र, शत-शत उत्तम बाणों को एक साथ प्रयुक्त करता हुआ जल्दी-जल्दी अपने धनुष को झुकाता रहा। उत्तम वीर (राम का) दूत उन बाणों के प्रहार से, अपनी विराट् देह में अनेक घावों के लगने से कुछ क्षण शिथिल हो चुपचाप खड़ा रहा।

देवता पहले (जब हनुमान् ने इन्द्रजित् के धनुष को तोड़ दिया था, तब) बड़ा कोलाहल करने लगे थे और अब (हनुमान् को इन्द्रजित् के बाणों के कारण शिथिल होता हुआ देखकर) अत्यन्त दुःखी हो व्याकुल हो उठे। किन्तु, हनुमान् शीघ्र ही एक विशाल वृक्ष को हाथ में लेकर इस प्रकार घुमाने लगा कि (इन्द्रजित् के द्वारा) प्रयुक्त बाणों की पंक्तियाँ टूट-टूटकर नीचे गिरने लगीं। फिर, उसने स्वर्णमय तथा माणिक्य-जटित दीर्घ किरीट को धारण करनेवाले (इन्द्रजित्) के सिर पर आघात किया।

ज्योंही वह भारी वृक्ष उसके किरीट-भूषित शिर पर लगा, त्योंहीं देवताओं को पराजित करनेवाला वह (इन्द्रजित्) विमूढ़-सा हो गया। ऊँचे पर्वत पर बहनेवाली जल-धारा के समान, उसके शिर से रक्तधारा बह चली, मानों उसके किरीट के माणिक्यों के कांतिपुंज ही पिघलकर बह चले हों।

इस प्रकार वह (इन्द्रजित्) कुछ क्षण स्तब्ध खड़ा रहा। फिर, संज्ञा पाकर अपने चन्द्रकला के समान दाँतों को पीसकर एक ही जैसे सहस्र बाणों को एक के पीछे एक छोड़ा, जिससे पर्वताकार हनुमान् की देह क्षत-विक्षत हो गई और देवता, देवर्षि तथा असुर विस्मय से स्तब्ध हो गये!

(इन्द्रजित् द्वारा) प्रयुक्त शर उसके वक्ष तथा बाँहों में धँस गये, तो हनुमान् घृणा के साथ, अत्यन्त क्रुद्ध होकर ज्ञान-रूपी (रामचन्द्र) के धनुष के निकले हुए बाण से भी अधिक वेगवान् होकर (इन्द्रजित् पर) झपटा और उसको उसके बड़े रथ के साथ ही उठाकर ऊपर फेंक दिया तथा आनन्द से गरज उठा।

आँख की ऊपरी पलक निचली पलक के साथ आ मिले, इसके पूर्व ही (अर्थात, पलक मारने के समय के अन्तर ही) अपार बल तथा पराक्रम से युक्त शत्रु (इन्द्रजित्), अपने रथ के साथ आकाश की ऊपरी सीमा से जा टकराया और इस प्रकार धरती पर आ गिरा कि उसके घावों से नवीन रक्त नव गंध को फैलाता हुआ, बह चला।

किन्तु इतने में ही, बिजली के समान चमकते हुए दाँतोंवाला (इन्द्रजित्) आकाश में उठ गया। इसी अन्तर में, उड़द के लुढ़क जाने के पहले ही (अर्थात् , क्षण

भर में ही) मारुति ने उसकी सेना में स्थित बड़े-बड़े दृढ रत्नमय रथों को अपने पदाघातों से चूर-चूर कर दिया।

पुनः रथहीन होकर तथा फिर (हनुमान् के) सामने खड़े होने की शक्ति से रहित होकर, अग्नि के समान तपते हुए क्रोध के साथ आकाश में संचरण करते हुए उस (इन्द्रजित्) ने, प्रतिकार करने का अन्य कोई उपाय न देखकर, सोचा कि इसपर ब्रह्मास्त्र का ही प्रयोग करना उचित होगा, जिसका कोई प्रतिद्वंदी शस्त्र नहीं है।

(इन्द्रजित् ने) पुष्प, धूप, दीप तथा पुष्पवर्ण धवल तण्डुल को अविचलित ध्यान के साथ (ब्रह्मा को) अर्पण करके आराधना की और समस्त देवों तथा समस्त लोकों की सृष्टि करनेवाले दिव्यजन्मा चतुमुख के अस्त्र को अपने विशाल कर में लिया।

(इन्द्रजित् ने) अपने विजयप्रद धनुष को लेकर उसपर लंबी डोरी चढ़ाई और अति वेगवान् हनुमान् की भुजाओं को लक्ष्य करके उस शर का प्रयोग किया। तब धरती काँप उठी। दिशाएँ काँप उठीं। चन्द्रलोक काँप उठा और मेरु-पर्वत भी काँप उठा।

उस अवाय ब्रह्मास्त्र ने अग्नि उगलते हुए, प्रचंड आँखोंवाले सर्पों के राजा का आकार धारण किया और उस महान् आकृतिवाले हनुमान् की भुजाओं से लिपटकर उन्हें कसकर बाँध दिया, जिस दृश्य को देखकर बलवान् गरुड चौंक उठा।

उस ब्रह्मास्त्र ने (हनुमान् की) दृढ देह को बाँध दिया। तब वह महिमावान मारुति, उस दिन उसको अनुसरण कर लंका में आये हुए धर्मदेवता के अश्रुओं के साथ एवं (अशोकवन के) उस स्वर्णमय तोरण के साथ, धरती पर गिर पड़ा, मानों युगांत में सर्प-ग्रस्त (राहु-ग्रस्त) होकर चन्द्रमा गगन से नीचे गिर पड़ा हो।

नीचे गिरा हुआ मारुति यह सोचकर कि इस महिमामय ब्रह्मास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करना तथा इसके बंधन को तोड़कर मुक्त हो जाना उचित नहीं है, वैसे ही नेत्र मूँदे पड़ा रहा। वह राक्षस (इन्द्रजित) यह सोचता हुआ कि अब उसकी शक्ति मिट गई है, उसके समीप आया।

जब इन्द्रजित् (हनुमान् के) समीप आया, तब अपने प्राण लेकर दिग्दिगन्तों में भागे हुए सब राक्षस, जो हनुमान् के गिरने के समय की प्रतीक्षा कर रहे थे, दौड़कर आये और हनुमान् को घेर कर खड़े हो गये। हनुमान् की देह से लिपटे हुए, रंध्रपूर्ण दंत-वाले उस सर्प को पकड़कर वे (बँधे हुए हनुमान् को) खींचने लगे, उसे धमकाने और चिल्लाने लगे।

'अब इस वानर का बल समाप्त हो गया'—यों सोचनेवालों (राक्षसों) के कोला-हल के साथ उमड़ती हुई लंका नगरी, तरंगपूर्ण समुद्र-जैसी हो उठी। (हनुमान् को) सभी ओर से लिपटकर पड़ा रहनेवाला वह सर्प वासुकि के समान था। राक्षस देवता-जैसे थे और हनुमान् मन्दर-पर्वत-जैसा था।

वह काला सर्प (ब्रह्मास्त्र) उस (हनुमान्) की स्वर्णमय देह से लिपटा पड़ा रहा। धर्म-देवता का एकमात्र साथी बनकर रहनेवाला हनुमान् उस महा मेरुगिरि की समानता

करता था, जो प्रभंजन के समय, बलवान् सर्पराज (आदिशेष) के द्वारा चारों ओर से घिरा पड़ा हो।[1]

पुरुषों ने शोर मचाया। स्त्रियों ने भी, अन्तरिक्ष में, ऊपर के लोकों में और अष्ट दिशाओं में अपनी प्रतिध्वनि को फैलानेवाले मेघों के समान कोलाहल किया। राक्षसों ने जो बधाइयाँ दीं, उनकी कोई सीमा नहीं रही। यदि कहना चाहें, तो यों कह सकते हैं कि वह लंकापुरी तब उतनी ही आनन्दित हुई, जितनी कि वह पहले कभी देवेन्द्र को बाँधकर लाने पर हुई थी। (१-६३)

●

अध्याय १३

बन्धन-मुक्ति पटल

वे (राक्षस) इस प्रकार कहते हुए दौड़े आ रहे थे—इस वानर को तीरों से मारो। इसपर बरछे से प्रहार करो। इसे कुल्हाडी से काटो। इसकी आँतों को निकाल दो। इसके टुकड़े-टुकड़े कर दो। इसे खा डालो। यदि यह जीवित रहे, तो हमारा भला नहीं होगा।

काजल-लगी आँखोंवाली (स्त्रियाँ) और पुरुष, सब फनवाले सर्प-जैसे फुफकार भरने लगे। कुछ यह कहते हुए कि, यह वानर अबतक जीवित क्यों रहने दिया गया है?—उसको घेरकर उसे मारने का यत्न करने लगे।

कुछ कहते थे—क्या इसे विष में बुझे शस्त्रों से पीडित कर मारें अथवा इसके सिर पर वज्र से प्रहार करें या इसे समुद्र में डुबोकर मार दें। नहीं तो, इसे अग्नि में डालकर जला दें।

कुछ राक्षसों ने यह कहते हुए (हनुमान् को) घेर लिया कि हमारे पिताओं को (जिन्हें तुमने मारा है) लौटा दो, हमारे अनुजों को लौटा दो, हमारे अग्रजों को लौटा दो। तभी तुम जा सकते हो। और, अनेक राक्षस यह कहकर कि यह वानर स्वर्गलोक के देवताओं की आज्ञा से ही यहाँ आया है, उसके प्राण लेने की चेष्टा करने लगे।

पर्वत के समान बलवान्, अपने प्राणाधिक पतियों से हम अबतक कभी विलग नहीं हुई थीं। आज इस वानर के कारण हम उनसे वियुक्त हो गई हैं। अब हम कबतक रोती-कलपती रहेंगी? इसी वानर के सिर पर चढ़कर हम अपने मंगल-सूत्रों को तोड़ दूँगी।—यों कहकर अनेक राक्षस-स्त्रियाँ रोने लगीं।

(हनुमान् को) बाँधकर ले जानेवाले राक्षसों के सामने से सारी विजयिनी

---

१. एक बार आदिशेष और वायुदेव में स्पर्धा चली। अपने-अपने बल की परीक्षा के लिए उन्होंने यह बाजी लगाई थी कि वायु मेरु के शिखर को उड़ा देने की चेष्टा करे और आदिशेष उस शिखर से लिपटकर उसे बचाने की कोशिश करे। अन्त में उस शिखर का एक भाग टूटकर दक्षिण में जा गिरा, जहाँ बाद में लंका का निर्माण हुआ। त्रिकूटाचल मेरु-शिखर का वही टूटा हुआ अंश है। —ले०

लंकापुरी दौड़ी चली आ रही थी (अर्थात् , नगर के सब लोग उसे देखने के लिए आ रहे थे)। उस समय लंका में जो कोलाहल मचा, वह ब्रह्मांड-भर में छा गया। उस कोलाहल को सुनकर, अपने मृत पतियों का स्मरण करके रोनेवाली कुंडल-अलंकृत मुखवाली राक्षसियाँ भी अपना दुःख भूल-सी गईं।

हनुमान् के द्वारा उठा-उठाकर फेंके गये, तीक्ष्ण, अग्नि-सदृश शस्त्रधारी राक्षसों, बड़े-बड़े हाथियों, ध्वजालंकृत रथों और अश्वों के लंका के प्रासादों पर गिरने से वे प्रासाद इस प्रकार ध्वस्त हो पड़े थे, जिस प्रकार वज्र के गिरने से पर्वत ढह जाते हैं। हनुमान् , उन वीथियों में उन्हें देखता हुआ चला।

राक्षसियों ने हनुमान् को लंका की वीथियों में आते हुए देखा। किन्तु, यह न देखकर कि उसकी भुजाएँ बँधी हुई हैं, वे भय के कारण अपना पेट मलती हुई भाग चलीं। उसकी भुजाएँ पुराने वृक्षों के जैसी थीं, जिनपर चींटियों के झुंड पंक्तियों में चल-चलकर उनको आवृत कर रहे हों। उन्हें भागते देखकर बहुत-से राक्षस, जिनके ओंठ उठे हुए दाँतों के कारण उभरे हुए थे, भ्रान्तचित्त हो खड़े रहे—(भ्रांत इसलिए हुए कि राक्षसियों को भागते देखकर उन्होंने सोचा कि वानर ने और कुछ विध्वंसकारी कार्य आरम्भ कर दिया)।

कुछ राक्षस भय के कारण चिल्ला भी न पाते थे, इसलिए मौन हो खड़े थे। कुछ (हनुमान् के) युद्ध-कौशल के बारे में चर्चा कर रहे थे। अनेक राक्षस (हनुमान् को) देख-देखकर काँप रहे थे। कुछ नगर से बाहर भागे जाते थे।

कुछ कह रहे थे—अत्यन्त क्रोधी, कठोर दंतवाले सर्प का बंधन भी इस (वानर) के लिए पुष्पहार के जैसा हो गया है। इसका मुख अभी तक उज्ज्वल और प्रशांत ही है (अर्थात् , यह अभी निस्तेज और बलहीन नहीं हुआ है)। अतः, इसे अभी राजा के सम्मुख ले जाकर उपस्थित न कीजिए। किन्तु, अच्छी तरह सोच-विचार कर कुछ कीजिए।

कुछ राक्षसों ने यह अनुमान कर लिया कि यह जो अब बंदी बनकर अपमान को सह रहा है, प्रभावपूर्ण नाग-पाश के बंधन में पड़ने के कारण नहीं, किन्तु किसी भिन्न उद्देश्य से ही ऐसा कर रहा है। वे हनुमान् को देखकर नमस्कार करके कहते—हमारे ऊपर अपनी कृपादृष्टि डालो। हम पर क्रोध मत करो।

अपार बलवाले, अपने भुजबल के कारण गरुड से भी तिगुने शक्तिशाली पचास सहस्र सैनिक मिलकर पीतवर्ण वीर-कंकणधारी हनुमान् के सर्प-पाश को पकड़कर खींचे लिये जा रहे थे।

अनेक राक्षस कह रहे थे—बल और पराक्रम से युक्त राक्षसों के गर्व को मिटाने के उद्देश्य से, यम स्वयं अपने अविनश्वर आकार को छिपाकर इस वानर के रूप में आया है और युद्ध किया है।

चूड़ियों की पंक्तियाँ पहने हुए स्त्रियाँ और पंक्तियों में खड़े पुरुष महलों के आँगनों में, सुन्दर स्वर्ण-प्रासादों के छज्जों पर, झरोखों में और भेरी-नाद से प्रतिध्वनित द्वारों में सर्वत्र बड़ा कोलाहल करते हुए एकत्र हो गये।

बहुत-से कहते थे—कैलास-वासी, अनुपम परशुधारी महादेव ही, कलापी-तुल्य

सीता देवी के पातिव्रत्य की रक्षा करने के लिए, तीक्ष्ण दंतवाले वानर का रूप धरकर आया है और प्राचीरों से घिरी इस सुन्दर लंका नगरी को विध्वस्त करने लगा है।

देवस्त्रियाँ, अलक-भार से युक्त लताओं के सदृश विद्याधर-रमणियाँ, तंत्री-नाद से भी अधिक मधुरभाषिणी नाग-कन्याएँ, इक्षुरस-सदृश सिद्ध-कन्याएँ और यक्ष-रमणियाँ घोर शब्द करती हुई सब ओर से आ एकत्र हुईं।

कुछ लोग कहते थे—समुद्र में योगनिद्रा में रहनेवाले चक्रधारी (विष्णु) और अनुपम कमल से उत्पन्न, मालालंकृत सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा)—दोनों ही वैर करके, (राक्षसों का विनाश करने के लिए) अपने-अपने रूप को छोड़कर, (इस वानर के) एक ही रूप में यहाँ आ गये हैं।

राक्षसों और राक्षसियों से भिन्न अन्य सब जन विपुल वर्षा के समान बहनेवाली अपनी अश्रुधारा को दबा नहीं पाते थे और रो रहे थे। वह (रोना) क्या सुरभित केशोंवाली सीता के दुःख को देखकर उत्पन्न हुआ था या (हनुमान् पर) दया के कारण था अथवा धर्म की दीनता को देखकर उत्पन्न हुआ था ?

पौरुषवान् हनुमान् ने विचार किया—अब इसी प्रकार, इन राक्षसों के साथ जाकर रावण को देखना भी अच्छा होगा। इसलिए उसने (बंधन को तोड़कर) लौटना उचित नहीं समझा और उनकी इच्छा के विरुद्ध भी कुछ नहीं किया। प्रत्युत उनके साथ-साथ चलता रहा।

(उसने सोचा) मेरे पिता (वायु) की करुणा से, श्रीराम के रक्त चरणों का ध्यान करने से और सीता तथा देवताओं के द्वारा दत्त वरों के प्रभाव से मैं इस कठोर नागपाश को भी तोड़ सकता हूँ। फिर भी, इस बंधन में रहना ही उचित है।

मैं वक्रदंतवाले राक्षसराज (रावण) से मिलूँगा। मंत्रणा देने के लिए एकत्र मंत्रियों के समक्ष, मैं राम के पराक्रम से उत्पन्न होनेवाले (भयंकर) परिणामों को बताऊँगा। कदाचित् वह (रावण) द्रवितचित्त होकर मिथिला की कुमारी को लौटा भी दे।

इतना ही नहीं, उस (रावण) के साथियों के बल को भी मैं जान सकूँगा और उनके विचार भी जान सकूँगा। उस समर्थ (रावण) के वचनों के द्वारा एवं उसके मुख-रूपी दूतों के द्वारा उसकी दशा और मन (की दृढ़ता) की भी जानकारी मैं प्राप्त कर सकूँगा।

वाली की मृत्यु, सप्त सालवृक्षों का विनाश, भयप्रद वानर-सेना की अपरिमितता सूर्यकुमार (सुग्रीव) की शक्ति—ये बातें भी (मेरे मुख से सुनने पर) उस नीलवर्ण रावण के हृदय में यथातथ रूप में अंकित हो जायेंगी।

अतः, मैं रावण से मिलूँगा और राम के सामर्थ्य तथा न्यायप्रियता को समझाकर उसके मन में अंकित कर दूँगा। इसके साथ ही उसकी शेष राक्षसों की सेना को भी धीरे-धीरे, आधे से भी अधिक भाग को मिटाकर लौट जाऊँगा। बस यही मेरा कर्त्तव्य होगा—यह सोचकर हनुमान् आगे चला।

दोनों ओर से राक्षससेना-रूपी समुद्र के उमड़ते हुए, देवेन्द्र को परास्त करनेवाला (इन्द्रजित्), बँधे हुए वृषभ जैसे वीर (हनुमान्) को एक श्वेतच्छत्र से शोभायमान राजा (रावण) के प्रासाद में ले चला।

दूत लोग दौड़े और पूर्वकाल में सब दिशाओं को जीत लेनेवाले (रावण) के निकट पहुँचकर प्रणाम करके कहा—हे प्रभो ! आपके प्रिय पुत्र ने ब्रह्मास्त्र से उस शत्रु वानर को बाँध लिया है।

(यह समाचार) सुनते ही, उमड़ते हुए आनन्द के साथ, रावण ने, चन्द्ररहित (रात्रिकाल के) जैसे अंधकारपूर्ण अपने उस काले वक्ष पर स्थित मुक्ताहार हो उतारकर उन दूतों को भेंट किया, जिस वक्ष ने दिग्गजों के दाँतों के आघात को सहा था।

अपार आनन्द के कारण फूली हुई भुजाओंवाले, प्रफुल्ल रक्तकुमुद जैसे नयनोंवाले उस (रावण) ने आज्ञा दी कि तुमलोग शीघ्र जाकर मेरा यह आदेश कहो कि उस वानर को सजीव ही यहाँ ले आवें।

दूतों ने उस आज्ञा को शत्रु नाम को ही मिटा देनेवाले प्रतापी (इन्द्रजित्) को सुनाया। (हनुमान् के बाँधे जाने का) समाचार जब सर्वत्र फैला, तब उस अपवादमुक्त वन्दिनी सीता की क्या दशा हुई—यह अब कहेंगे।

(हनुमान् ने) अब सुरक्षित वन को मिटा दिया। असंख्य राक्षसों को निहत कर दिया। ऐसे समाचार सुनकर आनन्दित होनेवाली सीता को, निष्कलंक चित्तवाली राक्षसी (त्रिजटा) ने चिंतित होकर वीर (हनुमान्) के बाँधे जाने का समाचार दिया, जिसे सुनकर सीता इतनी व्याकुल हुई कि उसे अपने प्राण भी घृणित मालूम होने लगे।

धूलि-धूसर देह से, धुएँ से आवृत चित्र-प्रतिमा-जैसी तथा पुष्प-जैसी कोमल सीता, उस समय उस सुन्दर पंखोंवाली हंसिनी के समान लगती थी, जिसका बच्चा किसी व्याध के हाथ में फँस गया हो। वह (सीता) ये वचन कहने लगीं—

(हे हनुमान्) तुम अपने आकार से अतिविशाल आकाश को भर देनेवाले हो, सकल शास्त्रों में निष्णात हो। ऐसे तुम एक वंचक राक्षस के हाथ में बंदी हो गये। क्या यही धर्म की रीति है ?

तुम समुद्र को पार करके यहाँ आये। तुमने निष्ठुर कंटक-जैसे राक्षसों के बल को मिटाया, फिर भी तुम्हारे प्राणों को कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई। विजयशील पुष्ट भुजावाले हे तात ! तुम यहाँ आकर मुझे और भी अधिक दुःख देनेवाले बन गये।

तुमने (रामचन्द्र की) मुद्रिका लाकर मुझे दिखाई और मेरे प्राणों को बचाया। उसपर मैंने तुम्हें आशीर्वाद दिया था कि तुम्हें ऐसी चिरायु प्राप्त हो कि तुम प्रलयकाल को भी देख सको। मेरा वह आशीर्वचन सत्य प्रमाणित होगा, किन्तु तुम, पहले अपनी पर्वत-सदृश भुजाओं का बल दिखाकर, अन्त में अमिट अपयश के पात्र बन गये।

मैं आशा करती थी कि मेरे प्राणों की रक्षा करनेवाले तुम मुझे देखने के पश्चात् लौट जाओगे, यहाँतक पहुँचने का मार्ग दिखाकर प्रभु (रामचन्द्र) को लाओगे और

वे युद्ध में रावण को निहत करके मुझे मुक्त करके ले जायेंगे। किन्तु, तुमने अब मेरी वह आशा व्यर्थ कर दी।

इस प्रकार वचन कहकर वह, जो ऐसे पातिव्रत्य की अग्नि से युक्त थी कि स्वयं अग्नि भी उससे जल जाय, यों विकल-प्राण हुई, जैसी वह गाय, जिसका बछड़ा दूसरों के हाथ में बंदी बन गया हो। वह मूर्च्छित हो गई।

उधर, महिमामय तथा बड़े आकारवाले (हनुमान्) को बाँधकर, युद्ध में यश पाया हुआ (इन्द्रजित्) अपने अपूर्व तप से त्रिलोक पर शासन करनेवाले (रावण) के बड़े प्रासाद में जा पहुँचा।

(रावण का) श्वेतच्छत्र, जिससे चारों ओर मुक्ता-मालाएँ लटक रही थीं, इस प्रकार शीतल प्रकाश फैला रहा था, मानों तीनों लोकों में प्रकाश फैलानेवाला कोई द्वितीय चंद्रमा हो। वह (छत्र) उस मनोहर और महान् रजत-पर्वत-जैसा लगता था, जिसे (रावण ने) धरती से गगनतल में उठा दिया हो।

रावण की भुजाएँ ऐसी थीं कि उनपर गरुडध्वज (विष्णु) के चक्रायुध, इन्द्र के वज्र और त्रिनेत्र के त्रिशूल के लगने से घट्टे पड़े हुए थे और मधुस्रावी (पुष्पों से अलंकृत) केशोंवाली सुन्दरियों के कमलकोरक जैसे हाथों के उज्ज्वल करवाल जैसे तीक्ष्ण नखों के क्षत भी शोभायमान हो रहे थे।

(उसके दसों सिरों के) घने, रक्तवर्ण, तथा दीर्घ केशों के जाल चारों ओर, सब दिशाओं में बिखरे थे, जिनसे कांतिमय किरणें छिटक रही थीं। उसके क्रोधपूर्ण निःश्वास से धुआँ निकल रहा था। वह दृश्य ऐसा लगता था, मानों दक्षिण दिशा भी एक वडवाग्नि[1] रखती हो।

(उसके किरीटों में से) मरकत-रत्नों की उज्ज्वल कांति के साथ माणिक्यों की दीर्घ किरणें भी निकल रही थीं, जो नरक-लोक के अमिट अन्धकार को (अंधतम को) भी निगल रही थीं। इससे वह (रावण) ऐसा लगता था, मानों सर्पराज अपने सहस्रों फनों को चारों ओर फैलाये सिंहासन पर विराजमान हो।

उसके कमरबंद में जो चुने हुए विविध प्रकार के अति उत्तम रत्न जड़े थे, वे अपनी कांति बिखेर रहे थे। उसकी सुन्दर भुजाओं पर सर्प की कांति से विशिष्ट आभरण सुशोभित हो रहे थे। वह दृश्य ऐसा था, मानों अति विशाल काला समुद्र ही धरती पर दूर तक व्याप्त रहनेवाले (स्वर्णमय) मेरु-पर्वत को लपेटकर पड़ा हो!

वह सिंदूर-सदृश रक्तवर्ण वस्त्र पहने हुए था, उज्ज्वल मुक्ता-पंक्तियों से जटित उसके आभरण पूर्णचन्द्र का प्रकाश फैला रहे थे। वह देखने में ऐसा लगता था, मानों अन्धकार ही रक्तवर्ण आकाश को अपना कटि-वस्त्र बनाकर, नक्षत्रों को आभरण के रूप में धारणकर, चन्द्र-रूपी छत्र के नीचे बैठा हुआ हो।

वह (रावण) सौंदर्य का, उत्तम वेदों का और गगन से भी अधिक स्थिरता का,

---

१. यह प्रसिद्ध है कि वडवाग्नि उत्तर दिशा में ही रहती है।

अनुपम आवास था। उसके बड़े-बड़े दसों मुख, दसों दिशाओं में जब-जब अपनी दृष्टि बिखेरते थे, तब-तब दिग्गजों-सहित दिशाओं की रखवाली करनेवाले दिक्पाल तथा अंतरिक्ष एवं अधर दिशा (पाताल) के रक्षक देवता (ध्रुव तथा आदिशेष) थर्रा उठते थे।

अनुपम नायक (राम) की देवी (सीता) को जबसे उसने देखा था, तबसे उसे नागलोक से ब्रह्मदेव के आवास सत्यलोक तक में रहनेवाली कलापी-तुल्य सभी सुन्दरियाँ पुरुष के जैसी लगती थीं (अर्थात्, अब उन सुन्दरियों के प्रति रावण के मन में कोई आकर्षण नहीं रह गया था।)

वानर, दोनों श्रेष्ठ देव (हरि और हर अथवा ब्रह्मा और विष्णु), (राक्षसों के द्वारा) नीचकर्मा समझे जानेवाले मनुष्य, कुछ मुनि, इनको छोड़कर अन्य सभी प्रकार के व्यक्ति, मांस-लगे शूल को धारण करनेवाले राक्षसों के साथ (रावण को) घेरकर खड़े थे।

(रावण के दरबार में) तंत्री-रूपी इक्षुखंडों का मधुर नाद-रूपी रस बह रहा था। शास्त्रोक्त विधान से वादित पखावज, शहनाई, डमरू, ताल आदि निरंतर बज रहे थे। देवस्त्रियाँ अमृत-प्रवाह जैसे संगीत के मधुर रस को उस (रावण) के कानों में भर रही थीं।

मेनका उपयुक्त संगीतनाद और मर्द्दल-वाद्य के अनुकूल अपने चरण, नेत्र, कर आदि अंगों को, जो अपनी सुन्दरता के कारण रक्तकमलों को भी अपनी उपमा के अयोग्य सिद्ध कर रहे थे, परिचालित करती हुई नृत्य कर रही थीं; यदि उस नृत्य को मुनि देख लें, तो वे भी मुक्ति के परमानंद को त्यागकर उस (मेनका) की ओर आकृष्ट हो जायें। उस (मेनका) को देखकर वह (रावण) मंदहास कर रहा था।

(रावण का) एक मुख मान करती हुई किसी रमणी के मुख की मधुरिमा का आस्वादन कर रहा था (अर्थात्, उस रमणी के मुख-सौंदर्य को देख रहा था)। दूसरा मुख अपने साथ मिली हुई किसी रमणी के वदन पर प्रकट हुए आनंद-मधु का पान कर रहा था। तीसरा मुख गायन करती हुई रमणियों के वदन से प्रकट हुए प्रेम-मधु को पी रहा था। चौथा मुख नृत्य करनेवाली सुन्दरियों के वदनों पर प्रकट हुए अभिनय-जन्य शोभा का स्वाद ले रहा था।

पाँचवाँ मुख (अपने अधीनस्थ) देवताओं के साथ संभाषण करता हुआ अपनी प्रभुता दिखा रहा था। छठा मुख तीनों (मंत्री, प्रधान और सेनापति) से मंत्रणा कर रहा था। सातवाँ मुख क्रूर कर्मों का चिन्तन करता हुआ, क्रूरता का भाव प्रकट कर रहा था। आठवाँ मुख शुकी-जैसी जानकी के रूप को (अपने सम्मुख) देखने में व्यस्त था—(भाव यह है कि उसकी आँखों में सीता की छवि घूम रही थी।)

नवाँ मुख सोचता था कि रक्तकुमुद-सदृश कोमल अंगुलियोंवाली सीता के पातिव्रत्य-रूपी सागर को कैसे पार करें? दसवाँ मुख चन्दन से अलंकृत स्तनोंवाली सुन्दरियों के द्वारा दिखाये जानेवाले मुकुर में अपनी छवि देख रहा था।

उसका मन जानकी पर उसी प्रकार मँड़रा रहा था, जिस प्रकार कोई मत्त भ्रमर घने झुरमुट के मध्य-स्थित मधु को प्राप्त करने के लिए आतुर होकर मँड़रा रहा हो।

उसकी भुजाओं पर, (रावण के विरह से) व्याकुलमन, कृशगात्र, छलछलाती आँखोंवाली, सुन्दरियों के नयन-रूपी बरछे आघात कर रहे थे।

मंद, सुगन्धित और शीतल पवन, जो पुष्पों के मकरंद से लिप्त होकर, मधु का पान करके, सुन्दरियों के पुष्प-कोरक-सदृश स्तनों के चन्दन-लेप का आलिंगन करके चल रहा था, मानों (रावण से) बदला लेने के लिए उसके घावों में विषलिप्त तीर जैसे घुसा जा रहा हो।

अर्धचन्द्र-सदृश ललाटवाली तरुणियों के रक्त रेखांकित मनोहर मीनसम नयनों से युक्त वदन-रूपी कमलों के लिए वह (रावण) सूर्य-सदृश था और देवताओं तथा निष्ठुर नेत्रोंवाले दानवों के मुकुलित कर-रूपी कमलों के लिए वह चन्द्र सदृश था।[1]

इस प्रकार आसीन रहनेवाले, अष्ट दिशाओं के प्रभु (रावण) को मारुति ने (दूर से) देखा। उसे देखते ही काले और दीर्घ सर्प को देखकर क्रुद्ध होनेवाले गरुड के समान उत्तप्त हो उठा। उग्र होकर उसने अपने मन में सोचा कि पुष्ट भुजाओं के पाश को तोड़ दूँ और विष-सदृश इस राक्षस पर झपट पड़ूँ।

यह सोचकर कि निद्रित व्यक्ति को मारना अपराध है, इसे मैंने, जब मैं इसके अंतःपुर में गया था, बिना मारे छोड़ दिया था। अब इसे स्वर्ण और रत्नों से निर्मित सिंहासन पर आसीन देख रहा हूँ। अब और अधिक क्या सोचना है? इसके सिरों को चूर-चूर कर दूँगा और पातिव्रत्य धर्मवाली पुष्पलता-तुल्य देवी को बंधन से मुक्त करके शीघ्र ही यहाँ से ले चलूँगा—यों हनुमान् ने विचार किया।

(हनुमान् ने यह भी सोचा—) महावीर (रामचन्द्र) की पत्नी को बंदिनी बनी हुई देखकर भी चुप रहनेवाले देवों, दानवों आदि को आकृष्ट करता हुआ, यदि मैं इस पापी के किरीटालंकृत सिरों को न काट डालूँ, तो अब आगे मैं (रामचन्द्र की) क्या सेवा कर सकूँगा?

(सीता का) अन्वेषण करता हुआ एक वानर आया और उसने रावण के मुकुट-भूषित सिरों को चारों दिशाओं में लुढ़का दिया, जिसे देखकर इस (रावण) की सब स्त्रियाँ भयभीत हो भागकर जा छिपीं। वह वानर विजय पाकर आनंद-नृत्य करने लगा—अहो! यह वानर कितना निष्ठुर है?—ऐसे प्रशंसापूर्ण वचन क्या कम होते हैं? (अर्थात, ऐसी प्रशंसा का पात्र बनना बहुत अच्छा है)।

दीर्घ करवाल-सदृश तीक्ष्ण दाँतोंवाले इस राक्षस (रावण) को अपने नेत्रों से देखने की इच्छा लेकर ही मैं अबतक इन प्राणों को शरीर में रखे हुए हूँ। इसे अपने नेत्रों के सामने पाकर यदि केवल कुछ बातें करके ही लौट जाऊँ, तो मुझे अपयश ही प्राप्त होगा। किन्तु (इसके साथ युद्ध करूँ और) मारा भी जाऊँ, तथापि मुझे यश ही मिलेगा, न कि अपयश।

---

१. कंब रामायण में कहीं-कहीं यह उल्लेख मिलता है कि रावण असुर जाति का था और उसने देवों और दानवों को परास्त किया था।—अनु०

जब वह (हनुमान्) इस प्रकार सोच रहा था कि अभी अपनी भुजाओं के बंधन को तोड़कर पर्वत पर झपटनेवाले सिंह के समान इसपर एकदम टूट पड़ूँगा, तभी फिर उसे यह विचार हुआ कि यह कार्य नीति के अनुकूल नहीं होगा।

यह (रावण) ऐसा नहीं है कि (किसी के द्वारा) सरलता से मारा जा सके। इसके राज्य को देखने पर आसानी से इसे जीता भी नहीं जा सकता। जैसे समस्त अंधकार एकत्र हो गया हो, इस प्रकार के काले वर्णवाले इस रावण के बल को एकमात्र रामचन्द्र ही परास्त कर सकेंगे। अन्य कोई इसे हरा नहीं सकता।

मुझे परास्त करना भी इस (रावण) के लिए असम्भव है। इतने बल से युक्त इसे परास्त करना भी मेरे लिए असंभव है। यदि मैं अब युद्ध छेड़ दूँ, तो उसी में अनेक दिन व्यतीत हो जायेंगे। अतएव, यह उचित नहीं है कि मैं अब भयंकर युद्ध आरम्भ कर दूँ।

इतना ही नहीं—रामचन्द्र की ऐसी प्रतिज्ञा है कि इस रावण की बलिष्ठ भुजाओं तथा अनेक सिरों को काटकर धरती पर लुढ़का दूँगा और उस कार्य से सप्त लोकों की जनता को आनन्दित करूँगा।

यदि मैं भयानक युद्ध छेड़ दूँ और इसी में समय व्यतीत कर दूँ, तो सुन्दर नेत्र-वाले प्रभु की वह देवी, जिसने प्रभु की सौगंध खाकर यह कहा था कि मैं केवल एक मास के लिए ही जीवित रहूँगी, अपने प्राणों को निश्चय ही त्याग देगी।

अतः, अब युद्ध छेड़ना उचित नहीं है। दूत का कार्य-मात्र करना उचित है। वेदनायक (राम) का विलक्षण साथी हनुमान् यों सोचता हुआ, विजयशील शत्रु उस राक्षस के निकट आ पहुँचा।

पैनाये करवाल-जैसे घातक नेत्रोंवाली स्त्रियों के मध्य आसीन राजा (रावण) के सम्मुख, समुद्र से अमृत निकालकर पिये हुए देवों को परास्त करके उन्हें भगानेवाले (इन्द्रजित्) ने हनुमान् को उपस्थित किया।

जितने लोक हैं, उन सब पर विजय पाये हुए (रावण) को संबोधन करके उस (इन्द्रजित्) ने निवेदन किया—वानर-रूप में रहनेवाला यह प्रतापवान्, शिव और विष्णु के जैसे पराक्रम से युक्त है। यह कहकर अपने करों को जोड़कर खड़ा रहा।

(हनुमान् को) देखनेवाली उस (रावण) की आँखों से जो चिनगारियाँ निकलीं, उनसे प्रशंसनीय हनुमान् की देह के सब रोयें सरसर करके जल उठे। उसके निःश्वासों से निकलनेवाले तप्त धूम ने उस (हनुमान्) की देह को बाँधे हुए नागपाश के समान ही कसकर बाँध लिया।

यम-समान रावण ने, क्रोध से तप्त होकर, देव आदि शत्रुओं को भयभीत करते हुए, हनुमान् से प्रश्न किया—यहाँ तेरे आने का कारण क्या है? तू कौन है?

तू चक्रधारी (विष्णु) है? कुलिशधारी (इन्द्र) है? दीर्घशूलधारी (शिव) है? कमलभव (ब्रह्मा) है? भय-रहित अनेक सिरोंवाला (आदिशेष) है, जो भूमि को धारण करता है? तू कौन है, जो अपने नाम और रूप को छिपाकर युद्ध करने के लिए यहाँ आया है?

क्या तू काले रंगवाला यम है, जो निर्भय रहता है और प्राणियों को बाँधकर ले जाता है? क्या तू मुरुगन (सुब्रह्मण्य) है, जिसने अपने भाले से पर्वत को तोड़ दिया था?[1] क्या तू वह मुनि (अगस्त्य) है, जो दक्षिण दिशा में अपना अमित प्रभाव रखता है?[2] या तू दिक्पालकों में से कोई है, जो दिशाओं की रक्षा करता है?

क्या मुनियों ने यज्ञ करके किसी भूत को उत्पन्न किया है, जो तेरे इस रूप में अब यहाँ आया है? अथवा, क्या कमलभव ने एक नये देव की सृष्टि करके सारी लंका का विनाश करने के निमित्त यहाँ भेजा है?

तू कौन है? तेरे यहाँ आने का कारण क्या है? किसने तुझे भेजा है? मेरी आज्ञा है कि तू कुछ भी छिपाये बिना सारी बात बता दे।—यों उस राक्षस ने कहा, जिसने देवों के यश को समूल निगल लिया था।

(तब हनुमान् ने उत्तर दिया—) तेरे कहे हुए व्यक्तियों में से मैं कोई नहीं हूँ। मैं तेरे बतलाये उन अल्प बलवालों की आज्ञा माननेवाला भी नहीं हूँ। मनोहर दलों के साथ विकसित रक्तकमल-सदृश नेत्रवाले एक अनुपम धनुर्धारी का दूत बनकर मैं लंका में आया हूँ।

यदि तू यह जानना चाहता है कि वह धनुर्धारी कौन है, तो (मैं बताता हूँ—) वह ऐसा एक महान् कार्य संपन्न करने के लिए अवतीर्ण हुआ है, जिसके बारे में देव, त्रिदेव तथा अन्य जो भी उन्नत व्यक्ति हैं, वे सब सोच भी नहीं सकते।

वह (धनुर्धारी) तुम लोगों के प्रभूत बल को, पूर्वकाल में किये गये तप को, नये-नये एकत्र किये गये शस्त्रों तथा सेना को, देवताओं द्वारा दिये गये उत्तम वरों को, तुम लोगों के बड़प्पन को, तुम्हारे निर्मित कार्यों को तथा तुम्हारे द्वारा संपादित राज्य, संपत्ति आदि—सबको अपने एक बाण से ही समूल विनष्ट करने का निश्चय किये हुए है।

वह कोई देव नहीं है। या कोई असुर नहीं है। कोई दिग्गज नहीं है। कोई दिक्पालक भी नहीं है। सुन्दर कैलास पर रहनेवाला शिव नहीं है। त्रिमूर्त्ति भी नहीं है।

---

१. स्कन्दपुराण में यह वृत्तांत वर्णित है कि सुब्रह्मण्य (कार्त्तिक) और परशुराम में एक बार परस्पर बल की स्पर्धा हुई। तब सुब्रह्मण्य ने क्रौंचगिरि को अपने बरछे के आघात से तोड़ दिया था।—अनु०

२. प्राचीन तमिल-साहित्य के सबसे पुराने व्याख्याता विद्वान् नच्चिनार किनियर है, उन्होंने एक स्थान पर एक कथा लिखी है, जो इस प्रकार है—एक बार कैलास-पर्वत पर शिवजी के सम्मुख सभी देवता और मुनि एकत्र हुए। उस समय उनके भार के कारण उत्तर दिशा नीचे की ओर धँस गई और दक्षिण ऊपर उठ आया। यह देखकर देवताओं और मुनियों ने शिवजी से निवेदन किया कि अगस्त्य ही दक्षिण के संतुलन को ठीक रख सकते हैं। अतः, वे दक्षिण में जायें। शिवजी ने अपनी स्वीकृति दी और अगस्त्य मुनि विन्ध्याचल के गर्व को भी चूर करते हुए दक्षिण में आये और 'पोदिय मलै' नामक पर्वत पर अपना निवास बनाया। वहाँ रहकर उन्होंने तमिल-भाषा का व्याकरण रचा और भाषा का उद्धार किया। उन्होंने-गन्धर्व शास्त्र (संगीत) से रावण को बाँध दिया और तमिल देश में आने से उसे रोक दिया।—अनु०

कोई मुनि भी नहीं है। वह समस्त भूतल पर राज्य करने के लिए उत्पन्न एक चक्रवर्त्ती का कुमार है।

ज्ञान; उत्तम ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन, सच्ची तपस्या का आचरण तथा अन्य सभी सद्गुण, वही फल दे सकते हैं, जिन्हें वह (धनुर्धारी) संकल्प मात्र से पा सकता है। यदि इसका रहस्य या कारण तू जानना चाहता है, तो (मैं बताता हूँ—) वह वेदों तथा धर्म-ग्रन्थों में प्रतिपादित सत्यधर्माकार पुरुष है।

यदि तू (उस धर्म-रूप के जन्म लेने का) कारण पूछ, तो बताऊँ—वह अनन्त वेद तथा उपनिषदों के द्वारा भी निरूपण करने में असाध्य, ज्ञान के लिए भी ज्ञान बना हुआ (अर्थात्, सब वस्तुओं को जाननेवाले ज्ञान का भी वह आधारभूत ज्ञान है)। स्वयं नारायण है, जो उस गज की रक्षा करने के लिए दौड़ा चला आया था, जो युद्ध में ग्राह से ग्रस्त होकर पुकार उठा था कि हे सृष्टि के आदिकारण ! (मेरी रक्षा करो)। वही अब देवताओं की रक्षा के निमित्त अवतीर्ण हुआ है।

वह जो (सृष्टि का) आदिकारणभूत है, जो आदि, मध्य और अन्त से रहित है, जो भूत, वर्त्तमान और भविष्य नामक तीन कालों से अतीत है, जो अन्य किसी भी सीमा से (देश, कार्य, गुण आदि से) परिमित नहीं है, वही त्रिशूल, शंख-चक्र, कमंडलु आदि का त्याग कर (अर्थात्, शिव, विष्णु और ब्रह्मा के रूप में न होकर) हाथ में धनुष धारण करके, अपने प्राचीन स्थान—वटपत्र, कमल और कैलास को भी छोड़कर अयोध्या में अवतीर्ण हुआ है।

अपने सुन्दर चरणों की स्तुति करनेवालों को जन्म के बंधन से मुक्त करनेवाला वह (नारायण), सर्वत्र धर्म को स्थिर रखने, वेदों में प्रतिपादित नीतिमार्ग को समझाकर लोगों को उस पर चलाने तथा दुर्जनों का विनाश करके सत्पुरुषों के कष्टों को दूर करने के लिए यहाँ (धरती पर) अवतीर्ण हुआ है।

मैं उन्हीं का दास हूँ। मेरा नाम हनुमान् है। सुन्दर ललाटवती देवी (सीता) का अन्वेषण करने के लिए चारों दिशाओं में गये हुए सेनानायकों में से दक्षिण-दिशा में सेना लेकर आनेवाला वालिपुत्र अंगद है। उसी का दूत बनकर मैं अकेला ही यहाँ आया हूँ।

यह सुनकर लंकाधिप ऐसे हँसा, जैसे मेघ के मध्य बिजली कौंध गई हो और बोला—वालिपुत्र से प्रेषित हे दूत ! अति बलवान् वाली सकुशल तो है ? उसका राज्य-शासन सुचारु रूप से चल रहा है न ?—यह प्रश्न सुनते ही सर्वप्रभु (राम) का दूत हँस पड़ा।

(हनुमान् ने) कहा—हे राक्षस ! डर मत। भयंकर क्रोधवाला वाली कभी का इस धरती को छोड़कर स्वर्ग पहुँच गया। अब लौटकर आनेवाला नहीं है। तभी उसकी पूछ भी मिट गई। वह (वाली) अंजन-सदृश शरीरवाले राम के एक शर से आहत होकर मरा। अब हमारा राजा सूर्यपुत्र (सुग्रीव) है।

रावण ने प्रश्न किया—किस कारण से उस वाली के प्राण तीक्ष्ण-शर से हरण किये गये ? राम नामक वह व्यक्ति अब कहाँ है ? अंगद क्यों उसकी पत्नी का अन्वेषण करने चला है ? वायुपुत्र कहने लगा—

अपनी देवी (सीता) को ढूँढ़ते हुए आये रक्तकमल जैसे नेत्रोंवाले (राम) के साथ हमारे प्रभु सुग्रीव ने ऐसी मित्रता कर ली है कि मानों वे दोनों एकप्राण हो गये हैं। (सुग्रीव के) यह प्रार्थना करने पर कि दुर्निवार्य विपत्ति से वे उसे मुक्ति दें। उन (रामचन्द्र) ने, जो कुशल चित्रकार के लिए भी दुर्लेख्य सौंदर्य से युक्त हैं, सुग्रीव को रूमा (सुग्रीव की पत्नी) के साथ उसके राज्य को भी (वाली से लेकर) देने का वचन दिया। फिर, उन्होंने वाली का वध किया।

वे उस (सुग्रीव) के साथ वहीं चार मास तक रहे। फिर एकत्र हुई वानर-सेना के मध्य आसीन वीर (राम) ने हमें आदेश दिया कि अब तुमलोग जाकर (सीता का) अन्वेषण करो। हम वैसे ही अन्वेषण करते हुए यहाँ आये हैं। यही सारी घटना है।—यों रामचन्द्र के दूत ने कहा। वह सुनकर रावण बोला—

तुम लोगों के कुल के नायक तथा अनुपम प्रभावशाली (वाली) को जिसने कठोर शर से निहत कर दिया, उसके दासत्व को तुमलोगों ने स्वीकार किया है। वाह ! अब तुम्हारा यश भी कैसे घट सकता है ? तुम जैसे लोग यदि बने रहेंगे, तो मेघों के कारण संपन्न बनी हुई इस धरती में केवल स्त्रीत्व ही शेष रह जायगा न ? (भाव यह है, तुम जैसे कायरों से धरती का अपमान होता है।)

तुम लोगों के नायक सुग्रीव ने—जिसने अपने अग्रज को मरवाकर उस अग्रज को मारनेवाले के साथ मित्रता कर ली—आदेश दिया, तो उसे मानकर आया हुआ तू हमें क्या बताना चाहता है ? दूत बनकर आये हुए तू ने जो युद्ध किया है, उसका क्या कारण है। तुझे हम मारेंगे नहीं, मन का भय त्यागकर सारी बात कह।

मन से विचार करने के लिए भी दुष्कर, सद्गुणों से पूर्ण (हनुमान्) ने, पुष्प-मालालंकृत (रावण) के कहे सब वचनों को भली भाँति सोचकर, फिर, यह विचार कर कि अब इसे सामान्य नीति मार्ग क्या है, यह बताना उचित होगा—ये वचन कहे :

मेरा यहाँ दूत बनकर आना, सूर्य के कुमार सुग्रीव के कारण ही है। यदि तू सुनने के लिए उद्यत है और उनकी सचाई को पहचान सकता है, तो कुछ दोषहीन हितकारी वचन तुझसे कहूँगा।

तूने अपने संपन्न जीवन को व्यर्थ कर दिया। राजधर्म की किंचित् भी परवाह न की। क्रूर कार्य किया। यद्यपि तेरा विनाश निकट आ गया है, तथापि यदि अब भी तू मेरा यह दृढ़ वचन सुनकर तदनुसार कर सका, तो चिरकाल पर्यंत अपने प्राणों को बचा सकेगा।

तू ने, अत्यन्त दुःख पाने पर भी अपने पातिव्रत्य से विचलित न होनेवाली, अग्नि-समान पवित्र (सीता) देवी को सताने का महान् पाप किया है। उससे तूने अपनी इन्द्रियों पर विजय पाकर जो अमोघ तप किया था, उसका फल भी खो बैठा है।

सत्य ज्ञानवाले देवों को परास्त करके उससे अधिक गर्व उत्पन्न हो जाने के कारण तेरी अनुपम महिमा मिट गई। शेष कुछ महिमा बच गई थी तो वह भी, आज मिट गई और यदि कुछ थोड़ी महिमा बच भी गई हो, तो वह कल-परसों अवश्य समूल मिट जानेवाली है। क्या वह (तेरी महिमा) स्थायी रूप से रह सकेगी?

पाप कभी पुण्य को जीत नहीं सकता—इस सत्य को तू ने माना नहीं। बिना कुछ विचार किये ही, महान् तपस्या से प्राप्त अपनी पवित्रता को अतिपावन देवी (सीता) के प्रति उत्पन्न कामना के कारण, मिटा दिया।

नीतिरहित काम-वासना से जो भी मोहग्रस्त और भ्रष्टचित्त हुए, वे सब मर-मरकर अधोगति की ओर ही बढ़ते रहे। क्या ऐसे धर्मभ्रष्ट लोग कभी नित्य जीवन को प्राप्त कर सके?

भयंकर तथा गंभीर समुद्र से आवृत इस धरती में, जो राजा, लोक-रक्षा के कर्त्तव्य को अपनाकर भी, नवयौवना तरुणियों पर मोहित होकर, मार्गभ्रष्ट होते हैं, वे माला-भूषित पुरुष अपने कुकृत्य के कारण मिट जाते हैं। यदि ऐसे पुरुषों की गणना करने लगें, तो क्या उसका अन्त हो सकता है?

धन-वैभव और इन्द्रिय-विषयों पर उत्तम जन आसक्त नहीं होते और वे यह मानते हैं कि इनसे बढ़कर अन्य कोई अन्धकार (-पूर्ण कार्य) इस संसार में नहीं है। वे मानते हैं कि दान, करुणा, ध्यान तथा विषयों से विरक्ति—इनके अतिरिक्त और किसी के द्वारा सत्य ज्ञान की प्राप्ति संभव नहीं।

वह पुरुष भी क्या सद्गुणों में गिना जा सकता है, जो वासना के वशीभूत होकर, पर-स्त्री पर आसक्त हो। उपहास का पात्र बनकर, लज्जारहित होकर, अपने कांतिमय शरीर को (पर-नारी के विरह-ताप से) सुखाये और अपयश का भागी बनकर पतित बन जाये?

तरंगपूर्ण समुद्र-जल से घिरी इस धरती में जो राजा गुजर चुके हैं, उनमें तेरे समान नीतिज्ञ कौन थे? (अर्थात्, कोई नहीं थे)। वेद-विहित न्याय-मार्ग पर चलनेवाला तू क्यों धर्म की सीमा के बाहर जाता है?

(कोई पुरुष) अपने से घृणा करनेवाली किसी स्त्री पर अनुरक्त होकर उसके धिक्कार प्राप्त करे और फिर भी यदि वह जीवित रहे, तो उसके जीवन की अपेक्षा उस व्यक्ति के जीवन को अधिक सुन्दर कहना उचित होगा, जिसकी मुख के मध्य में उन्नत होकर रहनेवाली नासिका कट गई हो।

यदि लोकों का विध्वंस करने में समर्थ अनेक सुन्दर भुजाएँ हों, सहस्र सिर हों, तो भी क्या उनसे प्राणों की रक्षा हो सकती है? वे उन सैकड़ों वस्त्रों के समान होंगे, जो गाँव-भर को जला देनेवाली आग की लपटों में फँस गये हों।

तूने अपनी नसों की तंत्री बनाकर जो गान किया था, उसपर प्रसन्न होकर उस शिव भगवान् ने, जिनके क्रोध से त्रिपुर भी अनिवार्य अग्नि-ज्वाला में जलकर भस्म हो गये थे, जो वर दिया, वह भी कदाचित् व्यर्थ हो सकता है। किन्तु, वैदिक धर्म से कभी

च्युत न होनेवाले (राम) का शर कभी व्यर्थ होगा, ऐसा विचार करना भी ठीक नहीं है।

जो गुण सब लोगों में दृढ रूप से रहना चाहिए, वह है 'मान'। तेरा वह मान भी मिट रहा है। अक्षीण राज्य-संपत्ति भी मिट रही है। धर्म-विरुद्ध पथ पर चलकर तू क्यों इतना नीच होता जा रहा है? तेरे कार्य की प्रशंसा वही करेंगे, जो तुझसे भी अधिक उपहास के योग्य नीच कृत्य करनेवाले हैं।

(संसार में) जन्म पाकर, जिन्होंने ऐसा तप किया है कि वे आगे पुनर्जन्म न पायें, वे और महान् देवों से अधिक श्रेष्ठ देवता श्रीराम को कभी नहीं भूल सकते। यह निश्चित है।

अतः, तू सीता को लौटा दे और अपनी दुर्लभ संपत्ति, अपने बंधुजन तथा अपने प्राणों की रक्षा कर। ज्योतिःस्वरूप (सूर्य) के पुत्र (सुग्रीव) ने तेरे लिए इस प्रकार का संदेश भेजा है।—यों (हनुमान् ने) कहा।

(हनुमान् के) यह कहते ही विजय के अतिरिक्त कभी पराजय न प्राप्त करनेवाला (रावण) यह सोचकर कि मुझे ये वचन सुनानेवाला पर्वत पर बसनेवाला एक तुच्छ वानर है—ठठाकर हँस पड़ा। (और बोला—)

वानर (सुग्रीव) का सन्देश और नर का पराक्रम—सब रहने दे। अब तू यह बता कि इस विशाल नगर में जब तू किसी का दूत बनकर आया है, तब तू ने राक्षसों को क्यों मारा? उसका कारण कह।—यों (रावण ने) प्रश्न किया।

मुझे तुझसे साक्षात् करानेवाला कोई नहीं था। अतः, मैंने तेरे सुरभित उद्यान को उजाड़ा। जो मुझे मारने के लिए आये थे, उन्हें मैंने मार डाला। फिर, विनम्र होकर तेरे समीप इसलिए आया हूँ कि मैं तुझे यह सन्देश दे सकूँ।

(हनुमान् के) इतना कहते ही, विद्युत्-सदृश चमकनेवाले करवाल-जैसे तीक्ष्ण दाँतोंवाले (रावण) ने क्रोधाग्नि को दूर-दूर तक फैलाते हुए आज्ञा दी कि इसे मार डालो। जब अधिक लोग उसे मारने को दौड़े, तब नीतिज्ञ विभीषण बोल उठा—'रुको'।

नीतिमान् (विभीषण) उठकर खड़ा हुआ। उसने अपने दीर्घ करों से महिमामय राजा रावण को नमस्कार करके मधुर तथा सत्य वचन धीरे-धीरे कहा—अत्यधिक क्रोध करना उचित नहीं है।

(उसने कहा—) पूज्यवर, हे वेदों में निपुण! धर्मबल से आदिकाल में सृष्टि करनेवाले ब्रह्मदेव को तुमने अपनी तपस्या से संतुष्ट करके वर प्राप्त किया और इन्द्र का कार्य (त्रिलोक का शासन) कर रहे हो। ऐसे तुम क्या उस व्यक्ति को मारोगे, जो अपने को किसी का दूत कहकर यहाँ आया है?

इस भूतल की सीमा के भीतर और इस अंडगोल के भीतर तथा बाहर, वेदों से सुव्यवस्थित रहनेवाले समस्त लोकों में जो नीतिमान् पुरुष हुए है, उनमें से स्त्री के घातक कोई हो भी सकते हैं? किन्तु, दूत बनकर आये हुए व्यक्ति को मारनेवाला कोई नहीं हुआ है।

दूत शत्रुओं के निवास में जाकर, भेजनेवाले का सन्देश कहता है, फिर वह क्रोध को शांत करके सत्य वचन कहता है। ऐसे व्रत लिये हुए, उपयुक्त ज्ञान तथा क्रिया से युक्त दूतों को मारने से योग्य व्यक्ति भी उपहास के पात्र हो जाते हैं। हमारे कुल के लिए यह कलंक होगा।

सत्य के आधारभूत सब लोकों पर शासन करनेवाले, हे राजन्, तुम्हारे शत्रु के द्वारा भेजे हुए इस दूत को मारना दोष है। त्रिशूलधारी शिव तथा त्रिमूर्त्तियों के अन्य देवों (ब्रह्मा और विष्णु) के एवं हमारे वैभव को देखकर ईर्ष्या करनेवाले देवों के तुम उपहास-पात्र बन जाओगे।

उन वीर तथा नीतिज्ञ (राम-लक्ष्मण) ने हमारी बहन शूर्पणखा का वध नहीं किया, किन्तु उसकी नाक और कान काटकर यह कहकर भेज दिया कि तू जाकर अपने भाई से समाचार कह। यदि अब तुम इस वानर को मार डालोगे, तो यहाँ आकर इसने जो कुछ देखा है, उसे उन (राम-लक्ष्मण) को यह कैसे सुनायगा?—इस प्रकार उपयुक्त वचन (विभिषण ने) कहे।

तब रावण ने कहा—हे उत्तम स्वभाववाले! तुमने ठीक कहा। इसने यद्यपि अनुचित किया है, तथापि इसको मारना दोष है। उसने अपने सैनिकों से कहा—इस (वानर) की लम्बी पूँछ को जड़ से जला दो और नगर-भर में इसे घुमाकर फिर नगर की सीमा से बाहर, यह कहकर भगा दो कि यहाँ का सारा समाचार कहकर यह शीघ्र उन्हें (राम-लक्ष्मण को) यहाँ ले आये। यह सुनकर राक्षस घोर कोलाहल कर उठे।

उस समय देवताओं को युद्ध में परास्त करनेवाले (इन्द्रजित्) ने कहा—ब्रह्मास्त्र के बंधन में रहनेवाले को आग से जलाना उचित नहीं है। मजबूत रस्सियाँ ले आओ और उनसे इस (वानर) की भुजाओं को बाँध दो। फिर उसने (हनुमान् की देह से) ब्रह्मास्त्र का उपशमन कर दिया। (इन्द्रजित् के) इतना कहते ही राक्षसों ने रस्सियों से उस (हनुमान्) को बाँध दिया।

(राक्षसों के घरों में) झूलों को लटकाने की बड़ी-बड़ी रस्सियाँ अदृश्य हो गईं (अर्थात्, हनुमान् को बाँधने के लिए उन्हें खोलकर ले गये)। रथों में बँधी हुई रस्सियाँ अदृश्य हो गईं। सभी अश्व बन्धन की रस्सियों से रहित हो गये। युद्ध के हाथी भी अपने पैरों और कंठ में बँधे रस्सियों से रहित हो गये। अब उस नगर में पड़ी हुई अन्य रस्सियों के संबंध में क्या कहा जाय?

संसार में पाई जानेवाली सब रस्सियाँ, देवताओं से बलात् छीनकर लाये गये पाश, वरदान में प्राप्त पाश, असंख्य राजाओं से बलात् छीनकर लाये गये पाश तथा दूसरे जो भी पाश दिखाई पड़े, उन सबको लाकर (राक्षसों ने हनुमान् को) बाँध दिया। उस समय केवल वे डोरे ही बचे रहे, जो राक्षसों की स्त्रियों के गलों में मंगलसूत्र बनकर पड़े थे।[१]

वह दोषरहित (हनुमान्) यह सोचकर आनन्दित हो रहा था कि मैं ब्रह्मास्त्र के

---

१. ऊपर के दो पद्य प्रक्षिप्त-से लगते हैं।—अनु०

बंधन को तोड़ने के अपराध से बच गया। स्वयं राक्षसों ने ब्रह्मास्त्र को हटाकर मेरा उपकार किया। मैं इन (राक्षसों) की विजय को शीघ्र ही पराजय में बदल सकता हूँ। मेरी पूँछ को जलाने की (रावण की) आज्ञा भी कैसी है, मानों इस नगर को जला देने का ही निमंत्रण है।—यों सोचकर उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करता हुआ (हनुमान्) चुपचाप खड़ा रहा।

(राक्षस) क्षुद्र पाशों से उसे बाँध रहे थे। (हनुमान्) दुर्बल व्यक्ति के जैसे अपनी देह को फुलाता हुआ उनके खींच-खींचकर बाँधने पर भी बिना कुछ घबराहट के इस प्रकार खड़ा रहा, जैसे वह उन बंधनों से मुक्त होने का उपाय ही न जानता हो। वह आर्य (हनुमान्) उस योगी की समता करता था, जो ब्रह्मविद्या को प्राप्त करके भी अज्ञ के जैसे अविद्या को ही सत्य मानने का अभिनय करता है। अच्छी तरह बँधा हुआ हनुमान् राक्षसों द्वारा घसीटा जा रहा था।

वे राक्षस रावण के प्रासाद को पार कर खुले स्थान में जा पहुँचे और वहाँ हनुमान् के चारों ओर खड़े होकर अदम्य उत्साह से बड़ा कोलाहल मचाने लगे। उन्होंने ऊपर उठाई हुई (हनुमान् की) पूँछ में चारों ओर से वस्त्रों को लपेटा। सारी पूँछ को तेल और घी में डुबोया और उग्र अग्नि को उसमें लगा दिया। तब राक्षस इस प्रकार कोलाहल कर उठे कि सारा अंडगोल काँप उठा।

अनेक रस्सियों को एक साथ ऐंठकर बनाये गये अतिदृढ रस्से से हनुमान् को, दोनों ओर से बाँधकर, लाख-लाख राक्षस उस रस्से को पकड़े हुए थे। चारों ओर निगरानी के लिए चलनेवाले शस्त्रधारी वीर दिगंतों तक इस प्रकार फैले हुए थे कि दिशाओं की सीमा पर रहनेवाला व्यक्ति भी उस सेना के छोर को नहीं देख सकता था।

राक्षस, अपने-अपने घरों के द्वार पर खड़े होकर लोगों को समाचार देते हुए चिल्ला रहे थे कि आओ-आओ, देखो-देखो। सुरक्षित उद्यान को उजाड़नेवाले, अक्ष आदि वीरों को मारनेवाले, सीता के साथ बात करनेवाले तथा मनुष्यों के प्रताप को बताने के लिए आये हुए इस वानर की क्या दुर्दशा हो रही है ! आकर देखो।

राक्षस इस प्रकार चिल्ला रहे थे, मानों वे ब्रह्मांड के बाहर भी समाचार पहुँचा रहे हों। कोई नगाड़े बजा रहे थे। कोई धमका रहे थे। कोई चारों ओर दौड़-दौड़कर देख रहे थे। कोई जानकी को भी समाचार देने के लिए दौड़े जा रहे थे। जब सीता को यह समाचार मिला, तब वे बहुत व्याकुल हुईं। पसीना-पसीना हो गईं। तड़प उठीं। सिसकियाँ भरने लगीं। गिर पड़ीं। रोईं। आह भरने लगीं।

सीता ने तब अग्निदेव से प्रार्थना की—हे अग्निदेव ! मातृ-सदृश करुणामय वायु के मित्र ! अतिक्षुद्र, श्वान-सदृश क्रूर राक्षस (हनुमान् को) सता रहे हैं, तो क्या तुम उसपर दया नहीं करोगे ? तुम संसार के साक्षिभूत हो। तुम्हें सब कुछ ज्ञात है। यदि मैं पवित्र पातिव्रत्य से युक्त हूँ, तो तुम उसको अपने ताप से न जलाओ। तुम्हें नमस्कार करती हूँ।

धवल वर्ण तथा छोटे-छोटे दाँतोंवाली देवी के इस प्रकार प्रार्थना करने पर

दीप्यमान अग्निदेव ने अपने अन्तर में (उष्णता को) शान्त कर लिया। उस महिमापूर्ण (हनुमान्) की पूँछ में हड्डी तक ऐसी शीतलता व्याप्त हो गई कि उसकी सारी देह पुलकित हो उठी।

अधिक कहने से क्या ? समुद्र की वडवाग्नि, धरती की ज्वालामय अग्नि, अन्य अग्नि, अन्तरिक्षगत अग्नि, मुनियों से रक्षित रक्तवर्ण त्रेताग्नियाँ—(गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण नामक तीन अग्नियाँ) तथा त्रिपुर-दाह करनेवाले विजयी (शिव) की नेत्राग्नि भी शीतल हो गई।

ब्रह्मांड की सीमा के परे रहनेवाले (ब्रह्मा) की हथेली में स्थित अग्नि भी शीतल हो गई। मेघों में स्थित वज्राग्नि भी शीतल हो गई। विजयशील उष्णकिरणों से घने अंधकार को निगल जानेवाला सूर्य-मंडल भी शीतल हो गया। उन नरकों की अग्नि भी शीतल हो गई, जहाँ पहुँचकर कोई नहीं लौटता।[1]

भक्ति के बंधन से कभी मुक्त न होनेवाले मन से युक्त हनुमान् ने अपनी पर्वत-जैसी पूँछ पर जलती हुई अग्नि को शीतल ही पाकर आश्चर्य में पड़ गया। यह समझकर कि चित्र-प्रतिमा के समान जानकी के पातिव्रत्य के प्रभाव से ही यह अद्भुत बात हुई है, वह अनुपम आनन्द से भर गया।

पिछली रात को सारे नगर में घूमकर भी हनुमान् उस नगर के सभी प्रदेशों की स्मृति को अपने मन में दृढ रूप से स्थापित नहीं कर सका था। अब उन मूर्ख राक्षसों ने स्वयं ही उस हनुमान् को सारी लंका में घुमा-घुमाकर सभी स्थानों को दिखाया। उसने भी सब ठीक से देख लिया। ठीक उसी प्रकार, जैसे इन्द्रियों के आगे-आगे चलने पर उनके पीछे-पीछे जानेवाला मन (विषयों का) ज्ञान प्राप्त करता है।

उस लंका नगर को पूरा-पूरा देखकर वह उसकी सीमा पर आ पहुँचा। उसने सोचा कि बंधन तोड़कर जाने का यही उपयुक्त समय है! झट वह (अपने दोनों ओर के) रस्सों को दृढता से पकड़कर इस प्रकार उछल पड़ा कि (उनको पकड़नेवाली) दो लाख भुजाएँ उन रस्सों के साथ ही खंभों के जैसे लटकने लगीं। हनुमान् के साथ ही वे राक्षस भी आकाश में जा पहुँचे।

वे एक लाख राक्षस (जो हनुमान् को पकड़े हुए जा रहे थे) बिखरकर, गिर पड़े और अपनी बाँहों के टूटने के साथ मर मिटे। अपनी विशाल बाहुओं और देह पर बँधी हुई रस्सियों के साथ अन्तरिक्ष में दिखनेवाला हनुमान्, सर्पों से आवृत गरुड के समान लगता था।

तब हनुमान् ने सोचा, प्रभु (राम) की वन्दना करके मैं इन पापी राक्षसों की लंका में आग लगा दूँगा और इस (नगर) को भी जलाकर शत्रुओं के नगरों को जलाने-वाले शिव तथा उनके साथियों को भी लज्जित कर दूँगा। यों सोचकर युद्ध में प्रबल अपने लांगूल को उस स्वर्णनगर की ओर बढ़ाया।

---

१. उपर्युक्त दोनों पद्य प्रक्षिप्त-से लगते हैं। —अनु०

रात्रि के समान नील वर्णवाले प्रभु (राम) के दूत की अग्नि-ज्वाला से भरी हुई वह विजयी पूँछ इस प्रकार लगती थी, मानों शिवजी का ज्वालामय युद्ध-कुशल फरसा,[1] यह सुनकर कि उसके प्रभु (शिव) को निष्ठुर राक्षसों ने कष्ट दिया है, उनका और उनके नगर का विनाश करने के लिए जा रहा हो।

उस प्रतापी पूँछ ने उस लंका को, जलमय समुद्र ही जिसकी सीमा है, क्षणकाल में जला दिया। वह (पूँछ) उस शर के समान लगती थी, जिसे प्रवाल-वर्ण भगवान् (शिव) ने, मेरु को धनुष बनाकर, त्रिपुर को लक्ष्य करके, अपने समस्त भुजबल से प्रयुक्त किया था।

युगांत में कालरुद्र सब लोकों को अपने एक नेत्र की अग्नि से ही जला देता है, मानों इस समय वह (हनुमान् के रूप में) प्रलय के पहले ही उस महाविनाश का अभ्यास कर रहा हो—उसी प्रकार, अदम्य बलवान् (हनुमान्) ने गर्व से अपना सामना करनेवाले पापियों के नगर का विनाश करते हुए अपनी पूँछ को दूर तक फैलाया।

दिव्यशिल्पी (विश्वकर्मा) ने रजत, स्वर्ण, विविध उज्ज्वल रत्न आदि को लेकर जिन अपूर्व सुन्दर भवनों का निर्माण किया था, उन सब पर, जलती आग के साथ वह (हनुमान्) उसी प्रकार कूद पड़ता था, जिस प्रकार युगांत में पर्वतों पर महान् वज्र गिरता है।

काले राक्षसों के द्वारा, घृत की आहुति देकर किये जानेवाले यज्ञों को विध्वंस कर दिये जाने के कारण जो अग्निदेव अधिक भूख से पीडित था, अब मारुति की पूँछ का, आश्रय पाकर (सारी लंका को) जल्दी-जल्दी खाने लगा, जैसे युगांत में विषभोजी (शिव) के खिलाने पर समस्त लोकों की हवि को (वह अग्निदेव) खा डालता है। (१–१४०)

●

अध्याय १४

लंका-दहन पटल

(हनुमान् की पूँछ की) दारुण अग्नि ने बड़े-बड़े सुरक्षित भवनों पर लगी हुई ध्वजाओं को जलाकर, वितानों को दग्ध कर, ऊँचे स्तम्भों को चारों ओर घेरती हुई—दीर्घ भित्तियों को आवृत करती हुई, उन सब प्रासादों को भस्मसात् कर दिया।

(महलों के) दरवाजों में लगी आग ने सुन्दर प्रासादों में सर्वत्र फैलकर उन्हें भस्म कर दिया, तो उस नगर के निवासी अस्तव्यस्त होकर झूले पर जैसे इधर से उधर, उधर से इधर झूलते हुए भागने और चिल्लाने लगे।

---

१. हनुमान् शिवजी का अंश माना जाता है। अतः, हनुमान् की पूँछ की उपमा शिवजी के फरसे से दी गई है। —अनु०

रत्नों से निर्मित उज्ज्वल सौधों से ज्वालाएँ पुंजीभूत होकर निकल रही थीं, जिस से वहाँ की मनोहर कंकणधारिणी स्त्रियाँ यह पहचान नहीं पाती थीं कि कहाँ आग लगी है, कहाँ नहीं। और, अत्यन्त पीडित होने लगीं।

मधु-भरे विविध पुष्प जहाँ बिखरे रहते हैं, उस वन में विचरण करनेवाले कलापी-समान मनोहर रूपवाली रमणियाँ, दूर तक ऊपर उठे हुए धूम के गगन में छा जाने से दिग्भ्रान्त हो उठीं और अपने पतियों के जाने के मार्ग को न पहचान कर विलाप करने लगीं।

राक्षस-स्त्रियाँ और राक्षस-वीर बड़ा कोलाहल करते हुए (आग-लगे लोगों के) सिरों पर बहुत-सा जल उड़ेलते थे। किन्तु, उन लोगों के केशों और अग्नि-शिखाओं के एक जैसे[1] होने से यह पहचान नहीं पाते थे कि आग बुझी है या नहीं।

वहाँ के घरों में जलनेवाली अग्नि, जो अबतक रावण के भय से मंद पड़ी हुई थी, अब उसकी आज्ञा का भंग करके अपने वास्तविक स्वरूप को लेकर जलने लगी। जैसे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति करनेवाले लोग माया का बन्धन छूट जाने से यथार्थ आत्मस्वरूप को पहचान लेते हैं।

तप्त धूम, उस त्रिविक्रम के समान उठ चला, जो पहले वामन के रूप में आकर (बली से) दान पाने के पश्चात् सब लोकों को अपने चरण से नापने के लिए उठा था।

नील वर्णवाले हाथियों पर अग्नि गिरने से उनका सारा शरीर जल उठा। उनके चमड़े जल जाने पर वे मदमत्त एवं अत्यन्त क्रोधी ऐरावत की समानता करने लगे।

कुहरे के जैसा धूम, उज्ज्वल अग्नि के साथ चारों ओर फैल गया। उससे भय-भीत होकर भैंसे, मेघों के समान दौड़कर समुद्र में जा डूबे। रमणियाँ भी हंसिनियों के समान भागकर (समुद्र में) जाकर बैठ गईं।

चारों ओर उड़नेवाली चिनगारियाँ बिजलियों के समान सर्वत्र जा गिरीं। वज्र-समान गर्जन करनेवाला समुद्र उत्तप्त हो उठा। उससे समुद्र में निवास करनेवाले मीन तथा अन्य जलचर जलकर तड़प उठे और प्राणहीन हो गये।

जल को पी डालनेवाली उग्र अग्नि सर्वत्र फैलने लगी, जिससे (वहाँ के भवनों का) सोना पिघलकर धाराओं में बह चला। ज्योंही वह प्रवाह समुद्र में जाकर गिरता, त्योंही उसका द्रव-रूप मिट जाता और वह बड़ी-बड़ी स्वर्णशिला का रूप धारण कर लेता।

एक शब्द कहने के पूर्व ही (अर्थात्, क्षणमात्र में ही) सब लोकों को खा जाने की शक्ति से संपन्न उस आग में वहाँ के पर्वत-जैसे उन्नत रत्नजटित प्रासाद, बड़े वनस्पतियों के समान ही खड़े नहीं रह सके और जलकर भस्म हो गये। स्वर्णमय होने के कारण वहाँ की धरती भी पिघल गई।

पत्थर से भी घना बनकर धुआँ चारों ओर फैल गया, जिससे स्वर्गलोक में भी अंधकार छा गया। ध्वजाओं से युक्त उन्नत रथ अपने बड़े-बड़े रत्न-खचित चक्रों-सहित जलकर ढेर हो गये।

---

१ राक्षसों के केश अग्नि की ज्वाला के समान लाल रंग के थे। —अनु०

उस समय मधुशालाओं में जो आग जल रही थी, उसने पापी (राक्षसों) के पेय मधु को स्वयं पिया। स्वभाव से निष्ठुर न होनेवाले व्यक्ति भी अपवित्र लोगों के निवास में जाने पर पापी बन जाते हैं।

लंका में लगी हुई वह आग चटचटाहट के साथ ज्वालाएँ फेंक रही थी, जिससे उस नगर के चारों ओर स्थित समुद्र भी उबल उठे। अग्नि-ज्वालाओं के भभककर अंतरिक्ष में बढ़ जाने से आकाश में स्थित बादल भी जल गये।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ आग से जलनेवाले अपने शरीर के साथ अन्तरिक्ष में उड़ गईं और दौड़ते हुए भूत जैसी लगनेवाली मृग-मरीचिका को देखकर उसे वन में बहनेवाली नदी समझकर उसमें जा गिरीं और जल गईं।

मधु-भरे उद्यानों में आग लग गई। तब, निरन्तर मधुवर्षा करनेवाले उत्तम पुष्पों में निवास करनेवाले भ्रमर, अपने समीप में अग्नि-ज्वालाओं की पंक्तियों को देखकर, उन्हें कोई विशाल कमल-वन समझकर उसमें गिर पड़े और झुलस गये।

कुछ राक्षस-पत्नियाँ, जिनकी भौंहें धनुष की समता करती थीं, यह सोचकर कि हमारे प्राणनाथ वानर के हाथ मारे गये, अब हम इस घर से बाहर नहीं जा सकती हैं, यहीं मर जाना हमारा कर्त्तव्य है—घरों के भीतर ही रहकर जल मरीं।

पुष्प जले, पल्लवों से चिनगारियाँ निकलीं। पत्ते और कलियाँ जलीं। डालें भस्म हो गईं। ऊपर के भाग ही नहीं, पेडों की जड़ें भी जल गईं। इस प्रकार पूरा-का-पूरा उद्यान जलकर कोयला बन गया।

अग्नि-ज्वालाएँ इतनी ऊँची उठ रही थीं कि आकाश के मेघ भी उनके मध्य में ही दिखाई पड़ते थे। उनसे अमरावती नगर भी तपने लगा। तब ऐसा लगा, मानों वहाँ के सुनहले कल्पवृक्षों की जड़ें धरती की ओर फैल रही हों।[1]

घनी अग्नि-ज्वालाएँ अंतरिक्ष में बड़ी ऊँचाई तक उठीं। वे आनन्दप्रद, उज्ज्वल कांतिपूर्ण चन्द्रमंडल को छूने लगीं, जिससे चन्द्रमंडल से पिघलकर अमृत बरस पड़ा। उस (अमृत) के स्पर्श से मृत राक्षसों में से कुछ सजीव हो उठे।

सूर्यमंडल को छूती हुई अग्नि-ज्वालाएँ उठीं, तो अन्तरिक्ष के सब मेघ जलकर काले पड़ गये। उनके बीच से सूर्य का प्रकाश पिघलते हुए स्वर्ण के समान लगता था।

घोड़ों को बाँधनेवाली रस्सियाँ आग में जल गईं और उनके साथ खूँटें भी जल गये। उनके साथ ही (घोड़ों के) मुख पर के रोम झुलस गये। अपनी टाँगों को झुकाये हुए सुन्दर घोड़े तड़प-तड़पकर जल मरे।

यम को भी निगल जानेवाले कुछ राक्षस, स्वर्णमय स्वर्गलोक की ओर उड़ चले। किन्तु, ऊपर फैले हुए धूम से घिर जाने से उनका दम घुटने लगा, जैसे वे पानी में डूब गये हों। फिर, वे तड़पकर आग में गिरे और जल मरे।

पीतवर्ण स्वर्णाभरणों तथा समुद्र-जैसे विशाल जघन-तटवाली राक्षस-रमणियों के

---

१. लंका में उठनेवाली अग्नि-ज्वाला सुनहले कल्पवृक्ष की जड़-सी लगती थी। —अनु०

कटि-वस्त्र में लगी आग, उनके उत्तरीय को जलाकर, उनके सुगंधित केशों को भी जलाने लगी; जिससे वे स्त्रियाँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं और मर गईं।

मान करनेवाली अपनी पत्नियों के मान-रूपी समुद्र को पार करके उनका संयोग प्राप्त करने के लिए आतुर बने हुए राक्षस और वे राक्षसियाँ, जो ऐसे दाँतवाली थीं कि मानों सेमल के फूल पर रखे हुए मोती हों—दोनों के चाँदनी-जैसे वस्त्र आग में जल उठे और वे मधुर संगम-सुख रूपी समुद्र के पार पहुँचने के पहले ही जल-समुद्र में जा गिरे।

पिंजरे में स्थित हरे रंग के तोते पिंजरों के साथ-साथ जलते हुए तड़प रहे थे। उन्हें देखकर राक्षस-युवतियों के अंजन-लगे नयनों से निर्झर के जैसे आँसू बहकर उनके स्तन-तट पर गिरकर छितरा रहे थे। वे (आग से बचने के लिए) हाथी-सदृश अपने पतियों से लिपट जाने का प्रयत्न करती थीं, पर वहाँ व्याप्त धूम में इस प्रकार अदृश्य हो जातीं, जिस प्रकार मेघ के बीच बिजली छिप जाती हो। (भाव यह है कि धूम-समूह को अपना पति समझकर राक्षस-युवतियाँ उनसे लिपट जाने की चेष्टा करतीं और इस प्रकार आग में जल जातीं।

पर्वत-सदृश प्रासादों में आग लगने से उनमें से भागकर निकलनेवाली, दोष-हीन स्वर्णभरणों से भूषित स्त्रियाँ, अंतरिक्ष में उड़ जाने का प्रयत्न करतीं। किन्तु, अपार धूम-समूह में फँसकर, झुलसकर, इस प्रकार लगती थीं, जैसी परदे की आड़ में दिखाई देनेवाली चित्र-प्रतिमाएँ हों।

वहाँ के समस्त उद्यान जल गये। उद्यानों के अगरु, सुगंधित चंदन आदि अनेक वृक्षों की सुगंधि सर्वत्र फैल गई। (वे उद्यान इस प्रकार उजाड़ हो गये) जैसे युगांत-कालिक अग्नि से अनेक मीनों से पूर्ण समुद्र जलकर सूख जाता है।

अग्नि की ज्वालाएँ सारी लंका में, बिजलियों के समान सब दिशाओं में फैल गईं; जिससे यह नहीं विदित होता था कि कल्पवनों में कौन-से जल रहे थे और कौन आग से बचे थे। (भाव यह है कि कल्पवृक्ष स्वर्णमय होते हैं, अतः आग-लगे वृक्षों और आग से बचे वृक्षों में कोई अन्तर नहीं दिखता था।)

सर्वत्र व्याप्त होनेवाले धूम ने चारों ओर के समुद्र को इस प्रकार आवृत कर लिया कि वह (समुद्र) अदृश्य हो गया, जिससे ऊँचे पर्वतों के शिखरों से समुद्र-जल को भरने के लिए आनेवाले मेघ-समुदाय भटक गये और समुद्र को न देखकर श्वेत-पुष्पों के जैसे उड़ते हुए जा रहे थे।

बहुत अधिक धूम सर्वत्र फैल गया, जिससे आवृत होकर सुन्दर रजत-पर्वत (कैलास) भी अन्य पर्वतों के जैसा ही (काला) हो गया। हंस काक जैसे हो गये। क्षीर-समुद्र लवणसमुद्र-सा हो गया। अविनश्वर दिग्गज और साधारण गज—दोनों में कोई अन्तर नहीं रह गया।

सब वस्तुओं को भस्म करती हुई आग (राक्षसों की) देह में लग गई, जिससे वे चर्महीन होकर भागे और समुद्र-जल में जा डूबे। उनके लाल केशों तथा रक्त से भरी तरंगों से पूर्ण समुद्र भी जलता-सा दृष्टिगत होने लगा।

राक्षस-स्त्रियाँ एक बच्चे को अपनी गोद में लिये, दूसरे बच्चे को हाथ से पकड़े,

रोते हुए अन्य बच्चों से अनुसृत होती हुई तथा बन्धुजनों से घिरी हुई भाग रही थीं। (भागते समय) उनके केशों में आग सरसर करती लग जाती थी, तो वे अपने केश-पाशों को झट खोलती हुई, बिलखती हुई, नील-समुद्र में जा गिरती थीं।

शस्त्रागारों में धनुष, त्रिशूल, भाले आदि शस्त्र ईन्धन बन गये। कांतिमय शस्त्रों के रूप में स्थित फौलाद पिघलकर, अपने असली रूप में लौहखंड बन गये और महान् चैतन्य का व्यापार दिखाने लगे। (भाव यह है कि एक ही उपादान से नाना रूप में सृष्टि का निर्माण करके महान् चैतन्य-रूपी भगवान्, प्रलयकाल में पुनः सारी सृष्टि को मूल उपादान के रूप में परिवर्त्तित कर देता है। शस्त्रों का लोहा भी उसी प्रकार पहले नाना रूपों में रहकर फिर मूल उपादान लोहे के रूप में परिवर्त्तित हो गया।)

मुखपट्ट-भूषित हाथियों के शरीर में आग लग गई, तो वे अपनी शृंखलाओं और रस्सियों को तोड़कर, भारी खंभों को उखाड़कर, अपने कानों को स्थिर किये, पूँछ को ऐंठकर पीठ पर रखे और अपनी सूँड़ को ऊपर उठाये हुए भागे।

भयानक अग्नि के फैल जाने से, पक्षी आकाश में उड़ने से डरकर काले वर्ण-वाले समुद्र में जा गिरते थे। वे फिर उड़ नहीं पाते थे और मीन आदि उन्हें खा जाते थे। वे (पक्षी) उन व्यक्तियों की समता करते थे, जो करुणाहीन वंचक लोगों की शरण जाते हैं (और नष्ट हो जाते हैं)।

ऊँची उठी हुई वह अग्नि उस प्रलयकालिक ज्वाला के समान थी, जो जल को सोखकर, विशाल धरती में फैलकर, वृक्षों को जलाकर, पर्वतों को तप्त करके, अनुपम मेरु पर्वत को भी जला देती है। वह अग्नि सारे नगर को भस्म करती हुई रावण के प्रासाद में प्रविष्ट हुई।

(रावण के प्रासाद में स्थित) देवस्त्रियाँ तथा अन्य युवतियाँ घबराकर दिशा-शून्य होकर अस्त-व्यस्त भागीं। सेवा करनेवाले देवता चारों ओर बिखर गये। उन देवताओं की वही दशा हुई, जो पूर्वकाल में रावण के द्वारा स्वर्ग विजित किये जाने पर हुई थी।

कस्तूरी आदि का सुगंधित कीचड़, कल्पपुष्प, चंदन, अगरु इत्यादि सब वस्तुएँ जल गईं और उनसे, मधुवर्षा करनेवाले किसी अलौकिक मेघ के जैसा जो धुआँ उठा, उससे दिक्पालकों की देवियों के सहज सुगन्धित केश भी अधिक सुवासित हो गये।

उग्र अग्नि-ज्वालाओं के भड़क उठने से, उस रावण के, जो समुद्र के समान पराक्रमी था और गम्भीर क्रोधयुक्त होने से इतना भयंकर था कि कोई उसके निकट भी नहीं जा सकता था—सप्त प्रासाद इस प्रकार जलने लगे, जिस प्रकार सातों लोक प्रलयकालिक अग्नि में जल रहे हों।

रावण का दोषहीन, पर्वत के जैसा उन्नत, विशाल और ऊँची मंजिलों से युक्त वह महल स्वर्ण से निर्मित था। अग्नि-ज्वालाएँ उसको चारों ओर से घेरकर जलाने लगीं, जिससे वह अग्नि के रूप से एकाकार होकर ऐसा लगता था, मानों दक्षिण दिशा में भी एक मेरु-पर्वत उठ आया हो।

उस समय, रावण तथा उसके अंतःपुर की स्त्रियाँ तथा परिजन, सुन्दर रत्नों से निर्मित पुष्पक विमान पर आरूढ होकर बच निकले। वे सब कामचारी (अर्थात्, अपनी इच्छा के अनुसार संचरण करनेवाले) होने के कारण वहाँ से उड़ चले। किन्तु, त्रिकूट-पर्वत पर स्थित लंका नगरी उन राक्षसों की तरह कामचारी न होने के कारण जलकर भस्म हो गई।

शासन-चक्र को चलानेवाले उस (रावण) ने क्रोधाग्नि उगलते हुए, राक्षसों को देखकर कहा—क्या सप्त लोकों को जला देनेवाला प्रलयकाल आ गया? या अन्य कोई उत्पात उत्पन्न हो गया है? इस भयंकर अग्नि से लंका के जलने का क्या कारण है?

अपने बंधुजनों को एवं धन-वैभव को खोकर रोनेवाले राक्षसों ने अपने कर जोड़कर निवेदन किया—'हे प्रभो! उस वानर ने तरंगायमान समुद्र से भी दीर्घ अपनी पूँछ में लगाई गई आग से ऐसा कर दिया।' यह सुनकर रावण उबल पड़ा।

आज एक क्षुद्र वानर के तेज से महान् लंकापुरी जलकर भस्म होकर उड़ गई, रक्तवर्ण अग्नि (इस नगर को) खाकर डकार ले रही है। हमारी यह दशा देखकर देवता हँसते होंगे। हमारा युद्ध-कौशल भी धन्य है! अच्छा है!! यह कहकर रावण अट्टहास कर उठा।

देवों को परास्त करनेवाले रावण ने (राक्षसों से) कहा—(लंका को) जलाने-वाली अग्नि को बाँधकर ले आओ।

बड़े क्रोध से भरकर रावण ने कहा—यहाँ से बचकर भाग जाने के पहले ही उस विनाशकारी वानर को पकड़कर ले आओ।

उसके आस-पास में खड़े वीर 'जो आज्ञा' कहकर दौड़ चले।

असंख्य धनुर्धारी राक्षस-वीर, जो चिरकाल से अनेक उच्च पदों पर रहते आये थे, क्रुद्ध होकर उन रथियों के साथ दौड़ चले।

युद्धोचित माला धारण किये हुए सात राक्षस-वीर, जलपूर्ण समुद्र के जैसे उमड़ उठे और सेना को सजाकर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो चले।

उस सेना ने अकाश और समुद्र से आवृत धरती पर दौड़कर चारों ओर से (लंका को) घेर लिया। उसने उस महिमामय (हनुमान्) को एक स्थान में अकेला खड़ा देखा।

अति उग्र क्रोध से भरकर 'पकड़ो, पकड़ो और मारो, मारो' कहते हुए, उस (हनुमान्) को घेर लिया। तब सर्वज्ञ हनुमान् ने उन्हें देखा।

वे छली राक्षस (हनुमान् के साथ युद्ध करने का) वचन दे चुके थे, अतः अब उन्हें उसका सामना करना पड़ा। उन्होंने अपने हाथों में त्रिशूल आदि लेकर मेघों के समान उमड़कर उसे घेर लिया। हनुमान् ने अपनी जलती पूँछ को लेकर उनका सामना किया।

(मारुति ने) राक्षसों को चारों ओर से अपनी पूँछ से घेर लिया और एक पेड़ को उखाड़कर उससे उन्हें मारना आरम्भ किया। क्रोध के साथ आये हुए राक्षस अपने शस्त्रों-सहित प्राणों को भी खो बैठे।

हनुमान् के मारने से आहत होकर राक्षसों के शरीर से रक्त प्रवाहित होने लगा, जिससे उस नगर को जलानेवाली अग्नि भी बुझ गई और सर्वत्र कीचड़ फैल गया।

उसके सम्मुख स्थित राक्षसों में बहुत-से मर गये। शेष रहनेवाले वीरों ने उसका फिर से सामना किया। किन्तु, सर्वशास्त्रज्ञ (हनुमान्) ने यम से तिगुना पराक्रमी होकर उन्हें निःशेष कर दिया।

मेघ-जैसे आकारवाले, बलवान् हाथ पैरवाले, पचास सहस्र वीर मारे गये। शेष बचे राक्षस भागकर नील जलवाले समुद्र में जा छिपे।

उस समय मारुति ने अपनी पूँछ को समुद्र में डुबोया। यों डुबोने से समुद्र का जल उबल पड़ा, जिससे वहाँ छिपे हुए अनेक राक्षस मिट गये। किन्तु, जो राक्षस वहाँ भी मरने से बच गये थे, उन्होंने पुनः आकर हनुमान् का सामना किया।

उन राक्षसों ने हनुमान् को घेरकर धनुषों से तीर चलाना आरम्भ किया। किन्तु, मारुति ने उन्हें ऐसा मारा कि दुबारा उठकर आये हुए वे वीर भी निहत हो गये।

अंतरिक्ष में चलनेवाले विद्याधर परस्पर कह रहे थे कि अग्नि सीता देवी के निवासभूत उद्यान के पास तक नहीं फटकी—(अर्थात्, उस उद्यान को नहीं जलाया)।

विद्याधरों के यह कहने से पराक्रमी हनुमान् आनंदित हुआ। आश्चर्यचकित हुआ। सोचा कि (पाप से) मैं बचा। वहाँ से उड़ा और जाकर पीतवलय-भूषित सीता देवी के चरणों पर नतमस्तक हुआ।

जानकी ने (हनुमान् को) देखा। देखकर अपने मन के ताप से मुक्त हो प्रशांत हुई। फिर, योद्धा हनुमान् ने यह कहकर कि अब कहने के लिए विशेष क्या है? प्रणाम करके लौट चला।

स्वच्छ ज्ञानवान् मारुति चला गया। तब अग्निदेव भी यह सोचकर कि यदि वंचक राक्षस मुझे देख लेंगे, तो पकड़कर ले जायेंगे, कहीं जा छिपा। (१–६४)

●

अध्याय १५

श्रीचरण-सेवन पटल

हनुमान् ने, यह सोचकर कि मैं अब शीघ्र ही यहाँ से चला जाऊँ, उस लंका में स्थित एक पर्वत के शिखर पर सूर्य के समान जा चढ़ा और सब लोकों को निगलनेवाले विष्णु के जैसे (अर्थात्, त्रिविक्रम के समान) विराट् आकार धारण किया। वह (राम के) कमल-चरणों के प्रति नमस्कार करके; आकाश-मार्ग से त्वरित गति से चल पड़ा।

सूँड़वाले हाथी के सदृश हनुमान्, मैनाक-पर्वत को पहले दिये हुए वचन के अनुसार उसके पास आ पहुँचा और उससे सब समाचार कहा। फिर, एक क्षणकाल में,

पुष्पभार से लदे, मधुवर्षा करनेवाले पुन्नाग वृक्षों से आवृत उस महेन्द्र-गिरि पर कूद पड़ा, जहाँ बड़े-बड़े पर्वतों को भी उखाड़ने में दक्ष (अंगद आदि) वानर-वीर उसके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

वे वानर-वीर, जो (हनुमान् के बारे में सोचते हुए आशंकाओं से) व्याकुल होकर खड़े थे, अब हनुमान् को देखते ही यह जानकर कि उसका कार्य सिद्ध हुआ, अपूर्व आनन्द से भर गये ; जैसे घोंसले में रहनेवाले विहग-बाल अपनी माता के, घोंसले में आ पहुँचने पर आनन्द से भर जाते हैं।

कुछ वानर (आनन्द के कारण) रो पड़े। कुछ (हनुमान् के) सामने खड़े होकर घोर शब्द करने लगे। कुछ उसके समीप आकर प्रणाम करने लगे। कुछ उछल-उछलकर नाचने लगे। कुछ हनुमान् को इस प्रकार घेरने लगे, जैसे उसे यों ही उठाकर खा जाना चाहते हों। कुछ उसका आलिंगन करने लगे और कुछ ने उसे (अपने कंधों पर) उठा लिया।

कुछ वानरों ने (हनुमान् से) कहा—हे महिमामय ! तुम्हारे प्रसन्न मुख ने हमें यह समाचार दे दिया है कि तुमने (सीता) देवी के दर्शन किये हैं। तुम्हारे लिए हमने पहले से ही मधु, कंद मूल, शाक आदि चुन-चुनकर इकट्ठा कर रखे हैं। उन्हें खाकर अपना श्रम दूर कर लो—यह कहकर खाद्य पदार्थों को लाकर उसके सामने रखा।

(हनुमान् के) पैरों, भुजाओं, वक्ष, सिर और विशाल हाथों में, करवाल, त्रिशूल, शर आदि के आघात से उत्पन्न उन क्षतों की संख्या संसार की उत्पत्ति से अबतक व्यतीत हुए दिनों की संख्या से भी अधिक थी। उनको देख-देखकर वे वानर वेदना से इस प्रकार निःश्वास भरने लगे, जैसे उनके प्राण ही निकल रहे हों।

(हनुमान् ने) पहले वालिपुत्र (अंगद) को प्रणाम किया। फिर ऋक्षनायक (जांबवान्) के चरणों पर नत हुआ। उसके पश्चात् सब वानरों का यथायोग्य आदर-सत्कार करके बैठा और फिर कहने लगा—लोकनायक (राम) की देवी ने यहाँ स्थित सब वानरों को मंगल-वचन कहे हैं।

(हनुमान् के) इतना कहते ही सब वानर उठ खड़े हुए और आनन्द से भरकर अपने करों को जोड़कर बड़ी नम्रता से प्रार्थना करने लगे—हे पराक्रमी ! यहाँ से प्रस्थान करने से लेकर फिर लौट आने तक जो-जो घटनाएँ घटीं, उन सबका सविस्तर वर्णन करो। तब मारुति ने सब वृत्तांत सुनाया।

तब पौरुषवान् (हनुमान्) ने (सीता) देवी के आंतरिक तप के बारे में विस्तार-पूर्वक कह सुनाया। उनके दिये अभिज्ञान-चूडामणि के बारे में कहा। किन्तु, बड़े शस्त्र-धारी राक्षसों के साथ युद्ध करके जो विजय पाई थी, उसके बारे में तथा लंका जलाने के संबंध में, आत्म-श्लाघा होने के कारण कुछ नहीं कहा।

वानरों ने हनुमान् से कहा—तुम्हारे घावों से हमने जान लिया कि राक्षसों के साथ तुम्हें युद्ध करना पड़ा था। तुम्हारे आगमन की रीति से हमने जान लिया कि तुमने वहाँ विजय पाई है। ऊपर उठनेवाले धूम को देखकर हमने जान लिया था कि तुमने लंका में आग लगाई है। और, (सीता) देवी तुम्हारे साथ नहीं आईं—इससे हमें ज्ञात हो गया

कि वे राक्षस कितने बलवान् हैं। सब बातें हमने ठीक-ठीक जान लीं। अब बताओ, आगे हमें क्या करना है ?

हनुमान् ने कहा—अब कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है। हमारा कर्त्तव्य यही है कि हम महावीर (रामचन्द्र) को यह समाचार शीघ्र पहुँचा दें कि उनकी देवी को हम देख आये हैं और उन प्रभु के दुःख को शांत करें। हनुमान् के यह कहते ही सब झटपट उठ चले।

विवेकशील वे वानर-वीर, उमंग के साथ गगन-पथ में इस प्रकार उड़ चले, जिस प्रकार रघुपुंगव (रामचन्द्र) के धनुष से निकले हुए बाण चलते हैं। जब उष्णकिरण आकाश के मध्य में पहुँचा, तब वे वीर मधुवन में जाकर ठहरे।

वानरों ने हनुमान् से निवेदन किया—हमें मृत्यु से बचाकर रक्षा करनेवाले हे वीर ! हम लोगों के मन को यह बात व्याकुल कर रही है कि हमारे लौटने की अवधि कभी की व्यतीत हो चुकी है। तबसे हमने कुछ भोजन भी नहीं किया है। अतः, हमें भोजन देने की कृपा करो। तब हनुमान् ने उत्तर दिया—हम सब जाकर वालिपुत्र (अंगद) से निवेदन करें।

सब वानरों ने अंगद के समीप जाकर अपने-अपने करों को जोड़कर विनती की—सुरभित हारों से अलंकृत वक्षवाले! आपकी यह वानर-सेना अधिक प्यास के कारण शिथिल होकर अत्यन्त कष्ट पा रही है। अतः, आप इन्हें मधुच्छत्रों से बरसनेवाला मधु दीजिए।

अंगद ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया। वानर-वीर समुद्र को भी भय-विकंपित करते हुए गरज उठे और मधु के छत्तों के भार से झुके हुए वन में जा पहुँचे। वे चढ़ा-ऊपरी करते हुए छत्तों पर झपटने लगे। (शाखाओं को) तोड़ने लगे। मधु पीने-वाले भ्रमरों के समान मधुरस को खूब पीकर मत्त हो गये।

एक वानर अपने मुख में रखने के लिए मधु उठाता, तो दूसरा कोई वानर बिना प्रयास ही उसे पीकर भाग जाता। एक के हाथ में रखे हुए मधु को दूसरा कोई छीनकर ले भागता। वे एक दूसरे के गले लगते। एक दूसरों पर चढ़कर 'खुशी', 'खुशी'—कहकर चिल्ला उठते।

जब यह सब हो रहा था, तब उस मधुवन के रक्षक, क्रोध से अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालते हुए आ पहुँचे और उमंग से उछलनेवाले उन वानरों को धमकाकर कहने लगे—तुम लोगों ने अनेक दीर्घ उष्णकिरणोंवाले (सूर्य) के पुत्र (सुग्रीव) की आज्ञा का उल्लंघन किया है। क्या सोचकर तुमने ऐसा किया है ? अब तुम्हारे प्राणों का अन्त निकट आ पहुँचा है।

तुम्हारी इस हरकत के कारण हमारे नायक दधिमुख हमपर नाराज होंगे—यह कहकर उन राक्षसों ने दधिमुख के पास जाकर विनती की कि विशाल कपिसेना फल-समृद्ध मधुवन को उजाड़ रही है। हम उन शत्रुओं को दबाने से असमर्थ हैं।

उनके वचन सुनकर दधिमुख कह उठा—मधुवन को उजाड़नेवाले कौन हैं ?

दिखाओ मुझे। तब उन रक्षकों ने निवेदन किया—जब वालिपुत्र आदि वानर उद्यान में आकर ठहरे, तब अंगद की आज्ञा से वह वानर-सेना मधु के छत्तों से लदी शाखाओं को तोड़ने लगी।

तब, हे शासन में समर्थ वीर ! हमने विजयी सुग्रीव के आदेश का पालन करने के लिए, उन वानरों को रोका। किन्तु, उन वानरों ने हमें दुर्वचन कहे और अपने हाथों से मारा-पीटा, जिससे हम बहुत पीडित हुए।—यों रक्षकों के कहते ही, दधिमुख कह उठा—कदाचित् वालिपुत्र ने अपने बलवान् पिता की मृत्यु का समाचार नहीं सुना है!

यों कहकर अग्नि के समान वह भड़क उठा और बड़ा कोलाहल करता हुआ दो करोड़ वीर-कंकणधारी वानरों की सेना को साथ लेकर मनोहर मधुवन में प्रवेश किया। उसी समय मधु पिये हुए पवित्र कर्मवाले वानर श्रीरामचन्द्र का जय-जयकार करते हुए अंगद के चरणों पर आकर गिरे।

दधिमुख ने अंगद से कहा—हे मंदर-सदृश कंधोंवाले ! यह उद्यान इन्द्र के द्वारा वालि को प्रदान किया गया था और मैं इसकी इस प्रकार रक्षा करता आया हूँ कि आकाश में संचरण करनेवाले देवता भी इसकी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकते। किन्तु, मेरी रक्षा को तुमने तोड़ दिया। तुम सूर्य-पुत्र (सुग्रीव) की शक्ति से परिचित हो न? तुम्हारा जीवन-काल आज ही समाप्त होनेवाला है।

तुमने इस प्रकार मधुवन को उजड़वाया है—यह कहकर दधिमुख ने वालिपुत्र पर एक बड़ा पत्थर उठाकर फेंका। अंगद ने उस पत्थर को उल्टे हाथ से रोककर क्रोध से दधिमुख को पकड़कर घूंसों से मारा।

अंगद ने अपनी मुष्टि से उस (दधिमुख) को ऐसा मारा कि उसके मुख से रुधिर बह चला। फिर, यह कहकर कि तुम भागो और जाकर सूर्यपुत्र से यह समाचार कहो, दधिमुख को वहाँ से भगा दिया। फिर, क्रोध से आग उगलते हुए अपनी सेना को आज्ञा दी कि दधिमुख के सैनिकों को पकड़कर अच्छी तरह पीटो।

(अंगद की सेना के वानरों ने दधिमुख के सैनिकों को) पकड़कर लताओं से बाँध दिया। फिर, अपने बलिष्ठ हाथों से उन सैनिकों को आगे और पीछे की ओर से खूब पीटा। वे वीर असह्य पीडा से तड़प उठे। तब अंगद ने उनसे कहा—भागो यहाँ से। तुम भी जाकर (सुग्रीव से) कहो। वे वीर भयभीत होकर वहाँ से भाग गये।

जैसे तरंग-भरे जल में गोते लगाते हैं, वैसे ही उन वानरों ने मधु में गोते लगाये। अपने नायकों को मधुर मधुफल इत्यादि लाकर दिये। इस प्रकार, अपनी थकावट मिटाकर मेरु की परिक्रमा करनेवाले रथ से युक्त सूर्य के आतप के कम होने की प्रतीक्षा करते हुए उस उपवन में (विश्राम करते) रहे।

ज्ञान-रूपी (राम) के दूत (हनुमान्) के त्रिशूलधारी रुद्र के लिए भी असंभव कार्य पूराकर के लौट आने तक की घटनाओं का हमने वर्णन किया। अब हम श्रीराम के सम्बन्ध में कहना चाहते हैं।

सूर्यपुत्र पंकज पर आसीन लक्ष्मी (-सदृश सीता) का अन्वेषण करने के लिए

वायुपुत्र आदि वानरों को चारों दिशाओं में भेजकर, प्रभु (राम) को सांत्वना देता रहा।

आरक्त नेत्रवाले (राम) जब-जब (वियोग की पीडा से) मूर्च्छित हो जाते थे, तब-तब सुग्रीव मधुर वचनों से उन्हें सांत्वना देता था। तब राम इस प्रकार सचेत हो उठते थे, जैसे बार-बार नये प्राण पा रहे हों।

तीन दिशाओं (पूर्व, उत्तर और पश्चिम) में गये हुए वानरों ने उस देवी को नहीं देखा। यह वचन उन्हें अधिक कष्ट पहुँचा रहा था। किन्तु, रामचन्द्र अति बलशाली हनुमान् के विषय में सोचते हुए अपने शरीर में प्राणों को रोके रहे।

आर्य (राम) ने दारुण दुःख-सागर में मग्न होकर सुग्रीव से कहा—हमारा प्रयत्न सफल होनेवाला नहीं है। मुझे अति क्षुद्र और अवारणीय अपयश प्राप्त हुआ है। वे फिर कहने लगे—

हमारी निश्चित की हुई अवधि बीत गई है। फिर भी, दक्षिण दिशा में सुरभित केशवाली देवी का अन्वेषण करने के लिए गये (वानर) अबतक नहीं लौटे हैं। वे कदाचित् मृत्युग्रस्त हो गये हैं या उनपर और कोई विपदा आ गई। न जाने क्या हुआ?

कदाचित् वह (सीता) मर गई। अतः, यह सोचकर कि इस दुःखद समाचार को उन्हें (राम-लक्ष्मण को) देने की अपेक्षा हमें मर जाना अच्छा है, वे शोकमग्न हो मर गये। या अभी तक (सीता का) अन्वेषण करते फिर रहे हैं।

या राक्षसों को देखकर क्रोध उमड़ आने से कदाचित् उन वानरों ने भयंकर युद्ध छेड़ दिया होगा और राक्षसों की माया से (युद्ध में मरकर) वीर स्वर्ग में पहुँच गये होंगे। अथवा (राक्षसों के द्वारा) सदा के लिए ऐसे बंधन में डाल दिये गये होंगे, जहाँ से मुक्त होना असंभव है।

या यह सोचकर कि निश्चित अवधि के भीतर हम अपने स्थान को वापस नहीं पहुँच सके, अब लौटकर जाने में हमारा कुशल नहीं है, कदाचित् वे सुख-दुःख के द्वन्द्व से मुक्त हो तपस्या करने लग गये हैं। नहीं तो उन्हें और क्या हो गया? कहो। (यों राम ने सुग्रीव से कहा।)

जब राम इस प्रकार व्याकुल हो रहे थे, तब दधिमुख सिर से बहते हुए रुधिर के सहित सुग्रीव के सामने आ खड़ा हुआ। उसने दोनों कर जोड़कर, पहाड़ के जैसे नीचे गिरकर नमस्कार किया।

फिर, उठकर उसने (सुग्रीव से) निवेदन किया, हे प्रभो! सुनो। आज सारा मधुवन मिट गया। उसके यह कहते ही सुग्रीव ने उसके रक्त से भरे मुख को देखकर पूछा—ऐसा करनेवाला कौन है? कहो।

दधिमुख ने उत्तर दिया—नील, कुमुद, दीर्घ पर्वत-सदृश जांबवान्, (धरती को) आवृत-सी करती हुई चलनेवाली (विशाल) वानर-सेना वहाँ पहुँचकर मधुवन को उजाड़ने लगी तब—

उद्यान के रक्षकों ने उन लोगों को वैसा करने से रोका। किन्तु, अंगद ने उन्हें

मारकर भगा दिया और आपके प्रति निंदा के वचन भी कहे। हमने उसके निंदा के वचनों से क्रुद्ध होकर एक चट्टान को तोड़कर—

वालिपुत्र की पुष्ट देह को क्षण-मात्र में ही मिटा देने के उद्देश्य से उसपर फेंका, तो उसने उलटे हाथ से उस चट्टान को रोक लिया और बाँस में लगी हुई आग-जैसे भड़क उठा। फिर, मुझे पकड़कर इस प्रकार घूँसे लगाये कि मेरे प्राण तड़प उठे और 'यह समाचार सूर्यपुत्र सुग्रीव से जाकर कहो'—यह कहकर उसने मुझे भगा दिया।

यह सुनकर सूर्यपुत्र आनन्दित हो उठा और शेषशयन (विष्णु के अवतार राम) को नमस्कार करके कहा—(अंगद का) यह कार्य इस बात की सूचना दे रहा है कि पीत-स्वर्ण के कंकणों से भूषित देवी, उत्तम पातिव्रत्य के साथ अभी तक जीवित हैं।

हे प्रभो! मधुर गान-सदृश बोलीवाली उन (देवी) के दर्शन उन वानरों ने पाये हैं। इसी से उत्पन्न आनन्द के कारण भ्रमरों से पूर्ण मधुवन को उजाड़कर उन्होंने मधु पिया है। अब आप दुःख से मुक्त हो जायँ—यों सुग्रीव ने कहा।

दक्षिण दिशा में गये हुए वानर लौट आये हैं—यह सामाचार पाकर रामचन्द्र अपने मन में सोचने लगे कि न जाने, वे क्या समाचार लाये हैं—यह सोचकर वे मन में दुःखी होते हुए उनकी प्रतीक्षा करने लगे। तब सुग्रीव ने दधिमुख को देखकर पूछा—

उस वन में आये हुए वानर कौन हैं? बताओ। (दधिमुख ने कहा—) मारुति, वालिपुत्र, मैन्द, जांबवान् आदि सत्रह शक्तिशाली सेनापति अपने कोलाहल से लज्जित करनेवाली सेना के साथ आये हैं।

इस प्रकार, जब उस (दधिमुख) ने उत्तर दिया, तब फिर रविपुत्र (सुग्रीव) ने बलवान् दधिमुख को देखकर कहा—तुम्हें एक बात कहना चाहता हूँ। वालिपुत्र (अंगद) नीच कार्य करनेवाला नहीं है।

विजयी प्रभु (राम) की आज्ञा को सिरपर धारण कर स्वच्छ तरंगों से पूर्ण समुद्र से आवृत भू-प्रदेश में सीता का अन्वेषण करके राक्षसों का विनाश करके वे लौटे हैं। ऐसे कार्य करनेवालों के बारे में तुम किस प्रकार यह कहते हो कि उन्होंने अनुचित कार्य किया है?

इतना ही नहीं, वालिपुत्र युवराज भी है। उससे वैर करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। हे विपरीत बुद्धिवाले! तुमने कुछ भी नहीं समझा है। यदि अपना भला चाहते हो, तो लौटकर उस (अंगद) की शरण में जाओ—सुग्रीव ने इस प्रकार कहा।

सुरभित हार-भूषित दधिमुख, सिर नवाकर, मुख ढककर, द्रवितचित्त होकर, अपने सैनिकों के साथ अपनी देह को सिकोड़े हुए पुनः मधुवन में आया।

अंगद (दधिमुख) को देखकर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने सोचा—भागा हुआ यह (दधिमुख) यदि पुनः मेरे साथ लड़ाई छेड़ेगा, तो मैं इसके प्राण हरण कर लूँगा। किन्तु, दधिमुख यह कहता हुआ कि हे प्रभो, मैं आपका दास हूँ, हाथ जोड़कर उसके सम्मुख आकर खड़ा हो गया।

'मेरे बड़े अपराध को क्षमा करो'—यह कहता हुआ वह अंगद के चरणों पर

गिर पड़ा। वालिपुत्र ने तुरन्त उसे उठाकर गले से लगा लिया और सांत्वना देते हुए कहा—'तुम्हारे प्रति मैंने जो अपराध किया है, उसे क्षमा करो।'

फिर अंगद ने हनुमान् से कहा—हमलोग निश्चित अवधि व्यतीत हो जाने पर लौटे हैं, इससे हमें जो भय उत्पन्न हुआ है, उसे दूर करने के लिए तुम पहले जाकर कमलनयन (राम) के दुःख को दूर करो।

उन वानरों को जब यह विदित हुआ कि अति प्रतापवान् सुग्रीव का क्रोध शान्त हो गया है, तब सूर्य की धूप कम होने पर, अपराध से मुक्त हुए वे सब वानर (सुग्रीव के निकट) चल पड़े।

इधर रामचन्द्र ने सूर्य के पुत्र से प्रश्न किया—क्या ये वानर मुझसे कहेंगे कि उन्होंने पातिव्रत्य पर दृढ रहनेवाली देवी को देखा? या यह कहेंगे कि वह (सीता) सतीत्व-धर्म से परे चली गई है? मुझसे कहो।

इसी समय, हनुमान् भी इस प्रकार दिखाई पड़ा, मानों सूर्य दक्षिण दिशा में उदित हुआ हो। स्वर्ण का दान करनेवाले (उदार) हस्तयुक्त रामचन्द्र ने प्रेम से उसकी ओर देखा।

हनुमान् (राम के) निकट आ पहुँचा। पहुँचकर उसने महिमामय (राम) के बलिष्ठ वीर-वलयधारी चरणों को प्रणाम नहीं किया। किन्तु, उस दक्षिण दिशा की ओर, जिस दिशा में कमल पुष्प पर निवास करनेवाली देवी, अपने पंकजासन को त्यागकर रहती थीं (अर्थात्, लक्ष्मी का अवतार सीता रहती थीं) मुख करके हाथ जोड़े और फिर वैसे ही धरती पर दंडवत किये पड़ा रहा।

इंगित को समझनेवाले राम ने अतिबलशाली हनुमान् के व्यापार को देखकर यह समझ लिया कि भ्रमरों से अलंकृत कुंतलोंवाली देवी (सीता) सकुशल है। इसने उस देवी के दर्शन किये हैं और उसका सतीत्व भी अचंचल है।

तब राम ने अनुमान से ही हनुमान् के किये व्यापारों को जान लिया। उस आनन्द से उनकी भुजाएँ फूल उठीं। कमल-दल जैसे उनके नेत्र छलछला उठे। उनका अपूर्व दुःख भी शांत हो गया। और (सीता के प्रति) उनका प्रेम उमड़ उठा।

हनुमान् ने रामचन्द्र से निवेदन किया—मैंने अपनी आँखों से उस सतीत्व के अलंकार स्वरूप देवी को देखा, जो अब स्वच्छ तरंगों से भरे समुद्र से घिरी हुई लंका में (बंदिनी बनकर) रहती हैं। हे देवों के देव! आप अपनी आशंकाओं से मुक्त हो जायँ और दुःख का त्याग करें—यह कहकर वह आगे कहने लगा—

प्रभो! मेरे लिए पूज्य वह आपकी देवी, आपकी पत्नी बनने योग्य हैं। आपके पिता की पतोहू कहलाने योग्य हैं तथा मिथिलापति जनक महाराज की पुत्री होने के अनुकूल महिमा से पूर्ण हैं। और भी सुनिए—

स्वर्ण के समान स्वर्ण ही है, अन्य कुछ नहीं। वैसे ही वह क्षमामयी देवी अपने समान स्वयं ही हैं। उनका उपमान अन्य कोई नहीं है। उन देवी ने आपको ऐसा यश दिया है कि उनके पति होने के कारण अपनी समानता करनेवाले आप स्वयं ही हैं, अन्य

कोई नहीं। मुझे भी उन्होंने ऐसा महत्त्व दिया है कि मेरे समान दूसरा कोई नहीं है।

मेरी माता, उन देवी ने आपके कुल को आपके योग्य रखा है (अर्थात्, आपके कुल को कलंकित नहीं किया है)! स्वयं महान् यश का भागी बनकर अपने कुल की प्रतिष्ठा को बढ़ाकर उस (कुल को) भी उपकृत किया है। अपने को (पति से, अर्थात्, आपसे) अलग करनेवाले (रावण) के कुल को यम के लिए प्रदान किया है। देवों के कुल को जीवित रखा है एवं मेरे कुल की भी प्रतिष्ठा बढ़ने का कारण बनी हैं। अब उन्हें और क्या करना शेष रह गया है?

धनुर्धारी विशाल बाहुओं से सुशोभित हे वीर! मैंने त्रिकूट-गिरि पर स्थित, समुद्र से घिरी लंका में महान् तपस्या करनेवाली स्त्री को नहीं देखा; किन्तु कुलीनता, क्षमा और पातिव्रत्य नामक तीनों गुणों को एक साथ आनन्द-नृत्य करते हुए देखा।

आप उन देवी के नयनों में रहते हैं, उनके मन में रहते हैं, उनकी वाणी में रहते हैं, उनके स्तन पर मन्मथ के बाणों से उत्पन्न अमिट घावों में रहते हैं, तो यह बचन कैसे सत्य हो सकता है कि आपसे वह देवी बिछुड़ी हुई हैं।

हे स्वामिन्! समुद्र-मध्यस्थित लंका नामक नगर के एक कोने में, गगनोन्नत, स्वर्णमय कल्पवृक्षों के घने उद्यान में, जहाँ उदय और अस्त नहीं दिखाई पड़ता, आपके भाई द्वारा निर्मित पवित्र पर्णशाला में वह देवी रहती हैं।[1]

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने (रावण को एक) शाप दिया था कि यदि तुम किसी स्त्री का स्पर्श करोगे, जो तुमसे प्रेम नहीं करती, तो तुम्हारे सिर के असंख्य टुकड़े बनकर बिखर जायेंगे। अतः, पवित्र देवी की देह का स्पर्श करने से डरकर वह (रावण) भूमिखंड के साथ ही उन (देवी) को ले गया है।

उसने उन (सीता) देवी का स्पर्श नहीं किया—यह बात आप इन्हीं लक्षणों से जान सकते हैं कि अबतक ब्रह्मांड बिना टूटे स्थिर रहता है। शेषनाग के फन (जिनपर यह धरती खड़ी है) फटे नहीं हैं। समुद्र उमड़कर तटों को लाँघ नहीं गये हैं। (रवि, चंद्र आदि) ज्योतिष्पिंड टूटकर गिरे नहीं हैं। वेद तथा (उनके प्रतिपादित) कर्म मिटे नहीं हैं।

वियोग-दुःख से पीडित वह देवी पातिव्रत्य-धर्म से च्युत नहीं हुईं, जिससे सारा स्त्रीकुल ही पूजनीय हो गया है। देवों की स्त्रियाँ भी इसी कारण से पूजनीय हो गई हैं।

शिव के अर्धांग में रहनेवाली देवी (पार्वती) भी अब उन भगवान् के वाम पार्श्व में रहने योग्य ही नहीं, किन्तु सिर पर रहने योग्य हो गई हैं। पंकजासना (लक्ष्मी) भी विष्णु के वक्ष पर नहीं, किन्तु उनके सहस्रों सिरों पर आसीन होने योग्य बन गई हैं।

सारी लंका में ढूँढ़ता हुआ मैं रावण के अंतःपुर में गया। वहाँ कर्णाभरणों से भूषित सब स्त्रियों को देखता हुआ अन्त में लहलहाते हुए शीतल उपवन में जा पहुँचा। वहाँ अश्रुओं के तरंगायित सागर में स्थित लक्ष्मी-समान देवी को देखा।

---

१. पहले कवि ने यह कह दिया है कि रावण पंचवटी से सीता को पर्णकुटी-सहित ही उठा लाया था। अशोकवन में लक्ष्मण-निर्मित उसी पर्णशाला के भीतर सीता रहती हैं। —अनु०

भूतों के दल को भी भयभीत करनेवाली असंख्य राक्षसियाँ घनी होकर वहाँ खड़ी थीं और उनकी रखवाली कर रही थीं। इस दशा में, अपने भय को आपके स्मरण से ही दबाये, वह देवी इस प्रकार बैठी थीं, मानों करुणा ही स्त्री रूप में वहाँ बैठी हुई हो।

सहजात उत्तम गुणों से भूषित, उज्ज्वल ललाटवाली उन साध्वी देवी के अनुपम प्रेम को अपने नेत्रों से देखने (अर्थात्, उनके प्रेम का अनुभव करने का) सौभाग्य केवल आपको है। इस विशाल संसार में पुरुष-जन्म पाकर आप धन्य हुए हैं।

हे प्रभो ! प्राचीरों से घिरी प्राचीन नगरी लंका में नित उसास भरती हुई, मुमूर्षु बनी हुई रहनेवाली कलापी-तुल्य अप्सराएँ, यद्यपि पहले से उन देवी को नहीं जानती थीं, तथापि उनके सतीत्व की महिमा को पहचानती हैं।

हे स्वामिन् ! देवी के सम्मुख पहुँचकर प्रणाम करने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ मैं वहाँ खड़ा रहा। उस समय विजयमाला से भूषित शूलधारी लंकाधिप वहाँ आया और देवी के प्रति प्रार्थनापूर्वक कुछ वचन कहे। देवी के कठोर वचन कहने पर क्रुद्ध होकर वह उन्हें मारने को उद्यत हुआ।

देवी का सतीत्व, आपकी करुणा और पवित्र धर्म ही उन (सीता) की रक्षा करते रहे हैं। तब रावण वहाँ स्थित राक्षसियों को यह आज्ञा देकर कि जाकर उसे सताओ, वहाँ से चला गया। वे राक्षसियाँ मेरे उच्चारित मंत्र के प्रभाव से निद्रामग्न हो गईं।

उस समय, देवी अपने प्राण त्यागने का प्रयत्न करने लगीं। एक लता को वृक्ष से लटकाकर उससे अपने गले को बाँधने जा रही थीं कि श्वान-जैसा यह दास उन्हें रोककर आपका नाम लेकर उनके चरणों पर नत हो खड़ा हो गया।

अश्रुवर्षा करती हुई वह देवी पहले अपने मन में यह आशंका कर उठीं कि कदाचित् यह भी वंचक राक्षसों की माया है। फिर मुझसे बोलीं—तुम बड़े कृपालु हो, जब मैं मरने जा रही थी, तब तुमने कालवर्ण प्रभु (राम) का नाम लेकर मेरी रक्षा की।

हे मेरे प्रभु ! मैंने जो अभिज्ञान बताये, उन सबका उन्होंने ठीक-ठीक विचार किया। उन्होंने यह पहचान लिया कि मेरे मन में कुछ भी छल नहीं है। अन्त में मैंने आपकी दी हुई अँगूठी उन्हें दी। वह (उनके लिए) मरणकाल में जीवन-दान करनेवाली सँजीवनी के समान थी।

हे ऐश्वर्ययुक्त ! एक ही क्षण में मैंने दो विस्मयकारी दृश्य देखे। उन देवी ने उज्ज्वल रत्नांकित अंगूठी को अपने स्तनतट पर ज्योंही रखा, त्योंही उनके तन के ताप से तपकर वह अँगूठी पिघल गई। किन्तु, तुरंत ही आनन्द के कारण जो शीतलता बढ़ी, उससे वह (अँगूठी) ठंडी होकर यथारूप बन गई।

उन्होंने उस अँगूठी को, वंचक राक्षसों के नगर में आने के कारण अपवित्र हुई जानकर मानों अपने आनन्दाश्रु के सहस्रों कलशों के जल से अभिषिक्त किया। मन-ही-मन सब अनुभव करती रहीं, किन्तु मुख से एक शब्द भी नहीं निकाल सकीं। उनकी कृश देह फूल उठी और वे आश्चर्य-विमुग्ध हो गईं। वे अपलक खड़ी रहीं और आह भरने लगीं।

हे प्रभो ! इस दास ने, उन देवी को उनके बिछुड़ने के पश्चात् आपकी जो दशा हुई, वह सब सुनाकर कहा—हे देवी ! तुम्हारे रहने का स्थान का ज्ञान न होने से तुम्हारी खोज करने में इतना विलंब हुआ। फिर, आपके दुःख के बारे में बताया। मेरे वचन सुनकर वह स्वस्थप्राण हुई।

मुझसे यहाँ के सारे समाचार को सुनकर, उन्होंने वहाँ (लंका में) घटित हुए वृत्तांत कहे। फिर, यह कहकर कि मैं अभी एक मास पर्यंत जीवित रहूँगी। यदि उन (मेरे पति) का मन मेरे प्रति अनुरक्त न रहे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। यह कहकर आपके वीर-कंकणधारी चरणों को लक्ष्य करके उन्होंने प्रणाम किया।

प्रणाम करने के उपरान्त, अपने वस्त्र में बाँधकर रखी हुई, रत्नों में श्रेष्ठ चूडामणि को खोलकर मेरे हाथ में दिया। हे ज्ञानस्वरूप ! अपने रक्तकमल-सदृश नेत्रों से इस मणि को देखिए—यों कहकर उस हनुमान् ने, जिसका उत्तम यश वेदों तथा शास्त्रों के स्थिर रहते समय तक अमिट रहेगा, उस चूडामणि को (राम के हाथ में) दिया।

श्रीरामचन्द्र के मन में प्रेम उमड़ उठा। उससे उनके मन का ताप तथा देह की शिथिलता दूर हो गई। अपने हाथ में उस चूडामणि को देख उनको ऐसा अनुभव हुआ, मानों वे अग्नि के सम्मुख अपने सुन्दर कर में सीता देवी का पाणिग्रहण कर रहे हों।

उन्हें रोमांच हुआ। अश्रु उमड़-उमड़कर बहे। वक्ष और भुजाएँ फूल उठीं और फड़कने लगीं। स्वेदबिन्दु निकल आये। सुन्दर मुँह प्रफुल्ल हो उठा। श्वासों के शीघ्रता से चलने के कारण उनकी देह फूल उठी। अहो ! उनकी उस दशा को समझनेवाले कौन हैं ?

उस समय अन्य वानरों के साथ अंगद आदि सेनापति भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने राम तथा सुग्रीव को नमस्कार किया। कार्य में सफलता प्राप्त होने के आनन्द से वे यों प्रफुल्लवदन हुए, जैसे आकाश मध्य-स्थित पूर्णचन्द्र का विशाल बिम्ब हो।

वहाँ स्थित सूर्यपुत्र (सुग्रीव) ने (राम से) कहा—हे प्रभो ! सुनो, अब हम देवी को अनायास ही देख सकते हैं। तब राम ने कहा—अब विलंब क्यों करते हो, यों ही क्यों बैठे हो ? (यह सुनकर) स्तम्भ-सदृश पुष्ट कंधोंवाला सुग्रीव झट उठकर चला गया।

(सुग्रीव ने) आज्ञा दी कि 'अरे', शब्द कहकर पुकारने के पूर्व ही सब वानर-सेनाएँ एकत्र हो जायँ। ढिंढोरा पीटनेवाला सर्वत्र ढिंढोरा पीट-पीटकर सबको सावधान करने लगा। तब अपार वानर-वाहिनी उमड़कर दक्षिण दिशा में इस प्रकार फैली, मानों तरंगायमान समुद्र अपनी वेला को लाँघकर उमड़ चला हो।

चक्रधारी राम ने नील को देखकर यह आज्ञा दी कि शत्रु आकर कहीं हमारी सेना को बाधा न दें, इसलिए मत्तगज-सदृश वीरों को आगे करके उनके पीछे-पीछे सेना को चलने दो और तुम ठीक मार्ग दिखाते हुए आगे-आगे चलो।

अब रामचन्द्र इस प्रकार (नील को) आज्ञा देकर उठे, तब मारुति ने अपने दोनों कर जोड़कर निवेदन किया—हे प्रभो ! मुझे क्षुद्र कार्य करनेवाला एक वानर समझकर मेरा तिरस्कार न करें। किन्तु, मेरे कंधों पर आरूढ होने की कृपा करें। यों कहकर अपना

सिर धरणी पर रखकर उसने दंडवत किया। प्रभु भी हनुमान् के कंधे पर आरूढ हो गये। तब अति बली वालिपुत्र (अंगद) ने लक्ष्मण को प्रणाम करके निवेदन किया—

हे अकलंक ! आप अब मेरे कंधों पर बैठ जाइए। यह कहकर वह (अंगद) अपने कर से अपना मुख ढके बड़ी नम्रता के साथ खड़ा रहा। श्रीरामचन्द्र के अनुज भी उस प्रार्थना को स्वीकार करके उसके कंधे पर बैठ गये। तब वानर-सेना बिना किसी प्रतिरोध के अपने मार्ग पर बढ़ चली।

वायु के पुत्र (हनुमान्) के कंधे पर श्रीरामचन्द्र और अंगद के विजयमाला-भूषित कंधे पर लक्ष्मण—दोनों अभीष्टप्रद वीर, गरुड तथा वृषभ पर आरूढ हरि तथा हर के सदृश ही जा रहे थे। कांतिमय स्वर्गलोक के निवासी, निर्मल ज्ञानप्रद देवताओं ने उनका जय-जयकार करके स्वर्गमय दिव्य पुष्पों की वर्षा की।

राघव ने यह सोचकर कि यदि वह बलवान् तथा विशाल वानर-सेना स्थल-मार्ग पर चलेगी, तो पृथ्वी के निवासी मनुष्य कष्ट पायेंगे, उस सेना को मधुर आदेश दिया कि वह पर्वत-मार्ग से चले। वह सेना, जिसका कहीं कुछ प्रतिरोध नहीं हो सकता था, फलों, कंद-मूलों, मधु इत्यादि से पूर्ण मनोहर तथा बड़े-बड़े पर्वतों पर से होकर जाने लगी।

विशाल वीर-कंकणधारी हनुमान् सुनाता जा रहा था कि त्रिकूट पर्वत पर स्थित लंका की, विजयशील और कालवर्ण राक्षस लोग किस प्रकार सभी थके बिना कड़ी रखवाली करते रहते हैं। उनका वैभव कैसा है और उनका दुर्ग कैसा है। शीघ्रगामी वानर-वीर यह सब कथा सुनते हुए दीर्घ पथ को अनायास ही पार कर चले।

इस प्रकार, वानरनायक (सुग्रीव) और सन्मार्गचारी वीरों (राम-लक्ष्मण) का अनुसरण करके चलनेवाली उस वानर-सेना ने मनोहर तथा विशाल वनों से भरे पर्वतों पर से होकर, ग्यारह दिन व्यतीत होने पर, बारहवें दिन दक्षिण में स्थित समुद्र को देखा। (१—९३)

कंब रामायण

युद्धकाण्ड

मंगलाचरण

वह परमतत्त्व ऐसा है कि यदि कहा जाय कि वह एक है, तो वह एक है। यदि कहा जाय कि वह अनेक है, तो वह अनेक है। यदि यह कहा जाय कि वह किसी वस्तु के जैसा नहीं है, तो वह वैसा नहीं है। यदि कहा जाय कि वह अमुक-जैसा है, तो वह वैसा ही है। यदि 'नहीं है' कहा जाय, तो नहीं है। 'है' कहा जाय, तो वह है—अहो, उस भगवान् की अवस्थिति भी विचित्र है। हम जैसे लोगों के लिए उसे जानना और उत्तम जीवन (अर्थात्, मोक्षपद) पाना कैसे संभव हो सकता है ?

(भाव यह है कि भगवान् के तत्त्व को समझना हमारे लिए असंभव है। जब-तक भगवान् अपनी कृपा से हमारा उद्धार न करें, तबतक मोक्ष पाना भी हमारे लिए संभव नहीं। उपनिषद् का यह वाक्य यहाँ स्मरणीय है—'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'—अर्थात्, यह (भगवान्) जिसको स्वयं चुन लेता है, उसके लिए स्वयं ही अपना ज्ञान प्रकाशित कर देता है।)

●

अध्याय १

समुद्र-दर्शन पटल

सत्तर 'वेल्लम्'[1] संख्यावाली वह वानर-सेना जब दक्षिण दिशा के समुद्र पर जाकर ठहरी, तब युगांत में भी न हिलनेवाले उन्नत पर्वत (हिमालय आदि), समुद्र

१. वेल्लम्—आठ अक्षौहिणी का एक एकम्, आठ एकम् की एक कोटि, आठ कोटि का एक शंख, आठ शंख का एक विन्द, आठ विन्दों का एक कुमुद, आठ कुमुद का एक पद्म, आठ पद्म का एक देश, आठ देश का एक समुद्र तथा आठ समुद्रों का एक 'वेल्लम्' होता है।

और पृथ्वी, उत्तर की दिशा के गगन पर उठ गये और दक्षिण दिशा का समुद्र, पृथ्वी आदि नीचे की ओर झुक गये।

शंख के समान (परिशुद्ध) स्वभाववाली (सीता) देवी से वियुक्त होने के पश्चात् रामचन्द्र की आँखें, जिन (आँखों) की समता करनेवाले कमलपुष्प भी जब बन्द हो जाते थे, रात्रि के समय भी निद्रा नहीं करती थीं—ऐसे उन राम ने उमड़कर फैली हुई विशाल सेना के बाहर तथा (अपने) अन्तर में भी उमड़नेवाले समुद्र को देखा। (भाव यह है कि वानर-सेना समुद्र के तट पर फैली हुई थी। रामचन्द्र ने उस सेना के पार विशाल समुद्र को देखा। समुद्र को कैसे पार किया जाय और रावण को युद्ध में कैसे परास्त किया जाय—ऐसी चिन्ता-रूपी समुद्र को भी अपने अन्तर में उमड़ते हुए देखा।)

वीचियों से लहरानेवाला वह समुद्र, उस समय ऐसा लगा, मानों यह विचार कर कि विष्णु भगवान्, चिर काल से (समुद्र की शेष-शय्या को छोड़कर) घूमते रहने के पश्चात् अब पुनः यहाँ आये हैं और अब निद्रा करेंगे, बहनेवाले दक्षिण-पवन के द्वारा विष्णु की शय्या पर पुष्प-समान फेन और मुक्ताओं को बिखरवा रहा हो और उस शय्या को झाड़-पोंछकर पुनः बिछवा रहा हो।

मंद मारुत के आघात से मुक्ता आदि को बिखेरनेवाली समुद्र-वीचियों से जो जलबिंदु बिखर पड़ते थे, वे (जलबिंदु), अश्रु बहानेवाली लता-समान सीता के दुःखी रहने के कारण प्राप्त अपयश एवं मन्मथ के शर दोनों के लक्ष्य बने हुए (राम) की मनोहर भुजाओं को इस प्रकार जलाने लगे, जिस प्रकार भाथी की हवा पाकर लुहार की भट्ठी से ऊपर उठनेवाली चिनगारियाँ हों।

उन रामचन्द्र को, जो ऐसे पीडित थे कि लगता था कि उनका कल का (सुन्दर) शरीर आज (कृश होकर) कुछ दूसरा ही हो गया है, देखकर किंचित् भी दया से रहित समुद्र, अकेला रहकर बड़ा घोष करता हुआ उनकी पीडा को बढ़ा रहा था। उस समुद्र के मध्य उठनेवाली, एक दूसरे से गुँथ जानेवाली वीचियों पर से बहनेवाला मंद मारुत भी मधुस्रावी 'पुन्नै' पुष्पों की सुगन्धित रज को उनके शरीर पर लगाये बिना नहीं चलता था।

वियोग के कारण राम का शरीर पीडित होकर कृश हो गया था, इसीसे पर्वत धनुर्भूषित कंधे का उपमान कुछ-कुछ हो सका (अर्थात्, जब राम पीडित नहीं थे, तब उनके पुष्ट कंधों का उपमान पर्वत नहीं हो सकता था)। प्रवाल की लता, सप्त लोक में प्रशंस्यमान पातिव्रत्यवाली सीता देवी के अरुण अधर का दृश्य उनके सम्मुख उपस्थित करके उनके प्राण पीनेवाला यम बनी थी।

हे मुक्ताओ! मयूर-समान सीता का स्थान अब समीप आ जाने से उन देवी के पास शीघ्र जाने के लिए अधिक कातर होनेवाले मन को, वीरता को प्रकट करनेवाले धनुष से रक्षित अभिमान रोकता रहा। इस प्रकार, दिन-दिन क्षीण होते रहनेवाले राम के प्राणों को

(उनके सामने) सीता देवी के दाँतों का दृश्य उपस्थित करके तुम क्यों पीना चाहती हो ? क्या क्रूर राक्षसों के साथ तुम्हारा कुछ बंधुत्व है ?

समुद्र की वीचियों का उमड़कर राम के कमल-चरणों पर आकर गिरना ऐसा लगता था, मानों समुद्र यह सोचकर कि 'चंद्र-समान ललाटवाली सीता अब अति कठोर दुःख भोग रही है, मेरी पुत्री,[1] पातिव्रत्य से युक्त इस देवी को क्या ऐसा दुःख भोगना उचित है ?—बहुत दुःखी हो गया हो और मुक्ता-समान आँसू बहाता हुआ राम से प्रार्थना कर रहा हो।

आदिशेष पर स्थित पृथ्वी (चंदन घिसने का) लोढ़ा थी। तुषार-विंदु थोड़ा-थोड़ाकर जल छिड़क रहे थे। मरोड़ी हुई वीचियों का जल पीसने का पत्थर था। और, मानों समुद्र धवल फेन-रूपी चंदन को घिस-घिसकर विरह-ताप से पीडित राम की देह पर लगा रहा था।

बड़ी-बड़ी तरंगों से भरा हुआ समुद्र ऐसा लगता था, मानों कोकिलवयनी तथा सुन्दर स्तनोंवाली सीता के दुःख को दूर करने तथा देवों के भय मिटाने के लिए अपने मनोहर कर में धनुष एवं कंधे पर तूणीर लेकर शत्रुओं से युद्ध के हेतु जानेवाले, गंगा से सिंचित कोसल देश के अधिपति रामचंद्र को देखकर वह अत्यन्त आनन्दित हो गया हो तथा अपने करों को उठाकर दौड़ता हुआ हर्षध्वनि कर रहा हो।

ऐसे अंजनवर्ण समुद्र के पास पहुँचकर, उस समुद्र से भी सातगुना अधिक मान, दुःख तथा प्रेम से भरकर रामचंद्र आगे के कर्त्तव्य के बारे में सोचने लगे। अब उधर लंका में क्या हुआ, इसका वर्णन करेंगे। (१—११)

●

अध्याय २

रावण-मंत्रणा पटल

(हनुमान् के द्वारा लंका विध्वस्त हुई थी। अतः,) दिव्य शिल्पी मय, कमल-भव ब्रह्मा को साथ लेकर सुन्दर लंका में आया और उस लंका को त्रिलोकों के सब नगरों से अधिक सुन्दर नगर बना दिया, जिसको देखकर देवता आश्चर्य से स्तब्ध रह गये।

वीर-कंकणधारी रावण ने स्वर्ण तथा नवरत्नों से निर्मित अति मनोहर लंका नगर को देखा तथा स्वर्ग को भी देखा और लंका को (जलने के) पहले से भी अब अधिक सुन्दर बना हुआ देखकर वह (रावण) आनन्दित होकर अपना क्रोध भूल गया।

त्रिमूर्त्तियों में प्रथम उल्लेखनीय सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा) ने दिव्य शिल्पी को सौंदर्य की

---

१. सीता लक्ष्मी का अवतार हैं। क्षीरसागर के मंथन के समय अमृत आदि वस्तुओं के साथ लक्ष्मी भी समुद्र से निकली थी। इसीलिए सीता को समुद्र की पुत्री कहा गया है।—अनु०

पराकाष्ठा दिखाई थी और उसका निर्माण करने की शक्ति भी प्रदान की थी। अनेक बार यह सुन्दर सृष्टि रचकर, मिटाकर, पुनः-पुनः रचते रहने से जिस (ब्रह्मा) को अति अद्भुत कौशल प्राप्त हो गया था, उसके लिए कौन-सी रचना अपूर्व हो सकती है ?

युद्धोचित वीर कंकणधारी रावण ने अपनी सुन्दर लंका नगरी का अवलोकन किया। फिर, (उसके पुनर्निर्माण पर संतुष्ट होकर) उसने दिव्य शिल्पी (मय) को अनेक पुरस्कार दिये और ब्रह्मा की यथाविधि पूजा की और उस (ब्रह्मदेव) को वहाँ से विदा किया।

उस समय रावण, अनेक सहस्र उज्ज्वल किरणोंवाले पद्मराग से जटित स्तंभों से युक्त अति सुन्दर मंडप में सिंह की प्रतिमा से युक्त एक उन्नत आसन पर (मंत्रणा करते हुए) आसीन था।

उसके दोनों ओर अप्सराएँ चामर डुला रही थीं। उसके वक्ष पर पुष्पमालाएँ हिल रही थीं। वह अनेक वर प्राप्त किये हुए बन्धुओं, मंत्रणा में निपुण (मन्त्रियों) तथा सेनापतियों से घिरा हुआ उस सभा-मंडप में आसीन था।

रावण ने अपने मन की बात पर विचार करने के उद्देश्य से आज्ञा दी कि इस सभा-मंडप से मुनि, देव तथा यक्ष, अन्य लोगों के आथ अलंकृत केशोंवाली स्त्रियाँ एवं बच्चे भी चले जायँ।

रावण ने अपने प्रभाव को दिखाते हुए भ्रमरों के साथ पवन को भी वहाँ से हटा दिया और विद्वान्, चिरकाल से परिचित, बन्धु तथा उससे कभी पृथक् न होनेवाले मंत्रियों को ही वहाँ रहने को कहा।

उसके उत्तम बंधुजनों में भी, विस्तृत शास्त्रज्ञान, युद्ध में प्रदर्शित वीरता तथा उसके प्रति प्रेम—इनसे युक्त होने पर भी, जो लोग उसकी संतान या भाई नहीं थे, उन सब को सभा-मंडप से उसने अलग भेज दिया।

(रावण ने) ऐसे वीरों को, जो सारे संसार को एक ही साथ पीस सकते थे, सभा-मंडप की रक्षा के लिए चारों दिशाओं में खड़ा किया। इससे वेग से उड़नेवाले पक्षी, मृग, कीड़े-मकोड़े भी उस सभा-मंडप के निकट चित्र-लिखित जैसे, हिलने से भी डरकर, अचंचल खड़े रहे। तो, अब और क्या कहा जाय ?

रावण ने मन-ही-मन सोचा—मेरी प्रतिष्ठा एक वानर के कारण कुंठित हुई। अब इससे भी अधिक अपमानजनक बात और क्या हो सकती है ? अहो ! मेरा राज्य और सेना की व्यवस्था भी बहुत सुन्दर है ! फिर, उसने मंत्रियों से कहा—

एक वानर ने लंका को अग्नि से विध्वस्त कर दिया। विजय-ध्वजाओं से शोभायमान यह नगर मिट गया। उस अग्नि-ज्वाला से मेरे मित्र तथा बंधु जल मरे। यों वानर से उत्पन्न अपमान की वार्त्ता सर्वत्र फैल गई है। मेरा शरीर केवल इस आसन पर पड़ा रहा।

कुओं में जल के बदले रक्त उमड़ रहा है। हमारी लंका नगरी में पहले (वानर के द्वारा) जो अग्नि सुलगाई गई थी, वह अबतक शांत नहीं हुई है। अगरु-धूम से सुरभित

होनेवाले स्त्रियों के केशों से आग जलने की दुर्गंध अवतक सर्वत्र फैल रही है। अवतक हम सब वीर सुख भोगते थे, किन्तु अब—

कुछ बड़ा कार्य नहीं कर सके। (जन्म का कुछ लाभ न पाने के कारण) जन्म लेकर भी हमारी दशा जन्म न लेने के समान ही है। 'हम पर आक्रमण करनेवाला वानर मरा'—ऐसी वार्त्ता हमने नहीं सुनी। हम अपयश में डूब गये हैं। अब हमें क्या करना चाहिए ?

रावण के यों कहते ही वीर-कंकणधारी सेनापति मन में व्यथित हो उठा और प्रणाम कर कहने लगा—हे राजन्! आपसे एक निवेदन करना है। मेरी बात पूरी सुनने की कृपा करें। फिर, विचारपूर्ण चित्त से उसने कहा—

(सब विषयों को) समझने की शक्ति रखनेवाले, हे राजन्! मैंने पहले ही निवेदन किया था कि मनुष्यों को वंचित करके, उज्ज्वल ललाट तथा रूई जैसे चरणों से युक्त कलापी-तुल्य रमणी (अर्थात् सीता) का हरण करना कायरतापूर्ण कार्य है। आपने मेरा वह वचन ग्राह्य नहीं समझा।

कदाचित् आप इससे व्याकुल हैं कि जिन (राम-लक्ष्मण) ने खर आदि को मारा, खुले केशों के साथ रोती हुई आपकी बहन की नाक काट डाली तथा हमारे लिए अपयश उत्पन्न करनेवाला कार्य किया, उसको अभी तक मारा नहीं गया, जिससे आपका राज्य कलंकित हो गया है।

संसार के रक्षक राजा भी क्या दंडनीय अपराध करनेवाले को देखकर सहन कर चुप रह सकते हैं ? हे भ्रमरों से युक्त पुष्पमाला धारण करनेवाले! शत्रुओं को परास्त करनेवाला पराक्रम क्या उनको नमस्कार करके जीने में ही है ?

आप त्रिभुवन में प्रथम वीर माने जाते हैं, तो क्या वह एक साथ विरोध में उठने-वाले देवों तथा दानवों को परास्त कर उनके पराक्रम और शक्ति को मिटा देने के कारण है या उन्हें क्षमा कर देने के कारण है ? यह बताइए।

हे कुल को प्रकाशित करनेवाले राजन्! हमें चाहिए कि शत्रुओं के प्राण मिटा-कर विजयी होकर आयें। किन्तु, वैसा न करके यदि हम सुख भोगते रहेंगे, तो एक वानर ही क्या, एक मशक भी हम को परास्त कर देगा।

लंका को जलाकर चले जानेवाले वानर का पीछा करके उसे यहाँ भेजनेवालों के प्राण पीकर हमें आनन्द मनाना चाहिए, ऐसा न करके मुँह से निंदापूर्ण वचन कहते हुए दुःखी चित्त के साथ जीवित रहने से हमारी बलहीनता ही प्रकट होगी। इस प्रकार, सेना-पति ने कहा।

सेनापति के यह कहने के पश्चात् पर्वत-समान कंधोंवाले महोदर नामक राक्षस ने जलती आँखों से घूरकर देखते हुए कहा—हे राजन्! हमारा कर्त्तव्य वही है। मेरा निवेदन है कि—

आपसे देव दब गये। यक्ष भाग गये। बलवान् असुर भी गर्वहीन हो गये। सबसे नमस्कार पानेवाले त्रिमूर्त्ति भी कहीं दुबक गये।

कितने भी ऊँचे जीव क्यों न हों, उनका हरण करनेवाला यम भी आपको, अपना प्राणहारी मानता है और आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके स्वीकार करता है। आपकी महिमा को प्रमाणित करने के लिए और क्या चाहिए ?

आपने रजत-पर्वत (हिमाचल) को, उसपर स्थित ऋषभवाहन (रुद्र) के साथ गगन तक उठा लिया था और महान् ध्वनि में सामगान किया था। ऐसे पराक्रम से युक्त, हे राजन्! पेड़ की शाखाओं में वास करनेवाले मर्कट के पराक्रम की तुलना में भी क्या आपका पराक्रम छोटा है ?

पृथ्वी, स्वर्ग एवं अन्य सब लोकों में कौन ऐसा है, जो बड़े पराक्रम से युक्त होकर तुम्हारी दृष्टि में नहीं आया हो। हे नायक! विचार कर देखें, तो बड़े पराक्रमी लोगों के विषय में जैसी मंत्रणा (आवश्यक) होती है, वैसी मंत्रणा इन क्षुद्र मनुष्यों के विषय में करना भी व्यर्थ है।

अब हम अपनी विपदा की बात ही क्यों करें ? आप अभी मुझे भेज दें। मैं सारे वानर-कुल का समूल नाश करके अविजेय समझे जानेवाले उन मनुष्यों (राम-लक्ष्मण) को विजित करके आप के लिए उनसे बदला लेकर लौट आऊँगा।

यों महोदर नामक सेनापति ने कहा। तब 'वज्रदंत' नामक सेनापति उदीयमान सूर्य के समान, रक्तवर्ण नयनों से युक्त होकर कह उठा—ये मनुष्य अधिक सन्नाह[1] के भी योग्य नहीं हैं।

'अभी जाकर पृथ्वी के मनुष्यों और वानरों को अपने हाथों से पीसकर खा डालो।' हमें ऐसी आज्ञा न देकर आप व्यर्थ मंत्रणा क्यों कर रहे हैं ? क्या हमारे पराक्रम के संबंध में (आपको) शंका है ?

चाहे किसी भी लोक में क्यों न हो, आपकी आज्ञा न माननेवाले शत्रुओं को मैंने मिटाया है। फिर भी, क्या मुझसे आज्ञा का उल्लंघन हो जाने की आशंका से आप यह कार्य मुझे नहीं सौंप रहे हैं ?

तब 'दुर्मुख' नामक सेनापति उस (वज्रदंत) से 'बस! बस!' कहकर फिर रावण की ओर देखकर बोला—इस समय आप एक सामान्य व्यक्ति के समान क्यों बात कर रहे हैं? फिर प्रणाम करके ये वीरतापूर्ण वचन कहे—

आपके पराक्रम के सम्मुख आठों दिग्गज भी बलहीन हो गये थे। देवता निर्बल हुए थे। त्रिनेत्र शिव का कैलास बलहीन हुआ था। अब ये मनुष्य और वानर ही यदि आपके सम्मुख पराक्रमशाली लगते हों, तो सचमुच रावण का पराक्रम भी आश्चर्य-जनक है ?

तटस्थता के साथ विचार करने पर विदित होता है कि मंत्रणा का कार्य बलहीन व्यक्ति ही करते हैं। यदि हम अपने शत्रुओं को बलवान् समझने लगें, तो हे शब्दायमान वीर-कंकणधारिन्! क्या हम अपने प्राणों के प्रेम से दबकर जी सकेंगे।

हे राजन्! पृथ्वी के मनुष्य, वानर तथा अन्य प्राणी हमारा भोजन बनने को

१. सन्नाह—हथियारों से लैश होकर युद्ध के लिए तैयार होना।

उत्पन्न हुए हैं। यदि हम, अपने भोजन बननेवाले उन प्राणियों से डरें, तो भला, बलवान कहलानेवाले हमसे बढ़कर मानसिक दृढता रखनेवाले और कौन हो सकते हैं? अब क्या ऐसी मंत्रणा भी करने योग्य ही है।

एक वानर था, जो यहाँ आया, लंका-भर में आग लगाई और अपना सामना करनेवाले सब को मारकर लौट गया। क्या हम राक्षसों को अपना निवास छोड़कर बाहर निकलना भी कठिन है?

अबतक कौन ऐसे हुए हैं, जो हमारे नगर में आकर इसकी व्यवस्था को, इसके बल को, हमारी भयंकर सेना की विशालता को तथा हमारे पराक्रम को पहचान कर अपने प्राणों के साथ निकल गये हों।

अब हम अपने लिए योग्य कार्य का विचार करें, या अपने मुख्य जीवन-लक्ष्य का विचार करें, या विजय उत्पन्न करनेवाले कार्य को सोचें, या किसी भी प्रकार के कार्य की सफलता का विचार करें, सब प्रकार से यही हमारा कर्त्तव्य है कि राम-लक्ष्मण के निवास पर जाकर उन्हें मार डालें।

फिर 'महापार्श्व' नामक सेनापति दुर्मुख को अपने हाथों के संकेत से चुप करके बोल उठा—अब हमारा क्या पराक्रम रह गया है? क्रोध और पराक्रम तो अब वानरों में ही रहते हैं!

इसके पूर्व (वानर के साथ हुए युद्ध में) कुछ राक्षस मारे गये—इस कारण से ही क्या राक्षसों की सब शक्ति भग्न हो गई? या वानर के द्वारा लंका जब जलाई गई, तब क्या लंका के साथ राक्षसों का प्रताप भी जल गया?

आज्ञा देकर (वानर को) यहाँ भेजनेवाले थे दो नर। यहाँ आकर आग उगलनेवाला था एक वानर और अब उस कार्य से चिन्तित होनेवाले हैं त्रिलोकी-वीर राक्षस-सेनापति। तो अब और क्या-क्या होगा—इसका अनुमान कौन कर सकता है?

क्या हमें चुपचाप बैठकर ऐसी बातें करनी चाहिए? हमारा कर्त्तव्य यही है कि नरों और वानरों को पकड़-पकड़कर खा जायें और उन्हें समूल विनष्ट कर दें।—यों पराक्रमी तथा नेत्रों से क्रोधाग्नि उगलनेवाले महापार्श्व ने कहा।

फिर, वीर-कंकणधारी, अग्नि के-से रूपवाले 'पिशाच' नामक राक्षस ने कहा—हमारे नायक ने भयभीत होकर करणीय कार्य के बारे में प्रश्न किया। (जब हमारा नायक ही भयभीत हुआ है, तब हमारे यहाँ रहने से कुछ न होगा) हम दिशा-दिशा में जाकर अपने जीवन को समाप्त कर लें।—यों विरक्ति के साथ उसने कहा।

तब 'सूर्यशत्रु' नामक एक राक्षस ने कहा—हमसे भी बड़े रावण की यह दशा हो गई है और हम नर तथा वानर को परास्त करने के लिए इस प्रकार मंत्रणा कर रहे हैं। विचार करने पर लगता है कि नर ही श्रेष्ठ हैं। हम उनसे गये-बीते हैं।

तब 'यज्ञहा' नामक राक्षस ने कहा—यदि हमारी इस मंत्रणा का विषय मनुष्यों के साथ का युद्ध है, तो राक्षसों के पराक्रम को घटानेवाला इससे बढ़कर और कौन कार्य हो सकता है? यों कहकर वह अपनी दुर्दशा पर लज्जित हुआ।

तब 'धूम्राक्ष' ने कहा—जब अग्नि-ज्वाला के समान रुद्र के साथ युद्ध करने जाना भी हमारे लिए परिहास-योग्य कार्य है तब अब वानरों के झुंड के साथ खड़े रहनेवाले मनुष्यों पर आक्रमण करने जाना कम उपहास-योग्य कार्य नहीं है। यह कहना आवश्यक नहीं है। यदि वही हम पर आक्रमण करें, तो उनसे लड़ना हमारे लिए उचित होगा।

उसके पश्चात् अन्य राक्षसों ने भी, बाँबी के साँप के समान पीडित होनेवाले हृदय के साथ कहा—बस यही कार्य है और कुछ विचार करना आवश्यक नहीं।

तब 'कुंभकर्ण' नामक राक्षस ने अन्य राक्षसों को यह कहकर रोका कि जो करतब नहीं दिखा सकते हैं, उन्हें मौन रहना चाहिए। फिर रावण के निकट जाकर बोला—यदि तुम मुझे अपना भाई समझकर मेरी बात मानोगे तो मैं कुछ कहूँगा।

ब्रह्मा जिस वंश का आदिपुरुष है, ऐसे इस वंश में तुम एक अनुपम वीर उत्पन्न हुए हो। सहस्र शाखाओंवाले सामवेद का अर्थ जानकर उत्तम ज्ञान से संपन्न हो। फिर भी तुम, जैसे अग्नि को देखकर उसके रंग से मुग्ध होकर उसे पकड़ने लगे। नियति-वश होनेवाले कार्य क्या ऐसे ही होते हैं?

चित्र के समान अति सुन्दर लंका जब जल गई, तब अपने राज्य के विनाश पर तुम बहुत दुःखी हुए। किन्तु, हमारे कुल से भिन्न सूर्यकुल में उत्पन्न एक व्यक्ति की पत्नी को चाहकर उसे बंदी बनाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? ऐसे कार्य से बढ़कर और गर्हणीय पाप और क्या हो सकता है?

तुम लज्जित हो कि तुम्हारा यह सुन्दर नगर जल गया। किन्तु, जब तुम्हारी देवियाँ तुम पर प्राण-समान प्रेम से अनुरक्त हैं, तब परनारी के सुन्दर चरणों पर बार-बार झुकना और उसके निषेध-वचन सुनना—क्या ये सब तुमको यश देनेवाले हैं?

जिस दिन तुम ने वेदमार्ग के विरुद्ध अन्य पुरुष की पतिव्रता पत्नी को करुणा-हीन होकर कठोर कारावास में रखा, उसी दिन राक्षसों का सारा यश मिट गया। हे प्रभु! क्या यह कहना बुद्धिमत्ता होगी कि नीच कृत्य करनेवाले यश पायेंगे?

(हम) दोषहीन परनारी को कारागार में रखते हैं। दोषहीन यश भी पाना चाहते हैं। अपने मान (प्रतिष्ठा) की बात करते हैं। किन्तु, काम का पोषण करते हैं। मनुष्यों से संकोच करके हम पीछे हटते हैं। अहो! हमारी विजय भी बहुत अच्छी है।

तुमने बड़े लोगों के जैसा कार्य नहीं किया है। कुल की अप्रतिष्ठा के कारणभूत कार्य ही किया है। हे राजन्! यदि इस समय मधुस्रावी पुष्पों से भूषित सीता को मुक्त कर देंगे, तो उससे हम उपहास के पात्र होंगे। इसलिए, यदि सीता के कारण मनुष्यों से युद्ध करके हम उनसे निहत भी हो जायें, तो वह भी हमारे लिए अच्छा ही होगा।

उस नर ने (अर्थात्, राम ने) वृक्षों से भरे घने वन में अकेले ही अपने धनुष से खर की सब सेना को भस्म कर दिया और उस खर को भी मार डाला। उस (राम) का वह कार्य अभी समाप्त नहीं हुआ है। अब हमारा कर्त्तव्य अपना प्रताप दिखाना ही है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अन्त में मनुष्य ही विजयी हों, तो भी उनके स्थान में ही जाकर उनका सामना

करके उनको दारुण कष्ट दिये विना यदि हम ऐसे ही बैठे रहेंगे, तो देवता भी उन मनुष्यों से मिल जायेंगे। सप्तलोक भी उन (मनुष्यों) से मिल जायेंगे।

उत्तरोत्तर बढ़कर आनेवाली उस (मनुष्यों और वानरों की) सेना के यहाँ पहुँचने के पूर्व ही हम एक दिन में ही वीची-भरे समुद्र को पार कर जायें और नरों और वानरों का समूल नाश कर दें। अब हमारा यही कार्य है।—इस प्रकार कुंभकर्ण ने कहा।

तब रावण ने कहा—हे तात! तुमने ठीक कहा। मेरा भी यही विचार है। अब और कुछ सोचना व्यर्थ है। हम सब शत्रुओं को मारकर लौटेंगे। अतः विजयध्वजा से युक्त अपनी सारी सेना को लेकर जाना ही उचित है।

रावण के यह कहने पर उसके पुत्र इन्द्रजित् ने कहा—हे राजन्! (जब हम जैसे लोग हैं तब) क्या आप अपनी सारी सेना लेकर क्षुद्र मनुष्यों के साथ युद्ध करने जायेंगे और उनपर विजय पाकर लौटेंगे? हमारी वीरता भी बहुत सुन्दर है!—यह कहकर वह (इन्द्रजित्) हँस पड़ा। फिर बोला—

शिव तथा कमलासन (ब्रह्मा) के द्वारा दिये गये विचित्र प्रभाववाले पाश आदि शस्त्रों से युक्त अनेक राक्षस हैं। मैं भी तो धिक्कार के योग्य एक (तुच्छ) व्यक्ति हूँ।

त्रिलोक के निवासी भी त्रिदेवों के साथ एकत्र होकर हमारे विरुद्ध आयें, तो भी मैं विजय तुम्हारी बना दूँगा। यदि ऐसा न हो, तो आप मेरे जनक नहीं हैं और मैं आपका पुत्र नहीं।

हे क्रोधी प्रभु! वानर मिटेंगे। भूमि कबंधों के नृत्य का रंग-स्थल बनेगी। नर विपन्न होंगे। सीता लोगों की दया के योग्य कष्ट भोगेगी। मैं अपने विरोधी उन दो नरों (राम-लक्ष्मण) के सिरों को पर्वत के शिखरों की तरह ले आऊँगा। आप देखेंगे।

पर्वतों को भेदनेवाले, वज्र से भी अधिक भीषण, मेरे धनुष से प्रकट होनेवाले शरों से डरकर, सिकुड़े हुए मुँहवाले मर्कट दाँत दिखाते हुए, एक शब्द भी कहने के लिए रुके विना अति शीघ्र भागने लगेंगे। आप उस दृश्य को देखकर विजय का आनन्द प्राप्त करेंगे।

(उनके पास) हाथी नहीं, घोड़े नहीं, पदाति-सेना नहीं; पूर्वजन्मकृत पुण्य भी कुछ नहीं है। क्या ऐसे हमारे शत्रु (राम-लक्ष्मण) झुकी पीठवाले क्षुद्र वानरों को लेकर ही हमें जीतनेवाले हैं? अहो! ऐसे मनुष्यों से व्याकुल होनेवाले हम राक्षसों की वीरता भी धन्य है!

जल, पृथ्वी, वायु, उन्नत आकाश तथा इस विशाल संसार में स्थित सब पदार्थों को एक दिन में अस्त-व्यस्त करके नर और वानर—इन जातियों का समूल विनाश करके विजयी हुए विना मैं कदापि नहीं लौटूँगा।

यों कहकर रावण के चरणों को नमस्कार करके इन्द्रजित् बोला—हे प्रतापी! मुझे आज्ञा दें। तब पापों का नाशकर तत्त्व-ज्ञान पाये हुए लोगों के समान सद्ज्ञान पाया हुआ विभीषण क्रुद्ध होकर अपने उज्ज्वल दाँतों से ओठ चबाता हुआ बोल उठा—

हे समय के अनुकूल वचन कहने का विचार रखनेवालो ! तुमलोग शास्त्रों के सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्त किये हुए बड़े ज्ञानी के जैसे बातें करते हो; किन्तु तुमलोग समय को और भावी परिणाम को समझने की बुद्धि से हीन बालक हो। ऐसे वचन कहना क्या तुम्हारे लिए उचित है ?

बालपन के कारण कर्त्तव्य को न जाननेवालो ! तुम्हारे वचन ऐसे हैं, जैसे कोई अंधा और कल्पना से हीन व्यक्ति चित्र खींचता हो। उत्तम गुणवाले तथा कर्त्तव्य के ज्ञान से संपन्न वृद्ध लोगों की मंत्रणा-सभा में क्या तुम रहने योग्य हो ?

सदा पवित्र आचरण करनेवाले नीति से पूर्ण पुराने देवों की बात छोड़ दो। उनसे भिन्न राक्षस भी तो सदाचरण करने पर देवों के समान उन्नत दशा को प्राप्त करते हैं। यह उन्नति क्या झूठी है या बलात्कार से प्राप्त हुई है ?

धर्म को छोड़कर तुम देवों को जीतने का पराक्रम दिखाते हो। विचार करने पर ज्ञात होगा कि तुम्हारा यह पराक्रम भी यथाविधि किये गये तप के कारण प्रसन्न हुए देवों के द्वारा प्रदत्त वरों का ही प्रभाव है ?

पाप-स्वभाववाले राक्षस धर्म को अपनाकर त्रिमूर्त्तियों को भी दबाते हैं। धर्म को अपनाने से गर्व बढ़ जाने पर पुनः पाप-कर्म करते हुए विनष्ट होते हैं। इस प्रकार स्वयं विनष्ट होने के अतिरिक्त देवताओं को कौन मिटा सका है ?

प्राचीन काल में तथा उसके पश्चात् भी जो मुनि तथा देवता तपस्या और त्याग से मोक्ष प्राप्त कर गये हैं, उनकी गणना नहीं है। उनमें कौन ऐसा था, जो पाप करनेवाला रहा हो ? (अर्थात्, मोक्ष पानेवालों में पाप करनेवाला कोई नहीं था)

तुम अज्ञ बालक हो, इसीलिए ऐसी बातें कही हैं।—इस प्रकार, इन्द्रजित् का धिक्कार करके विभीषण ने रावण से कहा—यदि मेरी बात का तिरस्कार नहीं करोगे, तो मैं अपने विचार तुमको बताऊँगा।

तुम मेरे पिता के समान हो। मेरी माता हो। मेरे ज्येष्ठ भाई हो। तपस्या से साक्षात् करने योग्य वंदनीय देवता भी तुम हो, मेरे लिए संसार का सर्वोत्कृष्ट अर्थ तुम्हीं हो। मुझे यह दुःख हो रहा है कि तुम इन्द्रभोग को खो रहे हो। अतएव, मैं ये बातें कह रहा हूँ।

हे बलशाली ! अधिक विद्या का ज्ञान मुझमें नहीं हो सकता है। वर्त्तमान घटना का संपूर्ण रूप से विवेचन कर समझने की शक्ति मुझमें नहीं हो सकती है। मैं दूसरों की मंत्रणा के तत्त्व को समझने में अशक्त हो सकता हूँ, फिर भी पहले मेरी बात को पूर्णतया सुनो और चाहो, तो उसके पश्चात् क्रोध करो।

जानकी नामक लोकमाता के पातिव्रत्य से ही सारी लंका और तुम्हारी विजय जल उठी। यह समझना ठीक नहीं कि एक वानर ने (लंका को) जलाया।

ध्यान से कोई विचार करे, तो उसे स्पष्ट हो जायगा कि यदि किसी का आकाश तक उन्नत अधिकार-पद भी मिटता है, तो वह परनारी के मोह के कारण ही, या तो

अधिक राज्य की लालसा से होता है। इनके अतिरिक्त इस तरह की हानि के कारण और कुछ नहीं हैं।

मधुपूर्ण पुष्पों की विजयमाला धारण करनेवाले! लोक में जो कथन प्रचलित है कि 'मकरों से भरे समुद्र से घिरी हुई लंका के राजा (रावण) का तपःफल से प्राप्त पराक्रम एक मानव की स्त्री के कारण मिटनेवाला है,' क्या वह अब प्रमाणित होनेवाला है?

जब तुमने बड़ी तपस्या की थी, तब इन मनुष्यों को, जो अब बलवान् मालूम होते हैं, जीतने का वर सर्वज्ञ भगवान् से नहीं माँगा। अतः, अब उन (मनुष्यों) पर अपजय के विपरीत तुम्हारी विजय ही होगी, यह निश्चित रूप से कैसे कहा जा सकता है?

इस सम्बन्ध में और अधिक क्या कहना है? मनुष्यों के कारण तुम्हारी हानि हो सकती है। तुमने अकेले सप्त लोकों को विजित किया था। फिर भी, पूर्वकाल में तुम सहस्र करोंवाले कार्त्तवीर्य अर्जुन से पराजित हुए थे। अब अधिक क्या कहा जाय?

हे अपार शक्ति-संपन्न! जब तुमने गगनोन्नत कैलास को उखाड़कर उठा लिया था, तब चतुर्भुज नन्दि ने तुमको शाप दिया था कि पूँछवाले वानरों से तुम्हें पराभव होगा। वह बात वालि के प्रसंग में कैसे प्रमाणित हुई—यह हमने देखा है। (अर्थात्, वालि से तुम्हारा अपमान हुआ)।

वेदवती नामक शीलवती ने अग्नि में अपने प्राण त्यागते समय जो वचन कहा था, उसको विफल करनेवाला कौन है? उसने कहा था कि मैं तुम्हारे विनाश का कारण बनूँगी। क्षीरसागर में उत्पन्न लक्ष्मी के अंशभूत यह सीता वह वेदवती ही है।[1]

दशरथ नामक यशस्वी वीर ने सारे संसार में अपना आज्ञाचक्र चलाया था। गगनतल में शंबर नामक असुर के साथ युद्ध करके उसे मार डाला था और देवेन्द्र को स्वर्ग का राज्य देकर देवों की सहायता की थी।

जिस ककुत्स्थ महाराज ने, वृषभ रूप धारण किये हुए इन्द्र के ककुद् पर आसीन होकर राक्षसों के साथ युद्ध करके उनका विनाश किया था, जिस पृथु चक्रवर्ती ने धरती को यह आज्ञा दी थी कि लोगों को तुम सब संपत्तियाँ प्रदान करो, जिन सगर-पुत्रों ने समुद्र

---

१. उत्तरकांड में यह कथा वर्णित है कि पूर्वकाल में कुशध्वज नामक मुनिवर जब वेदपाठ कर रहे थे, तब उन वेदमंत्रों से एक कन्या प्रकट हुई। उसका नाम उन मुनि ने वेदवती रखा। देवताओं ने वेदवती से विवाह करना चाहा, किन्तु कुशध्वज ने उन्हें यह कहते हुए वापस कर दिया कि वेदवती भगवान् विष्णु के अतिरिक्त और किसी का स्मरण तक नहीं करेगी। एक दिन शंभ नामक असुर ने कुशध्वज को मार डाला। तब कुशध्वज की पत्नी सती हो गई। उसके बाद वेदवती यवन-वन में तपस्या करने लगी। रावण कैलास-पर्वत को उठाते समय उसके नीचे दब गया, किन्तु शिवजी की कृपा हुई और वह मुक्त होकर लंका को लौट चला। राह में वेदवती को देखकर वह उसपर आसक्त हो गया और उसे बलात् पकड़कर उठाने लगा। तब वेदवती ने शाप दिया कि ब्रह्मदेव से प्राप्त वर के गर्व से तुमने मुझे अनुचित वचन कहकर छुआ है, अतः तुम्हारी लंका का एवं तुम्हारा विनाश मेरे कारण से ही होगा। यह शाप देकर वह (वेदवती) अग्नि में प्रवेश करके जल मरी। वही पुनः सीता के रूप में अवतीर्ण हुई।—अनु०

उत्पन्न किया था, जिस भगीरथ ने गंगा नदी को धरती पर बहाया था, उन्हीं के वंश में दशरथ उत्पन्न हुआ था।

संसार के झूठे राजाओं को युद्ध में मिटाकर, जिसने अपने भाले पर घी का लेप करके कोश में बंद कर रख दिया था (अर्थात्, उस भाले का उपयोग करने का अवसर ही फिर नहीं आया) और जो अनुपम नीतिमार्ग पर स्थिर रहकर शासन करनेवाला था, उस दशरथ ने, काजल की रेखा से युक्त चंचल नयनोंवाली कैकेयी को दो वर दिये और अपना वचन सत्य करते हुए (उन वरों को देने के कारण) प्राण-त्याग कर देवों के लिए भी दुष्प्राप्य मोक्षलोक प्राप्त किया।

हे हमारे महिमामय नायक ! उस दशरथ के पुत्र ही हैं ये, जो तुम्हारे शत्रु हैं। यदि उनके बारे में जानना चाहो तो (सुनो—) उनके उपमान और कोई नहीं हैं। उनके तत्त्व को ऋषि, देवता तथा अन्य ज्ञानी भी नहीं पहचानते (अर्थात्, वे परमात्मा के अंशभूत हैं। वैसे वे दोनों, संसार के कर्मफल के कारण ही मनुष्य-रूप में उत्पन्न हुए हैं।

हे प्रभु ! जो कौशिक पहले एक बार कमलभव ब्रह्मा की सृष्टि की जैसी प्रति-सृष्टि करने लग गया था, उसने शिवजी से प्राप्त किये हुए, क्षणकाल में ही समस्त लोकों के सब प्राणियों को मिटा सकनेवाले अस्त्रों को उन दोनों (राम-लक्ष्मण) को दिया है।

वामनरूप मुनि (अगस्त्य) ने उन दोनों (राम-लक्ष्मण) को वह धनुष दिया है, जिसे पूर्वकाल में अति बलशाली राक्षसों के साथ युद्ध करते समय में गरुड पर आरूढ विष्णु ने धारण किया था। साथ ही वह बाण भी दिया है, जिसे शिव ने त्रिपुरों के असुरों पर प्रयुक्त किया था।

राम के बाण-रूपी सर्प अपनी जीभ से सब लोकों को चाटनेवाले हैं। सब दिशाओं को नापनेवाले हैं। नित्य विष उगलनेवाले हैं। उज्ज्वल कांति उगलनेवाले दाँतों से युक्त हैं। उन वीरों के तूणीर-रूपी बाँबी में निवास करनेवाले हैं। सत्य ज्ञानवाले सज्जनों का अपकार करनेवाले पापियों के प्राण ही उनके भोजन हैं।

वे धनुष ऐसे हैं कि राम-लक्ष्मण के अतिरिक्त कोई भी नहीं डिगा सकता। हमारे धनुषों के जैसे वे कभी लज्जित और बल-रहित नहीं होते। हमारे धनुष यद्यपि बड़े हैं, तथापि उनके उन धनुषों को तोड़ने की शक्ति इनमें नहीं है। वे धनुष क्या कल्पवृक्ष, बाँस या भूमि को धारण करनेवाला मेरु है ? नहीं। वे तो सब पर्वतों को पिंडीभूत करके बनाये गये हैं।

राम के बाण से, क्षीरसमुद्र को मथनेवाले वालि का वक्ष प्राणहीन हुआ। भूमि को ढकनेवाले सप्त सालवृक्ष ढह गये। खर, विराध आदि के पर्वताकार सिर कटकर गिर गये। यदि अब आगे भी युद्ध होगा, तो उसमें उनके शत्रुओं के मिटाने के अतिरिक्त और क्या परिणाम निकलेगा ?

प्रशंसा के योग्य उत्तम वरों को प्राप्त किये हुए सब मुनि यह जानकर कि प्रताप की सीमा बनी हुई भुजाओं से युक्त राम-लक्ष्मण ही समस्त संसार को जीतनेवाले हैं तथा राक्षसों का समूल नाश करनेवाले हैं, उनके आश्रय में आ पहुँचे हैं।

यहाँ के राक्षस (जानकी को बंदी बनाकर यहाँ रखने से) मन में चिंतित हैं। किन्तु तुमसे, कुछ कहने से डरते हुए दिन-रात मन-ही-मन दुःख भोगते हैं। देवता यह विचार कर कि जानकी-रूपी घोर विष का आहार करनेवाले ये राक्षस मिट जायेंगे, हमसे अब नहीं डर रहे हैं।

पहले हमसे भयभीत होकर, अन्य शरण के अभाव में दीन और हास-रहित होकर जीवन-मात्र धारण किये रहने के कारण देवताओं के मुख दिन में क्षीणप्रकाश चन्द्र के समान दीखते थे। अब (देवों के वे मुख) राका-निशा के पूर्णचन्द्र के उपमान बने हुए हैं।

समुद्र से आवृत इस लोक से परे जाकर, कहीं अन्यत्र अपना मुँह छिपाये रहनेवाले यम आदि देव, मुनि, यक्ष, किन्नर आदि यह सुनकर कि चन्द्र के समान मुखवाली जानकी हमारे निवास-स्थान में बंदी बनी है, भय से मुक्त होकर, बार-बार लंका की दीन दशा को देखकर दुःखी हो रहे हैं।

कैसे-कैसे बुरे शकुन सर्वत्र दिखाई पड़ रहे हैं, यह कहना कठिन है। हमारे शत्रु देवों तथा असुरों के द्वारा युद्ध में छोड़े गये अश्व तथा गज आजकल अपनी दाहिनी टाँग को पहले रखकर हमारे घरों में प्रवेश करते हैं।

राक्षसों के मुँह में तथा दाँतों में पानी सूख जाता है। भूतों से भी अधिक भयंकर शृगाल हमारे नगर में सर्वत्र विचरण कर रहे हैं। प्रासादों में रहनेवाली हमारी स्त्रियों के केशपाश तथा हमारी शिखाएँ अकस्मात् ही जल उठती हैं। इनसे भी बढ़कर बुरे शकुन और क्या हो सकते हैं?

देवों के बल को मिटानेवाले खर, त्रिशिर, हरिण-रूपधारी मारीच तथा वालि भी राम से निहत हुए। हे प्रभु! क्या हरिण को कर में धारण करनेवाला शिव, चक्रधारी विष्णु तथा अन्य कोई भी देव ऐसे वीरों की समता कर सकता है?

मेरे प्रभु! मैं और एक बात कहता हूँ। कान देकर सुनो। इन दोनों मनुष्यों के साथी बने हुए हैं हमारे चिरशत्रु देव, जो अभी वानर-रूप धारण किये हुए हैं। अतः अब इनसे विरोध करना हमारे लिए उचित नहीं है। यह विचार भी उचित नहीं कि हमें अपने कार्य (जानकीहरण आदि) पर दृढ रहना है।

तुम्हारी कीर्त्ति, संपत्ति, उत्तम कुल का चारित्र्य—ये सब मिट न जायँ, तुम्हें अपयश, पतन आदि प्राप्त न हों, तुम अपने बंधु-सहित नहीं मिट जाओ, इसलिए दृढ पातिव्रत्य से युक्त सीता को मुक्त कर दो। इससे बढ़कर हमें विजय प्रदान करनेवाला कार्य और कोई नहीं।—इस प्रकार विभीषण ने कहा।

विभीषण के ये वचन सुनकर पौरुषशाली रावण ने हाथ-पर-हाथ मारा।[1] उसके दसों मुखों से अर्धचन्द्र के जैसे दाँतों की कांति बिखर पड़ी। उसकी आँखों से अग्नि निकल पड़ी। वह यों हँस पड़ा कि उसका वक्ष, वक्ष पर का मुक्ताहार तथा उसकी भुजाएँ हिल उठीं। फिर, यों कहने लगा—

---

१. हाथ-पर-हाथ मारना—ललकारना या गर्व करना।

तुमने हमारे लिए प्रिय और हितकारी वचन कहना आरंभ किया। पर, उन्मत्त-से वचन कहे। तुमने कहा कि मेरे महान् बल को क्षुद्र नर परास्त करेंगे। हे तात! तुम्हारा यह कथन भय के कारण है, या उन (शत्रु) के प्रति प्रेम के कारण ?

तुमने मेरा उपालंभ किया कि मनुष्य-रूपी पशुओं पर विजय पाने का वर मैंने नहीं माँगा। क्या मैंने अष्ट दिशाओं के दिग्गजों को परास्त करने का वर माँगा था ? या अग्निनेत्र शिव के हिमाचल को उठाने का वर माँगा था ?

मन में विचार किये बिना तुमने निरर्थक वचन कहे। देवों की क्रुद्ध सेनाएँ युद्धरंग में मेरा क्या बिगाड़ सकीं ? मेरी बात रहने दो। मेरे सहोदर भ्राता होकर उत्पन्न तुमको मनुष्य कैसे अधिक बलवान् लगते हैं ?

तुम नहीं जानते हो कि कैसे वचन कहना चाहिए। देव अनेक बार मुझसे पराजित हुए। एक बार भी मुझपर विजय नहीं पा सके। मैं उन देवों के स्वर्ग को भी उठा सकता हूँ। क्या यह भी कोई उचित वचन है कि युद्ध में मुझे और मेरे बंधुजनों को वे हरा देंगे ?

हे अनुज! यदि तुम समझते हो कि देवों से प्राप्त वर के प्रभाव से ही मैं शक्तिशाली बना हूँ, तो यह कैसे संभव हुआ कि त्रिमूर्त्तियों में वृषभवाहन (रुद्र) को एवं चक्रधारी (विष्णु) को मैंने युद्ध में हराया ? यह किसके दिये वर का प्रभाव था ?

यदि तुम कहो कि नन्दि के दिये शाप के कारण एक वानर हमें परास्त करेगा, तो मैं कहता हूँ कि ऐसे शाप अनेक मिलते रहते हैं। इन्द्र आदि देवों, सिद्धों तथा यक्षों में हमें शाप न देनेवाले कौन हैं ? उन शापों ने हमें क्या किया है ?

मैंने यह नहीं जाना था कि कनकमय सभा में तांडव करनेवाले शिव से वालि नामक वानर ने वर प्राप्त किया था। अतः, वालि से युद्ध में मुझे पीडित होना पड़ा। इससे यह कहना कैसे उचित होगा कि अन्य सब वानर मुझे हरा देंगे ?

वालि के सम्मुख यदि नीलकंठ (शिव) और चक्रधारी विष्णु भी आकर युद्ध करते, तो उनका आधा बल उस (वालि) को प्राप्त हो जाता। यह जानकर ही उस नर ने (अर्थात्, राम ने) उस वालि के सम्मुख न जाकर, छिपे रहकर, उसपर बाण चलाकर उसे मार डाला।

जिसने एक जीर्ण धनुष को तोड़ा, टूटे हुए वृक्षों को गिराया, एक कुबरी के षड्यंत्र से राज्य खोकर वन में आ रहा, मेरे किये षड्यंत्र से अपनी पत्नी को खोया और फिर भी अपने प्यारे प्राणों को ढोता हुआ फिर रहा है, वैसे मनुष्य के पराक्रम की, तुम्हारे अतिरिक्त और कौन प्रशंसा करेगा ?

तुम इन विषयों का विवेचन करने में असमर्थ हो।—यों कहकर रावण फिर बोला—ठीक है। हम युद्ध के लिए जायेंगे। सब लोग चलो। उस समय घनी पुष्प-माला-धारी विभीषण मौन न रह सकने के कारण रावण के निकट जाकर यों कहने लगा—

वह उपमा-रहित भगवान्, जिसका आदिकारण और कोई नहीं है, देवों की प्रार्थना से हमारा विनाश करने के लिए ही मनुष्य के रूप में इस धरती पर अवतीर्ण हुआ है। क्या

उससे युद्ध करने के लिए जाना उचित होगा ?—यह कहकर विभीषण ने रावण के चरणों पर गिरकर उसे नमस्कार किया।

यह वचन सुनकर रावण ने क्रुद्ध होकर कहा—तुम कहते हो कि वह नर स्वयं विष्णु है। वह शक्तिहीन विष्णु कितनी ही बार युद्ध में हार चुका है। वह अनादि भगवान् क्या अबतक मूर्च्छित पड़ा था ?

जब मैंने इन्द्र को बंदी बनाया, जब मैंने दिग्गजों के दाँत तोड़ डाले, जब मैंने विष्णु को परास्त किया और जब मैंने देवलोक की विजय की थी, तब तुम्हारा तथा-कथित वह भगवान् क्या छोटी आयु का था ? (अर्थात्, वह क्या तब बच्चा था ?)

मैं शिव, चतुर्मुख तथा विष्णु एवं अन्य देवता, सबको दबाकर त्रिलोक का शासन करता आ रहा हूँ—यह क्या तुम्हारे तथाकथित उस भगवान् के न रहने से संभव हुआ या वह तब शक्तिहीन था ?

अति बलशाली वह भगवान्, क्या यही सोचकर कि सहस्र भुजाओं और सहस्र सिरों का विराट् रूप, सारी धरती जिसके चरणतल में समाई थी, छोटा है—हमारा भोजन बननेवाले क्षुद्र मनुष्य का रूप धारण करके आया है ?

उन्मत्त कहलानेवाले शिव और विष्णु मेरा नाम सुनकर काँप उठते थे और वृषभ एवं गरुड पर सवार होकर भागते थे, उस समय उस वृषभ और गरुड की पीठ पर मेरे जो बाण, पर्वत पर बिजली के समान, गिरे थे, वे अभी तक वैसे ही (चुभे) हैं।

भयंकर युद्ध में हमारे साथ तुम मत आओ। प्राचीरों से आवृत यह नगर अति विशाल है। तुम यही निर्भय छिपे रहो, डरो मत।—यों (विभीषण से) कहकर रावण समीप में खड़े हुए राक्षसों की ओर देखकर हाथ-पर-हाथ मारकर, बिजली के समान गरजता हुआ हँस पड़ा।

तब विभीषण ने पुनः कहा—हे तात ! तुमसे भी अधिक बलवान् लोग पूर्वकाल में हुए थे और इस विष्णु के क्रोध के कारण बंधुसहित मिट गये थे। मुझे और भी कुछ निवेदन करना है। हिरण्य (अर्थात्, हिरण्यकशिपु) नामक असुर का वृत्तांत सुनो।—यों कहकर विभीषण हिरण्य का वृत्तांत सुनाने लगा। (१–११८)

●

अध्याय ३

हिरण्य-वध पटल

वह हिरण्यकशिपु ऐसा था कि स्वयं ब्रह्मदेव ने उसे वेदों में प्रतिपादित सब विषयों का ज्ञान दिया था। उस असुर ने उस ब्रह्मा से सोचे जानेवाले सब वर प्राप्त किये थे और उसमें पाँचों भूतों की समस्त शक्ति इस प्रकार एकत्र थी कि प्रलयंकर रुद्र, विष्णु तथा ब्रह्मा भी उसका अन्त नहीं देख सकते थे।

शाश्वत सत्तावाले विष्णु, ब्रह्मा एवं घनी जटाधारी रुद्र, इनके द्वारा क्रमशः रचित सृष्ट और विनष्ट होनेवाले एक ब्रह्मांड में ही नहीं, किन्तु इस ब्रह्मांड के परे भी असंख्य अंडों में उसका नाम प्रसिद्ध था। यों वह असुर जीवन बिताता था।

वह असुर विशाल दिशाओं को सँभालनेवाले, पुष्ट एवं रंध्र से युक्त सूँड़ोंवाले बलशाली दिग्गजों को पकड़कर एक दूसरे से टकराता था। अथाह सत समुद्रों को अपने दोनों पैरों से परिमेय करता हुआ लाँघ जाता था।

मिट्टी से भरी, स्वच्छ वीचियों से पूर्ण नदियों के जल को 'अल्प', कहकर उसमें वह नहीं नहाता था। मेघों से बरसनेवाले पानी को 'पर्याप्त शीतल नहीं है', कहकर उसमें भी नहीं नहाता था और अति पुरातन, स्वच्छ तरंगों से युक्त समुद्र के जल को 'खारा है', कहकर उसमें भी नहीं नहाता था। किन्तु, उस ब्रह्मांड में छेद करके इस ब्रह्मांड के बाहर (इस ब्रह्मांड को) आवृत कर रहनेवाले महासमुद्र के जल को वहा लाकर उसमें नहाता था।

इस प्रकार, महासमुद्र के जल में स्नान करता, नागलोक में जाकर नाग-कन्याओं के साथ अमृत-समान भोजन करता, सबके द्वारा प्रशंस्यमान देवेन्द्र के यहाँ जाकर दिन का समय व्यतीत करता और रात्रिकाल में ब्रह्मलोक में जाकर ठहरता।

वह असुर चन्द्र के विमान पर चढ़ जाता और उस (चन्द्र) के उपमाहीन पद पर रहकर उसका शासन स्वयं चलाता। सूर्य के रथ पर चढ़कर सूर्य का अधिकार स्वयं अपने हाथ में ले लेता। उन्नत मेरु-पर्वत पर (ब्रह्मा के समान) बैठकर राज्य करता।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—इन भूतों के, जो अनादिकाल से सृष्टि में रहते आये हैं, देवताओं को (उनके पद से) हटा देता। स्वयं, निरन्तर बहनेवाली वायु तथा अन्य भूतों का (अधिष्ठाता) देव बन जाता। वरुणदेव का कार्य (वर्षा करना) भी स्वयं करता।

सभी लोकों में, रक्तकमल जैसे विशाल नेत्रोंवाले विष्णु भगवान् के शुभनामों के स्थान पर अपना ही नाम प्रचलित करता। मुनि यज्ञकुंडों में, धूमयुक्त अग्नि में देवों को उद्दिष्ट करके जो हवि डालते, उसे स्वयं हरण कर खा जाता।

(उसके कारण) त्रिदेव भी सृष्टि, रक्षा और संहार का कार्य ठीक-ठीक नहीं कर सकते थे। तब और कौन अपना कार्य पूरा कर सकता? योगी, अपने योग-प्रभाव से प्राप्त शक्तियों को खो बैठे थे। सबके द्वारा वंदित होनेवाले देव भी उस हिरण्य के चरणों की वंदना करने लगे थे।

सुगंधित कमलपुष्प में उत्पन्न ब्रह्मा, रुद्र आदि सब देव उस (हिरण्य के) पुरोहितों के द्वारा शिक्षित होकर हिरण्य का नाम ही जपते रहते थे। चारों वेद भी कहने लगे थे कि 'अनादि' शब्द में छिपा रहनेवाला भगवान् 'हिरण्य' ही है : 'ओं हिरण्याय नमः'।

पूर्वकाल में जिस मंदर-पर्वत को देवों और असुरों ने क्षीरसागर को मथने के लिए लिया था, उस पर्वत को हिरण्य ने अपना दंडायुध बनाना चाहा। फिर, उसको अपने पुष्ट हाथों के बल के अयोग्य तथा क्षुद्र मानकर छोड़ दिया।

मंडलाकार सूर्य जिन पर्वतों पर उदय और अस्त पाता है और जो (पर्वत) मन के

(विचार के) लिए भी अस्पृश्य हैं, ऐसे वे दोनों पर्वत हिरण्याक्ष के बड़े भाई हिरण्यकशिपु के कानों में कुंडल बन जाते थे, तो अब उस असुर के बल के बारे में और क्या कहना है ?

कभी न थकनेवाला हिरण्य जब अपने अरुण चरण पृथ्वी पर रखता था, तब तीक्ष्ण दंतों एवं सहस्र फनों से युक्त आदिशेष का शिर (जो पृथ्वी का भार वहन करता है) भार से कंपित हो जाता था। जब वह (असुर) उठकर खड़ा होता था, तब ब्रह्मांड के ऊपर के ढक्कन कैसे उसका शिर टकराता था। जब वह इधर-उधर संचरण करता था, तो पंचमहाभूत अस्तव्यस्त होकर उसके साथ खिंचे चलते थे।

उसने ऐसा वर पाया था कि किसी स्त्री से, पुरुष से, नपुंसक से, प्राणवान् पदार्थ से या निष्प्राण पदार्थ से, किसी से भी उसकी मृत्यु संभव नहीं थी। आँखों को दिखाई पड़नेवाले या मन से सोचे जानेवाले किसी भी पदार्थ से उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। वह न धरती पर मर सकता था और न आकाश में ही।

वह देव, गगन-संचारी कोई जीव या वचनों के परे स्थित त्रिदेव तथा और किसी से भी मरनेवाला नहीं था। इतना ही नहीं, कोई उसके बल को भी कुंठित नहीं कर सकता था।

वह न जल में मर सकता था, न अग्नि में, न पवन में, न पृथ्वी या इसके ऊपर के लोकों में ही मरनेवाला था। सर्वज्ञ ऋषियों तथा और किसी के भी शाप उसकी कुछ हानि नहीं कर सकते थे।

वह घर के भीतर या बाहर मरनेवाला नहीं था। कोई नाशहीन दिव्य आयुध उसे नहीं मार सकता था। वह रात्रिकाल में मरनेवाला नहीं था। न दिन में ही मरनेवाला था। यम के द्वारा भी उसके प्राण नहीं हरे जा सकते थे।

पंचभूतों के बने किसी पदार्थ से उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। चारों वेदों के मंत्रों से भी उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। यदि उसका जनक उसे मारना चाहे, तो भी उसकी मृत्यु असंभव थी। किसी भी लोक में वह शक्तिशाली था। उस (हिरण्य) की यह दशा थी।

इस प्रकार के असुर के एक अपूर्वजन्मा पुत्र था, जो (पुत्र) ज्ञानियों में बड़ा ज्ञानी था। सब पवित्र पदार्थों तथा वेदों से भी अधिक पवित्र था। भगवान् के ज्ञान से युक्त था। धर्म-शील से युक्त था। सब प्राणियों पर माता से भी अधिक प्रेम रखता था।

कल्प-परिमाण काल से भी अधिक आयुवाला, चतुर्दश भुवनों के निवासियों के द्वारा वंदित चरणोंवाला तथा अति प्रभावशाली राज्यवाला हिरण्य, अपने पुत्र को देखकर बहुत आनन्दित हुआ और प्रेम से कहा—मेरे राज्य के योग्य हे पुत्र! तुम वेदों का अध्ययन करो।

यों हिरण्य ने प्रह्लाद को एक ब्राह्मण के अधीन सौंपकर उस (ब्राह्मण) से कहा—'तुम इसको वेद पढ़ाओ'। वह ब्राह्मण एक स्थान पर रहकर प्रह्लाद को वेद पढ़ाने लगा।

शिक्षा देनेवाले ब्राह्मण ने प्रह्लाद से कहा—तुम अपने पिता का नाम लो

(अर्थात्, 'ओं हिरण्याय नमः' जपो)। तब प्रह्लाद ने अपने दोनों कानों को हाथों से बंद कर लिये और कहा—हे वृद्ध गुरो! आपके इस कथन के अनुसार करना उचित नहीं है। और, उसने फिर वेदों के शिखरभूत, उपनिषदों में प्रतिपादित भगवान् का शुभ-नाम लिया (अर्थात्, 'ओं नारायणाय नमः' कहा।)

तत्त्वज्ञानी प्रह्लाद, 'ओं नमो नारायणाय' कहकर द्रवितचित्त हो, स्वयं अंतर्लीन हो, दोनों हाथ शिर पर रखे हुए, स्थिर रह गया। तब उसकी कमल-समान आँखों से अश्रु बह चले और उसकी देह पर पुलक छा गई, जिसे देखकर वह गुरु (डर से) काँप उठा।

उस ब्राह्मण ने कहा—हे मिटनेवाले पापी! मुझे भी तुमने मिटाया। स्वयं भी मिट गये। कोई देव भी जिस शब्द को नहीं कह सकता है, वह मूलभूत शब्द तुम्हारी बुद्धि में कैसे आया? आश्चर्य है! तुमने यह क्या कर डाला?

तब प्रह्लाद ने कहा—मैंने (यह नारायण का नाम लेकर) अपना उद्धार किया, अपने पिता का उद्धार किया, तुम जैसे गुरु बननेवाले का उद्धार किया और इस संसार के प्राणियों का उद्धार किया और इस संसार के प्राणियों का उद्धार करने के लिए वेदों के प्रथम पद प्रणव से वाच्य भगवान् (नारायण) को कहा। इसमें क्या अपराध है, बताओ।

तब उस गुरु ने कहा—तुम्हारा पिता सब देवों तथा त्रिमूर्त्तियों का भी प्रभु है। उसके शुभनाम को जपनेवाला मुझसे भी क्या तुम अधिक ज्ञानी हो? हे तात! इस नाम को दुबारा कहकर मेरा विनाश न कर देना?

वेदों के ज्ञाता उस ब्राह्मण के यह कहते ही दोषहीन प्रह्लाद ने कहा—सबके आदि कारणभूत भगवान् को छोड़कर अन्य किसी का नाम कहना मैं नहीं जानता हूँ। इससे बढ़कर और कुछ भी मुझे पढ़ना नहीं है। मेरे इस ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं है। फिर आगे कहा—

पुरातन वेदों से प्रतिपादित होनेवाले, सकल अर्थों के अंतिम तत्त्व बननेवाले भगवान् (नारायण) मेरे अन्तर में आकर बस गये हैं। अब उस भगवान् के नाम के अतिरिक्त और कुछ महत्त्वपूर्ण नहीं है। यदि आप कुछ ऐसा विषय जानते हों, जो मुझे अज्ञात हो और जो नीति के विरुद्ध न हों, तो मुझे सिखाइए।

जिसको, अपूर्व वेदों को जाननेवाले ब्राह्मण 'भगवान्' कहते हैं, जिसको उपनिषदें स्पष्ट रूप में प्रतिपादित करती हैं, देव तथा मुनि जिसके नाम को जपते रहते हैं, उसे कहे विना आप और क्या उत्तम ज्ञान दे सकते हैं?

महात्माओं, वेदों, उत्तम यज्ञों, ज्ञान तथा अन्य सब उपायों के द्वारा साधना करते हुए जिस उत्तम नाम को प्राप्त किया, उसे मैंने कहा। आपने इतना अध्ययन कर जिस परमतत्त्व को पहचाना है, क्या वह कोई और है?

वनवास करते हुए, मेघों के आवासभूत पर्वत में रहते हुए, मृगचर्म धारण किये हुए, सिर मुड़ाये हुए या जटा धारण किये हुए, अनेक साधनाएँ करके मोक्ष पानेवाले के उपाय से भी बढ़कर सुलभ उपाय को, अत्युत्तम संपत्ति को, मैंने पाया है। अब इससे बढ़कर मुझे और क्या प्राप्त करना है?

अपने पाद से पृथ्वी को नापनेवाले भगवान् के दासों की सेवा करनेवाले भक्त, भले ही अपने कानों से अनेक शास्त्रों को नहीं सुनते हों ; तथापि वे देवों को हविर्भाग देनेवाले (अर्थात्, देवों को हवि देते समय, उच्चरित होनेवाले मंत्रों से पूर्ण) चारों वेदों के गूढार्थ को एवं प्रकट अर्थ को जानते हैं; वे तत्त्व को प्रत्यक्ष देखते हैं।

हे वेदज्ञ ! मेरे तथा चतुर्मुख देव (ब्रह्मा) के प्रभु, जो सर्वज्ञ होनेवाले स्वयं के लिए भी अजेय महिमा से पूर्ण है (अर्थात्, उस भगवान् की महिमा इतनी अपरंपार है कि वह सर्वज्ञ होते हुए भी स्वयं उसे नहीं जानता—ऐसा नारायण) मेरे मन में प्रविष्ट हुआ है। सब तत्त्व मुझे विदित हो गये। आपको भी इस तत्त्व को जानने के अतिरिक्त और कुछ हितकर नहीं है। यों प्रह्लाद ने कहा।

ज्योंही उस ब्राह्मण ने (प्रह्लाद के) ये वचन सुने, त्योंही कुछ उत्तर दिये बिना, अति व्याकुल होकर, यह सोचते हुए कि अब मेरे बचने का कुछ उपाय नहीं है, मेरे विनाश का समय निकट आ गया है, अत्यन्त अधीरता से वहाँ से भागकर हिरण्य के निकट जा पहुँचा और उससे इस प्रकार कुछ कहने लगा, जैसे कोई स्वप्न देखकर उसका वृत्तांत सुना रहा हो।

हे मेरे स्वामी ! सुनिए। आपका पुत्र ऐसा अनुचित वचन कह रहा है, जो इह और पर—दोनों लोकों के फलों के लिए उपयुक्त नहीं है। यह कहता है कि मेरे पिता का स्मरण करने से क्या होगा ? वह मुझसे कुछ नहीं सीखता है।

उसे सुनकर हिरण्य ने कहा—हे ब्राह्मण ! उस मेरे पुत्र ने ऐसा वचन क्यों कहा, जो हमारे योग्य नहीं है ? हमारे पूर्वजों की परम्परा में नहीं आया है और उस (प्रह्लाद) ने अपनी बुद्धि से नये रूप में कहा ?

असुरराज के यह पूछने पर उस ब्राह्मण ने भय से हाथ सिर पर जोड़कर कहा—हे बलशाली ! वह वचन कानों में सर्प के समान प्रविष्ट होनेवाला है। यदि मैं आपसे निवेदन करूँ, तो मैं नरक में जाऊँगा। मेरी जिह्वा जल जायगी।

तब अतिक्रूर असुर ने अपने दासजनों को आज्ञा दी—अतिशीघ्र प्रह्लाद को मेरे निकट ले आओ। उत्तम बुद्धि से रहित उन सेवकों ने जाकर प्रह्लाद को उसके पिता की आज्ञा सुनाई। अपना उपमान न रखनेवाला भगवान् ही जिसका साथी है, उस प्रह्लाद ने अपने पिता के निकट पहुँचकर उसको प्रणाम किया।

हिरण्य ने नमस्कार करनेवाले अपने पुत्र का यों आलिंगन किया कि उसके सुन्दर वक्ष का सुगंध-लेप प्रह्लाद के वक्ष पर लग गया। फिर, अपने पार्श्व में बिठाकर उसे भली भाँति देखकर (हिरण्य ने) पूछा—तुमने ऐसा क्या कहा, जो तुम्हारे गुरु से सुना भी नहीं जा सकता था ? वह कहो।

तब प्रह्लाद ने कहा—मैंने सबसे अनुपम प्रभु भगवान् के उस नाम को कहा, जो वेदों के आरम्भ में उच्चरित किया जाता है। यही नाम जानने, ध्यान करने तथा श्रवण करने योग्य है। जन्म के दुःख से मुक्ति इसी नाम से हो सकती है। इससे बढ़कर और कोई उत्तम नाम नहीं है।

देवोचित सत्त्वगुण से पूर्ण प्रह्लाद ने जब यों कहा, तब हिरण्य ने सोचा--निर्दोष ब्राह्मण तो योग्य वचन ही कहनेवाला है (अर्थात्, ब्राह्मण ने इस प्रह्लाद को उचित रूप में ही उपदेश दिया होगा, किंतु इसने उसे स्वीकार नहीं किया होगा। अथवा ब्राह्मण ने इस प्रह्लाद का जो दोष बताया, वह सत्य ही होगा) जो भी हो, यदि पुत्र का वचन अनुचित हो, तो उसके बारे में पश्चात् सोचेंगे, फिर उस (हिरण्य) ने (प्रह्लाद से) कहा---वह नाम क्या है? सुनाओ, सुनाओ।

भगवान् का वह नाम सब पुरुषार्थों को देनेवाला, त्रिवर्गों की (अर्थात्, धर्म, अर्थ और काम) दशा को पार करने पर शाश्वत मोक्षपद देनेवाला और रक्तवर्ण अग्नि में घी आदि की प्रभूत आहुति देकर किये जानेवाले यज्ञों के द्वारा प्राप्त होनेवाले स्वर्ग आदि भोगों को देनेवाला है। वह नाम है—'नमो नारायणाय'।

भूमि से लेकर ऊपर रहनेवाले ब्रह्मदेव के सत्यलोक तक के समस्त लोकों के निवासों में जो चर-अचर पदार्थ हैं, उनके अन्तर की प्रज्ञा का विषय है यह अष्टाक्षरी मंत्र (अर्थात्, 'ओं नमो नारायणाय') और कुछ नहीं।

त्रिनेत्र (शिवजी) और चतुर्मुख (ब्रह्मा) से साधारण मनुष्यों तक में जो व्यक्ति इस शुभ नाम को (अर्थात्, 'नमो नारायणाय' मंत्र को) भूल जाते हैं, वे मरे हुए हैं। इस मंत्र की महिमा का विस्तृत वर्णन करना असंभव है। जो पक्षपात से हीन होकर विवेचन करनेवाले ज्ञानी हैं, वे इस मंत्र की महिमा को पहचानते हैं। जो वैसे ज्ञानी नहीं हैं (अर्थात्, संकीर्ण पक्षपात से युक्त हैं), वे इसकी महिमा को नहीं पहचानते।

यह नाम, जन्म-रूपी गंभीर समुद्र के प्रारब्ध कर्म-रूपी भौंर से प्राणियों को बचाकर मोक्ष के तट पर पहुँचानेवाली उत्तम नौका है। सब प्राणियों को आभरण के जैसे शोभा प्रदान करनेवाला है। यह अत्युत्तम मंगलकारक है। बड़े तपस्वियों के द्वारा प्रशंस्यमान और वेदों के शिखर उपनिषदों का सिद्धांतभूत तत्त्व है। इस नाम से बढ़कर और कुछ नहीं है।

आपकी आत्मा का, मेरी आत्मा का तथा संसार के सब प्राणियों का महान् हित करनेवाला यह नाम ही है। ठीक विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है।—इस प्रकार ज्ञानियों में अति उत्तम उस प्रह्लाद ने कहा। तब बिजली के समान चमकनेवाले बरछे से युक्त हिरण्यकशिपु ने आँखों से अग्निकण उगलते हुए उसे घूरकर देखा।

मेरा जन्म होने के दिन से अबतक, जो कोई भी यह (नाम) कह दे, या मन से भी उसका स्मरण करे, उसको मेरी आज्ञा की प्रभावशाली ज्वाला विध्वस्त करती रही है। तुमको यह नाम किसने कहा? किससे तुमने यह नाम सीखा? शीघ्र बताओ। —यों हिरण्य ने क्रोध के साथ कहा।

सबसे उत्तम देव, त्रिमूर्त्ति तथा अन्य देवता, त्रिलोक के सब निवासी, मेरे ही चरणों का ध्यान करते रहते हैं। मेरे ही नाम का गान करते रहते हैं। अतः, उनमें से कोई भी तुमको यह नाम बताने का साहस करनेवाला नहीं है। हे पुत्र! तुमने यह नाम किससे सीखा?

तुमको किसने यह उपदेश दिया कि जो (विष्णु) मेरे साथ बड़ा युद्ध करने के लिए कई बार आया, फिर शब्दायमान विशाल पंखों से युक्त गरुड पर सवार होकर भाग गया और शब्दायमान वीचियों से पूर्ण क्षीरसागर में घुसकर अबतक सोया पड़ा है, उसका नाम निःश्रेयस् प्रदान करनेवाला है ?

समुद्र की सिकता के कणों को गिनना संभव भी हो, तो भी उस विष्णु के द्वारा हमारे कुल के जो लोग मारे गये हैं, उनको गिनना असंभव है। यदि नकुल, अपने जन्मशत्रु सर्प का नाम निरन्तर जपता रहे, तो उससे उसका क्या हित होगा ? हे दुर्बुद्धि ! तुम ही कहो।—यों हिरण्य ने क्रोध से कहा।

मेरे उस भाई (हिरण्याक्ष[1]) को, जो इतना असंदिग्ध बलशाली था कि चतुर्दश भुवनों को अपने उदर में छिपा सकता था, उसको उस विष्णु ने वराह का रूप लेकर दाँत से आहत करके मार डाला। उस विष्णु का नाम जपने के लिए ही, क्या मैंने तुम जैसे पुत्र को पाया है ?

फिर हिरण्य ने कहा—हे जीवन-रहित ! सब चर और अचर पदार्थों का एवं सब लोकों का ईश्वर मैं ही हूँ। सृष्टि, रक्षा एवं विनाश—ये सब मेरी आज्ञा से ही होते हैं। इन कार्यों को देखकर (अर्थात्, इस प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर) मुझको भगवान् मानना चाहिए। ऐसा न करके (इस सृष्टि के) अन्य किसी कारण का अनुमान करना, किस वेद का सिद्धान्त है ?

वेदों का यह कथन ठीक ही है कि उत्तम कार्य करनेवाले उन्नति पाते हैं। नीच कर्म करनेवाले पतित होते हैं। विचार करने पर यह सत्य ही सिद्ध होता है। सृष्टि में कोई भी वस्तु (प्रकृति से) बड़ी नहीं है, तो छोटी भी नहीं है।

हरि, ब्रह्मा और रुद्र—तीनों अपने पूर्व तप के प्रभाव से ही उन्नत पद पाकर रहते थे। किन्तु, जब मैंने उनसे भी अधिक तपस्या करके यथार्थ प्रभुत्व प्राप्त किया, तबसे वे अपना महत्त्व खोकर, अपना कार्य (सृष्टि, रक्षा और संहार के कार्य) छोड़कर मेरे ही शासन में आ गये हैं।

मैंने यह विचार करके कि यज्ञ, तपस्या आदि साधनाओं के द्वारा कोई भी शत्रुओं को दबाने की शक्ति प्राप्त कर सकता है, उन सब (यज्ञ आदि) कार्यों को निषिद्ध कर दिया है। शास्त्रों का अध्ययन रोक दिया है। अतः, वे त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र) स्वयं अपनी रक्षा ही नहीं कर पा रहे हैं, तो और किसी का क्या उद्धार करेंगे ?

हे अबोध बालक ! मैं तुम्हारे अपराध को क्षमा कर देता हूँ। पुनः कभी इस प्रकार के व्यर्थ वचन न कहना। तुम्हारे गुरु जो-जो कहें, उन उपदेशों को हितकारी मानकर सीख लो, जाओ।—इस प्रकार समस्त संसार में उन्नत पद पाये हुए हिरण्य ने प्रह्लाद से कहा।

---

१. हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु का छोटा भाई था। वह एक बार, सारी पृथ्वी को लपेटकर समुद्र के भीतर डूब गया। तब देवों की प्रार्थना से विष्णु भगवान् श्वेत वराह का रूप धारण करके गये और हिरण्याक्ष को मारकर पृथ्वी को दाँत पर उठाकर जल के ऊपर ले आये।

तब प्रह्लाद पुनः बोल उठा—हे सुगंधित पुष्पमाला से विभूषित ! मेरा एक निवेदन है। मैं जो कहना चाहता हूँ वह वेदों और यज्ञों का अंतिम परिणामभूत सिद्धांत है और सब शिक्षाओं के भी परे है।

हे प्रभु ! कोई ऐसा वृक्ष नहीं है, जो बीज के बिना ही (बिना किसी कारण के ही) उत्पन्न हुआ हो। यदि आप अपना विपरीत ज्ञान छोड़ दें और सत्य का विवेचन करें, तो आप जान सकते हैं। यदि आप मेरे कथन को सावधान होकर सुनें और उसे चिन्तन करने योग्य समझें, तो (वह ज्ञान) आपको हस्तामलक के समान स्पष्ट हो जायगा।

वह अनुपम आदिकारणभूत भगवान् अपने में से सब लोकों को उत्पन्न करता है। उन सब पदार्थों में स्वयं रहता है। इतना ही नहीं, सब (पदार्थों) के अन्तर में सर्वत्र (तिल में तेल के जैसे) फैला रहता है। उसका आगा और पीछा नहीं है। वह कभी परिवर्त्तित नहीं होता। ऐसे भगवान् की उस चिरंतन स्थिति का यथारूप वर्णन कौन कर सकता है ?

अति विस्तृत अनेक पदार्थ-समुदायों को पृथक्-पृथक् विश्लेषण कर उनके तत्त्वों का विवेचन करने के दो मार्ग हैं—एक सांख्य और दूसरा योग।[1] उन मार्गों का ज्ञान पानेवालों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति उस आदि भगवान् की सर्वोत्तम स्थिति को नहीं समझ सकते हैं।

अपूर्व वेदों ने उसे (भगवान् को) ज्ञानस्वरूप परमतत्त्व कहा है। उस तत्त्व को वही ज्ञानी पहचान सकते हैं, जो अपने आत्मस्वरूप को स्पष्ट देख सकते हैं। इन सच्चे ज्ञानियों के अतिरिक्त ऐसे लोग भी हैं, जो उस भगवान् को पृथक्-पृथक् रूपों में मानते हैं। ऐसे लोग मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते।

उस परमतत्त्व को (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदि) प्रमाणों के द्वारा निरूपित नहीं किया जा सकता। वह हमारे ज्ञान से परे रहता है। उपनिषदों के शब्दों का अर्थ भी जिसका वर्णन नहीं कर पाते, उसकी माया को कौन समझ सकते हैं ? उस परमतत्त्व के यथावस्थित स्वरूप को किसी ने नहीं देखा है।[2]

---

१. सांख्ययोग में सृष्टि को चौबीस तत्त्वों में बाँटा गया है। भगवान् इनसे परे रहनेवाला है, जो पचीसवाँ तत्त्व है। क्रमशः वे तत्त्व हैं–कर्मेन्द्रिय पाँच, ज्ञानेन्द्रिय पाँच, पाँच भूत। उन भूतों की पाँच तन्मात्राएँ, मन, गुणात्मक मूल प्रकृति ; इन सबके परे रहनेवाला है पुरुष। योग शब्द से पतंजलि के द्वारा प्रतिपादित राजयोग लिया जाता है। उसमें १ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम, ५ प्रत्याहार, ६ धारण, ७ ध्यान और ८ समाधि इन आठ अंगों से युक्त योग का प्रतिपादन हुआ है। रामानुजीय विशिष्टाद्वैत वेदान्त में इन सांख्य और योगमार्गों का ग्रहण हुआ है और उनकी उपासना-पद्धति राजयोग की पद्धति जैसी होती है।

इस पद्य में सांख्य तथा योग शब्दों से भगवद्गीता के तृतीयाध्याय में प्रतिपादित सांख्ययोग (जो ज्ञानयोग था बुद्धियोग भी कहा गया है) एवं कर्मयोग का अर्थ भी लिया जा सकता है।

२. इस पद में, माया का अर्थ केवल यही है, छल या पकड़ में न आनेवाला तत्त्व। इसका अर्थ अद्वैत वेदांत में प्रतिपादित 'माया' के समान मानना उचित नहीं।—अनु०

वह भगवान् तीन लोकों के रूप में परिणाम पाता है। तीन गुणों (अर्थात्, सत्त्व, रज और तम) के रूप में परिणत होता है। महत् और अमहत् वस्तुओं (अर्थात्, चैतन्ययुक्त प्राणिसमूह और अचेतन पदार्थ) के रूप में परिणत होता है। यों नानात्व को पाकर भी स्वयं सब के अतीत हो अद्वितीय (अर्थात्, जिसका दूसरा नहीं है, वह एक ही है, ऐसा) बना रहता है। देवता और मुनि भी उस परमात्मा के कार्य को नहीं समझ सकते।

कर्म, कर्म का फल, उस फल को देनेवाला आदिकारणभूत भगवान्, जीवात्मा इत्यादि के तत्त्व समझनेवाले लोग ही 'इह' और 'पर' रूपी (संसार और स्वर्ग-रूपी) समुद्र के पार पहुँच सकते हैं (अर्थात्, दोनों से परे रहनेवाले मोक्षपद को पा सकते हैं)।

मंत्र, उत्तम तपस्या, इनका फल, इनके अधिष्ठाता देव, चारों वेदों के विधानानुसार होमाग्नि में दी जानेवाली हवि, इन सबके रूप में वही भगवान होता है।

वह भगवान् हमारे पहले किये कर्मों का फल पहले, और पश्चात किये कर्मों का फल पश्चात् देता है।[1] हमारे कर्मों का फल कभी अपना क्रम छोड़कर (अस्त-व्यस्त हो) नहीं आते। इस तत्त्व को बहुत-से लोग माया[2] के कारण नहीं समझ पाते।

हमारा कृत कोई एक कर्म कोई एक ही फल देता है। एक कर्म से अनेक फल नहीं होते। किन्तु, भगवान् की करुणा तो ऐसी है कि किसी भी फल को दे सकती है। उस भगवान् की महिमा को सिद्ध करने के लिए इससे बढ़कर और क्या प्रमाण चाहिए?

यथाविधि यज्ञों को करनेवाले, अंत में आदिशेष पर शयन करनेवाले विष्णु भगवान् को एक आहुति देते हैं।[3] वेदों में कहा गया है कि वह अंतिम आहुति समस्त चर और अचर पदार्थों को प्राप्त होती है।

उस परमात्मा ने मूल प्रकृति के कार्य के रूप में इस सारी सृष्टि को बनाया है। सभी पदार्थ उसी मूल प्रकृति के विकार हैं। वह परमात्मा कर्म के स्पर्श से इस संसार

---

१. प्रह्लाद की हिरण्य के प्रति इस उक्ति में यह ध्वनि है कि हिरण्य अब जिस अधिकार और वैभव से युक्त है, वह पूर्वकृत तपस्या का फल है। तपस्या के पश्चात् किये गये अत्याचारों का फल इस वैभव को भोगने के पश्चात् उसे भोगना पड़ेगा।

२. इस पद में 'माया' शब्द का अर्थ अद्वैतवाद की माया के जैसा नहीं है। रामानुजाचार्य ने माया की व्याख्या की है—'वह विपरीत ज्ञान की जननी है।' (विपरीतज्ञान : मैं भगवान् का शेषभूत हूँ—इसके विपरीत मैं स्वतंत्र कर्त्ता हूँ, ऐसा ज्ञान)। यह संसार मेरा भोग्य है—ऐसी बुद्धि को उत्पन्न करती है। वह हमारी देह एवं इन्द्रिय बनकर सूक्ष्म रूप में रहती है, त्रिगुणमयी है। तिल में तेल के समान, काठ में अग्नि के समान व्याप्त रहती है। क्षण काल में बह जानेवाली है। अतः, उसका विवेचन कर देखना दुस्साध्य है। चेतन में अचेतन की-सी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाली यह माया हमारे चिरकालिक कर्मों के कारण प्रवृत्त रहती है। इस माया के बंधन से मुक्त होने का एकमात्र उपाय है, भगवान की शरण में जाना।

३. होम करते समय अन्यान्य देवताओं को आहुति देने के पश्चात् अन्त में 'श्रीविष्णवे स्वाहा' कहकर विष्णु को आहुति दी जाती है। उसी का उल्लेख इस पद में आया है। इससे यह सिद्ध किया जाता है विष्णु ही परमतत्त्व है।—अनु०

में उत्पन्न नहीं होता। (जीव तो अपने किये कर्मों के अनुसार जन्म लेता रहता है) तत्त्व-ज्ञान से हीन लोग उसे समझ नहीं सकते।

अपार विभाजनों आदि से युक्त सब जीव, उस भगवान् के चित्र समान (अति सुन्दर) नाल से युक्त, अनेक दलों से शोभायमान एवं सुगन्ध के आवासभूत (नाभि) कमल के अवर्णनीय मूल (या जड़) के एक अंश में अंतर्भूत होते हैं।

वह हमारी प्रज्ञा के परे रहता है। उपमान-रहित है। उसके गुणों और कर्मों के (द्वारा) निर्दिष्ट नहीं हो सकता है। देखनेवालों की आँखों में छिपा रहता है। उसके स्वरूप को जानकर उसका वर्णन करने का प्रयत्न करनेवाले ज्ञानियों के मन में रहता है। पृथ्वी, आकाश तथा अन्य भूतों में अंतर्यामी बनकर रहता है।

वह भगवान् प्राणियों के चिन्तन और कर्मों में निहित तथा वचनों में व्याप्त रहता है। उनकी इन्द्रियों में रहता है। वेदों के आरम्भभूत प्रणवाक्षर (अर्थात्, ओंकार) के रूप में होकर (उस ओंकार में अन्तर्भूत) अकार, उकार और मकार, स्वयं तीनों अक्षर बनकर तथा तीनों के मिलने से उत्पन्न दो संधियाँ भी बनकर रहता है।

अपनी शरण में आनेवालों के काम, क्रोध आदि दुर्गुणों को तथा उनके परिणामों को जो मिटा देता है, उस भगवान् के शुभनामों की महिमा का बखान कौन कर सकता है? (भगवान्) के, सब जीवों को दुःख से मुक्त करके उनकी रक्षा करने के कार्य का वर्णन कौन कर सकता है?

जैसे एक छोटे बीज में वटवृक्ष का विशाल रूप छिपा रहता है, वैसे ही वह (भगवान्) अपने सूक्ष्म रूप में अति महान् विभव को छिपाये रहनेवाला है। वही काल है, स्थान है, (कार्यों का) साधन है, फल है। उन फलों का अनुभव करनेवाला जीव है, सदाचरण है एवं उस सदाचरण से उत्पन्न होनेवाला ऐहिक एवं पारलौकिक आनन्द भी वही है।

उस भगवान् की स्थिति, अनुपम स्पष्टता से युक्त नादवाली वीणा से उत्पन्न होनेवाली, मन तथा प्रज्ञा से मधुर जानी जानेवाली जो सूक्ष्म ध्वनि होती है उसके समान है, वह सब पदार्थों में बहिरन्तः व्याप्त रहता है। किन्तु, किसी से लिप्त नहीं होता है। उसका स्वरूप ऐसा है कि अकाट्य वेदों को भी उसे जानने में भ्रम-सा होता है।

वह (भगवान्) ओंकार के एकाक्षर के अन्तर्गत प्रथम स्वर (अर्थात्, अ, उ, म—इस तीनों में से प्रथम अकार) का वाच्य है। वह ज्ञान का ज्ञान है (अर्थात्, ज्ञान-स्वरूप आत्मा की भी आत्मा है।) अति विशाल तीनों लोकों में, धूम और अग्नि के समान एक साथ सर्वत्र व्याप्त रहता है।

उचित काल में खिले हुई विविध पुष्पों से बनी घनी माला में स्थित पुष्पों के

---

१. विशिष्टाद्वैत के अनुसार आत्मा और परमात्मा में शरीर-शरीरी भाव होता है। अर्थात्, शरीर में जैसे जीव, उस शरीर का आधार बनकर रहता है, वैसे ही जीवात्मा में परमात्मा उस (जीवात्मा) का आधार बनकर रहता है।

समान ही अनेक मतों के वाद-विवाद होते हैं और उनमें विभेद दीख पड़ता है। किन्तु, जिस प्रकार एक ही समुद्र में अनेक तरंगें उठ-उठकर उसी में मिलती रहती हैं, उसी प्रकार उस एक भगवान् में भी विभेद नहीं होता। अर्थात्, भगवान् के संबंध में होनेवाले विभिन्न मत उसी में अन्तर्लीन हो जाते हैं।

इस प्रकार के अनुपम स्वरूप से युक्त नारायण की निन्दा करके आप अपनी आत्मा की अवनति कर रहे हैं और अपने वैभव एवं आयु का विनाश कर रहे हैं। यही विचार कर मैंने भगवान् (नारायण) का नाम जपा है।—यों प्रह्लाद ने हिरण्य से कहा।

सम्मुख खड़े हुए प्रह्लाद के वचन कहते ही, हिरण्य का सकल लोक-भयंकर क्रोध अपने अनुकूल (निष्ठुर) वचनों के साथ ऐसे उमड़ उठा, जैसे प्राचीन काल में क्षीरसागर का मंथन करते समय हलाहल उमड़ उठा था। उस क्रोध को देखकर ज्योतिष्पिंड (सूर्य, चन्द्र आदि) तथा ऊपर के लोक भय-कंपित होकर चक्कर खाने लगे। पृथ्वी के विस्तृत प्रदेश काँप उठे। हिरण्य की आँखें रक्त उगलने लगीं। उनसे अग्नि वरस पड़ी और उस अग्नि की शिखाओं के समान (उन आँखों से) धूम निकल पड़ा।

तब हिरण्य ने अपने सेवकों से कहा—अब इससे बढ़कर मेरा वैरी और कौन हो सकता है? ऐसा धोखा हुआ है कि मेरे ही उदर से ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ है। अब इस पुत्र के मनोभाव को और परखने की आवश्यकता नहीं है। मुझसे अमिट वैर रखनेवाले विष्णु के प्रति यह प्रेम रखता है। इसे मार डालो। यह सुनते ही मारने की क्रिया में निपुण अनेक असुरों ने प्रह्लाद को पकड़ लिया।

चमकती हुई, भयहीन दृष्टियों से युक्त वे असुर हाथी के बच्चे को आ घेरनेवाले क्रोधी सिंहों के समान आये और (प्रह्लाद को) पर्वत-समान रत्नमय राजप्रासाद के द्वार पर ले गये और यह कहते हुए कि इसे सजीव ही खा डालेंगे, बिजली के समान धमकी देते हुए सहस्रों फरसों को एक साथ ही उसपर फेंका।

किंचित् भी पुण्य कार्य से रहित उन असुरों ने, सब प्राणियों पर दया करनेवाले प्रह्लाद पर एक बार 'ऐ' कहने के समय के अन्दर ही (अर्थात्, क्षणकाल में) उस (प्रह्लाद पर परसे खड्ग आदि शस्त्र फेंके। किन्तु, पवित्रमूर्त्ति नारायण को अपना साथी बनाकर रहनेवाले उस अनुपम ज्ञानी (प्रह्लाद) को वे (शस्त्र) उसी प्रकार कुछ नहीं कर सके, जिस प्रकार पुण्यहीन विरोधियों के शापवचन (निष्फल) होते हैं।

फेंके गये (भाले आदि), प्रयुक्त किये गये (तीर आदि), आघात करनेवाले (खड्ग आदि), चुभनेवाले (बरछे, शूल आदि) तथा चीरनेवाले शस्त्र भी प्रह्लाद पर लगकर चूर-चूर हो जाते थे। और, प्रह्लाद की देह पर अपने गिरने के चिह्न तक नहीं उत्पन्न कर सकते थे। प्रह्लाद, परमतत्त्व-रूप विष्णु के अरुण चरणों का ध्यान करता हुआ ही खड़ा रहा।

तब वे असुर (हिरण्य) के निकट गये और निवेदन किया कि हे बलशाली! हमारे पास जो शस्त्र थे, वे सब समाप्त हो गये। किन्तु, उन (शस्त्रों) से आपके पुत्र की किंचित् भी हानि नहीं हुई। अब हम और क्या करें? तब हिरण्य ने कहा—प्रह्लाद

माया करने में चतुर-सा लगता है। अतः, उसने शस्त्रों को रोक दिया है। शीघ्र अग्नि प्रज्वलित करके उसमें उसे डाल दो। वे असुर-वीर अग्नि प्रज्वलित करने लगे।

एक बड़े गड्ढे में काठ के टुकड़ों को पर्वताकार में चुना। घड़ों में तेल, मक्खन और घृत भर-भरकर लाये और उस गड्ढे में डाला। अग्नि प्रज्वलित की, जिसकी शिखाएँ गगन को छूने लगीं? फिर, रोनेवाले देवों के हृदय में दया उत्पन्न हो, इस प्रकार (आचरण) करते हुए उन (असुरों) ने प्रह्लाद को उस ज्वाला में डाल दिया। तब प्रह्लाद हरि-हरि कहता हुआ उस भगवान् के उभय चरणों को नमस्कार करता हुआ खड़ा रहा। तब वह ज्वाला शीतल हो गई।

जब विष के समान कठोर राक्षसों ने अपने करों से हनुमान् की पूँछ में कपड़े लपेटकर घी में भिगोकर आग रखी और वह आग प्रलयकाल की अग्नि-सी भड़क उठी, तब पातिव्रत्य-धर्म से युक्त सीता के शुभवचनों के प्रभाव से वह आग शीतल हो गई थी। उससे जिस प्रकार हनुमान् की पँछ नहीं जली थी, उसी प्रकार रत्न-समान प्रह्लाद की देह भी बहुत शीतल हो गई।

तब भयंकर असुरों ने हिरण्य के निकट जाकर निवेदन किया—ज्वालामय अग्नि आपके पुत्र को जला नहीं सकी। अब हम क्या करें? क्रोध से भड़ककर उस भयहीन हिरण्य ने कहा—अग्निदेव को बंदी बनाकर कारागार में डाल दो। उस छली प्रह्लाद पर अष्ट महानागों (सर्पों) को चलाओ।

हिरण्य के द्वारा स्मरण करते ही अनन्त, आदि आठ कालसर्प वहाँ आ पहुँचे और सुन्दर चित्रप्रतिमा-समान प्रह्लाद के ऊपर झपटकर क्रोध से उमड़ते हुए अपने खड्ग जैसे तीक्ष्ण दंतों से उसे काटा। किन्तु, नारायण का नाम कभी न विस्मृत करनेवाला प्रह्लाद किंचित् भी भीत नहीं हुआ।

जब आठ कालसर्पों ने प्रह्लाद को काटा, तब समीपस्थ सब प्राणियों के मुँह से भय के कारण रक्त की धारा बह चली। तीक्ष्ण पंखोंवाला गरुड भी काँप उठा। किन्तु, उन सर्पों के दाँत जो मेघ में घुसनेवाले अर्धचन्द्र के समान उस (प्रह्लाद) की देह में घुसे थे, बलरहित होकर टूट-टूटकर गिर पड़े। उन दाँतों के बड़े छेदों से अमृतबिन्दु बरसने लगे।

तब उन असुरों ने हिरण्य से निवेदन किया कि सर्प भी उसे नहीं काट सके। तब हिरण्य ने आज्ञा दी कि प्रह्लाद को मदमत्त दिग्गजों में श्रेष्ठ ऐरावत का लक्ष्य बनाओ।

प्रेम से रहित हृदयवाले उन असुरों ने (हिरण्य की) यह आज्ञा पाकर पूर्व दिशा में स्थित इन्द्र के निकट जाकर यह बात कही। तब झट इन्द्र ने दृढ दाँतोंवाले अति बलवान् हाथी ऐरावत को भेज दिया।

असुरों ने प्रह्लाद के कर, चरण वक्ष और कंठ को मंत्रबल से युक्त पाशों से बाँधा और मत्त गज के सम्मुख डाल दिया। असत्य-रहित प्रह्लाद ने उस गज से यह वचन कहा—

तुम्हारे कुलपुरुष गजेन्द्र ने पूर्वकाल में एक बार मकर के द्वारा ग्रस्त होकर

भगवान् विष्णु की पुकार की थी और कहा था—'हे सबके आदिकारणभूत! हे परमतत्त्व! हमारे रक्षक! आओ।' तब झट आकर विष्णु ने उस (गजेंद्र) की रक्षा की थी। यही विष्णु मेरे हृदय में भी विद्यमान हैं।

यह वचन सुनकर उस महान् गज ने अपने स्वर्णमय मुखपट्ट को पृथ्वी पर छुलाते हुए प्रणाम किया और काँपता हुआ (प्रह्लाद के सामने से) हट गया। असुरों ने यह समाचार हिरण्य को दिया।

तब अति क्रुद्ध हो हिरण्य ने आज्ञा दी—विशाल समुद्र में सोनेवाले (विष्णु) के प्रति आदर दिखाते हुए इस हाथी ने मेरे पराक्रम का भंग किया है। हे बलवान् वीरो! शीघ्र जाकर उस हाथी को मार डालो।

ज्योंही असुर उस हाथी को मारने के लिए झपटे, त्योंही वह गज विद्युत् को मंद कर देनेवाले अत्युज्ज्वल दंतों से प्रह्लाद को मारने लिए आगे बढ़ा।

प्रह्लाद के अतिदृढ वक्ष पर उस हाथी के चारों दाँत भली विधि चुभ गये। किन्तु, तुरन्त ही अतिशीतल कदली-वृक्ष के तने के समान ही वे श्वेत दाँत भी टूटकर गिर गये।

यह देखकर असुर पलक मारते ही हिरण्य के निकट जा पहुँचे और कहा--ऐरावत के दाँत टूट गये। अब आपके पुत्र का प्राण हरण करना असंभव है। यह सुनकर हिरण्य की आँखें ग्रीष्मकाल के सूर्य के समान उग्र रूप से चमक उठीं।

उसने असुरों को आज्ञा दी—किसी उपाय से न मरनेवाले इस वंचक (प्रह्लाद) को बड़ी शिलाओं के साथ कसकर बाँध दो और अपार सागर में डुबा दो।

तब उन असुरों ने जान लिया कि हिरण्य प्रह्लाद को छोड़नेवाला नहीं है। उसे मार डालने का प्रण कर लिया है। और, वायु-वेग से प्रह्लाद को शिलाओं के साथ बाँधकर समुद्र के मध्य में डाल दिया।

प्रह्लाद, तटस्थता को कभी न छोड़नेवाले (अर्थात्, पक्षपात-हीन न्याय करनेवाले) नारायण का शुभनाम निरन्तर जपता रहा। अतएव, वह समुद्र छोटे सरोवर के समान हो गया और वे शिलाएँ नौका के समान उतराने लगीं।

वह (प्रह्लाद) प्रलयकाल में, जल-राशि पर तैरनेवाले, वटपत्र पर शयन करनेवाले बालकाकार विष्णु के समान उस शिला पर शोभायमान था।

वेदों को जाननेवाला वह प्रह्लाद तरंगों से पूर्ण समुद्र में डूब नहीं गया। किन्तु, तैरनेवाली शिला पर लेटा रहा। और, आदिदेव नारायण के सहस्रों नामों का जप करता रहा—

हे (दुष्टों का निग्रह करने में) निष्ठुर रहनेवाले! (किसी को) स्पष्ट रूप से अविज्ञेय! दुर्गुणों से सर्वथा रहित! मैं तुम्हारे दासों का दास बना रहना चाहता हूँ। क्या इसके अतिरिक्त मुझमें किंचित् भी अहंकार है! मेरी दशा पर दया करो।

वंचकों के लिए तुम वंचक बनते हो। तुम्हारे लिए प्राणियों के हृद्गत भाव

अज्ञात नहीं हैं। हे क्षीरसमुद्र से उत्पन्न अमृत के समान मधुर लगनेवाले ! क्या चंचल स्वभाववाले मेरे मन की और भी परीक्षा करना उचित है ?

चतुर्मुख (ब्रह्मा), पंचमुख (शिव), देवों का राजा (इन्द्र)—ये सब वेदोक्त मार्ग पर रहकर भी चिरकाल तक तुम्हारे स्वरूप को नहीं पहचान सके हैं, तो अज्ञान से भरा हुआ मैं एक ही दिन में तुमको कैसे समझ सकता हूँ ?

मैंने कौन-से पाप नहीं किये हैं ? उन सब पापों को मुझे भोगना है। ठीक है। किन्तु, तुम्हारी कृपा यों अपूर्व है। वे पाप मेरी आत्मा को छोड़कर चले जायेंगे।

तुमको प्राप्त करने का उपाय अपना ज्ञान ही है—यों मानकर असंख्य लोगों ने (तुम्हें प्राप्त करने के) उपाय किये हैं। किन्तु, तुम्हारा स्वरूप उनके ज्ञान से परे रहा है।[1] अतः, तुम्हें पहचानने की शक्ति से हीन होकर वे तुम्हारी माया के जाल में फँसे रहे।

पूर्वकाल में कुछ व्यक्ति ऐसे हुए हैं, जिनमें से प्रत्येक ने यह कहा था कि संसार की वस्तुएँ विनश्वर हैं और मैं ही सृष्टि का एकमात्र नायक हूँ। उनके यों कहने से क्या हुआ ? (अर्थात्, उनका वह अहंकार व्यर्थ हुआ)। वास्तव में तुम्हारे अतिरिक्त परम-तत्त्व दूसरा कौन है ? (कोई नहीं है।)

कोई एक देव को सब सृष्टि का आदिकारण बताता है। दूसरा उस उक्ति का खंडन करके अन्य किसी देव को प्रधान कारण बताता है। इस प्रकार, विविध मतों को प्रतिपादित करनेवाले अनेक शास्त्र-ग्रन्थ हैं। किन्तु (हे नारायण !) तुम्हारे परमतत्त्व-स्वरूप होने में इनसे कुछ वाधा नहीं पड़ती है। हे वेदों में प्रतिपाद्य परमपुरुष ! यह भी तुम्हारा कैसा कपट-नाटक है !

मुझ जैसे अज्ञ व्यक्ति ब्रह्मा को, शिव को या अन्य किसी देवता को, विविध रूप में समझते रहें, तो उससे क्या होगा ? (अर्थात्, ब्रह्मा, रुद्र आदि देवों को परमतत्त्व समझें, तो उससे कुछ सिद्ध नहीं होता।) वृक्ष तो एक ही होता है न ? (अर्थात्, जिस प्रकार वृक्ष में विविध वस्तुओं के होने पर भी वृक्ष के प्रधान और एक होने में कोई बाधा नहीं पड़ती है, उसी प्रकार ब्रह्मा, रुद्र आदि विविध देवों के होने पर भी नारायण के परमतत्त्व होने में कोई बाधा नहीं पड़ती।)

तुमसे सब लोक उत्पन्न होते हैं और विविध परिवर्त्तनों से युक्त होते हैं। तो भी, तुमसे वे पृथक् नहीं होते। स्वर्ण के बने हुए आभरण (विविध आकार के होने पर भी) उस स्वर्ण से अलग नहीं होते।

माता और पिता के प्रेम से युक्त होकर तुम्हीं ने (मुझे) उत्पन्न किया। मेरा

---

१. विशिष्टाद्वैत-मत के अनुसार भगवान् को केवल ज्ञान से नहीं प्राप्त किया जा सकता। उसे प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है परमभक्ति ; परभक्ति से परज्ञान एवं परज्ञान से परमभक्ति उत्पन्न होती है। परभक्ति तभी उत्पन्न हो सकती है, जब जीव में किंचित् भी अहंकार नहीं रह जाता है। इस अहंकार के कारण, जीव स्वयं को सब कार्यों का कर्त्ता मानने लगता है। देह में आत्मा का भ्रम करता है। यह अज्ञान ही माया है। जीव ऐसी माया में पड़कर चक्कर काटता रहता है। अतः, विशिष्टाद्वैत ने यह माना है कि प्रपत्ति और परमभक्ति से ही भगवान् को प्राप्त किया जा सकता है।

हृदय तुम्हारा आवास-स्थान है। मुझे जन्म देनेवाले तुम ही इस जन्म के रोग को भी दूर करने में समर्थ हो।—इस प्रकार के वचन कहकर प्रह्लाद ने भगवान् की प्रस्तुति की।

उधर हिरण्य ने सेवकों से यह जानकर कि प्रह्लाद मरा नहीं, यह आज्ञा दी कि उसे मेरे सामने लाकर छोड़ो। तब असुर, प्रह्लाद को उसके सम्मुख ले आये। हिरण्य ने क्रोध के साथ कहा—इसके उन्माद को दूर करना है। दारुण विष से इसे मार डालो।

तब असुरों ने प्रह्लाद को भयंकर विष दिया। प्रह्लाद ने नारायण का ध्यान करते हुए उस विष को लेकर पी लिया। किन्तु, किंचित् भी प्रज्ञा खोये बिना वह खड़ा रहा। तब हिरण्य की आज्ञा से (उन असुरों ने) घोड़ों से चलाये जानेवाले मुँगरों से मारकर आघात किये।

उस समय सब कह रहे थे कि अब यह नहीं बचेगा। उस समय प्रह्लाद अपने मन में यह ध्यान कर रहा था कि मेरे मन में निवास करनेवाले भगवान् के कर एक सहस्र नहीं, किन्तु असंख्य हैं।

प्रह्लाद मरा नहीं, यह देखकर हिरण्य क्रोध के साथ यह बोल उठा कि इसकी स्वभावसिद्ध माया के कारण ही इसके प्राण इसकी देह से नहीं निकल रहे हैं। मैं स्वयं ही इसके प्राण निकालूँगा और प्रह्लाद के पास (यों गरजता हुआ) आकर खड़ा हुआ कि सप्त मेघ भी भयभीत हो उठे।

क्रोध के साथ अपने निकट आये पिता को देखकर प्रह्लाद ने उसे नमस्कार करके यह कहा—मेरे पिता! क्या आप मेरे विनश्वर जीवन को लेना चाहते हैं? यह जीवन आपके वश में नहीं है। सब लोकों के सृष्टिकर्त्ता (नारायण) के वश में है। उसके यों कहते ही—

हिरण्य ने उससे पूछा—लोकों की सृष्टि करनेवाला कौन है? क्या मेरे नाम की स्तुति करनेवाले त्रिमूर्त्ति इसके सृष्टिकर्त्ता हैं, या मुनि हैं, अथवा कोई और हैं, जो अपने सब अधिकार मेरे सम्मुख खो चुके हैं? कौन हैं? स्पष्ट रूप से कहो। वह (हिरण्य) यह चाहता था कि यदि सृष्टिकर्त्ता कोई उसे दिखाई पड़े, तो वह देखे। अतः, प्रह्लाद को उसने तुरन्त नहीं मार डाला।

तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया—हे पिता! जिसने सब लोकों की सृष्टि की और उन लोकों के विविध प्राणियों की सृष्टि की तथा उन सब प्राणियों के अंतर में निवास करता है, वह वही हरि है, जो पुष्प में सुगंधि के समान और तिल में तेल के समान सर्वत्र सब वस्तुओं में अन्तर्यामी बनकर रहता है।

मेरा वह प्रभु सर्वत्र विद्यमान है। उसे मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। मैं जब यह सत्य आपसे प्रेम के कारण कहता हूँ, तब आप इसे मानते नहीं हैं। आपके अनुज (हिरण्याक्ष) के प्राणों का हरण करनेवाले वे कमलाक्ष आपकी दृष्टि में सुलभतया नहीं आयगा।

(सत्त्व, रज और तम नामक) तीनों गुण उसी के हैं। (सृष्टि, रक्षा और

संहार नामक) तीनों कार्य उसी के हैं। (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नामक) तीनों मूर्त्ति वही है। (सूर्य, चन्द्र और अग्नि नामक) तीनों ज्योति वही है। (स्वर्ग, भूमि और पाताल नामक) तीनों लोकों की सृष्टि उसी ने की। आदि मध्य और अन्त से युक्त समस्त वस्तुओं के समुदाय का साक्षीभूत वही है। यही वेदान्त का सिद्धान्त है। यही सत्य है।— यों प्रह्लाद ने कहा।

प्रह्लाद के यों कहते ही, असुरराज (हिरण्यकशिपु) कलियों-जैसे दाँतों को प्रकट करता हुआ हँस पड़ा। फिर बोला—तुम कहते हो कि वह एक, अनेक (अर्थात्, विविध रूप की) वस्तुओं में समाया रहता है। पहले इसी बात की परीक्षा करेंगे, फिर उचित कार्य करेंगे। यदि तुम्हारा कथित वह हरि इस स्तंभ में छिपा रहता है, तो उसे प्रमाणित कर दिखाओ।

तब प्रह्लाद ने कहा—वह भगवान् हाथ-भर के स्थान में है। एक छोटे अणु के शतांश भाग में भी है। महा मेरुपर्वत में है। यहाँ के इस स्तंभ में भी है। आपके वचनों में है। इस सत्य को आप शीघ्र परीक्षा करके समझ लें। तब हिरण्य 'ठीक' कहकर आगे बोला—

देवताओं के लिए एवं तुम्हारे लिए अनुकूल रहनेवाले तथा समस्त लोक में व्याप्त रहनेवाले उस विष्णु को इस स्तम्भ में दिखाओ। यदि तुम नहीं दिखाओगे, तो मैं तुमको, कुंभवाले हाथी को जिस प्रकार सिंह मारता है, उसी प्रकार मारकर रक्त पीकर तुम्हारी देह को खा डालूँगा।

तब ज्ञानियों में श्रेष्ठ प्रह्लाद ने कहा—मेरे प्राण हरण करना आपके लिए संभव कार्य नहीं है। यदि वह हरि, आपके छुए हुए स्थानों में प्रकट नहीं होगा, तो मैं स्वयं अपने प्राण छोड़ दूँगा। यद्यपि वैसे न मरकर पुनः सप्राण जीवित भी रह जाऊँ, तथापि मैं उसी विष्णु का दास रहूँगा।—इस प्रकार प्रह्लाद ने प्रण किया।

यह सुनकर हिरण्य ने, अपने मन के उपहास-भाव को प्रकट करता हुआ, हँस-कर, 'ठीक है' कहा और विजय तथा यश को फैलानेवाले अपने कर से सामने स्थित स्तम्भ पर ऐसा आघात किया, जैसे अतिवेग से बिजली प्रकट होकर गिरी हो। यों आघात करते ही, शोणित नेत्रवाला एक सिंह, दिशाओं को चीरता हुआ, ब्रह्मांड को भेदता हुआ, हँस उठा।

जिसको ब्रह्मा भी सदा खोजता रहता है, तो भी उसे देख नहीं पाता, वैसे सूक्ष्माकार विष्णु (सिंह के रूप में) हँस पड़े, तो वह ज्ञानवान् प्रह्लाद, जिसने (हिरण्य से) यह कहा था कि मैं भगवान् को दिखाऊँगा, नाच उठा। अश्रु बहाने लगा। गाता हुआ कोलाहल मचाने लगा। अपने अरुण करों को सिर पर रखा। धरती पर गिरकर प्रणाम किया। उछल-उछलकर संसार-भर को चरणों से रौंद डाला (अर्थात्, आनन्द से चारों दिशाओं में दौड़ पड़ा।)

अपने नाम को स्थिर रखने के कारणभूत महान् प्रताप से युक्त वह हिरण्य बोल उठा—तू कौन है रे, जो हँस रहा है? इस (प्रह्लाद) का बताया हुआ हरि तू ही है क्या?

तू मुझसे भीत होकर समुद्र में जा छिपा था। उसे पर्याप्त न समझकर क्या अब इस स्तंभ को ढूँढ़कर इसके भीतर भी छिपा है? अरे! यदि तू लड़ सकता है, तो बाहर निकल आ रे।

हिरण्य के इस प्रकार कहतेही वह स्तंभ फट गया। उसमें से सिंहमूर्त्ति प्रकट हुई। झट उसका आकार अष्ट दिशाओं को भरता हुआ बढ़ गया। इस ब्रह्मांड के बाहर स्थित अन्य अंडों में भी व्याप्त हो गया। उसके पश्चात् क्या घटित हुआ—इस बात को ठीक-ठीक जानकर बतानेवाला कौन है? अंड-कटाह नीचे और ऊपर से भिदकर टूट गया।

सुगंधित मनोहर तुलसी-माला से भूषित उन नरसिंह-मूर्त्ति की ऊँचाई गगन में कहाँतक भेदकर गई थी—यह हम नहीं जानते। जब वह मूर्त्ति धरती पर अपने अरुण चरण रखकर खड़े हो गये, उसी क्षण ब्रह्मांड के ऊपरी लोक (सत्यलोक) में रहनेवाला ब्रह्मा उन (नरसिंह) की नाभि-प्रदेश में स्थित-सा दिखाई दिया।

यदि पूछा जाय कि उस नरसिंह-मूर्त्ति के कितने हाथ थे, तो उन (करों) को गिनकर कौन बता सकता है? एक सहस्र करोड़ 'वेल्लम'[1] संख्यावाले असुरों की सेना-रूपी समुद्र को वे हाथ से पकड़-पकड़कर मिटा रहे थे।

एक सहस्र करोड़ वेल्लम संख्यावाले तीक्ष्ण दाँतों से युक्त असुरों में प्रत्येक के सम्मुख (नरसिंह-मूर्त्ति का) एक-एक मुख था। दो-दो कर थे। उस प्रत्येक मुख में अग्नि के समान प्रज्वलित होनेवाली तीन-तीन लाल आँखें थीं। उस दिव्य वदन के गह्वर में सात समुद्र, पर्वत एवं समस्त पदार्थ भर सकते थे।

उन मूर्त्ति के अतिदीर्घ एवं टेढ़े होकर गिरे हुए केसर, प्रलयकाल में सारे ब्रह्मांड को निगलनेवाली अग्नि को भी नीचा करनेवाले थे। उन मूर्त्ति के श्वास प्रलयकालिक प्रभंजन को दबा देनेवाले थे। फिर भी, वे दोनों (केसर और श्वास) उन मूर्त्ति के ऊपरी भाग और अन्तर में ही थे। अहो! (अर्थात्, जिस प्रकार प्रलयाग्नि और प्रलय-कालिक प्रभंजन जगत् में सर्वत्र व्याप्त होनेवाले हैं, उसी प्रकार नरसिंह-मूर्त्ति के केसर और श्वास सर्वत्र नहीं फैले थे। फिर, वे प्रलयकालिक अग्नि और प्रभंजन को मात करनेवाले थे। यही आश्चर्य है)।

जिस प्रकार पक्षी अपने अंडों को सेता है, वैसे ही प्रलयकाल में सब ब्रह्मांड उस भगवान् के उदर में छिपे रहते हैं और (सृष्टि के आरम्भ में) प्रकट होते हैं। उसी प्रकार जीवित रहनेवाले सब प्राणी उन नरसिंह-मूर्त्ति के अमृतस्रावी दाँतों से युक्त विशाल वदन-गह्वर में घुस रहे थे।

सद्गुण में स्थिर रहनेवाले साधुजनों की कभी हानि नहीं हो सकती। ब्रह्मा से लेकर चिर काल से प्रचलित धर्म-मार्ग पर जो नहीं चलते थे, ऐसे असुरों एवं उनसे सम्मिलित लोगों का विनाश करके, उन (असुरों) से इतर सब प्राणियों को वह नरसिंह-मूर्त्ति उस समय अपने उदर में रखकर माता के समान उनकी रक्षा कर रही थी।

वे (नरसिंह) असुरों में से अनेक को अपने अर्धचन्द्र-सदृश दाँतों के मध्य डाल-कर पीसते। कुछ को इस ब्रह्मांड से बाहर फेंकते। कुछ को पकड़कर मेरुपर्वत पर दे

१. 'वेल्लम' संख्या कितनी होती है—यह पहले लिखा गया है।

मारते। कुछ को अपनी उँगलियों से पीस देते। कुछ को समुद्र के मध्य यों डुबोते कि जल के ऊपर बुलबुले निकल आते और कुछ को वडवाग्नि में डाल देते।

वे उन असुरों को तोड़कर दो टुकड़े कर देते। उनके चर्म को यों फाड़ देते, जैसे कोई कपड़ा हो। उन (असुरों) का रक्त, उनकी अग्नि-से प्रज्वलित आँखों को खोदकर निकालते। आँतों को पकड़कर तोड़ देते। उनकी देह को यों निचोड़ते कि रक्त की एक बूँद भी न बचती। अपने नाखूनों के बीच फँसे असुरों को दूसरे नखों से दबाकर चीर देते।

वे नरसिंह, हाथियों, रथों, घोड़ों तथा अन्य (असुर आदि) को, उनके शरीर को चबा-चबाकर खा डालते। शब्दायमान तरंगों से युक्त सातों समुद्रों को मीनों के साथ पी डालते। गगन के मेघों को बिजलियों के साथ निगल जाते। उन नरसिंह-मूर्त्ति की उग्रता को देखकर धर्म-देवता भी यह सोचकर कि इनका क्रोध कभी शान्त न होगा, भय से थरथरा उठा!

वे नरसिंह कुछ को चक्रवाल-पर्वतों (जो भूलोक की सीमा पर होते हैं) से दे मारते। कुछ को ब्रह्मांड के बाह्य आवरण पर डाल देते। कुछ को सप्त कुलपर्वतों से रगड़ते। कुछ को अपने दीर्घ करों से उठाकर आठों दिशाओं की सीमा पर डालते।

कुछ को घसीटकर उनके पर्वत-जैसे सिरों को नखों से नोच-नोचकर लुढ़का देते। कुछ को ऐसे रौंदते कि आग निकल पड़ती। कुछ को उनकी क्रूरता के जैसे ही चित्रवध (?) कर डालते। कुछ के प्राणों को निकालकर पी डालते। कुछ को समुद्र में इस प्रकार डालकर मथते कि (समुद्र का) उबला हुआ जल गगन-प्रदेश को भर देता।

उन्होंने तीनों लोकों के सब असुरों को पकड़-पकड़कर मिटाया, उनकी स्त्रियों के गर्भों को भी विनष्ट कर दिया। अब इस ब्रह्मांड में असुरों के न रहने से उन (नरसिंह-मूर्त्ति) के कुछ हाथ बाहर के अंडों को भी छूकर वहाँ असुरों को खोजने लगे।

विशाल नेत्रोंवाले उन नरसिंह-मूर्त्ति ने हिरण्य एवं उसके देवशरण्य पुत्र (प्रह्लाद) को छोड़कर, अन्य सब असुरों को क्षणकाल में मिटा दिया। अब वीर-कंकण-धारी हिरण्य ने उन नरसिंह को अपनी ओर बढ़ते देखा।

तब वह (हिरण्य), वज्रायुध के समान करवाल को कोश से निकाले, पूरे गगन को ढकनेवाले विशाल ढाल को एक हाथ में थामे, ऐसा गर्जन करता हुआ, जिसे सुनकर देवों के प्राण सूख जाते थे और सप्तपर्वत एवं सप्तसमुद्र काँप उठते थे, सजीव मेरु-पर्वत के समान, अपना ओंठ चबाता हुआ, क्रोध के साथ खड़ा रहा।

यों खड़े हुए हिरण्य को देखकर सकल लोकों के द्वारा प्रशंसित प्रह्लाद ने कहा—कदाचित् इस दशा में भी आपके मन में किंचित् भी सत्य का ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ है। शत्रु-विनाशन में बलिष्ठ चक्रायुध को धारण करनेवाले भगवान् को नमस्कार कीजिए। ऐसा (नमस्कार) करने से ही भगवान् आपके सब पाप-कृत्यों को क्षमा कर देंगे।

इसपर हिरण्य ने कहा—यह सुनो, तुम्हारे देखते-देखते मैं इस सिंह के करों

और चरणों को काट दूँगा और तुम्हें भी टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। फिर, मैं अपने करवाल को नमस्कार करूँगा। इसके अतिरिक्त मैं और किसी को नमस्कार नहीं करूँगा। प्रणय-कलह में भी मैं कभी (अपनी प्रेयसी के सम्मुख) अपना सिर झुकानेवाला नहीं हूँ।—यह कहकर वह अट्टहास कर उठा।

यों हँसकर वह यों क्रोध प्रकट करने लगा कि उसके मुँह से, करों से, करवाल से और चलते हुए पदों से, धूमसहित अग्नि निकल पड़ी। वह (हिरण्य) नरसिंह का सामना करता हुआ आगे बढ़ा। पीडा देनेवाले असुरों की चालाकी से भी बढ़कर चालाकी दिखानेवाले विष्णु ने गणितशास्त्रज्ञों के लिए भी अज्ञात संख्यावाले अपने करों एवं चरणों से उस (हिरण्य) को दृढता से घेरकर पकड़ लिया।

वे दोनों परस्पर बँधे हुए जब खड़े थे, तब वह दृश्य ऐसा था कि भयंकर आकार एवं कठोर क्रोधवाला हिरण्य मेरु-पर्वत का-सा लगा और नरसिंह-मूर्त्ति अन्य पर्वतों के समुदाय जैसे लगे। (भाव यह है कि स्वर्णमय मेरु-पर्वत के चारों ओर सप्तकुलपर्वत, चक्रवाल आदि जैसे होते हैं, वैसे ही स्वर्ण के रंगवाले हिरण्य को घेरकर रहनेवाले नरसिंह-मूर्त्ति के असंख्य कर थे।)

नरसिंह-मूर्त्ति, अपने भयंकर गर्जन तथा तीक्ष्ण नखोंवाले दीर्घ एवं असंख्य करों के कारण ऐसे लगते थे, जैसे विविध प्रकार की तरंगों से युक्त क्षीरसमुद्र उमड़कर ब्रह्मलोक के भी ऊपर उठ गया हो। उन नरसिंह के हाथों में फँसा हुआ हिरण्य मेरु की समता करता था।

नरसिंह ने, अपने एक विशाल कर से हिरण्य के परस्पर समान दोनों टाँगों को एक साथ पकड़कर घुमाया, तो उस समय (हिरण्य का) करवाल, कंधे, हाथ और किरीट ब्रह्मांड की ऊपर की भित्ति से रगड़ उठे। उस (हिरण्य) के उत्तम रत्नों से जटित आभरण अनेक ग्रहों से युक्त ज्योतिर्मंडल के समान लगा।

यों घूमते समय हिरण्य के दोनों कर्णों के कुंडल टूटकर, एक पूर्व में और एक पश्चिम में बिखर गये, मानों वे ही कुंडल अब भी सूर्य से प्रकाशित हो उठनेवाले उदय और अस्ताचल हैं। उन कुंडलों के माणिक्य की कांति ही प्रातः और सायंकालीन लालिमा बनकर बिखरती है।

इस प्रकार के अद्वितीय आकार तथा स्वभाववाले उन नरसिंह-मूर्त्ति की दशा का मैं क्या वर्णन कर सकता हूँ? अपनी शरण में आनेवाले भक्तों को मोक्षपद प्रदान करनेवाले उन उदार भगवान् ने अपने धवल नखों को हिरण्य के वज्रतुल्य वक्ष में ज्योंही चुभोया, त्योंही रक्त का प्रवाह उमड़कर सर्वत्र भर गया।

मायावी विष्णु भगवान् ने उस हिरण्य को सायंकाल में, उसके सुन्दर प्रासाद के बाहरी द्वार पर, अपनी जंघाओं के मध्य रखकर, सूर्य की जैसी कांति बिखेरनेवाले वज्र-जैसे उसके दृढ वक्ष को वज्र-जैसे अपने नखों से ऐसा चीर डाला कि रक्त-प्रवाह उमड़ चला और अग्नि-ज्वालाएँ फूट पड़ीं। यों उस (हिरण्य) का वध करके उन्होंने देवों के दुःख को दूर किया।

पहले हिरण्य से डरकर अज्ञात प्रदेशों में भागकर छिपे हुए त्रिनेत्र (शिव), अष्टनेत्र (ब्रह्मा), कमल-समान सहस्र नेत्रोंवाला (इन्द्र), अष्ट दिशाओं के पालक देवता एवं मुनि वहाँ आ पहुँचे और यह न जानते हुए कि किस नेत्र से भगवान् के नरसिंह आकार को देखा जा सकता है, स्तब्ध हो खड़े रहे।

जहाँ भी उन लोगों की दृष्टि पड़ती थी, वहाँ भगवान् का ही मुख, कर एवं चरण दिखाई देता था। यों वचन से, भाव से और प्रज्ञा से भी अज्ञेय होकर सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले भगवान् के नरसिंह के रूप को देखकर वे सब भीत हो उठे।

उन नरसिंह-रूप के ऐसे करोड़ों मुख सर्वत्र फैले थे, जिनमें एक दाँत और दूसरे दाँत के मध्य अनेक योजन का अवकाश था। यों उस अपार रूप के दर्शन करके, प्रफुल्ल कमल में उत्पन्न ब्रह्मदेव, भगवान् का गुणगान करने लगे।

तुमने स्वयं को इस स्तंभ से उत्पन्न किया है। यही इस बात का प्रमाण है कि तुम्हारा आदिकारणभूत तुम स्वयं ही हो। जब तुम अपनी सृष्टि करनेवाले स्वयं तुम ही हो, तो यह कैसी बात है कि तुमने प्राणिवर्गों की सृष्ट करने के लिए मुझे सृष्ट किया? (यह केवल तुम्हारी लीला-मात्र है।)

जिस प्रकार बुलबुले समुद्र में उत्पन्न होकर मिटते रहते हैं, उसी प्रकार अनेक कोटि ब्रह्मांड तुमसे उत्पन्न होकर फिर तुम्हीं में विलीन होते हैं। जब सब पदार्थ तुम्हीं हो, तब इस भयंकर (नरसिंह) रूप को धारण करते हो और सबका विनाश करने लगते हो, तो क्या उससे अनवस्था[1] नामक दोष नहीं होगा?

तुम एक होकर भी अनेकनामरूपात्मक होते हो। तुम्हीं सृष्टि का एकमात्र आदिकारण हो। तुम्हारे अतिरिक्त कुछ भी इस सृष्टि में नहीं है। अतः, तुम किसका सर्जन करते हो, किसकी रक्षा करते हो और किसका विनाश करते हो?—हम नहीं जानते।

तुमने मुझे अपने से ही उत्पन्न किया। तुम्हारी कृपा से मैंने अपने अन्तर से सब जड़ एवं चेतन पदार्थों को उत्पन्न किया। हे मेरे माता एवं पिता! तुम्हारे अतिरिक्त मेरा कोई कारण नहीं है। न मेरा कोई कार्य ही है। (तुमसे उत्पन्न हुआ) मैं ऐसा ही हूँ, जैसा स्वर्ण का बना हुआ स्वर्ण-आभरण हो।

इस प्रकार, प्रस्तुति करके आठ अपलक नयनोंवाले ब्रह्मा ने, युद्ध-कुशल परशु-आयुध को रखनेवाले शिव ने तथा अन्य देवताओं ने नमस्कार किया और दोनों पार्श्वों में खड़े रहे। तब चक्रधारी नरसिंह ने भी अपनी अदम्य उग्रता को शान्त किया।

यह सोचकर कि सब लोक अभी मिट जानेवाले हैं, थरथरानेवाले देवताओं को देखकर नरसिंह ने कहा—निर्भय रहो। और, करुणामय दृष्टि के साथ प्रफुल्ल कमल को नीचा करनेवाले अपने सुन्दर कर से अभय मुद्रा दिखाई।

तब ब्रह्मा आदि देवों ने कमल में निवास करनेवाली उन लक्ष्मी देवी की प्रार्थना करके उन्हें नरसिंह के निकट भेजा, जो (लक्ष्मी) सौंदर्य का आभरण हैं, सबका ऐश्वर्य हैं,

---

१. 'अनवस्था' = अव्यवस्था—यह न्याय-शास्त्र में एक दोष के रूप में निरूपित है।

(भक्तों को) मोक्षपद देने की कृपा करनेवाली हैं,[1] सब प्राणियों की रक्षा करनेवाली हैं, अमृत के संग उत्पन्न हुई हैं और देवों के लिए भी माता के तुल्य हैं।

अपना कोई उपमान न रखनेवाले विष्णु ने, कमलपुष्प की पीठ पर प्रज्वलित दीप के समान प्रकाशित होते रहनेवाली, सुरभि के आवासभूत कोमल पल्लव की समता करनेवाली तथा सब लोकों तथा प्राणियों को आदिकाल में क्रमशः जन्म देनेवाली, उन लक्ष्मी देवी को देखा।

विलक्षण परमज्योति-स्वरूप उन नरसिंह-मूर्ति ने अकलंक सृष्टि करने में सहायक बननेवाली लक्ष्मी देवी को प्रेम से देखा। ऋषिवर्ग ने परमात्मा की महिमा का गान किया। तब दुःखहीन प्रह्लाद पर भगवान् ने अपना कटाक्षपात किया।

भगवान् ने कहा—मैंने तुम्हारे सम्मुख ही तुम्हारे पिता के शरीर को चीरकर उसे मारा। तब भी धर्म पर स्थिर रहनेवाले अचंचल मन-सहित तुम मुझपर अपार प्रेम और श्रद्धा के साथ स्थित रहे। करुणा के पात्र! हे तात! मुझपर तुम्हारी इस भक्ति के बदले मैं क्या दूँ?

एकमात्र काल के सहस्रांश में मैंने तुम्हारे पिता को पकड़कर उसके अपराधों के कारण, उसकी देह को चीरकर, जैसे उसके प्राणों को ढूँढ़ रहा हो, यों उसकी देह के भीतर कटों को इधर-उधर टटोलकर मार डाला। फिर भी, तुम अधीर न होकर स्थित रहे।

अब तुम्हारे कुल के असुरों को, अपार अपराध करने पर भी, मैं नहीं मारूँगा। तुम्हारे किसी भी जन्म में तुमपर मेरी कृपा रहेगी। यदि मुझसे कुछ प्राप्त करना चाहो, तो निर्भीक होकर झट माँगो—यों भगवान् ने कहा।

तुम्हारी कृपा से मैंने अबतक जो भलाई पाई, वही अनन्त है। अब और क्या प्राप्त करना है? यदि मुझे अब भी कुछ माँगना होगा, तो मैं यही माँगूँगा कि मैं अस्थिहीन कृमि-कीट आदि का जन्म भी क्यों न पाऊँ, किन्तु तुम पर मेरी भक्ति सदा अटल रहे।

यों वर माँगनेवाले प्रह्लाद को देखकर करुणामय भगवान् ने आनन्दित होकर कहा—यह मेरा उत्तम भक्त है। अति पुरातन पंचभूत भले ही मिट जायँ, फिर भी तुम नहीं मिटोगे। तुम सर्वकाल में मेरे समान ही स्थित रहोगे।

बिजली को पकड़कर खंभे में बाँध दिया गया हो—ऐसी अपार कांति से युक्त (हे प्रह्लाद)! तीनों लोक तुम्हारे अधीन हैं। मेरी भक्ति करने से जो फल मिलता है, वह फल तुम्हारा भजन करने पर भी मिलेगा।

हे वेदों के मर्मज्ञ! मेरे सब दास तुम्हारे दास होंगे। क्या तुम केवल असुरों के अधिप हो? नहीं, तुम देवताओं के भी प्रभु बन गये। ऐसी महिमा और किसी के लिए प्राप्त करना असंभव है।

हे अति उत्तम देहकांति से पूर्ण! उत्तम धर्म, सत्य, चारों वेद, उत्तम करुणा,

---

१. लक्ष्मी देवी निरन्तर नारायण के संग रहती हैं और शरणागत भक्तों का उद्धार करने के लिए जगत्पिता से सिफारिश करती रहती हैं। इसलिए, इस पद्य में लक्ष्मी को मोक्ष देनेवाली कहा है।—ले०

अपार तत्त्वज्ञान, अनन्त पदार्थ, आठ गुण[1]—सब तुम्हारी आज्ञा के अधीन रहेंगे। तुम मेरे समान ही विजयी रहो।

इस प्रकार वर देकर भगवान् ने देवताओं को आज्ञा दी कि सब लोकों के निवासियों के द्वारा नमस्कृत होनेवाले इस प्रह्लाद का राज्याभिषेक हो। द्वार पर भेरियाँ बजें। तुम सब लोग उसके आवश्यक कार्य प्रेम से करो।

देवता और उन देवों के प्रभु (देवेन्द्र) ने सब कार्य किये। ब्रह्मा ने अग्नि प्रज्वलित कर होम-कार्य संपन्न किया। सब लोकों के ईश्वर नरसिंह ने प्रह्लाद को राज्याभिषिक्त किया। यों वेदों को पढ़े बिना ही उनके तत्त्व को समझनेवाला प्रह्लाद त्रिभुवन का शासन करता रहा।

अतः, हे प्रभु (रावण)! पूर्वकाल में ऐसी घटना हुई थी। यदि तुम मेरी बात को किंचित् भी माने बिना उसकी उपेक्षा करोगे, तो हानि निश्चित है।—इस प्रकार, ज्ञानियों में श्रेष्ठ विभीषण ने (रावण से) कहा। (१—१७६)

●

अध्याय ४

विभीषण-शरणागति पटल

विभीषण के वचन सुनकर भी रावण उन वचनों के तत्त्व को नहीं समझ सका और अपने हित को नहीं समझा। किन्तु क्रुद्ध हुआ और उसके नेत्र लाख के रस से पूर्ण (अर्थात्, लाल) हो गये।

'हे मृत्यु को जीतनेवाली तपस्या से युक्त! (अर्थात्, चिरंजीवी!) हिरण्य हम-जैसों से भी अधिक बलवान् था, पर शरणागतों की रक्षा करनेवाले विष्णु ने उसे मार डाला।'—क्या यही सोचकर तुम उस विष्णु पर अनुरक्त हो गये हो।

अपने प्रतापी पिता (हिरण्य) का वक्ष उस मायावी विष्णु के द्वारा चीरे जाते हुए देखकर आनन्दित होनेवाला वह प्रह्लाद और हमारे विरोधियों से प्रेम रखनेवाले तुम दोनों ही परस्पर समान हो। क्या अन्य कोई तुम्हारी समता कर सकता है?

जिसे बलवान् हिरण्य के पुत्र ने किया था, वैसे ही क्या तुम भी यह सोच रहे हो कि यदि मैं उन राम-लक्ष्मणों से हार जाऊँ, तो तुम मेरा राज्य प्राप्त कर सुखी रहोगे? तुम्हारा यह विचार व्यर्थ है।

पहले से ही तुम उन राम-लक्ष्मण से प्रेम करने लगे हो। हमारे बड़े विरोधी उन नरों के जैसे ही तुम भी राक्षसों से विरोध कर रहे हो। उन (नरों) के लिए अपनी

---

१. अष्टगुण ये हैं—१. अपहतपाप्मत्व (पापरहित होना), २. विजयत्व (बुढ़ापा न होना), ३. विमृत्युत्व (मरणहीन होना), ४. विशोकत्व (दुःखरहित होना), ५. विजिघत्सत्व (भूख न होना), ६. अपिपासत्व (प्यास न होना) ७. सत्यकामत्व (सत्य की श्रद्धा) और ८. सत्य-संकल्पत्व (ऐसा संकल्प रखना, जो व्यर्थ न हो)।

हड्डियाँ गला रहे हो (अर्थात, अधिक प्रेम दिखा रहे हो) । आनन्द के अश्रु बहा रहे हो। स्तुति कर रहे हो। वे नर ही तुम्हारे सखा हैं, और कोई बात नहीं है।

मेरा विरोध करनेवाले उन नरों के साथ तुम प्रेम करने लगे हो। तुमने अपना कर्त्तव्य पृथक् सोच लिया है। मुझे हराने का उचित उपाय सोच लिया है। लंका का राज्य पाने की इच्छा करने लगे हो। तुम्हारा कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। अतः, तुम से बढ़कर मेरा शत्रु और कौन हो सकता है?

उस दिन जब एक वानर आकर हमारे अशोकवन को उजाड़ने लगा, तब मैंने यह आज्ञा दी थी कि इस (वानर) को मारकर खा डालो। तब तुमने यह कहकर कि 'दूतों को मारना उचित कार्य नहीं है' उन्हें रोक दिया था। भविष्य में होनेवाले कार्य का विचार करके ही तुमने ऐसा किया था। उसके अनुकूल ही आज घनी पुष्पमालाओं से भूषित राम को तुम अपना मित्र बनाना चाहते हो।

(हमारे विरोधियों से) तुम भय खाते हो, अतः, तुम युद्ध करने के योग्य वीर नहीं हो। मनुष्यों को तुम शरण देनेवाले मानते हो। मन में वंचना से भरे हो। तुम अपने कुल के विपरीत हो गये हो। तुमको साथ रखकर जीने की अपेक्षा विष को अपने साथ रखकर जीना उत्तम हो सकता है।

यह सोचकर कि भाई को मारने का अपयश मुझे प्राप्त होगा, मैंने तुमको मारा नहीं, छोड़ दिया। जो कुछ तुम्हारे मुँह में आता है, उसी को बोलते जा रहे हो। अतः, तुम शीघ्र हमें छोड़कर यहाँ से चले जाओ। मेरी आँखों के सामने खड़े न रहो। विनाश पाने के लिए जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी, उस रावण ने इस प्रकार कहा।

रावण ने यों कहने पर (उसका) अनुज विभीषण, अपने कर्त्तव्य का विचार करके अपने साथियों के साथ, गगनतल में उठ गया और वहाँ खड़े होकर पुनः रावण के प्रति अनेक नीति-वचन कहे।

हे जीवन की इच्छा रखनेवाले ! मेरी बात सुनो। तुमने चिरकाल तक सुखी रहकर जीवन बिताने का मार्ग नहीं सोचा। तुम नीच व्यक्तियों के दिये परामर्श के अनुसार चलकर अपना विनाश करने जा रहे हो। धर्म से भ्रष्ट होनेवाले लोग क्या सुखी जीवन पा सकते हैं?

क्या तुम राम के उग्र शरों के द्वारा अपने पुत्रों, बड़े लोगों, बन्धुओं, मित्रों, बल-हीनों, बलवानों और अन्य सब लोगों का जीवन समाप्त होते हुए देखने के पश्चात् तुम अपना जीवन समाप्त करना चाहते हो?

मैंने सब प्रकार से हितकारी और नीतिपूर्ण हित-वचन तुमसे कहे। किन्तु, तुम उनको न समझ सके। हे प्रभु ! मेरे अपराधों को क्षमा करो।—यों कहकर उत्तम गुणों से पूर्ण विभीषण उस लंकानगर को छोड़कर चलने लगा।

मुखरित वीर-कंकणधारी और अपने कर्त्तव्य का निश्चय करने में चतुर अनल, अनिल, हर और संपाति नामवाले सन्मार्गगामी चारों वीर विभीषण के संग चले।

विभीषण और उसके ये चारों मंत्रियों ने यह परामर्श किया कि वानरों की सेना के

साथ रामचन्द्र और लक्ष्मण, प्रभूत जल से पूर्ण समुद्र के किनारे आकर ठहरे हैं। हम शीघ्र वहाँ जायेंगे—और (राम के स्थान की ओर) चल पड़े।

विभीषण आगे का कर्त्तव्य सोचकर, समुद्र को पार करके गया और वहाँ उसने विशाल वानर-सेना को देखा, जो ऐसी थी, मानों प्रकाश में चमकनेवाले क्षीरसमुद्र में असंख्य पुष्प विकसित हुए हों।

कलंकरहित मनवाले विभीषण ने मांसयुक्त एवं उज्ज्वल (शूल आदि) शस्त्र धारण करनेवाले अपने मंत्रियों से कहा—यदि मांसमय शरीरवाले प्राणियों को एक ओर और वानरों को दूसरी ओर खड़ा करें, तो वानरों का समूह ही बड़ा होगा।

मैं राम के प्रति भक्ति-भाव रखता हूँ, जिन्होंने धर्म की रक्षा का प्रण लिया है। मैं यश देनेवाले धर्ममार्ग से जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। भूलकर भी पापमय जीवन व्यतीत करना नहीं चाहता। मेरे भाई (रावण) ने यह कहा कि तुम अपने भाई की बात नहीं मानते हो और मुझे अपने राज्य से निष्कासित कर दिया है। इस दशा में मेरा कर्त्तव्य क्या है, बताओ।

तब शास्त्रज्ञान से युक्त मंत्रियों ने उचित-अनुचित का विचार करके कहा—रामचन्द्र धर्मस्वरूप हैं। अपनी शरण आनेवालों के अभीष्ट को पूर्ण करनेवाले हैं, उनके दर्शन करना ही हमारा कर्त्तव्य है।

तब विभीषण ने कहा—तुम लोगों ने हितकारी वचन कहे। इस समय यदि हम तुम्हारा परामर्श न मानकर अन्य कोई कार्य करेंगे, तो हम भी राक्षस-जाति के जैसे कार्य करनेवाले ही होंगे। आज हम अपार सद्गुणों से पूर्ण रामचन्द्र के दोनों पादों का आलिंगन करेंगे।

इसके पूर्व हमने कभी उन (राम) के दर्शन नहीं किये हैं। उनके बारे में अधिक कुछ सुना भी नहीं है। फिर भी, मेरे मन में उनके प्रति यह जो भक्ति-भावना उत्पन्न हुई है, उसका कारण मैं नहीं जान पाया हूँ। उनके स्मरण करने मात्र से मेरी हड्डियाँ भी शीतल हो जाती हैं। मन पिघल जाता है। मुझे ऐसा लगता है कि वे क्षुद्र ज्ञान से युक्त इस जन्म के विरोधी हैं (अर्थात्, जन्म-बंधन से मुक्ति देनेवाले भगवान् हैं)।

मैंने पूर्वकाल में जब ब्रह्मा के प्रति तपस्या की थी, तब ब्रह्मदेव से यह वर प्राप्त किया था कि सृष्टि के आदिकारणभूत परमात्मा के प्रति भक्ति, धर्म-मार्ग पर दृढ़ता, नीति से कभी विचलित न होने की शक्ति, सब प्राणियों के प्रति प्रेम तथा ब्राह्मणों की करुणा—ये सब मुझे प्राप्त हों।

उस वर के सफल होने के लिए उपयुक्त समय अब आया है। तुम मंत्रियों ने विचार कर जो कहा है, वह ठीक ही है। सब के पुरातन प्रभु नारायण के कमल-समान चरणों के समीप जाकर हम अपने मन की इच्छा पूर्ण करेंगे।—यों कहकर विभीषण (चिन्ता से मुक्त हो) प्रसन्न रहा।

कर्त्तव्य को ठीक-ठीक जाननेवाले विभीषण एवं उसके मंत्रियों ने यह सोचकर कि रात्रि में राम के समीप जाना उचित नहीं होगा, एक भयंकर घने अरण्य में छिप गये।

उसके पश्चात् (रात्रि के व्यतीत होने पर) एक चक्रवाले रथ पर आरूढ हो सूर्य उदयाचल पर प्रकट हुआ।

उधर रामचन्द्र, तरंगों से भरे समुद्र को पार करने का उपाय सोचते हुए एवं नीलोत्पल के समान नयनोंवाली सीता के प्रवाल-सदृश लाल अधर का स्मरण करके शिथिल-चित्त होते हुए समुद्र के विशाल तट पर आ पहुँचे।

रामचन्द्र समुद्र-तट के उद्यानों, लवण उत्पन्न करनेवाले जलाशयों, केतकी-वृक्षों, नीलोत्पलों, 'पुन्नै' (नामक) वृक्षों, गगनतल में दीख पड़नेवाले हंस-हंसिनियों की पंक्तियों तथा प्रेमभाव के उद्दीपक पुष्पमय उपवनों का संदर्शन करते हुए आगे बढ़े।

वहाँ राम ने मोती, प्रवाल, समुद्र की तरंगों के द्वारा बहाकर लाये गये रत्नों की राशियाँ, स्वर्ण-समान मनोहर तटों, भय उत्पन्न करनेवाले घने उपवनों, सैकतश्रेणियों तथा तट से टकरानेवाली वीचियों को देखा।

राम ने 'पुन्नै' (नामक) वृक्षों से पूर्ण उन उद्यानों को देखा, जहाँ (अपने प्रियतमों के साथ रहने के समय) मधुर हास करनेवाली मछुआ-युवतियाँ अब शिथिलचित्त होकर बालुकामय भूमि पर, बिजली जैसे चमकनेवाले आभरणों से युक्त अपनी उँगलियों से रेखाएँ खींचती थीं, जिन (रेखाओं) को उनके अश्रुजल मिटा देते थे।[1]

राम ने देखा—शरत्काल की श्वेत तरंगों के द्वारा उछाले गये जल के छींटों से आहत होकर केतकी के श्वेत रंगवाले झुके हुए पत्ते जलबिंदु गिराते रहते हैं। उन केतकी-वृक्षों पर हंस-हंसिनियाँ अपने पंखों की ओट किये हुए सुखनिद्रा करती रहती हैं। यह दृश्य देखकर (रामचन्द्र ने) निःश्वास भरा।

मीठे स्वरवाली सारसी, सुस्वादु मीन को लाने के लिए उड़कर गये हुए सारस के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई, वृक्ष पर बैठी है।—यह देखकर रामचन्द्र दयार्द्र हो उठे।

एक स्थान पर अकेली सारसी पर मुग्ध होकर दो बलवान् सारस अत्यंत क्रोध के साथ लड़ रहे हैं और पीछे नहीं हट रहे हैं। उनके निर्भीक नयनों से चिनगारियाँ निकल रही हैं।—वह दृश्य देखकर राम ने अपनी भौंहें सिकोड़ लीं।

प्रणय-कलह में हारी हुई एक हंसिनी समागम के समय हंस को परास्त कर रही है।—यह दृश्य देखकर राम ने प्रवाल-समान अपने अधर को, उस (अधर) से आवृत रहनेवाले मुक्ता-समान दंतों से दबाया। (अर्थात्, मन की पीडा को मन में ही दबा लिया।)

जब राम ऐसी पीडा का अनुभव कर रहे थे, तब सुग्रीव, हनुमान् आदि विज्ञ साथी वहाँ आये और उन्हें सांत्वना देकर वहाँ से ले चले। रामचन्द्र वहाँ से इस प्रकार चले, जैसे कोई उन्मत्त व्यक्ति ज्ञान पाकर उन्माद से मुक्त हो चलता है।

---

१. अपने प्रियतमों के, मछली मारने के लिए समुद्र में दूर चले जाने पर उनके आगमन की प्रतीक्षा करती हुई मछुआ-स्त्रियाँ घर पर रहती हैं। प्रियतम सकुशल लौटेंगे कि नहीं—यह जानने के लिए ये स्त्रियाँ आँखें बन्द करके उँगली से धरती पर रेखा खींचती हैं। यदि रेखा के दोनों सिरे मिल जायँ, तो शुभ शकुन मानती हैं और न मिले, तो अशुभ समझती हैं। किन्तु, यहाँ ये स्त्रियाँ शकुन का निर्णय भी नहीं कर पातीं; क्योंकि उनके अश्रुजल उन रेखाओं को मिटा देते हैं।—ले०

रामचन्द्र अपने निवास में पहुँचकर, जानने योग्य सब विषयों के ज्ञाता अपने मित्रों के साथ आसीन हुए। ऐसे समय में (युद्ध) नीति के अनुसार आचरण करनेवाली वानर-सेना के निकट, शब्दायमान वीर-वलयधारी विभीषण निःशंक मन से आ पहुँचा।

उस समय (विभीषण की) ऐसी पुकार (राम के) कानों में पड़ी कि 'अपने समान अन्य उपमान न रखनेवाले हे विजयी वीर! शरण! शरण!' उन्होंने (उसका कारण जानने की इच्छा से) अपने साथियों के मुख की ओर देखा।

उन्होंने पूछा—यह पुकार कि 'हे पिता! हे राघव! शरण (दो)!' किसकी है? बताओ। तब भीषण वानर-सेनापतियों ने जो मंत्रणा की, उसका वर्णन हम करेंगे।

तब वानर-सेना में हलचल मच गई। 'भीषण धनुष्टंकार से युक्त राक्षस हमारी सेना में आ पहुँचे हैं; उन्हें मारो! पकड़ो! जला दो!' यों वज्रघोष में चिल्लाते हुए वानरों ने (विभीषण आदि को) घेर लिया।

'धर्म-देवता ने स्वयं इसको यहाँ ला दिया है। यहाँ आनेवाला व्यक्ति लंका का राजा ही है, जो अति क्रूर पापकर्म करनेवाला है। अब हमारा उद्देश्य पूर्ण हो गया।' वानर यों कहते हुए उनको (विभीषण आदि को) घेरने लगे।

वे कहते—'उस अभागे राक्षस के जो बीस भुजाएँ तथा दस सिर थे, क्या वे गिर गये? क्या वह हमसे युद्ध कर सकता था?' यों कहते हुए वानर-सैनिक एक के आगे एक बढ़कर उनको घेरने लगे।

वे कहते—इनको पकड़कर बंदी बनायेंगे। फिर, महाराज (रामचन्द्र) के पास जाकर समाचार सुनायेंगे। कुछ यह कहते हुए कि 'इसे मारे बिना देखते हुए चुपचाप क्यों खड़े हो?'—उनके निकट जाते।

वे वानर कहते—'पलक मारने के पहले ही ये गगन में उड़ जायेंगे। ये राक्षस हैं न? तब क्या कर सकोगे? अतः, इनको अभी मारने के अतिरिक्त और क्या कर्त्तव्य हो सकता है?

जब वे वानर-वीर यों कह रहे थे, तब 'ऐंद्र'[1] के विद्वान् की आज्ञा से 'मैंद' और 'तुमिंद' नामक दो नीतिज्ञ वीर वहाँ आये।

उन्होंने वानरों को हटाया और देखा कि वे (विभीषण आदि) धर्म और नीति के ज्ञाता जान पड़ते हैं। छल का चिह्न भी उनमें नहीं है। उनमें धार्मिक लक्षण ही प्रकट हो रहे हैं।

तब उन्होंने (विभीषण आदि से) पूछा—तुम कौन हो? यहाँ क्यों आये हो? क्या (हमसे) युद्ध करने की इच्छा है? या और कोई विचार है? जो यथार्थ बात है, उसे निर्भय होकर स्पष्ट कहो।

तब अनल (नामक विभीषण के साथी) ने कहा—सूर्यवंश में उत्पन्न प्रसिद्ध चक्रवर्त्ती (राम) के चरणों को प्राप्त कर उद्धार पाने के लिए यह (विभीषण) आया है।

---

१. ऐन्द्र व्याकरण संस्कृत का सबसे पुराना व्याकरण माना जाता है। हनुमान् इस व्याकरण के महापंडित माने जाते थे।—ले०

यह पवित्र विचारवाला है। धर्म और नीति पर चलनेवाला है। चतुर्मुख (ब्रह्मा) के पोते का बेटा है। सत्यसंध है।

इसने कमलभव (ब्रह्मा) की दीर्घ तपस्या की है और धार्मिक है। आदिमूर्त्ति (विष्णु के अवतार राम) पर अपार भक्ति रखनेवाला है; सत्यपरायण है; वेदज्ञों का आदर करनेवाला है।

इसने (रावण को) परामर्श दिया कि तुम दुर्मति बनकर अग्नि को कपड़े में बाँधने चले हो। भगवान् की देवी को तुमने वन्दी बनाया। यदि उन देवी को बंधन से मुक्त कर दोगे, तो तर जाओगे, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।

किंतु, पापपूर्ण हृदयवाला वह (रावण) बुद्धिभ्रष्ट हो गया है। अतः, उसने इस (विभीषण) से कहा कि तू मेरा भाई बनकर जनमा है, इसीलिए तू बच गया। यदि अब यहाँ खड़ा रहा, तो मृत्यु को प्राप्त होगा। चला जा यहाँ से। इसलिए, यह सब कुछ त्याग कर (राम की शरण में) आया है—यों अनल ने विस्तार से समझाया।

इसे सुनकर मैंने कहा—मैं तुम्हारी बात प्रभु को सुनाऊँगा। फिर, वानरों से यह कहकर कि सजग होकर इनकी रक्षा करते रहो, वहाँ से चला गया।

धर्म, ज्ञान और तपस्या के प्राचीरों तथा दोषहीन क्षमा और गौरव-रूपी द्वारों से युक्त एवं करुणा-रूपी मंदिर में विष्णु के समान स्थित प्रभु (राम) के निकट, आदरपूर्वक जाकर उनके चरणों को नमस्कार किया।

उस (मैंद) ने निवेदन किया—हे प्रभु! एक निवेदन है। तब कमल की शोभा को भी मंद करनेवाली शोभा से युक्त प्रभु ने जटाओं से शोभित सिर को हिलाकर कहा—हे सत्यव्रत! तुमने जो देखा और सुना है, उसे कहो।

न जाने क्या घटना हुई है कि उस छली लंकेश का भाई कमल के समान करोंवाला विभीषण अपने चार साथियों के साथ हमारी सेना में आया है।

वानर-सेना यह कहती हुई कि 'इनको पकड़ो! मारो!' उनको घेरने लगी। तब हमने उनको रोककर उन आगंतुकों से पूछा कि तुम कौन हो? क्यों आये हो?

उसने कहा कि 'प्रतिकूल (फल देनेवाले) पापों को मिटानेवाले आदि भगवान् (राम) के चरणों की शरण में जाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।'—यही सोचकर कृपा के समुद्र (राम) की शरण में आया हूँ।'

यह भी कहा कि उसने ब्रह्मा से धर्म में आसक्ति एवं आदिमूर्त्ति विष्णु के प्रति अपार भक्ति का वर प्राप्त किया है तथा पवित्र आचरणवाला है।

यह भी कहा कि—उसने अपने अग्रज (रावण) को यह परामर्श दिया कि यदि तुम पतिव्रता (सीता) को बंदी ही बनाकर रखोगे, तो लंकानगर (राक्षसों की) अस्थियों के पर्वतों से भर जायगा और तुम्हारे मुकुट-भूषित सिर विनष्ट हो जायेंगे।

तब रावण के यह कहने पर कि 'तू मरने योग्य है। यदि मेरे सम्मुख क्षणकाल भी खड़ा रहेगा, तो तुम्हारा नाश होगा। तू यहाँ से भाग जा।' यह विभीषण यहाँ आया है—यों उसने कहा।

उस समय राम ने अपने पास बैठे हुए मित्रों से पूछा—तुमलोगों ने सारा वृत्तांत सुना। बताओ कि यह शरण देने योग्य है या त्यागने योग्य। नीति का विचार करके अपना परामर्श दो।

तब देश-काल के औचित्य को जाननेवाले, नीतिज्ञ, उज्ज्वल किरीट-भूषित सुग्रीव ने अपने करों को जोड़कर विशाल नयनोंवाले प्रभु से कहा—

हे ब्रह्मा से भी परे स्थित देव! प्रभूत वेदों तथा मनुधर्म आदि प्रसिद्ध शास्त्रों के पारंगत आप हम जैसे व्यक्तियों से परामर्श माँगते हैं, क्या हमारे मनोभाव को जाँचना चाहते हैं?

फिर भी, मैं निवेदन करता हूँ। हे करुणासागर! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार अपने विचार प्रकट करता हूँ। आप उन विचारों को उचित समझें अथवा अनुचित, परिणाम को समझकर आप अपना निर्णय करें।

यह (विभीषण) यदि अपने भाई का त्याग कर यहाँ आया है, तो इसका कारण (अपने भाई के साथ) उत्पन्न कोई युद्ध नहीं है। अन्य कोई निन्दनीय कार्य नहीं है। या अपने प्राणों का भय उत्पन्न होना भी नहीं। अतः, इसका अपने भाई को छोड़कर आना यहाँ धर्म या नीति के अनुकूल नहीं है। इन पापी राक्षसों में क्या कोई सज्जन हो सकता है।

शत्रु द्वारा आक्रमण होने पर अपनी सेना को, अपने माता-पिता को, आदरणीय गुरुजनों को, अपने राजा को, इस प्रकार त्याग देना निन्दनीय है, प्रशंसनीय कार्य नहीं है।

जब भयंकर युद्ध हो रहा हो, तब आवश्यक परामर्श न देकर, स्वयं युद्ध में जाकर, निहत हुए बिना जो यों हमारे पास भागकर आया है, वह उत्तम कार्यों से पूर्ण इस संसार में आदरणीय नहीं हो सकता।

यदि उसकी बुद्धि धर्म का अनुसरण करना चाहती है, तो धर्महीन राक्षसों का स्थान त्यागकर कहीं जाकर मरना ही उसके लिए उचित था। किन्तु, शत्रुपक्ष में से जा मिलना क्या उसके उचित है? क्या इससे उसका अपयश नहीं होगा?

अपने भाई के सुखमय जीवन में साथी बना रहा। जब युद्ध उपस्थित हुआ, तब शत्रुपक्ष में आकर मिल गया। यह व्यक्ति किसका साथी बनकर रहेगा? हे कृपामय चक्रधारी! विचार करें।

जो राक्षस (मारीच) पहले स्वर्णहिरण बना था, वह अपने भतीजे (रावण) का पापकर्म करने की प्रेरणा से प्रेरित होकर अपनी तपस्या एवं तत्त्वज्ञान को छोड़कर पाप करने लगा था। उसे देखकर भी क्या अब हम इस (विभीषण) को आश्रय देंगे? (अर्थात, यद्यपि अभी धर्म की ओर इसकी प्रवृत्ति हुई है, तो भी समय आने पर पुनः पाप में निरत होगा)।

चाहे यम ही सारे संसार को साथ लेकर हमसे लड़ने के लिए आये, तो भी हम उसका सामना करने को तैयार हैं। हमारे शत्रु का भाई आकर हम लोगों से मिल जाय और हमारा साथी बने, यह कैसी बात है?

हम राक्षस का समूल नाश करके सद्धर्म की स्थापना करने के उद्देश्य से आये हैं।—ऐसे गौरव से युक्त होकर हम यदि कृपा-हीन राक्षस को ही अपना साथी बनायें, तो क्या लोग यह नहीं समझेंगे कि हमारा पराक्रम कुंठित हो गया है।

बंधुजन एक दूसरे से पृथक् होकर भी एक जैसे रहते हैं। अपने मित्र के सुख को देखकर भी एक जैसे रहते हैं। अपने मित्र को संपत्ति खोकर दरिद्र बनते देखकर भी एक जैसे रहते हैं और जब वह संपन्न बनकर सबको भोज देता हुआ सुखी रहता है, तब भी वे एक जैसे रहते हैं (अर्थात्, बंधु सदा सभी अवस्थाओं में अपने मित्र का साथ देते हैं।)

यह छल करने के लिए ही आया है, हमारी शरण की कामना से नहीं। हे अंजनवर्ण ! क्या इस विष के समान व्यक्ति को आप अपनायेंगे ? यों सुग्रीव ने कहा।

उसके पश्चात्, शास्त्रों के ज्ञान में अपना उपमान नहीं रखनेवाले जांबवान् को देखकर राम ने पूछा—तुम्हारा क्या अभिप्राय है ? भाषण की रीति को जाननेवाले (जांबवान्) ने कहा—

चाहे कोई कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, यदि वह अपने शत्रुओं से मिलकर कार्य करेगा, तो अवश्य उसकी हानि होगी। यदि नीति का विचार किया जाय, तो क्या संसार यह विश्वास कर सकता है कि राक्षसों में सद्गुण हो सकता है ?

जो विजय प्राप्त करना चाहते हैं, अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हैं, अपनी कमी को पूरा करने चाहते हैं, वैसे लोग क्या अपने शत्रु के साथ, अधम स्वभाववाले लोगों के साथ मिल सकेंगे ? क्या यह उचित होगा ?

जिन (राक्षसों) ने वेदों और यज्ञों को नष्ट किया, वेदज्ञों को हानि पहुँचाई, देवताओं को कष्ट दिये, ऐसे पापी राक्षस हमारे पास आकर हमारा अहित न करके क्या मित्रता करेंगे ?

यदि ऐसे लोगों को शरण दें, यदि छल और असत्य को आश्रय दें या उसकी रक्षा के लिए हम अपने प्राण भी त्याग दें, तो भी हमें अपयश ही मिलेगा।

अब भावी हित या अनहित के बारे में क्या कहा जाय ? इस (विभीषण) का आगमन भी, इसके पहले वनवास के समय में हिरण के वेष में आये हुए राक्षस के आगमन के जैसा ही (अहितकर) है।—यों जांबवान् ने कहा।

विविध शाखाओं में विभक्त शास्त्रों से उत्पन्न ज्ञान से संपन्न प्रभु (राम) ने नील को देखकर पूछा—क्या तुम्हारा अभिप्राय है ? कहो। तब नील कहने लगा—

शत्रु को अपना साथी बना लेना ठीक नहीं है। हे शास्त्रों के ज्ञान से परिपूर्ण प्रभु ! मैं कुछ कहना चाहता हूँ। एक वानर का वचन उपहास के योग्य ही है। फिर भी, कृपा कर सुनिए।

जो भीषण युद्ध में अपने कुल के लोगों को ही मारते हैं, जो अत्यंत दीन बनकर शरण में आते हैं, जो स्त्री के निमित्त (अपने पक्ष के किसी व्यक्ति से ही) वैर रखते हैं। जो दूसरों के द्वारा अपनी प्रभूत संपत्ति के हर लिये जाने पर दरिद्र हो गये हैं—

जो अभिमानी स्वभाववाले हैं, जो युद्ध में पीठ दिखाकर भाग जानेवाले हैं, जो संपत्ति का वारिस बने हुए अपने कुल के लोगों को मरवा देते हैं,

जो दूसरे राज्य के राजा की आज्ञा से पीडित हैं, जो शत्रु के साथ मिले हुए हैं— वैसे लोग, एक ही माता के पुत्र होने पर भी (अर्थात् , शत्रु के सगे भाई होने पर भी) हमारी शरण में आने पर आश्रय देने योग्य हैं।

किन्तु, अब जो व्यक्ति हमारी शरण में आया है, वह अपने शत्रु से पीडित नहीं हुआ है। हमारी सहायता करनेवाला नहीं है। अतः, समय पड़ने पर वह हमें छोड़कर चले जाने का विचार करेगा। उसे हम क्यों आश्रय दें ?

इस समय के महत्त्व का विचार करें, या नीति-ग्रन्थों का विचार करें।—क्या इस समय (अपने भाई पर) क्रुद्ध होकर आये हुए (विभीषण) के चरित्र को पहचानना संभव है ?—यों नील ने कहा।

सत्य ज्ञान रखनेवाले, तथा प्रेम से पूर्ण अन्य मंत्रियों ने भी एक ही निर्णय सुनाया कि उस (विभीषण) को आश्रय देना उचित नहीं है।

जब सब लोग अपना-अपना मत प्रकट कर चुके, तब ज्ञान से परे रहनेवाले प्रभु ने अनुपम ज्ञानवान् तथा नीतिज्ञ मारुति से प्रश्न किया कि तुम्हारा अभिप्राय क्या है, बताओ।

मित्र भले ही अज्ञ हों, फिर भी उनके विचारों पर ध्यान देना उचित होता है।—यों कहकर सूक्ष्म ज्ञान से पूर्ण वह मारुति सिर झुकाये, मुँह को हाथ से ढके हुए, आगे बोला—

परामर्श देने योग्य जितने लोग हैं, उन सब उत्तम व्यक्तियों ने एक ही निर्णय दिया है कि इस (विभीषण) को स्वीकार नहीं करना चाहिए। हे विज्ञ प्रभु ! अब और (अर्थात् , उस निर्णय के विरुद्ध कुछ) क्या कहा जाय ?

हे चक्रधारी ! विद्वानों के विचार का खंडन नहीं करना चाहिए, तो भी मैं कुछ कहना चाहता हूँ। इस (विभीषण) को मैं पापी नहीं समझता। इसपर मुझे कुछ आशंका नहीं है। मैं कुछ विषय निवेदन करना चाहता हूँ।

हे भ्रमरों से शब्दायमान पुष्पमाला धारण करनेवाले ! छली लोगों के उज्ज्वल मुख को देखने से ही उनके मन का कपट व्यक्त हो जाता है। (मन में) कपट होने पर उसे छिपाना असंभव है। जो भिन्न हैं, वे क्या एक होकर, मिलकर, पुनः पृथक् होते हैं ? (अर्थात् , जिनके मन भिन्न हैं, वे कभी मिल ही नहीं सकते।)

जैसे अंधकार गर्त्त में भरा रहता है, खुले स्थान में (जहाँ प्रकाश फैला रहता है) वह फैल नहीं पाता, वैसे ही कपट की भावना लोगों के हृदय के भीतर भरी रहती है। किन्तु, उसके मुख से वह व्यक्त हो जाती है।

यह (विभीषण) वाली को स्वर्ग एवं उसके अनुज (सुग्रीव) को राज्य देनेवाली आपकी विजय को तथा आपके सौजन्य को जानकर ही आपकी शरण में, (लंका का) राज्य पाने की इच्छा से, आ पहुँचा है।

यह जानता है कि वीर-वलयधारी राक्षसों का शासन उत्तम धर्म के अनुसार नहीं है, अतः शीघ्र मिट जानेवाला है। तरंगायित समुद्र से आवृत पृथ्वी का राज्य भाई को दिलानेवाली आपकी करुणा को तथा सत्यपरायणता को जानकर ही वह यहाँ आया है।

यदि यह कहा जाय कि इसके यहाँ आने का यह उचित समय नहीं है, तो (मैं यह कहूँगा कि) शत्रु वाली के नाश से आपका पराक्रम प्रमाणित हो गया है। इसलिए, यह विश्वास करके कि उस (लंकाधिपति) की भी मृत्यु निश्चित है, वह अपने साथियों को त्यागकर यहाँ आया है।

पापी राक्षस बड़े मायावी होते हैं। उन मायाओं को जाननेवाला एक व्यक्ति अब हमारे पास आ गया है। इससे योग्य फल की प्राप्ति हमारे लिए सुलभ हो जायगी।

इसके मन में कुछ भी कपट नहीं दिखाई देता। यह समझना ठीक नहीं है कि यह हमारा अहित करेगा। इस दीन बनकर आये हुए व्यक्ति को बलवान् शत्रु समझना क्या उचित है ?

जब रावण ने आज्ञा दी कि इसे मार डालो। तब इस (विभीषण) ने ही यह कहकर कि दूतों को मारना अधम कार्य है, उससे अपयश ही होगा। फिर, हम युद्ध में विजय नहीं पा सकेंगे—(उन राक्षसों को मुझे मारने से) रोका।

स्त्रियों को मारना, अधर्म से रहित ग्रंथों को मारना, विनाशकारी होने पर भी दूतों को मारना, उचित नहीं है। इस प्रकार की उत्तम युक्तियाँ इस (विभीषण) ने दी थी।

हे चक्रधारी ! जब मैं (लंका में) एक रात को इसके स्वर्णमय प्रासाद में गया था, तब वहाँ शुभ लक्षण ही दिखाई दिये थे।

वहाँ मैंने मद्यपान, अनैतिक मांसाहार आदि निन्दनीय कार्य नहीं देखे। वहाँ धर्ममय दान, उपासना, नैतिक कार्य आदि इस प्रकार हो रहे थे, जैसे वह किसी ब्राह्मण का घर हो।

इस (विभीषण) की पुत्री (त्रिजटा) ने मेरी पूजनीया माता (सीता) से कहा था कि ब्रह्मा का दिया हुआ एक शाप है कि यदि दुर्मति रावण तुम्हारा स्पर्श करेगा, तो वह यमपुर को पहुँच जायगा।

(रावणादि) राक्षसों के द्वारा प्राप्त किये महान् वर, उनके जन्मसिद्ध छल— सब आपके धनुष से निकले एक शर से जलकर भस्म हो जायेंगे।—यह जानकर ही यह राक्षस (विभीषण) यहाँ आया है। इसके ज्ञान को, इसके द्वारा प्राप्त वर को तथा अपनी करुणा का विचार करें, तो क्या इस राक्षस (विभीषण) से बढ़कर तपस्वी अन्य कोई हो सकता है ?

आप देवों, दानवों, दिक्पालों एवं त्रिमूर्त्तियों के लिए भी असंभव कार्य को पूर्ण करने का निश्चय कर चुके हैं। आपत्ति में पड़ा हुआ एक व्यक्ति आपसे अभयदान की प्रार्थना कर रहा है। यदि उसे आप छोड़ देंगे, तो क्या वह कार्य ऐसा ही नहीं होगा, जैसे समुद्र एक कुएँ को देखकर डर जाय।

यदि यह सोचकर कि शत्रुपक्ष के लोग मित्रता के योग्य नहीं हैं, हम इस (विभीषण) को आश्रय न दें, तो हम उपहास के योग्य बनेंगे। स्वभावतः, एक दूसरे से प्रेम रखनेवाले पिता, भाई आदि निकट संबंधी भी किसी वस्तु के लोभ में पड़कर परस्पर ऐसे वैरी बन जाते हैं कि एक दूसरे को मारने पर तुल जाते हैं, यही संसार की रीति है न?

अतः, इसके आगमन को मैं श्रेयोदायक ही मानता हूँ। वेद के समान (गंभीर) आपके हृदय को मैं नहीं जानता।—यों उस मारुति ने कहा, जो चतुर्मुख ब्रह्मा के लिए भी गुनने को कठिन सकल शास्त्रों के ज्ञान को सूर्य से प्राप्त किया था तथा समुद्र को पार करके जगत् का उद्धार किया था।

हनुमान् के इन वचनों को सुनकर महान् ज्ञानी प्रभु संतुष्ट हुए, जैसे उन्होंने अमृत का पान किया हो, और बोले—'ठीक है! ठीक है!' फिर, सबको देखकर कहा—ठीक-ठीक विचार करके देखो, यह सलाह बिलकुल उचित जान पड़ती है। आगे वे बोले—

यह (विभीषण) विचार करके उचित समय पर ही यहाँ आया है। यह (लंका के) राज्य की कामना से यहाँ आया हो, फिर भी इसका ज्ञान सीमारहित है। हमारी शरण में इसका आगमन यही सूचित करता है कि यह तपस्या-संपन्न और दोष-रहित है, जो अब विपद्-ग्रस्त हुआ है।

अब और कुछ कहना आवश्यक नहीं। हनुमान् का निष्कर्ष ठीक ही है। हम चाहे विजय पायें या पराजय, फिर भी जो 'अभयदान दो' कहता हुआ हमारी शरण में आया है, उसे हम अवश्य स्वीकार करेंगे।

यह आज ही हमारी शरण माँगने आया है—यह कोई महत्त्व की बात नहीं। यदि मेरे पितृतुल्य जटायु को मारनेवाला (रावण) ही शरण माँगे, तो मैं उसे भी शरण दूँगा। हमारे आश्रय में आनेवाले हमारे दीर्घकालिक मित्र के समान ही प्यारे होते हैं। यदि पीछे वह हमें छोड़कर चला जाय, तो भी उससे हमारा यश ही होगा, अपयश नहीं।

हम जन्म से ही उस 'शिवि' चक्रवर्त्ती का यश गाते आ रहे हैं, जो (एक कपोत को व्याध से बचाने के लिए स्वयं तराजू में बैठा या और उसकी तौल के बराबर अपना मांस देने लगा था। आज यदि मैं आश्रय न देकर इसको त्याग दूँ, तो इससे वह दिन ही मेरे लिए श्रेष्ठ होगा, जब मैं इस (आश्रित राक्षस) के द्वारा मारा जाऊँगा।

क्या तुम यह नहीं जानते कि संकट-ग्रस्त (देवों) के अभय माँगने पर किस प्रकार समुद्र से निकले हुए हलाहल को शिवजी ने पी लिया था। यदि कोई विपदा में पड़े हुए व्यक्ति की सहायता न करे, अपने पास की कोई वस्तु दूसरों को नहीं दे तथा शरणागत पर कृपा न करे, तो उसका धर्म कहाँ रहा और उसका पौरुष कहाँ रहा?

एक व्याध एक कपोती को पकड़कर, उसके नर-कपोत को भी पकड़ने के विचार से वृक्ष के नीचे बैठा था, तब उस कपोत ने उसकी भूख मिटाने के लिए अपना शरीर ही दे दिया था और मुक्ति प्राप्त की थी, यह वचन वेद के समान आदरणीय है न?

जब मगर से युद्ध करते समय निर्बल होकर एक गज ने भगवान् को पुकारा था और यह कहा था कि 'शरण दो', तब वेदों के लिए अगम्य परमपुरुष ने प्रकट होकर

उसके महान् दुःख को दूर किया था। क्या ज्ञानीजन कभी इस बात को भूल सकते हैं?

जो भगवान् समस्त जगत् की सृष्टि और उसकी रक्षा करता है, जो भगवान् स्वयं नानारूपात्मक जगत् तथा धर्म बनकर रहता है, वही शरणागत को शरण देकर (चाहे वह कितना बड़ा पापी क्यों न हो), मोक्ष प्रदान करता है। तो, अब और क्या प्रमाण चाहिए? (भाव यह है कि चाहे कोई कितना भी पापी क्यों न हो, यदि वह भगवान् की शरण में आकर अभय माँगता है, तो वे उसके पापों का विचार किये बिना उसकी रक्षा करते हैं। यही धर्म है।)

विष को कंठ में धारण करनेवाले (शिवजी) ने पूर्व (मार्कण्डेय के) पिता की प्रार्थना से उसे पुत्र होने का वर दिया था। किन्तु, जब सोलह वर्ष की आयु में ही उस पुत्र को मृत्यु प्राप्त हुई, तब उसने शिवजी से अभयदान माँगा। तब उन देव ने पदाघात के द्वारा क्रोधी यम को हटा दिया था। शरणागत की ऐसी रक्षा से बढ़कर और क्या हो सकता है?

जब (पंचवटी में) जानकी यह कहकर रोई थी कि 'मुझे शरण देकर मेरी रक्षा करनेवाला कौन है?' तब जटायु ने, यह कहकर कि डरो मत, मैं हूँ, उस क्रूर राक्षस (रावण) से भयंकर युद्ध करके अपने प्राण दिये थे। मेरे लिए भी वैसा ही आचरण योग्य है न?

'तुम्हारी शरण में हूँ', यों कहनेवाले के प्राणों की जो अपने प्राणों के समान ही रक्षा नहीं करता, जो दूसरों के उपकार को भूल जाता है, जो वेदों के द्वारा विहित सत्य-मार्ग को असत्य कहता है—वे सब ऐसे नरक में जायेंगे, जिससे उद्धार पाना कठिन है।

मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि देवताओं का अहित करनेवाले राक्षसों का वध करूँगा।[1] यह प्रतिज्ञा मैंने सीता के निमित्त नहीं की थी। किन्तु, जब मुनियों ने मुझसे अभय माँगा था, तब मैंने उनको वैसा वचन दिया था। क्या मैं उस वचन को लाँघ सकता हूँ?

चाहे हित हो या अहित, दयालु लोगों के लिए इससे (अर्थात्, शरणागत की रक्षा से) बढ़कर अन्य कोई धर्म नहीं है, चाहे शरणार्थी नीच ही क्यों न हों, उनकी रक्षा के लिए अपने प्यारे प्राणों को देना ही क्षत्रिय का कर्त्तव्य होता है।

अतः, 'अभय दो' यह सुनने मात्र से अभय प्रदान करना ही उत्तम धर्म है। तुम लोगों ने मेरे प्रति अपने अगाध प्रेम के कारण ही वैसा विचार प्रकट किया था (कि राक्षस को शरण देना ठीक नहीं।) अब अन्य कुछ सोचना आवश्यक नहीं। हे सूर्य-पुत्र (सुग्रीव)! तुम स्वयं जाकर उस दोषरहित (विभीषण) को ले आओ—यों राम ने कहा।

सुग्रीव का सारा संदेह मिट गया। क्योंकि, देवाधिदेव (राम) के अभिप्राय से पृथक् उसका अभिप्राय कुछ नहीं था। अतः, सुग्रीव यह कहकर कि 'मैं शीघ्र उस

---

१. अरण्यकाण्ड में राम तथा मुनि के संवाद में इसका विवरण है।

(विभीषण) को ले आऊँगा,' उस सत्य के आश्रयभूत (विभीषण) के निकट चल पड़ा।

इधर मैंद के भाई (दुर्मिद) ने कपिराज को आते देखकर अपने अग्रज से कहा—हे भाई, पर्वताकार कंधोंवाले सूर्यपुत्र आ रहे हैं। तब दुविधाग्रस्त चित्तवाला (विभीषण) प्रसन्नचित्त होकर सामने आया।

दीर्घकाल से सहवास करते रहने पर भी कपटी लोग पवित्र मित्रता नहीं कर सकते। किन्तु, जो पवित्र चित्तवाले होते हैं, वे (प्रथम) दर्शन में ही सुहृद् बन जाते हैं। वे दोनों (अर्थात्, विभीषण और सुग्रीव) परस्पर का हृदय एक करते हुए, ऐसे आलिंगन में बँध गये, जैसे दिन तथा रात्रिकाल परस्पर आलिंगन कर उठे हों।

तब सूर्यपुत्र ने (विभीषण से) कहा—कमलनयन (राम) ने अपने प्राचीन कुल-धर्म के अनुसार निर्दोष रूप से तुम्हें अभय प्रदान किया है। अतः, अब शीघ्र आकर उनके मनोहर चरणों का नमस्कार करो।

सिंह-सदृश सुग्रीव का वह वचन कान में पड़ने के पूर्व ही रात्रि के जैसे रंगवाले उस (विभीषण) की आँखों से आनन्दाश्रु की धारा बह चली। उसके शरीर पर यों पुलक छा गई, जैसे उसके मन में उत्पन्न शीतलता ही उमड़कर बह चली हो।

रुई के समान कोमल चरणोंवाली (सीता) देवी को उनसे वियुक्त करनेवाले पापी वंचक के भाई मुझ (राक्षस) को भी क्या उन्होंने अभयदान दिया है? क्या मुझे भी उन्होंने अपने शरण में लिया है? अहो! प्रभु की कृपा से मुझ-जैसा एक स्वान भी जटाधारी (शिवजी) के द्वारा पिये गये विष के समान श्रेष्ठ बन गया।

हाय! उस भ्रांतचित्त (रावण) ने मेरी बात नहीं मानी। रथारूढ हो गगन पर चलनेवाला सूर्य अब लंका के ऊपर से जा सकेगा (अर्थात्, रावण का प्रताप मिट जाने से सूर्य अब उससे नहीं डरेगा)। यदि निर्मलचित्तवाले प्रभु (राम) का स्वभाव ऐसा है, तो वे राक्षस व्यर्थ ही अपने को मिटा रहे हैं (अर्थात्, वे प्रभु की शरण में न जाकर पापकर्म करके विनष्ट हो रहे हैं)।

कठोर पाप करनेवाले भी यदि उन पवित्र हृदयवाले महान् कृपालु की शरण में आते हैं, तो रक्षा पाते हैं। पूर्व में क्षीरसमुद्र ने, उसमें बड़े पर्वत को डालकर संतप्त करते हुए उसे मथनेवाले देवों को भी अमृत दिया था न?

मुनियों तथा तपस्वियों का हित करनेवाले पवित्र प्रभु ने मुझे शरण देकर मेरी रक्षा की है। मैं कठोर पाप से भरी माया से मुक्त हुआ और जन्म-बंधन से भी मुक्त हुआ। नरक से बचा।

सुचारु ज्ञान से पूर्ण सूर्यपुत्र ने कहा—हे बुद्धिमान्! प्रभु अपने शरणागतों की रक्षा करने में निरत रहते हैं। इसमें चाहे उनका हित हो या अहित। वे सबको अपने प्राणों के समान प्रिय मानते हैं। वे निष्कलंक (प्रभु) तुम्हें देखना चाहते है। अतः, शीघ्रतर उनके पास चलो।

जैसे अंजन-पर्वत एवं (स्वर्णमय) मेरु-पर्वत, मेघों से आवृत अनेक शैलों से

घिरकर जा रहे हों, वैसे ही वे दोनों पुण्यात्मा (विभीषण और सुग्रीव) वानरों से घिरे हुए चले और सप्त सालवृक्षों को गिरानेवाले प्रभु के समीप जा पहुँचे।

चतुस्समुद्रों से आवृत धरती के चक्रवर्त्ती के कुमार (राम) को विभीषण ने वानर-सेना से आवृत एक स्थान में देखा। उनके पार्श्व में धनुर्धारी लक्ष्मण सतर्कता से उनकी रक्षा कर रहे थे। रामचन्द्र कुमार (राम) ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानों कोई कालमेघ क्षीरसमुद्र से घिरा हुआ; धनुर्धारी मेरु-पर्वत से रक्षित तथा प्रफुल्ल कमलों से युक्त दिखाई दे रहा हो![1]

(विभीषण ने) समय पड़ने पर इस पृथ्वी को भी उठाकर गगन में फेंक देने की शक्ति रखनेवाली वानर-सेना के मध्य राम को यों शोभायमान देखा, जैसे पूर्व में स्वच्छ तथा शीतल वीचियों से युक्त एवं अतिस्वच्छ धवलवर्ण क्षीरसागर पर देवों की प्रार्थना पर (भगवान् विष्णु) निद्रा से उठे थे।

विभीषण ने उन राम को देखा, जो ऐसे शोभायमान थे, जैसे वक्र वीचियों-रूपी भौंहों से युक्त, अत्यन्त उज्ज्वल मुक्ताओं की जैसी कांति से अलंकृत सैकत-रूपी श्वेत विस्तीर्णता के मध्य उज्ज्वल ललाटवाली सीता की (आँखों की) पुतली शोभित हो रही हो।[2]

प्रलयकाल में जैसे कोई कालमेघ इन्द्रधनुष से रहित होकर दिखाई पड़ रहा हो, वैसे ही वक्ष पर रत्नहार से रहित हो शोभायमान रहनेवाले एवं जैसे मंदराचल, वासुकि नामक मथने की रस्सी से विहीन दिखाई पड़ रहा हो, वैसे ही कंकण आदि आभरणों से रहित भुजाओं से शोभायमान होनेवाले प्रभु को (विभीषण ने) देखा।

विभीषण ने उन प्रभु को देखा, जिनका वदन धवल चन्द्रिका को छोड़कर केवल करुणा-रूपी अमृत को फैलानेवाले पूर्णचन्द्र के समान था और जो अपने पिता के दिये मुकुट को अपने भाई को देकर अपनी जननी के आज्ञानुसार जटामय मुकुट से शोभायमान हो रहे थे।

विभीषण ने जब उन महान् वीर (राम) को देखा, तब उसकी देह में पुलक छा गई। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह चली। उसका हृदय द्रवित हो उठा। उसने सोचा—क्या यह अरुण नयनोंवाला कोई अंजन-पर्वत है? किन्तु नहीं। या कोई काल-मेघ कमल-पुष्पों से भरा है? नहीं। अवश्य यह भगवान् विष्णु ही है। अहो! क्या अपूर्व करुणा एवं धर्म का आकार भी काले रंग का होता है?

जुगनू के जैसे चमककर मिट जानेवाले जीवन से मुक्ति प्राप्त करके रत्नकिरीट को छोड़कर (राम की) पादुकाओं को सिर पर धारण करनेवाले (भरत) के भाई, प्रभु (राम) के कमल-समान चरणों में मैं शरण पा सका। अहो! मेरे भाई (रावण) ने मेरा कैसा उपकार किया है!

---

१. वानर-सेना क्षीरसमुद्र है। लक्ष्मण मेरु-पर्वत और राम कालमेघ।

२. समुद्रतट को कवि ने सीता का नेत्र कहा है। वीची भौंहें हैं। उज्ज्वल सैकत नेत्र का श्वेत भाग है और रामचन्द्र आँख का तारा। यह अति सुन्दर उपमान है।—अनु०

फिर, विभीषण ने मन में सोचा—महान् तपस्या करनेवाले लोगों की जन्म-व्याधि को दूर करनेवाली ओषधि बने हुए प्रभु (राम) स्वयं शर-संधान कर (राक्षसों को) जन्महीन करनेवाले हैं। अहो ! इसके बारे में क्या कहा जाय ? राक्षस भी बड़ी तपस्या से संपन्न हुए हैं ! (अर्थात्, राम के बाणों से निहत होकर राक्षस मुक्ति के अधिकारी बन जायेंगे, इसलिए उनकी तपस्या धन्य है।)

विभीषण के दोनों हाथ उसके रत्नमय किरीट पर जुड़ गये। (राम के प्रति) उसकी भक्ति देखकर पत्थर और वृक्ष भी पिघल गये। करुणासमुद्र प्रभु की दृष्टि जैसे-जैसे उस (विभीषण) पर पड़ती गई, वैसे-वैसे वह धरती पर गिरकर दंडवत् करता हुआ जाकर वरदानों की जलधि के सदृश (राम के) चरणों पर नत हुआ।

'अब मेरा जन्म-बंधन टूट गया'—ऐसा भाव उस (विभीषण) के मुख पर प्रकट हो रहा था। आँखों के अश्रुजल से सिक्त अपने वक्ष को पृथ्वी पर अंचित करते हुए और दण्डवत् करते हुए विभीषण को प्रभु ने देखा, मानों वे अपनी करुणा से ही उसको आलिंगित कर रहे हों और उठकर अपने कर कमलों से उसे पकड़कर आसन पर बिठा लिया।

कृपामय दृष्टि से चक्रधारी ने उसे देखा और उमंग से भरकर कहा—जब-तक चौदह भुवन स्थिर रहेंगे और जबतक मेरा नाम संसार में स्थिर रहेगा, तबतक उज्ज्वल दाँतोंवाले राक्षसों की लंका का राज्य तुम्हारा ही रहेगा।

प्रभु की कृपा का पात्र बनकर उस (विभीषण) ने बड़ा महत्त्व प्राप्त किया। ज्यों ही प्रभु ने वह वचन कहा, त्यों ही संसार के चराचर प्राणी सब पृथक्-पृथक् यह कहकर हर्षध्वनि कर उठे कि अब हम तर गये।

'यह दास अब उद्धार पा गया'—यह कहकर बार-बार चरणों पर नत होनेवाले अंजन-पर्वत के समान उस (विभीषण) को प्रभु ने कृपापूर्ण दृष्टि से देखा। फिर, अपने दोषहीन यशस्वी भाई (लक्ष्मण) को देखकर कहा—हे निद्राहीन नयनोंवाले! इसे (लंका का राज्य पाने के उपलक्ष्य में) मुकुट पहनाओ।

तब भविष्य के परिणामों को जाननेवाले विभीषण ने प्रभु से निवेदन किया—हे प्रभु ! आपने मुझे अपरिमेय संपत्ति प्रदान कर दी। छली राक्षस का भाई होकर जन्म लेने का मेरा दोष भी आपने दूर कर दिया। आपने अपने भाई (भरत) को जो पादुकाएँ दी थीं, उन्हें मुझे भी प्रदान करें।

तब राम ने कहा—(पहले हम चार भाई थे) गुह के साथ हम पाँच बने। फिर मेरु की परिक्रमा करनेवाले सूर्य के पुत्र (सुग्रीव) के साथ मिलकर हम छह भाई बने। प्रेम-भरे हृदय के साथ हमारे पास आनेवाले तुम मेरे सातवें भाई बने। मुझे वन में भेजकर तुम्हारे पिता (अर्थात्, यहाँपर दशरथ) अनेक उत्तम पुत्रों के पिता बने।

तब विभीषण ने कहा—हे प्रभु ! अब क्या कहूँ ? आपने मुझ श्वान-समान व्यक्ति को भी अपना भाई बना लिया ! मैं पहले दास था, अब श्रेष्ठ बन गया—यह कहकर मन की आशंका से रहित होकर उसने प्रभु के स्वर्णवलय-भूषित चरणों की पादुकाओं को सिर पर रख लिया।

प्रभु की पादुकाओं को सिर पर धारण किये, सूर्य से शोभायमान पर्वत के जैसे स्थित उस राक्षसराज (विभीषण) को देखकर दोनों भाई आनन्दित हुए। सब वानर आनन्दित हुए। देवताओं ने आशीर्वाद देकर उसपर पुष्पवर्षा की।

तब सातों समुद्र हर्षध्वनि कर उठे। मेघ शब्द कर उठे। दिव्य भेरियाँ बज उठीं। शंख बज उठे। स्वर्णमय वर्षा हुई। सुगंधित चूर्ण अंतरिक्ष में फैल गया। उस समय सर्वत्र महान् ध्वनि भर गई।

कमलभव ब्रह्मा, जो अमृत के समान मधुरवाणीवाली सीता के प्रति रावण के अपराध करने से यह सोचकर कि मेरा वंश पतित हो गया, दुःखी हो रहे थे, अपने असह्य संताप से मुक्त हुए। धर्म-देवता भी यह कहकर हर्षनाद कर उठा कि रावण का पापमय वैभव अब मिट गया।

जब ऐसा हो रहा था, तभी राम ने लक्ष्मण से कहा—लंका का राज्य विभीषण को मिला है—इस समाचार को सर्वत्र सुनाते हुए हमारी विशाल सेना में इस (विभीषण) को घुमाओ।

तब मंदर-समान कंधोंवाले लक्ष्मण एवं सुग्रीव ने अपार गुणों से पूर्ण विभीषण को (राम की) पादुका-रूपी मुकुट के साथ, चन्दनमय विमान पर आरूढ कराके, वानर-सेना-पतियों के उस (विमान) को उठाकर चलते हुए, स्वयं यह घोषणा करके कि 'इस (विभीषण) ने इन्द्र की संपत्ति प्राप्त की है', सारी सेना में घुमाया।

अन्वेषण करनेवाले (तत्त्वज्ञानी) जिन चरणों को प्राप्त करते हैं, उनको चतुर्मुख ने स्वयं प्राप्त करके अपने कमंडलु के जिस जल से उसको सिंचित किया था, उस जल की धारा में (अर्थात्, गंगा में)[1] स्नान करनेवाले भी जब सकल पापों से मुक्त होकर परमपद प्राप्त करते हैं, तब उन लोगों के बारे में क्या कहा जाय, जो स्वयं उन चरणों को ही सिर पर धारण करते हैं?

ज्ञानी महान् आश्चर्य के साथ यह कह उठे—अबतक जितने ऋषि, ज्ञानी, महान् योगी, बड़े-बड़े यज्ञ करनेवाले हुए हैं, उनमें कौन ऐसा हुआ, जिसने इस लंकेश (विभीषण) के जैसा भाग्य पाया? (१—१५४)

●

अध्याय ५

लंकाप्रबंध-श्रवण पटल

रामचन्द्र ने अपने चरण पर आकर नत हुए राक्षसराज को एक सुन्दर विश्राम-स्थान प्रदान किया और (विश्राम करने को) उसे भेज दिया। इतने में सूर्य ने भी अपनी उष्ण किरणों को समेट लिया।

१. त्रिविक्रमावतार में भगवान् का चरण जब ऊपर के लोकों में पहुँचा, तब ब्रह्मा ने अपने कमंडलु के जल से धोकर उस (चरण) की पूजा की। वही जल गंगा बनकर बहा था।—अनु०

राम संध्या-वंदन आदि सायंकृत्य पूर्ण करके शान्तचित्त होकर निःश्वास भरते हुए विश्राम करने लगे। मन्मथ अपने पुष्पबाणों का प्रयोग करके उन्हें पीडित करने लगा। तब संध्या आई। सारे ब्रह्मांड में अंधकार छाने लगा।

विशाल दिशाओं को अंधकार यों आवृत करने लगा, जैसे काला समुद्र उमड़कर सर्वत्र व्याप्त हो रहा हो। जल-भरे सरोवर में जैसे पुष्प विकसित हुए हों, वैसे ही नक्षत्र चमक उठे।

तन्वंगी सीता का स्मरण करके संतप्त होनेवाले धनुर्धारी (राम) के मन को दुःखी करने की इच्छा से ही मानों मल्ली-पुष्पों का वन भी गगन के नक्षत्रों के समुदाय के समान ही प्रफुल्ल हुआ।

उज्ज्वल करवाल-समान चन्द्रमा, अपने अंतर के कलंक के साथ मानों यह विचार कर उदित हुआ कि अपने अनुपम मुखच्छवि से मुझे नीचा दिखानेवाली (सीता) के पति को मैं आज पराजित कर दूँगा।

चन्द्रमा ने मानों यह सोचकर कि दृष्टि से परे कहीं अदृश्य रहने पर भी यदि स्त्री (सीता) की छाया दिखाई पड़े, तो मैं पकड़ लूँगा, उसने समुद्र से आवृत पृथ्वी में सर्वत्र अपनी चन्द्रिका-रूपी जाल को फैला दिया।

ऊँची तरंगों-रूपी हाथों को उठा-उठाकर बड़ा शब्द करनेवाला समुद्र ऐसा लगा, जैसे वह यह सोचकर कि अपने वास्तविक रूप को छिपाकर (मनुष्य-रूप धारणकर) आया हुआ राम उसपर बाँध बनाकर उसे रोकने आया है, व्याकुल होकर हलचल से भर गया हो।

समुद्र-रूपी सर्प ने अनेक युगों से जो केंचुलियाँ छोड़ी हैं, वे सब एकत्र हो पड़ी हों, यों समुद्र के विशाल तट पर सर्वत्र दूध की धारा के समान चन्द्रिका फैल गई।

सुगंधित मल्ली-पुष्प-रूपी दाँतोंवाला, भ्रमर-रूपी काली चित्तियोंवाला (पुष्पों के) मधु-बिंदुरूपी आँखोंवाला मलयपवन-रूपी व्याघ्र पर्वत की कंदराओं से होकर गरजता हुआ निकला।

बेद

अपने हाथों से अति गंभीर क्षीरसमुद्र को जिसने मथ डाला था, उस (वाली) के वक्ष को एवं वन में सिर ऊँचा करके खड़े रहनेवाले सप्त सालवृक्षों को जिसके शर ने विद्ध कर दिया था, उस (राम) के वक्ष में चन्द्रिका-रूपी करवाल, मन्मथ के शरों के साथ, घुस गया।

रामचन्द्र अपनी देह को देखते। अपने प्राण-समान सीता को देखते (अर्थात्, स्मरण करते)। अपने सम्मुख उपस्थित बाधाओं को देखते, सामने पड़े समुद्र को देखते। उस चोर (रावण) के निवासभूत (लंका) द्वीप को देखते और फिर अपने धनुष को देखते।

वे प्रभु अति सुन्दर मेखलाधारिणी (सीता) के प्रति प्रेम के कारण उन्मत्त-से हो गये। क्या मुक्ता-समान उज्ज्वल दाँतों तथा लाल मणि के समान शोभित (सीता के) मुँह को वे भुला सकते थे?

इसी समय सूर्यपुत्र ने आकर निवेदन किया—हे प्रभु! आप क्यों व्याकुल

हो रहे हैं? अब करने योग्य जो कार्य हैं, उनको उस आगंतुक (विभीषण) के साथ परामर्श करके पूर्ण करने का विचार कीजिए।

तब प्रभु शिथिलता को छोड़कर स्वस्थ हुए। और, (सुग्रीव से) कहा—'उस सन्मार्गगामी बुद्धिमान् (विभीषण) को ले आओ।' सुग्रीव के बुलाने पर, दुष्ट मार्ग को छोड़कर धर्म-मार्ग पर चलनेवाला (विभीषण) आ पहुँचा।

सुरभित तथा सद्योविकसित कमल-पुष्पों से भरे तालाब के समान लगनेवाले प्रभु ने सुन्दरता से पूर्ण कमल-समान चरणों पर नत हुए विभीषण से कहा—उठो। यहाँ आसीन होओ। तब विभीषण वैसे ही आसीन हुआ।

राम ने विभीषण से पूछा—समुद्र से आवृत लंका के प्राचीरों, उसकी रक्षा, वहाँ के मुखरित वीर-कंकणधारी राक्षस (रावण) के बल तथा उसकी सेना के विषय में विस्तृत रूप में कहो।

तब विभीषण उठकर खड़ा हुआ। राम ने कहा—बैठ जाओ। फिर, कमल-नयन ने उस सम्पूर्ण ज्ञानवाले (विभीषण) से जो पूछा, उसका विस्तृत उत्तर उस (विभीषण) ने हाथ जोड़कर यों दिया।

पूर्व-उत्तर दिशा में स्थित मेरु के शिर के समान स्थित स्वर्णमय शिखर-त्रय[1] को तोड़कर हनुमान् के पिता (पवन) ने तरंगायमान समुद्र के मध्य डाल दिया था।

उस (लंका) का प्राचीर सात सौ योजन विशाल है। उसकी गहराई शत योजन है, सारे संसार को जैसे चक्रवाल-पर्वत घेरकर रहता है, वैसे ही वह प्राचीर स्थित है और सूर्य से भी अधिक ऊँचा है।

उस (प्राचीर) की व्यवस्था को, उसमें रखे गये यंत्रों के महत्त्व को तथा उसकी रक्षक सेना आदि के संबंध में हम विचार भी नहीं कर सकते। काला समुद्र ही उसके चारों ओर परिखा बनाकर पड़ा हुआ है।

उसके उत्तर द्वार पर सोलह कोटि राक्षस निरंतर उसकी रक्षा करते रहते हैं। वे युगांत में प्रकट होनेवाले रुद्र से भी युद्ध करने की शक्ति रखते हैं।

पश्चिम द्वार पर रहनेवाले भयंकर राक्षस, उनसे (अर्थात्, उत्तर द्वार पर स्थित राक्षसों की अपेक्षा) दो करोड़ अधिक हैं। यदि वे अपनी आँखें टेढ़ी करके यम को देख लें, तो रक्त के साथ उसके प्राण भी सूख जायेंगे।

दक्षिण दिशा में सोलह कोटि क्रूर राक्षस स्थिर हैं। उन पर्वताकार राक्षसों की क्रूरता का क्या वर्णन किया जाय? वे यम को भी उसके राज्य से हटा देने की शक्ति रखनेवाले हैं।

पूर्व दिशा में जो अधम राक्षस हैं, वे भी सोलह कोटि संख्या में हैं। दिशाओं में स्थित पर्वताकार दिग्गजों को भी पैरों से पकड़कर उन्हें धरती पर पटक दे सकते हैं।

सोलह करोड़ क्रूर राक्षस गगन में रहकर लंका की रक्षा करते हैं। धरती पर भी उतने ही राक्षस, देवता आदि शत्रुओं से लंका की रक्षा करने के लिए खड़े रहते हैं।

---

१. यही त्रिकूट-पर्वत है, जिसपर लंका बसी थी।

उस अति विशाल प्राचीर के दोनों पार्श्वों में, निद्रा से हीन, हवा का ही आहार करके रहनेवाले तथा चरखी के समान सर्वत्र घूमनेवाले राक्षस दस सौ कोटि हैं।

ऐसे प्राचीर तीन हैं। उनकी व्यवस्था का वर्णन कहाँतक किया जाय ? समस्त वैभव से परे लंकानगर के रक्षक के रूप में तीस कोटि से तिगुने राक्षस रहते हैं।

उस (रावण) के द्वारा सम्मानित, प्रभूत संपत्ति से पूर्ण, धर्म के महान् शत्रु, अपार शक्ति से भरे हुए, बड़े-बड़े शत्रुओं से युद्ध करके सच्ची सहायता करनेवाले राक्षस सोलह सौ करोड़ हैं।

क्रोधाग्नि से पूर्ण नयनोंवाले, पलक मारने में भी कर्त्तव्य की हानि समझनेवाले राक्षस, मेरु की समता करनेवाले और नगर-द्वार पर बायें और दायें घूमते रहनेवाले राक्षस की संख्या चौंसठ करोड़ है।

अधिक कहने से क्या प्रयोजन ? उसने इस विशाल धरती पर जो बड़ी सेना एकत्र कर रखी है, उसका यदि संहार करना चाहें, तो अनेक दिनों तक ऐसा करते रहना पड़ेगा। ऐसी उसकी सेना की संख्या सहस्र 'समुद्र' है।

इतना ही नहीं। यदि उसके विशाल प्रासाद के आँगन में स्थित राक्षसों के बारे में कहें, तो वे इस संसार को उठाने की शक्ति रखते हैं, पर्वत के समान दृढ हैं। उनकी संख्या करोड़ों में है।

लंका की रक्षण-व्यवस्था ऐसी है। शिवजी ने जो करवाल दिया था, उसे दक्षिण हस्त में रखनेवाले उस (रावण) के साथी असंख्य हैं। वे अपार बल, वर तथा तपोबल से युक्त हैं।

प्रलयाग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण कुंभ नामक एक वीर है, जिसके पास हाथियों, रथों, अश्वों आदि की दो करोड़ सेना है। स्वर्ग में स्थित सिद्धों को उसने बंदी बनाया था।

अनेक युग-पर्यंत तपस्या करके जिसने अनेक वर प्राप्त किये हैं, जिसको युद्ध के अतिरिक्त और कोई सुख ही नहीं है, जिसके पास बहुत-बड़ी सेना है और जो नख एवं दाँतों से हीन नरसिंह के समान है, ऐसा अकंप नामक एक वीर है। वह तरंगायमान समुद्र को भी पीने की शक्ति रखता है।

'निकुंभ' नामक एक वीर है, जिसके पास पर्वत से भी बड़े घोड़ों, हाथियों, रथों तथा पदाति-सेना है, जो नौ करोड़ से भी अधिक है और जिसने गगन में मेढ़ के वाहन पर सवार होकर आनेवाले अग्निदेव को भी हरा दिया था।

'महोदर' नामक एक वीर है; जिसके पास भूतों, शरभों, हाथियों तथा गदहों से जुते रथों की दस करोड़ सेना है, जिसने अपनी माता को भी छल से पीडित किया था।

पर्वतों में निवास करनेवाले नौ करोड़ राक्षसों का अधिपति 'यज्ञशत्रु' नामक एक क्रूर राक्षस है, जो सब प्राणियों को दाँतों से चबाकर यों खा जाता है कि जो आज हैं, वे कल अदृश्य हो जाते हैं। उसने अनेक बार देवों को युद्ध में हराया है।

एक 'सूर्यशत्रु' नामक तीक्ष्ण स्वभाववाला राक्षस है, जो आँखों से घूरकर अग्नि

को भी भयभीत कर देता है और जिसके पास आठ करोड़ की ऐसी सेना है, जो धरती एवं स्वर्ग के सब निवासियों को एक ही दिन में निगल जा सकती है।

एक 'महापार्श्व' नामक वीर है, जो पर्वत से भी अधिक प्रबल है, जो इतना भयंकर और क्रोधी है कि देवता, मुनि तथा त्रिमूर्त्ति भी (उसके भय से) बगलें झाँकते रहते हैं और जिसके पास सोलह करोड़ की भयंकर सेना है।

'वज्रदंष्ट्र' नामक एक वीर है, जो यम का प्रतिद्वन्द्वी है, जिसका मुख प्रज्वलित शिखावाली अग्नि के समान है, जिसके पास आठ करोड़ की घातक सेना है और जो त्रिमूर्त्तियों के लिए भी अजेय है।

एक 'पिशाच' नामक उन्मत्त राक्षस भी है, जिसके पास दस करोड़ अचंचल सेना है, जो युद्ध में अपने अतिरिक्त अन्य किसी को भी अपने वश में कर सकता है और जिसने पूर्व में एक भयंकर युद्ध में यक्षों का विनाश किया था।

एक 'दुर्मुख' नामक धर्म-रहित राक्षस है, जो अति महान् रथों, हाथियों, अश्वों तथा उत्तम धनुर्धारी पदाति-सैनिकों की चौदह करोड़ सेना का अधिपति है और जो इतनी शक्ति से युक्त है कि समुद्र को भी बड़े पर्वत के समान मथ सकता है।

'विरूपाक्ष' नामक एक राक्षस है, जो घूरकर देखता है, तो सूर्य को भयभीत कर देता है, जो समुद्र-मध्य स्थित लंका नामक द्वीप के मध्य दस करोड़ शूलधारी सैनिकों का नेता है और जिसने खड्ग-प्रयोग में कुशल विद्याधरों के यश को भी मिटा दिया था।

एक 'धूम्राक्ष' नामक राक्षस है, जिसने देवताओं को भगाया था, जो शवों को श्मशान में न छोड़कर अपने दाँतों के मध्य रखकर उन्हें चबा जाता है तथा जो ध्वजाओं से शोभित एक 'पद्म' सैनिकों का पति है।

'रणमत्त' आदि अनेक भयंकर राक्षस ऐसे हैं, जिनकी सेनाएँ समुद्र से भी विशाल हैं। संसार में उनका सामना करनेवाला कोई वीर नहीं है। यह संसार जितना बड़ा है, उनकी वीरता का यश भी उतना ही बड़ा है।

मैं क्या कहूँ कि ऐसे कितने सहस्र राक्षस वहाँ हैं। 'प्रहस्त' नामक एक युद्धोन्मत्त राक्षस ऐसा है, जिसके पास उसकी आज्ञा का सदा पालन करनेवाली अतिविशाल सेना है।

उसने अनेक बार युद्धों में तीक्ष्ण शर छोड़कर देवों को परास्त करके भगाया था और इन्द्र के सिंदूर-मस्तक गज के पैरों को उखाड़ दिया था।

'कुंभकर्ण' नामक (रावण का) एक भाई है, जो बड़े मत्तगजों के शुक्लपक्ष के चार चन्द्रों के समान आकारवाले दाँतों को पकड़कर, खींचकर उखाड़ देता है, जो युद्ध के उन्माद से भरकर मेरु-पर्वत के समान घूमा था और जिसने पूर्व में देवों को परास्त किया था।

'इन्द्रजित्' उस (रावण) का पुत्र है, जिसने एक बार दोनों ग्रहों (सूर्य और चन्द्र) को बंदी बना रखा था, जिसने युद्ध में देवेन्द्र पर ऐसा आघात किया था कि अबतक उसके वक्ष एवं कंधों पर उन चोटों के चिह्न बने हुए हैं।

'अतिकाय' नामक एक राक्षस है, जो अपने राजा (रावण) की आज्ञा का पालन करने में निरत रहता है, जिसने ब्रह्मा से धनुष प्राप्त किया है।

'अतिकाय' नामक एक राक्षस है, जो यह नहीं सोचता कि धर्म उस अधर्मी को भी कभी मिटा सकता है। ब्रह्मा से उसने एक दृढ़ धनुष प्राप्त किया है। इन्द्र को उसने पराजित तो किया था, किन्तु (इन्द्र-पद) के जैसा दूसरा कोई पद न रहने से उसने 'इन्द्र' का नाम स्वयं नहीं रख लिया।

(रावण की सेना के) वीरों का यह रूप है। उनका बल ऐसा है। अब जहाँ-तक मैं जानता हूँ, रावण की शक्ति को बताता हूँ। वह ब्रह्मा के पौत्र का पुत्र है। उसने अपनी तपस्या के प्रभाव से ब्रह्मा एवं शिव से वर प्राप्त किये हैं।

उसने, बड़े भूतों से घिरे तथा बिंदियोंवाले हरिण-चर्म एवं उमादेवी से युक्त शिवजी के महान् रजत-पर्वत को, जड़ से उखाड़कर, सारे संसार को भय-विकंपित करते हुए, गगन में उठा लिया था।

उसने सारी पृथ्वी का भार वहन करनेवाले दिग्गजों के दृढ़ दाँतों को अपनी पुष्ट भुजाओं से दबाकर तोड़ दिया था। उसके त्रास से तैंतीस करोड़ देवता व्याकुल होकर भागते हैं।

उज्ज्वल करवाल से उसने 'कालकेय' राजाओं के कुल को मिटा दिया था। उसका नाम सुनने मात्र से अब भी दानव-स्त्रियों के गर्भ विचलित हो जाते हैं।

कुरंड (नामक जलचर पक्षी) जहाँ क्रीडा करते हैं, ऐसे सरोवरों से शोभायमान अलकापुरी का अधिपति कुबेर अपनी विशाल संपत्ति और सब निधियाँ खोकर, लंकानगर को एवं द्विविध मान (अर्थात्, अभिमान और पुष्पक-विमान) को भी खोकर ऐसे भाग गया, जैसे सिंह को देखकर हरिण भागा हो।

जब यम (रावण से) पीठ दिखाकर भागा, तब उसकी पीठ पर अनेक घाव लग गये। दशमुख का क्रोध कभी उसके प्राण पी जायगा—इस डर से वह अपने पद से भ्रष्ट होकर आतंक में अपने दिन गिन रहा है।

अंधकार को निःशेष मिटा देनेवाले सूर्य को छोड़ दीजिए, (उसका सारथि) अरुण भी कभी लंका पर अपनी दृष्टि नहीं डाल सका। युद्ध-कला में अत्यन्त निपुण वरुण भी अपने भयंकर पाशायुध के (रावण के द्वारा) अपहृत हो जाने पर मकरों से पूर्ण समुद्र में छिपकर रहता है।

पर्वत भले ही हिल जायें, पर उसकी भुजाओं का बल नहीं हिलेगा। ऐसी विजय एवं पराक्रम से युक्त वह रावण चाहे आज मरे या कल या कुछ दिन और जीवित रहकर उसके बाद मरे, वह आपको छोड़कर और किसी से नहीं मरेगा।

उस दिन हनुमान् के हाथ राक्षसों की बड़ी दुर्दशा हुई। तोरण के खंभे की चोट से समुद्र पर के बालुकण से भी अधिक संख्या में राक्षस मरे। हिंसक व्याघ्र जिस प्रकार बकरियों को मारता है, उसी प्रकार राक्षस मिटे और लंकानगर जल गया।

उस समय जो राक्षस जल गये थे, उनके रक्त के चिह्नों से पूर्ण शत्रु अबतक समुद्र

के मध्य ढेरों पड़े हैं। हनुमान् ने 'अक्ष' को उसके धनुष के साथ धरती पर पटककर, पीसकर जो कीचड़ बनाया था, वह (कीचड़) अबतक लंका की वीथियों में सूखा नहीं है।

पाँच वीर सेनापति ऐसे थे, जिन्होंने पूर्व में देवताओं की सुरक्षा एवं अभिमान को मिटा दिया था। वे वीर अपनी समुद्र-समान सेना के साथ हाथी के पैरों के नीचे आये दीमकों के जैसे पिस गये।

मेरे कुल के अस्सी सहस्र राजा, जो पर्वत-समान आकारवाले थे, हनुमान् के पैरों से, पूँछ से एवं हाथों से आहत होकर ऐसे मिट गये, जैसे शिवजी के हाथ से त्रिपुरासुर मिटे थे।

हे प्रभु ! जंबुमाली समुद्र के समान एक विशाल सेना को लेकर (हनुमान् से) युद्ध करने आया था। इस (हनुमान्) की भुजाओं में सहस्रों बाण चुभा दिये थे। उसी शिव-धनुष से ही मारा जाकर वह स्वर्ग में जा पहुँचा।

उस विशाल लंका-नगरी में असंख्य राक्षस रौंदे जाकर, पिसकर, छिन्न-भिन्न हो गये थे। अब जो वीर बचे हैं, वे आपके ही हाथों मरनेवाले हैं। उस दिन रक्तधारा से भरी लंका इस (हनुमान्) की लगाई हुई अग्नि से जलकर भस्म हो गई।

वहाँ सब प्राणी कैसे जलकर मरे, उसका पृथक्-पृथक् वर्णन क्या करूँ ? लंकाधीश (रावण) भी सुन्दर पुष्पमाला, चंदन तथा उस दिन पहने हुए आभरण, वस्त्र एवं हाथ में उज्ज्वल करवाल के साथ सात दिनों तक गगन में रहा।

अति बलशाली रावण की लंका के बारे में मैंने कहा। वहाँ की रक्षा एवं वैभव के बारे में कहा। उस रावण की आज्ञा से ब्रह्मा ने स्वयं उस लंका को पुनः निर्मित किया।

यदि मैं यहाँ आया हूँ, तो वह यह सुनने के कारण नहीं कि युद्ध में खर आदि राक्षस निहत हो गये। किन्तु, हनुमान् के हाथों राक्षसों का नाश एवं लंका का जलना देखकर ही उससे प्रभावित होकर मैं यहाँ आपकी शरण में आया हूँ।

उस (विभीषण) के द्वारा कही सब बातें राम ने सुनी। कलापी-तुल्य अति सुन्दर सीताजी से अनेक दिनों तक वियुक्त रहने से अत्यन्त कृश हुई उनकी भुजाएँ (उत्साह से) उमड़ उठीं। उन्होंने दूत (हनुमान्) को देखकर कहा—

तुमने उन शत्रुओं की सेना को मिटाया। लंका को जलाया। अब वहाँ और क्या बचा ? उस मंजुभाषिणी सीता को देखकर भी यदि तुमने अपनी शक्ति से ही उसको मुक्त नहीं किया, तो वह केवल मेरे धनुःकौशल को प्रकट कराने के लिए ही तो था।

तुम्हारे अद्भुत कृत्यों से पूर्ण लंका के निकट अब हम आ पहुँचे हैं। हम भी कुछ वीरता के कार्य करनेवाले हैं। किन्तु, अब हमारे कार्य अधिक महत्त्व नहीं रखते। हे स्वर्ण-शैल-समान कंधोंवाले ! हम एक बड़ी सेना को लेकर यहाँ आये हैं। हम कौन-सा बड़ा कार्य करके अब यश पायेंगे ?

हे साकार भाग्य-जैसे स्थित वीर ! तुमने हमको समर्पित किये हुए अपने बल

से उस रावण की शक्ति को भी अपने अधीन कर लिया। पूर्व में इस सारी सृष्टि की रचना करनेवाले ब्रह्मपद को उसके पश्चात् मैंने तुम्हें दे दिया।

तब हनुमान् संकोच के कारण प्रभु के सम्मुख कुछ बोल नहीं सका और सिर नीचा करके खड़ा रहा। तब वहाँ स्थित वानरों, सेनापतियों और वानरपति (सुग्रीव) सबने उस (हनुमान्) का पराक्रम सुनकर कहा—अहो! अब हम सभी मुक्त हुए! (१—७३)

●

अध्याय ६

वरुण-आराधना पटल

राम ने विभीषण से कहा—यदि हम चाहें, तो तीनों लोकों को अपने भुजबल से ही दबा सकते हैं, या मिटा सकते हैं। यह कार्य हमारे लिए कुछ कठिन नहीं है। किन्तु, हे विज्ञ! अब ऐसा कोई उपाय सोचो, जिससे हमारी सारी सेना इस विशाल समुद्र को पार करे।

तब विभीषण ने कहा—यह तरंगायमान समुद्र आपके गूढ स्वरूप को पहचानेगा, आपके प्रसिद्ध कुल के आदिपुरुष सगर-पुत्रों के प्रभाव को सोचकर यह आपको वर देगा। अतः, आप इससे सेना के चलने के लिए मार्ग देने की प्रार्थना कीजिए।

लंकेश (विभीषण) का वचन ठीक है।—यह सोचकर प्रभु अपने महान साथियों से अनुसृत होते हुए समुद्रतट पर जा पहुँचे। तभी सूर्य के अश्व उदयाचल पर से गगन में फाँद चले।

सूर्य से उत्पन्न किरणों से सारा अंधकार फट गया। तब समुद्र से आवृत पृथ्वी ऐसी लगी, जैसे षोडश कलाओं से पूर्ण शीतल चंद्रमा, अत्यन्त रोषभरे काली रेखाओं से युक्त (राहु नामक) सर्प से मुक्त होकर प्रकाशमान हो रहा हो।

राम ने यह आशा की कि उनकी पत्नी को बंधन से मुक्त करने के लिए (सेना को समुद्र के पार ले जाने के लिए) समुद्र मार्ग देगा। वे करुणासमुद्र शास्त्रोक्त प्रकार से दर्भों की शय्या बिछाकर उसपर लेट गये और वरुण-मंत्र का ध्यान करते रहे।

उनकी देह में धूल लगी। उष्णकिरण (सूर्य) के कर उनके नीलरत्न-समान उज्ज्वल वदन पर फिरते रहे। एक-एक दिन एक युग के समान व्यतीत हुआ। ऐसे सात दिन व्यतीत हो गये। फिर भी, समुद्र का अधिपति वरुण नहीं दिखाई पड़ा।

समुद्र के देवता से 'हाँ' या 'नहीं', कुछ उत्तर हमें नहीं मिल रहा है—यह सोचकर राम के कमल-समान नयन क्रोध से लाल हो गये, जैसे जलपूर्ण सरोवर में अग्नि उत्पन्न हुई हो।

मैं अपने दीर्घ धनुष को छोड़कर मार्ग देने के लिए इस समुद्र से प्रार्थना करता रहा। किन्तु, यह प्रकट नहीं हुआ—यह सोचकर राम मन में अत्यन्त क्रुद्ध हुए। तप्त श्वास के साथ उनकी भौंहें यों कुंचित हुईं, जैसे प्रत्यंचा चढ़ाने पर धनुष झुक गया हो।

किसी के समीप जाकर कोई कुछ माँगे, तो वह (माँगनेवाला) हीनता को प्राप्त होता है। अहो! आज मैंने इस समुद्र से प्रार्थना की, तो इसने मेरा तिरस्कार किया! ठीक है! ठीक है!—यों सोचकर बाष्प निकालते हुए वे (राम) हँस पड़े।

रावण ने मेरी पत्नी का अपहरण किया। मैं प्रताप से रहित धनुष से युक्त और वीरता से हीन एक साधारण मनुष्य हूँ, इसलिए यह समुद्र भी मेरा तिरस्कार करके निष्करुण हो गया है।—यों राम ने सोचा।

किसी का कुछ उपकार करके, प्रशंसा के साथ कुछ प्राप्त करना, या युद्ध में किसी को पराजित करके उसका धन अपहरण करना—यह परिपाटी आदिकाल से ही चली आई है। अब यह समुद्र, प्रार्थना करके इससे कुछ माँगने पर भी, स्वाभाविक धर्म तथा गुणों से हीन होकर चुप रहता है, तो अब और क्या किया जाय?

मैं वन में आकर कंद-मूल खाकर अपना जीवन व्यतीत कर रहा हूँ—कदाचित् समुद्र यही सोच रहा है (और मेरी उपेक्षा कर रहा है)। अब देवता मत्स्यों से पूर्ण इस समुद्र के महत्त्व को एवं मुझ मनुष्य के लघुत्व को देखें।

किसी का अहित न चाहते हुए मैंने इससे विनम्रता से प्रार्थना की, तो मुझे दीन मानकर इसने मेरा तिरस्कार किया। मैं ऐसे सात समुद्रों को सुखाकर धूल बना दूँगा। पाँचों भूत हाथ जोड़कर व्याकुलप्राण होकर मेरे चरणों पर आकर लोटेंगे, तब मेरी सेना आगे बढ़ जायगी।

परमतत्त्व को पहचाननेवाले सच्चे ज्ञानी भी यदि इस संसार में आयें, तो भी यहाँ के अज्ञ लोग उसमें कोई विशेषता न देखकर उसका अनादर करते हैं। कोई प्रज्वलित अग्नि के समान ही गुणवान् क्यों न हो, वे उनको नहीं चाहते। जो लोग दूसरों के लघुत्व को ही देखते हैं, वे उसके महत्त्व को देखना भी नहीं चाहते।

यों सोचनेवाले राम की शिथिलता कुछ कम हुई। उनका वदन प्रलयकाल के सूर्य के समान दहक उठा। उन्होंने अपने अनुज से कहा—मेरा धनुष लाओ। क्रोध से रुधिर उगलती हुई आँखोंवाले भाई (लक्ष्मण) ने धनुष लाकर दिया।

राम ने धनुष को उठाया। उसपर शर-संधान किया। अंगुलित्राण को पहनकर डोरी को खींचा। तब उस धनुष से जो टंकार निकला, उससे त्रिनेत्र (शिव) की देवी (पार्वती) का मान भी दूर हो गया (अर्थात्, टंकार सुनकर भय से पार्वती ने शिवजी के प्रति अपना मान छोड़कर उनका आलिंगन कर लिया)।

सूर्य की किरणों के जैसे अति तीक्ष्ण, वर्षा की बूँदों से भी अधिक संख्या में, ऐसे चुने हुए बाणों को राम ने प्रयुक्त किया, जो उस समुद्र के सारे जल को निःशेष पी सकते थे।

उन्होंने ऐसा शर प्रयुक्त किया, जो सप्त कुलपर्वतों से भी अधिक शक्तिशाली था, रेखाओं से युक्त था और संसार के चर और अचर प्राणियों को जलानेवाली अग्निशिखा के समान था।

मत्स्य, हाथी तथा पर्वत सभी ईन्धन बने। चर, अचर सभी जल उठे, जलधि का जल घृत के समान हुआ और समुद्र नामक छोटा तालाब अग्नि से जलता हुआ, एक अग्निकुंड के समान दिखाई पड़ा।

राम के धनुष से निकले शर ने सप्त समुद्रों को जलाते हुए, प्रलयकालिक अग्नि-ज्वालाओं के समान सर्वत्र धूम फैलाते हुए, चक्रवाल-पर्वतों के परे रहनेवाले अंधकार को भी दूर कर दिया।

समुद्र के अंतराल में स्थित बड़े-बड़े मीन जले, स्वर्ग के कल्पवृक्ष भी जले। वे कल्पवृक्ष स्वर्ग से ऐसे गिरे, जैसे वज्र गिरे हों, जिससे समुद्र-जल के बिंदु उछलकर स्वर्गलोक में जा गिरे।

अग्नि उगलनेवाले उस शर से जलकर गगन पर चलनेवाले मेघ झर गये। नृत्य करनेवाली देवस्त्रियों के केश भी श्वेत हो गये। अग्निशिखा से निकला हुआ धूम सर्वत्र भर गया।

उस शर की अग्नि से आहत होकर मकर-कुल रुधिर उगलता हुआ जलकर भस्म हो गया। अनेक 'तिमिंगिल' एवं 'तिमिंगिलगिल' छिन्न-भिन्न होकर छितरा गये।

अग्नि यों भड़की कि उससे पर्वत भी भस्म हो गये। अनेक सहस्रकोटि तीक्ष्ण बाण ऐसे निकले कि उनसे अति गंभीर समुद्र भी सूख गया। उसका कीचड़ भी जल गया और (पाताल में स्थित) आदिशेष के शिर भी झुलस गये।

मीनकुल यों निःशेष हो गया, जैसे असत्य साक्ष्य देनेवाले का कुल मिट जाता है। अनेक मीन शर से विद्ध होकर ऐसे तैर रहे थे, जैसे ऊँचे मस्तूल से युक्त नौकाएँ हों!

रुधिर का प्रवाह एवं अग्निकणों से भरा हुआ वह अपार समुद्र संध्याकालिक गगन के समान लाल हो गया। पंक्तियों में निकलनेवाले अग्निमय शरों से आहत होकर कुछ मीन भस्म हुए, कुछ झुलसे, कुछ काले पड़ गये और कुछ भुन गये।

पृथ्वीनाथ (राम) के द्वारा प्रयुक्त तीक्ष्ण शर के पीने से सारा जल सूख गया। सर्वत्र अग्नि के फैलने से सब मीन ऐसे भुन गये, जैसे वे काले समुद्र-रूपी भांड में तप्त घृत में भूने गये हों।

असंख्य भीषण बाणों ने रक्तमुख होकर समुद्र के जल को निःशेष पी डाला। उसमें स्थित रत्न-समुदाय, आग से तप्त हो जाने के कारण, अग्निकणों के समान बिखर गये।

सर्वत्र अग्नि के व्याप्त होने से मज्जा से भरे हुए असंख्य मीन एवं शंख-समुदाय, शाक एवं कंद के समान ढेरों में समुद्र के मध्य पड़े थे, जैसे वे उबले हुए जल में पकाये गये हों।

उष्ण शरों से मीनकुल यों जला, जैसे बाँसों के वन में आग भड़क उठी हो। जीव-जन्तुओं के द्वारा उगले गये रुधिर-प्रवाह, समुद्र-जल की समता करते हुए, तरंगित हो रहे थे।

प्रभु के तीक्ष्ण शर के लगने से पर्वतों पर दृढ़ता से मिट्टी में जड़ जमाये खड़े वृक्ष

कट-कटकर उड़ रहे थे और ज्यों-ज्यों उनपर समुद्र से उठनेवाली अग्निशिखाएँ लगती थीं, त्यों-त्यों वे ऐसे जल उठते थे, जैसे तेल में भिगोये गये हों।

रामचन्द्र के बाण ब्रह्मदेव के शाप के समान अत्यंत तीक्ष्ण थे और मन से भी अधिक वेग से जा रहे थे। समुद्र में यत्र-तत्र अग्निशिखाएँ भड़क उठी थीं। वह दृश्य ऐसा था, मानों समुद्र कमल-पुष्पों से शोभायमान एक सरोवर बन गया हो।

महान् लोग यदि क्रोध करें, तो भी उससे हित ही होता है। यहाँ भी वही बात हमने देखी। लवणसमुद्र नाम पाने से जिसे अपयश प्राप्त हुआ था, वह समुद्र अब 'अप्पुक्कडल'[1] बन गया।

(प्रलयकाल में) पृथ्वी को जल निगल जाता है। उस जल को अग्नि पी जाती है।—इस तत्त्व को अब प्रभु ने प्रमाणित कर दिखाया। जो भगवान् एक के ऊपर एक स्थित अनेक ब्रह्मांडों को उठाकर निगल जाते हैं, उनके लिए यह कार्य क्या दुष्कर है?

मंगल से युक्त तपस्वी, जो रात-दिन उस समुद्र में रहकर तपस्या करते थे, भगवान् के चरणों का ध्यान करते रहने के कारण, ताप से पीडित नहीं हुए। उमड़ती अग्नि-रूपी जल में भी वे अक्षत रहे।

दक्षिण, पश्चिम आदि सब दिशाओं में प्रभूत धूम उठकर भर गया। जिससे (झुलसकर) काले पड़े हुए सूर्य के घोड़े खड़े हो गये और मार्ग से भटककर आगे नहीं जा सके।

'वियोग में कैसा दुःख होता है, यह जानकर भी ये (राम) न जाननेवाले की तरह कार्य कर रहे हैं'—यों सोचते हुए पक्षी, राम के शरों से उनकी पत्नियों के विद्ध होने पर, दुःखी होकर स्वयं भी अग्निज्वाला में गिर जाते थे।

काला समुद्र रोष-भरे राम के बाणों से ऐसे जलने लगा, जैसे बाँस का बन जल उठा हो। उसका वर्णन कैसे करूँ? उसकी अग्नि से सर्वत्र धूम ऐसे उठा कि अनिमेष (देवताओं) ने भी अपने पलक बंद कर लिये और उनकी देह में स्वेद छा गया।

जिनके कोमल चरण पुष्प पर भी चलने में हिचकते थे, ऐसी उन (सीता) की गति की समता करने में असमर्थ होकर अपयश पाये हुए हंस अग्नि से हीन कोई दिशा न होने से ऊपर नहीं उड़ सके और वरुणदेव के यश के समान ही जलकर भस्म हो गये।

विशाल समुद्र के रहनेवाले पक्षी जब आकाश में उड़ने लगे, तब पिघलकर नीचे गिर पड़े; जैसे अल्प पुण्यवाले जीव स्वर्ग जाने का प्रयत्न करके भी पुनः पृथ्वी पर गिर पड़े हों।

जो जलचर पक्षी राम के बाणों से विद्ध होकर मरे, वे तो मर ही गये, पर जो विद्ध नहीं हुए, वे भी चारों ओर आग के फैल जाने से अस्त-व्यस्त हो भागने लगे और वहाँ बिखरे मोतियों को अपने अंडे समझकर उठा-उठाकर ले जाने लगे।

---

१. तमिल में 'अप्पुक्कडल' शब्द के दो अर्थ होते हैं—१. स्वच्छ जल का समुद्र तथा २. शरों का समुद्र प्रस्तुत पद्य में श्लेष के आधार पर चमत्कार है।—अनु०

समुद्र के जल में रहनेवाले (जल-) वानर यह कहते हुए कि 'हाय ! हमने इन महानुभाव (राम) को एक साधारण नर समझकर उनका उपहास किया। हम कितने मूढ़ हैं', अपने धवल दाँतों को निपोरकर गगन में उछल जाते थे।

अनेक क्रूर कार्य करनेवाले, समुद्र के मध्य छिपकर रहनेवाले तथा मांस एवं रक्त से अंचित शूल धारण करनेवाले राक्षस मरकर सूज गये और पर्वताकार होकर मरे हुए मीनों के साथ उतराने लगे।

जैसे कोई स्वर्णघट फूट गया हो, यों गगन में चलनेवाले विमान पिघलकर टुकड़े-टुकड़े हो गये। आकाश-गंगा का जल सूख गया और गगन में चमकनेवाले नक्षत्र भी झुलस गये।

रामचन्द्र के बाण अत्यन्त प्रभावपूर्ण थे, अग्नि प्रज्वलित करते थे, सीधे मार्ग पर (सन्मार्ग पर) चलते थे, तपोयुक्त थे (तपस्या से एवं ताप से युक्त थे), अति क्रोध से भरे हुए विविध रूपवाले थे ; अतः वे (बाण) वामन मुनि (समुद्र को सोखनेवाले अगस्त्य) की समता करते थे।

लहरों से भरे समुद्र की अग्निज्वालाएँ लंका के स्वर्णमय प्राचीरों से जाकर टकराईं। उन प्राचीरों को जलकर पिघलते हुए देखकर लंका के राक्षस इस आशंका से विकल हुए कि कहीं दुबारा वह दूत (अर्थात्, हनुमान्) तो नहीं आ गया।

अग्नि से जलकर कांति बिखेरनेवाले स्वर्णमय (त्रिकूट-पर्वत के) शिखर पिघल गये और रुधिर से सिंचित एवं लाल होकर पलाश-पुष्प के समान लगने लगे। प्रवाल-लताएँ जलकर कोयले के समान काली हो गईं।

पर्वत के जैसे बड़े आकरवाले मत्स्य भी किसी भी दिशा में जाकर जीवित नहीं बच सके। कुछ जल के भीतर जा घुसते और कुछ यह सोचकर कि जलते हुए जल से पृथ्वी ही अच्छी है, धरती पर उछल आते थे।

वे बाण लहरों से भरे समुद्र के जल को पीकर, धरती को भेदकर पाताल में जा घुसते थे और सूर्य के समान प्रकाश फैलाकर वहाँ के अंधकार को भी मिटा देते थे।

काले समुद्रों के साथ सारे लोक को तप्त करके वे बाण, आगे बढ़कर, ब्रह्मांड के भी परे निकल जाते थे और वे (ब्रह्मांड को) बाहर से आवृत करके रहनेवाले समुद्र को भी सुखा देते थे।

समुद्र से जो रत्न ढेरों में बिखरकर गिरते थे, वे ऐसे लगते थे, जैसे समुद्र का रक्त बिखर रहा हो। समुद्र-जल के सूख जाने पर उसमें जो बड़े-बड़े साँप पड़े थे, वे ऐसे लगते थे, मानों समुद्र की आँतें बाहर निकल पड़ी हों।

समुद्र का जल सूख जाने से अनेक रत्नों से भरा हुआ वह (समुद्र) रत्नपेटिका के समान लगता था। शंखों के रंध्रों में शर लगने से वे शब्दायमान शंख कलछुल के जैसे लगते थे।

शत-सहस्र बाण लगने से शत पर्वतों के सहस्र कोटि टुकड़े हो गये। मुक्ताएँ

भी एक-एक की सौ-सौ हो गईं। बड़े लोगों के क्रोध करने पर भी क्या उससे किसी की कुछ कमी हो सकती है ?

(सृष्टि करनेवाले) भगवान्, जब स्वयं क्रुद्ध हो गये, तब उनके हाथ मिटनेवाले सब प्राणी मोक्ष पा गये। बाँसों के वन में जैसे आग लगी हो, यों अग्निज्वाला (समुद्र में) भड़क उठी। उससे गगन की नदी का जल भी सूख गया।

यम के समान तीक्ष्ण बाणों से भूमि का हरित वस्त्र जल गया और वह (धरती) अग्नि-रूपी लाल वस्त्र से शोभायमान हुई।

एक विद्वान् दूसरे विद्वान् को देखकर जैसे ईर्ष्या करता है, वैसे ही समुद्र में स्थिर वडवाग्नि, विजयी प्रभु के शरों से उत्पन्न अग्नि को समुद्र का जल पीते हुए देखकर, जैसे ईर्ष्या कर उठी और उमड़ आई, मानों किसी दूसरे समुद्र में जाकर रहने की इच्छा से उमड़ आई हो।

ऐसी महान् अग्निज्वाला सारे संसार को आवृत कर सब प्राणियों को स्वर्ग पहुँचाने लगी। ऐसा लगता था, मानों उस दिन सारी सृष्टि को मिटानेवाला प्रलय ही आ गया हो।

धरती से जो अग्निशिखा स्वर्ग तक उठी थी, उससे तप्त होकर स्वर्ग के निवासी उस लोक से ऊपर उठकर ब्रह्मा के सत्यलोक में जाकर शरण पाने लगे। तो अब अन्य लोकों के निवासियों के बारे में क्या कहा जाय ?

तब प्रभु ने यह विचार करके कि '(संसार के) अहित की मैं क्यों चिन्ता करूँ, अब (ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर) वरुण को विवश कर दूँगा', असंवरणीय क्रोध से भरकर ब्रह्मास्त्र का संधान किया। तब सभी देवता उससे भय-विकंपित हो गये।

सभी पर्वत हाहाकार कर उठे। वरुण का मुँह सूख गया। सभी प्राणी दुहाई देने लगे। सारी नदियाँ थम गईं। इस डर से कि अब किसी दिशा में कोई भी जीवित नहीं रह सकेगा, सभी जीव अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

ब्रह्मांड के बाहर स्थित महाजलधि भी उबल उठी, तो (इस लोक के) सप्त समुद्रों के बारे में क्या कहा जाय ? शिवजी की जटा में आदिकाल से स्थित गंगा भी काँप उठी। ब्रह्मा के कमंडलु में स्थित जल भी 'कुलु-कुलु' करके उबल उठा।

ज्ञानी कह उठे—'जब (राम) प्रार्थना कर रहे, थे तब यह वरुण उनको संसार की सृष्टि करनेवाले तथा उसका विलय करनेवाले भगवान् के रूप में नहीं पहचान सका। उन (राम) का क्रोध देखकर भी वह प्रकट नहीं हुआ। ऐसे वरुण से बढ़कर विरुद्ध आचरण करनेवाला क्या और कोई राक्षस हो सकता है ?

अन्य (पृथ्वी, वायु आदि) भूत यह कहकर वरुण की निन्दा करने लगे कि जो भगवान् अन्य किसी वस्तु की सहायता के बिना स्वयं अपने से ही इस सृष्टि की रचना करता है, वही अब क्रुद्ध हो उठा है। अतः, हमारे जैसे दोषहीन भूत भी अब विनष्ट हो जायेंगे। हाय ! यह सब वरुण के कारण हो रहा है।

इसी समय, प्रज्वलित अग्निशिखा के साथ अत्यधिक धूम से घिरा हुआ, कहीं कोई मार्ग न देख पाता हुआ और आँखों से अश्रु बहाता हुआ वरुण, भयभीत और द्रवित होकर, दूध के समान स्वच्छ हृदय के साथ, हाथ जोड़े हुए आकर (राम के सम्मुख) प्रकट हुआ और बिलखते हुए यों कहने लगा—

'श्वान के समान नीच मैं, सप्त समुद्रों के उस सिरे पर था। अतः, यह नहीं जान सका कि आपने मेरा स्मरण किया है'—यह कहता हुआ जल-देवता वरुण राम के रोष को शान्त करता हुआ अग्निशिखाओं से आवृत समुद्र-तरंगों से होकर ऐसे आया, जैसे अग्नि पर ही चला आ रहा हो।

उस (वरुण) का सिर जल गया। उसकी देह झुलस गई। उसका मन भय से त्रस्त हो गया। चारों ओर धूम से घिरा हुआ वह वरुण अत्यन्त विकल होकर घबराया हुआ मुँह से शब्दों को बिखेरता हुआ आया।

'हे समस्त लोकों के प्रभु! यदि स्वयं तुम्हीं क्रोध करने लगे, तो तुम्हारी शरण के अतिरिक्त और कहाँ रक्षा हो सकती है? ऐसी रक्षा का कार्य तुम्हारे लिए कुछ कठिन नहीं है। मेरा और कोई सहायक भी नहीं है। अभय दो! अभय दो! हे प्रभु शरण दो!'—वरुण बार-बार इस प्रकार पुकार करने लगा।

'हे प्रभु! तुम जल हो, अग्नि हो। इनके अतिरिक्त समस्त भूत तुम्हीं हो। समस्त लोक तुम्हीं हो। उन लोकों में स्थित समस्त प्राणी तुम्हीं हो। हे चक्रधारी! यह दास तुमको कैसे भूल सकता है? अब प्रज्वलित वह्नि से घिरकर मैं जल रहा हूँ। हे वेद-मूर्त्ति! रक्षा करो!'

'तुम्हीं सारी सृष्टि को प्रकट करते हो, उसकी रक्षा करते हो और अन्त में प्रलयाग्नि से उसे विनष्ट कर देते हो। तुम्हारे लिए क्या कठिन है? तुम एक ही तीक्ष्ण बाण से सब लोकों को जला सकते हो। मुझ श्वान-जैसे एक व्यक्ति पर क्या इतना कोप आवश्यक है?'

'अपनी प्रचंड किरणों-रूपी खड्ग से घने अन्धकार का नाश करनेवाले सूर्य-मंडल में तुम्हीं रहते हो! हे ज्योतिरूप! हे वेदों के प्राण! आदिब्रह्मा से लेकर सकल चर और अचर वस्तुओं के अन्तःकमल में रहनेवाले! हे भगवन्! हे पुरातन! तुम्हारी जय हो! जय हो।'

''जब मकर से ग्रस्त होकर महागज ने यों पुकारा था कि 'हे सारी सृष्टि के रचयिता! सबके आदिकारण! हे करुणालु! रक्षा करो!' तब तुम गरुड पर आरूढ होकर प्रकट हुए थे और उसके महान् शोक को मिटाया था। हे पुरातन पुरुष! तुम्हारी जय हो! जय हो!''

'तुम्हीं माता हो! पिता हो! अन्य सब कुछ तुम्हीं हो। भूत तुम्हीं हो, भविष्य तुम्हीं हो। पतन तुम्हीं हो और उत्थान भी तुम्हीं हो। हे प्रभु! यह कैसी बात है कि तुमने मेरा तिरस्कार किया! हे ईश्वर! तुम जब स्वयं अपने प्रभाव को नहीं जानते हो, तो अब मैं तुम्हें कैसे समझ पाऊँ?'

घोर अंधकार को मिटानेवाले सूर्य को भी मंद कर देनेवाले महान् प्रकाश से युक्त होकर वह वरुण, धरती पर चलकर आया और यह कहता हुआ कि 'हे सहस्रनामवाले परमात्मा ! शरण दो। यदि छोटे लोग अपराध करें, तो उन्हें क्षमा करना बड़ों का ही कर्त्तव्य होता है'--राम के चरणों पर आकर गिर पड़ा।

जैसे सारा अंतरिक्ष जल रहा हो; यों अत्यधिक प्रकाश को सर्वत्र फैलाता हुआ वरुण 'अभय दो' कहता हुआ जब उनके चरणों पर आ गिरा, तब अदम्य प्रभाववाले प्रभु का क्रोध वैसे ही शांत हो गया, जैसे उबलनेवाला दूध शीतल जल का स्पर्श पाकर शांत हो जाता है।

हम शान्तक्रोध हो गये। अपनी कृपा से तुमको हमने अभय प्रदान किया। जब नम्रतापूर्वक प्रार्थना की थी, तब तुम प्रकट नहीं हुए। किन्तु, जब हम रोष करके उठे, तब तुम प्रकट हुए हो। इसका क्या कारण है ? कहो।'—राम के वचन सुनकर वरुण हाथ जोड़कर बोला—

'हे प्रभु ! मुझे अभी तुमसे यह समाचार विदित हो रहा है कि क्षमा-गुण में पृथ्वी से बढ़ी हुई और पातिव्रत्य-धर्म से पूर्ण सीता दारुण दशा में पड़ी हुई हैं ? यह विषय पहले मैंने देवों से नहीं सुना था। सप्तम समुद्र में रहनेवाले मीनों में घोर युद्ध हो रहा था। उसी युद्ध को शान्त करने के लिए मैं गया हुआ था। अतः, मैं शीघ्र यहाँ नहीं आ सका।'

उसके इतना कहते ही प्रभु ने उसपर कृपा करके पूछा—अब मेरे इस अमोघ शर का लक्ष्य क्या हो ? कहो। तब वरुण बोला—ठीक है ! प्रभु ! यह भी अच्छा ही हुआ। यह संसार और मैं दोनों एक दुःख से अब मुक्त हो रहे हैं। तुम्हारे शर का लक्ष्य क्या हो, मैं कहता हूँ—

'मरुकांतार नामक एक द्वीप में शतकोटि से भी अधिक राक्षस रहते हैं। उनसे सारा लोक विनष्ट हो रहा है। हे प्रभु ! तुम अपने इस अग्निमुख बाण का लक्ष्य उन लोगों को ही बनाओ।'

तब वेदज्ञों के ज्ञान के भी परे रहनेवाले प्रभु ने अपने शर को आज्ञा दी—'तू जाकर उन असंख्य राक्षसों को मिटा दे।' एक क्षण व्यतीत होने के पूर्व ही वह शर उन सबको विनष्ट करके लौट आया।

सद्धर्म का अनुसरण कर सत्यकार्य करनेवाले लोगों को सदा हित की ही प्राप्ति होती रहती है। उनकी कभी हानि नहीं होती। विनाशकारी बाण ने वरुण पर आकर भी पाप करनेवाले राक्षसों का ही विनाश किया।

अनेक कोसों की दूरी पार करके उस शर ने पाप-ही-पाप करते रहनेवाले राक्षसों को जलाकर, धुआँ बनाकर उड़ा दिया। वह बाण दीप के समान ज्ञान से पूर्ण वेदज्ञ मुनि के शाप के समान था। अहो ! धर्म ही सदा बलवान् होता है।

'तुमने मुझसे अभय माँगा। अतः मैंने अपना क्रोध शान्त किया। अब तुम

मुझे मार्ग दो, जिससे जाकर मैं अपने लिए अपयश उत्पन्न करनेवाले पापी राक्षसों का विनाश कर सकूँ'—यों राम ने कहा।

तब वरुण ने कहा—हे प्रभु ! मेरी गहराई और विशालता मेरे लिए भी अपरिमेय है। इधर सप्तलोक भी असीम रूप में फैले हैं। अतः, मुझे सुखाना कठिन है। यदि अनन्त काल तक तुम्हारी सारी सेना मेरे जल को उलीचती रहे, तब भी यह कार्य पूर्ण नहीं होगा।

यदि मेरा जल सूख जाय, तो संख्यातीत प्राणी तुरन्त मर जायेंगे। अतः, एक उपाय बताता हूँ। तुम मेरे ऊपर एक सेतु बनवा दो। उसे मैं अनन्त काल तक ढोता रहूँगा। उसपर चलकर तुम अपना कार्य पूर्ण करो।

तब प्रभु बोले—ठीक है ! ऐसा ही करेंगे। समुद्र पर हम सेतु बनायेंगे, जिससे सब भूत भी सुखी रह सकें और हमारा कार्य भी पूर्ण हो जाय। फिर, प्रभु ने वानरों को यह आज्ञा देकर कि वे शैलों को लेकर सेतु बनावें, अपने आवास को चले गये। वरुण भी संतुष्ट होकर चला गया। (१—८५)

●

अध्याय ७

सेतु-बंधन पटल

कपिराज (सुग्रीव) ने अपार ज्ञान से युक्त सेनापतियों तथा राक्षसेश्वर (रावण) के अनुज (विभीषण) के साथ परामर्श किया। फिर, उचित कार्य संपन्न करने के लिए नल (नामक वानर) को आने की आज्ञा दी।

वानर-शिल्पी नल आया। उसने अपने राजा से पूछा—'क्या आज्ञा है ?' राजा ने आज्ञा दी—'वीचियों से भरे समुद्र में सेतु बनाना है।' तब उस अनिन्दनीय नल ने कार्य आरंभ किया।

नल ने कहा—'समुद्र को बाँधकर सेतु बनाना ही कार्य है न ? मैं ऐसा सेतु बनाऊँगा कि मेरु और अणु दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जायगा। पत्थर की चट्टान उठवाकर मँगाइए।'

तब जाम्बवान् ने घोषणा की—अनुजदेव (लक्ष्मण), प्रभु (राम), लंकापति (विभीषण) तथा हमारे कुल के राजा (सुग्रीव) को छोड़ अन्य सभी समुद्र में बाँध बनाने के लिए आयें।

एक समुद्र पर बाँध बनाने के लिए दूसरा एक समुद्र चला आया हो, इस प्रकार वानरों के दल काले पर्वतों को असंख्य परिमाण में दोनों हाथों, कंधों और सिरों पर रखकर ले आये।

कुछ (वानर) पहाड़ों को उखाड़ते थे। उखाड़े गये पहाड़ों को कुछ वानर खींच ले आते थे। कुछ सिर पर उठाकर लाते थे। कुछ वानर उन पर्वतों को पानी पर रखते थे और कुछ खड़े-खड़े शोर करते और नाचते-गाते थे।

कोई वानर एक पर्वत को पैरों से ढकेलता, कोई भारी पर्वत को अपने हाथों पर उठा ले आता और कोई गगनचुंबी शिखरों से युक्त मेघों से आवृत किसी पर्वत को पूँछ से घसीटकर ले आता था।

तीन करोड़ वानरों के उठा-उठाकर पर्वत लाने पर भी नल उन सबको 'लाओ! लाओ!' कहकर ललकारता और लाये हुए पर्वतों को एक हाथ से उठाकर सेतु में रख देता। वह अपनी शक्ति से समुद्र को कंपित कर रहा था।

मेघों से आवृत बड़े-बड़े पर्वतों को बड़े-बड़े वानर उठा लाते थे और समुद्र में फेंक देते थे, किन्तु नल अपने कौशल से उन सबको ऐसे ही सँभाल लेता था, जैसे 'वेण्णै नल्लूर' (नामक गाँव) में 'शडैयन्'[1] (नामक दानी) अपने आश्रय में आनेवाले असंख्य व्यक्तियों को सँभाल लेता है।

विजयी कपिवीर जब ऐसे ऊँचे पर्वतों को अपने पैरों से ढकेलकर लाते थे, जिनके सानुओं में हरिणांकित चन्द्रमा क्रीडा करता रहता था, तब मेघ-समूह घबराकर बिखर जाता था; यक्ष अपनी पत्नियों के साथ उठकर दूर हट जाते थे।

वे वीर जब एक पर्वत के ऊपर दूसरे को फेंकते थे, तब उनसे अग्निकण निकलकर चारों ओर बिखर जाते थे और वरुण अपने जल में उन अग्निकणों को देखकर आशंका कर उठता था कि जाने यह अग्नि किसकी उत्पन्न की हुई है।

गवाक्ष नामक एक वानर एक काले पर्वत को उखाड़ लाया और उसे समुद्र में फेंका। तब स्वच्छ कांतिवाले मोती, जलबिंदुओं के साथ उड़कर, आकाश में जा पहुँचे और वहाँ स्थित नक्षत्रों के साथ प्रतिद्वंद्विता करने लगे।

जब वानर बड़े-बड़े हाथियों से भरे पर्वतों को लाकर समुद्र में फेंकते, तब उससे मोती उड़कर आकाश में फैल जानेवाले और मेघों में जा लगते। इससे आकाश ऐसा लगता था, मानों आकाश-रूपी वितान को मोतियों से सजाया गया हो।

जब वानर, बाँसों से भरे पर्वतों को समुद्र में फेंकते थे, तब उनसे छिटककर जल-बिंदु स्वर्गांगनाओं के वस्त्रों पर जा गिरते थे और उन (देवस्त्रियों) के नितंबों पर उन (गीले) वस्त्रों के लगने से उनके अंश प्रकट हो जाते थे। इस प्रकार अपने अंगों को प्रकट होते देख वे लज्जित हो जाती थीं।

मधु के छत्तों से पूर्ण पर्वतों को जब (वे वानर) समुद्र में फेंकते थे, तब उनसे उड़कर जलबिंदु स्वर्ग में जा पहुँचते थे और स्वर्ग में मानों वर्षा होने लगती थी।

---

१. 'शडैयन्' तमिलनाडु में एक प्रसिद्ध दानी था। महाकवि कंबन को उसी ने आश्रय दिया था कंबन ने अपनी इस प्रसिद्ध रचना में दस स्थानों पर अपने आश्रयदाता के महत्त्व का वर्णन इसी रीति से किया है। —अनु०

उन पर्वतों के साथ अनेक हाथी समुद्र में आकर गिरते थे और समुद्र के मगर उनको पकड़कर ले जाते थे। तब अपनी सूँड़ उठाये हुए वे हाथी उस गजेंद्र के समान लगते थे, जिसने पूर्वकाल में एक तालाब में मगर के द्वारा पकड़े जाने पर भगवान् की प्रार्थना करके उनको पुकारा था कि—'हे असुरान्तक! हे पुराणपुरुष! तुम्हारी जय हो! मेरी रक्षा करो!'

मधु, पुष्प, चंदन, अगरु आदि सुगंधित द्रव्य गगन में सर्वत्र छा गये और दुर्गंध से भरित समुद्र का सारा जल यों सुगंध करने लगा, मानों उसे सुवासित किया गया हो।

मधु, फल, शाक, दिव्य पुष्प आदि सब वस्तुएँ मीनों का भोजन बनीं। गगन-चुंबी पर्वत यद्यपि समूल नष्ट हो जाते थे, तथापि उनसे समुद्र के मीनों को भोजन मिलने लगा। महान् लोग मिटने पर भी दूसरों का उपकार ही करते हैं न?

कुछ पर्वत, अपने सरस फलों, शाकों, पुष्पों आदि के साथ, कीचड़ में धँस जाते थे और श्वेतवर्ण मीन उनसे कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकते थे। वे पर्वत उन लोभियों के जैसे थे, जो अपार संपत्ति का दान न कर उसे छिपाकर रख देते हैं।

चरखी के समान घूमकर संचरण करनेवाले वे वानर अतिवेग से पहाड़ों को उखाड़-उखाड़कर समुद्र में फेंकते थे। तब भी उन पहाड़ों में, बड़े हाथियों को निगलकर पड़े हुए अजगर नींद में मस्त रहते थे। जो बुद्धि-हीन होते हैं, वे क्या विपदा आने पर भी सजग नहीं होते?

बिजली के जैसे चमकते हुए दाँतोंवाले मत्तगज और मकर, एक दूसरे के मुँह और सूँड को पकड़े हुए, युद्ध करते हुए पर्वत-सानुओं में घूम-घूमकर मेघों के जैसे गरज उठते थे।

जब वानर एक पर्वत पर दूसरे पर्वत को फेंकते थे, तब छोटे-छोटे शैल टूटकर गगन में दूर तक उड़ जाते थे और पुनः नीचे आकर गिरते थे, जैसे अल्पपुण्यवान् लोग स्वर्ग तक जाकर पुनः पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।

सिंह, व्याघ्र, शरभ आदि जीव भी समुद्र में स्थित तीक्ष्ण दाँतवाले 'शुरा' नामक मत्स्य से युद्ध करके हार जाते थे। विचार करने पर (विदित होता है कि) बड़े व्यक्ति भी जब अपने स्थान से च्युत हो जाते हैं, तब वे किससे नहीं हार जाते? (अर्थात्, वे सबसे हार जाते हैं)।

गगनचुंबी पर्वतों के मधु को पीकर समुद्र के मीन ऐसे मत्त होकर उछले और आनन्दित हुए कि जैसे वे वानर ही हों। बड़े लोग यदि जान-बूझकर किसी का उपकार न भी करें, तो भी उनकी संपत्ति से संसार के प्राणियों का हित ही होता है।

वानर जिन पर्वतों को उठा-उठाकर लाते और फेंकते थे, उनपर लगे हुए बाँसों से मोती छितराकर ऐसे बिखर जाते थे, जैसे मधु के बिंदु बिखर रहे हों और शंखों एवं सीपियों से निकले मोतियों के साथ एक होकर फैल जाते थे।

वानर, गगन को छूनेवाले पर्वतों को जड़ से उखाड़कर समुद्र में लाकर फेंकते थे, जिससे समुद्र टीला बन गया और भूमंडल समुद्र होकर जल से भर गया।

प्रभु चाहें, तो कोई भी वस्तु बदलकर दूसरी हो जा सकती है न ? अब 'नेयदल्'[1] (अर्थात्, समुद्र-तट का) प्रदेश सिंह, शरभ, व्याघ्र आदि से भरे पर्वतों को लाये जाने के कारण 'कुरिंजि' (अर्थात्, पर्वतीय) प्रान्त बन गया।

पर्वतों के साथ आकर समुद्र में गिरे हुए जंगली जीव, यह सोचकर कि यहाँ हमारे आहार के योग्य कुछ नहीं है, बिना खाये ही पड़े थे। किन्तु, समुद्र के मीन जिनको न खाये, ऐसा कोई वन्य मृग नहीं था।

जब कोई किसी मृग का पालन करता है, तब वह उसको छोड़कर कहीं नहीं जाता। ऐसे ही पर्वत पर पले हुए मृग उस (पर्वत) को छोड़कर नहीं जाते थे और उसके साथ समुद्र में आ पहुँचते थे।

जो मुनि प्रतिदिन फल, शाक आदि खाकर पर्वतों पर कठोर तपस्या करते रहते थे, वैसे निरासक्त व्यक्ति भी उसे छोड़कर जाने की इच्छा नहीं करते थे।

क्रूर कार्य करके जीवन बितानेवाले पर्वतवासी राक्षस, यह सोचकर कि अब पर्वत पर निवास करना असंभव है, सिर पर हाथ रखे हुए (अत्यन्त शोक से) लंका को जा पहुँचते थे।

जो सिंह, शरभ आदि जीव, जल में पूरी तरह न डूबे हुए पर्वतों पर झुण्ड-के-झुण्ड खड़े थे, वे उस महान् सेतु के दोनों ओर ऐसे लगते थे, जैसे उसे माला पहनाई गई हो।

अनेक वानर, जल में पहले एक बड़े पर्वत को डालते, उसके निमग्न होकर छिप जाने पर यह समझते कि वहाँ के बड़े गर्त्त को भरने के लिए एक बड़ा पर्वत डालना चाहिए, वहाँ वैसा एक पर्वत लाकर डालते थे।

वानर, पृथ्वी की पीठ को विकृत करते हुए, बड़े-बड़े पहाड़ों को जड़ से उखाड़ डालते थे। बड़े-बड़े साँप निद्रामग्न होकर उनकी कंदराओं में से लटकते हुए ऐसे लगते थे, मानों उन पहाड़ों की जड़ें ही लटक रही हों।

लाल रंग की धातुओं से भरे पर्वतों के पार्श्व में, अंधकार के जैसे काले पर्वत रखे गये थे। वह दृश्य ऐसा था, मानों राम ने यह सोचकर कि 'वरुण ने अपना रत्नहार मुझे दे दिया है और स्वयं रिक्तकंठ हो गया है', उसे विविध वर्णमय एक हार पहना दिया हो।

जिस प्रकार कोई योगी (दूसरे की देह में प्रवेश करके पुनः) अपने प्राणों को अपने शरीर में ही लौटा लेता है, उसी प्रकार, पर्वतों से समुद्र में गिरे हुए साँप पुनः पर्वतों की कंदराओं में ही जा घुसते थे।

उस सेतु की महिमा को बताने के लिए अन्य किसी प्रमाण की कामना ही क्यों की जाय ? राम के दूत (हनुमान्) जो पर्वत लाकर फेंकते थे, उनसे उठनेवाले पानी के छींटों के साथ मीन भी स्वर्गलोक में जा पहुँचते थे।

---

१. तमिल-साहित्य में पाँच प्रकार के प्रदेशों का वर्णन होता है, जिनमें नेयदल् और कुरिंजि नामक प्रदेश अर्थात्, समुद्र-तट एवं पर्वत-प्रान्त भी हैं। अब वानरों के कारण उनके लक्षण में परिवर्त्तन हो रहा है। —अनु०

नील ने जो बड़ा पर्वत फेंका, वह धरती के मूल से जा टकराया। उससे उमड़कर जल अपनी वेला को पारकर वह चला; तो सारा लोक घोर शब्द करता हुआ भाग चला।

मैंद ने एक बड़ा पर्वत लाकर फेंका, तो उससे उठकर समुद्र का जल गगनतल से टकराया; फिर नीचे गिर पड़ा। उस जल की चोट से दिगंतों में स्थित दिग्गज भी चिंघाड़ मारते हुए अपना स्थान छोड़ भाग चले।

क्षीर-समुद्र को मथनेवाले (वाली) के पुत्र (अंगद) ने एक ऐसा पर्वत फेंका, जो लक्ष्मण का शर लगने से भी न डिगे। अंगद ने उस पर्वत को डालकर समुद्र को भली भाँति मथ डाला।

भालुओं के सेनापति (जांबवान्) ने मरुत्पुत्र (हनुमान्) के सुन्दर कंधे के समान एक बहुत बड़ा पर्वत उठाकर ऐसे वेग से फेंका कि उससे स्वर्ग के रहनेवाले (देवों) के सिर भी चकरा गये।

कुमुद ने एक कुलपर्वत को लाकर (उस सेतु में) ऐसा पटका कि नर्त्तन करते हुए समुद्र की वीचियों से जल के छींटे उड़कर स्वर्ग में जा गिरे। उनको देखकर देवता यह सोचते हुए कि समुद्र से पुनः अमृत निकल रहा है, अत्यन्त आनन्दित हो उठे।

पनस ने बड़े उत्साह से जो मेघावृत पर्वत ला-लाकर फेंके, उनके भार को अनन्त शेषनाग (जो धरती को सिरपर वहन करता रहता है) भी नहीं ढो सका और मन में अत्यन्त खिन्न होकर मानों उस जीवन को ही त्याग रहा हो, युद्ध को अपनाने लगा।

हम गिन नहीं सकते, वहाँ कितने पर्वत डाले गये। वहाँ जैसे ही एक के ऊपर आकर दूसरा शैल गिरता था, वैसे ही वे (शैल) यों चूर-चूर होकर और धूल बनकर रह जाते थे, जैसे पुण्य से रहित कोई प्रयत्न हो।

सहस्र योजन-पर्यन्त विशाल तिमिंगिल जो समुद्र के मध्य पड़ा था, जब उसपर बड़े भारी पर्वत जाकर गिरे, तब वह घबराकर अपनी देह हिलाकर चल पड़ा। तब वे पर्वत भी हिलते-डुलते चलने लगे।

सेतु का निर्माण करने में दत्तचित्त (नल), सब पर्वतों को तोड़-फोड़कर उन्हें समरूप बनाकर रखता था। वह एक के ऊपर एक शैल को चुनकर, उनपर मिट्टी डालता अपने विशाल हाथों को उनपर फेरता था।

वानरों की सेना उठ-उठकर सहस्र कोटि पर्वतों को लाती थी और नल अपनी दीर्घ बाँहों को फैला-फैलाकर उन्हें लोक लेता था और जो पर्वत फिसलकर गिर पड़ते थे, उनको अपने पैरों से सँभाल लेता था।

कभी-कभी वानरों का समूह पर्वतों को ढोते हुए चलता था और आगे बढ़ने का मार्ग न पाकर वैसे ही खड़ा रहता था। उस समय ऐसा लगता था, मानों तरंगों से भरे समुद्र के अतिरिक्त उन (वानरों) के सिरों पर भी एक सेतु रखा हो।

जब बड़े-बड़े पर्वतों को लानेवाले वानरों की भीड़ जमा हो जाती थी, तब कुछ वानर

पृथ्वी पर आगे बढ़ने का मार्ग न पाकर, अपने हाथों पर रखे हुए पर्वतों को सिर पर रखकर समुद्र में उतर जाते थे और तैरकर आगे बढ़ जाते थे।

बड़े-बड़े पर्वतों को ले आनेवाले कुछ वानर पहाड़ों की खोज में दूर-दूर तक चलते हुए थक जाते थे और भूख के मारे अपने उठाये पहाड़ों पर स्थित मधु के छत्तों से मधु लेकर खाते थे, जिससे मत्त होकर कभी-कभी वे बेसुध हो सो जाते थे।

आने और जानेवाले वानर दीर्घ दिशाओं में सर्वत्र भर गये थे। कुछ पूछते थे कि सेतु कितनी दूर बना है और कुछ उत्तर देते थे कि अभी आधी दूर तक ही बना है।

प्रभूत कुंकुम, कंदराओं के मधु, सुरभित पुष्प—ये सब (समुद्र में) सर्वत्र भर गये। समुद्र के घाटों पर पर्वत पड़े थे, इस कारण से वह प्रसिद्ध जल-समुद्र मानों मधु-समुद्र बन गया।

वानर अनेक बड़े-बड़े पर्वतों को लाकर समुद्र को पाट रहे थे, फिर भी वह समुद्र छलका नहीं। वह उस कुलीन गृहस्थ के समान था, जो कितनी ही बाधाएँ क्यों न उपस्थित हों, फिर भी वह अपने कुटुंब का भार सँभालता रहता है।

बहुत पुष्ट होकर बढ़ी हुई प्रवाल-लताएँ, (पर्वतों की) चोट से छितरा जाती थीं, रत्न-समुदाय बिखर जाते थे, जिनकी कांति गगन में यों उठ रही थी, जैसे इन्द्रधनुष हो।

फलों से भरे हुए वृक्षों के टूटकर गिरने से पक्षिकुल यों रोदन-ध्वनि कर रहा था, ज्यों अनेक व्यक्तियों का सहारा बनकर रहनेवाले किसी मनुष्य के मरने पर उसके बंधुजन, अन्य आश्रय न होने से, रो पड़ते हैं।

पुष्पों से भरे आम्रवृक्षों के समुद्र में गिर जाने से भ्रमर सर्वत्र इस प्रकार घूम रहे थे, जिस प्रकार रक्षक के मर जाने पर आश्रयहीन सेवक घूमते रहते हैं।

ऐसे मीन, जो दबकर छिपे नहीं थे, जलबिंदुओं के दब जाने पर भी यों उछल रहे थे, मानों उस काले समुद्र के पट जाने से दूसरे किसी समुद्र में जाकर छिपने का प्रयत्न कर रहे हों।

त्रिविध मद बहानेवाले हाथियों पर आसक्ति रखने के कारण जो भ्रमर उनके साथ लगे आते थे, वे उन हाथियों के पर्वतों-सहित जल में डूब जाने पर वैसे ही लौट जाते थे, जैसे वेश्या स्त्रियाँ।

पेड़ों के जड़-सहित उखड़ने पर भी अत्यन्त कुम्हलायी हुई लताएँ, उन वृक्षों को उसी प्रकार छोड़कर हटती नहीं थी, जैसे कुलीन स्त्रियाँ।

प्रवाल-लताओं से भरे उस महान् समुद्र के जलबिंदुओं के मिलने से ब्रह्मांड के बाहर स्थित समुद्र का स्वाद भी मिट गया। कहीं भी स्थित वज्र शीतल पड़ गये और मेघों से बरसनेवाला जल खारा हो गया।

बड़े-बड़े पहाड़ों के गिरने से समुद्र का जल निरंतर उठकर गगन में बिखरता रहता था, इसलिए सूर्य की उष्ण किरणें चन्द्र-किरणों के समान ठंडी हो गईं।

पर्वतों के भली भाँति टूट जाने से बिखरी हुई स्वर्णमय धूलि तथा जल के छींटों से मिली हुई प्रवाल-लताएँ गगन में ऐसे फैल गईं, मानों बिजलियाँ टूटकर बिखरी हों।

जैसे बाजी लगाकर दौड़ रहे हों, यों एक के आगे एक दौड़नेवाले वानर जा-जाकर वनों के पेड़ों, पहाड़ों तथा अन्य पौधों को ढूँढ़-ढूँढ़कर, उखाड़ लाये। इसलिए, भूमि में कहीं भी कोई पौधा तक नहीं बचा रहा।

पृथक्-पृथक् अपने यश को सर्वत्र फैलानेवाले पर्वताकार वानरों ने, जैसे प्रकाशमय स्थान पर पर्वतों एवं अरण्यों को बिछा रहे हों, यों समुद्र पर पहाड़ों एवं वृक्षों को बिछा दिया। उससे समुद्र का जल उमड़कर ऐसा बहा कि तट-प्रदेश समुद्र बन गया।

जब दिन का तीसरा प्रहर समाप्त हुआ, तब वह सेतु त्रिकूट-पर्वत पर स्थित लंका में जा लगा। तब वानरों ने जो हर्ष-ध्वनि की, उससे गगन भी फट गया। तब भी जो आकाश स्थिर दिखाई पड़ा, वह क्या किसी दूसरे ब्रह्मांड का ही आकाश था? (अर्थात्, वानरों के गर्जन से मानों एक आकाश फट गया और दूसरा आकाश दिखाई पड़ने लगा।)

वह सेतु ऐसा शोभायमान हुआ, मानों प्रभु कर्णाभरण से युक्त कुंतलों से शोभायमान (सीता) देवी के दुःख को दूर करने के लिए अन्य कोई मार्ग क्यों ढूँढ़ें, मेरी पीठ पर चलकर लंका में जायें—यों सोचकर जैसे आदिशेष ही वहाँ लेटा हो।

(वह सेतु ऐसा लगा) मानों सत्य में आसक्त लंका नामक कोमलांगी, राक्षसों के पाप-कृत्यों का सहन न करके, प्रभु के द्वारा लाई गई सेना को देखकर, प्रेम से हाथ फैला रही ह ।

वह सेतु ऐसा लगा, मानों आकाश-गंगा ने यह सोचकर कि जंगली नदियों (मार्गों)[1] से भरे समुद्र में प्रभु की सेना को चलना पड़ेगा, अतः मैं स्वयं वहाँ जाकर (मार्ग और नदी बनकर) रहूँगी, इस लोक में आ गई हो।

रत्नों से भरा हुआ वह सेतु कपियों के द्वारा निर्मित होकर यों चमक उठा, जैसे महान् अंधकार के मध्य इन्द्र का धनुष पड़ा चमक रहा हो।

जब वह विशाल सेतु निर्मित हो चुका, तब वन में निवास करनेवाले वानरों के राजा और विशाल समुद्र के मध्य स्थित लंका के राजा (विभीषण) तथा अन्य लोग राम के निकट गये।

लोकनायक राम के चरणों को नमस्कार करके उन लोगों ने निवेदन किया कि 'समुद्र पर एक शत योजन लंबा और दस योजन चौड़ा सेतु निर्मित हो गया है।' (१–७१)

●

१. तमिल में 'आरु' शब्द के दो अर्थ हैं १. नदी और २. मार्ग ; इस पद्य में वही श्लेष है। —अनु०

अध्याय ८

गुप्तचर-वृत्तांत पटल

प्रभु ने प्रेमामृत-भरे हृदय से नल को अपने हाथों से पकड़कर छाती से लगा लिया और उसको साथ लेकर उसके रचना-कौशल को देखने की इच्छा से चल पड़े।

जैसे समुद्र के निकट आनेवाला कोई मेघ हो, यों रामचन्द्र उस सेतु के निकट आ पहुँचे। (उस सेतु को देखकर) इस ब्रह्मांड के आदिकारणभूत उन (राम) ने मानों अपने प्राण-समान (सीता) देवी को ही देखा।

वे दीर्घ काल तक वैसे ही उसे देखते रहे। फिर (नल से) उन्होंने कहा—ऐसा लगता है कि अनादि काल से स्थित इस समुद्र को पर्वतों से भरकर उसपर यह बाँध बनाने का कार्य इस सृष्टि को बनानेवाले ब्रह्मा ने स्वयं संपादित किया है।

सृष्टि के आदिकारणभूत प्रभु (राम) आश्चर्य के साथ बोले—अब इस समुद्र की गहराई की बात क्या की जाय ? यदि समुद्र के मध्य स्थित वह लंका सप्त सागरों के पार भी हो, तो यह (नल) वहाँतक बाँध बना सकता है।

यों कहकर प्रभु ने नल को प्रेम के साथ पुनः अपने आलिंगन में ले लिया और उस दिन वरुण ने उन्हें जो रत्नहार समर्पित किया था, उसे उतारकर उस नल को पहना दिया। फिर, घनी कांति से युक्त स्वर्णकवच तथा अन्य शस्त्रों को लेकर अपनी सेना के साथ शीघ्र सेतु पर चल पड़े।

आगे-आगे राक्षसराज (विभीषण) चल रहा था। उसके पीछे सब शास्त्रों का ज्ञाता मारुति चल रहा था। उसके पीछे अपने अनुज से अनुसृत होते हुए वीरता से पूर्ण अति सुन्दर एवं पुष्ट भुजावाले प्रभु चलने लगे।

प्रभूत वानर-सेना काले समुद्र में गिरने के निमित्त जानेवाली कावेरी नदी के समान बढ़ती जा रही थी। (समुद्र की) मणियाँ एवं चन्दन की लकड़ियाँ भी उस (सेना-रूपी कावेरी) में दृष्टिगत हो रही थीं। (सेतु के दोनों ओर उठनेवाली) समुद्र की वीचियाँ (कावेरी के दोनों कूलों पर स्थित) वनों के समान थीं।

वह कपि-सेना ऐसे जा रही थी, मानों कावेरी नदी 'कुरिंजि' (पर्वत-प्रांत) आदि प्रदेशों में स्थित समस्त वस्तुओं को प्रभूत मात्रा में बहाते हुए समुद्र में मिलने के लिए जार ही हो।

कुछ वानर, घनी सेना से भरे सेतु पर पद रखने का स्थान न पाकर, उस (सेतु) के किनारे-किनारे ही जा रहे थे और जब-जब समुद्र से लहर उमड़कर (सेतु के किनारे) आ लगती थी, तब-तब वे उसपर से उछलकर आगे बढ़ जाते थे। वह दृश्य ऐसा था, मानों वे (वानर) युद्ध-क्षेत्र में घोड़े फँदाते हुए जा रहे हों।

घनी सेना से सेतु का मार्ग रुँध जाने से कुछ वानर शीघ्र आगे नहीं बढ़ पाते थे और समुद्र के जल में भी नहीं जा पाते थे। ऐसे वानरों को अन्य दयावान् वानर अपने

हाथों पर ही उठाकर क्रमशः पार लगा रहे थे। यों हाथों पर से जानेवाले वानर वहाँ अनेक थे।

सजल बादल के समान राम की देह पर, चुभनेवाली सूर्य की किरणें न पड़ें, इसलिए कुछ वानर घनी शीतल छाया से युक्त बड़े चन्दनवृक्ष को लेकर उनपर छाया करते हुए जा रहे थे।

यज्ञ करनेवालों के वेदों के सत्य-रूप उन चक्रवर्ती कुमार (राम) की देह को थकावट न लगे, इसलिए वानर-सेनापति पुष्पित कोमल शाखाओं को चँवरों के समान डुलाते जा रहे थे।

अपने कटक-भूषित मनोहर कर से अपार दान देनेवाले प्रभु, कटि को दुखानेवाले स्तन-भार से शोभायमान यौवनवती (सीता-) देवी के संदर्शन की आकांक्षा से आकुल होते हुए, बलवान् वानर-सेना को साथ लेकर जलधि को पार कर गये।

देवताओं की महान् तपस्या के कारण प्रभु, अपने अमृत-समान अनुज एवं अन्य साथियों के संग उस नगर के बाहर स्थित एक पर्वत के निकट आकर ठहरे, जहाँ (लंका में) वह मधुर वचनवाली लता-समान एवं अरुंधती के लिए भी पूजनीय पतिव्रता (सीता-) देवी थीं।

तब प्रभु ने नील को देखकर कहा—'तुम हमारी सेना के ठहरने के लिए शिविर बनाओ'। तब उनके चरणों को नमस्कार करके वह गया और शैलों से समुद्र में बाँध बनानेवाले (नल) से वह बात कही।

स्वर्ण एवं रत्नों से चतुर्मुख ने जो (मेरु-) पर्वत बनाया है, वैसे ही नल ने चतुष्कोण आकार में शिविर निर्मित किया। प्रभु तथा अन्य सब लोगों के योग्य आवास अतिशीघ्र बनाये। उस निर्माण-कार्य को देखकर ब्रह्मा भी लज्जित हो गये।

उसने धनुर्धारी प्रभु के रहने के लिए शिलाओं को चुनकर दीवार बनाई। बाँसों से खंभे एवं ठाट बनाये। दाभ एवं सुगंधित पुष्पों से छप्पर छा दिया।

तब सब लोगों ने मन एवं वचन से उन प्रभु की, जो सब प्राणियों के लिए माता से भी अधिक प्यारे थे, स्तुति की और उनके चरणों को नमस्कार किया। उनकी आज्ञा पाकर वे अपने-अपने आवास को गये। रामचन्द्र भी अपनी पर्णशाला में जा ठहरे।

उसी समय सूर्य अस्त हुआ, मानों वह अतिविशाल वानर-सेना के द्वारा समुद्र में बड़े-बड़े पहाड़ों को फेंककर पुल बनाने से (ऊपर उड़े हुए समुद्र-जल के छींटों के कारण) लवण-जल लगकर काली पड़ी हुई अपनी किरणों को धोने की इच्छा से जल में उतरा हो।

दुग्ध-समान कांति बिखेरता हुए उज्ज्वल चन्द्रमा मेघों से युक्त पश्चिम दिशा में यों प्रकट हुआ[1], मानों मन्मथ कमलनयन (राम) पर क्रुद्ध होकर अपने धनुष को वेग से झुकाकर शर-संधान कर रहा हो।

---

१. इसमें कृष्णपक्ष के चन्द्रमा का वर्णन है, जो पश्चिम दिशा में प्रकट हुआ है।

शतदल कमल की सुगंधित रजों से युक्त एवं मृदुल ओसकणों से सिंचित मंद मारुत से, पुष्पमाला-रूपी अग्नि से तथा मन्मथ-बाण रूपी यम से भी अधिक तीक्ष्णता के साथ वह शीतल चन्द्रमा ताप देने लगा।

रोष करने पर भी जिनके मुख की सुन्दरता बढ़ जाती है, वैसी सुन्दरी (सीता) से बिछुड़कर, निद्रा के सुख को भूलकर रहनेवाले उन प्रभु (राम) के कंधों पर चन्द्र-किरणों का फैलना ऐसा लगता था, मानों मयूरकुल के हट जाने पर धवलवर्ण सर्प-शिशु मरकतमय पर्वत पर निर्भय होकर मंद-मंद गति से चल रहे हों।

वज्र-समान अरुण कर एवं पुष्ट भुजाओं से शोभायमान प्रभु उस विशाल नगर के समीप पहुँचकर अत्यन्त शोक से उद्विग्न हो गये। जो लाल अग्निशिखा अनेक कोस दूर रहने पर भी ताप देती है, क्या उसके निकट आने पर उसका ताप शान्त हो जायगा?

जब यह हो रहा था, तभी लंकेश (रावण) के द्वारा भेजे गये गूढ़चर, वानर का रूप धारण कर वहाँ संचरण कर रहे थे। उन राक्षसचरों को, पूर्व में किये गये तप से प्रेरित होकर प्रभु की शरण में आये हुए विभीषण ने पहचानकर पकड़ लिया।

दूध के बड़े समुद्र में एक जलबिंदु पड़ने पर भी उससे निकालनेवाले हंस के समान उस (विभीषण) ने उस अतिविशाल कपिसेना के बीच आये हुए गुप्तचरों को पहचान लिया।

उस समय वह (विभीषण) उस योगी के समान हो गया, जो एक साथ उन परमात्मा एवं जीवात्मा दोनों का साक्षात्कार करता है, जो (परमात्मा एवं जीवात्मा) विभु (सर्वव्यापी) एवं अणु बनकर रहते हैं, जो अपूर्व शक्ति से युक्त (वेदांत में प्रतिपादित) विद्याओं के वशीभूत बनते हैं और जो इस देह में गूढ़ रूप से छिपे रहते हैं।[1]

वानरों ने मुट्ठी बाँधकर उन (राक्षस गूढ़चरों) को घूँसे लगाये। कुछ जो ऐसा न कर सके, उन्होंने उनके हाथों को लताओं से भली भाँति बाँध दिया। वे मुँह से रुधिर उगलने लगे। ऐसे चरों को लाकर विभीषण ने राम के समक्ष उपस्थित किया। करुणासमुद्र ने उनको देखा।

सर्प-शय्या पर शयन करनेवाले उन उदार प्रभु ने शत्रुत्व का विचार नहीं किया। उन राक्षसों को मारनेवाले वानरों को दया के साथ देखा। सोचा कि आखिर ये वानर ही तो हैं। फिर, उनसे कहा—'स्वयं अपराध करनेवाले व्यक्ति भी यदि हमारे आश्रय में आयें, तो क्या हम भी उनके प्रति अपराध ही करेंगे? इनको कष्ट मत दो।'

तब प्रभु की करुणा को देखकर अश्रुसिक्त नयनोंवाले विभीषण ने कहा—'ये पर्वतों और अरण्यों में रहनेवाले हमारे पक्ष के वानर नहीं हैं। उस धर्महीन रावण के द्वारा प्रेषित गुप्तचर हैं। यह 'शुक' है और वह 'सारण'।

---

१. विशिष्टाद्वैत-वेदांत के अनुसार जीवात्मा अणु-रूप माना गया है। जिस प्रकार देह के भीतर जीवात्मा रहता है, उसी प्रकार जीवात्मा के भीतर परमात्मा गूढ़ रूप में रहता है। उपनिषदों में दहर-विद्या (?) आदि जो बत्तीस विद्याएँ प्रतिपादित की गई हैं, उनके द्वारा जीव एवं परमात्मा का परस्पर साक्षात्कार होता है। —अनु०

जब ज्ञानवान् विभीषण ने इस प्रकार कहा, तब कपट-वेषधारी उन राक्षसों ने राम से कहा—'हे बलवान् धनुर्धारी! रावण का यह भाई (विभीषण) यह सोचकर कि बलशाली वानरों की सेना को युद्ध में हराना कठिन है, षड्यंत्र करके तुम्हारी शरण में आया है और हम निरपराध वानरों को मरवाने का प्रयत्न कर रहा है।

तब विभीषण ने (प्रभु से) यह कहकर कि 'ये कपट-वेषधारी हैं, इस सत्य को आप जानें', उन राक्षसों की माया को दूर करनेवाले एक मंत्र का उच्चारण किया। सत्य को प्रकट करनेवाले उस मंत्र के उच्चरित होते ही वे राक्षस वानर-वेष से मुक्त हो अपने निज रूप में ऐसे प्रकट हुए, जैसे पारस से युक्त होकर रजत की भ्रांति उत्पन्न करनेवाला ताँबा (रस-विनाशक पुटपाक से) अपने पूर्व रूप में प्रकट हुआ हो।

बिजली के समान दाँतों से युक्त राक्षस का रूप लेकर वे चर भयग्रस्त होकर खड़े हुए। पतितों के पाप को दूर करनेवाले प्रभु उन चरों को देखकर मंदहास करते हुए बोले—'डरो मत। तुम यहाँ क्यों आये? स्पष्ट कहो!'

तब वे चर घबराहट के साथ नमस्कार करके यों बोले—हे वीर! जगन्माता तपस्विनी (सीता) को अपने विनाश का कारण न जानकर जिस रावण ने खोजकर उन्हें प्राप्त किया है, उसकी आज्ञा से ही हम, दुर्भाग्य से युक्त पापी यहाँ की बातें जानने के लिए गुप्तचर बनकर आये हैं।

तब प्रभु ने उनसे कहा—तुम जाकर (रावण से) कहो कि मैंने लंका का अपार वैभव विभीषण को दे दिया है। यह भी कहो कि कपिसेना के द्वारा मकरों से भरे समुद्र में पर्वतों का सेतु बनाकर हम समुद्र को पार करके आ गये हैं और उससे यह भी कहो कि उस (रावण) की जीवन-लीला को समाप्त करने के लिए हम धनुर्धारी आ पहुँचे हैं।

यह भी कहना कि सिरों की पंक्ति से युक्त वह रावण जहाँ रहता है, उस लंका से युक्त त्रिकूट पर्वत के अपार जल से समृद्ध समुद्र के मध्य कहीं एक स्थान में रहने के कारण हम उसके स्थान को अबतक नहीं पहचान पाये थे। अबतक उस (रावण) के जीवित रहने का यही कारण है।

उससे यह कहना कि चाहे प्रचंड वेग से जानेवाले गरुड पर आरूढ विष्णु, चन्द्र-कला को धारण करनेवाले शिव और चतुर्मुख ब्रह्मा सभी आयें, तो भी उस धर्महीन (रावण) की रक्षा नहीं कर सकते। उसके शरीर के अनेक टुकड़े होकर गिरेंगे, जिनको सभी देखेंगे।

तीक्ष्ण परशु को धारण करनेवाले (परशुराम) ने जिस प्रकार अपने पिता के शत्रु कार्त्तवीर्य को, उसके कुल-सहित विध्वस्त कर डाला था, उसी प्रकार मैं भी उस (रावण) के प्राण हरकर और उसके बंधु-वर्ग को मिटाकर, अपने पिता-समान जटायु के निमित्त उस (रावण) की बलि देकर देवताओं को तृप्त करूँगा।

यह भी उससे कहना कि उसने महान् तपस्या करनेवाली एक पवित्र नारी को बंदी बनाकर रखा है, इसलिए उस वंचक की सारी संपत्ति उसके भाई को समर्पित करके हम उसे (रावण को), उसके साथियों के संग, नरक नामक अवार्य कारागार में रखनेवाले हैं।

तुमने सेना में सर्वत्र जाकर सब कुछ देख लिया। यदि अब और कुछ नहीं देखना हो, तो तुम निर्भय होकर लौट सकते हो। मन, वचन और कर्म में कुछ पाप न रखकर शीघ्र यहाँ से चले जाओ। प्रभु की ये बातें सुनकर 'हम तर गये' कहते हुए वे दोनों गुप्तचर वहाँ से चल पड़े।

शब्दायमान महान् समुद्र का भयभीत होना, उसपर एक दृढ सेतु का बाँधा जाना, उस पर से (राम आदि का) आगमन—यह सब देखकर लंकापति (रावण) एकांत स्थान में रात-भर विचार करता रहा।

कंचुक में बँधे पृथुल स्तनोंवाली सुन्दरियों को तथा अन्य जनों को छोड़कर कुछ बुद्धिमान् (मंत्रियों) को साथ लेकर वह मंत्रणागृह में जा पहुँचा। मंद मारुत भी यह सोचकर कि जब रावण उसे नहीं चाहता है, उस स्थान में नहीं गया।

जो कुछ नहीं समझ सकते थे, ऐसे गँगे, जो कथित वचन को सुन नहीं सकते थे, ऐसे बहरे, जो अंगहीन थे, ऐसे कुबड़े तथा बौने जैसे लोग दीपों को लिये चारों ओर खड़े रहे।

दानवों के रत्नमय किरीट जिसके सुन्दर चरणों पर नत होकर उसका प्रकाश फैलाते थे, ऐसे उस लंकेश ने कहा—'हमारे निकट मनुष्य आ पहुँचे हैं। अब क्या कर्त्तव्य है ?' तब उसके नाना ने कहा—

प्रलयाग्नि के समान शरों से समुद्र का त्रस्त होना, सूर्यातप के समान रत्नहार देकर (वरुण का) नमस्कार करना, यह सब शूल बनकर मेरे हृदय को साल रहे हैं।

समुद्र फट गया। उसका प्रसिद्ध बल मिट गया। महान अपयश का भागी बनकर भयभीत होते हुए वरुण ने (राम को) मार्ग दिया।—ये बातें मेरे हृदय को पीडा दे रही हैं।

जो बड़े-बड़े पर्वत थे, उन सबको जड़ से उखाड़कर वानर-वीरों ने जो ताल ठोंका और समुद्र में जो सेतु बनाया—ये सब मेरे मन को घोंट रहे हैं।

रोष-भरे असंख्य वीर अपनी-अपनी शक्ति के अनुकूल बड़े-बड़े पहाड़ों को ला-लाकर देते थे, तो एक वानर अपनी उँगलियों से उन सबको सँभाल-सँभालकर समुद्र में डालता रहा। उसने भी मेरे हृदय में पीडा डाल दी है।

(समुद्र को) जलाना देखकर, पुरातन समुद्र को (बाँध से) रोकना देखकर, शक्तिहीन शत्रु का पर्वत लाकर डालना देखकर एवं अपनी आँखों के सामने उनका आना देखकर अब हम और क्या सोचें ?

जब (रावण की) माता के पिता ने इस प्रकार कहा—तब रावण ने अपने ओंठ चबाकर, आँखों से आग उगलते हुए कहा—'अच्छा है ! अच्छा है ! हमारी यह मंत्रणा बहुत सुन्दर है ! जाओ ! चिरंजीवी रहो ! तुम भी भाई (विभीषण) के जैसे चले जाओ।'

तब वह वृद्ध यह सोचकर कि 'हित कहना हीनता का लक्षण है', मौन हो रहा। तब उस (रावण) के चरणों को नमस्कार करके उसके सेनापति ने कहा—

उनका समुद्र पार करके इस दृढ नगर में आना कौन बड़ी बात है? अष्ट दिशाओं के अधिपति भी इन (रावण) की आज्ञा का पालन करते हैं, इस बात को तुम भूल गये।

उन भय खानेवाले वानरों ने शैलों को उठाकर विशाल समुद्र में फेंका—यह कहकर तुम उनकी वीरता का वर्णन क्या कर रहे हो? क्या (रावण ने) महान् (हिमालय) पर्वत को ईश्वर के साथ ही उसके सूक्ष्म मूल तक को नहीं उठा लिया था?

अब इन सब बातों से क्या मतलब? ये बुद्धिहीन लोग, अपने विनाशकारक विधि से प्रेरित होकर हमारे आवासभूत इस नगर में स्वयं ही मरने के लिए आये हैं।—यों उसने कहा।

इसी समय एक कंचुकी, जो आग उगलनेवाले नेत्रों तथा वेत्र रखे हाथ से युक्त था, आया और निवेदन किया कि गुप्तचर लौटकर आ गये हैं।

वे चर प्रासाद में आये और (रावण को) नमस्कार किया। बलिष्ठ हाथोंवाले वानरों की सेना का बार-बार स्मरण करके वे विकल हो उठते थे और ज्यों-ज्यों खाँसते थे, त्यों-त्यों रक्त उगलते थे।

प्राण लेने के लिए मुँह खोले हुए यम-समान रावण ने कहा—उस सेना की स्थिति, विभीषण की दशा और उन तपस्वी नरों की हालत कहो।

हम, तुम्हारे दासों ने, उस वानर-सेना को पूर्ण रूप से देखने का प्रयत्न किया। किन्तु, जैसे गरुड समुद्र को पूर्ण रूप से देखने के लिए भिन्न-भिन्न दिशाओं में उड़-उड़कर भी उसके एक अंश को ही देख पाता हो, ऐसे ही हम भी उस वानर-सेना को पूरा नहीं देख पाये।

यह सब कहने के लिए हमारे यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी? अपार शोकपूर्ण समुद्र सेतु बाँधने से जब पीडित हुआ, तब उससे निकले हुए जलबिंदुओं ने यहाँ बिखरकर क्या कुछ नहीं कहा?

मैंने इसके तट पर आकर प्रार्थना की, तब भी वरुण नहीं प्रकट हुआ—यों विचार करते हुए ज्यों ही उस मनुष्य ने अपने कंधों-रूपी पर्वतों को देखा, अपने बाणों को देखा और अपने धनुष को देखा, त्यों ही वह (वरुण) प्रकट हो आया।

हे पुष्पमालालंकृत वक्षवाले! तुम्हारे भाई (विभीषण) ने जबतक रथारूढ सूर्य भ्रमण करता रहे और उन (राम) का नाम जबतक स्थिर रहे, तबतक के लिए समुद्र-मध्य-स्थित लंका का राज्य प्राप्त किया है।

'सेतु बाँधा गया'—यह क्या अभी ज्ञात हुई कोई नई बात है? दूत बनकर जो (हनुमान्) आया था, उसके भुजबल ने ही हमें अपार प्रमाण दे दिये थे?

पूर्वकाल में जब देवता अमृत-पान कर रहे थे, तब उनके बीच में छिपे दानवों (राहु और केतु) को जिस प्रकार (सूर्य ने) उन्हें मायावी भगवान् को दिखा दिया था, वैसे ही तुम्हारे अनुज ने हमको (राम के सामने) प्रकट कर दिया।

वानर-वीरों ने अपने दृढ हाथों से हमें मारा। हमारे हाथों को बाँधकर खींच

ले गये और (विभीषण ने) हमको ज्योति के समान प्रकाशमान प्रभु के सामने उपस्थित किया।

उस विजयी राम ने कहा कि 'मैं इन शरों से रावण के दीर्घ समय से प्राप्त सब वरों को मिटा दूँगा।' हमें कपट-वेषधारी राक्षस जानकर भी उस (राम) ने हम पर दया दिखाई। इसी से हम सप्राण लौट आये हैं।—इस प्रकार उन गुप्तचरों ने कहा।

और, उन सत्यमय प्रभु ने जो-जो बातें कहीं, वे सब बातें उन गुप्तचरों ने (रावण को) सुना दीं। फिर बोले—'आज से हमारे सब पाप दूर हो गये।' (१—६५)

●

अध्याय ६

लंका-संदर्शन पटल

शाप के समान तीक्ष्ण धनुषवाले वे मनुष्य समुद्र को पार करके शीघ्र अपनी विशाल सेना-सहित तुम्हारे प्रसिद्ध नगर में आ पहुँचे हैं। तो अब और क्या सोचना है ? और क्या करना है ?—यों कहकर सेनापति फिर बोले :

यदि लंकेश उस स्त्री को छोड़ देंगे, तो देवता यह कहकर उपहास करेंगे कि यह भयभीत हो गया। यदि शत्रुओं के साथ संधि कर लें, तो भले ही वे शत्रु (संधि के लिए) सन्नद्ध हो जायँ, फिर भी तुम्हारा भाई उसके लिए तैयार न होगा। अतः, अब उन (शत्रुओं) के यहाँ पहुँच जाने पर युद्ध के अतिरिक्त और क्या कर्त्तव्य हो सकता है ?'

(जब वे शत्रु समुद्र-तट पर आये थे) तभी वहाँ जाकर उन शत्रुओं को युद्ध में मिटाकर हम अपने नगर को लौट आते—पर ऐसी बात नहीं हुई। अब वे लोग स्वयं यहाँ आ गये हैं। इससे हमारा भला ही होगा। जब हमारा इच्छित कार्य स्वयं ही आकर प्राप्त हुआ है, तो उससे हमारी विजय निश्चय ही है।

राक्षसों की सेना सहस्र 'समुद्र' संख्या में है। यदि वह निहत भी हो जाय, तो भी यह निश्चित है कि उसको मारने में शतयुगों का समय लगेगा, अतः हम दीन क्यों बनें ? अगर तुम स्वयं युद्ध करने जाओगे, तो जैसे सिंह के सम्मुख श्वानों का झुंड हो; यों तितर-बितर हुए बिना क्या वे वानर ठहर सकेंगे ?

हमारे शत्रु जो यहाँ आये हैं, उनके साथ मैं अपनी सेना को लेकर ऐसा युद्ध करूँगा कि उन्हें परास्त कर दूँगा, जिससे युद्ध में मरे हुए शत्रुओं को छोड़कर बाकी यहाँ से भाग जायेंगे। मेरे इस भयंकर युद्ध को तुम देखो और इसकी मुझे आज्ञा दो—इन्द्र की पीठ को देखे हुए सेनापति ने उस रावण को यों समझाकर कहा।

विवेकपूर्ण और विचारवान् माल्यवान् ने (रावण से) कहा—'कोई अच्छी बात सामान्य रूप में ही कही जाय, तो भी उसे अपने विषय में लागू कर लेना ही बुद्धिमत्ता है।' फिर, उसने अपना यह अभिप्राय व्यक्त किया कि जो यह कह रहे हैं कि शत्रुओं का

आगमन विधिकृत हितकर कार्य है, वे भी (प्रहस्त आदि सेनापति) युद्ध में शिथिल पड़ जायेंगे।

तरंगायमान समुद्र से आवृत पृथ्वी के चक्रवर्त्ती राजा दशरथ के पुत्र (राम) को, जो अब यहाँ हमसे युद्ध करने के लिए आया है, (संसार के लोग) कलंकरहित प्रकाश-पुंज से पूर्ण, अंतरिक्ष की अंतिम सीमा पर प्रकट होनेवाले देवाधिदेव विष्णु ही कहते हैं।

उस (राम) के अनुज को, उन पवित्र भगवान् विष्णु का—जो (भगवान्) परमपुरुष के रूप में वेदों से प्रतिपादित हैं और जो इस प्रकार नानाविध वस्तुजात के रूप में निवास करते हैं, मानों अपना शाश्वत स्थान छोड़कर आ गये हों—अनुपम पर्यंक आदिशेष ही कहते हैं।

उस (राम) का धनुष, पूर्वकाल में ब्रह्मा के द्वारा कुलपर्वतों की शक्ति को पृथक् करके बनाया गया था। उसकी डोरी आदिशेष है। उसमें से जो तीक्ष्ण शर वेग से निकलते हैं, वे कालचक्र को भी (अपनी निर्बाध गति के कारण) मात कर देते हैं—ऐसा लोग कहते हैं।

वालिपुत्र, इन्द्र है। नील, अग्निदेव है। वह दूत (हनुमान्) जो यम-समान है, वायु एवं त्रिनेत्र (शिव) का अंश है, और यह भी कहते हैं कि वह (हनुमान्) भविष्य में ब्रह्मा बननेवाला है।

सब लोग यह भी कहते हैं कि उस (हनुमान्) को जिसने (ब्रह्म-) पद दिया, वही राम राक्षसों का समूल नाश करने के लिए इस नगर में आया है। न जाने, उपमान के रूप में वे ऐसा कह रहे हैं या यथार्थ ही कह रहे हैं। अधिक कहने से क्या प्रयोजन है? देवता ही वानर-रूप धारण करके आये हैं।

यह ज्ञानियों का सत्य-वचन है, या भय है, अथवा अनुमान-मात्र है, जाने क्या है; किन्तु लोग कहते हैं कि वह (सीता) पवित्र है, अमृत के संग उत्पन्न (लक्ष्मी) है और वह सब लोकों की माता है। अतः, उस सद्गुणवती को केवल एक अबला मानकर मन में उनकी उपेक्षा न करो।

लोग यह भी कहते हैं कि राम का वन में आगमन देवों की प्रार्थना से ही हुआ है। 'मत्स्यों से पूर्ण समुद्र के मध्य-स्थित पर्वत पर बसी लंका के राजा ने अनेक वर प्राप्त किये हैं'—यह सोचकर ही सब देवता पृथक्-पृथक् नर-रूप धारण करके आये हैं।

लोग कहते हैं कि यहाँ (लंका में) सहस्रों उत्पात दिखाई पड़ रहे हैं। यह भी कहते हैं कि जब वह (हनुमान्) सब प्राणियों के लिए माता से अधिक प्रेमपूर्ण (सीता) देवी का अन्वेषण करता हुआ यहाँ आया था, तब उसके आघात को न सहकर लंका की अधिष्ठात्री देवी यहाँ से चली गई। और, यह भी कहते हैं कि अब यहाँ भीषण युद्ध होनेवाला है।

लोग कहते हैं कि यहाँ के राक्षस अपने राजा के साथ ही शरों के लक्ष्य बनने-वाले हैं। जिह्वा में जो असत्य से रहित है और बुद्धि में देवों के मंत्री (बृहस्पति) से भी एक हाथ ऊँचा है, वह विभीषण ही यह सब कहकर गया है—यों माल्यवान ने कहा।

मैं यह सब जानता हूँ। मेरे कुल का अन्त समीप आते देखकर तथा तुम पर प्रेम के कारण मैंने अपने हृदय की वेदना से पीडित होकर घटित होनेवाली बातें तुम्हें बताईं। यदि तुम सीता को मुक्त कर दो, तो यह सारी विपदा ही दूर हो जायगी—यों माल्यवान् ने कहा।

उसकी बातें सुनकर रावण बोला—तुमने उन मनुष्यों की, वानरों की तथा अबतक स्वर्ग में स्थित देवों की प्रशंसा तो की। इसे रहने दो। किन्तु तुमने यह भी कहा है कि मैं युद्ध में हार जाऊँगा। तुम्हारा ज्ञान अच्छा है! भला है!

इन निर्बल मनुष्यों के साथ, वानर ही नहीं, यदि अन्य लोग भी आयें, भूमि की सीमा के बाहर रहनेवाले नाग आदि भी एक साथ मिलकर मुझसे युद्ध करने पहुँचें, तो भी सीता के लिए उन सबके साथ युद्ध करने से क्या अपने पैर पीछे हटालूँ?

मेरे हाथ के शरों ने समस्त लोकों पर विजय प्राप्त की है। पूर्व में जब देवता मेरे साथ ऐसा युद्ध करने आये थे, जैसा और किसी ने नहीं किया था, तब (मेरे शर) उन (देवताओं) की पीठ में प्रविष्ट हो गये थे। ऐसे मेरे शर आज क्या यहाँ आये हुए इस वानरों पर नहीं चलेंगे?

त्रिशूल को अपने विशाल कर में धारण करनेवाले देव (शिवजी) भी यदि एक वानर का रूप धरकर आयें, तो मुझसे पराजित होने के सिवा मेरा क्या बिगाड़ सकेंगे? मेरे हाथ का शर भी क्या पूर्वकाल में समुद्र की वेला को पार कर समस्त लोकों को निगलने के लिए प्रवृत्त हलाहल विष है, जिसे वे (शिव) उठाकर पी जायेंगे?

अजी! कदाचित् तुम यह बात नहीं जानते कि यदि पूर्व में मुझसे युद्ध करने से डरकर भागा हुआ वह चक्रधारी (विष्णु) भी यदि अब पुनः आ जाय, तो मेरे हाथ के अग्नि उगलनेवाले शर उसके हृदय को पार कर जायेंगे। क्या मेरे शर भी समुद्र मथने से उत्पन्न वह (वैजयन्ती) मणि है, जिसे वह अपने वक्ष पर आभरण के रूप में पहन लेगी?

यदि देवों का राजा देवेन्द्र भी वानर-रूप धरकर आ जाय, तो (वह भी मुझसे पराजित होगा)। क्या मेरे कंधे वे पर्वत हैं, जिनके परों को उस (इन्द्र) ने वज्रायुध लेकर काट डाला था और जो उड़ नहीं पाने से निःशक्त हो पड़े हैं?—यों रावण ने कहा।

इसी समय प्रभात हुआ और रात्रि का अंधकार मिट गया। अपने हृदय को ही दूत बनाकर अपने प्राण-समान प्रियतमों के स्थान का अभिसार करनेवाली नारियाँ व्याकुल हुईं। चक्रवाक-युगल का वियोग-दुःख दूर हुआ। और, देवों के आवासभूत (मेरु-) पर्वत पर बाढ़ के जैसा फैला हुआ अंधकार-समूह सूख चला।

सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, मानों भय के कारण लंका नगर की ओर झाँककर देखने की भी क्षमता न रखने से उसके प्राचीरों के बाहर-ही-बाहर जानेवाला वह सूर्य अब यह सोचकर कि राजाधिराज विष्णु ही आ गये है (तो अब क्या भय है), उस पुरातन नगर को देखने की इच्छा से झाँक रहा हो।

'अरुंधती-समान पातिव्रत्य से युक्त सीता उस नगर में है'—यह सोचकर ही मानों रामचन्द्र प्रेम से प्रेरित होकर उस स्वर्ण-नगर को देखने चले हों—यों, महान् वीरों के घिरे

हुए तथा अपने भाई को भी साथ लेकर वे (राम) एक पर्वत के शिखर पर चढ़ गये।

चारों ओर महाबली वीर चल रहे थे। दोनों पार्श्वों में दोनों राजा (अर्थात्, सुग्रीव और विभीषण) उन (राम) के कमल-समान करों को सहारा देते हुए जा रहे थे। और रामचन्द्र इस प्रकार जा रहे थे, मानों महान् बलशाली सिंह, व्याघ्र आदि से घिरा हुआ, कोई मृगेन्द्रराज पर्वत पर जा रहा हो।

राक्षसों के उस नगर एवं पर्वत के—जहाँ के अंधकार उमड़कर गरजनेवाले तथा तरंगों से भरे समुद्र को एवं समस्त लोक को डुबा रहा था—विध्वस्त हो जाने के अशुभ शकुन को सूचित करनेवाले और उत्तर दिशा के पर्वत-शिखर पर उदित होनेवाले काले सूर्य के समान रामचन्द्र (लंका के) उत्तर में स्थित उस पर्वत पर प्रकट हुए।

भीषण युद्ध में शरों की महान् वर्षा करनेवाले दृढ धनुष को लिये हुए एक बड़े पर्वत के जैसे वे महान् वीर (राम) कालमेघ के समान थे, जिसमें दृढ तथा अति सुन्दर कर, वदन, नयन तथा चरण-रूपी कमलों के वन खिले हों।

दृढ शैलशिखर के समान कंधों से युक्त वे वीर (राम), अपार वीचियों से पूर्ण समुद्र-समान मनोहर वीर-समुदाय के बीच में खड़े हुए यों दिखाई पड़े, जैसे स्वर्ण-शिखरों के मध्य एक मरकत-शिखर शोभायमान हो रहा हो।

समुद्र पर सेतु बनानेवाले उन रोष-भरे प्रभु (राम) ने जो दीर्घ नयन-युगल से शोभित अपने प्राण-समान (सीता) देवी से वियुक्त होकर अपने जोड़े से पृथक् हुए क्रौंच के जैसे दुःखी हो रहे थे, अपने कमल-नयनों से लंका नगर को समीप में देखा।

तब रामचन्द्र ने अपने अनुज से कहा—कविजन हमारे (अयोध्या) आदि नगरों का वर्णन करते समय उपमान के रूप में इन्द्र के आवासभूत (अमरावती) नगर का ही उल्लेख करते हैं। किन्तु इस लंका-नगर का उल्लेख नहीं करते। अहो ! वे कवि लोग भी (अमरावती और इस लंका में स्थित) वास्तविक अन्तर को नहीं जानते।

लंका के भवन कलंक से हीन अति स्वच्छ स्वर्णमय धरातल पर बने हुए हैं और सूर्य को भी लज्जित करनेवाले, अत्युज्ज्वल कांति बिखेरनेवाले रत्न-समुदाय से निर्मित हैं तथा अवर्णनीय कला से पूर्ण हैं। किन्तु, अपनी अत्यधिक कांति से आवृत रहने से उनकी अति सुन्दर कला भी स्पष्ट प्रकट नहीं हो रही है।

उज्ज्वल रत्नों से विकीर्ण होनेवाली कांति गगन में व्याप्त हो रही है। उस प्रकाश-पुंज के कारण पताकाओं से शोभायमान यह नगर ऐसा लगता है, मानों सिंह-समान मारुति ने इस (लंका) नगर में जो आग लगाई थी, उससे अभी तक यह नगर जल रहा हो।

कांतिपूर्ण विशाल मरकतमय सतह पर स्वर्णमय भवन (सुनहली) आभा बिखेर रहे हैं। उनके मध्य अति मनोहर रजतमय सौध हैं। यह सारा दृश्य ऐसा लगता है, मानों एक सरोवर में कमल-पुष्पों के मध्य हंस विश्राम कर रहे हों।

अग्नि की जैसी कांति विकीर्ण करनेवाली मणियों से खचित स्तंभों पर फहरानेवाली पताकाओं से शोभायमान प्रासादों पर जब मेघ-समुदाय जाते हैं, तब उन (मेघों)

की कालिमा दूर हो जाती है और वे सुनहले दीखने लगते हैं। ऐसा लगता है, मानों लौहमय मेघ अग्निमय लंका के मध्य तप रहे हों।

धनुष को धारण करनेवाले दृढ करों से शोभायमान हे अनुज! देखो, तीक्ष्ण आँखोंवाले हाथी यद्यपि अंधकार के जैसे रंगवाले हैं, तथापि अपने वज्रमय पैरों से स्वर्णमय भूमि को कुरेदकर उस धूल को अपनी सूँड़ों से उठाकर शरीर पर डाल लेते हैं, जिससे वे चलते समय स्वर्ण-पर्वत जैसे लगते हैं।

टंकार करनेवाले धनुष से युक्त हे वीर (लक्ष्मण)! देखो, स्वर्णमय पताकाएँ, जिनके निचले भागों में चामर शोभायमान हैं, गगन में फैले हुए मेघों को यों पोंछ रही हैं कि सारा आकाश उज्ज्वल दिखाई दे रहा है।

शिल्पशास्त्र के अनुसार निर्मित, चित्रकलाओं से युक्त उत्तम रत्नों से खचित, अति सुन्दर, राक्षसराज (रावण) का भवन ऐसा लगता है, मानों वह समुद्र-देवता की माला बनी हुई इस नगरी की मध्यमणि हो।

हे सन्मार्ग को जाननेवाले! देखो, इस नगर की विशाल वीथियों में जानेवाले अश्व दोनों ओर स्थित रत्नमय प्रासादों की छाया उनपर पड़ने से, अपने वर्ण को छोड़कर विचित्र रंगों से दिखाई पड़ते हैं। अतः, यह ज्ञात नहीं होता है कि कौन अश्व किस जाति का है।

'हे वीर! देखो, मृदु स्फटिक शिला से निर्मित यहाँ के प्रासाद मन्मथ को भी आकृष्ट करनेवाले हैं। उनपर अन्य किसी छाया के पड़ने से ही वे स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं, अन्यथा दृष्टि में नहीं आते। अहो! कैसी सुन्दरता है! मानों जल से ही इनका निर्माण हुआ हो।

युद्ध में शत्रु को भयभीत करके झुकनेवाले धनुष को धारण करनेवाले हे वीर! देखो, इस नगर से पूर्ण चन्द्र की कांति के समान उज्ज्वल धवल कांति गगनतल में उठकर छा जाती है। ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा है, मानों मरकत-कांति के मध्य, मुक्तामय वितान की छाया में, क्षीरसमुद्र में रहनेवाले भगवान् (विष्णु) शयन कर रहे हों।

हे सिंह-शावक जैसे वीर! देखो, गगन-चुंबी प्रासादों में रहनेवाली देव एवं नाग-स्त्रियाँ (अपना अलंकार करते समय) अपने काले आवरणों से जो दर्पण बाहर निकालती हैं, वे (दर्पण) राहु से ग्रस्त होकर बाहर निकलनेवाले चन्द्रमा के समान दीखते हैं।

हे विजयी धनुष से शोभायमान वीर! पताका-युक्त, सौधों तक ऊँचे उठे सिर-वाले ऊँट, उन प्रासादों के रत्नों से निकलनेवाले कांति-पुंज को आम्रवृक्षों के पल्लव-गुच्छ समझकर मुँह खोलकर उन्हें खाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

हे विजयी धनुष धारण करनेवाले वीर! पुष्पमालाओं से भूषित केशोंवाली मयूर-समान सुन्दरियाँ (अपने केशों को सुखाने के लिए) जो अगरु-धूम निकाल रही हैं, उनसे घिरा हुआ प्रवालमय वह भवन, हस्तिचर्म को धारण करनेवाले अर्धनारीश्वर के समान लगता है।[1]

---

१. शिवजी का रंग रक्तवर्ण है और पार्वती का रंग काला। शिवजी हाथी का चर्म पहनते हैं।—अनु०

हे धनुर्धारी वीर ! चक्रवर्ती कुमार ! देखो ! देवताओं के दिये नीलरत्नों से निर्मित अनेक क्रीडा-पर्वत दिखाई दे रहे हैं, जो ऐसे लगते हैं, मानों दान क्या होता है, यह न जाननेवाले राक्षसों के द्वारा संचित पापों के ढेर हों।

हे भाई! (रावण से) हरी जाकर, अपने प्रियतमों से वियुक्त हुई स्त्रियाँ, जो दुःख से म्लान हो गई हैं और जिनका हृदय उद्विग्न हो रहा है, हमारी ओर इस प्रकार देख रही हैं, जिस प्रकार मयूरों का समूह घन-घटा की ओर देखता है।

हे सद्योविकसित पुष्पों को धारण करनेवाले वीर ! देखो, गंधर्व और विद्याधर-स्त्रियाँ, गगन में उड़ते हुए यों दिखाई पड़ रही हैं, मानों यह सोचकर कि अब उनका जीवन पुनः सुधर जायगा, (रावण की) महान् नगरी को शून्य बनाकर वे दूर जा रही हों।

जब रामचन्द्र अपने भाई को इस प्रकार लंका-नगर दिखाकर उसका वर्णन कर रहे थे, तभी वानर-सेना की विशालता को देखने की इच्छा से, उस नगर का अधिपति (रावण) गगन को छूनेवाले एक स्वर्णमय गोपुर पर जा चढ़ा। (१—४८)

●

अध्याय १०

रावण द्वारा वानरसेना-संदर्शन पटल

दाँतों से युक्त कुंजर के समान वह (रावण) सीता के प्रति मोह के कारण, पुष्पबाणों से पीडित भुजाओं के साथ ऐसा दिखाई पड़ा, जैसे कोई अनेक शिखरोंवाला पर्वत खड़ा हो।

यह कहते ही कि अब युद्ध प्राप्त हुआ है, उस (रावण) की भुजाएँ, जो (सीता नामक) सुन्दरी के प्रति मोह के कारण अत्यन्त कृश हो गई थीं, झट फूलकर मेरु से भी बड़ी हो गई। उसका मन उत्साह से भर गया।

स्वर्णमय मेरु बना था वह गोपुर और उसपर स्वर्णमय शिखर बने थे उस (रावण) के सिर। इससे वह ऐसा दिखाई पड़ा, मानों क्रोध-भरे वायुदेव को निगलने के लिए पूर्वकाल में गगन में उठा हुआ वासुकि सर्प ही हो।

उस (रावण) के ऊपर एक विशाल छत्र छाया दे रहा था। जो (छत्र) पंचभूतमय दसों दिशाओं में अपनी छाया फैला रहा था।

उस (रावण) के वक्ष पर पड़ा उत्तरीय वस्त्र, दोनों ओर डुलनेवाले चामरों की वायु से हिल उठता था। वह दृश्य ऐसा था, मानों स्निग्ध नीलवर्णवाले पर्वत पर निर्झर झर रहे हों।

स्वर्ग में रहनेवाली तिलोत्तमा, उर्वशी आदि मंदहास फेंकनेवाले अरुण अधर से युक्त तथा सुगंधित पुष्पधारिणी अप्सराएँ जानकी को अपना सौंदर्य प्रदान करते हुए उस (रावण) को चारों ओर से घेरकर खड़ी थीं।

बिंब-समान अधर और बाँस के समान कंधों से युक्त अत्युत्तम पाँच सौ सुन्दरियाँ उस (रावण) के पार्श्वों में जा रही थीं।

उस (रावण) के कंदरा-समान मुँहों से, चन्द्रकला-समान दाँतों की उज्ज्वल धवल कांति चन्द्रिका बनकर फैल रही थी। जैसे किसी पर्वत पर मेघ, गर्जन किये बिना फैले हों, इस प्रकार उसके केश थे।

जिन कानों में पहले वेदघोष पड़ता था, उनमें भी (आज) 'सीता' 'सीता'—शब्द ही सुनाई पड़ता था। यों वेदध्वनि भी एक ओर हो रही थी और एक ओर नारद अपनी वीणा बजाते हुए गा रहे थे।

अपने भयंकर हाथों में शूल, धनुष, करवाल आदि शस्त्र रखनेवाले, अपने बल से शंकर को भी पराजित करनेवाले अंगरक्षक वीर शतकोटि रक्त-नेत्रों के साथ उस (रावण) को घेरकर खड़े थे।

आवश्यकता होने पर जो सब लोकों को भी खोदकर उठा सकते थे, जो लंका के निर्मित होने के समय से ही प्रधान स्थान प्राप्त किये रहते थे और जो किसी भी त्रुटि से रहित थे, ऐसे शतकोटि यक्ष, धनुष को लिये उस रावण के पार्श्वों में चल रहे थे।

गगन में फैली घनी घटा के समान शब्द करनेवाले वाद्य भेरी, पटह, आकुलि, तुरही आदि शब्दायमान हो उठे, जैसे विशाल समुद्र शब्द कर रहा हो।

विष भी जिनसे डर जाय, ऐसी आँखों से युक्त नागकन्याओं को भी लज्जित करनेवाली लता को भी संकोच (लज्जा) उत्पन्न करनेवाली कटि से शोभायमान सुन्दरियाँ स्वर्ग की अमृतभाषिणी अप्सराओं के संग पंचम राग गा रही थीं।

आँखों से विष उगलनेवाले, हाथों में गदा रखनेवाले, मेघ-समान गर्जन करनेवाले अति वेगवान् कंचुकी दिशाओं में चल रहे थे। (अर्थात्, चारों ओर जा रहे थे)।

जिनका उपमान कुलपर्वत भी नहीं बन सकते थे, ऐसे (रावण के) विशाल कंधों पर लगे चंदन की सुगंधि दूर से ही यह सूचना दे रही थी कि रावण आ रहा है।

नेत्रधारी, अग्नि उगलती आँखोंवाले अपने राजा (रावण) के खड़े रहने पर भी स्थिर नहीं रहनेवाले दस सहस्र प्रासाद-रक्षक वीर उसको घेरे हुए थे।

तोरण से शोभायमान मणिमय द्वार पर वह (रावण) ऐसे खड़ा हुआ, जैसे जल-भरा बादल हो। और, वेद-प्रतिपादित सत्य को, वेदों के अन्वेषण करने योग्य मूल-कारण हरि को, उस (रावण) ने अपनी उठी हुई आँखों से देखा।

उस समय वह (रावण) ओंठ चबाने लगा। उसकी आँखों से अग्निकण बरसे। दिशाओं में वज्र गरजे और सबके हृदय काँप उठे। उस (रावण) के वाम नेत्र और वाम भुजाएँ फड़क उठीं।

इस प्रकार उस (रावण) ने राघव को देखा, जब एक राशि में सूर्य और चन्द्र आते हैं (अर्थात् , अमावास्या के दिन) उस उज्ज्वल प्रकाशवाले सूर्य को निगलने के लिए आनेवाले राहु के समान वह (रावण) रुष्ट हुआ।

तब रावण ने सारण से कहा—यह राम है, यों उसकी देह-कांति ही बता रही है, अन्य सेनापतियों के बारे में तुम कहो, तब सारण ने कहा—

वह जो खड़ा है उसीने—'मैं लंकेश की बहन हूँ', यह कहनेवाली (शूर्पणखा) के स्तन, कान और नासिका को, बड़े क्रोध के साथ अपने उज्ज्वल करवाल से काट डाला था।

धर्म को छोड़कर और किसी पर दृष्टि नहीं डालते हुए, उस (लक्ष्मण) ने, जैसे काले समुद्र को घेरकर चक्रवाल-पर्वत खड़ा हो, वैसे ही (अपने अग्रज के साथ) खड़े रहकर, संन्यासी लोग भी जिस निद्रा का त्याग करने में असमर्थ हैं, उसी निद्रा को दूर भगा दिया है।[1]

वह लक्ष्मण जिसके कर को छूता हुआ खड़ा है, वही सूर्य का पुत्र है, जिसने वाली के साथ भयंकर युद्ध किया था और उसे पराजित किया था, जो किसी से नहीं डरनेवाला है।

उस (सुग्रीव) के पार्श्व में जो खड़ा है, उसके पिता (वाली) ने अमृत चाहनेवाले देवताओं के देखते हुए, मंदर-पर्वत और वासुकि-सर्प को लेकर अपनी सुन्दर भुजाओं से क्षीरसमुद्र को मथा था।

वह जो खड़ा है, उसी (हनुमान्) ने पूर्व में खरकिरण (सूर्य) के साथ संचरण किया था (और उससे शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था)। वह धरती को दंष्ट्रा पर उठानेवाले आदिवराह के समान है और जब वह समुद्र पार करके (लंका में) आया था, तब उसके सब कार्य तुमने देखे ही थे न ?

वह जो खड़ा है, वही अग्नि का पुत्र नील है। इसके शत्रु कहते हैं कि यह शूल और पाश से हीन होकर आया हुआ यम ही है, जो हलाहल के समान है।'

वह पृथक् खड़ा हुआ व्यक्ति नल है। जिसने वरुण के मार्ग न देने पर उस पर क्रुद्ध होकर राम ने जो अग्नि प्रज्ज्वलित की थी, उसके बुझ जाने के पूर्व ही समुद्र के मध्य सेतु बना दिया।

वह जो खड़ा है, वही भल्लूकराज जांबवान् है, जिसने त्रिकाल का ज्ञान प्राप्त किया है। जो उस समय भी था, जिस समय (क्षीरसागर से) हलाहल निकलकर सब देवों को विकल करने लगा था और जो अब भी सप्तलोकों को उठा लेने की शक्ति रखता है।

जैसे एक अंधकारमय पर्वत के पार्श्व में दो स्वर्णमय पर्वत हों, वैसे ही वानर सेनापति के पार्श्व में खड़े हुए वे दोनों (वानर), देवताओं के वैद्य (अश्विनीकुमारों) के पुत्र हैं।

वही कुमुद है और वह कुमुदाक्ष है। यह गवय है और यह गवयाक्ष है ? उस स्थान में दूत (हनुमान्) का जनक केसरी (नामक वानर) है, जो अपार बल से संपन्न है।

---

१. यह प्रसिद्ध है कि लक्ष्मण ने रामचन्द्र के साथ चौदह वर्ष वन में रहते हुए कभी निद्रा नहीं की। इस पद्य में उसी बात का उल्लेख है।

हे प्रभु ! बलवान् नरसिंह के समान हाथों में उगे नखों के साथ दाँतों से प्रकाश फेंकते हुए क्रोध के साथ विराजमान उस वीर का नाम सुरभ है। वही शरभ नामक वानर है, जो अनेक पर्वतों को जड़ से एक साथ उखाड़ सकता है। यही 'शतबली' नामक वीर है।

तीन नेत्र न होने पर भी, त्रिपुरों को जलानेवाले (शिव) के जैसे जो खड़ा है, वही पनस है। वह ऋषभ है, जो ऐसा खड़ा है, मानों इस सारे युद्ध को वही जीतनेवाला हो। और, वह सुषेण है, जो अपार ज्ञान से संपन्न है।

सूर्यपुत्र (सुग्रीव) के वाम पार्श्व में खड़ा हुआ वह दधिमुख है, जिसने बाँसों से भरे सब पर्वतों को जड़ से उखाड़-उखाड़कर धरती की पीठ को भार से मुक्त कर दिया था और जो अग्नि पर भी रोष कर सकता है। और, वह शंख नामक वानरवीर है।

हे प्रभु ! सुनो। इस (वानर-सेना) की कुछ सीमा नहीं है। कोई परिमाण भी नहीं है। हम गगन के सब नक्षत्रों को गिन सकें, समुद्र की सब मछलियों को गिन सकें, अथवा सागर के सैकत-कणों को भी गिन सकें, तो भी इस वानर-सेना को गिनकर उनके परिमाण को जानना कठिन है।

सारण की ये बातें सुनकर क्रोधपूर्ण राक्षस (रावण) ने मंदहास किया। फिर कहा—इन तुच्छ सिरवाले वानरों की तू प्रशंसा कर रहा है। वनों एवं विशाल पर्वतों में जितने भी हरिणों के झुंड घूमते हैं, वे सिंह का क्या बिगाड़ सकते हैं ?

जिस समय रावण यों कह रहा था, उसी समय इधर रामचन्द्र ने रावण के भाई (विभीषण) को देखकर कहा—उस अति सुन्दर नगर-द्वार के ऊपर, अंतरिक्ष को ढकते हुए खड़े रहनेवाले एवं हमारी सेना का अवलोकन करनेवाले उन वीरों के नाम कहो। और उनका अन्य परिचय दो।

तिलोत्तमा आदि स्वर्ग की स्त्रियों के मध्य गोपुर पर खड़ा हुआ वही रावण है, जो पापकर्म में निरत है और जिसने अपने कुल के लोग-रूपी अंकुरों को नरक के खेत में बोने के लिए अभी से कीचड़ तैयार करके रखा है।

विभीषण सोचकर आगे कुछ कहे, इसके पूर्व ही, सूर्य का पुत्र (सुग्रीव) आँखों से आग उगलता हुआ, कूदकर ऐसे उड़ चला, जैसे पूर्व में हनुमान्, अरुण फल के जैसे दिखाई पड़नेवाले श्रुतिमय भगवान् सूर्य की ओर, झपटकर गया था।

सुग्रीव, गगन तक उठे हुए सुवेल-गिरि के शिखर पर से अतिबलवान् रावण नामक पर्वत पर यों कूद पड़ा, जैसे उसका पिता (सूर्य) अपनी अरुण किरणें फैलाते हुए, उदयगिरि पर से अस्ताचल पर कूद रहा हो।

जैसे नीचे की ओर बहनेवाली जल की धारा हो, यों सुग्रीव उस गोपुर पर कूद पड़ा, जिससे स्वर्णमय (त्रिकूट)- पर्वत भी हिल गया। उस समय वह (सुग्रीव) उस जटायु की समता करता था, जो (रावण के द्वारा हरण किये जाने पर) सीता को अश्रु बहाते हुए देखकर, अपने मन के समान ही तीव्र वेग से रावण पर झपटा था।

काले मेघ एवं करुणा के समुद्र प्रभु को देखने के लिए, बड़ी-बड़ी आँखों के साथ उमंग से भरी हुई आकर खड़ी हुई अप्सराएँ एवं अन्य स्त्रियाँ यों डर से तितर-बितर हो भागीं, जैसे पर्वत पर बिजली गिरने पर वहाँ के सब मयूर भाग जाते हैं। (१—४१)

●

अध्याय ११

मुकुट-भंग पटल

काले-अंधकार को मिटानेवाले सूर्य का पुत्र (सुग्रीव) रावण को देखते ही झपट-कर उसके सम्मुख जाकर ऐसे खड़ा हुआ, जैसे किसी नील पर्वत पर कैलास-गिरि खड़ा हो और हलाहल विष के प्रकट होने पर (उसे निगलने के लिए) आये हुए शिव हों।

रावण ने उससे पूछा—'तू क्यों आया है ?' तब सुग्रीव उछला और दसों दिशाओं को जीतनेवाली बीस विशाल भुजाओं से युक्त उस रावण की देह को पीडा पहुँचाते हुए अपने दोनों हाथों से उसके वक्ष पर मारा।

तब रावण के मन में क्रोध भड़क उठा। उसने ऐंठकर, घूरकर देखा। तरुवन के समान पुष्ट अपनी बीसों भुजाओं को उठाकर, (सुग्रीव पर) ऐसे आघात किया, जैसे वज्र गिरा हो। उस शब्द से दसों दिशाएँ गूँज उठीं।

वह चोट जहाँ लगी, वहाँ से (सुग्रीव की देह में) रुधिर उमड़कर बह चला। तब सुग्रीव अपनी देह को सँभालकर अति प्रचंड वेग से उछला और (रावण के) दसों सिरों और मुखों पर पद से आघात किया।

तब क्षणकाल में ही रावण ने पदाघात करनेवाले (सुग्रीव) के पैरों को पकड़कर उसे तड़पाते हुए चारों ओर घुमाकर सुधामय भूमि पर दे मारा और जैसे सिंह मत्तगज को दबोचता है, उसी प्रकार उसने अपने पैरों से रौंदा।

उस रौंदनेवाले (रावण) को (सुग्रीव ने) हाथों से पकड़कर दबाया और भूमि पर झुकाया। (रावण के) चंद्रकला के समान दाँतों से भरे हुए मुँह-रूपी बिलों से जो रक्त बहा (सुग्रीव ने) उसे अपनी अंजलि में भरकर पिया।

अपनी अंजलि में रुधिर भरकर पीनेवाले (सुग्रीव) की देह-रूपी स्वर्णशैल को (रावण ने) ऊँची गरदनवाले सर्प के समान पकड़ लिया। फिर, उस अंजन-पर्वत के समान राक्षस ने बड़े रोष के साथ उसे ऐसे घुमाया कि सब दिशाओं के पर्वतों के (सुग्रीव के शरीर से) टकराने से अग्निकण बिखर पड़े।

जब रावण उसको इस प्रकार घुमा रहा था, तब सुग्रीव ने अपने विशाल कर से उसके वक्ष पर इस प्रकार आघात किया कि उसके नख गड़ गये और उसकी कटि को पकड़कर उसकी बुद्धि को भ्रांत करते हुए, उसे उठाकर खाई में फेंक दिया।

तब दशमुख लड़खड़ाता हुआ किसी प्रकार दीवार पर चढ़ गया और अपने को खाई में डालनेवाले (सुग्रीव) को पकड़कर खाई में ढकेल दिया और कहा—चढ़ सके, तो अब ऊपर चढ़ आ। झट सुग्रीव प्राचीर पर चढ़ गया और वे दोनों एक दूसरे को पकड़कर लुढ़ककर परिखा में जा गिरे।

(परिखा में) वे दोनों गिरे। रुष्ट होकर घूम उठे। डूबे, उतराये। बिना हटे स्थिर रहे। एक दूसरे से हटे। उठे बिना ही (एक दूसरे का) सामना करते रहे। दोनों परस्पर मारकर अदृश्य हुए और फिर प्रकट हुए। यों लड़ते हुए उन्हें अन्य किसी बात का ज्ञान नहीं रहा।

(जब सुग्रीव ने रावण को अपने हाथों से दृढता से पकड़कर जल में घुमाया, तब) परिखा ही समुद्र बनी। सुग्रीव के सुन्दर करों से जल की भौंर में यंत्रवत् घूमनेवाला रावण मंदर बना और उसे मथनेवाला (सुग्रीव) वाली बना।[1]

उनके घावों से रुधिर निकलकर, बाढ़ के रूप में परिखा में बह चला। वे दोनों बाजों के जैसे भयंकर रूप में लड़ते हुए गगन में उड़े, तो उस दृश्य को देखकर सारे संसार के प्राणी भयत्रस्त होकर चारों ओर भागने लगे।

दूर गगन में संचरण करनेवाले सूर्य के पुत्र (सुग्रीव) को मेघ से आवृत मेरु के समान रावण ने पुष्पमालाओं से भूपित अपनी भुजाओं से इस प्रकार पकड़ा, जैसे उस (सुग्रीव) के पिता (सूर्य) को सर्पग्रह (राहु) ग्रस रहा हो।

गगन में भीषण युद्ध करते हुए अरुणकिरण (सूर्य) के पुत्र की उज्ज्वल कांति को रावण ने अपनी सब भुजाओं से ऐसे ढक दिया, जैसे उष्णकिरण (सूर्य) को मेघ ढक रहा हो।

उष्णकिरण का पुत्र नरसिंह के समान झपटकर उस गोपुर पर कूदा। नूपुर-धारिणी स्त्रियाँ भय के कारण बिलख उठीं। शत्रुओं का (लंका) नगर विचलित हो उठा।

तब अतिरुष्ट राक्षस ने 'तुझे खा जाऊँगा' कहता हुआ उस (सुग्रीव) का पीछा करके उसे पकड़ लिया। मानों टूटकर गिरे हुए वज्र का पीछा करता हुआ, बिजली के समान चमकती दंष्ट्राओं से युक्त कोई कालमेघ आ गया हो।

आये हुए (रावण) का खड़े हुए (सुग्रीव) ने सामना किया। यम को भी भय-विकंपित करते हुए उस (सुग्रीव) ने उसे पकड़कर धरती पर पटक दिया। तब राक्षस यंत्र के समान झट सँभलकर खड़ा हो गया और उसने (सुग्रीव को) उठाकर फेंक दिया। तब सुग्रीव गेंद के समान लपककर उससे आ टकराया।

उनके अतिदृढ आघात से वृक्ष टूटकर गिर पड़े। धरती फट गई। विशाल दीवार टूट गई। ऊँचे पर्वत ढह गये। लंका के प्राचीर हिल उठे और टूट गये।

चरखी के समान घूमते हुए वे लड़ रहे थे। उनको देखनेवाले यह जान नहीं

१. कंबन ने कई स्थानों पर वाली के द्वारा क्षीरसागर के मथे जाने की बात कही है।

पाते थे कि वे एक दूसरे से सटे हैं या हटे हैं, या किसने किसको चोट करके दूर हटाया है। सामने खड़े हुए राक्षस-योद्धा भी कुछ नहीं समझ पाने से निष्क्रिय हो खड़े रहे।

जब ऐसा हो रहा था, तब मेघवर्ण (रामचन्द्र) अपने प्राण-समान प्रिय मित्र को न देख दुःखी हुए। वे यह कहते हुए कि 'मेरे सोचे हुए सब कार्य तुम्हारे साथ ही अब समाप्त हो गये हैं'—व्याकुल चित्त के साथ अपनी प्रज्ञा खोकर गिर पड़े।

फिर संज्ञा पाकर राम बोल उठे—'हे मेरे चैतन्य, मेरे अनन्यप्राण मित्र! तुम्हारे विना मैं अकेले रहकर क्या कर सकूँगा? कुछ नहीं। अहो! तुमने सब देवों को दुःख में डाल दिया और राक्षसों को विजय दे दी। (रावण के प्रति) तुम्हारे क्रोध ने मेरी बड़ी हानि की है।'

दिव्य अस्त्रों तथा अवारणीय माया से युक्त पापी राक्षस के हाथ में तुम फँस गये। अब किस प्रकार उसके बंधन से छूटकर आ सकोगे? यदि तुम सजीव लौटकर नहीं आओगे, तो क्या मैं सप्तद्वीपों के मिलने पर भी जीवित रह सकूँगा? मुझ एकाकी रहने-वाले के प्राण बचानेवाले हे वीर! अब मैं कैसे निस्तार पा सकूँगा?

हाय! मैंने कुछ सोचा था और अब कुछ और हो गया। यह मेरे कर्म का परिणाम है। तुम्हारे विना मैं जीवित नहीं रह सकूँगा। यदि वह दुर्गुणों से भरा राक्षस तुमको मार डालेगा, तो मैं भी मर जाऊँगा। आज युद्ध-क्षेत्र में अमिट अपयश उत्पन्न करते हुए तुमने मुझे मार डाला।

तुम्हारे मर जाने पर, यदि मैं जीवित रहकर राक्षसों को मारकर अपने प्राण छोड़ूँ, तो भी लोग यही कहेंगे कि अपने प्राण भी देकर सहायता करनेवाले अपने मित्र को इसने भुला दिया। अतः, ऐसा करना भी मेरे लिए संभव नहीं।

हे मित्र! मेरे प्रति प्रेम के कारण तुमने जो किया, उससे सर्वनाश ही उत्पन्न हो गया है। मुझ निस्सहाय का उपकार करनेवाले तुम-जैसे मित्र को खोकर यदि मैं सत्तर समुद्र वानरों में से एक को भी खोये विना सबके साथ अयोध्या को लौटकर जाऊँ, तो भी मेरा यह शोक कम नहीं होगा। (अर्थात्, एक सुग्रीव को खोने पर, लंका पर विजय पाने एवं सब वानरों के साथ जीवित रहने से भी राम को शांति नहीं मिलेगी)।

यहाँ जब रामचन्द्र यों शोक-उद्विग्न हो रहे थे, उस समय उधर दोनों में (अर्थात्, सुग्रीव और रावण) न किसी की विजय हो रही थी, न पराजय। सुग्रीव झट शक्तिशाली राक्षस के मुकुटों में स्थित अनेक उत्तम रत्नों को उखाड़कर वहाँ से चला आया। राक्षस (रावण) यह सोचता हुआ कि इससे तो मेरा मारा जाना ही श्रेष्ठ होता, लज्जित होकर खड़ा रहा।

सुग्रीव ने (उसके ही वियोग में) अश्रु बहानेवाले (रामचन्द्र) के चरणों में (रावण के) मुकुटों के रत्न समर्पित किये और नमस्कार करके हिचकियाँ लेता हुआ एक ओर खड़ा रहा। तब उन दोनों पवित्र मूर्त्तियों (राम और लक्ष्मण) के एवं सत्तर समुद्र वानरों के प्राण लौट आये।

अस्थि तक गहरे फटे हुए घावों से बहनेवाले रुधिर के साथ ही, क्षुद्र राक्षस के

छूने से उत्पन्न अशुचिता को भी दूर करते हुए, प्रभु ने सुग्रीव को अपने गाढ आलिंगन में बाँध लिया और अपने कमल-समान विशाल नेत्रों से अश्रुधारा बहाकर उसको स्नात कर दिया।

अपनी आँखों से निर्मल अश्रु बहानेवाले प्रभु ने अपने मित्र (सुग्रीव) को देखकर कहा—अहो! तुमने क्या किया? मेरा हृदय विचलित हो रहा है, मेरे प्राण निकल रहे हैं; मेरा शरीर शिथिल हो रहा है; मेरा चित्त विकल हो रहा है।

हे शैल से भी अधिक दृढ कंधोंवाले! यदि वह निष्करुण राक्षस तुमको मार देता, तो मैं उन सब राक्षसों को बहुत बड़ी शर-वर्षा से समूल मिटाकर विजय प्राप्त करने पर भी अपने को हारा हुआ ही मानता।

विचार करने पर ज्ञात होता है कि गौरव, धृति, बहुत सुन्दर पौरुष—ये सब क्षमागुण के स्रोत होते हैं (अर्थात्, इन गुणों से क्षमाशीलता उत्पन्न होती है); अहो! तुम भूल गये कि (तुम्हारे कार्य से) अनन्त अपकीर्त्ति उत्पन्न हो जाने की संभावना थी, इह लोक और परलोक दोनों के मिट जाने की संभावना थी; तुमने क्या सोचकर ऐसा किया?

यदि तुम इतना शीघ्र लौटकर नहीं आते, और अधिक विलंब करते, तो सुन्दर ललाटवाली सीता से क्या प्रयोजन रहता? संसार (के राज्य) से क्या प्रयोजन होता? मैं तुम्हारा अनुगमन (करके प्राण-त्याग) करता; यह संसार मेरा अनुगमन करता; फिर शेष क्या रहता? अहो! तुमने खेल-खेल में क्या किया?

जब राम ने यों कहा, तब सुग्रीव ने उनके दोनों चरणों को नमस्कार करके, पर्वत के जैसे पुष्ट एवं उभरे कंधोंवाले वीरों के देखते हुए, जैसे आँखों से अग्नि उगलनेवाला कोई सिंह चुपचाप खड़ा हो, उसी प्रकार धरती पर दृष्टि गड़ाये, ग्लानि से भरकर कहा—

वन में गृद्धराज ने जो किया, वह मैं नहीं कर सका; (अपने) गाँव में गुह ने जो किया, वह मैं नहीं कर सका, शुक के समान बोलीवाली (सीता) देवी के दर्शन भी मैंने नहीं किये और कुछ सुना भी नहीं; उस राक्षस के दस सिर भी नहीं ला सका; हाय! मैं रिक्तहस्त ही लौट आया।

जब वह (हमारा) बलवान् शत्रु जीवित है, तब तो मैं अपने वानर-स्वभाव के अनुकूल तुच्छ शत्रुत्व ही दिखा सका हूँ। अहो! क्या मैं प्रसिद्धि पाने योग्य शत्रुता निबाह सकता हूँ? आपने मेरे शत्रु (वाली) को मिटाया; मेरे प्राण-पत्नी को एवं राज्य मुझे दिलवाया। किन्तु, मैंने (रावण के प्रति) आपका विरोध आपको ही सौंप दिया; (अर्थात्, मैंने आपके विरोधी को नहीं मिटाया)। मैं अपने प्राणों का भार ढोता हुआ घूम रहा हूँ।

ताँबे के समान रक्तवर्ण नेत्रोंवाले दिग्गजों के बलवान् दंतों की अपेक्षा मुझ वानर की बाँह अत्यन्त क्षुद्र है न? (अर्थात्, मेरी मुष्टि के घात से वह रावण कैसे मर सकता है, जिसने दिग्गजों के दाँतों के आघात अपने वक्ष पर सँभाले थे)। आपका शर वहाँ पहुँचने के पहले ही मैं (आपके) शत्रु को मिटाने गया; किन्तु असफल हो विकल मन से लौट आया।

शास्त्रों के ज्ञान में चतुर, आपका दूत (हनुमान्) भीषण युद्ध में शूल एवं शरों के प्रयोग में अपना चातुर्य दिखानेवाले राक्षसों को, अपनी पूँछ का चातुर्य दिखाकर लौट आया (अर्थात् , लंका को अपनी पूँछ में लगाई अग्नि से जलाकर अक्षत लौट आया), पर लंकानगर में जाकर भी मैं केवल अपने पैरों का कुशल दिखाकर ही वापस आया (अर्थात् , भाग आया)। अहो ! मेरा युद्ध-चातुर्य भी कैसा है ?

वानरराज इस प्रकार के अनेक दीन वचन कहता हुआ, राजाओं के राजा (रामचंद्र) के सामने सिर झुकाये खड़ा रहा। तब उस (सुग्रीव) को देखकर एवं सुन्दर (रामचन्द्र) को भी देखकर उज्ज्वल, वीर-कंकण से भूषित विभीषण बोला—

सुग्रीव ने उस (रावण) के सिरों पर के जो रत्न उखाड़कर लाये हैं, उनसे बढ़कर प्रभावशाली और कौन-सी वस्तु हो सकती है ? वह (रावण) इन रत्नों को अपने प्राणों से भी अधिक मूल्यवान् समझता है। हे सुग्रीव, तुमने उसकी समस्त कीर्त्ति को जड़ से उखाड़ दिया है।

पृथ्वी का भार वहन करनेवाले आदिशेष के फनों पर स्थित रत्नों को भी यदि पाना हो, तो वह (रावण) अपने पैरों से (धरती को) कुरेदकर ही उन्हें प्राप्त कर सकता है, ऐसे रावण के पुष्पों से भूषित दसों सिरों के रत्नों को तुम ले आये हो। तुम्हारी वीरता से बढ़कर अब और कौन-सी वीरता हो सकती है ?

नीलकंठ (शिव) की जटा में स्थित चन्द्रकला को भले ही छीन लायें, या नीलरत्न-समान कांतिवाले विष्णु के वक्ष पर स्थित कौस्तुभ-मणि को ही ले आयें, किन्तु हे चमकते रत्नों से शोभायमान भुजाओंवाले (सुग्रीव) ! दशमुख के मुकुटों में जटित रत्नों को ले आने की यह वीरता अपनी समता नहीं रखती।

रत्नहार से शोभायमान कंधोंवाले ! हे कपिराज ! अब और क्या कहें ? तुम शिवजी से रत्न-खचित चन्द्रहास (करवाल) प्राप्त करनेवाले उस (रावण) के मुकुटों से रत्नों को उखाड़ लाये हो, या तुमने उसे समाप्त करने की विजय (-रूपी भवन) के निर्माण के लिए शिलान्यास किया है।

तब राम ने भी कहा—वीर सदा विजयी ही नहीं होते तथा वे सदा सफल ही नहीं होते। हे वीर ! पृथ्वी को एक दंष्ट्रा पर उठानेवाले आदिवराह के समान तुमने जो वीरता दिखाई है, वैसी वीरता और कौन दिखा सकता है ? तुम्हारी यह विजय अनुपम है।

इसी समय सूर्य अस्त हुआ, मानों वह यह सोचकर कि उसके पुत्र (सुग्रीव) के द्वारा रावण के मुकुटों के रत्नों को अपहरण कर लेने से क्रुद्ध होकर वह रावण कुछ न कर बैठे [अर्थात् , पुत्र के अपराध का प्रतिकार पिता (सूर्य) से लेने न लग जाय], अतः आशंकित होकर वहाँ से अदृश्य हो गया हो।

रात्रि का अन्धकार छा गया, रावण के शिरोरत्न दीप बनकर प्रकाश फैला रहे थे। पुष्ट कंधोंवाले रामचन्द्र सूर्यपुत्र (सुग्रीव) की विजय की भावना से पूर्ण हृदय के साथ अपने आवास में चले गये।

रावण ने ऐसा अपमान कभी नहीं प्राप्त किया था। आज इस प्रकार अपमानित होने से, यह सोचकर कि देवता लोगों ने मेरी इस दशा को देखा होगा, अत्यन्त लज्जित हुआ; तब सुन्दरी युवतियों के कटाक्ष-पात उसके लिए पुरुषों की दृष्टि बन गये (अर्थात्, रमणियों के कटाक्षों से वह रावण आनन्दित नहीं हुआ)। यों अपने यश के समान ही वह भी वहाँ से (गोपुर से) उतरकर नीचे चला गया। (१—४६)

●

अध्याय १२

सेना-प्रबंध पटल

अपमानित होने के कारण रावण विकलचित्त हुआ और मुरझाये कमल के समान मुँह लिये अपने विशाल प्रासाद में जा पहुँचा। वह मधुपान में निरत नहीं हुआ, संगीत में उसका मन नहीं लगा, नृत्य देखने भी उसकी रुचि नहीं हुई। वह मृदुल पर्यंक पर मौन पड़ा रहा।

राक्षसराज ऐसे पड़ा रहा, मानों शेषनाग अपने अमूल्य रत्नों को खोकर अपने शेष अनेक फनों से तीक्ष्ण श्वास छोड़ते हुए, क्षीरसागर की तरंगों पर, पुष्प के समान कोमल पर्यंक पर शयन करनेवाले विष्णु भगवान् से बिछुड़कर, यहाँ आ पड़ा हो।

इसी समय माता से भी अधिक घनिष्ठता प्रकट करनेवाला भी जिसकी माया को नहीं पहचान सकते, ऐसी माया से युक्त एक चर (शार्दूल) आ पहुँचा। द्वाररक्षक ने रावण के निकट आकर विनम्रता से निवेदन किया कि शत्रु-सेना में जाकर उसका समाचार जानकर एक गुप्तचर आया है।

रावण ने कहा कि उसे आने दो। वह गुप्तचर आकर नमस्कार कर खड़ा रहा। यह पूछने पर कि तुमने क्या जाना है, कहो। तब कंदरा में बंद रहनेवाले सिंह के समान रावण के मुख की मुद्रा से उसका मनोभाव समझकर गुप्तचर धीरे-धीरे कहने लगा।

हे वीर! मारुति सत्रह समुद्र वानर-सेना को साथ लेकर पश्चिम द्वार पर आया है; आर्य (राम) सूर्य के पुत्र सुग्रीव से पृथक् नहीं रहना चाहते थे। इसलिए, उसको सत्रह समुद्र वानर-सेना लेकर अपने साथ ही (उत्तरी द्वार पर) रहने को कहा।

कपिराज का पुत्र (अंगद) सत्रह समुद्र सेना को लेकर दक्षिण दिशा में युद्ध छेड़ने के लिए आया है और नील नामक वीर सत्रह समुद्र वानर-सेना को लेकर पूर्व दिशा में आ पहुँचा है।

दो समुद्र वानर सर्वत्र घूमकर कंद-फल आदि लाकर वानरों का भोजन देने के लिए भेजे गये हैं। तुम्हारे भाई (विभीषण) को प्रत्येक नगर-द्वार से समाचार लाने और ले जाने का काम सौंपा गया है। और, राम अपने अनुज के साथ (उत्तर द्वार पर) खड़ा है। यही समाचार है—यों चर ने कहा।

जब शार्दूल ने यों कहा, तब रावण की आँखों से अग्नि उमड़ पड़ी। जैसे प्रलय-कालिक दृश्य उपस्थित हो गया हो। अपने ओंठ चबाते हुए वह बोला—कल युद्ध-क्षेत्र में उन सबके शरीरों को धूल में मिला दूँगा। उनके रुधिर-प्रवाह में रथ भी डूब जायेंगे।

वृक्षों से भरे नील-पर्वत पर जैसे प्रभातकालिक (सुनहली) किरण छाई हो—वैसे मांस से युक्त रुधिर-बिंदुओं से चिह्नित कंधोंवाला वह रावण, मन्मथ के बाण लगने से जलनेवाली पुष्प-शय्या को छोड़कर मंत्रागार में एक रत्नमय आसन पर जा बैठा।

कर्त्तव्य कर्मों का भली भाँति विचार करके उचित निर्णय करनेवाले निष्कलंक, कुल-क्रमागत, मंत्रियों को आते हुए देखकर 'आओ' कहकर उनका स्वागत किया। वहाँ कोई भवन ही नहीं है—ऐसी भ्रांति उत्पन्न करनेवाला स्फटिकमय उस मंत्रागार को घेरकर दस करोड़ भूत उसकी रखवाली करते रहे।

संख्यातीत अमात्यों को अपनी दृष्टि के सामने एकत्र देखकर (रावण ने) कहा—वानरों की सेना प्रत्येक नगर-द्वार पर आकर घेरा डाल रही है। अब भीषण युद्ध आ प्राप्त हुआ है। इन (वानरों) की पीडा से मुक्ति पानी है। अतः, आवश्यक कर्त्तव्य का विचार करना है।

तब निकुंभ नामक राक्षस ने कहा—सत्तर समुद्र वानर हमारे दुर्ग पर घेरा डाल रहे हैं, तो हम इससे अपने मन में चिंतित क्यों हों? हमारी सेना सहस्र समुद्र है न? यदि वे वानर 'उलिंजै'[१] पुष्पों की माला पहने हैं, तो हमारी सेना 'नोच्चि' पुष्पों की माला धारण किये है। तुम्हारा नगर विजय से भूषित होगा।

फरसे, दंड, शूल, करवाल, बाण आदि आयुध लेकर जब राक्षस-सेना युद्ध करने लगे, तब देवता भी अपनी सेना के आगे सिर पर हाथ जोड़े हुए भाग जायेंगे। अब खाली हाथवाले ये वानर यहाँ आकर हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं?

हाय! इनकी क्या दशा होगी?—यह कहकर आँखों से आग उगलते हुए, घूरकर पृथ्वी पर हथेली से मारते हुए वज्रघोष में निकुंभ हँस पड़ा। तब रावण का मामा माल्यवान् नामक वीर मन में यह सोचकर कि 'अहो! कामुकता से कैसी-कैसी वेदना उत्पन्न होती है! उससे सर्वनाश ही हो जाता है', (रावण के प्रति) स्नेह के कारण यों बोला—

पहले जिस वानर ने लंका में घुसकर आग लगाई, सब कुछ तहस-नहस करके चला गया, क्या उसके पास कोई चक्रायुध था? जो वानर इस दशमुख के सिर-रूपी पर्वतों से रत्नों को उखाड़कर ले गया, क्या उसके पास कोई त्रिशूल या करवाल था?

राम के धनुष से शर छूटे, इसके पहले ही अदृश्य कटि को पीडित करनेवाले

---

१. प्राचीन तमिल-साहित्य में ऐसा वर्णन मिलता है कि दुर्ग पर आक्रमण करते समय शत्रु के सैनिक 'उलिंजै' नामक पुष्प की माला पहनते थे और दुर्ग की रक्षा करनेवाले सैनिक 'नोच्चि' नामक पुष्प की।—अनु०

स्तन-भार से युक्त उस स्त्री (सीता) को उसे सौंप दें और उसकी शरण में जायँ। इसके अतिरिक्त अब हमारी रक्षा का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

जिसको अपयश प्राप्त होनेवाला है, उस राक्षस (रावण) ने माल्यवान् को अग्नि-मय आँखों से देखा और कहा—मुझे अनन्त अपयश देने के विचार से ही कदाचित् तुम ऐसे अनुचित वचन कह रहे हो। स्नेहीन चित्त से ऐसी बातें मत कहो। वह (रावण) आगे बोला—

हे 'कालकेमों' के मांस एवं मज्जा से भली भाँति चमकाये गये शस्त्रों से युक्त वीर-सेना के अधिपति (प्रहस्त)! तुम चुने हुए दो सौ समुद्र वीरों को साथ लेकर पूर्व द्वार पर जाओ।

यम के युद्धोन्माद को भी दूर करनेवाले हे महोदर! तुम युद्धोन्माद से भरे महापार्श्व को साथ लेकर दो सौ समुद्र राक्षस-वीरों के सहित यम की दिशा (दक्षिण) के द्वार पर जाओ और सब वानरों को निहत करो।

हे इन्द्रशत्रु! (इन्द्रजित्!) तुम्हारी क्या प्रशंसा करूँ? पवनपुत्र (हनुमान्) की प्रचंडता को तुमने पहले देखा ही है। दो सौ समुद्र सेना को लेकर प्रभात होने के पहले ही पश्चिम द्वार पर पहुँच जाओ।

हे विरूपाक्ष! तुम इतने दीर्घ काल तक देवताओं की शक्ति का अन्त किये रहे। अब इन क्षुद्र वानरों पर आक्रमण करना तुम्हें शोभा नहीं देगा। तुम मूलबल एवं अमात्यों के साथ नगर की रक्षा करते रहो।

कमलभव (ब्रह्मा) के लोकों में इस ओर (के समस्त लोकों) को युद्ध में जीत-कर अब युद्ध के लिए आतुर रहनेवाली, गज, अश्व, रथ एवं पैदलों की दो शत समुद्र सेना लेकर मैं स्वयं उत्तर दिशा के द्वार की रक्षा करूँगा—यों रावण ने व्यवस्था की।

व्याकुलता से पूर्ण रात्रि-रूपी कल्प (समय) व्यतीत हुआ। जो, सौभाग्य से युक्त देवों को ही नहीं, चतुर्वेदों में पारीण मुनियों को ही नहीं, सौंदर्य से युक्त सीता को ही नहीं, बलवान् राम को ही नहीं, लंका के राजा को ही नहीं, किन्तु इन सभी लोगों को आनन्ददायक प्रतीत हुआ।

करुणा से हीन किसी शक्तिशाली चक्रवर्ती राजा की क्रूरता के डरकर, वेदना से पीडित होकर छिपे पड़े रहनेवाले छोटे-छोटे राजा उस चक्रवर्ती के गर्व को मिटाने-वाले एक राक्षस-वीर को देखकर जिस प्रकार बाहर निकल आते हैं, उसी प्रकार अब सूर्य उदित हुआ।

हलचल से भरे समुद्र के घोष को भी दबाते हुए, अपार धूलि से सब दिशाओं को भरते हुए, सब राक्षस-वीर प्रभात होने के पूर्व ही, अपनी-अपनी सेना-सहित लंका के सब द्वारों पर जा पहुँचे।

वानर-वीर प्राचीन नगर लंका के प्राचीरों पर उछलकर कूद पड़ते और ऐसे गरजते कि अंतरिक्ष के नक्षत्र भी टूटकर गिर पड़ते थे। रामचन्द्र सूर्य के पुत्र एवं अपने भाई (लक्ष्मण) के आगे-आगे चलते हुए तथा इन्द्र के द्वारा प्रशंसित होते हुए बढ़ चले।

उस पातकी (रावण) का वह प्राचीन नगर, समुद्र के समान शास्त्रों में निपुण विद्वानों के लिए भी अगम्य, बल से भरी त्रिशूलधारी राक्षस-वाहिनी नामक विशाल समुद्र से घिरी थी। ऐसी लंका को जब वानर-समुद्र ने घेर लिया, तब वह दृश्य ऐसा था, मानों क्षीरसागर के मध्य कोई काला समुद्र दिखाई दे रहा हो। (वानर-सेना, क्षीरसागर है और राक्षस-सेना काला समुद्र)।

अपरिमेय राक्षस-सेना को घेरकर वानर-सेना जाल के समान चारों ओर वैसे ही फैल गई, जैसे प्रलयकाल में सप्त समुद्रों के उमड़ आने पर सब लोक एक कोने में एकत्र हो रहे हों। (१—२८)

●

अध्याय १३

अंगद-दौत्य पटल

उदार प्रभु शीघ्र उत्तर द्वार पर जा पहुँचे और सत्रह समुद्र वानर-सेना के साथ उस चोर (अर्थात्, रावण) के आने की प्रतीक्षा करते रहे। जब उसे आते नहीं देखा, तब ज्ञानवान् विभीषण से कहा—

अब शीघ्र एक दूत को (रावण के पास) भेजना चाहिए और यह पूछना चाहिए कि क्या वह सीता को मुक्त करने को तैयार है। यदि वह वैसा करने से इनकार करे, तो हम यह समझेंगे कि उसके साथ युद्ध करना ही हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा किसी दूत को भेजना ही धर्म और राजनीति है।—यों उन करुणा के आगार ने कहा।

विभीषण ने वह सुनकर उत्तर दिया—यह कार्य उत्तम ही है। कपिराज ने कहा—यह कार्य विजयी पुरुष के योग्य ही है। किन्तु, अनुज (लक्ष्मण) ने कहा—ऐसी करुणा दिखाने से अब अहित ही होगा। अब शर-प्रयोग करने के अतिरिक्त और कोई बात ही नहीं करनी चाहिए।

रावण ने सुन्दरी सीता को बंदी बनाया। देवों को पीडा दी। भूसुरों को व्याकुल किया। धरती के प्राणियों को मारकर खाया। दिशाओं के अंत तक के सब लोकों को अपने वश में कर लिया। इन्द्र के ऐश्वर्य का भी हरण किया। वह अनुचित मार्ग पर चलनेवाला है।

'हे विजयी प्रभु! उस दिन उसने अपरिमेय दुःख में आपको निमग्न करके, अवारणीय माया से आपकी पत्नी को (आप से) पृथक् किया। उस निस्सहाय स्त्री पर दया करके उस राक्षस का सामना करनेवाले आपके पितृतुल्य जटायु को, जो प्रलयकाल तक जीवित रह सकता था, उसने मार डाला।

यदि वह (रावण) सीता को छोड़ दे और आप उसे करुणा से जीवित छोड़ दें, तो

आपने अपनी शरण में आये हुए विभीषण को जो यह वचन दिया है कि 'जबतक मेरा नाम संसार में स्थिर रहेगा, तबतक लंका पर तुम्हीं राज्य करोगे', उसका क्या होगा ?

आप भले ही अपनी धर्ममय तपस्या के कारण उन सब बातों को भूल गये हों, या इस लंका के ऐश्वर्य को देखकर और यह सोचकर कि इसका विनाश अच्छा नहीं है, कृपा करने लगे हों, तो भी विचार करने पर विदित होगा कि इस दशा में युद्ध करना ही उचित है। जब लक्ष्मण ने यह बात कही, तब प्रभु मुस्कराये।

उन्होंने समझाया—मैं शिथिल नहीं हुआ हूँ। मेरा भी अंतिम निर्णय वही है। फिर भी, ज्ञानवानों के द्वारा निर्मित नीतिशास्त्र के विधान को छोड़ देना भी हमारे लिए उचित नहीं है। भले ही हम अनुपम भुजबल से युक्त हों, तो भी क्षमाशील होकर रहना ही विजयप्रद धर्म होता है।

यदि इस बार भी मारुति ही जाय, तो वे सोचेंगे कि इसको छोड़कर यहाँ अन्य कोई समर्थ है ही नहीं। अंगद को छोड़कर अब इसके लिए और कौन योग्य है ? कदाचित् वह इसपर आक्रमण भी कर दे, तो भी अक्षत लौट आने की शक्ति रखनेवाला वही है।

तब सबने कहा कि यही उचित है। उसके बाद अंगद को बुलाकर प्रभु ने उससे कहा—हे वीर ! शत्रु-समीप जाकर दोनों में से एक बात करने को कहकर लौट आओ। प्रभु की कृपा का पात्र बनने से अंगद की सुन्दर भुजाएँ पर्वत से भी ऊँची होकर उभर गईं। उस समय उसके मन की दशा का क्या वर्णन करें ?

जब अंगद ने पूछा कि उससे मैं क्या कहूँगा, तब राम ने कहा—उससे कहना कि वह उस सुन्दरी (सीता) को मुक्त करके अपने प्राणों की रक्षा करे, नहीं तो युद्धक्षेत्र में आये, जिससे उसके दसों सिर छिन्न-भिन्न हो जायें। इन दोनों में से एक कार्य करने को उससे कहना।

छिपकर जीवन बिताना वीरों का धर्म नहीं है। उनको ऐसा काम शोभा नहीं देता। इसमें पुरुषार्थ भी नहीं है। अधर्म के मार्ग में हित नहीं होता। अगर वह धनुष पर शर-संधान करके खड़ा रह सकता हो, तो मेरे सामने आकर मुझसे युद्ध करे। यह बात उससे कहना—यों राम ने (अंगद से) कहा।

सिंह-समान अंगद राम को धरती तक झुककर दंडवत् करके यों वेग से गगन में उड़ गया, जैसे राम के धनुष से निकला हुआ शर ही हो। वह (अंगद) प्रभु से यह बात सुनकर बहुत ही आनन्दित हुआ कि यदि मारुति नहीं है, तो उसके पश्चात् मैं ही (किसी कार्य को करने का अधिकारी) हूँ। अब मेरी समता करनेवाला कौन है ?

क्रूरता से भरे अग्निमय आँखों से घूरनेवाले राक्षसों को विध्वस्त करने के लिए समुद्र के मध्य शयन करना छोड़कर जो प्रभु अयोध्या में अवतरित हुए हैं, उनका दूत (अंगद) सूर्य के लिए भी दुर्लंघ्य एवं मेरु से भी ऊँचे प्राचीर को पार करके लंका में प्रविष्ट हुआ और राक्षस (रावण) के प्रासाद में गया।

उसने उस रावण को देखा, जिसके दसों सिरों के कानों में एक ओर से उन बन्धु-

जनों की चीख-पुकार पड़ रही थी, जो अंगद को हनुमान् समझकर भयभीत होकर भागे थे और दूसरी ओर से विभिन्न राजकीय अधिकारियों के निवेदन पड़ रहे थे।

उसे देखकर अंगद आश्चर्य से यह सोचता खड़ा रहा कि 'हमारे पास शैल हैं, वृक्ष हैं, एक बेचारे समुद्र को भी पार कर हम चले आये हैं, पर इस रावण को मारनेवाला यम भी क्या कोई है? यदि यह शस्त्र लेकर आ जायगा, तो इसका सामना करनेवाला कौन होगा? हाँ, राम के हाथ का धनुष यदि (इसका सामना) करे, तो कर सकेगा।'

वह (प्रभु), जिन्होंने इसके साथ सम्मुख-युद्ध करके इसे हरानेवाले मेरे पिता (वाली) के वक्ष में एक शर छोड़कर मार डाला था, स्वयं इसे मारने के लिए आ गये हैं। अन्यथा इसके सामने आकर इसे पराजित करनेवाला कौन हो सकता है?

बिना आभरणों के भी अत्यन्त सुन्दर लगनेवाली उन (सीता) देवी के प्रति इसके मन में जो मोह बैठा हुआ है, उसको उखाड़कर इसे समाप्त करनेवाला कौन है? भीषण मुख से युक्त सर्प को जैसे गरुड उठाकर उड़ जाता है, वैसे ही इस रावण को पकड़कर उड़नेवाले मेरे पिता से भी जो अधिक बलवान् हैं, उसको प्रभु राम ही मार सकते हैं।

प्रभु का भेजा हुआ वह दूत इस प्रकार विचार करता हुआ उस रावण के सम्मुख छोटा रूप धारण करके खड़ा हो गया, जो ऐसा था, मानों विशाल समुद्र ही, भीषण अग्नि, विष, यम, इन सबका मिश्रण बनकर चरण आदि अंगों एवं उज्ज्वल मुकुटों से युक्त होकर बैठा हो।

रावण ने अग्नि उगलती आँखों से वहाँ खड़े रहनेवाले अंगद को देखकर पूछा—'तू कौन है, जो अब यहाँ आया है? क्या काम है? ये राक्षस तुझे मारकर खा न डालें, इससे पहले ही बता दे।' तब बलवान् वालिपुत्र ने कहा—

सब भूतों के नायक, जल से आवृत पृथ्वी के नायक, पुष्प से अधिक कोमल सीतादेवी के नायक, देवों के नायक, तुम जो वेद पढ़ते हो, उन वेदों के नायक तथा विधि के नायक उस राम के द्वारा प्रेषित दूत हूँ मैं। उनके संदेश सुनाने के लिए आया हूँ।

जब अंगद ने यह कहा, तब राक्षस ने कहा—वह न हर है, न हरि है और न ब्रह्मा है।—ऐसी कोई बात नहीं है। सब मर्कटों को इकट्ठा करके, समुद्र नामक तलैया पर पुल बाँधकर वह यहाँ आ पहुँचा है—ऐसा वह नर ही क्या लोकों का अधिपति है? वाह!—यों कहकर रावण हँस पड़ा।

गंगा एवं चन्द्रकला को सिर पर धारण करनेवाले (शिव) तथा चक्रधारी (विष्णु) जैसे लोग भी इस नगर में आने का साहस नहीं करते। ऐसे देवताओं का दूत बननेवाले एक मनुष्य का दूत बनकर आनेवाला तू कौन है?—यों रावण ने पूछा।

तब अंगद ने उत्तर दिया—पूर्व में इन्द्र के जिस पुत्र (वाली) ने रावण नामक एक व्यक्ति की सब भुजाओं को एक-एक करके अपनी पूँछ से बाँध लिया था और हाथियों से भरे पर्वतों को पार करता हुआ उड़ चला था और जिसने क्षीरसागर को मथकर अमृत निकालकर देवताओं को दिया था, उसी (वाली) का मैं पुत्र हूँ।

यह सुनकर रावण ने कहा—तेरा पिता तो मेरा मित्र था। अहो! क्या यही

धर्म है ? इससे बढ़कर अपयश क्या हो सकता है कि तू उस मनुष्य का दूत बने ? मैं स्वयं तुझे वानरों का राज्य देता हूँ। तू मेरे पुत्र-समान है। तू सेवक कैसे बना ?

क्या तेरे पिता को मारनेवाले के पीछे-पीछे सिर पर हाथ जोड़े घूमता हुआ तू निर्बल के जैसे जीवन बिताता रहेगा ? अब यह अपयश दूर हो जाय। मैंने सीता को प्राप्त किया। तुझे अपने पुत्र के रूप में पाया। अब मेरे लिए असाध्य क्या रह गया ?— यों अपनी आयु की समाप्ति देखनेवाले रावण ने कहा।

उसने फिर कहा—इसमें संदेह नहीं कि वे मनुष्य आज या कल निहत हो जायेंगे। तेरा राज्य तुझे मैंने दिया। युगांत तक तू शासन करता रह। देवताओं के देखते हुए स्वर्णमय आसन पर तुझे बिठाकर मैं स्वयं तेरा राज्याभिषेक करूँगा।

वह बात सुनकर अंगद एक हाथ पर दूसरा हाथ मारकर, अपना दृढ वक्ष एवं कंधों को हिलाते हुए हँस पड़ा। फिर बोला—यह सोचकर कि तुमलोगों का विनाश निश्चित है, तुम्हारा भाई (विभीषण) तुम्हें छोड़कर हमारी शरण में आया है !

ऐसी मुँह-मीठी बातें कहकर यदि तुम मुझे अपने वश में कर लो, तो दूत बनकर मेरा यहाँ आना और राजा बनना भी खूब होगा। यह सोचने की बात है। तुम राज्य दो, और मैं उसे लूँ ? इसके समान और क्या होगा ? क्या कोई सिंह एक श्वान के देने पर मृग-राजपद स्वीकार करेगा ?—यों अंगद ने कहा।

'इसे मार डालूँ' यों सोचकर रावण ने शस्त्र उठाया। किन्तु, फिर यह सोचकर कि यह एक वानर है, इसे छूना ठीक नहीं है, चुप रह गया। उसने फिर पूछा— 'हे उन दुर्बल मनुष्यों के दूत ! तू मरने का निश्चय करके ही यहाँ आया है। अब तेरे आने का प्रयोजन क्या है, बता।'

तब अंगद ने कहा—'करुणा का कभी त्याग न करनेवाले प्रभु ने मुझे बुलाकर कहा है कि तू उस पापी (रावण) के निकट जा, जो अपने सारे कुल का नाश करने पर तुला हुआ है और भय से दुर्ग के भीतर छिपा बैठा है। उससे कह कि वह देवी को बंधन से मुक्त कर दे, नहीं तो युद्ध-रंग में आकर अपने प्राण छोड़े।

जिस दिन मैंने उसकी दादी (अर्थात्, ताटका) का वध किया था, जिस दिन उसके मामा (सुबाहु) को सेना-सहित मिटाया था, जिस दिन अरण्य में रहते समय उसकी बहन की नाक और कान काटे थे, तब वह (रावण) युद्ध करने के लिए नहीं आया। क्या वह अब आकर अपना पौरुष दिखायगा ?

उसके बंधुजनों को सेना को एवं सब प्राणियों के विनाशकारी उसके भाइयों (अर्थात्, खर और दूषण) को मैंने समूल मिटा दिया था। तब भी वह नहीं आया। किन्तु, माया से मेरे भाई को दूर हटाकर मेरी पत्नी को चुरा करके ले गया। ऐसा वह वक्रदंष्ट्र राक्षस अब क्या युद्ध करने का साहस करेगा ?

जब हनुमान् ने (सीता) देवी के दर्शन करने के पश्चात् सामने आये हुए राक्षसों को मिटाकर, उसके पुत्र (अक्ष) को चंदन के समान घिस-घिसकर मिटाया था और उसकी

लंका को जलाकर समुद्र पारकर लौट आया था तब भी वह (रावण) युद्ध करने को नहीं आया। अब क्या वह युद्ध करने का साहस करेगा ?

जब उसके गूढचर यहाँ आकर पकड़े गये और हमसे प्राणों की भिक्षा पाकर अपने मन का कपट दूर करके यहाँ से लौट गये, तब वह नहीं आया। जब वरुण हमारी शरण की प्रार्थना करके आया, तब भी नहीं आया। जब उसके भाई (विभीषण) को लंका का राज्य हमने दिया, तब भी वह (रावण) नहीं आया। और जब हमने समुद्र पर सेतु बाँधा, तब भी वह नहीं आया। ऐसा वह (रावण) आज क्या आयगा ?

कल जब देवों के देखते हुए, कमल-समान मुँहवाली स्त्रियों के समक्ष ही चित्तियों-वाले व्याघ्र के समान एक वानर ने उसके मुकुटों को छीना था, तब भी वह नहीं आया। अब क्या वह आकर युद्ध करेगा ?

ये सब बातें कहकर प्रभु ने तुम्हें बुलाने के लिए मुझे भेजा है। तुम भली भाँति विचारकर अपना निर्णय करो; या तो अपनी भलाई को देखकर घने कुंतलोंवाली (सीता) को राम की शरण में भेजकर जीवित रहो, या यदि अपने बंधुजन-सहित आकर युद्ध करना चाहते हो, तो मेरे साथ ही नगर-द्वार पर चलो—यों अंगद ने कहा।

जल, अग्नि, विशाल पृथ्वी और अंतरिक्ष में उत्पन्न सब भूतों के प्राणियों को तुमने युद्ध में निहत किया है। ऐसे वीर तुम यदि अपने दुर्ग के भीतर छिपकर अपने ही गाँव में आहत होकर गिरोगे, तो उससे तुम्हारा बड़ा अपयश होगा—यों उस (रावण) के मन में बात बिठाते हुए अंगद ने कहा।

अंगद की बातों को सुनकर रावण क्रोध करके उठा, जैसे उसके सब प्राणों को पी डालनेवाला हो और 'इसे शीघ्र पकड़ो, इसे धरती पर पटक दो'—कहकर चार राक्षसों को भेजा।

जब वे राक्षस अंगद को पकड़ने के लिए उसके निकट आये, तब वह उनके सिरों को पकड़कर यों उछला कि उनके सिर टूट गये और अंगद ने गोपुर के द्वार पर जाकर उन सिरों को रौंदकर, चिल्लाकर कहा—

'(नगर के लोगो!) वीर राम के उत्तप्त शर जलती बिजली के जैसे आकर यहाँ गिरें, इसके पूर्व ही अपनी रक्षा चाहनेवाले सब लोग यहाँ से हट जाओ, हट जाओ!'—यों कहकर अंगद चला गया।

चंदन से चर्चित शरीरवाला वह अंगद अंतरिक्ष में उड़ चला। जैसे चंद्रमा आकाश से उतर पड़ा हो, इस प्रकार आकर प्रभु के चरणों पर नत हुआ।

उसके आते ही विजयी वीर (राम) ने उससे सारा वृत्तांत सुनाने को कहा। तब अंगद ने निवेदन किया—उस (रावण) को बहुत समझाने से क्या प्रयोजन है ? जबतक उसके सिर कटकर नहीं गिरेंगे, तबतक वह अपने मन की दुष्कामना का त्याग नहीं करेगा।

(१—४३)

अध्याय १४

प्रथम युद्ध पटल

अंगद ने सूचना दी कि 'अब युद्ध अनिवार्य है। सुलह असंभव है।' तब सब दिशाओं में नगाड़े बज उठे। राम ने छावनी में स्थित सब वानरों से कहा—अब तुमलोग लंका के सब नगर-द्वारों पर मोर्चा बाँध दो।

तुम लोग अपने अभ्यस्त हाथों से, जहाँ-तहाँ से पर्वतों और वृक्षों को समुद्र से तिगुने परिमाण में लाकर लंका के चारों ओर स्थित परिखा को भरकर पाट दो।

(राक्षसों के मार्गों में) सर्वत्र अनेक वृक्षों को डाल दो और उनके गमन का मार्ग रोक दो। युद्ध के लिए निकल पड़ो। युद्ध के लिए राक्षसों को ललकारो। सूर्य के पथ को रोकनेवाली पताकाओं से भरी लंका के प्राचीरों के शिखरों पर कूद पड़ो—यों राम ने आज्ञा दी।

सिंह-समान उन वानरों ने बड़े-बड़े पहाड़ों और पेड़ों को लेकर समुद्र के समान परिखा को पाट दिया। उस (परिखा) में रहनेवाले मकर आदि जलचर अस्त-व्यस्त हो भागने लगे। उसका जल उमड़कर बह चला।

मानों वह आठवाँ समुद्र हो। सत्तर 'समुद्र' वानर-सेना ने जल से भरी खाई को जब पाट दिया, तब उस खाई का धवल जल, नगर-द्वारों से घुसकर सारे नगर को प्लावित कर बह चला, मानों वह राम की सहायता करने चला हो।

वे वानर विकसित कमलपुष्पों की लताओं को जड़ से उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगे, मानों वे अबतक वृद्धि पाती रहनेवाली रावण की साकार कीर्त्तिलता को ही उखाड़ रहे हों।

मधु से युक्त जल में पनपनेवाले दीर्घ कुवलय-पुष्प म्लान एवं मुकुलित हो गये। मानों, निन्दनीय गुणवाले रावण का यश आज से मिट गया हो और यह सोचकर परिखा रो रही हो।

हरी-भरी कमललता के समूल उखड़ जाने से फैले पंखोंवाले भ्रमर गुंजार करना छोड़कर अस्त-व्यस्त हो भागे। हंसों के झुंड अपने मुखों में अंडे लिये हुए यत्र-तत्र भाग गये।

'तार' (नामक राग) गानेवाले भ्रमर उड़ चले। उनके साथ (नारियल, गुवाक आदि पेड़ों के) पत्तों के बीच से झरे पुष्पों से भरे जलाशयों में स्थित, दीर्घनालवाले कमल पर निवास करनेवाले हंस भी उड़ चले। जब वानर फाँदते थे, तब जल में स्थित 'वाले' (नामक) मीन भी उछल पड़ते थे।

घने वृक्षों, पर्वत-पंक्तियों तथा मिट्टियों के जल में गिरते रहने से खाई में से अनेक नदियाँ बहकर समुद्र में जा मिलीं।

जब-जब विशाल पर्वत उस खाई में गिरते थे, तब-तब जल-मध्य उत्पन्न भँवर में डूब-डूबकर ऊपर उठनेवाले कमल ऐसे लगते थे, जैसे तरंगों के मध्य निमग्न होकर उठनेवाली रमणियों के मुख हों।

सब उन्नतियों के आश्रय बने दशमुख की पुरातन तथा विशाल परिखा को वानरों ने पाट दिया। अहो! किसी के द्वारा प्राप्त होनेवाले अभाव की, या स्वत्व (अर्थात्, धन-संपत्ति) और शक्ति की क्या कोई सीमा निर्धारित की जा सकती है?

ऊँचे पहाड़ों से खाई को पाटनेवाले वानरों ने प्राचीर के रक्षार्थ रोककर खड़े रहनेवाले राक्षसों को मारकर उस प्राचीर को, जो ऐसे थे, मानों लोहे को पिघलाकर ढाले गये हों, हस्तगत करके ऐसा गर्जन किया कि समुद्र एवं मेघ भी भय से काँप उठे।

'वर्तुलाकार मेरु-पर्वत यही है'—ऐसी भ्रांति उत्पन्न करनेवाले गगन को भेदकर उठे हुए उन प्राचीरों पर चढ़कर जो वानर आकाश को छूते हुए खड़े थे, वे ऐसे लगते थे, जैसे आकाश में गड़ी हुई धवल पताकाओं की पंक्ति हो।

एक-एक वानर वजन में अपरिमेय रत्नों से भरे मेरु की समता करनेवाला था। ऐसे अनेक वानर चढ़कर जब प्राचीर को दबाने लगे, तब वह प्राचीर धरती में धँसने लगा।

तब (लंका में) बजनेवाले नगाड़ों को ढोते हुए चलनेवाले गजों पर स्थित ऊँची पताकाओं से गगनतल ढक गया। धूलि के उड़कर फैलने से दिशाएँ रुँध गईं। युद्ध करने को निकले राक्षसों का शोर गगन के अंतराल में गूँज उठा।

शंख बज उठे। (राक्षसों के पहने) हार बज उठे। नाचनेवाले घोड़ों के मंजीर बज उठे। रत्न-खचित ऊँचे रथों पर की घंटियाँ बज उठीं। मदजल बहानेवाले बड़े-बड़े हाथियों के दोनों पार्श्वों में लटकनेवाले घंटे बज उठे।

राक्षसों के प्राचीन कुल के मिटने एवं राक्षसेतर (देव-मनुष्य आदि) लोगों के जीते रहने का शुभसूचक काल विधि-विधान से प्राप्त हो गया। अतः, वानर-सेना उल्लसित होकर (राक्षस-सेना से) जा टकराई।

वानरसेना-रूपी समुद्र, दाँतों से, वृक्षों से एवं बड़े पहाड़ों से आघात करता हुआ बढ़ आया। राक्षसवाहिनी-रूपी समुद्र धनुष से, शूल से तथा अन्य उज्ज्वल शस्त्रों से आघात करता हुआ बढ़ चला।

(राक्षसों के) बाणों ने (वानरों के फेंके) पहाड़ों को चूर-चूर कर डाला। शाखाओं से युक्त वृक्षों ने (राक्षसों के द्वारा फेंके) बाणों को छिन्न-भिन्न कर डाला। रक्त-रंजित शूलों के भेदकर निकल जाने से सुगंधित पुष्पों से पूर्ण वृक्ष विध्वस्त हो गये।

दीर्घ करोंवाले वानरों ने शैलों को फेंककर राक्षसों के सिरों को फोड़ दिया। तो उन (राक्षसों) के कान, मुख एवं सर्प-बिल के जैसे लगनेवाले-नासिका-रंध्रों से उनके मस्तिष्क बाहर निकल आये।

अंधकार भी हारकर भाग जाये, ऐसे काले रंगवाले राक्षसों के धनुष से निकले हुए बाणों के लगने से, वानरों के रक्त के साथ उनके दाँत भी झर जाते थे और अपने हाथ में शैलों को पकड़े हुए ही वे (वानर) सिकुड़कर गिर पड़ते थे।

मेरु-पर्वत के समान उन्नत प्राचीर पर खड़े होकर वानरों ने जो शैल फेंके, उन्होंने पर्वत पर जैसे वज्र गिरे हों, यों राक्षसों पर गिरकर उनके प्राण हर लिये।

सूर्य के समान तीक्ष्ण नेत्रोंवाले राक्षसों के हाथों से भली भाँति हिलाकर फेंके

गये पत्राकार शूल लगने से अनेक वानर, दीर्घ हाथों के साथ उनके प्राण भी टूट जाने से, प्राचीर के बाहर मिट्टी में गिरकर गड़ गये।

वानरों ने क्रोध से भरकर (राक्षसों को) काटा। घूँसों से मारा। कंठ को पकड़कर दबाया। नखों से चीर डाला। लातों से मारा। यों असंख्य राक्षसों को निष्प्राण कर दिया।

कठोर आँखोंवाले राक्षसों ने (तोमर आदि शस्त्र) फेंककर (शरों को) चला कर लौहस्तंभ जैसे गदायुद्ध से आहत कर, शूलों को देह में गड़ाकर असंख्य वानरों को मिटा दिया।

वह रक्त-स्वर्ण से निर्मित प्राचीर ताँबे के समान लाल-लाल रक्त धारा से रँगकर ऐसा लगता था, जैसे प्रवाल-निर्मित कोई पर्वत हो। रक्त-प्रवाह, औंधे पड़े शवों को बहाता हुआ, लवण-समुद्र में जा गिरा।

इन्द्र भी जिसको अपने वश में नहीं कर सका था, ऐसे उस लंकानगर पर विविध विहग घने रूप में एकत्र होकर मँडराने लगे, जिससे ऐसा लगा, मानों उस नगर पर कोई वितान तना हो।

भयंकर अग्नि-ज्वाला के समान उज्ज्वल, उमड़ते हुए रक्तप्रवाह-रूपी लाली से भरे आकाश पर अंधकार बन करके राक्षस-कबंध,[1] हाथ उछाल-उछालकर, नाच उठे।

(मांसभक्षी) पक्षी भय उत्पन्न करनेवाले लाल रंग से युक्त रक्त-प्रवाह में गोते लगा-लगाकर उड़ते थे। उनके पंखों पर लगे हुए रक्त-बिन्दुओं के छींटे पड़ने से विविध रंगवाली ऊँची ध्वजाएँ रक्तवर्ण हो गईं।

जब वह प्राचीर बहे हुए रुधिर से उमड़ पड़ा, तब वानर हतबल होकर, उस प्राचीर को छोड़कर बाहर यों कूद पड़े, मानों कोई समुद्र मेरु के ऊपर से नीचे उतर पड़ा हो।

व्याकुल करनेवाली भीषण आँखों से युक्त राक्षसों की सेना, प्राचीर के भीतर की चौकियों पर, प्राचीर में लगाये 'नांजिल' (नामक) यंत्रों पर, नगर-द्वारों पर तथा ऊपर के बुर्जों पर सर्वत्र भर गई।

राक्षसों के टूट पड़ने से कुछ वानर बढ़नेवाली रुधिर-धारा में कूदकर तैर चले। कुछ वानर शिथिल होकर शरविद्ध हो निष्प्राण गिर पड़े। कुछ अपने प्राणों को हाथों में लेकर भागे।

प्राचीर पर फैला हुआ वानरसेना-रूपी समुद्र जब यों निःशक्त होकर भागा, तब भीषण शस्त्रों से सुसज्जित, घोर युद्ध में निरत रहनेवाली राक्षससेना-रूपी समुद्र ऐसे गरजा, मानों युगांत में त्रिलोक को मिटानेवाला समुद्र गरज उठा हो।

मुरज, 'मुरुडु', शंख, प्रशंस्यमान काहल, 'आकुलि' (नामक छोटा पटह)— इस प्रकार के विविध वाद्य, धनुषों के टंकार के साथ मिलकर, तरंगायमान समुद्र को भी भय-विकंपित करते हुए बज उठे।

---

१. यह विश्वास था कि युद्ध में एक सहस्र वीरों के निहत होने पर एक कबंध नाचने लगता है।—अनु०

उस समय (राक्षसों की) चतुर्विध सेना-रूपी समुद्र चारों गगनचुंबी नगर-द्वारों से यों निकल पड़ी, ज्यों ब्रह्मा के चारों मुखों से समस्त लोक निकले थे।

आठ 'खात' दूर तक फैले हुए गजों के समुदाय, जो त्रिविध मद बहाते थे, गोपुर-द्वारों से यों निकले; ज्यों पहाड़ निकले हों। उनके ऊपर रखी ध्वजाएँ परस्पर उलझ जाती थीं और उनके दंड टूट जाते थे।

स्वर्णमय रथ, मुखपट्टधारी गजों से बहनेवाले मदजल से उत्पन्न कीचड़ में, यों दौड़ने लगे, ज्यों प्रलयकाल में चंड मारुत चल पड़ा हो और अपने भार से पृथ्वी को धूल बनाकर उड़ाने लगे।

घोड़े इस प्रकार बाहर निकल पड़े, मानों आक्रमण करनेवाले वानरों के भुजाघातों से पीडित होकर टूटनेवाले प्राचीर-रूपी वस्त्र से अलंकृत लंकानामक नारी, पहले अपने पिये हुए समुद्र को, उसमें उठनेवाली तरंगों के साथ उगल रही हो।[1]

(लंका के भीतर से) काले राक्षस यों निकल पड़े, मानों इस अनुपम संसार में अनादि काल से प्रतिदिन जितनी रातें व्यतीत हुई थीं, वे सब एक स्थान पर एकत्र हों और वे ही सब रात्रियाँ अब शब्द करते हुए निकल रही हों।

(चतुरंगिणी) सेना के चलने से जो धूल उड़ी, उससे भूमि को ढोनेवाले आदिशेष का सिरोभार कम हो गया, स्वर्ग धूलि से भर गया और ब्रह्मांड की भित्ति के परे भी धूलि छा गई। दिशाएँ रुँध गई।

जब राक्षस पीछा करते हुए आये, तब वानरों के पैर उखड़ गये और वे भाग चले और उस सुग्रीव के निकट जा पहुँचे, जो युद्ध करने के उत्साह से भरा खड़ा था।

वानर-सेना को बलहीन होकर भागते हुए और राक्षस-सेना को क्रोध के साथ आगे बढ़ते हुए देखकर सुग्रीव अत्यन्त क्रोध से भर गया। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ीं। उसने वहाँ पड़े हुए एक बड़े वृक्ष को उठा लिया।

गजों पर, अश्वों पर, रथों पर, राक्षस-वीरों पर, सब पर क्रोध से आक्रमण करने को सन्नद्ध वह सुग्रीव इसके पूर्व (अशोक-वाटिका में) तोरण पर आसीन हनुमान के समान लगता था, जैसे प्रत्येक राक्षस के सम्मुख एक-एक सुग्रीव खड़ा हो।

सुग्रीव ने अत्यन्त क्रोध के साथ उस वज्रमय वृक्ष को यों घुमाया कि हाथियों, घोड़ों और राक्षस-वीरों के पैर टूट गये और उत्तम रत्नों से जटित रथ लुढ़क गये। उष्ण रक्त-प्रवाह भीषण रूप में बह चला।

उस समय सब वानर-वीर अपने राजा (सुग्रीव) के पास आ पहुँचे। इतने में कठोर नेत्रोंवाले राक्षस-वीर भी युद्ध-भूमि में शब्द करते हुए आ पहुँचे।

उस युद्ध में वानरों के फेंके शैलों से असंख्य पापी राक्षस आहत हो मरे। राक्षसों के धनुषों से निकले बाणों से असंख्य वानर कट मरे।

---

१. भाव यह है—जब वानरों ने परिखा को पाटा था, तब उसका जल लंका के भीतर प्रविष्ट हो गया था। अब घोड़ों का निकलना ऐसा लगता है, मानों वही जल लहराता हुआ बाहर निकल पड़ा हो।—अनु०

वानरों ने घोर युद्ध में अपनी शक्ति प्रकट करते हुए जो शैल फेंके, उनसे गर्व खोकर मरे हुए राक्षसों के प्राणों से सारी दक्षिण दिशा भर गई।

भूत गा उठे। कबंध नाच उठे। रुधिर का प्रवाह गंभीर समुद्र की ओर बह चला। सती (राक्षस-) स्त्रियाँ युद्ध भूमि में प्रवेश करके अपने पति की देह को ढूँढ़ने लगीं।

वानरों से निहत हाथियों के शरीर से जो रक्त-प्रवाह हुआ, वह समुद्र में जा मिला। (राक्षसों के) शरों की वर्षा हुई, जिससे अपार वानर-सेना निहत हुई। रक्त की नदियाँ प्रवाहित हो चलीं।

क्रोधी वानरों के हाथों से अल्पायु राक्षसों का रक्तवर्ण रुधिर बहाया गया। गज-सेना विध्वस्त हो गई। राक्षसों का बल क्षीण हो गया।

अपनी राक्षस-सेना को विध्वस्त हुए देखकर वज्रमुष्टि नामक राक्षस-वीर क्रोध से भरकर, आँखों से चिनगारियाँ उगलता हुआ, अपने रथ को अतिवेग से इस प्रकार चलाता हुआ, जैसे बाज आदि पक्षियों से अनुसृत होती हुई कोई बड़ी नौका समुद्र में चलती है, सम्मुख आया।

रथ पर आकर उस (राक्षस) ने तीक्ष्ण बाणों की घोर वर्षा की, जिससे वानर-सेना छिन्न-भिन्न हो गई। तब चिन्ता-भरे सुग्रीव ने युद्ध-क्षेत्र पर दृष्टि फेरकर देखा।

देखकर, सुग्रीव उस वंचक राक्षस के अश्व-जुते रथ पर उछलकर कूद पड़ा। उसके कंधे पर स्थित तूणीर को और उसके धनुष को तोड़कर फेंक दिया। फिर, उसकी देह को भी विध्वस्त करके लौट आया।

वज्रमुष्टि निहत हो गिरा, जैसे कोई पर्वत टूट गिरा हो। उसके साथ रहनेवाले राक्षस भय-त्रस्त हो ध्वजाओं से भूषित लंकानगर की ओर भाग चले। वह दृश्य देखकर वानर (समुद्र की) वीचियों के समान भीषण कोलाहल कर उठे।

बिंबफल के समान लाल-लाल आँखोंवाले राक्षसों की भीषण सेना प्रलयकालिक समुद्र के समान उमड़कर (लंका के) पूर्व द्वार पर आई। वहाँ घेरकर खड़े वानरों ने उनसे युद्ध आरंभ कर दिया।

कालकूट विष के समान राक्षस-कुल ने शूल, करवाल, भाले, चक्र, तोमर, भिंडिपाल, शर आदि की वर्षा की, जिनसे वानर-कुल की पूँछें और पैर कट गये।

विजयी वानरों ने शीघ्रता से पर्वतों तथा बड़े-बड़े वृक्षों को प्रभंजन के जैसे वेग से फेंका। उनसे राक्षस निहत हुए। अश्व और गज भी मिट गये।

वह दृश्य देखकर राक्षस ने अत्यन्त क्रोध के साथ गदा, करवाल, शूल, चक्र, शर आदि से वानरों को मारा। वानरों के शरीरों में घाव हो गये और रुधिर बह चला। वानर एकदम भाग चले।

तब अग्नि के पुत्र नील ने, भूमि में बहुत दूर तक जड़ जमाये खड़े एक महान् वृक्ष को समूल अपने हाथों से उखाड़ लिया और उसे राक्षसों पर यों दे मारा कि वे जैसे प्रलयाग्नि से आहत हो विनष्ट हो गये हों।

रथ, सारथि, अश्व, लाल चित्तियों से भरे मुखवाले काले मेघ-समान हाथी, शरभ,

सिंह—सभी इस कमनीय पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके ताजे घावों से रक्त की धाराएँ बहकर समुद्र में जा गिरीं।

युद्धभूमि सूनी करके राक्षस-सेना भाग चली। तब उनके भयंकर सेनापति कुंभानु ने वानर-सेना को निहत करने के उद्देश्य से बहुत दूर तक जानेवाले शर प्रयुक्त किये।

वानर-सेना को निहत होते देख, अष्टदिशाओं में रहनेवाले सभी प्राणियों के द्वारा सम्मानित हिडिंब नामक राक्षसपति ने एक बड़े पहाड़ को उठा लिया और गरजकर उस कुंभानु के सामने कूद पड़ा।

कुंभानु के द्वारा प्रयुक्त शर उसके सामने आयें, इसके पहले ही हिडिंब ने उस पहाड़ को (कुंभानु पर) फेंका, जिससे उसका धनुष टूट गया और रथ, उसमें जुते घोड़े तथा सारथि सभी विध्वस्त हो गये।

रथ और धनुष के टूट जाने पर वह राक्षस, जिसने पूर्वकाल में ऐसा युद्ध किया था कि देवता भी पीठ दिखाकर भाग गये थे, मेघ से गिरनेवाले वज्र के समान पृथ्वी पर कूद पड़ा और कुंभानु के सम्मुख लपक चला।

यों लपककर आनेवाले कुंभानु के वक्ष पर हिडिंब ने अपनी मुष्टि से ऐसा आघात किया कि उसके शिर के मुकुट को नीचे गिरा दिया और उसकी विशाल भुजाओं को दृढता से पकड़ लिया।

हिडिंब ने उसके दोनों पार्श्वों में अपने पैरों को लगाकर उसे भली भाँति जकड़ लिया। फिर, अपने हाथों से उसके कंधों को पकड़कर उसके सिर पर ऐसा प्रहार किया कि वह कट गया और उसके प्राण निकल गये।

अपने अधीनस्थ सेनापति (कुंभानु) को अपने सामने ही यों निहत हुए देखकर सुमालि-पुत्र (प्रहस्त) अत्यन्त दुःखी हुआ। वह एक बादल के समान आकर सम्मुख खड़ा हो गया और अपना धनुष झुकाया।

प्रहस्त ने अपनी भुजाएँ फुलाकर दीर्घ धनुष को झुकाकर, वानर-सेना को भय-त्रस्त करते हुए टंकार किया और घोर वर्षा के समान निरंतर शरों को बरसाया।

सैकड़ों और हजारों की संख्या में शर अतिवेग से आकर पृथक्-पृथक् उन वानरों पर लगते रहे, जिससे वानर विकल होकर सब दिशाओं में भागे। वह दृश्य देखकर नील अत्यन्त रोष से भर गया।

नील ने अपने निकट पड़े एक शैल को उठाकर, यम के समान आगे बढ़कर उस राक्षस की सेना पर दे मारा। किन्तु, उस राक्षस ने अपने धनुष से जो शर बरसाये, उनसे वह शैल टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया।

पुनः नील ने एक बड़े वृक्ष को उठाकर गगन से गिरनेवाले वज्र के जैसे उसे फेंका, तो उसकी चोट से राक्षस (प्रहस्त) का झुका हुआ धनुष, ध्वजा, बलवान् अश्व तथा रथ चूर-चूर हो गये।

धनुष एवं रथ से हीन वह राक्षस पृथ्वी पर यों उतर आया, जैसे मेघ से उतरा हुआ वज्र हो। उसके बाद वह बड़ी गदा लेकर यों दौड़ा, ज्यों सूर्य ही उतरकर दौड़ रहा हो।

प्रहस्त ओंठ चबाता हुआ, आँखों से आग उगलता हुआ नील के निकट आ पहुँचा। तब नील ने आगे बढ़कर गदा-सहित उस प्रहस्त को पकड़कर उठा लिया और गगन में फेंक दिया।

प्रहस्त को गगन में उछालकर नील ने हर्षध्वनि की। इतने में वह राक्षस गगन से पृथ्वी पर उतर आया और सब देवों को विकंपित करते हुए अग्निकुमार (नील) पर गदा से यों आघात किया कि उसके शरीर से रुधिर बह चला।

गदा की चोट से विचलित न होकर नील ने उस गदा को छीनकर दूर फेंका और उस युद्ध को समाप्त करने का विचार करके उस राक्षस को अपनी मुट्ठी से इतना मारा कि वह रक्त उगलने लगा, जैसे अभी उसने बहुत रक्त पिया हो।

मुँह से रक्त उगलने पर भी वह राक्षस शिथिल नहीं हुआ। किन्तु, नील के कुछ सँभलने के पहले ही उसके वक्ष पर घूँसे से दे मारा। तब उन दोनों ने क्रोध से जो घोर युद्ध किया, उसका वर्णन करना असंभव है।

फिर, नील ने उस राक्षस को अपनी पूँछ से भली भाँति बाँध दिया और उसके कंधों पर, वक्ष पर एवं ललाट पर मुष्टि से मारा। उससे वह राक्षस निष्प्राण होकर एक पर्वत के समान गिर पड़ा।

प्रहस्त के मरते ही देवता आनन्द से नाच उठे। लाल केशों तथा धवल दाँतों से युक्त राक्षसवीर अस्त-व्यस्त होकर अपने प्राचीन नगर की ओर भागे।

जो राक्षस-वीर दक्षिण द्वार पर गये थे, वे भी बलिष्ठ भुजाओं से युक्त अंगद के सामने खड़े नहीं रह सके और उनके सेनापति सुपार्श्व के मर जाने पर वे भी भाग खड़े हुए।

उसी समय दुर्मुख नामक राक्षस-सेनापति एक सौ दो 'समुद्र' सेना को लेकर गरजता हुआ पश्चिम द्वार पर जा पहुँचा। वे सब वायुपुत्र (हनुमान्) के हाथ-रूपी यम से निहत हो गये।

उस समय पूर्व आदि सब द्वारों पर होनेवाले युद्ध का अवलोकन करके दूत लोग शीघ्र रावण के निकट जा पहुँचे और उन्होंने सिर झुकाकर नमस्कार करके कहा—'हे राजन्! सुनो।' फिर, रहस्य प्रकट करते हुए बोले—

तुम्हारे आज्ञा-चक्र के समान प्रहस्त, जिसने प्रलयकाल में भी विजय प्राप्त की थी, अपनी राक्षस-सेना के साथ ही धूल में मिल गया। उसके प्राण परलोक में जा पहुँचे हैं।

दक्षिण के द्वार में शूलधारी हस्तोंवाले क्रोधी राक्षसों के साथ जो सुपार्श्व गया था, वह भी निहत हो गया। उसके साथ जो गये थे, वे अब कहाँ हैं, इसका कुछ पता नहीं है।

उत्तर द्वार पर वज्रमुष्टि एवं पश्चिम द्वार पर दुर्मुख— दोनों पर्वताकार राक्षस, अदम्य शक्ति से युक्त पचास समुद्र राक्षस-सेना के साथ विध्वस्त हो गये।

ये वचन अग्नि में पड़े घृत के समान उस (रावण) के कानों में पड़े। उसकी क्रोधाग्नि उसकी आँखों से होकर प्रकट हुई। वह रुक-रुककर उसाँस भरने लगा।

फिर, रावण ने दूतों से पूछा—'उस प्रहस्त के प्राणों को हरनेवाला कौन है ? उत्तर दो !' तब दूतों ने कहा—सब दिशाओं में अपने यश को स्थापित करनेवाला नील हमारी विशाल सेना के साथ युद्ध करने के लिए प्रहस्त के निकट आया।

तब, वे दोनों अपने सीखे हुए सब प्रकार की युद्ध-कलाओं को प्रकट करके लड़ने लगे। तब शत्रु ने प्रहस्त के सिर पर मुक्कों से आघात किया, तो वह मरकर गिर पड़ा।

फिर, उन दूतों ने कहा—हे प्रभो ! उस प्रहस्त के साथ जो राक्षस गये थे, उनमें से बचकर लौटनेवाले केवल हमी हैं। तब रावण अपने ओंठ चबाने लगा। उसकी क्रोधाग्नि से सब दिशाएँ जल उठीं।

अपने निकट खड़े वीरों को उस (रावण) ने घूरकर देखा और फिर बोल उठा—बड़ी सेना से युक्त प्रहस्त को वृक्ष लेकर लड़नेवाले वानर ने मार डाला !

इस प्रहस्त का समूल नाश होना क्या है, इन्द्र का जीवित हो जाना है। यह समाचार कि उसकी मृत्यु एक वानर के हाथ से हुई है, तीक्ष्ण अग्नि बनकर मेरे कानों को जला रहा है और मेरे मन को भी।

चूहे के समान एक वानर ने आघात किया, तो सूर्य जिसकी परिक्रमा करता है, ऐसे मेरु के समान प्रहस्त मर गया। शत्रु को एवं जलनेवाली आग को अल्प मानकर उनकी उपेक्षा करना क्या उचित होता है ?

यों कहकर आँखों में आँसू भरते हुए रावण ने फिर धनुष धारण करनेवाले भयंकर योद्धाओं को आज्ञा दी कि अन्य बातें छोड़ो, अब तुम लोग एक बहुत विशाल सेना को साथ लेकर ऐसी मनोदृढता के साथ जाकर युद्ध करो कि कभी पीछे हटने की बात तक न उठे।

फिर, कैलास को उखाड़नेवाला रावण उस प्रभूत युद्ध का जो परिणाम हुआ, उसे सोचकर क्रोधरक्त आँखों के साथ, जैसे घाव फिर ताजा हो गया हो, एक अतिदृढ रथ को चुनकर उसपर आरूढ हुआ।

उस रथ में एक सहस्र अश्व जुते थे। वह उमड़ते समुद्र के समान ध्वनि से युक्त था। स्वर्ग में सर्वत्र संचरण कर चुका था। पूर्वकाल में इन्द्र ने अपनी शक्ति खोकर वह रथ (रावण को) दिया था।

(रावण ने) अपने इष्टदेव (रुद्र) का ध्यान करके, वाम हस्त में दृढ धनुष को लेकर उससे ऐसा टंकार निकाला, जो उस धनुष के टंकार के समान था, जिससे यम के भी प्राण निकलते थे।

उसने ऐसे असंख्य शस्त्र लिये, जो देवों के वक्षों पर लगकर भी नहीं टूटे थे। अपने वक्ष को कवच से आवृत कर लिया और 'तुम्बै' पुष्प की माला पहन ली।[१]

उसके दोनों पार्श्वों में चँवर डुल रहे थे। वह दृश्य ऐसा था, जैसे समुद्र एवं उसका फेन हो। उसके सिर पर मुक्तामय छत्र शोभायमान हो रहा था। उस समय वह ऐसा लगता था, जैसे पूर्णचन्द्र की छाया में कोई कालमेघ हो।

---

१. तमिल साहित्य में वर्णन मिलता है कि युद्ध में जानेवाले 'तुम्बै' नामक पुष्प की माला पहनते थे।—अनु०

पटह बज उठे। तब उत्तम शत्रुसेना-रूपी समुद्र में हलचल उत्पन्न हुई। देवता भय से पसीना-पसीना होते हुए काँप उठे। ब्रह्मांड फट गया। शंख बज उठे और युद्ध-योग्य दशांगों के 'मुरज' भी बज उठे।[1]

रथों, अश्वों और पदाति-वीरों से युक्त विशाल राक्षस-सेना के साथ रावण यों शोभित हुआ, जैसे प्रलयकाल में सप्तसमुद्रों से घिरा हुआ मेरु-पर्वत हो।

उसके रथ पर सप्त-स्वरमय वीणा से अंकित ध्वजा फहरा रही थी। विशाल दिशाओं में फैलनेवाली वह ध्वजा ऐसी लगती थी, जैसे प्रलयकाल में सब लोकों के प्राणों को रखनेवाले यम की जीभ ही लपलपा रही हो।

बाँसों से भरे पर्वत जैसे आकारवाले राक्षसों के समुद्र को पार करने के लिए हमें एक नौका[2] मिल गई है—ऐसा विचार करके जो देवता प्रसन्नचित्त होकर युद्ध देखने के लिए आये थे, वे अब (रावण को युद्ध-सज्जित देखकर) तितर-बितर हो गये।

राक्षसों की आँखों से क्रोधाग्नि का जो धुआँ निकला, उससे काले वर्णवाले राक्षसों के लाल रंग के केश श्वेतवर्ण हो गये। इस रूप-परिवर्त्तन के कारण उनके निकट-तम बंधु भी उनको देखकर पहचान नहीं पाते थे।

बड़े चक्रोंवाले रथों पर लगी ऊँची पताकाओं, वीरों के द्वारा हाथों में ले जाई जानेवाली पताकाओं एवं हाथियों पर रखी हुई पताकाओं के एक साथ फहराने से आकाश-गंगा एवं मेघों का पानी भी शोषित हो गया और वे जलहीन हो गये।

सहस्रकोटि भूत, सुन्दर तथा स्वच्छ शस्त्रों को लेकर पीछे-पीछे चल रहे थे। उसके चारों पार्श्वों में उज्ज्वल कांतिपूर्ण बड़ी मणियों से खचित चुने हुए दो सहस्र रक्षक रथ (अर्थात्, रावण की रक्षा के लिए नियुक्त रथियों के रथ) जा रहे थे।

सामना करने के लिए सन्नद्ध होकर खड़ी हुई वानर-सेना व्याकुल हो उठी। (रावण के) साथ चलनेवाले राक्षस हर्षनाद करने लगे। यों एक के ऊपर एक स्थित तीनों लोकों को पारकर विजय प्राप्त करनेवाला रावण समरभूमि में प्रकट हुआ।

वानर-दूतों ने रामचन्द्र के निकट पहुँचकर निवेदन किया कि क्रूर पापकर्म करनेवाला राक्षस (रावण) काल-समुद्र के समान विशाल सेना को लेकर रोष के साथ समरांगण में आया है।

ज्यों ही दूतों ने यह कहा कि वह (रावण) युद्धभूमि में आया है, त्यों ही इस विचार से कि 'सीता बंधन से मुक्त हो गई', रामचन्द्र की वे भुजाएँ, जो विरह-दुःख से अत्यन्त कृश हो गई थीं, एकदम फूल उठीं।

(सृष्टि के आरंभ और अन्त के) मध्यकाल में फल प्रदान करनेवाले कर्मों की सीमा को जिन्होंने देखा हो, ऐसे ज्ञानियों के लिए प्रत्यक्ष का विषय बननेवाले प्रभु (राम) ने

---

१. युद्ध के दशांग हैं : अश्व, गज, पताका, मृदंग, रथ, दुर्ग, नगर और परिखा। —अनु०

२. इस पद्य में 'नौका' शब्द से राम की ओर संकेत है। —अनु०

बुने-से दिखाई देनेवाले वल्कल को कटि में दृढता से बाँध लिया। फिर, उसपर दृढ करवाल को बाँधा।

वामनावतार में जब प्रभु ने अपने समानुरूप युगल चरणों को विश्व-भर में व्याप्त किया था, तब यत्र-तत्र स्थित ज्ञानियों ने उन चरणों पर अपनी उँगलियाँ रखकर उन्हें नमस्कार किया था, मानों वे उँगलियाँ अब भी (उनके चरणों पर) दिखाई दे रही हों, यों राम ने (अपने पैरों में) वीर-कंकण पहने।

उन्होंने नक्षत्र-रूपी पुष्पों से भरे नीले आकाश के समान कवच को दृढता से अपने वक्ष पर धारण किया। क्या यह सोचकर ही वे प्रभु (कवच को) कसकर बाँध रहे हैं कि उनके श्रीवत्स से अंकित वक्ष पर से लक्ष्मी दूर हट गई हैं, अतः उन देवी को (कवच बाँधने से) कुछ दुःख नहीं होगा?

प्रभु ने कमल-समान अपने अरुण करों को उत्तम चर्मकृत आवरण से ढक दिया। वह दृश्य ऐसा था, मानों कल्पवृक्ष की शाखा पर काला सर्प लिपट गया हो।

अत्युज्ज्वल सूर्य के द्वारा अंधकार का नाश किये जाने पर विकसित होनेवाले अरुण कमल के पुष्प-दलों पर जैसे भ्रमर आसीन हों, वैसे ही, अंधकार में भी विकसित रहनेवाली (कमल-दल के समान) अपनी उँगलियों पर अंगुलित्राण पहन लिये।

संसार की विविध भाषाओं में स्थित उत्तम ज्ञान से पूर्ण अपार शास्त्र-समुदाय को जिन्होंने अधिगत कर लिया हो, ऐसे दोषहीन कवियों की जिह्वा से प्रकट होनेवाली वाणी के समान अक्षय रहनेवाले तूणीर को कंधे पर बाँध लिया।

उमड़नेवाली घनघटा के मध्य जैसे विद्युत् चमकी हो, वैसे ही (चमकनेवाले) अपने मनोहर ललाट पर उज्ज्वल कांति से पूर्ण वीर-पट्टी को बाँध लिया। कोमल वृंतों से युक्त पल्लव-सहित अतसी पुष्पों की माला के साथ तुलसी की माला एवं युद्धोचित 'तुम्बै' पुष्प की माला को भी धारण कर लिया।

यह विशाल लोक, उनमें स्थित चर-अचर सभी वस्तुएँ वही (परमात्मा) हैं। फिर भी, वह उनसे पृथक् एक मनुष्य के रूप में अवतीर्ण हुआ है। इस तत्त्व को हम यथा-स्थित रूप में नहीं जान सकते। अब प्रभु ने अपने हाथ में जो धनुष धारण किया है, क्या वह भी कोई लोकोत्तर वस्तु ही है?

चारों ओर से समुद्र से आवृत इस पृथ्वी के निवासी तथा स्वर्ग के निवासी सद्यो-विकसित पुष्पों को बिखेर रहे थे। इसी समय भीषण कपिसेना के साथ प्रभु यों शोभित हुए, जैसे काले समुद्र जैसी छविवाले नारायण, अपने शयन-स्थान क्षीरसागर के साथ ही प्रकट हुए हों।

प्रलयकाल में वे (विष्णु) रुद्र का रूप धारण करके सप्त लोकों को विनष्ट करते हैं। ऐसे रुद्र की समता करनेवाले तथा कपिसेना के पीछे दृढ धनुष धारण करके खड़े रहनेवाले अपने भाई (लक्ष्मण) के पास प्रभु जा पहुँचे।

ऐसे समय में दक्षिण दिशा का अधिपति (यम) अपना (मारण-) कार्य बड़ी शीघ्रता से करने लगा और राक्षस-रूपी सप्त समुद्र एवं विद्युत् के समान चमकनेवाले दाँतों से युक्त कपियों का समुद्र रणांगण-रूपी छोटे स्थान में घोर युद्ध करने लगे।

'यह दक्षिण है, यह उत्तर है'—ऐसी पहचान असंभव हो गई। सर्वत्र शवों की राशियाँ एकत्र हो गई थीं। कपियों के शवों की राशियाँ स्वर्ण-राशियों के समान थीं और राक्षसों के शवों की राशियाँ उपल-राशियों के समान।

सिर कट गये। आँतें निकल पड़ीं। रथ के समूह विध्वस्त हुए। घोड़े और उनके सवार टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गये। शवों की राशियों से भरकर पृथ्वी ऊँची हो गई। रुधिर का प्रवाह सर्वत्र बह चला।

भीषण वानरों ने अपने दोनों हाथों से सारी शक्ति लगाकर मारा; तो बलवान् टाँगों एवं झुके खुरों से युक्त घोड़े टुकड़े-टुकड़े हो गये। घूँसों की मार खाकर राक्षस शिथिल होकर मर गये। रक्त का प्रवाह ऐसा बहा, जैसे दीर्घ बाँध से रोके जाने पर जल उमड़ चलता है।

उस समय, रावण ने देवताओं को भी भयत्रस्त करते हुए, अपनी तीक्ष्ण आँखों से अग्निकण उगलते हुए, अपने धनुष की डोरी को, दृढता से अपने हाथ में बँधे चर्मावरण के द्वारा भली भाँति खींचकर छोड़ा। उसके टंकार को सुनकर वानर भयभीत होकर सब दिशाओं में बिखरकर भागने लगे।

वज्रध्वनि होने पर जैसे सर्प विकल होकर भागकर छिप जाता है, वैसे ही कुछ वानर (उस टंकार को सुनकर) अस्त-व्यस्त होकर बड़ी घबराहट के साथ भागे। कुछ वानर मर गये। कुछ वानर भय से स्तब्ध होकर खड़े रहे। कुछ वानर रोने लगे। कुछ वानर सप्राण ही युद्धभूमि में गिरकर लोटने लगे।

युद्ध के उत्साह से रावण ने धनुष की डोरी को खींचकर ऐसा टंकार निकाला कि नीलवर्ण आकाश में भी घाव पड़ गये। यदि वर्णन करें, तो (कहना पड़ेगा कि) राक्षस-कुल के लोग भी उस टंकार से भय-विकल हो उठे। तो, अब वानरों की दशा के बारे में क्या कहें?

अपने कर्त्तव्य का विचार करके अपने स्थान पर दृढ खड़े रहनेवालों में एक विभीषण था, अनुजदेव (लक्ष्मण) थे एवं कपिकुल के राजा (सुग्रीव) थे। अन्य सब चारों दिशाओं में भाग गये। स्वर्गवासी भी कहीं जाकर छिप गये।

लोग कहते हैं कि रावण ऐसा है कि यदि वह चाहे, तो पृथ्वी को भी खोदकर उठा सकता है। उसने धनुष के टंकार से विश्व को भय-विकंपित कर दिया। स्वर्ग के देवताओं ने उस टंकार को यों सुना, मानों युगांत में जिस समय प्रलय का प्रवाह उमड़कर सारे विश्व को डुबो देता है, उस समय होनेवाले वज्र की ध्वनि को ही वे सुन रहे हों। अतः, रावण ने स्वर्गवासियों पर भी करुणा नहीं की।

उस समय, कपिकुलराज ने उग्र वज्र के समान एक ऊँचे पर्वत को उठाकर रावण पर फेंका। अपार अग्नि-ज्वालाओं को उगलता हुआ जब वह पर्वत-शिखर आया, तब राक्षसराज (रावण) ने एक ही शर से उसे धवल वर्ण भस्म में परिवर्त्तित कर बिखेर दिया।

जब वह बड़ा पर्वत, पराक्रम से भरे राक्षस-राज के शर से विनष्ट तथा चूर-चूर

होकर सब दिशाओं में बिखर गया, तब वानरराज (सुग्रीव) ने आँखों से अग्नि उगलते हुए अपने हाथों से एक बड़े वृक्ष को यों उखाड़ लिया, ज्यों पृथ्वी का पेट ही चिर गया हो।

रावण ने सुग्रीव के हाथ के वृक्ष को अनेक बाणों से काटकर उसके सहस्र से भी अधिक टुकड़े करके बिखेर दिया। इतने में सुग्रीव ने अपने पहले उठाये पर्वत से भी एक बड़े पर्वत को उठाकर उसपर फेंका।

रावण ने उस पर्वत को भी एक शर से काटकर बिखेर दिया। फिर, सब दिशाओं के लोगों को भयभीत कर भगाते हुए अपने विजयप्रद धनुष को झुकाकर एक दृढ बाण सुग्रीव के वक्ष में इस प्रकार मारा कि उसकी नोंक भीतर धँस गई।

उस तीक्ष्ण बाण के लगने से सुग्रीव विचलित हो गया। उसके विकल होते ही पश्चिम के द्वार पर स्थित हनुमान् एक पल में उत्तर द्वार पर आकर सुग्रीव से यों मिल गया, ज्यों वह पहले से ही सुग्रीव के साथ ही खड़ा रहकर सब वृत्तांत जान गया हो।

'हे अति बलशाली राक्षस ! सुग्रीव के सँभलने तक क्या तू मुझसे युद्ध कर सकेगा ?'—यों कहकर वायुपुत्र ने आँखों से अग्नि उगलते हुए देखा। फिर उसी स्थान से एक पर्वत को उखाड़कर साकार वेग जैसे अपने हाथों से 'आओ ! आओ !' कहकर ललकारनेवाले रावण पर फेंका।

देवों को दुःख देनेवाले (रावण) ने देखा कि वह पर्वत गगन के मेघों को जलाता हुआ, अग्निकण बिखेरता हुआ आ रहा है। तब अति तीक्ष्ण दस बाण चुनकर बड़ी शीघ्रता से चलाये और उस पर्वत के सहस्रों टुकड़े कर डाले।

हनुमान् ने पुनः एक पर्वत को उठाकर अपने सारे भुजबल को लगाकर वेग से फेंका। वह (पर्वत) गगन से गिरनेवाले वज्र से भी अधिक वेग से, रावण के झुके धनुष से निकलनेवाले बाणों के सम्मुख जाकर उस की विजयशील भुजा पर स्थित वलय के साथ टकराकर उस (वलय) के साथ स्वयं चूर-चूर हो गया।

कठोर नेत्रोंवाला रावण किंचित् खिन्न हुआ। फिर, यह देखकर कि हनुमान् एक दूसरे मेघावृत पर्वत को उखाड़ रहा है, उसके शरीर-भर में जैसे आग-सी लग गई। क्रुद्ध होकर अपने दृढ धनुष को झुकाकर उसने हनुमान् के कंधों पर और वक्ष पर दस बाण यों छोड़े कि वे (हनुमान् की देह में) छिप गये। किन्तु, हनुमान उनको सहता हुआ खड़ा रहा।

'अहो ! और कौन ऐसा सह सकता है ?'—यों कहकर सारे देवता हनुमान की प्रशंसा कर उठे। तब हनुमान् ने पुनः वहाँ स्थित एक बड़ेवृ क्ष को समूल उखाड़ा घुमाकर फेंका। उसके आघात से लंकेश के सारथि का सिर चूर-चूर हो गया और अनेक राक्षस मर मिटे।

तब एक दूसरा सारथि उस (रावण) के रथ पर आसीन हुआ। तरंगायमान समुद्र जैसे क्षुब्ध हो उठा हो, यों विक्षुब्ध होकर रावण ने सौ दिव्य शरों को हनुमान् पर चलाया। हनुमान् की देह से रुधिर नदी के जैसे वह चला, जिससे वह बहुत पीडित हुआ।

तब रावण बोला—तुम लोग मुँह से मनमानी बकते हुए, पत्थरों, पेड़ों, हाथों

और क्षुद्र रोमों से आवृत कंधों तथा धवल दाँतों से उछल-उछलकर युद्ध करते हो, ऐसे नीच वानरों से युद्ध करने से मेरा अपयश होगा, यही सोचकर मैं अबतक युद्ध में नहीं आया था। यदि मैं एक धनुष को लेकर युद्धभूमि में खड़ा रहूँ, तो क्या तुम, वानर, यहाँ से जीवित लौटकर जा सकते हो?

यों कहकर दंष्ट्राओं से भरे अपने फटे मुँहों से अग्नि उगलता हुआ वह हँस पड़ा और प्रलयकालिक वज्रों के समान, स्वर्णमय तथा अति तीक्ष्ण सहस्रकोटि बाण बरसाये। तब सारी कपिसेना प्रभंजन से आहत समुद्र के समान विचलित होकर तितर-बितर हो गई।

रावण के धनुःकौशल एवं वानरों की दुर्दशा को देखकर लक्ष्मण ने यह सोचा कि 'यह रावण अब मेरे शर का लक्ष्य बनने योग्य है। मैं अभी इससे जा भिड़ूँगा' और एक धनुर्धारी मेरु के जैसे आ पहुँचे।

समस्त पृथ्वी के शासक (दशरथ) के कुमार (लक्ष्मण) ने धनुष का टंकार किया। उस समय भयंकर मायाकृत्यों में चतुर राक्षसों की क्या दशा हुई—इसका वर्णन क्या हम कर सकते हैं? सारा संसार यह सोचकर काँप उठा कि यह प्रलयकाल में वर्षा करनेवाले मेघ का ही गर्जन है। राक्षसों की शूरता सिंह की दहाड़ सुननेवाले गज के पराक्रम के समान हो गई।

बलवान् रावण ने यह देखकर कि (उस टंकार से) उसके निकट स्थित वीरों के मन भी भयत्रस्त हो रहे हैं, महावीर (राम) के अनुज के, यम की कठोर भौंहों के जैसे धनुष से उत्पन्न टंकार को सुनकर उसने सोचा—'क्या यह भी एक मनुष्य ही है! अहो!' और अपने मुकुट को ऊपर की ओर उठा लिया।

जैसे गिरनेवाली वर्षा की बूँदें अनेक स्थानों पर बिखर जाती हैं, वैसे ही (लक्ष्मण के) शर दृढ रथों पर, मत्तगजों पर, फाँदकर जानेवाले घोड़ों पर और धवल दंतों से युक्त राक्षसों पर बरस पड़े। सर्वत्र रुधिर का समुद्र उमड़ चला।

(लक्ष्मण के) शर पर्वतों से भी बड़े आकारवाले हाथियों के सुगंधित मद से भरे मुखों में जा लगते और (उनके शरीर को भेदकर) उनकी पीछे की टाँगों में भर जाते। फिर (वहाँ से निकलकर वे बाण) उनके निकट खड़े वीरों के वक्षों को चीर डालते। वे बाण रथों की धुरियों को भेदकर यों निरंतर चलते रहते थे, जैसे अनेक युगों का समय बीत जाने पर भी वे नहीं रुकनेवाले हों।

लक्ष्मण के बाणों ने शत्रुओं के हाथियों, रथों और अश्वों को विध्वस्त कर दिया। व्यूह बनाकर खड़ी रहनेवाली दस करोड़ राक्षस-सेना ने सब प्रकार के शस्त्रों का प्रयोग करके (लक्ष्मण के साथ) युद्ध किया।

शस्त्र-प्रयोग करनेवाले राक्षस यह सोचते थे कि यदि हमारा शत्रु यह मनुष्य हमारे प्रभु रावण के निकट आ जायगा, तो हमारा पराक्रम व्यर्थ हो जायगा। यह सोचकर वे एक नई उमंग से भरकर लक्ष्मण के सामने उसी प्रकार आ जुटे, जिस प्रकार याचक के फैलाये हाथ के सामने 'नाहीं' न करनेवाले दानी के सामने दरिद्र याचक आ जुटते हैं।

लक्ष्मण ने बाणों की वर्षा करके राक्षसों द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों को काट दिया

और जो न कटे, उन शस्त्रों को सह लिया। अब यम भी प्राणियों को खाते-खाते ऊब गया। शवों की राशियाँ सर्वत्र बिखरी पड़ी थीं, जो रक्त-प्रवाह को समुद्र में जाकर गिरने से रोक रही थीं।

(लक्ष्मण के शरों से राक्षसों के) सिर कटे। पद समूल कटे। कंधे-रूपी पर्वत कटे। सुन्दर मालाओं से भूषित वक्ष कटे। दाँत कटे। शूलों के फल कटे। विजयप्रद धनुष कटे। सब राक्षस चारों ओर छितराकर भागने को बाध्य हो गये। यों उनका सारा युद्ध-कौशल मिट गया।

रथ विध्वस्त हो गये। घोड़े विध्वस्त हो गये। रक्त नेत्रोंवाले मेघसदृश हाथी विध्वस्त हो गये। वीरों के कंकण विध्वस्त हो गये। कंठों में पहने हार विध्वस्त हो गये। धनुष विध्वस्त हो गये। उन राक्षसों के द्वारा अबतक प्राप्त किये गये सारे यश विध्वस्त हो गये।

सर्प के समान क्रोधी तथा निडर पदाति-वीर गिरे। उनपर अश्व गिरे। उनपर हाथी गिरे। उन (हाथियों) पर सुन्दर रथ गिरे और उन रथों पर भारी सिर गिरे। रुधिर से भरे उस युद्धक्षेत्र में अब और कहीं कुछ गिरने के लिए स्थान नहीं रह गया।

जब लक्ष्मण अतिवेग से बाण चला रहे थे, तब देवता भी यह नहीं जान सके कि वे (लक्ष्मण) कब बाण निकालते हैं और कब धनुष पर चढ़ाकर उसे छोड़ते हैं। वे (देवता) यह भी नहीं देख पाते थे कि वे शर कब लक्ष्य पर जाकर लगते हैं। उन शरों के लगने से ढेर लगे शवों को ही वे देख पाते थे।

क्रूर राक्षसों के द्वारा उपयोग में लाये गये तथा भयंकर यम को भी भयभीत करने-वाले करवाल, शूल, भाले, धनुष आदि विजयप्रद शस्त्र सभी एक-एक के सौ-सौ टुकड़े होकर छितरा गये। कोई शस्त्र ऐसा नहीं था, जो न टूटा हो।

युद्ध में आये पर्वताकार असंख्य हाथी, रोष से भरे घोड़े, पताकाओं से युक्त रथ, क्रोधपूर्ण शरभ एवं सिंह तथा अन्य प्राणी थोड़ी देर भी संचरण नहीं कर पाये। सब नीचे गिरकर तड़पने लगे।

राक्षसों के सिर कटे और प्राण हरे गये। शेष सेना भागकर कहीं छिप गई। राक्षस-सेना परास्त हुई। रामचन्द्र के अनुज का धनुष 'वाहै' पुष्पमाला से अलंकृत हुआ।[1] लंकेश का मन-रूपी प्रलयकालिक अग्नि भड़ककर जल उठी।

लगाम-लगे पवन जैसे अश्व जिसमें जुते थे, वैसे रथ को शीघ्रता से चलाता हुआ लंकेश, लक्ष्मण को देखकर क्रोधाग्नि उगलता हुआ उनके सामने आकर खड़ा हुआ, तब लक्ष्मण भी उस (रावण) के निकट जाकर खड़े हुए जैसे क्रोधोन्मत्त यम हो।

'मैं (देवी की) रक्षा में निरत था। किन्तु, तू कपट से मेरी रक्षा को पारकर (सीता का हरण कर) आया। अब तू मुझसे कैसे बच सकता है?'—यों कहते हुए और

१. प्राचीन तमिल-साहित्य में वर्णन मिलता है कि युद्ध में विजय पानेवाला व्यक्ति 'वाहै' नामक पुष्प की माला पहनते थे। —अनु०

धूम्रमय निःश्वास भरते हुए लक्ष्मण अपने धनुष पर अग्नि के समान एवं सिर उड़ाकर ले जानेवाले बाणों का संधान करके छोड़ने लगे।

रावण ने अपने तीक्ष्ण बाणों से लक्ष्मण के शरों को बीच में ही काट डाला, मानों उन्हें शाप दिया गया हो कि 'ये शर मेरे पास न आकर बीच में ही कट जायँ।' निद्रा को त्यागनेवाले (लक्ष्मण) ने यह कहते हुए कि 'वे बाण लघु थे। इसीलिए, तुम उनको काट सके। अब इनको काट सको, तो काटो'—प्रलयकालिक वर्षा के समान शर बरसाये।

तब धर्म को भूलनेवाले (रावण) ने बलवान् हाथी के समान लक्ष्मण के द्वारा प्रयुक्त, वर्षाकालिक जलधारा के समान बरसानेवाले बाणों को काट दिया। और, उन (लक्ष्मण) के हिलनेवाले तूणीर को काटकर गिरा दिया।

इसी समय हनुमान् आश्वस्त होकर अग्निमय आँखों से देखता हुआ और यह कहता हुआ कि अब तू मायायुद्ध न कर सकेगा—उनके बीच में आया और सूँड़वाले हाथी के समान रावण के रथ के सम्मुख खड़ा हुआ और बोला—यदि तुम इस युद्ध से बच गये, तो भी आगे और भी युद्ध होनेवाले हैं। मेरी ये बातें सुनो—

तूने अशिथिल बल से त्रिलोक को जीता है। सब दिशाओं में विजय-यात्रा की है। वीर-कंकणधारी इन्द्र के यश को मिटाया है। इतने बड़े-बड़े कार्य तू कर चुका है। फिर भी, अब तेरा विनाश निकट आ गया है।—यह कहकर, त्रिभुवन को नापनेवाले त्रिविक्रम के समान विशाल रूप धारण करके (हनुमान्) खड़ा हुआ।

लोकों को नापनेवाले त्रिविक्रम के चरण के नाम से प्रसिद्ध वह (हनुमान्) अब यों बढ़ गया, ज्यों वह सब लोकों को व्याप्त करके उठे हुए उस त्रिविक्रम का ही रूप ले रहा हो। हनुमान् ने अपना हाथ उठाया, तो वह ऊपर के लोकों में जा पहुँचा। फिर, क्रूर रावण से कहा—देख!

हनुमान् बोला—हे रावण! तूने धनुष आदि भयंकर शस्त्रों का अभ्यास भली भाँति किया है। बीस भुजाएँ रखता है। युद्ध करने के अपार बल से संयुत है। हे बड़े पराक्रम से युक्त वीर! अब युद्ध में मेरे सम्मुख खड़ा रह!—यह कहकर उसने अग्निमय निःश्वास भरे।

फिर हनुमान् बोला—'तू बड़ा पराक्रमी बनकर मेरे सम्मुख खड़ा है। यह भी कोई बात है? अब देख, अपने करवाल के पौरुष को, समस्त लोकों को मिटानेवाले अपने बल को, अपने पौरुष को, अपने भुजबल को—मैं तेरे यश-सहित सबको अब एक ही घूँसे से मिटा देता हूँ।

अधिक क्या कहूँ? तेरा पराक्रम विशाल कैलास से तथा रक्तवर्ण होकर जलती अग्नि के समान आँखों से युक्त दिग्गजों से किंचित् भी कुंठित नहीं हुआ। हे अनेक भुजाओं-वाले! पराक्रमशाली! अब तू क्या एक वानर के एक हाथ के थप्पड़ को सहने में समर्थ है?

हे पर्वताकार भुजाओंवाले! मेरे मुक्के को खाकर भी यदि तू सप्राण खड़ा रहेगा, तो तू अपने हाथों की पंक्ति से जोर से मुझे मार सकेगा। यदि उन आघातों से न मरूँ और जीवित रहूँ, तो भी मैं तुझसे नहीं लड़ूँगा, हार मानकर लौट जाऊँगा।

मेघ से भी अधिक काले रंगवाले रावण ने हनुमान् की बातों की प्रशंसा करके और फिर उसे देखकर कहा—हे बलवान्। तू ने वीरों के योग्य वचन कहे। मैं अपनी समता नहीं रखता। मेरे सम्मुख खड़ा रहनेवाला तेरे अतिरिक्त और कौन हो सकता है? (भले ही तू मुझे नहीं जीत सका; फिर भी तू मेरे सामने युद्ध में खड़ा रह सका है। इससे) सारा संसार तेरी प्रशंसा करेगा।

हे प्रभावशाली! तू अकेला है। तेरे पास कोई शस्त्र नहीं है। तूने मेरे कुल के लोगों को मार डाला है। बड़ी सेना के साथ रथ पर आये हुए भयंकर धनुष को लिये हुए मेरे जैसे वीर के सम्मुख तू दृढता के साथ खड़ा है। तेरी समता कौन कर सकता है?

पागल व्यक्ति के अतिरिक्त तीनों भुवनों में दानवों और देवों में भी कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो युद्ध में मेरे सामने आ सके। तू अपने स्थान से विचलित हुए बिना यह कह रहा है कि 'मेरे वक्ष पर घूँसा मारो।' तेरे साहस के विषय में क्या कहूँ?

युद्ध करने के लिए मेरे पास बीस हाथ हैं। सारे संसार पर विजय पाने से प्राप्त यश भी है। सूँड़वाले बड़े हाथी के बल को भी मंद करनेवाले पराक्रम से युक्त हे वीर! तेरे तो दो ही हाथ हैं। तू कह रहा है कि मुक्का मार। (एक नीच वानर रावण जैसे पराक्रमी राक्षस से, ऐसी बात करे—) अब इसके बाद मेरे विजय का क्या प्रयोजन है! अतः, तुझसे युद्ध करना मेरे लिए उचित नहीं है।

सब दिशाओं में विजय प्राप्त करके मैंने जो यश कमाया था, वह सब, अब तुझसे प्राप्त अपयश से, मिट गया। इससे बढ़कर और क्या अपयश चाहिए? मेरे प्राण-समान अक्षकुमार को तूने धरती पर पटककर, रगड़कर मारा। तब जो रुधिर बहा, वह अबतक नहीं सूखा है। ऐसा तू मेरे सामने खड़ा होकर ये बातें कह रहा है।

मुझे ऐसा अपयश प्राप्त हुआ है, इसलिए तू वीरवाद करता हुआ ये बातें कह रहा है। ऐसा कहना स्वाभाविक ही है। कालगति ने मुझे छोटा बना दिया है। अपयश की ग्लानि से मैं युद्ध न करके सिर झुकाये खड़ा हूँ। आह! संसार के देखते हुए तू मेरे सामने आगे बढ़कर मुक्का चला।—पापकृत्य को नहीं छोड़नेवाले रावण ने यों कहा।

यह वीरता भी भली है!—यों कहकर हनुमान् ने हर्षनाद किया और झट (रावण के) रथ पर चढ़कर आँखों से चिनगारियाँ बिखेरते हुए, उसके विशाल वक्ष पर अपनी वज्रमय मुष्टि से ऐसा प्रहार किया कि उसके हार एवं कवच चूर-चूर होकर गिर पड़े और उसकी देह पर बड़ी चोट आई।

हनुमान् के उस मुष्टि-आघात से पर्वत भी चूर-चूर होकर बालूकण जैसे हो गये। रावण की आँखों से अग्निकण झर पड़े। उसके मस्तिष्क दही के लच्छे के जैसे झर पड़े। उसके सिर खड़े नहीं रहने के कारण झुक गये। राक्षसकुल के प्राण भी बिखर गये। बड़े-बड़े वानर भी अपने रोम एवं दाँत गिराने लगे। गगनतल से मेघ झर पड़े।

(वीरों के) धनुषों से दीर्घ डोरियाँ झर गईं। समुद्र उमड़कर तीर को पार कर बह चला। बड़े-बड़े पहाड़ों से प्रस्तर-खंड झर पड़े। सूर्य और चन्द्र की किरणें झर

पड़ीं। मत्तगजों के दंत झर पड़े। सब अपने हथियार नीचे गिराकर खड़े हो गये। पराक्रमी वीर रावण के बाण से सर्वत्र अग्नि-ज्वालाएँ फूट पड़ीं।

वीर-वलयधारी रावण के कलंक-भरे तथा अजंन-समूह की छटा से युक्त वज्रमय वक्ष में, पूर्वकाल में युद्ध करते समय दिशाओं में स्थित रोषपूर्ण हाथियों के जो कठोर दाँत गड़कर टूट गये थे और (उस वक्ष में ही) रह गये थे, वे अब हनुमान् की मुष्टि के आघात से उसकी पीठ पर से यों निकल गये, ज्यों उसका यश ही निकल गया हो।

उसके टूटे कवच के उज्ज्वल रत्न यों छितरा गये, जैसे गगन से नक्षत्र झर पड़े हों। उस समय, धर्म की हानि करनेवाला वह (रावण) आँखों से अग्निकण बरसाता हुआ खड़ा रहा। उसके अन्तर में संचरण करनेवाली प्राणवायु स्थिर हो गई और वह, यों लड़खड़ा गया जैसे मेरुपर्वत हिल उठा हो। वह मूर्च्छित हो गया।

वह दृश्य देखकर स्वर्गवासी आनन्द-ध्वनि कर उठे। हनुमान् पर सुगन्धित कोमल पुष्पों को बरसाकर उसको आशीर्वाद देने लगे। राक्षस पसीना-पसीना हो गये। वानर आश्चर्य एवं आनन्द से भरकर यह सोचते हुए कि 'इस (हनुमान्) ने रावण के विजय को मिटा दिया' नाचते हुए पुलकित हो उठे।

(देह में रहनेवाली) अग्नि एवं प्राणवायु की गति को साधना से जाननेवाले योगी लोग जिस प्रकार 'परकाय-प्रवेश' की शक्ति से दूसरी देह में प्रविष्ट होकर, पुनः उससे बाहर निकलकर अपने पूर्व शरीर में ही प्रवेश करते हैं, ऐसे ही रावण की प्रज्ञा भी लौट आई।

रावण ने प्रज्ञा प्राप्त की, पर वह कुछ बोल न सकने के कारण उसाँस भरता एवं अग्निमय दृष्टि से घूरता हुआ कुछ क्षण तक खड़ा रहा। फिर, अपना उपमान नहीं रखनेवाले हनुमान् के सामने आकर बोला—'हे मुझे दुःख देनेवाले! अब तू मुझसे दिये जानेवाले भाग्य को प्राप्त कर।' फिर बाँस के समान भुजावाले हनुमान् से यों कहा—

हे वीर! शक्ति नामक कोई वस्तु है, तो वह तुझमें ही है। तुझे देखने पर अन्य सब वीर नपुंसक ही लगते हैं। मैंने सप्तलोकों पर विजय पाई है। ब्रह्मदेव भी यदि मेरे सम्मुख आकर मुझे विचलित करने का प्रयत्न करें, तो भी मैं विचलित नहीं होता। ऐसा मैं तुझसे शिथिल पड़ गया। हे बलवान्! तूने जैसे मुझपर विजय प्राप्त कर ली है।

मुझे अब एक बात कहनी है। जैसे पर्वत पर वज्र गिरे, वैसे ही तेरे वक्ष पर मेरे एक हाथ का आघात होनेवाला है। यदि तू उससे जीवित रहेगा, तो समझना चाहिए कि इस सृष्टि में तेरे अतिरिक्त और कोई जीवित रहनेवाला नहीं होगा। तू चिरंजीवी होगा। तेरा कोई शत्रु भी नहीं होगा—यों रावण ने कहा।

अपने पराक्रम से शत्रुओं को मारनेवाला तथा पुष्ट भुजाओंवाला हनुमान्, रावण के सामने जाकर यह कहा कि 'तू प्राणहीन होकर अभी तक बोल रहा है, अतः तूने मुझे हरा ही दिया। अभीतक तेरी दशा अच्छी ही है। ले, तू अपना ऋण चुका ले।—यह कहकर अपना वक्ष फैलाकर खड़ा हो गया।

तब रावण ने अपने अनेक दीर्घ मुँहों को बंद करके, दाँतों को पीसते हुए, आँखों से

चिनगारियाँ निकालते हुए, बड़े क्रोध के साथ, अपने हाथों को यों ऐंठकर कि दिशाएँ भी फट जायँ, एक मुष्टि को अपने पर्वताकार कंधों से ऊपर ले जाकर सम्मुख खड़े हनुमान् के वक्ष पर बड़े जोर से मारा।

जब प्रलयकाल में गंभीर समुद्र उमड़कर विशाल धरती को डुबो देता है, उस समय भी जिसका विनाश नहीं होता, ऐसा वह महावीर, बलवानों से भी बलवान् हनुमान्, छल-भरे हृदयवाले वीर-कंकण से भूषित क्रूर रावण के मुष्टि-प्रहार से यों लड़खड़ा गया, जैसे महान् रजताचल ढीला होकर हिल उठा हो।

तब देवों के लोक विचलित हुए। धर्म विचलित हुआ। सत्य-वचन विचलित हुआ। सद्‌गुण विचलित हुआ। यश के साथ श्रुतियाँ भी विचलित हुईं। नीति विचलित हुई। करुणा एवं तपस्या भी विचलित हुईं।

हनुमान् को मूर्च्छित होते देखकर, वहाँ जितने वानर-सेनापति खड़े थे, उन सबने यह सोचकर कि 'इस संकट के समय में हमारा कर्त्तव्य यही है', प्रत्येक ने एक-एक पर्वत लाकर, जिससे आकाश में कोई रिक्त स्थान नहीं रह गया, कुछ विचार करने के पूर्व ही (अर्थात्, अतिशीघ्र ही), रावण की ओर फेंका।

समान भुजबल से युक्त उन वानरों ने युगांत में संसार को मिटाने के लिए उमड़नेवाले गगन में सर्वत्र भरे मेघों के समान दशशत कोटि संख्या से भी अधिक हिमावृत पर्वतों को उस रावण पर फेंका। उससे देवता भी हट गये।

दर्प से भरे वानरों के फेंके पर्वत, गगन में पर्याप्त स्थान नहीं होने से, एक दूसरे से टकरा जाते और आगे न बढ़ सकने से वैसे ही खड़े रहते। सूर्य भी अदृश्य हो गया। सारा संसार अंधकार से घिर गया। देवों ने समझा कि अब राक्षस मिट गये।

वे पर्वत एक दूसरे से टकराकर टूटने लगे। उनसे वज्र-जैसे शब्द निकले। अग्नि-ज्वाला के समान बिजलियाँ बिखर गईं। उन पर्वतों में स्थित रत्नों की कांति से इन्द्र-धनुष की आभा प्रकट हुई। पर्वतों के निरंतर गिरते रहने से वे बड़ी वर्षा की समता करने लगे।

उन पर्वतों से राक्षसों की विशाल सेना अस्त-व्यस्त होकर भागी। गगन के नक्षत्रों के साथ विमान टूटकर गिरे। अग्निकण झर पड़े, जिनसे समुद्रों का जल सूख गया। उन सूखे समुद्रों में जो झुलसी वस्तुएँ दिखाई पड़ीं, वे राक्षसों की जली हुई आँखों के समान थीं।

वानरों को यों पर्वत फेंकते देखकर रावण रोष से भर गया। तब वानरों को रोकनेवाला तथा देवों के यश को अपने वश में करनेवाला उसका प्रभावशाली धनुष झुक गया। उससे ऐसी ध्वनि निकली, मानों पृथ्वी टूट गई हो। रावण के उस धनुष से असंख्य बाण निकलकर उन पर्वतों को काट दिया।

रावण के अग्निमय बाणों के लगने से वानरों के फेंके बड़े पर्वत यों जलकर भस्म हो गये कि उन पर्वतों पर के बाँस विध्वस्त हुए। हाथी विध्वस्त हुए। साँप विध्वस्त हुए। शरभ एवं व्याघ्र विध्वस्त हुए। घने वृक्ष भी जलकर विध्वस्त हो गये।

देवता रावण को देखकर यह कहते हुए काँप उठे कि 'अहो! इसके वाण कैसे चल रहे हैं!' 'अहो! एक-एक पर्वत के लाख-लाख टुकड़े हो रहे हैं!' 'अहो! ये पर्वत एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर हो रहे हैं'! 'अहो! इस राक्षस ने कैसा धनुःकौशल प्राप्त किया है।'

वानरों ने यह सोचकर कि आज रावण की शक्ति को मिटा देंगे, जो पर्वत फेंके, उनको रावण के बाणों ने चूर-चूरकर डाला। पर्वतों की धूलि दिशाओं में फैले समुद्रों में जा गिरी और वे समुद्र पट गये। युद्ध-रंग से उठी धूलि से वीरों की देह भर गई और (उन वीरों की देह से) बहनेवाले रुधिर से वह धूलि धुल गई।

रावण ने क्रोध के साथ यह विचार करके कि 'अभी मैं इन वानरों को एवं दोनों मनुष्यों को मिटा दूँगा।' अपने दसों बायें हाथों में दस दीर्घ धनुष लेकर दीर्घकाल से बरसनेवाली वर्षा के समान अग्निमय बाणों को निरंतर बरसाया।

दसों धनुषों से, अपने दसों हाथों से रावण ने सहस्र वाण छोड़े, जिन बाणों से गगन, भूमि, समुद्र एवं सब दिशाएँ भर गईं।

रुधिर-धारा से वह रणभूमि यों लगा, जैसे संध्याकालिक आकाश हो। समुद्र एवं दिशाएँ शरों से पट गईं। वानर-सेना, पंक्तियों में मर-मरकर गिरी। उनके शव-रूपी ऊँचे पर्वतों पर मेघ आ ठहरे।

शर से विद्ध होकर 'नील' चल नहीं सका। 'अनिल' खड़ा नहीं रह सका। वाण से आहत 'गवय' अभी यम के अधीन नहीं हुआ (अर्थात्, अभी मरा नहीं)। अंगद यों पड़ा था कि यह आशंका होने लगी कि इसके प्राण बचेंगे या नहीं। जांबवान् शूल-समान वाण के लगने से निष्क्रिय हो गया।

अन्य बड़े-बड़े वीरों के भी वीरोत्साह एवं पराक्रम उनके मर्मस्थान में वाण लगने से मिट गये। चारों दिशाओं की वानर-सेना विध्वस्त हो गई। जो वानर जीवित बचे रहे, वे भाग खड़े हुए। यह सब दृश्य देखकर लक्ष्मण महान् क्रोध से भर गये।

रावण के द्वारा पृथक्-पृथक् प्रयुक्त शतकोटि एवं शत-शत सहस्र कोटि शरों को बहुत बड़े पराक्रम से पूर्ण रामानुज ने अपने शरों से दूर हटा दिया और उस क्रूर राक्षस (रावण) के दसों हाथों के दस धनुषों को काट डाला।

देवताओं ने हर्षध्वनि की। कर्म-बंधन से मुक्त ऋषियों ने सद्योविकसित पुष्प बरसाये। सद्धर्मों के ज्ञाता नाचने लगे। राक्षस खेद से भरकर अत्यन्त व्याकुल हो उठे। रावण लक्ष्मण के पराक्रम को देखकर आश्चर्यचकित हो गया।

तुम्हारा युद्ध-कौशल बहुत सुन्दर है। युद्ध का संचालन करनेवाली तुम्हारी वीरता भी सुन्दर है। तुम्हारी दृष्टि सुन्दर है। हस्त-गति सुन्दर है। शिक्षा सुन्दर है। तुम्हारी दृढता सुन्दर है।—यों कहकर और अपने हाथ बाँधकर रावण खड़ा हो गया और फिर बोला—तुम अनुपम हो।

उस दिन दंडकारण्य में बलवान् खर और उसकी सेना को मिटानेवाले उस काले रंग के मनुष्य (अर्थात्, राम), इन्द्र को अपने अतुल धनुःकौशल से स्वर्ग में पराजित करने-

वाले मेरे पुत्र (मेघनाद), एवं दृढ़ धनुष को हाथ में पकड़े हुए मुझ वीर के अतिरिक्त तुम्हारी समता करनेवाला और कौन है ?

फिर, रावण ने यह सोचकर कि यह (लक्ष्मण) बाण से निहत नहीं होगा, रोष से भरकर मन में निर्णय किया कि इसे आज ही मार देना चाहिए और ओंठों को दाँतों से दबाये, अपने पुष्ट हाथ से चतुर्मुख के द्वारा दिये गये शूल को प्रयुक्त किया।

रावण के द्वारा प्रयुक्त वह यम-समान शूल (लक्ष्मण के द्वारा प्रयुक्त) सब बाणों को जलाकर, भस्म-कण बिखेरता हुआ, अग्नि बरसाता हुआ, शीघ्र आया और घनी पुष्प-मालाओं से भूषित लक्ष्मण के वक्ष में धँस गया। उस शूल के प्रभाव को मन में जाननेवाले कुमार (लक्ष्मण) मूर्च्छित हो गिर पड़े।

विशाल वानर-सेना तितर-बितर होकर भागी। देवता विकल हुए। मुनि तड़प उठे। शत्रु राक्षस तरंगायित समुद्र से भी दुगुना गर्जन कर उठे। पृथ्वी-मंडल चक्र के समान घूम गया। सूर्य का प्रकाश मंद पड़ गया।

यह (लक्ष्मण) ब्रह्मा के द्वारा दिये गये शूल से डरा नहीं। इसके प्राण भी नहीं गये। अभी यह जीवित ही है।—यों निश्चयपूर्वक जानकर विषमय हृदय से युक्त रावण, लक्ष्मण को उठाकर ले जाने का विचार करके पृथ्वी पर पद रखता हुआ आया।

रावण उष्ण रक्त के प्रवाह में शीघ्र गति से आकर अपने बीस हाथों से लक्ष्मण की देह को दृढ़ता से पकड़कर यों उठाने लगा, ज्यों पूर्वकाल में शिवजी के उत्तम रजत-गिरि को उठाकर लज्जित होने के कारण वह अब (उस लज्जा से मुक्त होने के लिए) मेरुपर्वत को उठाना चाहता हो।

रामानुज इस तथ्य की प्रज्ञा से कि 'मैं पीतांबरधारी (विष्णु) का अंश हूँ', मुक्त नहीं थे। अतः, जिस (रावण) ने अष्टमूर्त्ति (शिव) के साथ रजतगिरि को उठाया था, वही अब इन (लक्ष्मण) की देह को नहीं उठा सका।

(लक्ष्मण की देह) को उठाने का प्रयत्न करनेवाला दशमुख एक स्थिर समुद्र की समता करता था। उसके दोनों ओर उठी हुई भुजाएँ तरंगों के समान थीं। कोमल तुलसी की माला से भूषित प्रभु (राम) का भाई उस समुद्र-मध्य स्थित चन्द्रमा के समान था।

रावण उन (लक्ष्मण) की देह को उठाकर ले जाने की इच्छा रखते हुए भी उसे न उठा सकने के कारण उष्ण निःश्वास भरता खड़ा रहा। इतने में एक ओर से हनुमान् झट वहाँ आया और अनायास ही लक्ष्मण की देह को उठाकर अति तीव्र वेग से चला गया।

एकत्र ज्ञानराशि से पूर्ण तथा सब गुणों से अति पवित्र बना हुआ हनुमान्, सौहार्द एवं अनन्य भक्ति नामक अनुपम आधार पाकर पुरुषोत्तम बने हुए लक्ष्मण को यों उठा ले गया, ज्यों कोई वानरी अपने बच्चे को उठा ले जाती है।

मोहग्रस्त चित्तवाले रावण के फेंके शूल से मूर्च्छित हुए पुरुषसिंह-सदृश लक्ष्मण कुछ क्षण में प्रज्ञा पाकर उठे। तब हनुमान् उस प्रभु के निकट गया, जो असत्य-रहित थे और जिनके कर, चरण, नयन आदि अंग कमल की समता करते थे।

जब हनुमान् वहाँ पहुँचा, तब रामचन्द्र हाथी पर आक्रमण करनेवाले भयंकर सिंह के समान युद्धभूमि की ओर चल पड़े। देव हर्षध्वनि कर उठे। उनपर पुष्पों की बड़ी वर्षा की। मांस-लगे शूल से युक्त रावण भी अपना रथ चलाता हुआ आया।

जब युद्धकुशल राक्षस रावण रथ पर आ रहा था, तब रामचन्द्र अकेले ही पृथ्वी पर पद रखते हुए जा रहे थे। यह दृश्य देखकर वीर-कंकणधारी हनुमान् भक्ति से उल्लसित होकर, यह विचार करके कि राम का इस प्रकार युद्ध करना संगत नहीं है, प्रभु के निकट आ पहुँचा।

पूर्वकाल में उन (विष्णु-रूपी राम) के द्वारा दिये गये शीतल गंगाजल को अपनी पावन जटा में धारण करनेवाले शिवजी,[1] यदि ऐसे युद्धक्षेत्र में, जहाँ क्रूरकर्मी राक्षस एकत्र हैं, उन कमल-समान चरणों को पृथ्वीतल पर चलते हुए देखकर भी यदि खिन्न न हों, तो क्या यह उचित होगा?

जिसका प्रतिकार न किया जा सके, ऐसा युद्ध करने में चतुर वह राक्षस एक शीघ्रगामी सहस्र अश्वों जुते रथ पर बैठकर आपका सामना करे और आप धरती पर खड़े-खड़े युद्ध करें—यह विलक्षण अकिंचनता का सूचक होगा। अतः, मैं यद्यपि अधम व्यक्ति हूँ, तो भी आपका मेरे कंधे पर आरूढ होना उचित होगा।—यों हनुमान् ने निवेदन किया।

प्रभु 'ठीक है! ठीक है!' कहते हुए हनुमान् के कंधे पर आरूढ हो गये, मानों कोई सिंह ऊँचे पर्वत पर आरूढ हुआ हो। देवता लोगों ने जयजयकार करते हुए पुष्प बरसाये। हनुमान् यों आनन्दित हुए, जैसे अपने वत्स को ले जानेवाली कोई गाय हो।

हनुमान्, जिसने वामन बनकर त्रिभुवन को नापनेवाले विष्णु के आकार का ज्ञान प्राप्त किया था, अब विस्मय एवं आनन्द से मुग्ध हो गया। गरुड, जिसने अनादि काल से (भगवान् का वाहन बनने का) अन्यों के लिए दुर्लभ अधिकार प्राप्त किया था, लज्जित हुआ। अनंत सर्प के फन काँप उठे।

हनुमान् समुद्र था। रामचन्द्र क्षीरसागर-मध्य स्थित विष्णु थे।—पर यह कहना भी उचित नहीं है; क्योंकि राम निद्रा नहीं कर रहे थे। तो, यह उपमान दे सकते हैं कि हनुमान् वेद की समता करता था और रामचन्द्र वेद-सम्मित उपनिषदों में प्रतिपादित ज्ञान-स्वरूप परमपुरुष की समता करते थे। इससे बढ़कर और क्या उपमान हो सकता है?

(रामचन्द्र का) अति सुन्दर वाहन बने हुए विजयी हनुमान् की विलक्षण महिमा का क्या वर्णन कर सकते हैं? वह हनुमान् ज्ञान में श्रेष्ठ ऋषियों से अध्ययनीय वेद को गम्य होनेवाली मूल-प्रकृति के समान था और उसपर आरूढ रामचन्द्र उस मूल-प्रकृति से परे स्थित परमपद के समान थे।

विशाल जलराशि-मध्य उत्पन्न सब अंडों को अपने उदर में समा लेनेवाले आर्य राम के लिए विविध भंगिमा से बायें और दायें घूमनेवाले मारुति के माला-भूषित स्वर्णमय कंधों की समता मेरु-शिखर से करना भी ठीक नहीं है।

---

१. हनुमान् शिवजी का अवतार माना गया है। अतः, हनुमान का मनोभाव शिवजी का ही मनोभाव कहा गया है।—अनु०

अपूर्व तपस्या-संपन्न ऋषियों ने आशीर्वाद दिये। धर्म-देवता अपने पावन हाथ उठाकर नाचने लगे। कैलास में स्थित शिव एवं ब्रह्मा प्रभृति देवता महान् युद्ध को देखने के लिए गगनतल में आकर भर गये।

महिमामय, अंजनवर्ण प्रभु ने युद्ध का संकल्प करके, कल्पनातीत प्रभाव से युक्त अपने अनुपम धनुष की डोरी से टंकार किया। वह ध्वनि, युगांत में पृथ्वी और गगन को अपने मुँह में डालकर निगल जानेवाले रुद्रदेव के हर्षनाद के समान थी।

(राम का धनुष्टंकार सुनकर) राक्षस और यक्ष यद्यपि प्राणहीन नहीं हुए, तथापि एक स्थान पर स्थित नहीं रह सके। घबराहट से उनके मुँह सूख गये और वे विकल हो चारों ओर भागते और थरथराते रहे। विशाल ब्रह्मांड की पंक्ति अस्त-व्यस्त हो उठी। भय से रहित शिव एवं ब्रह्मा के सिर काँप उठे।

उस समय, रावण ने सात ऐसे कठोर बाण एक साथ छोड़े, जो प्रलयकालिक भीषण अग्नि की समता करते थे, प्रवाल-समान वर्णवाले थे, समुद्र-जल को संपूर्ण रूप से पीने में समर्थ थे, सब दिशाओं को नापनेवाले थे, नीचे जाने पर धरती को एवं ऊपर जाने पर गगन को भेद सकते थे।

राम ने सात बाण चलाकर रावण के उन सातों बाणों को, एक-एक के सात-सात टुकड़े करके, बिखेर दिये। फिर, पाँच बाणों का संधान करके एक साथ प्रयुक्त किया, जो ऐसी ज्वाला उगलते चले, जिससे प्रलयकालिक अग्नि भी लज्जित हो जाय।

शरभ के समान शक्तिमान् रावण ने उन पाँच बाणों को अपने पाँच बाण चलाकर गगन में दूर हटा दिया। फिर, अपने धनुष की डोरी को अपने कंधे तक खींचकर धनुष को भली भाँति झुकाकर दस बाण छोड़े। वेदों में प्रतिपाद्य परमपुरुष राम ने दस बाण छोड़कर उन बाणों को हटा दिया।

रावण के दसों बाणों को राम ने काट डाला। उसके समीप में खड़े राक्षस-सेना-रूपी समुद्र ने बड़े क्रोध के साथ जो शस्त्र प्रयुक्त किये, उन सबको अपने बाणों से ही रोक दिया। उन राक्षसों ने जो पर्वत उखाड़कर फेंके, उनको चूर-चूर करके बिखेर दिया और राक्षसों के सिरों को काट-काटकर उनके पर्वत-से लगा दिये।

मीनों से भरे काले समुद्र-समान राक्षस-सेना ने मांस से युक्त जो शस्त्र फेंके, उनको, रावण द्वारा प्रयुक्त बाणों के साथ ही राम ने काटकर दूर बिखेर दिया, जिससे वे शस्त्र वानर-सेना पर न लगें और अपने बाणों से उन राक्षसों के सिर काट डालें।

हनुमान्, जो अपने ऊपर आरूढ रहनेवाले प्रभु के शरों से भी अधिक वेग से चल रहा था और मनोगति से भी अधिक वेग से चल रहा था, ऐसा संचरण कर रहा था कि जब (देखनेवाले) यह समझते थे कि वह धरती पर है, तभी एक क्षण में वह गगन में प्रकट होता। 'तुम्बै' पुष्पों की माला पहने रावण के प्रत्येक मुख के सम्मुख रहता। मन में व्याकुल होनेवाले वंचक राक्षसों की आँखों में घूमता।

कबंध नाच रहे थे। भूत उन कबंधों के साथ नाचते हुए गा उठते थे। अजस्र

रक्त-प्रवाह, बड़ी सूँड़ों एवं दाँतों के कटने से मरकर पड़े हुए हाथियों के झुंड एवं अश्वों को बहाते हुए समुद्र की ओर बह रहे थे।

(राम के) बाणों से सब रथ यों टूट गये कि उनके चक्र विध्वस्त हुए। धुरियाँ विध्वस्त हुईं। बिखरे केसरोंवाले घोड़े मर मिटे। काले हाथी-रूपी पर्वत एक-एक बाण लगने से निष्प्राण हो लुढ़क गये। रणांगण में फाँदकर संचरण करनेवाली अश्व-सेना भी लोट गई।

राक्षस रथ खोकर, भीषण धनुष खोकर, रक्त-वर्ण से युक्त मेघ के सदृश हाथियों को खोकर, दृढ रास से रोके जानेवाले अश्वों को खोकर, अपनी शूरता को खोकर, दृढ कवच को खोकर, अपना बल खोकर, पुष्पमाला को खोकर और अन्त में अपना सिर भी खोकर गिरते रहे।

सर्प के समान कृश कटिवाली राक्षस-स्त्रियाँ अपने पतियों के (अश्व, गज आदि के समान) सिरों के कट जाने से, अन्य अश्वों तथा गजों आदि के सिरों एवं अपने पतियों के सिरों में कुछ भेद न समझकर अश्वों एवं गजों आदि के सिरों को ही लाकर अपने पतियों के कबंधों के साथ मिलाकर उन देहों का आलिंगन करतीं और मूर्च्छित होकर मर जाती थीं।

राक्षसों के मुँह, हर्षनाद न करके मौन हो गये। उनकी आँखों ने अग्निमय दृष्टि को छोड़ दिया। उनके हाथों ने विविध अस्त्रों का प्रयोग करना छोड़ दिया। उनके चरणों ने धूलि उड़ाकर सब लोकों को आवृत करना भी छोड़ दिया। नगाड़े भी निःशब्द हो गये।

रामचन्द्र के शररूपी यम ने शत-सहस्र कोटि सिरों को काटकर गिरा दिया। इसी से शांत न होकर उसने अनेक कोटि वीरों का नाश किया। तब अपने रथ-सहित रावण अकेला ही बच रहा। यों उस (राम के शररूपी यम) ने राक्षसों को मिटाया।

प्रतापवान् धनुष धारण करनेवाले रावण ने देखा कि रथों, गजों, अश्वों तथा राक्षस-वीरों के झुंड सब दिशाओं में पड़े हैं, जिनसे कहीं कुछ रिक्त स्थान नहीं रह गया है। उनकी शव-राशियाँ मेघ एवं गगन को छू रही हैं। वह दृश्य देखकर वह सर्प के समान क्रुद्ध हुआ।

तब रावण ने, मनोहर डोरी को कंधे तक खींचकर और दृढ धनुष को एक क्षण में क्रमरूप में झुकाकर, दो अति दृढ बाण चढ़ाकर वीर प्रभु राम की दोनों भुजाओं पर यों छोड़े कि वे उनकी भुजाओं में गड़ जायँ।

कमल-समान नयनोंवाले राम ने मंदहास करते हुए एक त्रुटिहीन तीक्ष्ण बाण को चढ़ाकर धनुष को भली भाँति झुकाकर रावण के धनुष को यों काट डाला, ज्यों युगांत में प्रभंजन मंदर-पवत को काट रहा हो।

रावण ज्योंही एक दूसरा धनुष लेकर उसपर डोरी चढ़ाने लगा, त्योंही राम ने उसे भी अपने शर से तोड़ दिया। साथ ही, उज्ज्वल रत्नों से खचित (रावण के) रथ को खींचनेवाले, पवन के समान वेगवाले तथा कटे केसरोंवाले अश्वों के सिरों को भी काट दिया।

रावण पुनः एक भीषण शस्त्र उठाकर फेंकने को सन्नद्ध हुआ। किन्तु, इतने में राम ने एक ऐसा अग्निमय बाण छोड़ा कि उससे वह शस्त्र जलकर भस्म हो गया। साथ ही (रावण के) रथ के श्वेतच्छत्र और ध्वजा को भी काटकर गिरा दिया। एवं प्रकाश-पुंज से युक्त उस रावण के कवच को टुकड़े-टुकड़े करके बिखेर दिया।

उस समय रावण के लिए पृथक्-पृथक् रथ आये। किन्तु, राम ने अपने उज्ज्वल बाणों से उनको भी टुकड़े-टुकड़े करके बिखेर दिया। तब रावण यों क्रुद्ध हो उठा कि रक्त के कीचड़ से भरे युद्ध-क्षेत्र में लाल-लाल आँखोंवाला यम भी भयभीत होकर हाथ उठाये काँपता खड़ा रहा।

चमकते हुए विविध रत्नों से खचित रावण के मुकुट पर राम ने एक शर छोड़ा। उष्णकिरण सूर्य पर जैसे हनुमान् झपटा हो, वैसे ही उस शर ने अतिवेग से जाकर रावण के सिर पर स्थित स्वर्णमय किरीट को ले जाकर समुद्र में गिरा दिया।

रामचन्द्र का विजयप्रद तथा अग्निमय बाण ज्योंही लगा, त्योंही रावण के मुकुट के विविध रत्न समुद्र एवं दिशाओं में बिखर गये और उस राक्षस का किरीट यों गिरा, ज्यों प्रभंजन के आघात से मेरु-पर्वत का शिखर टूट गिरा हो।

देवाधिदेव राम के घातक बाण के द्वारा उड़ाया जाकर वह मुकुट शब्दायमान समुद्र में गिरा। वह दृश्य ऐसा लगा, मानों गोलाकार सूर्य-मंडल, उसे ग्रस्त करनेवाले सर्प राहु के साथ जाकर, शब्दायमान समुद्र में गिरा हो।

युद्ध में अबतक कभी विजय के अतिरिक्त पराजय न प्राप्त करनेवाला रावण कुछ कहने के पूर्व ही (अर्थात्, क्षणकाल में ही) मुकुटहीन हो गया और ऐसा लगा, जैसे चन्द्र-हीन रात्रि या रवि-हीन दिन हो।

अपूर्व रत्नों से खचित मुकुट को खोकर वह क्रूर राक्षस उस व्यक्ति के समान खड़ा था जो संसार में अत्यन्त प्रभावशाली होकर भी किसी वाग्मी कवि की निन्दात्मक कविता का विषय बनकर, अपना सारा यश खोकर खड़ा हो।

रावण नीची दृष्टि किये, कांतिहीन वदन एवं सिर के साथ, अपने बीसों रिक्त हाथों को यों लटकाये, ज्यों वे बरगद की जटाएँ हों, काला पड़कर, धरती को पैर की उँगलियों से कुरेदता हुआ खड़ा रहा और उसे देखकर सब लोग यह कहकर कि 'धर्म का तिरस्कार करनेवाले की यही दशा होती है' हर्षनाद कर उठे।

यों खड़े रहनेवाले उस (रावण) की दशा को देखकर राम ने सोचा कि यह रिक्तहस्त खड़ा है। इसे मारना उचित नहीं। फिर, यह कहकर कि 'आज से तुम्हारे पापकर्मों का अन्त होनेवाला है', आगे फिर कहा—

धर्म के बिना, अधर्म की सहायता से महान् युद्ध को जीतना देवताओं के लिए भी असंभव है। इस बात को मन में स्थिर कर लो। हे पातकी! अब तुम अपने नगर में बंधुजन के मध्य चले जाओ, मेरे हाथ से तुम अभी मारे जाते। फिर भी, तुम्हारे अकेलेपन को देखकर मेरे मन में करुणा उत्पन्न हो रही है। अतः, मैं वैसा कार्य नहीं करना चाहता।

हे नीच कृत्य करनेवाले! यदि तुम अभी युद्ध नहीं कर सकते, तो अपने कुल के

सब लोगों को एवं सब प्रकार के शस्त्रों को तथा जितनी सेना तुमने एकत्र कर रखी है, उन सबको साथ लेकर आओ। यदि युद्ध करने में समर्थ नहीं हो, तो कहीं जाकर छिप जाओ।

अब भी यदि तुम बंधन में रखी गई उस सीता देवी को छोड़ दो, सब देवताओं को उनके स्थानों पर स्थिर रख दो तथा अपने अनुज विभीषण को लंका का राज्य देकर उसके आदेशानुसार चलो, तो मैं तुम्हारे सिरों को अपने शर से काटे बिना छोड़ दूँगा।

यदि तुम वैसा न करना चाहो और सब देवताओं के साथ लेकर युद्ध करने की भी शक्ति तुममें हो, तो उस सारी शक्ति को लेकर आओ और यह कहते हुए कि मेरा सामना करो, मेरे साथ युद्ध करो तथा युद्ध में प्राण त्यागो। यदि वैसा करोगे, तो भी भला होगा। किन्तु अब अपने जीवन की आशा मत करो।

हे राक्षसराज! तुमने देख लिया कि तुम्हारी विशाल सेना उसी प्रकार विध्वस्त हो गई, जिस प्रकार प्रभंजन के चलने से 'पूलै' नामक पौधा नष्ट हो जाता है। आज तुम लौट जाओ। कल फिर युद्ध करने के लिए आना—यों कहकर उस कोशल देश के, जहाँ बाल-क्रमुक-वृक्षों पर 'वालै' नामक मछलियाँ उछलती रहती हैं, अधिप (राम) ने रावण पर करुणा करके उसे छोड़ दिया। (१–२५६)

●

अध्याय १५

कुंभकर्ण-वध पटल

दिग्गजों से भिड़नेवाला वक्ष, कैलास-पर्वत को उठानेवाली भुजाएँ, सामगान करनेवाली जिह्वा, जिसपर नारदमुनि भी मुग्ध हो गये थे, मालाओं से भूषित दस मुकुट, शिवजी का दिया हुआ करवाल तथा शौर्य—इन सबको युद्ध-क्षेत्र में ही छोड़कर रिक्त-हस्त[१] रावण अपने नगर को लौट चला।

युद्ध के योग्य पराक्रम से पूर्ण वीरों से कभी पराजित नहीं होनेवाले देवताओं को भी जिसने हराकर तीनों लोकों का शासन प्राप्त किया था, ऐसे वह रावण, उसका अनुसरण करके आनेवाले अपयश के साथ एवं भार बने हुए बीस हाथों के साथ, पैदल चलकर लंका-नगर में प्रविष्ट हुआ। सूर्य भी अस्ताचल में जा पहुँचा।

पराजय की लज्जा के कारण वह रावण किसी भी दिशा की ओर नहीं देख रहा था। अपने नगर के वैभव को नहीं देख रहा था। सम्मुख आये पुत्रों की ओर नहीं देख रहा था। स्वागत करने को आगत समुद्र-समान विशाल सेना की ओर नहीं देख रहा था। विकसित पुष्पों की मालाओं से भूषित उसकी पत्नियाँ पृथक्-पृथक् (रावण को)

१. वक्ष, भुजा आदि को युद्धभूमि में ही छोड़ने का यह भाव है कि रावण ने वक्ष, भुजा आदि के द्वारा पहले जो पराक्रम दिखलाया था, वह सब अब मिट गया। —अनु०

देख रही थीं। तो भी वह किसी की ओर न देखकर भूमि नामक स्त्री पर ही दृष्टि गड़ाये अपने प्रासाद में प्रविष्ट हुआ।

उस दिन, दिन में एक साथ विकसित कमल-वन के समान वदनों से युक्त रमणियों के कटाक्ष उसे करवाल के समान पीडादायक लगे। पुत्रों के वचन राम के बाणों के समान दुःखद लगे। नवग्रहों को जिसने कारागार में बंदी बनाकर रखा, ऐसे उस रावण को (रमणियों के) युगल स्तन आकर्षक नहीं लगे और वे स्तन उसके कंधे-जैसे ही लगे (अर्थात्, उसके कंधे जिस प्रकार पराक्रम-हीन होकर व्यर्थ भार बन गये थे, उसी प्रकार सुन्दरियों के स्तन भी उसके लिए आकर्षक न होकर भारमात्र दिखाई दिये)।

मंत्रणा में साथ देनेवाले (मंत्री), उज्ज्वल ललाट से शोभित पत्नियाँ, सेनापति, बंधु—सब मंत्र से चलनेवाली प्रतिमाओं के समान स्तब्ध हो रहे थे। जैसे कोई सिंधुर-गज अकेले ही गजशाला में जा घुसता है, वैसे ही रावण अकेले अपने प्रासाद में जाकर प्रविष्ट हुआ।

उस प्रासाद में जाकर वह रक्त-स्वर्ण से निर्मित एक आसन पर आसीन हुआ। अपनी थकावट से किंचित् मुक्त होकर, बहुत गंभीर चिंतन में डूब गया। फिर, निकट खड़े कंचुकी को देखकर कहा—'अभी जाकर हमारे दूतों को बुला लाओ।' कंचुकी शीघ्र दूतों के साथ आ पहुँचा।

'मनोगति', 'वायुवेग', 'मारुत', 'महामेघ' आदि नामवाले तथा अपने कार्य को सुचारु रूप से पूर्ण करने में समर्थ उन दूतों को देखकर रावण ने आज्ञा दी—विचार करने के पहले ही तुमलोग सब दिशाओं में जाकर वहाँ रहनेवाले वीर-कंकणधारी सब राक्षसों को ले आओ।

सप्तसमुद्रों से आवृत सप्तद्वीपों में, असंख्य पर्वतों में, नीचे स्थित पाताल-लोक में, चक्रवाल-पर्वतों में—सभी स्थानों में रहनेवाले राक्षसों को अविलम्ब लेकर आओ।—रावण ने यों आज्ञा दी। उस आज्ञा को शिरोधार्य करके वे दूत चले गये।

रावण की सेना में रहनेवाले, तीनों लोकों के निवासी उसके मनोभाव को न जान सकने के कारण व्याकुल हो रहे थे। रावण ऐसी दशा में, अपने पुष्प-पर्यंक पर इस प्रकार जा लेटा, जिस प्रकार मांस से संयुत शूल से विद्ध होकर कोई मत्तगज अपने आवाल में जा लेटा हो।

जो हृदय मधुर संगीतनाद से पूर्ण, प्रवाल-समान मुँह से शोभायमान, स्वर्णलता-तुल्य सीता नामक स्त्री से भरा था, उसमें अब लज्जा आकर भर गया। फिर, वेदना ने उसे यों घेर लिया कि वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। वह किंचित् भी निद्रा नहीं पा सका। अपने भीतर के अपमान के भाव को प्रकट करते हुए उसने अग्नि-समान उष्ण निःश्वास भरे।

वज्र-समान दृढ कंधोंवाला रावण इसलिए लज्जित नहीं हो रहा था कि उसे उस दशा में देखकर स्वर्गवासी हँसेंगे या पृथ्वी के लोग हँसेंगे या पूर्वकाल में उसके द्वारा पराजित शत्रु लोग हँसेंगे। किन्तु, वह इसलिए लज्जित हो रहा था कि शूल को

लज्जित करनेवाले दीर्घ नयनों, अरुण अधर एवं कोमलता से युक्त मिथिलेशकुमारी उसपर हँसेगी।

तब उस (रावण) का दादा बूढ़ा माल्यवान्, जिसका शरीर दृढ धनुष के समान टेढ़ा हो गया था और जो मनोहर वीर-कंकण से युक्त था, आया और रावण के पर्यंक के निकट पड़े एक गद्देदार आसन पर बैठ गया।

मंच पर आसीन माल्यवान् ने लंकाधिपति की दशा को ध्यान से देखा। फिर, कहा—कभी व्यर्थ न जानेवाले तपःप्रभाव से युक्त हे तात! तुम्हारा मन एवं कंधे यों शिथिल हो रहे हैं, जैसे तुमने युद्ध में हार खाई है। क्या घटित हुआ? कहो!

वेदना से पूर्ण हृदयवाला, प्रज्वलित नयनोंवाला, भाथी के समान अपनी दसों नासिकाओं से अग्निमय निःश्वास भरनेवाला तथा ऐसी सूखी जिह्वा से युक्त कि गुड़ का रस या अमृत की धारा पीने पर भी जो उनका स्वाद नहीं पा सके, ऐसा वह रावण कहने लगा—

हमारे साथ युद्ध करने तपस्वी-वेश में दो मनुष्य आये हैं। (युद्ध को देखने के लिए) देवता भी तो आ पहुँचे हैं। युद्धभूमि में रुधिर-प्रवाह होने के कारण जहाँ बाज आदि पक्षी आकर बैठे थे, वहाँ हमारे कुल की पराजय ही नहीं, किन्तु चिरकालिक अपयश भी आ पहुँचा है।

हे आर्य! चंद्रकला को सिर पर धारण करनेवाले त्रिनेत्र से लेकर तीनों भुवनों के लोग भी यदि एक साथ मिलकर आयें और मेरी विशाल सेना की सहायता करें, तो भी राम क्या, उसके भाई लक्ष्मण के सामने भी, उसके धनुष से निकलनेवाले बाणों को सहती हुई मेरी सेना खड़ी नहीं रह सकेगी।

जब राम घोर युद्ध में असंख्य 'समुद्र' राक्षसों को मिटा रहा था और जब मेरी भुजाओं में बाण मारकर मेरा अमिट अपमान उत्पन्न कर रहा था, तब भी उसकी दशा वैसी ही थी, जैसी उसके बचपन में थी, जब वह कूबड़ी (मंथरा) के कूबड़ पर (अपने धनुष से) मिट्टी के ढेले फेंक रहा था। उसमें कभी क्रोध प्रकट नहीं हुआ।[१]

पर्वत-समान आकारवाले तथा करवाल-समान तीक्ष्ण दाँतोंवाले एक सौ दो 'समुद्र' राक्षस घने रूप में स्थिर खड़े थे। फिर भी, अपने लक्ष्य से भी न चूकते हुए राम के शर बिना किसी प्रतिरोध के, आगे बढ़कर अश्वों, हाथियों तथा पदाति-सैनिकों को गिराते ही रहे। वे कहीं अटके नहीं।

उस राम के हाथ से जो बाण निकले, वे सारे लोक में प्रविष्ट हो गये। यह कहना असंभव था कि वे युगांत तक चलते ही रहेंगे या कभी रुकेंगे भी। वे अस्त्र प्रलयकालिक अग्नि को भी मिटा सकते थे। सब दिशाओं को झुलसा सकते थे। यदि इनके विरुद्ध कोई कुछ कहे, तो कहनेवाले मुँह को झुलसा सकते थे और मन को भी झुलसा सकते थे।

---

१. भाव यह है—रामचन्द्र के लिए घोर युद्ध भी खेल के समान था, और उन्होंने शांत भाव के अतिरिक्त कभी रोष प्रकट नहीं किया।—अनु०

यदि मेरु-पर्वत को भेदना हो, गगन को पार कर जाना हो, पृथ्वी को भेदकर पाताल में जाना हो, या समुद्र को पीना हो, तो भी वे शर वह सब करने में समर्थ थे। अनन्त कोटि मेरु, गगन, धरणी और समुद्र उसके एक शर को सहने के लिए आवश्यक होंगे।

देवता भी यह नहीं जान पाते थे कि राम कब अपने दृढ धनुष पर डोरी चढ़ाता है और कब शर-संधान कर, धनुष को झुकाकर बाण छोड़ता है। फिर, और कौन उसके उस कौशल को समझ सकता है? जभी वह यह सोचता था कि युद्ध के लिए रोष से भरे राक्षस निष्प्राण हो जायँ, तभी सारा लोक शरों से भर जाता था।

काकुत्स्थ राम के शर, सत्कवियों की जिह्वा से निकले हुए उत्तम अर्थों से पूर्ण वचनों के समान थे, उनकी कविता की वाक्य-रचना के समान थे एवं उस रचना से प्रकट होनेवाली सीमा-रहित सुन्दर ध्वनियों के समान थे और विविध निर्दुष्ट अलंकारों की भंगिमा से युक्त थे।

इन्द्र का वज्रायुध, शिव के हाथ का मंत्र-शक्ति से पूर्ण त्रिशूल, मायावी विष्णु का वर्तुल चक्रायुध—इन सबकी गति मैंने देखी है। किन्तु, राम के शर इन सबसे विलक्षण हैं। उन सब शस्त्रों को मैंने सह लिया था। किन्तु, इस तपस्वी के बाणों के वेग को मैं न सह सका और पीडित हुआ। मेरे अतिरिक्त और कोई क्या उन शरों को दृष्टि उठाकर भी देख सकता है?

भूतों के साथ श्मशान में रहनेवाले शिव की अष्ट भुजाएँ, इन्द्र की दोनों भुजाएँ, विशाल लोकों को अपने उदर में रखनेवाले विष्णु की सहस्र भुजाएँ—सभी उस (राम) की एक उँगली के समान भी शक्तिमान् नहीं हैं।

उत्तम वीरता से युक्त, रक्त नेत्रवाले स्वयं विष्णु के जैसे भी अनेक वीर होंगे, फिर भी मैं उन सबको उस कार्त्तवीर्य अर्जुन के समान नहीं मानता। किन्तु, वह कार्त्तवीर्यार्जुन भी इस तपोवेषधारी राम के अनुज की पदधूलि बनने योग्य भी नहीं है।

हे आर्य! त्रिपुरों को जला देनेवाले (शिवजी का) धनुष वीर रामचन्द्र के महिमामय धनुष के सम्मुख विनोद के लिए भी नहीं रखा जा सकता है। (राम के) उस धनुष का उपमान बननेवाला और कोई धनुष भी नहीं है। वेद भले ही झूठे हो जायँ, किन्तु राम के बाण कभी विफल नहीं होते।

(राम के बाण) प्रकट होते समय ब्रह्मा की समता करते हैं। शत्रुओं की ओर जाते समय विष्णु की समता करते हैं (अर्थात्, सहस्र मुखवाले होते हैं)। शत्रु पर लगने पर प्रलयंकर रुद्र की समता करते हैं। उन शरों की महिमा क्या इतनी लघु है कि हम जैसे लोग उसका वर्णन कर सकें? जब उन शरों ने मेरे गर्व को भी मिटा दिया है, तब अब उनके बारे में और क्या कहा जाय?

उस मानव राम का धनुष पश्चिम दिशा में है या पूर्व दिशा में? उत्तर दिशा में है या दक्षिण दिशा में? गगन में है अथवा धरती पर? वह किस दिशा में कैसे रहता है—इसे मैं जान ही नहीं सका।

क्या वह राम पवन के वाहन पर है? अग्नि पर है? यम को ही वाहन बना-

कर चलता है ? नहीं-नहीं। इनमें से कोई उसका वाहन नहीं। वह एक वानर पर ही आरूढ है। किन्तु, उस वानर के जैसा पराक्रम क्या गरुड भी दिखा सकता है ? ऐसे वाहन का महत्त्व न समझना बुद्धिहीनता ही है।

अब युद्ध में जाकर हमें और क्या सीखना है ? क्षमा-गुण में पृथ्वी की समता करनेवाली और बाँसों के जैसे कंधोंवाली सीता यदि राम के रूप को एवं उसके अग्नि-समान युद्ध के पराक्रम को भी देख ले, तो उसकी दृष्टि में कामदेव एवं हम श्वान कहलाने योग्य ही रह जायेंगे।

हे गुंजायमान भ्रमरों से युक्त पुष्पमाला धारण करनेवाले ! मेरे नाश का समय आ गया है, इसीलिए इन्द्र, विष्णु, कमलवासी ब्रह्मा या परशुधारी शिव—जैसे निर्बल व्यक्ति नहीं, किन्तु उन सबसे अधिक पराक्रम से युक्त शत्रु को मैंने पाया है। यही अब घटित हुआ है—यों रावण ने कहा।

ये बातें सुनकर माल्यवान् ने रावण से कहा—अग्नि अथवा बिजली भी जिसकी समता नहीं कर सकती, ऐसे उज्ज्वल मालाभूषित त्रिशूल को धारण करनेवाले हे वीर ! पहले जब मैंने राम के पराक्रम के बारे में कहा था, तो तुम मुझपर क्रुद्ध हुए थे। क्रोध नामक गुण ही जिसमें नहीं है, ऐसे विभीषण की मीठी बातों की उपेक्षा तुमने की। यद्यपि हमलोगों के इस प्रकार कहने का कारण था, तथापि तुमने कुछ विचार नहीं किया। क्या कोई तुम्हारी बातों का प्रतिवाद कर सकता है ?

तुम्हारे मन को दुःख लगने पर भी, बन्धुजनों के वचन भावी परिणाम का विचार करके ही कहे गये थे। किन्तु, तुमने उन वचनों को स्वीकार नहीं किया। उसके फलस्वरूप तुम हमारे कुल को, विजय को, मित्रता को, विद्या को, संपत्ति को तथा थकी सेना को विध्वस्त होते हुए देख रहे हो।

जिस समय माल्यवान् यों कह रहा था, उसी समय, विविध मायाओं में निपुण महोदर, जो एक ओर खड़ा था, सत्वर आगे बढ़ आया और अग्निमय दृष्टि से माल्यवान् को देखकर कहा—इस प्रकार के हीनतापूर्ण वचन तुमने कैसे कहे ! फिर, श्रांतचित्त रावण के प्रति उसका हित न करनेवाले ये सांत्वना के वचन कहे—

जब हम किसी कार्य को अपने लिए उपयुक्त मानकर उसे अपनाते हैं, तब उससे विजय प्राप्त हो या उसके प्रतिकूल अपने प्राण छोड़ने पड़ें, तो भी उसको करना ही उचित होता है। यदि शिथिलचित्त होकर अपने कार्य से पीछे हटेंगे, तो उससे हमें अपयश एवं नरक ही मिलेंगे।

जिसने अपना अनुपम बाण चलाकर त्रिपुर को जलाया था और जिसने अपने एक चरण से त्रिभुवन को नापा था, ऐसे शिव और विष्णु भी तुमसे हार गये थे। हे राजन् ! हे कैलास को हिलानेवाले ! क्या तुम मनुष्यों के साथ युद्ध करने से भयभीत होओगे ?

विजयी लोग हारते हैं। हारे हुए लोग जीतते हैं। सबसे ऊँचे स्थित व्यक्ति नीचे जाते हैं। सबसे नीचे रहनेवाले उन्नत होते हैं। संसार की यही रीति है।—विद्वानों का यही कथन है। क्या किसी के पराक्रम की कोई सीमा भी हो सकती है ?

हे सबकी प्रशंसा के पात्र ! अब इन क्षुद्र तपस्वियों (राम-लक्ष्मण) के युद्ध की तुम क्या प्रशंसा करते हो ?

यदि तुम (सीता) देवी को मुक्त कर दोगे, तो उससे तुम्हारे बल-यश सब मिट जायेंगे। मुक्त न करने से क्या होगा। प्राण जायेंगे। उससे अधिक कुछ नहीं होगा। अबतक जो तुम्हारा प्रभाव अक्षुण्ण रहा है, उसे क्या तुम स्वयं ही घटा दोगे ? हे रक्षक ! निष्क्रिय बनानेवाली इस चिन्ता का तुरन्त त्याग कर दो।

यदि अब एक क्षण भी तुम युद्ध किये बिना चुपचाप बैठे रहोगे, तो वानर-समूह हमें और हमारी लंका को उसी प्रकार जीत लेगा, जैसे वह फलों के वृक्ष को जीत लेता है। यदि शीतल जल से पूर्ण समुद्र के किंचित् जल को सूर्य ने पी लिया, तो उससे हम व्याकुल क्यों हों ? (अर्थात्, राक्षसों की अतिविशाल सेना के अंश को राम ने निहत कर डाला, तो उससे हम क्यों चिंतित हों ?) तुम चिंतामुक्त होओ।

लोकनायक त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र) तुमसे परास्त हो गये। तीनों लोक तुम्हारी आज्ञा के अधीन हैं। हे मेरे तात ! घास की नोक पर के ओस-कण जैसे मनुष्यों को भी महत्त्वपूर्ण समझकर तुम कुंभकर्ण की उपेक्षा कैसे कर रहे हो ?

हे राजन् ! यदि उस कुंभकर्ण को बुलाकर तुम युद्ध में भेजोगे, तो उसके पर्वत-समान आकार को देखकर ही सब वानर भागकर छिप जायेंगे। यदि वे सम्मुख आ जायेंगे, तो भी वह कुंभकर्ण उन तपस्वियों के प्राण-सहित उन सबको खा जायगा।—यों महोदर ने कहा।

तब रावण ने महोदर से कहा—हे महाविज्ञ ! तुम सब प्रकार की संपत्तियों के पात्र हो। उत्तम कार्य को तुम जानते हो ! मेरे प्रति तुम्हारे प्रेम की क्या कुछ सीमा भी है ? मेरे हित के वचन ही तुमने कहे हैं।—यों उसकी प्रशंसा करके रावण शांतचित्त हुआ। जब विनाश का समय आता है, तब क्या उसका कुछ प्रतिरोध भी हो सकता है ? (अर्थात्, कोई प्रतिरोध नहीं हो सकता)।

'यह कार्य ही उपयुक्त है।'—ऐसे विचार करके रावण ने दूतों से कहा—'तुम दौड़कर जाओ और उस उत्तम वीर मेरे भाई कुंभकर्ण को यहाँ बुला लाओ।' जैसे यमदूत ही जा रहे हों, यों चार दूत चलकर पर्वत से भी ऊँचे कंधोंवाले कुंभकर्ण के विजयी प्रासाद में प्रविष्ट हुए।

चारों दूत, पर्वताकार कुंभकर्ण जहाँ सो रहा था, उस मेघावृत सौध के भीतर जा पहुँचे। 'हे राजन् ! जागो'—कहते हुए उन दूतों ने अपने हाथों की गदाओं से उसके सिर, कानों एवं शरीर पर आघात किया। फिर भी, वह नहीं जगा। तो क्रूरनेत्रवाले वे राक्षस बोले—

हे सोनेवाले कुंभकर्ण ! तुम्हारा झूठा जीवन अब समाप्त होनेवाला है। देखो, उठो, उठो, अब तुम शस्त्रधारी यमदूतों के हाथ में सोओगे ! अब वहाँ जाकर सोओ ![1]

---

१. यहाँ से चार पद्य प्रक्षिप्त-से लगते हैं।—अनु०

जो हमारा जीवन शाश्वत सुख से पूर्ण-जैसा लगता था। वह अब मिट गया है। तुम्हारे भाई ने जान-बूझकर खोजकर पाप को प्राप्त किया है। अब मृत्यु निश्चित है। अब भी तुम क्यों सोते हो ?—इस प्रकार कहते हुए (उसे जगाने के) श्रम से लाल हुए अपने हाथों से बार-बार हिला-हिलाकर उसे जगाने लगे।

यों कहकर जगाने पर भी जब कुंभकर्ण नहीं जगा, तब उन दूतों ने जाकर रावण से कहा—'हे सुवासित मालाओं से भूषित वक्षवाले ! हम गाढ निद्रा से कुंभकर्ण को नहीं जगा सके।' तब रावण ने यह कहकर कि 'एक के पीछे सहस्र अश्वों एवं शरभों से रौंदवाकर उसे जगाओ।' यह कहकर उसने अश्व एवं शरभ भेजे।

अश्वों एवं शरभों से भी कुंभकर्ण नहीं जगा। दूतों ने वह बात रावण को सुनाई। तब रावण ने एक सहस्र मल्लों को यह कहकर भेजा कि तुमलोग अपनी सारी चातुरी दिखाकर उसे जगा दो।

वे सहस्र मल्ल यह सोचकर कि 'यदि कुंभकर्ण जग जाय, तो वह अभी पुष्पमाला-धारी राजा रावण की इच्छाओं को पूर्ण कर देगा,' सत्वर गये और उस प्रासाद में प्रविष्ट हुए, जहाँ पर्वतों से भी ऊँचे कंधोंवाला कुंभकर्ण पड़ा सो रहा था।

ज्योंही उन वीरों ने कुंभकर्ण के सौधद्वार को खोला, त्योंही उसके श्वास-प्रश्वास की वेगवान् हवा के झोंकों से वे सब वीर कभी बाहर ढकेले गये, कभी भीतर खींच लिये गये। तब सब वीरों ने दृढता से एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए एक साथ सारी शक्ति लगा-कर बड़े वेग से भीतर घुस पड़े।

उन लोगों ने सोचा—'अब इसे जगाने का क्या उपाय करें ?' उसके उभरे एवं फटे हुए मुँह को देखकर वे थर-थराकर काँप उठे। उसके हाथों को छूने से वे हिचके। फिर, उसके कानों में शंख, काहल आदि वाद्यों को बजाकर बड़ा शब्द करने लगे।

फिर, पर्वताकार गदा, हथौड़े, शूल आदि शस्त्रों से उसके गाल, वक्ष, सिर आदि अंगों पर आघात किये। शस्त्रों से मारते-मारते उनके हाथ थक गये, किन्तु, कुंभकर्ण नहीं जगा। तब राक्षसराज के पास जाकर उस बात का निवेदन किया। तब रावण ने आज्ञा दी कि अश्वसेना को ले जाकर फिर एक बार उसे रौंदवाओ।

अपार निद्रा में निमग्न उस कुंभकर्ण के वक्ष पर, (उन राक्षसों ने) सहस्र अश्वों की पंक्ति को अतिवेग से चलाया। किन्तु, उससे कुंभकर्ण को ऐसा लगा, जैसे उसकी जाँघ पर थपकियाँ दी जा रही हों। वह सोता ही रहा।

तब सेवकों ने रावण के निकट जाकर उसके शब्दायमान वीर-वलयों से भूषित चरणों को नमस्कार करके कहा—हे प्रभु ! राक्षसों के उद्धार का उपाय सोचकर हमने कुंभकर्ण को निद्रा से जगाने का बहुत प्रयत्न किया। हमारे हाथ शिथिल हो गये हैं। शीघ्रगामी घोड़ों के पैर भी निःशक्त हो गये हैं। अब और क्या उपाय हो सकता है ?—यों पूछा।

तब रावण ने कहा—बड़े-बड़े पहियोंवाले मनोहर रथों एवं गजों की सेनाओं के रौंदने पर भी जिसका शरीर अक्षत रहता है, जो निरंतर निद्रामग्न रहता है और जो

मुझे कभी छोड़कर नहीं जाता है, ऐसे उस कुंभकर्ण को, त्रिशूलों, परसों एवं अन्य शस्त्रों से मारकर ही सही, जगाओ।

रावण के यों कहते ही एक सहस्र राक्षस रावण को नमस्कार करके चले और निद्रालु राजा के आवास में जा पहुँचे। फिर, उसके दोनों बलिष्ठ गालों पर दीर्घ मूसलों से आघात किया। तब वह कुंभकर्ण यों हिलकर जग पड़ा, मानों कोई मरा हुआ व्यक्ति ही जग पड़ा हो।

रावण का अनुज एवं विचार से बहुत बड़ा वह कुंभकर्ण यों उठ खड़ा हुआ, ज्यों पृथ्वी को नापनेवाला विष्णु ही हो। उसका सिर गगन को छू रहा था। शरीर सारे अंतरिक्ष को ढक रहा था। उसके दोनों नेत्र समुद्र से भी अधिक विशाल थे।

तीनों लोक भयभीत हो गये। दृढ तथा महान् सूँड़ोंवाले दिग्गज अपने-अपने स्थान को छोड़कर भागे। सूर्य विचलित हुआ। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सब देव थरथरा उठे। यों वह महान् वीर कुंभकर्ण उठकर खड़ा हो गया।

उस समय निद्रा से जगकर उसने खाने योग्य भुने हुए मांस एवं मद्य से पूर्ण घड़ों को वहाँ नहीं देखा, तो अपने ओंठों पर जीभ फेरता हुआ मृतक-समान मुँह लेकर रह गया।

फिर, क्रोधपूर्ण मुख पर दो लाल-लाल आँखों से युक्त उस कुंभकर्ण ने छह सहस्र शकटों में भरे भात को खाया एवं कई सौ घड़ों का मद्य पिया। उससे उसकी भूख और भी भड़क उठी।

अत्युज्ज्वल वज्र को भी जो अपने हाथ से कुचल सकता था और जो अग्नि को उगलता था, ऐसे उस कुंभकर्ण ने यह विचार करके कि बड़ा भोजन पश्चात् करेंगे, पहले कुछ अल्पाहार ही कर लें, एक सहस्र दो सौ भैंसों को खा डाला। उससे उसकी भूख कुछ शांत हुई।

विशाल समुद्र में जिस प्रकार ऊँची वक्राकार लहरें उठती रहती हैं, उसी प्रकार की भौंहों से वह युक्त था। जब वह सोता था, तब उसके मुँह से उसके द्वारा भोजन किये गये मांस का सार बह चलता था। जब वह बैठता था, तब उतना ही ऊँचा रहता था, जितना रावण खड़ा होने पर होता था।

(वह इस प्रकार खाने लगा कि) रक्त-प्रवाह, मांस, अस्थि, चर्म सब छितरा गये। वह सबको उठा-उठाकर खाता था। वह धान की बाली के समान आकारवाले करवाल को धारण करनेवाला था। चन्द्र के प्रकाश के समान कांति विकीर्ण करनेवाले वीर-कंकण पहने हुए था।

अत्यधिक भूख से पीडित होकर, अपनी भूख मिटाने का औषध मानकर वह अपने हाथ के लोहे के शस्त्रों को चबाने लगा। फिर, (उनको केवल शस्त्र जानकर) धवल दाँत प्रकट करते हुए हँस पड़ा। मत्त गजों को खाकर फिर मादक मद्य का पान करने की इच्छा से भर गया।

उसके कर में उपमा-रहित शूल था। उसका वर्ण सजल मेघ के समान था।

उसका शरीर यों पुष्ट था, ज्यों यम की देह हो। उसके पैरों में वीर-वलय पड़े थे। उसके सिर पर ऊपर की ओर बढ़े हुए लाल रंग के केश थे।

जिस (कुंभकर्ण के) कर ने स्वर्गलोक में स्थित इन्द्र के दाँतों को चोट करके गिरा दिया था, जिस कर ने इन्द्र के नगर-प्राचीर पर यों आघात किया था कि उस (प्राचीर) का ऊपरी भाग टूटकर गिर गया था और जिस (कर) में शूल रहता था, वैसे कर से युक्त कुंभकर्ण ने सिंह का मांस खाने के लिए भली भाँति फैलाकर अपना मुँह खोला।

जब उसका शरीर पड़ा रहता था, तभी उसे देखने पर देवताओं की आँतें अपने स्थान से विचलित हो जाती थीं। उसके लाल-लाल केश ऐसे लगते थे, मानों सुप्त समुद्र पर तीव्र गति से चलनेवाली वडवाग्नि की ज्वालाएँ हों।

उसकी आँखें, जिसका चर्म सिकुड़कर उसकी निद्रा की सूचना दे रहा था, ऐसी थीं, जैसी मेरु पर्वत की विशाल गुफा हो, जिसमें रावण के रोष से भयभीत होकर सूर्य एवं अग्निदेव जा छिपे हों।

उसकी नाक के छिद्र बाँसों से भरे वैसे पर्वतों की कंदराओं के समान थे, जिनपर सूँड़वाले पर्वताकार मत्त गज स्वच्छन्द खाते और विचरते रहे हैं। उसके विशाल कर्णरंध्र ऐसे थे कि सर्प उनमें सो सकते थे।

ऐसे कुंभकर्ण से दूतों ने कहा कि तुम्हारे अग्रज ने तुम्हें बुलाया है। तुरन्त वह पर्वताकार राक्षस उठ खड़ा हुआ। वह चला, तो सारे नगर में कोलाहल छा गया। यों शीघ्र गति से जाकर वह उस राजप्रासाद में प्रविष्ट हुआ, जो चन्द्रमा को छूनेवाला था।

विशाल प्राचीर से युक्त, अनेक मंजिलोंवाले गोपुर से युक्त एवं समुद्र से आवृत लंकानगर के अधीश्वर के सम्मुख, हिंसा करने में निपुण शूल को धारण करनेवाला कुंभकर्ण यों दंडवत् करके गिरा, जैसे कोई पर्वत ही बिखर गया हो।

बलवान् अनुज ने ज्योंही नमस्कार किया, त्योंही रावण ने उसे अपने गाढ आलिंगन में यों बाँध लिया, ज्यों कोई खड़ा रहनेवाला पर्वत दीर्घ चरणों से आये एक दूसरे पर्वत का आलिंगन कर रहा हो।

फिर, रावण ने कुंभकर्ण को अपने निकट बैठा लिया। रुधिर और मद्य से पूर्ण अनेक घड़े उसको पिलाये, मांस खिलाया, समुद्रफेन-तुल्य क्षौम वस्त्र पहनवाया और उज्ज्वल कांति को चारों दिशाओं में विकीर्ण करनेवाले अनेक रत्नाभरण पहनाये।

जब इन्द्र (रावण से) युद्ध में परास्त होकर भागा था, तब उज्ज्वल रत्न-खचित मुखपट्ट उसके हाथी के मुख पर से गिर गया था। रावण ने उसे वीरपट्ट कहकर (कुंभकर्ण को) पहनाया।

समुद्र के समान रूपवाले कुंभकर्ण के शरीर पर रावण ने दिव्य सुगंध से पूर्ण रक्त-चंदन का लेप कराया। उसके शरीर-भर में बिजली के समान कांति और अत्यन्त सौरभ से युक्त चंदन ऐसा दृश्य उपस्थित करता था, जैसे बड़ी सूँड़वाले हाथी पर लाल-लाल चित्तियाँ हों।

मानों विष ही उठ खड़ा हुआ हो, यों लगनेवाले और गगन को छूनेवाले कुंभकर्ण

के वक्ष पर रावण ने उस कवच को पहनाया, जिसे वृषभवाहन रक्तवर्ण देव शिव ने उसे दिया था।

तब कुंभकर्ण ने, जिसकी बिजली के समान भौंहें झुकी हुई थीं और जिसका गगन को छूनेवाला बायाँ कंधा फड़क उठा था, रावण से पूछा—यह युद्ध की पोशाक मुझे क्यों पहना रहे हो?

तब रावण ने उत्तर दिया—मनुष्य, वानरों की बड़ी सेना लेकर हमारे नगर को घेरे पड़े हैं। हम पर अबतक जैसी विजय और किसी ने नहीं प्राप्त की, ऐसी विजय इन्होंने प्राप्त की है। तुम जाकर उनके प्यारे प्राणों को पी डालो।

तब कुंभकर्ण ने कहा—जैसी आशंका मैं कर रहा था, क्या वैसा ही घोर युद्ध आ पड़ा है? क्या उस उपमाहीन सीतादेवी का दुःख अभी समाप्त नहीं हुआ? स्वर्ग और पृथ्वी में तुम्हारा जो यश फैला था, क्या वह सब मिट गया? क्या राक्षसों के विनाश का समय आ गया है?

क्या युद्ध उत्पन्न हो गया है? क्या उज्ज्वल स्वर्ण के समान उस सीता के कारण ही यह सब हुआ है? क्या पूर्ववृत्तों का स्मरण कर, तुमने विषैले सर्प के समान उस पतिव्रता देवी को अभी तक नहीं छोड़ा? तुम्हारा ऐसा करना विधि की क्रूरता ही है।

हे भाई! धरती को खोदकर उठा देना संभव है। इस सारे संसार की सीमा निर्धारित करना संभव है। किन्तु, महान् बलशाली राम के भुजबल को जीतने की बात करना व्यर्थ है और सीता की देह का आलिंगन करना भी असंभव।

क्या तुमको (जो अधर्म-मार्ग पर जा रहे हो) विजय प्राप्त हो सकेगी? तुम्हारे कार्य तो विजय का विनाश करनेवाले हैं। जैसे पृथ्वी के गुण के अनुसार जल का गुण बदलता है, वैसे ही यह भी हुआ (अर्थात्, तुम्हारे कार्य के गुण से विजय का गुण बदल गया)। तुम्हारे कारण पुलस्त्य महर्षि के वंचक गुण से रहित वंश का यश मिट गया।

तुमने (अपने पाप-कर्म से) इन्द्र को स्वर्गलोक एवं विजय प्रदान की। (तुमने) अपने विशाल कुल को मिटा दिया। स्वयं अपना विनाश उत्पन्न कर लिया। अनेक देवों को बंधन से मुक्त कर दिया। अब इन पापों से मुक्ति पाने का मार्ग भी तुम्हें नहीं प्राप्त हो रहा है।

धर्म तुमसे डरकर कहीं जा छिपा है। पूर्वकाल में जब तुमने उस धर्म का सयत्न पोषण किया था, तब उसने तुमको शक्ति, संपदा तथा गौरव प्रदान किये थे। जब धर्म को ही तुमने भग्न कर दिया, तब अब कौन तुम्हारा उद्धार करके तुम्हें स्थिर रखने में समर्थ होगा?

उन (मनुष्यों) के मन, कर्म और वचन परहित-निरत तथा धर्म एवं सत्य के आश्रित हैं। जब हमारे (मन, कर्म और वचन) छल, पाप एवं असत्य के आगार हैं, ऐसी स्थिति में, हम कैसे जीत सकते हैं? क्या उनके धर्म की भी कुछ हानि हो सकती है?

अपने चरणों के बल से ही जिसने पवन के समान वेग से समुद्र को पार किया, वह बलवान वानर उनका साथी है। सीता भी हमारे बंधन में ही पड़ी है। वे शर भी

प्रस्तुत हैं, जिन्होंने वाली का वक्ष चीरकर उसे मार डाला था। हम भी हैं (जो उन शरों का लक्ष्य बननेवाले हैं)। अब और क्या कमी रह गई है?

ये बातें कहकर कुंभकर्ण फिर बोला—हे प्रभो! मुझे एक बात यह भी कहनी है। यदि तुम उसे समझकर स्वीकार करो, तो ठीक है। यदि स्वीकार नहीं करोगे, तो तुम सन्मार्ग पर जाने से असमर्थ व्यक्ति हो और अपने को मृत ही समझो।

सीता को मुक्त कर दो, उस (राम) की शरण में जाओ और संदेह के अयोग्य अपने अनुज विभीषण से मैत्री करो—यही तुम्हारे उज्जीवन का उपाय है। यदि वैसा नहीं करना चाहते हो, तो तुम्हारे करने योग्य कार्य अन्य कुछ नहीं है।

कतार-की-कतार में हमारी सेना को भेजकर युद्ध में उसे मिटते देख यहाँ चिन्तित होकर तुम्हारा बैठा रहना ठीक नहीं। किन्तु, सारी सेना को एक साथ उनके लिए भेजना ही उचित कार्य है।—यों कुंभकर्ण ने कहा।

तब रावण ने कहा—मैंने तुम्हें यह जानने के लिए नहीं बुलाया है कि भविष्य में क्या होनेवाला है। तुम ऐसे बुद्धिमान् मंत्री भी नहीं हो कि उन मनुष्यों को युद्ध में मारने का मुझे परामर्श दो। कदाचित् ऐसी बातें तुम भय के कारण कह रहे हो! तुम्हारा पराक्रम क्या हुआ?—यों कहकर रावण पुनः बोला—

वीरोचित युद्ध करने का बल तुमने खो दिया है। प्रभूत मद्य के साथ मांस भी तुम्हें मिल गया (अब तुम्हें और क्या चिन्ता है?) तुम सौध के भीतर जाकर अपनी धँसी हुई आँखें बन्द करके दिन-रात सोते पड़े रहो।

उन दोनों मनुष्यों को नमस्कार करते हुए, उस कूबड़ वानर को भी नमस्कार करते हुए जीवित रहना। विभीषण, जो इस मांसमय देह का प्यार त्याग कर चला गया है, तुम्हारे ही योग्य है। मैं वैसा नहीं कर सकता। अब तुम उठकर चले जाओ।

फिर, रावण ने एक सेवक को देखकर कहा—मेरा रथ और शस्त्र लाओ। मेरी आज्ञा सबको सुनाओ। स्वर्ग और धरती के निवासी तथा अन्य स्थानों में रहनेवाले सब लोग उन दो हाथोंवाले छोटे मनुष्यों के साथ मिलकर मेरे सामने युद्ध करने के लिए आयें।

यह देखकर कुंभकर्ण ने, रावण के स्वर्ण वलय-भूषित चरणों को नमस्कार करके कहा—क्षमा करो! और अपने दीर्घ शूल को दक्षिण हाथ में लिया। फिर बोला—मुझे एक बात और कहनी है।

मैं यह नहीं कह सकता कि मैं विजयी होकर लौटूँगा। विधि खड़ी है। मेरी गरदन पकड़कर आगे ढकेल रही है। बहुत भी करके मैं युद्ध में निहत हो जाऊँगा। यदि मैं मर जाऊँगा, तो हे अधिप! अपना भला मानकर सीतादेवी को छोड़ देना। उसी से तुम्हारा हित होगा।

इन्द्र को युद्ध में जीतनेवाला इन्द्रजित् भी राम के भाई लक्ष्मण के हाथ के मंत्र-शक्ति से युक्त बाण से मरेगा, यह निश्चित है। राक्षस-सेना प्रभंजन से ताडित भस्मराशि के समान छिन्न-भिन्न होगी। अतः पीछे ही सही, सब कष्टों को समझकर अपने योग्य कार्य करना।

हे लंकेश ! यदि वे मुझे जीतेंगे, तो वे तुम्हें भी जीत लेंगे। यह निश्चित है। अतः, उस समय भी (सीता को मुक्त न करके) विचार करते रहना असंगत होगा। उस सुन्दर कंकणधारिणी को मुक्त कर देना उत्तम तपःफल के समान होगा।

हे विजयी ! आदिकाल से अबतक मैंने कभी कुछ अपराध किया हो, तो उसे क्षमा कर दो। अब तुम्हारा मुख मैं देख सकूँगा, यह संभव नहीं। हे आर्य ! तुमसे विदा माँगता हूँ। यों कहकर कुंभकर्ण चला गया।

तब रावण की सब आँखों से बहनेवाले अश्रुओं के साथ रक्त भी बह चला। सब बंधुजन करुणा से भरकर दुःखोद्विग्न हो उठे। ऐसी दशा में वह कुंभकर्ण जाकर नगरद्वार पर पहुँचा।

रावण ने आज्ञा दी—महान् शस्त्रों से युक्त मेरे भाई के साथ विशाल सेना भी नगाड़े बजाते हुए जाय। तब ऐसी विशाल सेना चल पड़ी, जिसके चरणों से उठनेवाली धूलि देवताओं के भ्रमरयुक्त पुष्पों से अलंकृत सिरों पर भर गई।

रथों पर बँधी ध्वजाएँ, हाथियों पर रखी ध्वजाएँ, सेना के आगे-आगे फहरानेवाली ध्वजाएँ—सब गगन में यों एकत्र हो रही थीं, मानों वे युद्धभूमि से उड़कर गगनतल में छाई हुई धूलि को पोंछ रही हों।

भीषण शस्त्र सर्वत्र भर गये। उनके परस्पर टकराने से जो अग्निकण निकलते थे, उनसे एवं सेना के वीरों की आँखों से निकलनेवाले अग्निकणों से विशाल गगन में स्थित मेघ-समुदाय झुलसकर गिर पड़े।

असंख्य रथ और गज सेना के अग्रभाग की श्रेणियों में जा रहे थे। (सेना के) पश्चात् भाग से लाल चित्तियों से भरे मुखवाले गज, वेगगामी रथ तथा पवनगति से उड़नेवाले घोड़े शीघ्र आगे बढ़ जाते थे। अतः, मध्यभाग में स्थित सेना यह सोचकर कि अब हम भूमि पर नहीं चल सकते, गगन-मार्ग से उड़ चली।

कुंभकर्ण ऐसे रथ पर आरूढ होकर युद्धभूमि की ओर चला, जिसमें सहस्र सिंह, सहस्र शरभ, सहस्र मत्तगज और सहस्र भूत जुते थे और जिसके भार को इस पृथ्वी का भार ढोनेवाले सब (आदिशेष, गज, कूर्म आदि) वहन नहीं कर पाते थे।

सैनिक तोमर, चक्र, शूल, बाण, परशु, भयंकर भाले, मूसल, करवाल, गदाएँ, धनुष, वलय इत्यादि असंख्य शस्त्रों को लेकर चले।

जब-जब कुंभकर्ण माँगता था, तब-तब झट मांस, मद्य आदि हाथों में उठाकर उसको देने के लिए एक सहस्र शकटों, मद्य-भरे घड़ों तथा भली भाँति पके मांस को भरकर, चंद्रकला के समान वक्र दंतों से युक्त अनेक राक्षस उस कुंभकर्ण के पीछे-पीछे जा रहे थे।

असंख्य सेवकों के द्वारा दिये जानेवाले विविध मांस तथा मद्य को कुंभकर्ण अपने दोनों बलवान् हाथों से लेता और अपने मुँह में यों डाल लेता था, जैसे पर्वत की अंधकारमय कंदरा में उन्हें डाल रहा हो। वह दृश्य देखकर सब चकित रह गये।

देवता यह सोचते हुए कि 'इसके भोजन के लिए संसार के सब प्राणी भी पर्याप्त नहीं होंगे, यह सब वानरों को खा जायगा, अब सर्वत्र शव-ही-शव गिरेंगे, यम भी

इस बात को जान गया है, अब हम बचकर कहाँ भाग सकते हैं ?'—भागने लगे

राम ने बड़े स्वर्णरथ पर कुंभकर्ण को आते हुए देखा, मानों आदिशेष के सिर से फिसलकर मेरु-पर्वत ही भूमि के साथ आ रहा हो।

इस रथ पर लगी गगन को छूनेवाली ध्वजा में क्या वीणा का चित्र है ? नहीं, विजयी सिंह का चित्र है। यह राक्षस इतना बड़ा है कि वायु से भी अधिक वेगवान् मन भी एक साथ इसे पूरा नहीं देख पाता। वक्ष पर आभरणों से शोभायमान यह राक्षस कौन है ?—यों प्रभु ने सोचा।

एक भुजा से दूसरी भुजा तक फैले हुए इसके विशाल वक्ष को क्रम से देखा जाय, तो देखने में ही अनेक दिन व्यतीत हो जायेंगे। यहा (भूमि के) केन्द्र में स्थित मेरु ही चला आ रहा है ? ऐसा नहीं जान पड़ता कि यह वीर केवल युद्ध के लिए यहाँ आ रहा है।

उदित हुए सूर्य की कांति इसकी देह से छिप रही है, जिससे सर्वत्र अँधेरा छा रहा है। हमारी विशाल सेना के वीर इसके महान् आकार को देखकर भय व्याकुल हो अस्त-व्यस्त हो भाग रहे हैं। यह कौन है ? हे धीर हृदयवाले (विभीषण) ! कहो

क्या रावण ही वानर-सेना को भयत्रस्त करने के लिए ऐसा रूप धारण करके आया है ? हे विभीषण ! इसे समझाकर मुझे बताओ।

राम के यों पूछने पर विभीषण ने राम के दोनों चरणों को नमस्कार करके कहा—हे प्रभो ! यह, महिमामय लंकेश का अनुज है। मेरा अग्रज है। कालवर्ण यम के समान, वीर-कंकणधारी इस वीर का नाम कुंभकर्ण है। यह त्रिशूलधारी है।

हे मेरे पितृतुल्य ! सूक्ष्म तपस्या से संपन्न वेदज्ञ मुनि ज्ञान पाने के लिए जिन शिवजी का ध्यान करते हैं, उन शिव के ध्येय बने हुए तथा चतुर्मुख ब्रह्मा के ध्यान का विषय बने हुए विष्णु भगवान् जब अपनी योगनिद्रा छोड़कर उठते हैं, तब सब राक्षसों का नाश होता है। जब यह (कुंभकर्ण) अपनी गाढ निद्रा से उठता है, तब सब देव मरते हैं।

क्षीरसमुद्र में शयन करनेवाले हे विष्णु (के अंशभूत) ! क्रूर रावण का यह दुर्दमनीय अनुज है। एक युग-पर्यंत सोता रहता है।

मानों, वह यम के प्राण पीने के लिए उत्पन्न एक दूसरा यम है। वह पवन से भी अधिक गति से चल सकता है। पहले इन्द्र को परास्त करके विजयमाला धारण कर चुका है।

यह ऐसा बलवान् है कि जब इसने चार दाँतोंवाले महान् ऐरावत को उठाकर घुमाया था, तब देवेन्द्र भयभीत होकर उस गज को दृढता से पकड़कर लटक गया था।

यह इतना बलशाली है कि अग्नि और पवन को भी पकड़कर निचोड़कर रस निकाल सकता है। समुद्र में उतरकर उसमें रहनेवाली सब मछलियों को कुचलते हुए पैदल ही उसे पार कर सकता है।

अपरिमित शारीरिक बल से युक्त होने के कारण मन में भी बड़ी धीरता से भरा है। महान् तपस्या से अनेक वर प्राप्त कर चुका है।

लटकती मालाओं से भूषित यह कुंभकर्ण जब पैंतरे बदलकर (युद्धक्षेत्र में) घूमने लगता है, तब चरखी के समान हो जाता है। अबतक यह सोया हुआ पड़ा रहा, इसी से यह सृष्टि बची हुई है।

इसके पास एक शूल है, जिसने देवों के प्राण पी डाले थे। सृष्टि को निगलकर सुरक्षित रखनेवाले हे विष्णु (के अंशभूत राम) ! हलाहल को पीनेवाले शिव ने इसे वह शूल दिया था।

बिजली के समान कांतिवाले देवता 'खड़ा रह !' कहकर यदि युद्ध आरंभ करते हैं, तो उनकी पीठों पर ही इसकी दृष्टि पड़ती है (अर्थात्, देवता इसके सम्मुख खड़े नहीं रह सकते और भागने लगते हैं)।

इसने रावण को दो बार से भी अधिक समझाया कि परदारा का हरण करना उचित नहीं है। उस अधर्म-कृत्य से हमारा नाश हो जायगा।

इसने रावण को अपने वचनों से धिक्कारा, शक्ति-भर समझाया, उसके न मानने से यह सोचकर कि मरना ही निश्चित है, आपके सामने आ पहुँचा है।

रावण को इसने समझाया कि परस्त्री का हरण करना अधर्म है। किन्तु, रावण ने न माना, तो अब यम के सम्मुख आया है।—यों विभीषण ने राम से कहा।

जब विभीषण ने यों कहा, तब सुग्रीव बोला—इस कुंभकर्ण को मारने से कुछ प्रयोजन नहीं है। यदि यह सम्मत हो, तो हम इसे अपने साथ मिला लेंगे। उससे इन राक्षस विभीषण का भी दुःख दूर हो जायगा। यही उचित है।

तब राम ने पूछा—'उसके पास कौन जायगा ?' तब विभीषण ने कहा—'यह दास जाकर अपनी बुद्धि की चातुरी से उसे समझायगा और यदि वह हमसे मिलने को राजी होगा, तो उसे ले आयगा।' मेघ-सदृश प्रभु ने कहा—'ठीक है। जाओ'।

विभीषण वानर-वाहिनी को पार कर राक्षस-सेना के निकट जा पहुँचा। सेवकों ने कुंभकर्ण को सूचना दी कि विभीषण आया है। विभीषण ने अपार आनन्द से भरकर उस (कुंभकर्ण) के वीरकंकण-भूषित चरणों को अपने सिर पर धारण किया।

अपने सम्मुख अश्रु की वर्षा करते हुए नयनों से युक्त हो नमस्कार करनेवाले विभीषण को कुंभकर्ण ने गले से लगा लिया। सिर सूँघा। फिर कहा—तुम अकेले हमसे पृथक् हुए, जिससे तुम तर गये। यह सोचकर मैं प्रसन्न हो रहा था। अब मेरी प्रसन्नता को मिटाने के लिए तुम पुनः यहाँ क्यों आये हो ?

तुम्हारा अभय प्राप्त करना तथा देवों के लिए भी दुर्लभ दोनों लोकों के ऐश्वर्य को प्राप्त करना सुनकर मैं आनन्दित हुआ। कवियों से भी अधिक प्रतिभा से संपन्न हे भाई ! हम यम के मुँह में आनन्द से प्रविष्ट होनेवाले हैं, तुम हमारे निकट पुनः क्यों आये ? अमृत खाकर क्या पुनः विष खाना चाहते हो ?

हे कुमार ! (रावण के कारण) हमारे कुल का गौरव मिट गया। हे राजन् (विभीषण) ! अब तुम्हारे कारण ही पुलस्त्य (महर्षि) के वंश का ऐसा सौभाग्य होगा कि उसका समूल नाश नहीं होगा। यह सोचकर आनन्द से मेरी भुजाएँ फूल उठी थीं।

किन्तु, अब तुम पुनः हमसे आ मिले हो, जिससे मेरे मुँह का पानी भी सूख रहा है। हाय! मेरा मन दुःखी हो रहा है।

रामचन्द्र धर्म के रक्षक हैं। उनके प्राण भले ही चले जायँ, किन्तु 'अभय!' कहकर उनकी शरण में जो जाते हैं, उनकी रक्षा वे अवश्य करते हैं। तुम तो पहले से ही मृत्यु के भय से मुक्त हो गये हो। राम की शरण में जाकर (राक्षस-) जन्म के कारण प्राप्त क्षुद्रता से भी मुक्त हो गये हो। फिर भी, अब लौटकर क्यों आये हो?

मानों साक्षात् धर्म ही प्रकट हुआ हो, ऐसे रामचन्द्र का दासत्व तुमने प्राप्त किया है। पाप से उत्पन्न अज्ञान, संदेह आदि को मिटा दिया है। बलवान् पापकर्म को इहलोक में ही तुमने दूर कर दिया है—तुम ऐसे भाग्यवान् हो! किन्तु; क्या तुम अब परनारी पर दृष्टि डालनेवाले हमलोगों से पुनः बंधुत्व स्थापित करना चाहते हो?

हे सद्‌गुणों के आगार! तुमने तपस्या करके आदिमूर्त्ति ब्रह्मा से न्याय और धर्म में स्थित रहनेवाली बुद्धि एवं सत्-स्वभाव प्राप्त किये हैं। विप्रश्रेष्ठ उन ब्रह्मदेव से अविनश्वर आयु भी प्राप्त की है। फिर भी तुम अपनी जातिगत क्षुद्रता से मुक्त नहीं हुए?

हमको मारने के लिए सबके प्रभु राम धनुष पर डोरी चढ़ाये खड़े हैं। अनिवार्य वीर लक्ष्मण भी उनके साथ खड़े हैं। वानर-वीर भी असंख्य हैं। यम भी उपस्थित है। विधि भी प्रतीक्षा कर रही है। हे तात! क्या तुम अपने पराक्रम को मिटा देने के लिए ही पुनः हमारे पास आये हो?

हे तात! हम तरने के बदले राम के शरों से निहत होकर मर मिटेंगे। यदि तुम भी उन राम की शरण में रहकर नहीं बचोगे, तो हम मृतकों को अपने हाथ से तिल-जल देनेवाला और कौन रहेगा? बताओ।

लंका में तुम्हारे प्रवेश करने का समुचित समय भविष्य में आयगा। जब क्षुद्र राक्षस मिट जायेंगे, तब लक्ष्मी के आवासभूत वक्षवाले राम के साथ मिलकर तुम यहाँ आ सकोगे और अविनश्वर संपदा का भोग कर सकोगे। अभी शीघ्र लौट जाओ।—यों कुंभकर्ण ने कहा। तब विभीषण बोला—तुमसे एक बात कहनी है। कुंभकर्ण के 'कहो' कहने पर विभीषण ने कहा—

मुझ, अज्ञान से भरे मनवाले पर भी राम ने कृपा की है। यदि तुम आओगे, तो तुम पर भी करुणा दिखायेंगे, इतना ही नहीं। तुम्हें ऐसा अभय प्रदान करेंगे, जिससे तुम्हें किसी से कोई हानि नहीं होने पायगी। अज्ञानमय जन्म से भी मुक्ति प्रदान करेंगे। रथ के चक्र के समान; सुख-दुःखों से पूर्ण जीवन से मुक्ति पाने का मार्ग भी दिखायेंगे।

राम ने मुझे लंका का जो राज्य दिया है, वह तुम्हारा होगा। मैं तुम्हारी आज्ञा मानूँगा और तुम्हारी सेवा करता रहूँगा। हे उत्तम! तुम्हारा इससे बढ़कर अन्य कोई पुरुषार्थ नहीं होगा। तुम अपने अनुज के (मेरे) मन का दुःख दूर करके अपने कुल का उद्धार करो।

हे धर्मसहित नीति को माननेवाले! प्राण बचना असंभव है। यदि बच भी

जायेंगे, तो भी आश्रय पाने के लिए योग्य स्थान नहीं मिलेगा। शीघ्र मृत्यु निश्चित है। अतः, व्यर्थ ही प्राण देने से क्या प्रयोजन ? हे तात ! वेदों में प्रतिपादित धर्म को ही दृढता से ग्रहण करना चाहिए।

जो धर्मदृष्टि रखते हैं, वे पाप करनेवालों के बारे में यह नहीं सोचते कि यह मेरा भाई है या पिता है या माता। तुम तो यह बात जानते ही हो। तुम्हें मैं क्या कहूँ ? पवित्र कार्य करने से भी क्या अपयश प्राप्त हो सकता है ?

यह संसार दुःखदायक है—ऐसा विवेक जिन्हें हुआ है, वे अपने पुत्र, पत्नी बंधुजन, प्राण-समान मित्रों एवं अपना उपकार करनेवालों को भी त्यागने को तैयार रहते हैं। वे जिसका त्याग नहीं करते, वह एक धर्म ही है। अतः, उससे उन्हें मोक्ष मिलता है।

हे तात ! एक व्यक्ति पाप करता है, तो उससे उसके साथ रहनेवाले निरपराध व्यक्ति भी मरें—यह क्या उचित है ? इससे हीनता होगी न ? तुम विवेकवान् हो। धर्म में श्रेष्ठ परशुराम ने अपनी जननी को पाप करते हुए देखकर उसका वध किया था न ?

ललाटनेत्र शिव ने एक पाप करने के कारण कमलभव पितामह ब्रह्मा का सिर काट दिया था। हे मांस से सिक्त शूलवाले ! क्या बुद्धिमान् लोग अपयश के कारणभूत एवं नरक में डालनेवाले पापकृत्य करेंगे ?

हे पुष्पमाला-भूषित वक्षवाले ! शरीर में घाव होने पर उसे काटकर उससे रक्त बहा देते हैं और उसमें क्षार रखकर, जलाकर फिर दूसरी ओषधि से उस घाव को दूर करते हैं और उसके कष्ट से मुक्त होते हैं। विवेकवान् व्यक्ति सुगंधित कस्तूरी को समुद्र में नहीं बहा देते।

तुम्हारे अग्रज (रावण) को बचाने का कोई उपाय नहीं है। उसके अधर्म को मिटाने का मार्ग भी नहीं है। यदि चाहो, तो तुम भी दिशाओं में स्थित देवताओं के द्वारा हँस-हँसकर देखे जाते हुए रणांगण में अपने प्राण दे सकते हो। इससे फिर तो नरक में ही जाओगे। इसके अतिरिक्त और क्या होगा ?

हे तात ! तुम वीरतापूर्ण जीवन बिताकर अपने जीवन को सार्थक नहीं बना पाये। इस पृथ्वी पर तुम्हें बड़ा यश प्राप्त करना चाहिए था। किन्तु, अबतक तुमने अपने यौवन को क्षुद्र निद्रा में ही व्यर्थ गँवा दिया। इसके अतिरिक्त तुमने और क्या किया ? (कुछ नहीं)। अब धर्म को मिटाते हुए रावण की सहायता करके मरने पर तुम क्या प्राप्त करोगे ? (नरक ही पाओगे न ?)

लक्ष्मी एवं श्रीवत्स से अंकित वक्षवाले प्रभु राम की करुणा से तुम निद्रामुक्त होकर संपदा और महिमा प्राप्त कर अनन्त जीवन व्यतीत कर सकोगे। एकच्छत्र राज्य भी कर सकोगे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं। हे तात ! यही उचित समय है।

त्रिमूर्त्तियों में प्रधान भगवान् (विष्णु) धर्म की रक्षा करने के लिए काकुत्स्थ का वेष धरकर आये हैं। देवाधिदेव से अगर तुम लंका की संपत्ति प्राप्त करोगे, तो तुम किसी से हीन नहीं कहलाओगे। तुम्हारा विरोधी भी कोई नहीं रहेगा।

तुम क्षुद्र स्वभाववाले राक्षसों के साथ न रहो और उत्तम स्वभाववाले देवों का धर्म अपनाओ। यदि रामचन्द्र की शरण में आओगे, तो तुम्हारी संतान और मुझ-जैसे तुम्हारे अनुज की संतान राक्षसकुल का विनाश उत्पन्न करनेवाले रावण की संतान के साथ ही सिर उठाकर विचरण कर सकेगी।

मुनिजन हम पर करुणा करेंगे। त्रिलोक में हमारा विरोधी कोई नहीं रहेगा। हमारी मृत्यु भी नहीं होगी। कोई भय नहीं रहेगा। अब हमसे वैर रखनेवाले देवता भी हमारे सहायक बन जायेंगे। जब पेड़ों में फल लगने का समय आया है, तब क्या फूलों को तोड़ देना उचित होगा?

वेदों में प्रतिपाद्य भगवान् राम ने स्वयं अपनी सहज कृपा से तुमसे प्रार्थना करने के लिए मुझे प्रेषित किया। अब उन प्रभु के आश्रय में जाना ही कर्त्तव्य है। अतः, हे तात! धर्म के प्रतिकूल न रहकर उन प्रभु के दर्शन करने के लिए आओ—यह कहकर विभीषण ने कुंभकर्ण के चरण अपने सिर पर रखे।

भ्रमरों से भरी पुष्पमालाएँ धरती पर लोट गईं। उज्ज्वल किरीट मिट्टी में लोट गये। यों विभीषण ने नमस्कार करके वीर-कंकणों से भूषित कुंभकर्ण के चरणों को पकड़ लिया। तब कुंभकर्ण ने उसे उठाकर अपने वक्ष से लगा लिया। उसकी आँखों से उष्ण रक्तमय अश्रु बहे। फिर यों बोला—

हे पुष्पमालाधारी! रावण ने दीर्घ समय तक मेरा पालन-पोषण किया है और अब युद्ध के लिए मुझे सज्जित करके भेजा है। उसके लिए मैं अपने प्राण न देकर क्या मैं जल पर की रेखा के समान विनश्वर इस भोगमय जीवन की इच्छा करके उन राम की शरण में आऊँगा? नहीं। यदि तुम मेरा दुःख दूर करना चाहते हो, तो शीघ्र उन घनश्याम राम के पास चले जाओ।

कमलभव ब्रह्मा के वर-प्रभाव से तुमने विनाश-रहित जीवन पाया है। जबतक संसार रहेगा, तबतक तुम जीवित रहोगे। तुम सब लोकों पर शासन करनेवाले हो। तुम्हें उचित है कि तुम राम की शरण में जाओ। क्षुद्र मरण पाना ही मेरे लिए योग्य है।

विचारहीन शासक यदि कोई पापकार्य करे, तो यथासंभव उसे रोककर उसे उस पाप से निवृत्त करना चाहिए। यदि ऐसा करना संभव न हो, तो विरोधियों से जाकर मिल जाना क्या उचित है? जिसका मैंने अन्न खाया है, उसके लिए, उससे पहले ही युद्धक्षेत्र में अपने प्राण छोड़ना ही मेरा धर्म है।

जिसने त्रिलोक पर शासन किया, ऐसा मेरा अग्रज रावण, मधुकरों से पूर्ण पुष्प-माला धारण करनेवाले राम के उष्ण शर का लक्ष्य बनकर, दुःख से व्याकुल बंधुजनों से चारों ओर से घिरा हुआ, देवों एवं दानवों के देखते हुए, अपने भाई के रहते हुए, पृथ्वी पर मरा पड़ा रहे?

हिरण के समान नयनोंवाली पार्वती को अपने अर्धांग में रखनेवाले शिवजी के उन्नत हिमालय को जिसने उठाया, ऐसे बलिष्ठ भुजाओंवाले रावण को कालपाश में बँधे देखकर जब उसके विरोधी लोग, जो पहले (रावण के) पराक्रम से डरते थे, हँसते हों, तब

क्या यह ठीक है कि रावण अपने से पहले त्रस्त रहनेवाले यम के पास अपने भाई से भी रहित होकर जाय ?

हे तात ! मैं, जो यम के भी बल को परास्त कर सकता हूँ, क्या ताम्र-निर्मित प्राचीरों से युक्त लंकानगर के ऐश्वर्य की कामना करके, अपने भाई के प्राण लेनेवाले शत्रु की प्रशंसा करता हुआ तथा शर से विद्ध हो विक्षत हुए वक्ष के साथ (शत्रु को) नमस्कार करता हुआ जीवित रहूँगा ?

मैं उस हनुमान् को, अंगद को, सूर्यपुत्र (सुग्रीव) को, सुन्दर स्वर्ण-धनुष रखनेवाले राम-लक्ष्मण को, विलक्षण शक्तिवाले नील को, जांबवान् को तथा फल की ओर हाथ बढ़ानेवाले वानरों की सेना को पराजित कर, कुहासे को दूर कर पृथ्वी की परिक्रमा करनेवाले सूर्य के समान घूमूँगा। तुम देख लेना !

जैसे (हलाहल) विष को देखकर देवता भागे थे, वैसे ही मुझे देखकर वानर भाग खड़े होंगे। ऐसा दृश्य उपस्थित होगा, मानों एक समुद्र हाथ में त्रिशूल लेकर दूसरे समुद्र का पीछा कर रहा हो। नीलवर्ण समुद्र अपने स्थान से विचलित होकर चलेगा। अग्नि और पवन विचलित होंगे। और, प्रलयकाल में सारा संसार अस्त-व्यस्त हो उठे, इस भयंकरता के साथ मैं हाथ में त्रिशूल लेकर घूमूँगा।

यदि कोई युद्धक्षेत्र से न भागकर मेरे सामने आ जायगा, तो उस नीलपर्वत (राम) और स्वर्णपर्वत (लक्ष्मण) के देखते-देखते उन सबको ऐसे मार डालूँगा कि कोई प्राणों के साथ न बचा रहेगा।

सबके प्रशंसनीय महत्त्व से युक्त हे विभीषण ! तुम अविलंब उन राम-लक्ष्मण के निकट चले जाओ। यदि तुम मेरी बात को शिरोधार्य मानते हो, तो शीघ्र ऐसा करो। अब तुम और एक भी बात करने लगोगे, तो तुम्हारा हित नहीं होगा।—यों कुंभकर्ण ने कहा।

हे तात ! तुम जाओ। मुनियों के लिए उपास्य उन राम के निकट जाकर रहो और पुरातन शास्त्रों में विहित विधान के अनुसार मृतकों की अंतिम क्रिया पूर्ण करो। जिससे वे (मृतक) नरक के दुःख से मुक्त हों।

जिस समय जो होना है, वह उस समय होकर ही रहेगा। मिटनेवाला मिटकर ही रहेगा। ऐसे मिटनेवाले के निकट रहकर यदि उनकी रक्षा भी करें, तो भी वह नहीं बचेगा। दोषहीन ज्ञान से युक्त व्यक्ति तुमसे बढ़कर और कौन होगा ? तुम दुःख छोड़कर जाओ। हे चिरंजीवी ! मेरे लिए चिन्ता न करो।

यह कहकर कुंभकर्ण ने विभीषण को पुनः उठाकर अपने वक्ष से लगा लिया। अश्रु से भरी आँखों से दीर्घकाल तक देखता रहा। फिर बोला—तुम्हारा और मेरा भ्रातृत्व-बंधन अब टूट गया। हाय ! और पुनः आलिंगन करके छोड़ दिया। विजय तथा पराक्रम से पूर्ण विभीषण उसके पदतल में गिर पड़ा।

प्रणाम करके विभीषण उठा। उसकी आँखें, मन, मुख—सब सूख गये। प्राण एवं शरीर संकुचित हो गये। फिर, यह सोचकर कि अब अधिक बात करते रहने से कुछ

प्रयोजन नहीं होगा, वहाँ से चल पड़ा। कुंभकर्ण की सेना के सब लोगों ने हाथ उठाकर उसको नमस्कार किया। यों विभीषण प्रभु के निकट वापस आया।

कुंभकर्ण यह सोचता हुआ कि कपट-स्वभाववाले हम राक्षसों को छोड़कर इस (विभीषण) ने हमारी परंपरा से प्राप्त स्वभाव को भी छोड़ दिया। साथ ही बालकोचित युक्ति एवं बुद्धि को भी छोड़ दिया। वह अपनी आँखों से रक्तमय अश्रुओं को यों बहाता रहा कि जल की बाढ़ से भरकर समुद्र में गिरनेवाली नदी भी उन (अश्रुओं) का उपमान नहीं हो सकती।

इधर विभीषण ने रामचन्द्र को नमस्कार करके कहा—हे मेरे पिता! जो पाप से मुक्त होना चाहते हैं, वे ही तो धर्म की ओर प्रवृत्त होते हैं। मैंने अपनी सारी कुशलता दिखाकर कुंभकर्ण को समझाया। तो भी उसका मन नहीं बदला। अपने कुल के अभिमान को वह किंचित् भी नहीं छोड़ सका।

घनी जटाओं के प्रभूत भार से युक्त, घन के समान वर्णवाले प्रभु ने विभीषण की बात सुनकर मंदहास करके कहा—हे मित्र! तुम्हारे सम्मुख तुम्हारे भाई को बाण से विद्ध कर, काटकर गिराना उचित नहीं होगा—यही विचार कर मैंने तुमसे कुछ कहा था। अब हम और क्या कर सकते हैं? विधि के विधान को कौन टाल सकता है?

जब राम यों कह रहे थे, तभी राक्षससेना-रूपी गरजते समुद्र ने वानरसेना-रूपी समुद्र को घेर लिया और भयंकर युद्ध छिड़ गया। तब ऐसी धूल उठी कि तीनों लोक उस (धूल) से भर गये। समुद्र अपने ऊपर पड़नेवाली धूल को हटाकर गरजने लगा।

भूमि पर अश्व दौड़े। गज दौड़े। चक्रवाले दृढ रथ दौड़े। रुधिर की बड़ी-बड़ी नदियाँ पहाड़ों को लुढकाती हुई बह चलीं। कबंध-समुदाय नाच उठे। भूत नृत्य करने लगे। गगन में पताकाएँ भी नाच उठीं। (बाज आदि) पक्षी मँड़राने लगे।

करवाल-समान दाँतोंवाले राक्षस कीचड़ बनकर, मस्तिष्क, मांस, अस्थि, रुधिर, मज्जा आदि के कीचड़ में अपने हाथ के शस्त्रों के साथ ही विलीन हो गये। उन राक्षसों पर वृक्ष, शिला आदि से प्रहार करनेवाले कपि उनके रुधिर-प्रवाह में डूब गये।

राक्षसों ने (बाणों से) प्रहार किया। वानरों ने शैलों से प्रहार किया। राक्षसों ने उन शैलों को अपने हाथों में लेकर पुनः वानरों पर फेंका। वानरों ने उनको पकड़कर दबाकर, चूर कर डाला। राक्षस गालियाँ देने लगे। वानर उनको पकड़कर खींचने लगे। यों युद्ध करनेवाले उन वानरों एवं राक्षसों को देखकर देवता भी चकित हो गये।

जो आँधी वर्षा को छितरा देती है और उस आँधी का सामना करके खड़ा रहनेवाला वर्षा का जल भी इन (वानरों तथा राक्षसों) के युद्ध को आश्चर्य से देखने लगा। वह कुंभकर्ण, जो अपने शूल पर इतना ध्यान रखता है कि श्रीदेवताओं की ओर भी नहीं देखता, रथ चलाता हुआ आ पहुँचा।

प्रलयकालीन प्रभंजन में फँसकर जैसे सब लोक विकल हो उठे हों, वैसे ही वानर धूलि में, रुधिर-प्रवाह में, उज्ज्वल मुखपट्टवाले गजों के पैरों के नीचे और रथों के पहियों में फँसकर मिट गये।

कुंभकर्ण वानरों को पकड़कर पर्वतों पर फेंक देता। धरती पर दे मारता। एक से दूसरे को टकराकर मार देता। पैरों से मार देता। कुछ को पैरों से कुचल देता। कुछ को मुँह में ठूँसकर चबा-चबाकर उगल देता। कुछ के सिर पकड़कर ऐंठ देता। कुछ को धरती पर रगड़ देता। कुछ को अंतरिक्ष में उठाकर फेंक देता। कुछ को मुट्ठी में निचोड़कर अपने शरीर पर उनके रक्त का लेप कर लेता।

कुछ को समुद्र में डाल देता। कुछ को हाथ से उठाकर धरती पर दे मारता। कुछ को अग्नि में डाल देता। कुछ को रथ पर दे मारता। कुछ को उठाकर आठों दिशाओं में छितराकर फेंकता। कुछ को पेड़ों से टकराता और कुछ को शैलों पर पटक देता।

यम भी जिसे देखकर डर जाय, इस प्रकार कुंभकर्ण वानरों को मारने लगा। देवता भयभीत होकर भाग गये। असंख्य पक्षी शवराशियों पर मँड़राने लगे। (उन शवराशियों से) आठों दिशाएँ छिप गईं। पर्वतों का गौरव मिट गया।

वानर यह कहते हुए कि आज दूसरों पर फेंकने के लिए एक भी वृक्ष या शैल न बचेगा, सबको आज ही इस कुंभकर्ण पर फेंक देंगे, आज ही विजय पायेंगे सब वृक्षों और शैलों को उठा-उठाकर फेंकते रहे। पर, कुंभकर्ण उन सबको अपनी दोनों भुजाओं पर ही सँभालता हुआ खड़ा रहा।

पवन के वेग से फेंके गये वृक्ष, शैल, मूल, तृण आदि सब चूर-चूर हो गये। किसी दिशा में उठाकर फेंकने के लिए कुछ न पाकर वानर दाँतों को कटकटाते हुए कुंभकर्ण पर जा टूटे और मरकर गिरे।

कुछ वानर एक साथ परामर्श करके, पर्वत पर उतरनेवाली चिड़ियों के झुण्ड के समान दौड़कर कुंभकर्ण पर चढ़ जाते और अपने हाथ दुखाते हुए उसपर मुष्टि से घात करते, दाँतों से काटते, नाखूनों से चीरते और सबको विफल पाकर उतरकर भाग जाते।

नील ने एक ऐसे अनुपम शैल को, जिसका मूल धरती में दूर तक गड़ा हुआ था, प्रलयकालिक उग्र प्रभंजन के वेग से समूल उखाड़ लिया और अंतरिक्ष से गिरनेवाला जैसे कोई अग्निपिंड हो, वैसे ही उस शैल को घुमाकर कुंभकर्ण पर फेंका। कुंभकर्ण ने त्रिशूल से उसे चूर-चूर करके मंदहास किया।

तब नील, यह सोचकर कि यदि दूसरे शैल को खोजने लगेंगे, तो अन्य वानरों को हानि होगी, अपनी भुजाओं को शस्त्र बनाकर (कुंभकर्ण के) रथ के सम्मुख दौड़कर गया और कुंभकर्ण पर ऐसे घूँसे मारे और पदाघात किये कि उनसे जो शब्द निकला, उसमें समुद्र-घोष एवं विविध वाद्यों के शब्द भी दब गये।

नील के हाथ शिथिल पड़ गये। पैर दुखने लगे। अपने उद्देश्य में विफल होने से नील यों उग्र हुआ, जैसे घी के गिरने से अग्नि भड़क उठी हो। ऐसे नील को, उसके निश्शस्त्र होने के कारण, कुंभकर्ण ने अपने त्रिशूल से न मारकर बायें हाथ से मारा।

अंगद ने उस दृश्य को देखकर, वहाँ स्थित एक महान् शैल को यों उखाड़ लिया कि भूमि ने उस भार से मुक्त होकर अपनी पीठ की ऐंठन सीधी कर ली और उसे कुंभकर्ण पर फेंका। सातों लोकों के निवासी यह विचारकर कि रावण का भाई अब मरा, उस

(अंगद) का जय-जयकार करने लगे। किन्तु, कुंभकर्ण ने उस शैल को अपने एक अनुपम कंधे से रोक लिया।

तब उस शैल के असंख्य टुकड़े होकर बिखर गये। वानरसेना यह सोचकर कि अब हमसे कुछ नहीं हो सकेगा, अस्त-व्यस्त हो उठी। किन्तु, अंगद दृढता से खड़ा रहा और क्रोध से भरा रहा।

तब कुंभकर्ण ने तीक्ष्ण नोकवाले एक वज्रमय दंड को अपने बायें हाथ में उठाकर 'इसके प्राण लो' कहकर अंगद पर फेंका, अंगद ने उसे अपने विशाल हाथ से पकड़ लिया। वह देखकर देवों ने उसका जय-जयकार किया।

अंगद उस दंडायुध को घुमाता हुआ बोला—मैं इस महान् बलशाली राक्षस के प्राण पिऊँगा। रोष से अग्निकण उगलते हुए नयनों से उसे देखा। फिर, ज्यों वज्र ही गरजता हुआ पर्वत पर दौड़ा हो, त्यों कुंभकर्ण के पताका से भूषित रथ पर चढ़कर उसके सामने जाकर खड़ा हो गया।

जब अंगद उसके सामने आकर खड़ा हुआ, तब कुंभकर्ण ने अग्नि उगलती आँखों से उसे देखा और प्रश्न किया—तू वानरपति (सुग्रीव) है? या उसका पुत्र (अंगद)? या तू वह (हनुमान्) है, जिसने हमारे नगर में आग लगाई थी? मेरे हाथ मरने के लिए आया हुआ तू कौन है? शीघ्र बता!

तब अंगद ने कहा—जिस वाली ने तुम्हारे अग्रज रावण को अपनी पूँछ से बाँधकर चारों दिशाओं में घुमाया था और त्रिशूलधारी शिवजी के चरण-कमलों की पूजा की थी, उसी वीर का पुत्र हूँ मैं। तुझे अपनी पूँछ में बाँधकर ले जाऊँगा और शत्रुओं साथ युद्ध में निरत रामचन्द्र के निकट जाकर उनके चरणों को नमस्कार करूँगा।

तब कुंभकर्ण ने कहा—जिस राम ने आड़ में खड़े रहकर तेरे पिता को मारकर तेरा बड़ा उपकार किया, उसके शत्रु को तू नहीं मारेगा, तो लोग तेरी निन्दा करेंगे! भला, तूने बहुत सुन्दर कार्य करने का विचार किया है! सच्चे वीर तुझे प्रणाम करेंगे!

तू जो यहाँ आया है, वह मुझे अपनी पूँछ में बाँधकर राम के पास ले जाने के लिए नहीं, किन्तु, देवों के वक्षों में मेरा जो त्रिशूल चुभा था, उसके तुम्हारी पीठ तक चुभने पर पँछ के जैसे ही अपने हाथों और पैरों को लटकाये पड़े रहने के लिए ही आया है।

जब उस कुंभकर्ण ने यों कहा, तब अंगद ने अग्निमय आँखों से उसे देखा और अपने सारे भुजबल को लगाकर वज्रदंड को कुंभकर्ण पर फेंका। तब ऐसा शब्द सुनाई पड़ा, मानों पर्वत पर वज्र गिरा हो। सब लोग भयत्रस्त हो गये। कुंभकर्ण की देह से टकराकर वह वज्रदंड शत खंड होकर चिनगारियों के साथ बिखर गया।

ज्यों ही वह दंडायुध टूटा, त्यों ही अंगद ने, यह सोचकर कि अब इसे हाथों से पकड़कर मारूँगा, उसे पकड़ने के लिए किंचित् झुका। तब कुंभकर्ण ने रुष्ट होकर अंगद पर चोट की। अंगद मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। तब एक पल में हनुमान् वहाँ आकर प्रकट हुआ।

कुंभकर्ण अपने हाथ के शूल को अंगद के वक्ष में गड़ाने ही जा रहा था कि इतने में हनुमान् ने एक शैल को उठाकर यों फेंका कि वह शैल कुंभकर्ण के ललाट पर ऐसे जा चुभा, मानों वह पहले से ही उसके माथे पर रखा हुआ हो। और, (हनुमान् ने) पवित्र-मूर्त्ति रामचन्द्र का जय-जयकार किया।

सिर पर दूसरा एक सिर हो—यों कुंभकर्ण के सिर पर वह शैल चुभा रहा। कुंभकर्ण ने एक हाथ से उस शैल को निकालकर हनुमान् के वक्ष पर दे मारा, तो जैसे लुहार की निहाई पर हथौड़ा मारा गया हो, वैसे ही उससे चिनगारियाँ बिखर पड़ीं। फिर, (कुंभकर्ण ने) भुजा पर ताल ठोककर कोलाहल किया।

तब कुछ निर्भय वानर-वीर अंगद को उठाकर ले गये। उसके बाद हनुमान् ने सारे अंतरिक्ष को भरनेवाले एक महान् पर्वत को उठाकर दोषहीन बल से पूर्ण कुंभकर्ण की ओर देखकर कहा—

मैं तुम पर यह पर्वत फेंकनेवाला हूँ। क्षणभर में तुम्हारा सारा बल मिट जायगा। यदि तुम शक्तिशाली होकर इसका निवारण कर सकोगे, तो सब लोग तुम्हारे पराक्रम से परिचित हो जायेंगे। फिर, मैं तुमसे नहीं लड़ूँगा। हट जाऊँगा। तुम्हारा नाम संसार में फैल जायगा।

इन बातों को सुनकर अपना मुँह खोलकर वह ऐसे हँसा, जैसे पर्वत की कोई कंदरा हो, या यम का ही फटा हुआ मुँह हो। फिर बोला—तेरे इस शैल से आहत होकर यदि मैं किंचित् भी विचलित हो जाऊँ, तो मैं हार मान लूँगा। तेरे बल के सामने मेरा बल नीचा हो जायगा।

तब हनुमान् ने, यह कहते हुए कि अरे! यदि तू बलवान् है, तो खड़ा रह। यदि नहीं, तो प्राण लेकर भाग जा—उस शैल को कुंभकर्ण पर फेंका। उस पर्वत के वेग से मेघ भी छितरा गये। कुंभकर्ण ने अपने भुजबल से उस पर्वत को रोक लिया। तब सारे संसार ने भयभीत होकर देखा कि वह पर्वत सौ टुकड़े होकर बिखर गया।

कुंभकर्ण को अशिथिल भाव से स्थिर खड़े देख हनुमान् ने सोचा—'इसका बल ऐसा नहीं कि उसका अनुमान लगाया जा सके। इसके सामने अष्ट कुलपर्वत भी नहीं ठहरेंगे। किसी से यह विचलित नहीं होगा। रामचन्द्र के सुन्दर बाण ही यदि इसे भेद सकें, तो भेदें।'

देवता यह सोचकर विचलित हुए और काँपने लगे कि (वानरों की) सत्तर समुद्र सेना में से जो मर गये हैं, उनको छोड़कर जो अभी शेष रह गये हैं, वे सब आज ही इस (कुंभकर्ण) के त्रिशूल नामक सूली पर चढ़ जायेंगे और सारा संसार मुहूर्त्तकाल में ही अस्त-व्यस्त हो जायगा।

वानरों ने कुंभकर्ण पर आक्रमण किया। आक्रमण करनेवालों के ही हाथ शिथिल हो गये, किन्तु कोई उसे न हिला सका, न पीडित ही कर सका। उस युद्ध में एक-एक वानर के पद-चिह्न तक को मिटाकर उसने अपने यश को नया कर लिया।

यम को भी त्रस्त करनेवाले कुंभकर्ण ने ऊँची ध्वनि में पुकारा—'वानर मर गये,

किन्तु तपस्वी कहलानेवाले वे दोनों अभी तक दृष्टिगत नहीं हुए। वे क्या यहीं हैं? या इस लंका में नहीं हैं। वे कहाँ गये? कहाँ गये?'—और, अपने ऊँचे भुज पर ऐसा ताल ठोका कि देवता भी भय से विकल हो गये।

युद्ध में असंख्य वानर मरे, तो शेष वानर प्राण लेकर भागे और युद्धक्षेत्र शून्य हो गया। जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र उमड़ पड़ता है, वैसे ही रक्त का प्रवाह उमड़ चला।

देवता लोगों को, जो यह कहकर चिंतित हो रहे थे कि 'पर्वत और वृक्ष सब समाप्त हो गये, वानरों की विजयी सेना आधी से कम रह गई है', आनन्दित करते हुए उपमा-रहित सौमित्रि आ पहुँचे।

लक्ष्मण ने धनुष का टंकार किया। उससे अनेक राक्षसियों के स्वर्ण-कंकण टूट गये (अर्थात्, अनेक राक्षस-वीर मरे)। जैसे धरती पर कोई वज्र गरज उठा हो, वैसे ही उसकी ध्वनि चारों दिशाओं को बहरा बनाती हुई फैल गई। भूत मांसखंड खाना छोड़कर हाथ उठाकर नाचने लगे।

लक्ष्मण के द्वारा छोड़े गये पंख-सहित वाण, कुछ आहार न पाकर क्रोध से चारों दिशाओं में, अपने मुख से लुहार की भट्टी के समान चिनगारियाँ उगलते हुए गये और दिग्गजों के शरीरों में गड़कर उनका रक्त पीकर तृप्त हुए।

कुछ शरों ने समुद्र के समान राक्षसों के कंठ काट दिये। कुछ शर उनके सिरों को भेदकर, युद्धभूमि में ही न गिरकर उन सिरों को लिये विशाल दिशाओं में उड़ गये और ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ, मानों सिरवाले वाण उड़ रहे हों।

सूर्य के समान कुछ वाण मुखपट्ट से भूषित पर्वताकार मत्तगजों के शरीर को भेदकर निकल जाते, फिर युद्धक्षेत्र से जिनके पैर उखड़ रहे थे, वैसे राक्षसों के सिर लुढ़का देते और कंदराओं में जा छिपनेवाले सर्पों के समान पर्वतों में जाकर अदृश्य हो जाते थे।

जैसे बिजलियों का झुंड जा रहा हो, वैसा दृश्य उपस्थित करते हुए स्वर्णमय तीक्ष्ण अग्रभाग से युक्त वाण ऐसे वेग से जा रहे थे कि सेनाग्र में स्थित (राक्षस-) वीरों के मुख पर एवं सेना के पश्चात् भाग में स्थित वीरों के कंठ के पीछे की ओर—उनका वेग समान रूप में होता था।

लक्ष्मण के वाण, नगाड़ों के मध्य जाकर गड़ जाते। काहल वाद्य में प्रविष्ट होकर उसे बजानेवाले के वर्त्तुलाकार मुँह के भीतर गड़ जाते। शंख आदि बजानेवालों के हाथों में गड़ जाते। हाथियों के कंठों में गड़ जाते। रथों में गड़ जाते। घोड़ों के सिर पर गड़ जाते। और, देखनेवालों की आँखों में गड़ जाते।

लक्ष्मण के बाणों से गजों के दाँत टूटे। पूँछ और कान कटे। अग्नि उगलनेवाली आँखें बिध गईं। सूँड़ें कट गईं। युद्धभूमि में शीघ्रता से आगे बढ़नेवालों के पैर कट गये। उनके सिर कटकर यों लुढ़क गये, मानों पर्वत ही लुढ़क गये हों।

धरती और गगन पर खुर बढ़ाकर जानेवाले अश्व, निरंतर जानेवाले (लक्ष्मण के) वाणों के अपने सिर पर लगने से निष्प्राण हो गिर जाते। कुछ वक्ष पर शर लगने से मरकर गिर पड़ते।

(लक्ष्मण के) उन असंख्य बाणों के लगने से रथों में बँधे अश्व मरे। उनपर स्थित सारथि और धनुर्धारी रथी मर मिटे। रुधिर के प्रवाह में वे रथ धँसकर आगे बढ़ नहीं पाते हुए विध्वस्त हो गये।

अवश्यमेव फल देनेवाली विधि के समान (लक्ष्मण के) बाणों के लगने से अनेक सिर कटकर गिरे। कंठ कट गये। (राक्षसों के) मुँह खुल गये, जैसे कोई पेटी खुल गई हो। रुधिर पर उतरानेवाले सिर ऐसे लगते थे, मानों भूतों के द्वारा गागर भरे जा रहे हों या रक्तसमुद्र पर नौकाएँ चल रही हों।

'तुडि' नामक भेरी-वाद्यों में, उनके फटे चर्म के मध्य चामर इस प्रकार धँसे पड़े थे, मानों सर्वलोकनायक (राम) के विजय-मंगल मनाने के दिन के लिए पुरवों (मिट्टी के छोटे पात्रों) में अनाज के अंकुर उगाये गये हों।[1]

जलते बाणों के अपने मुख पर लगने से हाथियों की सूँड़ें कट गईं और हाथी-वानों के मर जाने से, भली भाँति शिक्षित होने पर भी वे हाथी प्रभंजन के समान वानर-सेना में घुसने लगे।

वसंत के नायक मन्मथ की समता करनेवाले लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों से आहत होकर रोष से भरे उज्ज्वल दाँतोंवाले राक्षस जो शस्त्र उनपर फेंकते, वे जिन-जिन दिशाओं में जाते, वहाँ अग्नि की ज्वालाएँ भड़क उठती थीं और ऐसा दृश्य उपस्थित होता था, मानों नक्षत्र ही गगन से चूर-चूर होकर झर रहे हों।

सान पर चढ़ाये हुए (लक्ष्मण के) अति तीक्ष्ण बाण, कतरे हुए केसरोंवाले तथा दौड़नेवाले अश्वों के खुरों को भेदकर निकल जाते थे और अश्वारोही वीरों के पीठ दिखा-कर भागने पर उनकी ध्वजाओं को काट देते थे। फिर, सुन्दर रथसमूह को भी विनष्ट कर देते थे।

यद्यपि राक्षस निर्दय थे, धर्म से भ्रष्ट थे, तथापि (वीरमृत्यु पाने पर) अप्सराएँ उनका आलिंगन कर लेती थीं। जिस प्रकार हमने (शास्त्रों से) यह जाना है कि तत्त्वज्ञान होने से कर्मों का बंधन टूट जाता है, उसी प्रकार अब हमने यह भी देखा कि वीरता-गुण पापों को मिटा देता है।

अवारणीय वर्षा के समान आनेवाले (लक्ष्मण के) बाणों से निहत होकर पाप-मय क्रूर कार्य करनेवाले राक्षस भी मृत होकर स्वर्ग में जा पहुँचे। तो अब उस स्वर्ग की अपेक्षा और उत्तम वस्तु क्या हो सकती है?

लक्ष्मण के बाण, जो मानों प्रत्येक व्यक्ति से पृथक्-पृथक् वस्तु माँगनेवाले के समान थे, किसी के हाथ को, किसी के सिर को और किसी के शब्दायमान वीरवलय-धारी चरणों को, किसी के कंधों और अन्यान्य अंगों को काटकर ले जाते थे। फिर, एक भी शत्रु को न पाकर दरिद्र व्यक्ति के समान हो गये।

(लक्ष्मण के द्वारा प्रयुक्त) बाणों ने कुछ के करों को, कुछ के कानों को, कुछ की नासिकाओं को, कुछ के पैरों को और कुछ की आँखों को हर लिया। वे बाण ऐसे थे, जैसे

१. मंगल-पर्वों के समय मिट्टी के पुरवों में नवधान्यों के अंकुर उगाने की प्रथा है।

पृथ्वी पर दानी व्यक्तियों के द्वारा दी जानेवाली वस्तु के अनुकूल कविता करनेवाले तमिल-भाषा के कवियों की वाणी ही हों।[1]

धर्मदेव के प्यारे प्राण के समान स्थित लक्ष्मण ने जो शर छोड़े, उनसे राक्षस भय-विकल हो, यह सोचकर कि यदि हम एक क्षण भी यहा रहेंगे, तो मिट जायेंगे, छिन्न-भिन्न होकर भागने लगे। वे सब दिशाओं में बहनेवाले रुधिर-प्रवाह के समान ही झुंड-के-झुंड भाग चले।

पुलस्त्य मुनि के वंशज उस राक्षस (कुंभकर्ण) ने युद्ध में निहत असंख्य राक्षसों को एवं लक्ष्मण के धनुःकौशल को देखा और सहस्र बार कह उठा कि त्रिपुर-दाह करनेवाले शिवजी तथा यही (लक्ष्मण ही) युद्ध में परस्पर एक दूसरे के समान हो सकते हैं (और कोई नहीं)।

फिर, वह (कुंभकर्ण) विशाल तल (पीठ) पर स्थित सारथियों के द्वारा सब दिशाओं में चलाये जानेवाले, पवन एवं मन से भी अधिक वेगवाले, भीषण ललाट-जैसी ध्वजा के सिंहों के निरंतर गर्जन से भरे तथा उत्तर दिशा में स्थित सुन्दर स्वर्णपर्वत (मेरु) के समान अपने रथ को लिये आया।

तब हनुमान् ने विचार किया कि जब वक्रदंतों से युक्त राक्षस बड़ी धुरीवाले रथ से युद्ध करेगा, तब (लक्ष्मण का) धरती पर खड़े रहकर युद्ध करना उचित नहीं होगा। फिर, लक्ष्मण के निकट जाकर कहा—'हे अनुजदेव ! मेरे कंधे पर आरूढ हो जाइए।'

बाल-सिंह के सदृश लक्ष्मण (हनुमान् के कंधे पर) आरूढ हो गये। देवों ने आशीर्वाद किया। वानर-संघ ने ऊँची ध्वनि से जयघोषणा की। उस हनुमान् की विशाल भुजाएँ यों उत्फुल्ल हो उठीं कि सहस्र अश्वों से जुते रथ की अपेक्षा भी वह महान् दिखाई पड़ा।

अपना उपमान स्वयं ही बने हुए हनुमान् के कंधे पर पुंजीभूत कांति बनकर बैठे हुए लक्ष्मण ऐसे शोभायमान हुए, जैसे स्वर्णमय पर्वत रजत-पर्वत पर आसीन हो। इसके अतिरिक्त और क्या उपमान हो सकता है ?

तब वीर लक्ष्मण के साथ युद्ध करने के विचार से राक्षस (कुंभकर्ण) ने असंख्य बाणों से भरे तूणीर को (पीठपर) बाँधकर, अपनी भारी भुजा के योग्य मेरु-पर्वत समान एक गांठदार धनुष को यों झुकाया कि इन्द्रधनुष भी भीत हो गया।

कुंभकर्ण ने लक्ष्मण से कहा—'तुम राम के भाई हो। मैं रावण का भाई हूँ। हम दोनों अब युद्ध करनेवाले हैं। इसे देखने के लिए देवता भी आये हैं। इस अद्भुत युद्धक्षेत्र में हम अपनी वीरता के योग्य महान् कौशल दिखायेंगे।

हमारे सुकृत के कारण हमारे यहाँ जो बहन उत्पन्न हुई उस निरपराध के नाक-कान को काटनेवाले हे वीर ! अब मैं तुम्हारे उन हाथों को काटनेवाला हूँ, जिन हाथों से तुमने उस (शूर्पणखा) के केशों को पकड़कर खींचा था। यदि हो सके, तो अपने को बचाओ।

---

१. लक्ष्मण के बाण कवियों के जैसे थे। जिससे जितना मिल सकता है, उतना पाने के योग्य कार्य करते थे। —अनु०

जैसे अंधकार से ही निर्मित हो, वैसे कुंभकर्ण ने जब यों कहा, तब बल नामक गुण से निर्मित भुजावाले लक्ष्मण ने कहा—तुम्हारे वचन का उत्तर मैं धनुष से ही दूँगा। अपने पराक्रम को लज्जित करते हुए अपने वचनों से नहीं।

तब कुंभकर्ण ने आँखों से अग्निकण उगलते हुए उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण नोकवाले एक ही साथ धनुष पर चढ़ाकर अट्ठारह बाण छोड़े। तब देवता यह देखकर त्रस्त हुए कि गगन फट गया, पर्वत छिन्न-भिन्न हुए। पृथ्वी के दो टुकड़े हुए।

जो बाण चार दाँतोंवाले मत्तगज (ऐरावत) के मस्तक में प्रविष्ट हुए थे, जिन्होंने देवों के बल को हर लिया था और जो बिजली के समान गतिशील थे, ऐसे उन अत्युष्ण अट्ठारह शरों को लक्ष्मण ने चार बाणों से काट डाला।

जब लक्ष्मण ने उसके बाणों को काट दिया, तब कुंभकर्ण ने अपने उस बाण का, जो उसे ब्रह्मा से प्राप्त हुआ था, जो सहस्ररूप था और जिसने दीर्घकाल से सब देवों को दबाकर रखा था, प्रयोग किया और कहा—'यदि शक्ति हो, तो इसे रोक लो।'

लक्ष्मण ने देखा, जहाँ भी दृष्टि जाती है, वहाँ सब कुछ शरों की वर्षा से जल रहा है। फिर, उन्होंने एक दिव्य बाण छोड़कर उस शर को काट डाला।

तब उस क्रूर राक्षस ने उग्रवेगवाले बारह बाण हनुमान् के शरीर में गड़ा दिये। दो वेगवान् बाणों को लक्ष्मण पर छोड़ा और एक साथ, पचास-पचास और सौ-सौ बाणों को चढ़ाकर सारे अंतरिक्ष एवं दिशाओं को ढक दिया।

लक्ष्मण ने अंतरिक्ष को आवृत कर फैले हुए कुंभकर्ण के बाणों को अपने शरों से काटकर बिखेर दिया। उसके रथों में जुते रहनेवाले हाथियों, सिंहों तथा बड़े भूतों को झुंडों में मारकर गिरा दिया और फिर उसके रथ को भी विध्वस्त कर दिया।

मानों सहस्रकिरण (सूर्य) के चारों ओर स्थित ग्रह विध्वस्त हो गये हों—यों (कुंभकर्ण से आरूढ) वह रथ विध्वस्त हो गया। उसे चलानेवाले सारथि मर मिटे। उसका धनुष यों टूटा, मानों सजल मेघों के मध्य ऊँचा दिखाई पड़नेवाला इन्द्रधनुष ही टूट गया हो।

तब देवता वह दृश्य देखकर यह सोचते हुए विस्मित होकर खड़े रहे कि लक्ष्मण ने (कुंभकर्ण के) रथ में जुते शरभ, सिंह, हाथी आदि को क्या शर-प्रयोग करके ही मारा या मंत्रोच्चारण करके या शाप देकर निहत किया ?

रथ और धनुष से हीन हो खड़ा रहनेवाला वह कुंभकर्ण समुद्र के समान उमड़ उठा। यह कहकर कि 'इस (लक्ष्मण) के प्राण पीऊँगा', सामने आकर अपने हाथ में उस त्रिशूल-रूपी यम को उठाया, जो (त्रिशूल) त्रिलोक-विजय का चिह्न-सा बन गया था।

प्रवहमाण जलमय समुद्र जैसे उमड़कर चला हो, वैसे रोष से भरा हुआ कुंभकर्ण नीचे की ओर बढ़ा, तो विशाल धरती भी फटकर दो भागों में बँट गई। तब लक्ष्मण यह सोचकर कि 'यह (कुंभकर्ण) पैदल ही आ रहा है, अतः मुझे वाहन पर सवार होकर इससे युद्ध करना उचित नहीं है' हनुमान् के कंधे पर से उतर पड़े।

इसी समय, कुंभकर्ण की सहायता के लिए रावण ने जो सेना भेजी थी, वह

गरजते समुद्र के समान उमड़कर सुमित्रा-सिंह (अर्थात्, सुमित्रा के पुत्र सिंह-समान लक्ष्मण) को घेरकर कोलाहल कर उठी। वह सेना अबतक निहत राक्षससेना से दुगुनी थी।

वानरसेना अस्त-व्यस्त होकर भागी। लक्ष्मण, चारों ओर से आनेवाले भीषण शस्त्रों को तोड़ते हुए अवार्य पराक्रम से संचरण कर रहे थे। निष्करुण होकर वे उस राक्षससेना-रूपी काले समुद्र में घुस पड़े।

सद्योविकसित पलाश-पुष्प के समान स्थित रोष-भरी आँखोंवाले राक्षसों के लाल-लाल केशों से युक्त काले सिर-रूपी पर्वतों के बाँधों के मध्य से रक्तवर्ण पिघले ताम्रद्रव के समान रुधिर-धारा बह चली और विशाल समुद्र से जा मिली।

हाथियों की सूँड़ें, अश्वों की टाँगें, पवनगति से दौड़नेवाले रथों के चक्र, राक्षसों के सिर—सब, कटे अंगों से बहनेवाले रुधिर-प्रवाह की भौंरों में गिरकर नाच उठे। घनी शवराशि-रूपी किनारों को पार कर रक्त-प्रवाह आगे नहीं बढ़ सका।

लक्ष्मण ज्यों-ज्यों करवाल, लौह-मूसल, गदा, भाले, परसे आदि शस्त्रों को तथा चारों ओर बहनेवाले विविध शस्त्रों को अपने शरों से ज्यों-ज्यों काट-काटकर बिखेरते थे, त्यों-त्यों उन शस्त्र-खंडों के लगने से और भी असंख्य शस्त्र कट जाते थे।

कुंडल, किरीट, हार, रत्नों की लड़ियाँ, वीर-कंकण, अंगद, कटक आदि आभरण लक्ष्मण के शरों से कटे शस्त्रखंडों से उड़ाये जाकर गगन में यों चमक उठे, ज्यों सूर्य, चंद्र और नक्षत्र चमक रहे हों।

विशाल छत्रों, चामरों, दीर्घ ध्वजाओं, शरों, धनुषों, ढालों तथा मयूरपंखों के छत्रों को, जो रक्तधारा में बहे जा रहे थे, भूतगण निकाल-निकालकर किनारे पर ढेर लगा रहे थे।

जब यों भयंकर युद्ध हो रहा था, तभी दीर्घ तथा उज्ज्वल दाँतोंवाला कुंभकर्ण दूसरी दिशा में जाकर वहाँ युद्ध में रत सूर्यपुत्र (सुग्रीव) के साथ लड़ने लगा। देवता वह युद्ध देखने के लिए आ एकत्र हुए।

घनी किरणोंवाले (सूर्य) के पुत्र (सुग्रीव) ने आँखों से अग्निकण उगलते हुए और मुँह से धुआँ निकालते हुए रोष से भरकर एक बड़े शैल को उखाड़कर राक्षस के कंधे पर यों मारा कि देखनेवालों ने समझा—'अब इस राक्षस के कंधे टूट गये।'

सुग्रीव के द्वारा फेंके गये पर्वत से जो गज धरती पर गिरे वे और राक्षससेना में स्थित गज आपस में लड़ पड़े। जिस सुग्रीव ने ऐसे ऊँचे पर्वत को उठा लिया, उसके लिए न उठाने योग्य पर्वत और कौन होगा?

उस पर्वत से गिरे अजगरों ने राक्षससेना के हाथियों को पकड़ लिया। पर कुंभकर्ण ने उस पर्वत को अपने एक हाथ से पकड़ लिया। वह दृश्य देखकर राक्षस हर्ष-ध्वनि कर उठे।

अपार बल से युक्त कुंभकर्ण ने एक हाथ से उस पर्वत को पकड़कर, यह कहते हुए 'अरे! तूने सारा बल लगाकर जिसे फेंका है, क्या वह यही पर्वत है?' उसे पीसकर धूल बना दिया और फूँककर उड़ा दिया।

तब सुग्रीव सोचने लगा—'क्या मैं एक दूसरा पर्वत ढूँढ़कर लाऊँ ?' इतने में कुंभकर्ण ने 'मारो !' कहते हुए अपने उस शूल को फेंका, जो अपार तपस्या से संपन्न मुनि के शाप-वचन के समान था।

वह शूल गगन-मार्ग से आया। देखनेवाले बोल उठे '(सुग्रीव) अब मरा, मरा !' इतने में हनुमान् ने झपटकर उसे पकड़कर तोड़ डाला। धर्म की रक्षा करनेवाला हनुमान् क्या (सुग्रीव पर शस्त्र गिरते) चुपचाप देख सकता था ?

हनुमान् ने जब उस शूल को तोड़ा, तब उससे निकली ध्वनि उस ध्वनि के समान थी, जो (ध्वनि) उस दिन मिथिलापुरी में सुन्दरी सीता के प्रति आकृष्ट विष्णु (के अवतार राम) के द्वारा सर्वज्ञ (शंकर) के धनुष के तोड़े जाने पर निकली थी।

राक्षस-कुल का वीर (कुंभकर्ण) हनुमान् के हस्त-कौशल को देखकर आश्चर्य-चकित हुआ और बोला—तुम्हारा बल कथन एवं विचार से परे है। सब लोकों में तुम्हीं एक ऐसे विलक्षण व्यक्ति हो कि असंभव कार्य भी कर सकते हो। तुम्हारे इस बल का उपमान क्या हो सकता है ?

फिर, कुंभकर्ण ने हनुमान् से कहा—युद्ध वही है, जो तुम्हारे साथ किया जाय। यदि अब भी तुम मेरे साथ युद्ध करने को सन्नद्ध हो, तो आओ। मैं तुम्हारे कहने के अनुसार ही करूँगा। किन्तु, हनुमान् ने यह कहा कि 'पहले मैंने प्रतिज्ञा कर दी है कि मैं तुमसे युद्ध नहीं करूँगा। अतः, उस प्रतिज्ञा को तोड़ना ठीक नहीं', और वहाँ से हट गया।

शूल के टूट जाने पर कुंभकर्ण के हाथ में और कोई शस्त्र नहीं रहा। तो भी वह अपने स्थान पर अविचल रहा। तब सूर्यपुत्र (सुग्रीव) ने सामने बढ़कर कुंभकर्ण को अपने दृढ हाथों से मारा।

तप्त ताम्र के समान आँखोंवाले कुंभकर्ण ने रोष से यह कहकर कि 'तुम्हारा पराक्रम बहुत सुन्दर है। फिर भी, तुम्हारा गर्व आज से समाप्त हो जायगा', सुग्रीव को ऐसी दृढता से पकड़ लिया कि कुछ कहा नहीं जा सकता।

वे दोनों घोर युद्ध करते हुए पैंतरे बदलते रहे। तब देवता भी उन्हें ठीक-ठीक नहीं देख पाये। धुआँ उठकर सब दिशाओं को आवृत कर बढ़ चला। उस समय जो अग्नि निकली, उससे वज्र भी जल उठे। उन दोनों के मुँहों से रुधिर बह चला। तो भी वे किंचित् भी शिथिल नहीं हुए।

उन्होंने एक दूसरे को अवरुद्ध करके डाँटा। क्रमशः आक्रमण करके एक दूसरे पर झपटे। कुंभकर्ण ने अपना सारा बल लगाकर सुग्रीव को दबाया। उससे सुग्रीव मूर्च्छित हो गया।

तब कुंभकर्ण ने सोचा—'यदि मैं इस (सुग्रीव) को उठा ले जाऊँ, तो यह घोर युद्ध आज से समाप्त हो जायगा। राजा के न रहने पर सारी वानर-सेना बिखर जायगी। अतः, इससे उत्तम विचारणीय कार्य और कोई नहीं है।' फिर, वह सुग्रीव को उठाये लंका की ओर जाने लगा।

हर्षध्वनि करनेवाले बालपक्षियों की माता को कोई बाज उठा ले जाय, तो जिस

प्रकार बालपक्षी करुण ध्वनि करके रो पड़ते हैं, उसी प्रकार कुंभकर्ण के सुग्रीव को उठाकर जाने के समय सब वानर उष्ण निःश्वास भरते और हाथों से सिर धुनते हुए मुक्तकंठ रो पड़े। राक्षस आनन्द-ध्वनि कर उठे।

देवता भी काँप उठे। वानर-सेनापतियों के शरीर से स्वेद बह चला। उनकी जीभ सूख गई। उनकी आँखें धँस गईं। उनका मन विकल हो गया। वे दुःख से यों खड़े रहे, मानों निष्प्राण हो गये हों।

मन को विकल करनेवाला तथा भीषण रोष से भरा कुंभकर्ण, अनायास ही (चंद्र को) ग्रसनेवाले (राहु-) सर्प की समता करता था और उमड़ती किरणोंवाले सूर्य का पुत्र (सुग्रीव) उस सर्प से ग्रस्त चंद्र की समता करता था।

सब दिशाओं को उज्ज्वल करनेवाले सूर्य का पुत्र (सुग्रीव) पापी कुंभकर्ण के मेघ-समान आकार में किंचित् प्रकट और किंचित् ओझल होता हुआ यों दिखाई पड़ा, ज्यों मेघ के पीछे चंद्रमा ओझल हो रहा हो।

हनुमान्, जिसके पैर काले समुद्र को पार कर सके थे, अपनी इस प्रतिज्ञा को स्मरण करके कि 'मैं कुंभकर्ण से युद्ध नहीं करूँगा' उस (कुंभकर्ण) का सामना नहीं कर सका और यम के निवासभूत अपने विशाल हाथों को मलता हुआ कुम्भकर्ण के पीछे-पीछे जाने लगा।

तब वानर सहस्र नामोंवाले रामचन्द्र के चरणों पर जाकर गिरे और कहने लगे—कुम्भकर्ण उज्ज्वल किरणोंवाले सूर्य के पुत्र को अपने हाथों से बाँधकर ले गया। हाय! अब हमारा राजा कहाँ है?

मेघ-सदृश शरीरवाले प्रभु, अग्नि से भी अधिक रक्तवर्ण नेत्र के साथ, अपने हाथों में अग्निमय शरों तथा धनुष को लेकर एक क्षणकाल में लंकानगर के विशाल द्वार पर जा पहुँचे।

राम अपने मन में यह सोचते हुए कि 'यदि कुम्भकर्ण मेरे प्राणसम आप्त मित्र सुग्रीव को ऊँची पताकाओं से अलंकृत लंकानगर में ले जायगा, तो अनर्थ होगा। अब मैं शरों से (लंका के) सब मार्गों को रुद्ध कर दूँगा', शरों की वर्षा आरंभ कर दी।

राम के शर अंतरिक्ष में भर गये। उनसे सब दिशाएँ अवरुद्ध हो गईं। उष्ण-किरण (सूर्य) का प्रकाश भी भूमि पर पड़ने से रुक गया। गगन में संचरण करनेवाले मेघ अंतरिक्ष से हट गये।

मन से भी अधिक वेग से गगन-मार्ग से होकर चलनेवाला कुम्भकर्ण, जो रोष से भरा था और क्रूर पराक्रम से युक्त था, राम के शरों से निर्मित प्राचीर के निकट गया और यह सोचकर कि उन शरों को हटाना अब असंभव है, लौट पड़ा।

कुम्भकर्ण ने उन प्रभु को देखा, जो मुख, चेहरा, नयन, कर और चरण नामक कमलों से युक्त, मनोहर इन्द्र-धनुष से संयुत तथा धरती पर संचरण करनेवाले मेघ के समान दृश्य उपस्थित करते थे।

तब कुम्भकर्ण के वक्र अधरों से धुआँ निकल पड़ा। उसके अधर क्रोध से काँप उठे। रोष से उसकी भौंहें चढ़ गईं। उसकी आँखें चिनगारियाँ उगलने लगीं। उसके महान् गर्जन की ध्वनि से पर्वत चूर हो गये।

कुम्भकर्ण बोला—'कदाचित् तुमने मुझे भी वह कबंध समझा। या फलों को तोड़कर खानेवाला मर्कट वाली समझ लिया। इसीलिए इस सुग्रीव के प्राणों की रक्षा करने के विचार से मुझपर आक्रमण करने आये हो। तुम्हारा यह कार्य देखने योग्य है!'

हे शरयुक्त धनुष रखनेवाले! मैंने युद्ध में तुम्हारे अनुज पर रोष नहीं किया। उसका वाहन बने, भौंर (के समान घूमनेवाले) जैसे हनुमान् पर रुष्ट नहीं हूँ। मेरा पीछा करके आये हुए वाली के भाई (सुग्रीव) पर रुष्ट नहीं हूँ। क्योंकि उनपर विजय पाना वश्य कार्य नहीं है।

मैं तुमको खोज रहा था। तुम्हारी सेना अस्त-व्यस्त होकर भागी। यह जानकर तुम्हारा भाई एक ओर चला गया। हनुमान् निर्बल होकर खड़ा रहा। अतः, मुझसे युद्ध करके शिथिल हुए इस (सुग्रीव) को उठाकर जाने लगा।

यदि अब तुम इस (सुग्रीव) को बचाने के लिए आये हो, तो कहना चाहिए कि मेरा भाग्य फलीभूत हुआ है। अबतक मैंने जितने युद्ध किये हैं, वैसे अब फिर करूँगा और अपने भाई (रावण) के हृदय में उत्पन्न प्रेम-पीड़ा को मिटा दूँगा।

कुम्भकर्ण ने कहा—हे शस्त्रकौशल से युक्त वीर! देवों के सामने व्याकुल-चित्त मर्कट (सुग्रीव) को मैंने जिस बंधन में बाँधा है, यदि उस बंधन को तुम अपने शर से तोड़ सको, तो मैं यह मानूँगा कि तुमने जैसे सीता को बंधन से मुक्त कर लिया है।

तब राम ने प्रतिज्ञा की—मेरे प्राणमित्र सुग्रीव को उठा ले जानेवाले (तुम्हारे) पर्वत-समान कंधों को यदि मैं काट न डालूँ, तो मैं अपने को तुमसे परास्त मानूँगा और फिर कभी मैं धनुष को नहीं छुऊँगा।

कुम्भकर्ण अपने हाथों को पसारकर सामने स्थित शरों के प्राचीर को हटाने का प्रयत्न करता रहा। उस समय राम ने अपने कंधे पर स्थित तूणीर से करवाल की धार के समान नोकवाले दो बाणों को चुनकर कुम्भकर्ण के ऊँचे ललाट पर चलाया।

कुम्भकर्ण के रक्त से चारों दिशाओं का आकाश लालिमा से भर गया। उसके माथे पर दीर्घ शर उज्ज्वल दिखाई पड़ा। वह दृश्य ऐसा था, जैसे सहस्रकिरण (सूर्य) के उदय होने के पूर्व अरुण का उदय हो रहा हो।

कुम्भकर्ण के क्षुद्र सिर से पर्वत से गिरनेवाले झरने के समान रुधिर-धारा बह चली। वह सुग्रीव के मुँह पर फैल गई, जिससे सुग्रीव यों प्रज्ञा पाकर उठ गया, जैसे निद्रा से ही जाग पड़ा हो। कुम्भकर्ण जो अबतक कभी शिथिलपराक्रम नहीं हुआ था, मूर्च्छित हो गया।

सुग्रीव ने कुम्भकर्ण के माथे पर उज्ज्वल शरों को लगे देख मन में जान लिया कि वे राम के शर हैं। उसने चारों ओर अपनी दृष्टि फेरी और संसार के समस्त प्राणियों के चरमप्राप्य तत्त्व उन प्रभु को देखकर नमस्कार किया।

सुग्रीव ने प्रभु को देखा। उनको देखकर वह अपरिहरणीय रोष और लज्जा से भर गया तथा कुम्भकर्ण की नाक और कानों को झट समूल उखाड़कर अपने लोगों में जा मिला।

तब सब वानर हर्षध्वनि कर उठे। वेद हर्षध्वनि कर उठे। वेदज्ञ मुनि एवं उनकी पत्नियाँ हर्षध्वनि कर उठीं। मछलियों से पूर्ण समुद्र और पर्वत हर्षध्वनि कर उठे। देवताओं के साथ धर्म-देवता भी हर्षध्वनि कर उठे।

क्रोध-भरे पराक्रमी राक्षस (कुम्भकर्ण की कैद) से छूटकर आये हुए सुग्रीव को देखकर रामचन्द्र अमन्द आनन्द से भर गये। उन्हें ऐसा हर्ष हुआ, मानों सीता देवी ही लंका के कठोर कारागार से मुक्त होकर उनसे आ मिली हों।

रामचन्द्र ने अपने दीर्घ धनुष से ऐसे शर छोड़े, जो कुम्भकर्ण के ललाट को भेद-कर निकल गये। उनकी चोट से वह राक्षस मूर्च्छित हो गया। तभी सुग्रीव उसकी नाक और कान लेकर लौट सका। नहीं तो यह कैसे संभव हो पाता?

जब रुधिर से आवृत कुम्भकर्ण को प्रज्ञा प्राप्त हुई, तब उसने जाना कि कपिराज उसके हाथ से छूटकर निकल गया है और उसकी उन्नत नासिका तथा कानों को काटकर ले गया है।

वह कुम्भकर्ण, जिसके ललाट से रुधिर की धारा बह रही थी, ऐसा लगता था, जैसे गैरिक-धातु से पूर्ण ऊँचा पर्वत, अपार शीतल वर्षा की धाराओं के गिरने पर धातुराग से पूर्ण निर्झरों से युक्त हो गया हो।

विवेक से रहित रावण ने पर-नारी का हरण किया, तो उससे विवेकवान् कुम्भकर्ण भी अपनी नासिका एवं कान से रहित हो गया, जिससे उसके वर्त्तुलाकार नेत्र भी रक्त से प्रज्वलित हो उठे।

अपनी दुर्दशा पर धिक्कार करता हुआ वह (कुम्भकर्ण) अपनी निन्दा करनेवाले देवों को देखता, अपनी नासिका को देखता, अपने विगत जीवन की घटनाओं को देखता (स्मरण करता) और फिर धरती को देखता।

तब उसने यह सोचकर कि यह राम मेरे नासिका-हीन मुख को देखें, इसके पूर्व ही मैं इस मुख को नासिका-रहित कर दूँ, एक स्वर्णमय ढाल और एक अति तीक्ष्ण करवाल को हाथ में उठा लिया।

कुम्भकर्ण ने जब ढाल को उछाला, तब उसकी कांति से नक्षत्र भयभीत हो उठे। देवताओं की आँतों में ऐंठन पड़ने लगी। स्वभाव से ही रोषपूर्ण वह (कुम्भकर्ण) जब अत्यधिक क्रोध करने लगा, तब उसकी नासिका तथा कानों के विवरों से रुधिर की बाढ़ बह चली।

उसने जलानेवाले प्रकाश से युक्त वज्रमय करवाल को, जिसे दो हजार भूत ढोकर चलते थे, अपने एक हाथ में लेकर, दूसरे में एक सहस्र राक्षसों के द्वारा ढोने योग्य ढाल को लिया।

सहस्रकिरण (सूर्य) जिसकी परिक्रमा करता रहता है, उस मेरु-पर्वत के समान

रूपवाले कुम्भकर्ण ने ढाल को उछाल-उछालकर गगन के नक्षत्रों को गिरा दिया और इस धरती को यों कँपाया कि आदिशेष के सिर काँप उठे। इस प्रकार, उसने बड़ा कोलाहल किया।

उछाली गई ढाल के अग्रभाग से जो हवा चली, वह विकलचित्त वानरों को सब दिशाओं में बहा ले गई और तरंगों से गरजनेवाला उज्ज्वल समुद्र भी टीले के समान ऊपर उठ गया।

सहस्र नामोंवाले प्रभु ने, किसी के जानने के पूर्व ही (अर्थात्, अतिशीघ्र) उस ढाल को अपने शरों से विच्छिन्न कर दिया। किन्तु, क्षण-भर में ही सहस्र भूतों ने एक दूसरी ढाल ढोकर ला दिया।

कुम्भकर्ण के ढाल उछालने से, उसके पैरों के रौंदने से, उसके उज्ज्वल शूलरूपी यम के मारने से, पूँछवाले वानरों की सेना प्रभंजन से आहत समुद्र के समान अस्त-व्यस्त होकर बिखर गई।

शस्त्रों का प्रयोग, उनके आघात से युद्धभूमि में स्थित लोगों का विच्छिन्न हो जाना, अनेक रथों का एक दूसरे से टकराकर रुधिर-प्रवाह में बह जाना, पृथ्वी का वहन करनेवाले अनन्त-सर्प के फन का कीचड़ से सन जाना—यह सब एक क्षण-काल में ही हो गया।

उस समय बलवान् जांबवान् ने राम के निकट जाकर कहा—इससे बढ़कर विकट परिस्थिति और कोई नहीं हो सकती। आप यदि अब इसे नहीं परास्त करेंगे, तो वानर-सेना मिट जायगी और राक्षसों का बल बढ़ जायगा।

महिमामय प्रभु ने वानर-सेना के विनाश, तथा कुम्भकर्ण के दृढ पराक्रम के बारे में सोचा। और, यह सोचकर कि 'आज यम को इसके सम्मुख खड़ा कर दूँगा', उसके सामने गये।

राम ने वज्रगति से चलनेवाले तेरह बाण कुम्भकर्ण पर प्रयुक्त किये। कुम्भकर्ण ने अपने करवाल से उन बाणों को विच्छिन्न करके यों बिखेर दिया, ज्यों बाज अपने पंखों को फड़फड़ाकर (पक्षियों को) गिरा देता है।

पुरुषोत्तम (रामचन्द्र) ने ग्रीष्मकालिक सूर्य के समान उष्ण असंख्य बाण लगातार छोड़े, पर कुम्भकर्ण ने उन सबको अपनी ढाल पर रोककर, तोड़कर, बिखेर दिया।

तब अरुणकमल के समान नयनोंवाले प्रभु ने अनुपम मंदहास करके एक अति तीक्ष्ण शर छोड़कर कुंभकर्ण के उज्ज्वल करवाल-रूपी सर्प को काटकर गिरा दिया। तब देवों ने हर्षध्वनि की।

प्रलय की अग्नि भी जिससे बुझ जाय, ऐसा निःश्वास भरनेवाला कुंभकर्ण ने झट एक दूसरे करवाल को अपने हाथ में ले लिया। दर्शक यह भी न जान सके कि उसका करवाल टूट गया और (उसने अपने हाथ में एक दूसरा करवाल ले लिया)। इसके बाद वह 'अब मिटा दूँगा' कहता हुआ सामने आकर खड़ा हो गया।

तब प्रभु ने उस बड़े करवाल को भी बड़े पराक्रम से काट दिया, उसकी स्वर्णमय ढाल को तोड़कर गिरा दिया और उसकी देह को आवृत करके रहनेवाले कवच में असंख्य भयंकर तथा बिजली की समता करनेवाले बाण चुभा दिये।

उसी समय दशमुख के द्वारा भेजी गई एक विशाल सेना आ पहुँची, जिसे देखकर देवेन्द्र अपने लोगों के साथ भयविकल हो भाग गया। समुद्र अपने स्थान से विचलित हो गया।

धनुर्विद्या में निपुण राम ने अपने मन में सोचा कि इस (कुम्भकर्ण) को निहत करने का उचित समय यही है। तब जो (राक्षस-) सेना आई, वह उस पुण्यकर्म के समान थी, जो पाप को मिटाने का कारण बनता है।

अश्वों, रथों, पदातियों एवं मदजल बहानेवाले पर्वताकार हाथियों से भरी चतुरंग सेना कुम्भकर्ण को चारों ओर से घेरकर (उसकी) रक्षा करती खड़ी रही। तब मायानट (विष्णु के अवतार राम) ने कहा—'शीघ्र आओ।'

मुखपट्टधारी तथा मदस्रावी गजों, अश्वों एवं बड़े पहियोंवाले रथों से भरी चौदह करोड़ 'समुद्र' सेना आई। प्रलयकाल में भी अक्षत रहनेवाले (विष्णु के अवतार राम) उस (सेना) के सामने दृढ खड़े रहे।

तब कुम्भकर्ण अपने हाथ में उस त्रिशूल को लेकर प्रकट हुआ, जिस (त्रिशूल) के तीन फल काल की समाप्ति, कालदेव एवं अपार क्रूरकर्म (इन तीनों) के बने थे और जिन (फलों) से पृथ्वी, पाताल और गगन—तीनों मिट सकते थे।

तब रामचन्द्र के शरों से राक्षस-सेना यों निहत हुई कि देवता भी शिरोहीन कबंधों को नाचते देखकर यह कहते कि 'ये कबंध नहीं हैं; ये वृक्षखंड हैं या शैल हैं (अर्थात्, इतनी संख्या में कबंध नाच रहे थे)। यों (राक्षसों के) हाथ, पैर आदि कटकर गिर पड़े। उनके सिर मिट्टी पर औंधे पड़े थे। कहीं भी सप्राण राक्षस संचरण करता हुआ नहीं दिखाई पड़ा।

किसी ने ऐसे शस्त्र नहीं देखे, जो टूटकर युद्धभूमि में टीले के जैसे न पड़े हों, जो रुधिर-प्रवाह में न बह रहे हों, जो बीच से टूटकर सब स्थानों में न भर गये हों, जो तीक्ष्ण अग्निकण बिखेरते हुए चूर-चूर न हो गये हों, या जो विविध प्रकार के रूपों में न बिखरे हों।

राम के बाण हाथियों के विशाल कुम्भों में प्रविष्ट होकर आलोडन करते, जिससे वे हाथी अपने महावतों को छोड़कर भागते। धरती पर अत्यधिक धारा में रुधिर बहाते, आँतों में मरण-पीडा से पीडित होते हुए एवं दाँतों को खोकर छिन्न-भिन्न हो गिरते। (उस युद्धक्षेत्र में) ऐसे हाथियों के अतिरिक्त किसी ने ऐसे हाथी नहीं देखे, जो मद बहाते हुए, पर्वत के समान अक्षत चलते हों।

दीर्घ तथा उज्ज्वल (राम के) बाणों से गडगड़ाहट के साथ दौड़नेवाले रथों की पीठें टूटीं, उन्नत ध्वजाएँ टूटीं, अश्व निहत हुए, धुरी एवं यंत्र टूटे और वे श्वेत मज्जा के घोर प्रवाह में यत्र-तत्र धँसे पड़े रहे। ऐसे रथों के अतिरिक्त किसी ने साबित रहकर चलनेवाले रथ को नहीं देखा।

मनोहर अश्वों का बल मिटा। वक्र ग्रीवाएँ कटीं। कँपानेवाली हिनहिनाहट दब गई। टाँगें टूटीं। निर्भय गजों के शवों से बहनेवाले उष्ण रुधिर की बाढ़ के मध्य

भँवरों में फँसकर चक्कर काटते रहे। कोई अश्व ऐसा नहीं था, जो सप्राण बचा हो।

वेदों के नायक परमपुरुष (राम) ने तीक्ष्ण शरों का प्रयोग किस प्रकार किया—यह पृथक् कहने की आवश्यकता ही क्या है? देवता भी उस युद्ध में आये राक्षसों को स्वर्गलोक में ही देख सके। किन्तु, उन्हें युद्धभूमि में पर्वत-समान आकार में सप्राण नहीं देख सके। वे (देवता), वहाँ (युद्ध में) अपने पतियों की देह को ढूँढ़नेवाली राक्षसियों को ही देख पाये।

गगन से गिरनेवाला हिम सूर्य के आगमन पर जैसे मिट जाता है, वैसे ही वह राक्षस-सेना मिट गई। शत्रुओं की पराजय को देखकर देवता प्रसन्न हुए। 'किसी से नहीं हारनेवाला कुम्भकर्ण अब मरेगा'—यह सोचकर राक्षस भी व्याकुल हुए। रामचन्द्र ने उसके मुख को देखकर और यह सोचकर कि 'हाय! यह अकेला है!' कहा—

(हे कुम्भकर्ण!) मेरी बात सुन! शस्त्रों से युद्ध करनेवाली तेरी सेना विध्वस्त हो गई। न्याय से न हटनेवाले विभीषण का तू भाई है, अतः मैं तेरे प्राणों को दे रहा हूँ। अब तू लौटकर लंका में रहना चाहता है? या फिर आनेवाला है? अथवा अभी युद्ध करके मरना चाहता है? अपने लिए जो योग्य हो, उसे विचारकर बता।

तेरे किये पाप समाप्त नहीं हुए हैं। इसलिए, जब मैंने तेरे भाई के द्वारा तुझे बुलाया था, तब तू नहीं आया और यम की आज्ञा में खड़ा रहा। अपने प्राणों के साथ तेरी संपत्ति भी तुझसे छूट गई। तू चिरकाल तक निद्रा करने के पश्चात् अब मरने को तैयार हुआ है। अपने मन की बात कह।

तब कुम्भकर्ण ने कहा—हे अत्युत्तम महत्त्व, मान, शौर्य, न्याय एवं क्षत्रियोचित धर्मों के आवासभूत! सुनो, ये सब बातें रहने दो। जिस प्रकार हमसे पृथक् हुई हमारी बहन के नाक-कान खो गये, उसी प्रकार मैं भी अपने नाक-कान खोकर जीवित नहीं रहूँगा।

हे अविनश्वर! हमारे संमुख देवता तेजोहीन हो गये थे, उस दशा को देखकर मैंने रावण से कहा था कि पीडा देनेवाली दिव्यस्त्री-समान यह सीता पर-नारी है। (पर, उसने मेरी बात नहीं मानी) उत्तम व्यक्तियों के सम्मुख मेरे वचन पहले ही खो गये। अब मेरी नासिका और कान भी खो गये। ऐसी अवस्था में क्या मैं अपने नगर को लौट सकूँगा?[1]

तुम्हारी ग्रीवा को, सिर को अपने करवाल से काटकर, तुम्हारे प्राण को पीकर मैं सीता के सौंदर्य को अपने भाई को देना चाहता था, इसीलिए युद्ध करने आया। अब क्या मैं, देवों के हँसते हुए, अपनी बहन के समान, रुधिर के साथ अश्रुओं को बहाता हुआ, ऊँची आवाज में रोता हुआ रावण के सामने जाकर गिरूँगा?

यद्यपि तुम तीनों लोकों में विलक्षण महान् वीर हो, तथापि वीरों के लिए अपमान-जनक बातों का विचार रखते हो न? तो, तुम क्यों ऐसी बातें कर रहे हो, जैसे वीरों का

१. नाक-कान कट जाने पर, उस अवस्था में स्थित कुम्भकर्ण को लंका लौट जाने के लिए राम ने जो कहा, वह वीरोचित वचन नहीं है—यह कुम्भकर्ण का भाव है। —अनु०

कर्त्तव्य ही नहीं जानते हो ? युद्ध में करवाल से तुम्हारे शरीर के टुकड़े करके यदि पुनः उन टुकड़ों को जोड़कर रखा जाय, तो क्या वे जुड़ जायेंगे ?

यह कहकर कुम्भकर्ण ने अपने दीर्घ शूल को वामहस्त में रखकर, अपने दक्षिण हस्त से एक पहाड़ को, जो ऐसा था (इतनी दूर नीचे तक गया था), मानों पृथ्वी की आँतों में बँधा हो, उखाड़ लिया और रामचन्द्र के सिर को लक्ष्य करके फेंका। वह शैल अग्नि उगलता हुआ गगन-मार्ग से रामचन्द्र के अति निकट आ गया।

राम ने उस पर्वत-रूपी वज्र को यों चूर-चूरकर दिया कि वह पर्वत किसी के लिए अज्ञेय उनके शुभ रूप को अलंकृत करनेवाली धूलि बन गया। फिर, उन्होंने अनेक शर छोड़कर (कुम्भकर्ण के) एक हाथ से दूसरे हाथ में परिवर्त्तित होकर ऊँचा उठे हुए शूल के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

महिमामय प्रभु ने धनुष को झुकाकर ऐसे शर छोड़े, जो तरंगायमान समुद्र के जल को पीने में समर्थ थे, जो वज्र को जला सकते थे, जो मेरु को भेदकर गगन-तल को पार कर चल सकते थे, जो अमोघ थे और कुंभकर्ण की देह पर जा लगते थे। ऐसे वे उज्ज्वल शर भी शिव के द्वारा कुम्भकर्ण को प्रदत्त कवच को नहीं तोड़ सके।

कुम्भकर्ण के कवच को अपने शरों से छिन्न न होते देख कमलनयन राम ने सोचा कि यह शंकर का दिया हुआ कवच है। फिर, उस शंकर भगवान् के अस्त्र (अर्थात् , पाशुपतास्त्र) को अभिमंत्रित कर उस कवच पर प्रयुक्त किया, जिससे वह (कवच) टूट गया। वह कवच देह से पृथक् होकर पृथ्वी पर यों गिर पड़ा, ज्यों मेरु-पर्वत की परिक्रमा करनेवाला सूर्य ही गिरा हो।

उज्ज्वल सूर्य-समान कवच के टूटकर गिरते ही कुम्भकर्ण दोनों आँखों से आग उगलता हुआ अपनी बलिष्ठ भुजा को ठोंकता हुआ दृढ लौहाग्र से युक्त दीर्घ गदा को उठाकर धरती पर यों मारता हुआ आया कि सारी वानरसेना कीचड़ बनने लगी।

रामचन्द्र के असंख्य बाण शत्रु पर ऐसे चलते थे कि सहस्र बाण उसके उन्नत वक्ष को भेदकर निकल जाते थे, सहस्र बाण उसके चारों ओर उड़ते रहते थे, सहस्र बाण उसके शरीर में प्रवेश न करके बाहर से ही उसको आवृत किये रहते थे और सहस्र बाण अभी धनुष से निकल ही रहे थे। तो भी, कुम्भकर्ण चरखी के समान पैंतरे बदलता रहा।

राम ने यह सोचकर कि यदि इसके हाथ में गदा रहेगी, तो वानर-सेना भी जीवित नहीं रहेगी, दस तीक्ष्ण बाणों को छोड़कर कुम्भकर्ण की गदा को काट दिया। तब वीर-वलयधारी काले राक्षस ने बड़े क्रोध के साथ धरती पर विराजमान सूर्य के समान एक करवाल एवं ढाल को लेकर आया।

ज्योंही कुम्भकर्ण ने अपने हाथ में करवाल लिया, त्योंही सारे वानर सारी शक्ति लगाकर अति तीव्र गति से भागने लगे। देवता सिर झुकाये खड़े रहे। जब (राम के) साथियों ने उनसे कहा कि इसने पुनः मारण-कृत्य आरंभ कर दिया है, तब प्रभु ने यह कहकर कि इसकी भुजा को काट दें, एक अमोघ शर प्रयुक्त किया।

(कुम्भकर्ण का हाथ कट गया, तो उससे) पापकर्म दुःखी हुआ ; पुण्यकर्म आनन्दित हुआ। सभी राक्षस यह कहते हुए कि 'प्रलयकालिक समुद्र की तरंग के समान हाथ, राहुग्रस्त चंद्रमा के समान दिखाई पड़नेवाले करवाल के साथ कटकर गिर पड़ा। अब लंका की एवं रावण की रक्षा भी समाप्त हो गई'—व्याकुल हो पसीना-पसीना होते हुए भागे।

कुम्भकर्ण ने अपार रूप में पुष्ट उस कटे हाथ को अपने बचे हुए हाथ से उठाकर भीषण गर्जन करते हुए वानरों पर दे मारा। तब दाँत निपोरकर भागनेवाले वानर निहत होकर गिरे। उस समय उससे निहत होकर स्वर्ग पहुँचनेवाले ही वीर वहाँ थे। किन्तु, उसकी समता करनेवाला वीर कोई नहीं था।

उदारगुण रामचन्द्र वानरसेना की रक्षा कर रहे थे, तो भी कुम्भकर्ण कठोर यम को आनन्द देता हुआ, पहले से भी तिगुने रूप में वानरों को मारने लगा। संसार के लोग यह सोचते हुए कि सारी वानर-सेना आज समाप्त हो जायगी (कुम्भकर्ण के) न कटे हुए हाथ से भी अधिक उसके कटे हुए हाथ से डरने लगे।

कुम्भकर्ण विलक्षण पराक्रमवाले प्रभु की ओर गगन-मार्ग से झपटकर आया। तब वानर-समुद्र अस्त-व्यस्त हो गया। उस (कुम्भकर्ण) के कंधे से बहनेवाले रुधिर-प्रवाह में गगन तक उठे हुए शवों का ढेर बह चला। गगनस्थ देवता विचलित होकर भागे। लंका के पशु-पक्षी तथा राक्षस (उस रक्त-प्रवाह को देखकर) भय से विकल होकर भागे। मेघ-मंडल छिन्न-भिन्न हो गया।

देवता राम के प्रति हाथ जोड़कर बोले—'इसके दूसरे हाथ को भी काट दो।' तब राम ने दक्षिण हस्त से हीन उस राक्षस की जीवन-लीला समाप्त करने के लिए, अबतक राक्षसों के सम्मुख प्रकट न होनेवाले यम के भय को दूर करते हुए, उसके दूसरे हाथ को भी अपने अमोघ शरों से काट गिराया।

(कुम्भकर्ण की) सुन्दर भुजा पर अलंकृत वलय सर्पाकार था, रत्नाभरणों से युक्त वह हाथ उस पर्वत के समान था, जिसे चंद्ररूपी स्तंभ से लगाकर पूर्वकाल में देवताओं ने क्षीर-समुद्र को मथा था।

रामचन्द्र का वह शर, जिसने उस हाथ को अनुपम समुद्र में ले जाकर डाल दिया, जो घने तथा सुनहले पंखों से अति वेगवान् था और जो राम की आज्ञा के अनुसार ही कार्य करता था, गरुड की समता करता था, और रत्नाभरणों से भूपित (कुम्भकर्ण का) वह हाथ गरुड के द्वारा लाये गये मंदराचल के समान था।

सूर्य नित्य जिस मेरु की परिक्रमा करता रहता है, उस (मेरु) को मानों भीतर से खोखला बनाकर उसका एक ढोल बनाकर त्रिविक्रम के द्वारा निर्मित एक बड़ी छड़ी से उसे बजाया गया हो—यों महान् ध्वनि करते हुए कुम्भकर्ण ने अपने पैरों से वानरों को यों रौंदा कि उनके चर्म, अस्थि, मांस सब एक हो गये।

वह कुम्भकर्ण ऐसा था, मानों पृथ्वी, आकाश, पवन, अग्नि और जल—सब मिलकर राक्षस के आकार में आये हों। वह सब प्राणियों को मिटानेवाला था, क्रोध-भरे यम

के समान था, निर्भीक व्यक्तियों में प्रमुख था और दर्प से भरा था। राम ने अपने तीक्ष्ण बाण से उसके दायें पैर को काटकर गिरा दिया।

पंक्ति में स्थित उसके दाँत नक्षत्रों के समान चमक रहे थे। उसके खड्गदंत अर्ध-चंद्र के समान थे। ज्यों लाली से भरा संध्याकाल ही आया हो, त्यों जब कुम्भकर्ण रुधिर-पूर्ण अपना मुँह खोले, एक ही पैर से उछल-उछलकर आया, तब धरती धँस गई और समुद्र का जल उमड़कर सर्वत्र फैल गया।

एक ही पैर पर गगन तक खड़े हुए, प्रभंजन के समान चक्कर काटते हुए, समीपस्थ सब प्राणियों को अपने दाँतों से चबाते हुए आनेवाले उस कुम्भकर्ण के दूसरे पैर को भी प्रभु ने एक अग्निमुख बाण से काटकर गिरा दिया। तब भूमि का महान् भार मिट गया और धर्म के साथ वेद भी नाच उठे।

उसके दोनों हाथ और दोनों पैर कट गये। दो शत-सहस्र बाण उसकी देह में चुभकर पीठ की ओर से निकल गये। उसकी आँखों से निकलनेवाली रक्तवर्ण अग्नि-ज्वालाएँ दुगुनी हो गईं। उसका महान् क्रोध गगन में भयंकर रूप में प्रकट होनेवाले वज्र से भी अधिक भीषण होकर प्रकट हुआ।

करों और चरणों से हीन कुम्भकर्ण बड़े रोष से धरती पर दूरतक फैले हुए पर्वतों को दाँतों से काट-काटकर, अपने भीतर से श्वास को बड़े वेग से बाहर फेंक-फेंककर उन शैलों को वानरों पर गिराने लगा। वज्र-ध्वनि सुनकर मरनेवाले प्राणियों के समान वानर उन शैलों से निहत हुए।

अग्निमय आँखों से युक्त कुम्भकर्ण ने चारों दिशाओं को अपनी देह से निकलने-वाली अग्नि-ज्वालाओं से जलाते हुए, अपनी जीभ को फैलाकर और गगन तक उसे टेढ़ी करके बाँसों से भरे एक शैल को उठाया और गुहा-समान मुँह की शक्ति से उसे दूरतक फेंक दिया। वह दृश्य देखकर राम का भी कमल-समान कर काँप उठा।

कुम्भकर्ण अपने मन में यह सोचता हुआ बहुत दुःखी हुआ कि 'महान् महिमा से युक्त रामचन्द्र के धनुःकौशल के लिए सहस्र रावण भी पर्याप्त नहीं हैं। हाय ! मेरे हाथ-पैर कट गये। अब मैं उस (रावण) की कैसे सहायता कर सकता हूँ। अहो ! कामना-रूपी व्याधि ने रावण का सत्यानाश कर दिया ! अनन्तकाल तक जीवित रहने योग्य उस रावण का अब उद्धार संभव नहीं।

सिंदूरवर्ण उसका नवीन रक्त चारों दिशाओं में नदी बनकर बह चला। उस नदी में यंत्रयुक्त रथ, गज, अश्व, पदाति-सैनिक सब बह गये। कंदराओं से युक्त मेरु तथा मत्त-गज के समान उस कुम्भकर्ण ने अपनी दृष्टि के सम्मुख स्थित मनोहर कंधोंवाले रामचन्द्र को देखकर ये बातें कहीं—

जो अपनी शरण में आये हुए कपोत की रक्षा के लिए स्वयं तुला पर चढ़ गया था और जो वीर मेघ-समान मत्त हाथियों एवं करवाल से युक्त था, वैसे शिबि के वंश में उत्पन्न हे वीर (रामचन्द्र) ! तुम भी वैसी करुणा से युक्त हो। विभीषण हमारे साथ संबंध

तोड़कर तुम्हारे पक्ष में गया है, इसलिए तुम उस विभीषण के प्राणों को बचाना ! यही मेरी प्रार्थना है।

हे आदिदेव ! हे क्षत्रिय के रूप में प्रकट हुए वेद-प्रतिपाद्य परमपुरुष ! मेरा भाई (विभीषण) अनुपम धर्म-मार्ग पर चलनेवाला है। अपनी जातिगत अधर्म को उसने कभी नहीं अपनाया। वह तुम्हारी शरण में गया है। मैं अब पुनः उसकी रक्षा करने के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ।

हे नीति से विचलित न होनेवाले ! विजय की कामना से भरा हुआ रावण इस (विभीषण) पर यह सोचकर अत्यन्त क्रुद्ध है कि 'यह उसको निर्मूल करने पर तुला हुआ है।' वह (रावण) भ्रातृत्व की भी परवाह नहीं करनेवाला है। यदि संभव होगा, तो वह अवश्य इस (विभीषण) को मार डालेगा। अतः, तुम इसकी सब प्रकार से रक्षा करना।

सद्गुणों से हीन वह रावण, इसे अपना भाई मानकर कभी दया नहीं करेगा। हे सद्गुण-समुद्र ! यदि इसे वह देख लेगा, तो मार डालेगा, किंचित् भी दया नहीं करेगा। अतः, ऐसी कृपा करो कि मेरा भाई (विभीषण) तुमको, या तुम्हारे भाई को, या हनुमान् को छोड़कर कभी पृथक् न रहे। यही मेरी प्रार्थना है।

मुनि और देवता नासिका-हीन मेरे मुँह को न देखें; अतः तुम अपने बाण से मेरी ग्रीवा को काट दो और मेरे सिर को काले समुद्र में डाल दो। यह भी मेरी एक प्रार्थना है।—यों कुम्भकर्ण ने कहा।

तब राम ने यह सोचकर कि इसने मुझसे यह वर माँगा है, इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं, अपने दृढ धनुष पर एक उत्तम बाण को चढ़ाकर उससे कुम्भकर्ण का सिर काट लिया और वायव्यास्त्र से उसे बहाकर पाताल तक गहरे समुद्र के मध्य डुबो दिया।

अनेक प्राणियों से पूर्ण समुद्र की तरंगें चारों दिशाओं में उठ चलीं। पर, पश्चिम और पूर्व की दिशा में तरंगों का संचार रुक गया और जल उस मुख-रूपी पर्वत के नासिका-विवर के भीतर प्रविष्ट हुआ एवं उस मुख की दोनों आँखों से धुआँ निकल चला। इस प्रकार वह मुख समुद्र में डूब गया।

देवता नाच उठे। अप्सराएँ गा उठीं। तपस्वी एवं वेदज्ञ भयमुक्त हुए। वानर-सेनापति विजयी राम के निकट आ पहुँचे। बलवान् राक्षस भय से विकल होकर रावण को समाचार देने को दौड़ पड़े। (१–६३)

●

अध्याय १६

मायाजनक पटल

कुम्भकर्ण ने युद्धक्षेत्र में जो वीरोचित पराक्रम दिखाया, उसका वर्णन हमने पिछले अध्याय में किया। अब इस अध्याय में रावण ने कामुकता के वश में होकर जो अधार्मिक तथा नीच कृत्य किया और माया की, उसका वर्णन करेंगे।

सभी दिशाओं में विजय प्राप्त करनेवाले रावण ने मंत्रागार में पहुँचकर महोदर से कहा—'मैं किस प्रकार सीता को प्राप्त करके अपने मानसिक क्लेश से मुक्त हो सकता हूँ, इसका कोई उपाय बताओ और मेरे प्राण बचाओ।'

तब महोदर ने रावण से कहा—अभी मैं एक अमोघ उपाय बताता हूँ। हम ऐसी माया करेंगे कि सीता स्वयं ही तुमसे आ मिलेगी। 'मारुत' नामक (राक्षस) को हम एक क्षणकाल में जनक के रूप में बदल देंगे और उसे बाँधकर सीता के सम्मुख ले जायेंगे। उस जनक को छुड़ाने के लिए सीता तुमसे विवाह करने को राजी हो जायगी।

महोदर के ऐसा कहने पर रावण ने अपने आसन से उठकर उसका आलिंगन कर लिया और कहा—'हे प्यारे! उस मारुत को अशोक-वन में ले आओ।' और, वह शत्रुओं के पापकृत्य से न डरनेवाली कुलदीपिका-समान सीता को डराने के लिए, पुष्पों से अलंकृत अशोक-वन की ओर गया।

रावण के उज्ज्वल किरीटों से बाल आतप के समान कांति चारों ओर फैल रही थी, जिससे अंधकार विचलित होकर भाग गया। रत्नाभरणों से भूषित उसके कंधे पर पड़ा स्वर्णहार नीलाचल से गिरनेवाले निर्झर के समान लटक रहा था। उसकी पदगति से मत्तगज भी लज्जित हो रहे थे। यों वह (अशोकवन की ओर) गया।

उदीयमान अर्धचन्द्र के सदृश ललाटवाली देवस्त्रियाँ उस (रावण) के आगे-पीछे और दोनों ओर घेरकर (हाथों में) दीप लिये यों चलती थीं, मानों दीपिकाएँ ही दूसरे दीपों को लिये हुए, उज्ज्वल मेखला धारण कर, स्तन-भार को वहन करते हुए संचरण कर रही हों। वंदी और मागध प्रशस्तियाँ गा रहे थे। यों वह (रावण) चला।

वदनों को रागों से एवं अधरों को प्रवाल से बनाकर, स्त्री होकर उत्पन्न व्यक्तियों में सर्वाधिक सुन्दर अंगों को एकत्र करके, असंख्य गुणों से विभूषित कर निर्मित उस नारी (सीता) को रावण ने अपनी आँखों से देखा, जिससे वह सीता अत्यन्त विकल हो उठी।

रावण अपनी उन भुजाओं को, जिनसे देवस्थल भ्रष्ट किये गये थे, लेकर एक स्वर्ण-आसन पर बैठ गया। उसका एक चरण एक जाँघ पर था। उसके सिर पर श्वेतच्छत्र था। दोनों ओर चँवर डुल रहे थे। उसकी कटि में करवाल बँधा था। ऐसे उस (रावण) ने सीता से कहा—

इस दास पर तुम्हारे मन में कब दया उत्पन्न होगी? मेरे प्रति सूर्य से भिन्न चंद्रमा का रूप कब प्रकट होगा (अर्थात्, मेरी विरह-पीडा शांत होकर कब चंद्रमा सूर्य

के समान शीतल होगा) ? कब मैं मन्मथ के शरों का लक्ष्य न बनकर रहूँगा ?—इस प्रकार, वह अपने दुःखों के बारे में कहने लगा।

मैं, मायावी, स्वयं ही नारी-रूप में स्थित विषसिक्त अमृत को पीने लगा हूँ। दिन-दिन शिथिल होकर मेरा मन अब अहंकार से रहित हो गया है। तुम्हारी याद न भूल जाय, इसलिए प्राण छोड़ना भी नहीं चाहता। हे अमृतमयी! यह दास तुम्हारी शरण है।

मैं किसी से हारा नहीं था, पर तुमने मुझे परास्त कर दिया। तुमने चंद्रमा से मेरी देह को तपाया। मंदमारुत से तुषार-बिंदु पाकर मेरा शरीर स्वेदाक्त होने लगता है। वज्र-समान मेरी भुजाओं को कृश होने दिया। वसंत को साथी बनाकर मन्मथ को बड़ा कोलाहल करने दिया। 'दुःख क्या है ?'—इसका ज्ञान भी कराया। देवों को भय-मुक्त कर दिया। तुम अब और क्या-क्या करना चाहती हो ?

मेरी कामना का पात्र बननेवाली सुन्दरियाँ सब तुम्हीं में समा गई हैं। मेरे सारे प्रियनाम तुम्हारे नाम में अंतर्भूत हो गये हैं। मेरी बीसों आँखें तुम्हीं पर केंद्रित हैं। तुमने काम नामक महिमाशाली को मुझपर बाण छोड़ने दिया। उसके पाँचों बाणों से जितने घाव हो सकते हैं, वे सब मुझमें ही उत्पन्न हुए। अहो! तुमने मुझमें ऐसी विपरीत दशा उत्पन्न कर दी!

मैंने तीनों लोकों पर ऐसी विजय पाई है कि शिवजी से मनुष्य तक सब मुझसे डरते थे। वीरों में गिने जानेवाले किसी व्यक्ति से मैं परास्त नहीं हुआ। ऐसा मैं एक नारी के प्रेम नामक व्याधि से निहत हुआ, तो मेरी वीरता की क्या प्रशंसा की जाय ?

मेरे प्राण यदि इसी प्रकार शिथिल होकर काम-व्याधि से अनेक दिन तक व्यथित होते रहें, तो क्या लोग मुझे श्वान कहकर मेरा उपहास न करेंगे ? शास्त्रज्ञ विद्वान् यह जो कहते हैं कि काम की दशाएँ दस हैं, वह झूठ ही है। वे दशाएँ सहस्र से भी अधिक हैं।

हे धर्म-मार्ग से प्राप्त संपत्ति के समान! हे अमृत से भी अधिक मधुर! मुझपर तुम्हारी करुणा नहीं है, अतः जैसे मेरा जन्म ही नहीं हुआ, तुम्हारे सौंदर्य ने मेरे मान को मिटा दिया है। अतः, जैसे मेरे किये बड़े पराक्रम मिट गये हैं, उसी प्रकार मैं भी इसी काम-पीडा में अनेक बार मरकर भी वर-रूपी ओषधि से अबतक जीवित हूँ। इसको कौन जान सकता है ?

हे अमृत-समान बोलीवाली! यदि तुम पक्षपात से रहित होकर विचार करो तो—क्या पुराकाल में देवेन्द्र से संगति करनेवाली अहल्या का पतन हुआ था ? (नहीं) मेरी इस पीडा को मिटानेवाली ओषधि तुम्हारे कुमुद-पुष्प के समान अधर का अमृत ही है, उसके अतिरिक्त कोई औषध नहीं, कोई मंत्र नहीं।

इस प्रकार कहकर रावण उठा और बीस नीलवर्ण पर्वतों की समता करनेवाली भुजाओं को धरती पर टेककर, अपने उन किरीटों को, जो ऐसे थे, मानों बिजली को लपेट-कर उसपर सूर्य एवं नक्षत्र-समुदाय को जड़कर बनाया हो, भूमि पर रखकर नमस्कार किया।

व्याध के निकट जैसे हरिणी काँप उठती है, वैसे ही कोमलांगी (सीता) देवी विकल हो काँप उठी और रो पड़ी। फिर, किंचित् स्वस्थ होकर यह विचार कर कि 'भले ही यह (रावण) मुझे मार डाले, तो भी अपने मन की बात इससे स्पष्ट कहूँगी', सामने पड़े हुए एक छोटे तृण की ओर देखकर कहा—

तेरा कार्य सबकी निंदा का विषय है। इससे पाप ही होता है।—यह तूने विचारा नहीं। तेरी ये बातें कहने योग्य नहीं हैं।—यह भी तूने जाना नहीं। किसके निकट कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह भी तूने सोचा नहीं। ऐसे व्यवहार से तेरा हृदय फट जाना चाहिए था। ऐसा नहीं हुआ। तुझे अपने कुलसहित मिट जाना चाहिए था, वह भी अबतक मिटा नहीं। तो अब मेरे पातिव्रत्य का क्या फल हुआ? धर्म के रहने से ही क्या प्रयोजन है?

इस पृथ्वी में मांसमय शरीर धारण करनेवाले असंख्य प्राणी हैं, जो गगन तक व्याप्त क्रूरता से पूर्ण तुझ जैसे व्यक्ति की आज्ञा मानते हैं। जिनके प्राण और प्रज्ञा अभी शेष हैं, (किन्तु, वे ऐसी बातें नहीं करते)। ऐसी अनुचित बातें कहने के लिए तेरे पास दस मुँह हैं, तेरी बातों को सुनने के लिए मैं ही एक हूँ। तो अब तू और क्या नहीं कहेगा? क्या नहीं करेगा?

इन्द्र, कमलासन (ब्रह्मा), परशुधारी शिव, कार्त्तिकेय, विष्णु आदि देवों की दशा का खयाल न करके, उनको भी युद्ध में पराजित करने की बात पर तू गर्व करता है। मेरी फलीभूत अभिलाषा के सदृश मेरे पति युद्धभूमि में खड़े हैं, किन्तु तू उनसे डरकर उनकी ओर देखना भी नहीं चाहता!

भोजन के बिना भी इस देह की रक्षा करती हुई, अपयश का भाजन बनकर, तेरे सम्मुख निर्लज्ज होकर जो मैं जीवित हूँ, वह इसीलिए कि दोषहीन गुणों से भूषित उन पुण्यमूर्त्ति (राम) के दर्शन करूँ।

युद्धक्षेत्र में जब तू पीठ दिखाकर भागेगा, तब रक्त-स्वर्ण के मेरुपर्वत-समान अनुज (लक्ष्मण) तेरी राह रोककर खड़े रहेंगे और तेरे सब सिरों को भूमि पर गिराकर, सारी राक्षससेना को परास्त करके मेरे प्रियतम खड़े रहेंगे, उस समय उनके रूप की शोभा को देखने की आशा ही मेरे प्राणों को इस देह से बाहर जाने से रोक रही है।

हे नीति के बंधन में न रहनेवाले! करुणा को छोड़कर जिसके अन्य कोई प्राण नहीं हैं, जो कमल-समान नेत्रों से युक्त हैं, सबके हृदय को अच्छा लगनेवाले हैं, ऐसे धनुर्धारी कालमेघ के अतिरिक्त मेरे अन्य कोई प्राण नहीं हैं।

जब सीता ने इस प्रकार कहा, तब उस वचन को सुनकर रावण की आँखों से अग्नि-ज्वाला निकल पड़ी। जैसे किसी ने उसे मारने का प्रयत्न किया हो, वैसे ही उसके मन में यम-समान क्रोध उमड़ पड़ा। फिर, उसने सीता से कहा—'राम मुझे जीतकर तुमको मुक्त करेगा? और, तुम उसके साथ एकप्राण होकर जियोगी?'—इस प्रकार वह वज्र की-सी ध्वनि करता हुआ हँस पड़ा।

इस संसार में असंख्य रूप में रहनेवाले प्राणियों में, चाहे वे मनुष्य हों, चाहे

देवता या अन्य कोई भी हों, मेरे क्रोध का लक्ष्य बनने पर कौन जी सका है ? बगीचे में उत्पन्न तुलसी की माला पहने हुए विष्णु ही समझा जानेवाला कोई नर भी यदि तुम्हारे मन में प्रविष्ट हुआ हो, तो भी मैं उसे अवश्य मार डालूँगा। उसके पश्चात् तुम जीओगी।

हे कृश कटिवाली रमणी ! वानरों ने समुद्र पर सेतु बाँधा है। लंका में आकर प्राचीर को घेर लिया है। अपने मुँह से अनेक बार ध्वनि की है—यह सब सोचकर क्या तुम आनन्दित हो रही हो ? इन कार्यों पर तुम विस्मय न करना। वे सब वानर मेरे सामने पड़ने पर उसी प्रकार हो जायेंगे, जिस प्रकार दीपक के सम्मुख शलभ हो जाते हैं।

मैंने शस्त्रधारी विजयी राक्षससेना को यह आज्ञा देकर अयोध्या भेजा है कि वहाँ के सारे राज-परिवार को पकड़कर ले आओ। नहीं तो उन्हें मारकर उनके सिर ले आओ। प्रयत्न करके इन दोनों में से एक काम अवश्य करके आओ ? तुम्हारे पिता के विरुद्ध भी ऐसी ही एक सेना भेजी है—यों रावण ने कहा।

रावण के यों कहने पर सीता देवी ने यह सोचा कि मुझे छल से अपहृत करके लानेवाले इस राक्षस के लिए अब असंभव कार्य कुछ भी नहीं है—मन में भय से आक्रांत हो उठीं, स्तब्ध रहीं और मानों अग्नि को चबा-चबाकर उगल रही हों, यों उष्ण निःश्वास भरती हुई, दुःख का निवास बनकर बैठी रहीं।

आँखों से अपार अश्रुधारा बहाती हुई सीता ने मन में सोचा—'जिस दुर्भाग्य ने मुझे यहाँ लाकर इस प्रकार पीडित किया है, वह क्या उन स्थानों में (अर्थात्, अयोध्या और मिथिला में) ऐसे क्रूर कार्य करने में दुर्बल हो जायगा ? (नहीं) वह अत्यन्त बलवान् है। जो कुछ असत्यमय है, वही क्या (अब) धर्म हो गया है ?'—और वैराग्य से भर गईं।

इसी समय महोदर, मारुत (नामक राक्षस) को जनक बनाकर ले आया। वह (मायाजनक) मुँह खोलकर रोता हुआ चला आया। जलते अँगारे के समान रावण के सम्मुख जब वह बाँधकर लाया गया, तब उसने झुककर (रावण को) प्रणाम किया। वह दृश्य देखकर सीता यों विकल हुई, जैसे बालपक्षी अपनी माता को अग्नि में गिरते हुए देखकर विह्वल हुआ हो।

सीता यह नहीं जानती थीं कि जनक का बंदी बनना असत्य है, अतः वे हाथ मलने लगी। अपनी आँखों पर हाथों से मारा। जैसे उनके कमल-समान चरण घृत से भड़कनेवाली अग्नि-ज्वाला पर पड़ गये हों, यों धरती पर खड़ी न रहकर वे तड़प उठीं। उनका मन भी, उनके शरीर के समान ही जल उठा। दीनता से रो पड़ीं। काँपकर गिर पड़ीं। लोट गईं। ऊँची आवाज से चीख उठीं।

सीता कहतीं—हे दैव ! क्या सत्य मिट गया ? क्या इस संसार को शाप देकर भस्म कर डालूँ ? कभी कहतीं—क्या माया और छल ही बलवान् हैं ? कभी कहतीं—क्या अब भी जीवित रहने योग्य हूँ ? इस प्रकार, उनका दुःख विविध प्रकार का था। उस समय जो दुःखी हुआ, वह व्यक्ति क्या केवल एक नारी थी ? या स्वयं धर्म ही था उस समय की उनकी उस दशा को समझनेवाला कौन है ?

सीता कहतीं—हे मेरे पिता! हे मेरे पिता! हाय! मेरे कारण, तुमको भी ऐसा कष्ट उत्पन्न हुआ! मुझे पुत्री के रूप में पाकर यही फल तुम्हें मिला! संसार के सब प्राणियों का पितृसमान हित चाहनेवाले! प्रेम में मातृतुल्य! सत्फल उत्पन्न करने में तपस्या-तुल्य (तुम्हारी यह कैसी दशा है)!' इस प्रकार, कठोर दुःख-ज्वाला से जलती हुई आग में पड़ी लकड़ी के समान विह्वल होकर वह गिर पड़तीं।

सीता कहतीं—अतिथियों को भोजन देने के पश्चात् ही तुम भोजन लेते हो! तुमने विविध धर्मकार्य किये! तुमने विरोध करनेवाले शत्रुओं के नगर जलाये। उत्तम यज्ञ संपन्न किये। ऐसे तुम वीर की वज्र-समान भुजाएँ इन नरभक्षी शराबियों के द्वारा बाँधी गई हैं! तुम्हारी यह कैसी दशा है! हाय! मैं भी आँखों से यह सब देखती बैठी हूँ!

इस प्रकार के विविध वचन कहकर उठतीं और गिर पड़तीं। दुःख में यों मूर्च्छित होतीं, जैसे उनके प्राण निकल गये हों, मानों बिजली धरती पर लोट रही हो। इस प्रकार लोटतीं और क्रौंची के समान रोतीं।

सीता जनक के प्रति बोलीं—वेद-विहित कर्मों के अनुष्ठान से कभी न हटनेवाले महात्माओं के वंश में उत्पन्न हे राजन्! पिता के लिए अपनी पुत्रियों के प्रति करने योग्य जो कार्य हैं, उन्हें करने के लिए भी, तुम कभी मेरे पति के निवास में आकर नहीं ठहरे![1] ऐसे तुम क्या बंदीगृह में मुझे देखने के लिए अब स्वयं बंदी बन गये हो?

महान् ज्ञानी पुरुष कहा करते हैं कि दृढ पंखोंवाले गरुड पर आरूढ होनेवाले विष्णु, अपार माया से युक्त इस संसार-रूपी बंधन से लोगों को मुक्त करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। किन्तु, मेरे इस बंधन को मिटाने के लिए किसी को आते हुए नहीं देखती हूँ। मेरे कारण तुमको जो यह बंधन उत्पन्न हुआ है, उसे मिटानेवाला कौन है?

सद्गुणों से संबंध न रखनेवाले इन शत्रुओं के हाथ में तुम पड़े हो। इससे तो यही उत्तम होता कि शत्रु के बाण से तुम वीर स्वर्ग में पहुँच जाते। राजाओं में अत्युत्तम स्थान तुमने प्राप्त किया है, अब अपयश का पात्र बन गये। यह दशा तुमने स्वयं नहीं प्राप्त की। किन्तु, मुझे पुत्री के रूप में पाने के कारण ही हुई है। ऐसा भाग्य (दुर्भाग्य) पानेवाला तुम्हारे समान और कौन है?

जुए में रस्सी से बँधा हुआ बैल जुए को ढोता हुआ, मार खाता है; दुःखी होकर भी कीचड़ से भरे क्षेत्र से वह नहीं हट सकता। ऐसे ही मुझ पापिन ने भी शत्रु के बंधन में पड़ते ही, अपने प्राण न छोड़कर तुम सबको नीचे गिरा दिया। हाय, मैं नरक में पड़ूँगी, तो भी क्या मेरा उद्धार होगा?

लंका के सब शत्रुओं को मिटाकर मैं अपार आनंद नहीं पा सकी। अपने प्रभु के

---

१. जनक नित्याग्नि होम करनेवाले थे। अतः, अयोध्या में राम के घर में जाकर भी वहाँ कभी नहीं ठहरे थे। अपने गृह में ही रहकर अपना अनुष्ठान करते रहते थे। —अनु०

चरणों को सिर पर नहीं धारण कर सकी। दीर्घकाल से इस बंधन में पड़कर दुःख भोग रही हूँ। तुम्हारे वंश को ही मैंने मिटा दिया। अयोध्या के राजवंश की कीर्त्ति को भी मैं खा गई!

(पंचवटी में) मैंने ही अपने पति को एक शत्रु के प्रति 'मारो' कहकर भेजा है, अब मैं अपने पिता की पर्वत-समान दृढ भुजाओं को रस्सी से बँधी देखकर भी चुप बैठी हूँ। दोनों घरों (पितृगृह और पतिगृह) में मेरे कारण विपदा उत्पन्न हुई! क्या मैं साधारण नारी हूँ? ऐसी मैं अब भी जीवित हूँ, तो मुझपर दया कैसी?

जिस मेरे पिता ने पूर्वकाल में अनुपम यज्ञ करके मुझे प्राप्त किया और मेरा पालन-पोषण किया, (आश्रितों के लिए) नौका बनी हुई उनकी भुजाओं को बाँधे जाते हुए तथा उनको मिट्टी में लोटते हुए मैंने देखा। अब जिस व्यक्ति ने विवाह में वेद-विहित कर्त्तव्य पूण करके मेरा पाणिग्रहण किया, उसे भी ऐसी दशा में देखकर ही कदाचित् मेरे प्राण तृप्त होंगे!

हे माताओ! हे गुरुजनो! हे मेरे प्राणतुल्य बहनो! मेरे पिता की जो दशा हुई है, क्या इसे तुम नहीं जानते? या तुमको भी मेरे पिता के समान ही दशा प्राप्त हुई है? तुमलोग इनका अनुसरण करते हुए नहीं आये! क्या तुम सब अब जीवित नहीं हो?

चाहे कोई मेरु-पर्वत के शिखर पर चढ़कर स्वर्गलोक को ही क्यों न प्राप्त कर ले, तो भी जलमय परिखा से घिरी लंका में आना उसके लिए असंभव है। इन शत्रुओं ने तुमको युद्ध में निहत कर दिया या कुछ छल ही किया है—क्या घटित हुआ है, उसे कौन बतायगा? क्या तुम्हारे पास भी कोई हनुमान् है?

जिन राक्षसों ने इन जनक को बंदी बनाया है, वे, तपस्या से कृश हुए भरत को भी बंदी बना सकते हैं, इसमें संदेह नहीं। तब उदार प्रभु (राम) भी बहुत दिन जीवित नहीं रहेंगे। उनका अनुज लक्ष्मण भी जीवित नहीं रहेगा। जो धर्म के मार्ग पर चलकर अपने व्रत का पालन करते हैं, क्या उनको उत्तरोत्तर उत्पन्न होनेवाले ऐसे संकट ही प्राप्त होते हैं?

जब-जब कोई कहता था कि वानरसेना ने समुद्र पर बाँध डाल दिया, वह लंका में आ गई है, लंका के प्राचीरों को घेर लिया है, शत्रुओं के प्राण ले लिये, तब-तब मैं अधिकाधिक आनन्द पाती थी। अब दुर्दैव ने एक दूसरा ही छल करके उस आनन्द को मिटा दिया—यों कहती हुई सीता मूर्च्छित हो गईं।

दुःख से विह्वल होकर जब सीता ऐसी बातें कह रही थीं, तब देवों के प्रभाव को मिटानेवाले करवाल से युक्त रावण मन में बहुत आनन्दित हुआ और यह सोचकर कि 'यह (सीता) दुःख को नहीं सह सकती है। इसलिए, यह जनक के दुःख को दूरकर स्वयं दुःख से मुक्त होकर रहेगी।' इस प्रकार बातें कहने लगा—

हे सुन्दरि! हंस-समान रमणी! तुमको प्राप्त करने की अभिलाषा से मैं विचार के अयोग्य क्रूर कर्म भी करने लगा। इस अपराध को क्षमा करो। अब मैं मिथिला के

निवासियों का समूल नाश नहीं करूँगा। मैं भले ही मर जाऊँ। तो भी इन जनक को नहीं मारूँगा। डरो मत।

यदि तुम मेरी इस काम-व्याधि को, जो मेरे लिए भार बनी हुई है और अत्यन्त दुःख दे रही है, दूर कर दो, तो मैं इन पृथ्वी के राजा जनक को, देवलोक या सप्तद्वीपों की इस सारी धरती का राज्य उन्हें दे दूँगा। तुमको देवी के समान पूज्य मानकर आनन्दित रहूँगा।

यदि तुम चाहो, तो लंका का राज्य इन जनक को दे दूँ। मैं और कहीं जाकर रहूँगा। मैं दो निधियाँ इनको दूँगा। प्रसिद्ध तथा दिव्य शक्ति से पूर्ण पुष्पक-विमान भी इनको दूँगा। विजयप्रद इस दिव्य करवाल को भी उन्हें दे दूँगा।

हे सुन्दरि! यदि तुम अपने प्रवाल-समान मुँह से एक बात कह दो, तो फिर मैं इन जनक को देवेन्द्र का मुकुट पहना दूँगा और सब देवता वेदमंत्र गाकर इनको नमस्कार करेंगे। देवस्त्रियाँ इनकी आज्ञा का पालन करती हुई सेवा करेंगी। मैं स्वयं इनकी आज्ञा के अधीन रहूँगा।

मेरे पिता (विश्रवा मुनि) के पिता (पुलस्त्य) के पिता तथा सारी सृष्टि को बनानेवाले ब्रह्मा स्वयं आकर इन (जनक) को सभी इच्छित वर देंगे। यमराज इनके अधीन रहेगा। यदि तुम स्वयं अमृत के साथ क्षीरसागर से उत्पन्न लक्ष्मी ही नहीं हो, तो वह लक्ष्मी भी आकर तुम्हारी सेवा करेगी।

देवता, पाताल-लोक के निवासी तथा पृथ्वी के निवासी सब आकर तुम्हारे पिता के चरणों को नमस्कार करेंगे। हे चित्र-प्रतिमा के समान सुन्दरि! तुम इन जनक की पुत्री होकर जनमी हो, तो इससे प्राप्त होनेवाला भाग्य कुछ कम नहीं होगा। त्रिलोक की संपत्ति इन (जनक) को प्रदान कर तुम वह कर्त्तव्य (अर्थात्, पुत्री बनने का कर्त्तव्य) पूर्ण करो।

(रावण की बातें सुनकर) सीता ने कहा—तू जो इन्द्र का राज्य मेरे पिता को देने की बात कह रहा है, उस (राज्य) को इन्द्र ही पानेवाला है। लंका का यह राज्य और छलमय संपत्ति—सब विभीषण को ही प्राप्त होनेवाला है। तेरे वक्ष पर आकर लगनेवाला देवाधिदेव (विष्णु के अवतार राम) का सुन्दर बाण ही है। मेरे लिए शिरोधार्य उन अंजनवर्ण प्रभु (राम) के शुभचरण ही हैं।

शत्रु-भयंकर मेरे प्रभु के बाण तेरे वक्ष को भेदकर गहरे घाव करेंगे और तुझे सद्‌बुद्धि का उपदेश करेंगे। उन•(राम) के धनुष से ऐसा टंकार निकलेगा, जिससे गिरनेवाले पर्वत भी लज्जित हो जायेंगे। (पर्वत गिरने पर जो ध्वनि होगी, उससे भी अधिक भयंकर होगा राम के धनुष का टंकार)।

उन कमलनयन (राम) के धनुष से निकले बाण तेरे मनोहर हारधारी वक्ष पर आकर ठहरेंगे, कौए मधुर ध्वनि करते हुए, तेरी आँखों को नोचकर खायेंगे। मांस की दुर्गंधि से भरे भूत तेरा आलिंगन करेंगे।

'रामचन्द्र के लौहशरों के आघात से तेरे दाँतों से युक्त भयंकर सिर, कंठ से कट-

कर गिर गये। तेरा जीवन समाप्त हो गया'—ऐसा मनोहर संवाद हनुमान् आकर मुझे सुनायगा और उन प्रभु के पास मुझे ले जायगा।

हे अधम! मैं जो मधुर वचन सुनने जा रही हूँ वे हैं—हमारी माता सुमित्रा ने संसार का हित करनेवाले जिन पुत्र को जन्म दिया, उन (लक्ष्मण) के शर से युद्ध में तेरा पुत्र निष्प्राण हो गया। उसकी देह को श्वान चाट रहे हैं और तू 'हाय! मेरा बेटा मर गया!!' कहकर रो रहा है।

सीता के ये वचन सुनकर क्रूर रावण अपनी आँखों से अग्नि उगलने लगा और अपने वीरतापूर्ण बीसों हाथों को मलते हुए, अपने फटे मुँह के दाँतों को चबाते हुए सीता पर झपटा। इतने में महोदर ने उसे रोककर कहा—हे वीर-कंकणधारी यह जनक यदि प्रार्थना करेगा, तो यह सीता मान जायगी। अतः, तुम इसपर क्रुद्ध मत होओ।

महोदर की बात सुनकर रावण पुनः आसन पर बैठ गया। तब निष्प्राण-सा होकर धरती पर पड़ा हुआ वह मायाजनक बोल उठा—यदि तुम इस (रावण) की प्रार्थना को नहीं मानोगी, तो तुम मेरे कुलसहित मेरी हत्या करनेवाली बनोगी! उसने फिर कहा—

कमल पर आसीन लक्ष्मीदेवी अनेक व्यक्तियों के अधीन होती है। हे पापिन! मैंने तुझे जन्म दिया। तेरे कारण मुझे बंदी बनना पड़ा है। क्या मेरा मरना ठीक है? हे बंधन में पड़कर रोनेवाली! यदि तुम देवों के अधिदेव बने इस रावण की पत्नी बन जाओ, तो इसमें क्या बुराई है?

जिसके प्राण कंठगत हो रहे थे, ऐसी दशा में पड़े हुए उस मायाजनक ने यह कहते हुए कि 'कृपा करके मेरे और मेरे कुल के प्राण बचाओ। इस संसार में दीर्घ काल तक मुझे उत्तम संपत्ति का भोगी बनाओ। तुम अपने को भी बंधन से मुक्त कर लो और चिरकाल तक आनन्दित रहो'—सीता के सुन्दर चरणों को नमस्कार किया।

उसके वचन सुनकर सीता ने अपने कानों को हाथों से ढक लिया। उष्ण निःश्वास भरती हुई मूर्च्छित हो गईं, फिर सँभलीं और अत्यन्त क्रोध से भरकर यह सोचने लगीं कि 'मेरे पिता, अपने प्राणों को बचाना ही मुख्य मानकर ऐसी बातें नहीं कहेंगे। अतः, यह कोई माया है', फिर अपना क्रोध प्रकट करती हुई बोलीं—

तुमने जो बातें कहीं, उनसे धर्म का विनाश होगा। परंपरा विच्छिन्न होगी। क्षत्रियोचित वीरता विनष्ट हो जायगी। सत्य मिट जायगा। अपयश उत्पन्न होगा। वेद के विधान स्खलित हो जायेंगे। सदाचार घट जायगा। देवों का प्रभाव कुंठित हो जायगा। विचार करने पर (ऐसा संदेह होता है कि) क्या तुम जनक हो?

चाहे अपनी संतति मिट जाय, अपने प्राण भी चले जायँ, शूल आकर वक्ष को भेद डाले, तो भी महान् लोग ऐसे सुयश के साथ जीवन बिताना चाहते हैं, जिसको सुनकर मन को संतोष हो। कोई भी क्षत्रिय नीति के विरुद्ध रहकर, अप्रकट रूप में अनेक लोगों की निन्दा का विषय बनकर जीवन बिताना नहीं चाहेगा। अहो! यह कैसा पाप है!

तुम, तुम्हारे बंधुजन, इस विशाल धरती के रहनेवाले सभी प्राणी मेरी आँखों के

सामने भले ही मिट जायँ, तो भी मैं नीति और चारित्र्य से हीन होकर नहीं जीऊँगी। मैं सहस्र नामवाले, वज्र-समान दृढ कंधोंवाले (विष्णु के अवतार राम) की दासी हूँ। क्या मैं प्राण बचाने की कामना से लज्जा छोड़ इस श्वान को (अर्थात्, रावण को) आँख उठाकर देखूँगी ?

हे श्वान से भी नीच ! दृढ धनुर्धारी राम के अतिरिक्त कोई भी मेरे निकट आयगा, तो वह दीप की लौ पर गिरे शलभ के समान जलकर भस्म हो जायगा। मृगराज के साथ रहनेवाली सिंहिनी क्या अशुद्ध वस्तुओं को खानेवाले सियार के साथ कभी रह सकती है ?

तुम मेरे पिता नहीं हो। यह निश्चित है। यदि तुम सचमुच मेरे पिता होते, तो विजय-मालाधारी प्रभु (राम) के धनुष की जय बोलकर उनके मुक्त करने पर मुक्त होने की इच्छा करते। यदि मुक्त होना संभव नहीं होता, तो मरने को तैयार होते। तुमने तो अवाच्य वचन कहे। अतः, चिर अपयश का भागी बने—यों सीता ने कहा।

कठोर बल से युक्त रावण ने (सीता की) उन निष्ठुर बातों को सुनकर, यह कहकर कि 'तुम अपने मन की बात रहने दो, आगे जो भी घटित होगा, वह तुम्हारी आँखों के सामने ही होगा, इस जनक को, जिसे तुम अपना पिता नहीं मानती हो, अभी मारकर उसके प्राण पीऊँगा', अपनी कटार हाथ में ले ली।

सीता ने कहा—तुझमें मुझे मारने की शक्ति नहीं है। अब इसे भी तू नहीं मार सकता। तू अपने को भी नहीं मार सकता। इतना ही नहीं। इस संसार को भी नहीं मार सकता। तू तो मेरे प्रभु के शरों से ही अपने बंधुजन-सहित मरेगा। मैं इस दुःख से मुक्त होकर शाश्वत यश की पात्री बनूँगी।

तब महोदर ने रावण से कहा—हे इन्द्र के ऐश्वर्य के स्वामी ! इस जनक ने अपनी पुत्री से प्रार्थना की (कि वह तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करे)। किन्तु, इसने तुम्हारे प्रति कुछ अपराध नहीं किया। अब इसे मारना उचित कार्य नहीं है। जब तुम उस भयंकर शत्रु (अर्थात्, राम) को परास्त करके इस सीता को अपनाओगे, तब यह (सीता) अपने पिता का स्मरण कर दुःखी होगी न ?

जब महोदर यह कह रहा था, तभी रामचन्द्र ने पर्वताकार कुंभकर्ण का वध किया। उससे प्रसन्न होकर बलशाली वानरसेना ने ऐसी हर्षध्वनि की, जो अंतरिक्ष में भर गई। देवों ने भी हर्षध्वनि की। वह ध्वनि सर्वत्र फैल गई।

तब रावण ने मन में विचार किया कि 'ऐसा टंकार उठ रहा है, जिसकी समानता अन्य टंकार नहीं कर सकता एवं निर्बल देवताओं तथा वानरसेना की हर्षध्वनि जो उठ रही है, उसका क्या कारण हो सकता है ? कदाचित् मेरा भाई (कुंभकर्ण) अपनी सारी सेना के मिट जाने पर अकेला ही रह गया है।'

इसी समय सेना-समुद्र को पारकर शीघ्रगति से आये हुए दूतों ने रावण के कानों में धीरे-धीरे यह समाचार सुनाया कि 'वानरों के समूह को मिटानेवाला तुम्हारा भाई (कुंभकर्ण) मारा गया। राम ने अपने शर से उसे मार डाला।'

यह सुनते ही रावण धरती पर गिर पड़ा। अनेक ग्रहों से घिरे हुए सूर्य की समता करनेवाले उसके अति सुन्दर स्वर्णहारों से भूषित किरीट भूमि पर लोटने लगे। उसका गिरना ऐसा था, मानों कोई ऊँचा सालवृक्ष जड़ से उखड़कर धराशायी हो गया हो।

जो भाई जन्म-काल से अभी तक कभी उससे पृथक् नहीं हुआ और जिसके साथ वह एकप्राण होकर रहा, अपने कारण उसके युद्ध में मारे जाने की बात सुनकर, रावण दुःख से विह्वल हो गया और फूट-फूटकर इस प्रकार रो पड़ा कि उसकी ध्वनि ब्रह्मांड की छत तक गूँज गई।

रावण यह कहता हुआ रो पड़ा—हे भाई! हे देवता-रूपी कमलवन का विनाश करनेवाले मत्तगज! हे चतुर्मुख के पौत्र! हे इन्द्र के नाम को मिटानेवाले वीर! मुझे तुम्हारे बारे में क्या यही समाचार सुनना था!

हे उज्ज्वल फलोंवाले त्रिशूलधारी! मैं तुम्हारी दृष्टि से ओझल रहकर अपने प्राणों की रक्षा करता हुआ बैठा हूँ और यह भी नहीं पूछा कि तुम्हारी दशा कैसी है? यदि तुम्हारी ऐसी दशा हो गई, तो मुखपट्ट से भूषित ऐरावत पर सवार होनेवाला इन्द्र पुनः स्वर्गलोक में प्रवेश कर जायगा न?

हे विद्युत् को भी भयभीत करनेवाले त्रिशूल के धारणकर्त्ता! मुझ कठोर हृदयवाले को यहाँ छोड़कर तुम्हीं पहले स्वर्ग पहुँच गये। अब कौन एक माता के उदर में (सहोदर बनकर) जन्म लेने की इच्छा करेगा? तुम्हारे डर से छिपकर जीवन बितानेवाले दानव अब छाती पर हाथ रखकर आयेंगे न?

हे बलिष्ठ कंधोंवाले! जब तुम स्नान करते थे, तब उत्तर का मेरु-पर्वत तुम्हारे लिए एँड़ी रगड़ने का पत्थर बनता था। हे पुरुषश्रेष्ठ! एक नर के बाण ने तुम्हारे प्राणों को समाप्त कर दिया, यह बात मुझे बहुत साल रही है।

(शिवजी का) त्रिशूल, (विष्णु भगवान् का) चक्रायुध तथा (इन्द्र का) वज्रायुध भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सके; किन्तु तुमपर लगकर स्वयं ही कुंठित हो गये। लेकिन, एक नर के कोमल बाण तुम्हारी देह को भेदकर निकल गये। फिर भी, यह रावण अपनी भुजाओं को देखते हुए बैठा है।

मेरा भाई मारा गया। यह लंका शत्रुओं के हस्तगत हुई। मेरा मातुल (मारीच) मारा गया। मेरी बहन की नाक कट गई। इतना होने पर भी एक स्त्री के स्तनों के आकर्षण में पड़कर मैं अभी तक जीवित हूँ। हाय! तुमको भी खोकर मैं जी रहा हूँ न!

मुझे यह सुनने का सौभाग्य नहीं मिला कि तुमने उस नर (राम) को, उसके भाई को, उसके सेनापति (नील) को, कपिराज को, बालिपुत्र को, वायुपुत्र को तथा ऋक्षराज (जांबवान्) को मार गिराया है। हाय! तुम्हारी यह मृत्यु कैसी!

मुग्धा नारियाँ तुम्हारे पैर सहलाती थीं। मंदमारुत का शीतल स्पर्श प्राप्त होता था और तुम मनोहर नन्दनोद्यान में पुष्प-पर्यंक पर विश्राम करते थे! अब क्या तुम युद्धभूमि में भूतों के पटहों के कोलाहल के बीच धूलि की शय्या पर पड़े हो!

तुम रक्तवर्ण मद्य पीकर, सब दिशाओं पर विजय पाकर सुख से सो रहे थे। इसलिए मैं जीवित रहा। अब मैं भी अपने प्राण तज दूँगा। तुमको एकाकी न जाने देकर मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। हे मत्तगज-सदृश ! मैं भी आया !

इस प्रकार के वचन कहकर ऊँची ध्वनि से वह (रावण) रोया और अपने नाम के पुराने कारण को सबके सम्मुख प्रकट किया।[1] मीन-समान नयनोंवाली सीता के अधर काँप उठे। पुलक भर गई और उनके मन में हर्ष छा गया।

सीताजी के स्तन (आनन्द से) उभर उठे। उनकी सारी कृशता मिट गई। उनका चित्त शीतल हुआ। उनके प्राण लौट आये। निर्दोष लक्ष्मी देवी भी जिनकी सेवा करने योग्य हैं, ऐसी उन सीताजी की दशा का वर्णन कौन कर सकता है ?

अपनी कल्पना में, नेत्रों में न समानेवाली अपार सुन्दरता से युक्त कंधोंवाले राम को एवं उनके सम्मुख भीमकाय कुंभकर्ण को देखकर सीताजी आशंकित हो गई थीं। अब यह वचन सुनकर कि रामचन्द्र के अमोघ बाण ने कुंभकर्ण को निहत कर गिरा दिया, वे फूली नहीं समाईं और एक दूसरी ही स्त्री के समान हो गईं।

रावण महान् क्रोध से भरकर बोला—आज इस सारे लोक को मैं अपने शरों से मिटा दूँगा। कभी न मरनेवाले त्रिमूर्त्तियों को तथा तीनों कालों में मृत्यु से रहित करनेवाले अमृत को पिये हुए देवताओं को बंदी बनाऊँगा।

सब दिशाओं पर विजय पानेवाला रावण उस समय मंत्रियों के आश्वासन-वचन सुनकर कुछ शांत हुआ। 'उन नरों के नूतन रक्त से अभी अपने भाई को तीन बार तिलांजलि दूँगा'—यों कहता हुआ अग्नि उगलती आँखों के साथ चल पड़ा।

महोदर यह कहकर कि 'अब हम भी जायेंगे। कुंभकर्ण युद्धभूमि में मरा पड़ा है, जहाँ गृद्ध आदि पक्षी मँड़राते हैं।'—फिर सेवकों को आदेश देकर कि सीता के समान ही इस जनक को भी बंदी बनाकर रखो, स्वयं भी दूसरी दिशा में चला गया।

रेखाओं से युक्त पंखोंवाले तथा सुरभित पुष्पों पर मँड़राते रहनेवाले भ्रमर जहाँ नहीं आते थे, ऐसे मलिन केशों को एकवेणी में गूँथे हुए सीता के निकट आकर उस पर स्नेह रखनेवाली त्रिजटा ये सांत्वना के वचन बोली—

'तुम्हारा पिता कहकर तुम्हारे सम्मुख आया हुआ यह मारुत नामक राक्षस है, जो अपार माया एवं क्रूरता से पूर्ण है।'

सीता उस त्रिजटा के वचन पर सदा भरोसा रखती थी। वह अपने मन के दुःख से एवं अपने शरीर के दुःख के लक्षणों से मुक्त हुई। अब, अशोकवन से वापस गये हुए रावण के कृत्यों का वर्णन करेंगे। (१–९५)

●

१. 'रावण' शब्द का अर्थ है रोनेवाला। पुराकाल में कैलासगिरि को उठाते समय उसके नीचे दबकर रावण रोया था, जिससे उसका नाम 'रावण' पड़ गया। —अनु०

अध्याय १७

अतिकाय-वध पटल

प्रलयकालिक उग्र अग्नि के समान क्रोध से भरकर रावण ने अपने दोनों ओर हाथ जोड़कर खड़े रहनेवाले मंत्रियों को देखकर कहा—

युद्ध में निपुण मेरी सेना को एवं अपनी समुद्र-समान सेना को साथ लेकर भी तुम लोग उन शत्रुओं के वेगवान् धनुष को नहीं रोक सके। हट जाओ मेरे सामने से!

तुम लोग प्रतिज्ञा करके गये थे कि सेना के साथ युद्ध में आये हुए उन नरों को मिटाकर ही यहाँ लौटेंगे। किन्तु, मेरे भाई को नहीं बचा सके!

आदि काल से मैं त्रिभुवन पर शासन कर रहा था, तो वह अपने ही पराक्रम से। मेरे ही पराक्रम से तुम लोग भी इस ऐश्वर्य का भोग पा सके! अब भी सही, तुम अपने प्राण देने के लिए भी सन्नद्ध होकर, वीरता को अपनाकर अपना कर्त्तव्य करो!

यदि तुम उन शत्रुओं के सामने खड़े नहीं रह सकते, तो स्पष्ट कहो। मैं यम की समता करनेवाले अपने शूल को उनपर फेंककर उनकी पीठ तक (वक्ष को) भेद डालूँगा।

और एक बात तुमसे कहनी है! यदि युद्ध जीतने की इच्छा हो, तो युद्धक्षेत्र में जाओ! यदि पराजित होने का डर है, तो लौट आओ! दोनों में से क्या करना चाहते हो, कहो।

(रावण ने जब यह कहा, तब) ब्रह्मा भी क्रोध करके जिसे नहीं जीत सके, जो क्रोध करे, तो नदी का जल भी सूख जाय, ऐसे क्रोध से भरा अतिकाय ने पूर्णचन्द्र के समान छत्रवाले रावण से कहा—

भले ही स्वर्गवासी डर जायँ। संसार के लोग डर जायँ। विष्णु, शिव आदि भी डर जायँ। चाहो तो तुम यह कहो कि तुम युद्ध से डर गये हो। लेकिन, तुम मुझे कैसे युद्ध से डरनेवाला कहते हो?

क्या मैं दानवों के बड़े-बड़े वीरों को बाँधकर नहीं लाया? तुमको कँपानेवाले देवों को भी क्या मैंने कुम्हार के चक्र के समान नहीं घुमाया था?

क्या तुमने मुझे वह अक्षकुमार समझ लिया, जो भली भाँति तपाकर तीक्ष्ण किये गये शूल को हाथ में रखते हुए ही पिसकर मर गया? या, वह कुंभकर्ण समझ लिया, जो कुछ शरों की चोट खाकर ही मर गया? या, वह विभीषण समझ लिया, जो उन (राम-लक्ष्मण) की प्रशंसा सुनकर वंचित हो गया?

तुम्हारे भाई (कुंभकर्ण) के प्राण लेनेवाले उस नर (राम) के भाई के प्राणों का मैं अंत कर दूँगा और उस राम को भयंकर दुःख उत्पन्न कर दूँगा। यदि ऐसा न करूँ, तो क्या मैं तुम्हारा पुत्र कहलाने योग्य हूँ?

घोर युद्ध करनेवाले उन वानरों को पीस डालूँगा। प्रमुख सेनापतियों के सिर काट गिराऊँगा। उन धनुर्धारियों के सिर ले आऊँगा। मेरा पराक्रम देखोगे।

चाहे सेना-समुद्र को साथ भेजो, या मुझे अकेले ही युद्ध में भेजो। जैसे भी चाहो, मैं जाऊँगा। अभी आज्ञा दो—यों अतिकाय ने कहा। तब राक्षसनाथ रावण बोला—

तुमने विचारकर ठीक कहा। यदि तुम लक्ष्मण के प्राण लाओ, तो मैं दूसरे ही दिन उस राम के प्राण हरण कर लूँगा।

हे स्वर्णमय वीर-वलय धारण करनेवाले वीर! तीन सहस्र कोटि पदाति-सेना तथा उसके योग्य गज, अश्व तथा रथ लेकर युद्ध में जाओ।

देवों के लिए भी अजेय बल से युक्त कुंभ, निकुंभ, स्वर्ण-वलयधारी अकंप—तीनों तुम्हारे रथ की रक्षा करते हुए जायेंगे।

हे कठोर पराक्रम से भरे वीर! भयंकर युद्ध में आगे-आगे जानेवाले शिवजी के वृषभ की समता करनेवाले, रास से बँधे एक सहस्र अश्वों से जुता रथ तुमको दिया जायगा।

उतने ही अश्ववाले और वैसे ही रथ तुम्हारी रक्षा करते हुए साथ आयेंगे। हिंसक हाथी, पताकाओं से भूषित होकर तुम्हारे साथ जायेंगे।

रावण ने इस प्रकार आज्ञा दी। तब अतिकाय ने पिता को नमस्कार किया। स्वर्णमय कवच पहनकर दृढ धनुष हाथ में लेकर एक मेघ के समान खड़ा हुआ, तो उसे देखकर देवता भी काँप उठे।

हाथी से भी विलक्षण (बड़े) आकारवाला अतिकाय, धमकी देते और चिल्लाते हुए चलनेवाले असंख्य वीरों से घिरा हुआ सूर्य से भी अधिक उज्ज्वल विविध शस्त्र लेकर चला।

आभरण-भूषित, अंजनरूप, मत्तगज ऐसा गर्जन कर उठे कि कंदराओं में रहनेवाले सिंह भी थरथरा गये। धनुषों का ऐसा टंकार हुआ कि समुद्र का जल भी विक्षुब्ध हो उठा। मेघों को भयभीत करते हुए नगाड़े बज उठे।

साथ जानेवाले वीरों ने ऐसा कोलाहल किया कि आकाश भी उस ध्वनि से काँप उठा। उनके भारी चरणों के बारी-बारी से रखने से भूमि भी ऊब-डूब होने लगी। उनके चलने से उठी हुई धूलि से समुद्र पट गये। वह दृश्य देखकर स्वर्ग के निवासी पसीना-पसीना हो उठे।

बिजलियों से युक्त मेघ, जो उन्नत हाथियों पर की पताकाओं से लगे खिंचे चलते थे, ऐसे लगते थे, मानों शीघ्रगति से जानेवाले हाथियों के पीछे-पीछे हथिनियाँ भी जा रही हों।

अंकुशों से दबाये जानेवाले महान् मत्तगजों के कपोलों से इतना मदजल बहा कि उस बहाव में, फाँदनेवाले घोड़े और हाथी भी बह गये और सेना का मार्ग कीचड़ से भर गया।

अरुणकिरण सूर्य के रथ के साथ जैसे ग्रह जा रहे हों, वैसे ही अतिकाय के रथ के साथ दूसरे वीरों के रथ जा रहे थे। जैसे मेघ जा रहे हों, वैसे मुखपट्ट से भूषित मत्तगज जा रहे थे। उस सेना के अश्व तो मानों धरती पर पैर ही नहीं रख रहे थे।

रथ ऐसे जा रहे थे, मानों मेरु-पर्वत ही जा रहे हों। ऐसी सेना को साथ लेकर अतिकाय युद्धभूमि में जा पहुँचा।

अतिकाय ने उस रणांगण को देखा, जहाँ राम नामक मत्तगज ने खेल खेले थे। उससे उसका मन विकल हुआ और क्रोध से भर गया।

कंधों एवं चरणों के कट जाने से पर्वत की तरह बिखरकर पड़े हुए कुंभकर्ण के शरीर को देखकर वह अपने मन में अत्यन्त दुःखी हुआ और उसके शिर को वहाँ न देखकर बहुत व्याकुल हुआ।

यह शरों से भरा कोई टीला नहीं है। किसी दिग्गज की देह भी नहीं है। मेरे चाचा की देह ही है।—यों कहकर (अतिकाय ने) निःश्वास भरा।

हाय! क्या यह दशा देखने के लिए ही मैं यहाँ आया। जबतक मैं उन नरों को निहत न करूँ और अपने प्राणों की रक्षा न कर लूँ, तबतक इस दुःख से मुक्त नहीं होऊँगा।

यह कहकर वह क्रुद्ध हुआ और मन में यह विचारकर कि 'ऐसी दशा उत्पन्न करनेवाले उस राम के भाई को मारकर अपना दुःख दूर करूँगा', एक दूत को देखकर बोला—

हे महिष! तू अनुपम वेग से उस लक्ष्मण के निकट जा। उससे मेरी यह इच्छा (कि मैं उससे युद्ध करना चाहता हूँ) बता।

पहली बात तू उससे यह कहना कि अतिकाय उमड़ते दुःख से क्रुद्ध होकर, अपने पिता के इस दुःख को कि इसका भाई युद्ध में निहत हो गया, दूर करने के लिए आया है।

तू यह भी कहना कि मैं (अर्थात्, अतिकाय) ने रावण के दरबार में यह प्रतिज्ञा की है कि मैं लक्ष्मण के प्राण मिटाऊँगा।

मैंने जो करने का संकल्प किया है, वह पाप नहीं है। यह क्षत्रियोचित धर्म है। उसे भली भाँति समझाकर युद्ध के लिए ले आ।

युद्ध की कामना से आये उन नरों के पास जाकर यह घोषणा कर कि जो कोई सम्मुख-युद्ध में आकर यमपुर को जाना चाहते हैं, वे सभी आयें।

हे विज्ञ! यदि तू उस लक्ष्मण को मेरे सामने ले आयगा, जिसकी मृत्यु से मेरे पिता का दुःख दूर होगा, तो मैं तुझे अनुपम वस्तुएँ (पुरस्कार में) दूँगा।

लक्ष्मण नामक वह सिंह जब तेरे द्वारा यहाँ लाया जायगा, तब उसे क्षत-विक्षत करके तुझे भी एक राजा बना दूँगा।

तुझे ऐसे मद्य के आठ हजार घड़े दूँगा, जिस (मद्य) को देवताओं ने, विद्याधरों ने या उनकी स्त्रियों ने भी कभी नहीं पिया होगा।

फिर, तुझे अरुणकिरण (सूर्य) के समान कांतिवाले, देवों से लाकर दिये गये बहुमूल्य और दिव्य निधियों के अधिप कुबेर से प्राप्त अनेक रत्नमय आभूषण दूँगा।

और, निरंतर मद बहानेवाले, अग्रभाग में मँड़राते भ्रमरों से घिरे, अपार मद के कारण क्रोध करनेवाले शत-सहस्र हाथी भी तुझे दूँगा।

रक्तस्वर्ण से निर्मित रथ और रत्नमय किंकिणिमाला से भूषित तथा इस पृथ्वी पर न चलकर सदा अंतरिक्ष में ही उड़नेवाले असंख्य अश्व दूँगा।

निधियों के ढेर दूँगा। रत्नों के गट्ठर दूँगा। चन्द्र के समान उज्ज्वल क्षौम (रेशमी) वस्त्र दूँगा और असंख्य शकट दूँगा।

तू और जो कुछ चाहेगा, वह सब तुझे दूँगा। हे स्वर्णमय वीर-कंकणधारी! तू शीघ्र जा—यों अतिकाय ने आज्ञा दी।

तब वह दूत शीघ्र राम के निकट गया। तब वानर-वीर उसे पकड़ने के लिए लपके। तब—

ज्ञान के स्रोत तथा वेदों के मुख्य प्रतिपाद्य विषय बने प्रभु ने वानरों से कहा—यह अपने स्वामी के कथनानुसार कार्य करनेवाला दूत है। यह कुछ नहीं जानता। निःशस्त्र आया है। इसपर क्रोध मत करो।

फिर, प्रभु ने उस दूत से उसके आने का कारण पूछा। तब उज्ज्वल दाँतोंवाले उस राक्षस ने कहा—'हे धनुर्धारी राजन्! मैं अपने स्वामी का संदेश तुम्हारे भाई से ही कहना चाहता हूँ।'

तब धनुर्धारी प्रभु के अनुज ने कहा—'तू अपने आने का कारण बता।' तब दूत बोला—अतिकाय अनेक सहस्र सेना के साथ आये हैं। तुम उनके सामने आओ।

अतिकाय तुमसे युद्ध करने आया है। यदि उससे युद्ध करने का साहस तुममें हो, तो हे स्वर्णमय देहवाले! तुम मेरे साथ आओ।

तुम्हारे भाई राम ने उसके पर्वत-समान पिता (कुंभकर्ण) की जो दुर्दशा की, वही दशा वह (अतिकाय) तुम्हारी भी करनेवाला है; इसमें कुछ संदेह नहीं। मैंने स्पष्ट कह दिया।

अतिकाय, कुंभकर्ण को मारनेवाले व्यक्ति को छोड़कर उसके भाई तुमको युद्ध के लिए बुला रहा है कि वह उसके पिता को जैसा भ्रातृदुःख हुआ है, वैसा ही दुःख उसके मारनेवाले (राम) को भी उत्पन्न करना चाहता है।

तब राम बोले—हे स्वर्ण के देवता, पृथ्वी के निवासी तथा अन्य सब लोग! यह बात सुनें। यह लक्ष्मण अतिकाय से लड़ने जा रहा है। यह उस (अतिकाय) के साथ आये हुए राक्षसों से भी लड़ेगा।

जब उस प्रभु ने, जिन्होंने अपने चरणों से (त्रिविक्रमावतार में) चौदहों लोकों को नापा था, इस प्रकार कहा—

तब उस जलते फरसे के समान मुखवाले दूत ने कहा—तुम अभी मेरे साथ चलो। तब सबके वंदनीय चरणोंवाले प्रभु ने लक्ष्मण का आलिंगन करके कहा—अविलंब जाओ।

इस समय सन्मार्ग पर चलनेवाले विभीषण ने कहा—हम सब भी साथ जायेंगे। लक्ष्मण एकाकी ही अतिकाय के साथ युद्ध करेंगे। फिर, उन नारायण (के अवतार राम) से कहा—

वीर-वलयधारी तथा रोष-भरे सिंह-समान लक्ष्मण के साथ युद्ध करने के लिए

वह अतिक्रूर तथा निर्भय अतिकाय रथारूढ होकर ऐसे आया है, जैसे कोई मेघ हो।

वह अमोघ तपस्या से संपन्न है। ब्रह्मा से प्राप्त वर के बल से, देवों और असुरों से हुए युद्ध में अक्षत रहा है।

जिस रावण ने वनों से भरे कैलास को, उसके निवासी शिवजी के साथ ही उठाया था, उसने उत्तर के मेरु-पर्वत को, उसपर के सब देवताओं के सहित, उखड़वाने के लिए ही इसे पाला है।

वह (अतिकाय) इतना बलवान् है कि विष्णु, मंदर-पर्वत, वासुकि सर्प, देवता आदि की सहायता के बिना ही, क्षीर-समुद्र को अपने पैरों से ही मथकर हलाहल एवं अमृत निकाल सकता है।

प्रलयकाल में भी दृढ रहनेवाले मुखपट्टधारी बड़े-बड़े दिग्गजों को ढकेलनेवाले (रावण के) कंधों का बल, चक्रवाल-पर्वत को अपनी हथेली से हिला देनेवाले (अतिकाय) के बल के सामने कुछ भी नहीं है।

अनंतकाल तक अनिमेष रहनेवाले विषकंठ (शिव) ने जब अपना त्रिशूल इस (अतिकाय) पर फेंका था, तब इसने उस शूल को अपने हाथों से पकड़कर कहा था—'क्या यह भी कोई शूल है?'

जब इससे वैर मोल लेनेवाले देवों के नगर को यह जलाने लगा था, तब विजय-मालाधारी विष्णु ने इसपर चक्र का प्रयोग किया था, पर इसने उसे भी रोक दिया था।

जब देवताओं ने इसपर विविध शस्त्र फेंके, तब इसने उन सबको धूल बनाकर बिखेर डाला था और वज्रायुध को भी विफल कर दिया था।

इसने शिवजी से धनुर्वेद का रहस्य सीखा है। उनसे अनेक ऐसे अस्त्र पाये हैं, जिनको देवता भी नहीं जानते।

यह धर्म-विरुद्ध बातों को छोड़कर और कुछ नहीं जानता। वीरता से हीन कोई कार्य नहीं करता। बलहीन किसी प्राणी को नहीं मारता और बड़ा यश पाने की इच्छा रखता है।

युद्ध में भले ही इसके प्राण संकट में हों, कोई इसके साथ कपट-युद्ध ही क्यों न करे, कोई शत्रु कूटनीति से भी लड़े, तो भी स्वयं यह मायाकृत्य कुछ भी नहीं करता।

पूर्वकाल में मधु और कैटभ नामक दो असुर, देवों के नगर पर अधिकार करके, विधि की प्रेरणा से क्षीर-समुद्र में स्थित देवाधिदेव (विष्णु) से लड़ने गये।

उन्होंने क्षीर-समुद्र के बीच में जाकर विष्णु से कहा कि हमारे साथ युद्ध करो। अमोघ चक्र को धारण करनेवाले भगवान् विष्णु यह कहते हुए कि 'तुमको अपूर्व युद्ध मिलेगा', लड़ने आये।

युद्ध में सहस्र रूप धारण करके लड़नेवाले, सबको परास्त करनेवाले तथा कौशल के साथ युद्ध करनेवाले उन असुरों के साथ विष्णु ने अनेक दिनों तक मल्लयुद्ध किया।

अपनी समता न रखनेवाले तथा उज्ज्वल ज्योतिर्मय आकारवाले उन भगवान् विष्णु को देखकर उन असुरों ने पूछा—'हम, अनुपम बलवानों में से तुम्हारे योग्य कौन है?'

फिर, उन असुरों ने कहा—हममें से प्रत्येक सप्तलोकों को खा जाने की शक्ति रखता है। हम दोनों ऐसे वीर हैं, तो भी तुमने एक साथ ही हम दोनों के साथ अकेले युद्ध किया। हे यशस्विन्! हम तुमको एक वर देंगे। माँगो! क्या चाहते हो!

'तुम अपना हितकारी कोई वर माँगो।' उन असुरों के इस प्रकार कहते ही विष्णु ने वर माँगा—'तुमको परास्त करने का उपाय क्या है, बताओ।'

तब नीति से स्खलित न होनेवाले उन असुरों ने उत्तर दिया—हम तुम्हारी अनुपम जंघा पर मर सकते हैं। अन्यत्र नहीं। यदि तुम हमें अपनी जाँघ में दबा लोगे तो हम मर जायेंगे।'

तब अज्ञेय भगवान् ने अपनी वाम जंघा को सप्तलोकों में फैला दिया। विधि-वश मधु और कैटभ उस जाँघ में फँस गये। यह पूर्व की घटना है।

तब उपमाहीन भगवान् ने अपनी गदा से उनपर प्रहार किया। वे निष्प्राण हो गिरे। मधु जो भय से अपरिचित था, उसके मेदे से यह विशाल धरती भर गई। इसी लिए इस (पृथ्वी) का नाम 'मेदिनी' पड़ा।

वह मधु ही इस युग में मेरा भाई (कुंभकर्ण) होकर जनमा था, जो मारा गया है। यह अतिकाय ही वह सूर्य-समान कैटभ है। यह तथ्य मैंने स्पष्ट किया है।

विभीषण ने इस प्रकार कहा। तब मेघ-समान प्रभु ने विद्युत्-समान मंदहास प्रकट करके कहा—'ठीक है।' और फिर बोले—

आठ सहस्र करोड़ रावण, स्वर्ग के निवासी, अन्य लोकों के निवासी, त्रिमूर्त्ति—सबके आने पर भी इस लक्ष्मण का धनुःकौशल अमोघ रहेगा—यह तुम देखोगे।

यदि मेरा भाई क्रोध करे, तो स्वर्गवासी कहाँ रहेंगे? पृथ्वी के प्राणी कहाँ रहेंगे? विष्णु कहाँ रहेंगे? कौन धनुर्धारी खड़ा रहेगा? शिवजी कहाँ रहेंगे? देवेन्द्र कहाँ रहेगा?

दिव्य अस्त्र, क्रोध तथा दोष से रहित तपोबल तथा अन्य सब वस्तुएँ भी इसके सम्मुख नहीं टिक सकेंगे। लक्ष्मण के अपने धनुष पर हाथ रखते ही वे सब छिन्न-भिन्न हो जायेंगे।

हे उत्तमगुण विभीषण! मेरी पत्नी को छल से उठा लानेवाला वह रावण उसी दिन मिट गया होता। यह लक्ष्मण उस (सीता) के वचन का उल्लंघन नहीं करना चाहता था और उसे अकेली छोड़कर मेरे निकट चला आया था। इसी से वह (रावण) अबतक जीवित है।

तुम भी इसके साथ जाओ। तुम देखोगे कि कैसे इसके शर से कटकर गगन में उड़े हुए अतिकाय के सिर को काक आदि पक्षी खाते हैं!

क्या जल से जल की बाढ़ को रोका जा सकता है? देवताओं के हेतु हम क्रूर राक्षसों से युद्ध करने आये हैं, तो किसी की सहायता लेकर थोड़े ही आये हैं?

उस (अतिकाय) को परास्त करनेवाला रुद्र हैं। रुद्र नहीं, तो विष्णु हैं।

विष्णु भी नहीं, तो सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हैं। वह भी नहीं, तो यह लक्ष्मण है। यदि यह (लक्ष्मण) भी उसे परास्त नहीं कर सके, तो और कौन कर सकेगा?

(कुंभकर्ण के साथ) जो एक सहस्र समुद्र राक्षस आये थे, उन सबको इसी ने निहत किया था। इसका साथी कोई नहीं था। क्या यह भूल गये?

सब क्रूर राक्षसों का यही वध करेगा। यही उन सबको मारकर विजय प्राप्त करेगा। यही बलवान् विष्णु के समान युद्ध करनेवाला है। अतः, यह जाय और इसके साथ तुम भी जाओ।—यों राम ने कहा।

तब लक्ष्मण ने रामचन्द्र की तीन बार परिक्रमा की और उस युद्धभूमि में जाकर प्रविष्ट हुआ, जहाँ अतिकाय था। अति ज्ञानवान् विभीषण उसके साथ-साथ गया।

मानों दक्षिणी समुद्र पर अन्य समुद्र आक्रमण कर रहे हों—यों (राक्षसों के) गज, रथ, अश्व तथा पदाति सेनाओं पर वानरसेना आक्रमण करने लगी।

नवीन रक्त से जहाँ कीचड़ बन गया था, उस युद्धक्षेत्र की भूमि से, सेनाओं के चलने से धूलि उठने लगी और 'कुसुम्भ' (नामक) पुष्प के सुरभित पराग के समान अंतरिक्ष में भर गई।

नगाड़ों की ध्वनि, शंखों से निकलनेवाली ध्वनि, वीरों की कोलाहल-ध्वनि, सुरक्षा के लिए किये गये धनुषों की टंकार-ध्वनि, इन सबसे भयभीत होकर समुद्र मौन हो गये।

ज्यों-ज्यों राक्षस निहत होकर गिरते थे, त्यों-त्यों उनका रक्त-प्रवाह निर्झर के समान बह चलता था। पताकाएँ घने पत्तोंवाले वृक्षों के समान टूट-टूटकर गिरती थीं। वानर, जैसे पहाड़ों पर लपकते हों, त्योंही वे हाथियों पर लपककर चढ़ जाते थे।

वानर पर्वतों को उठाकर हाथियों पर फेंकते थे, वे पर्वत, वृक्ष-शाखारूपी दाँतों एवं निर्झर-रूपी मदजल से युक्त होकर ऐसे लगते थे, मानों हाथी ही हाथियों से भिड़ रहे हों।

वानर कुछ को हाथों से मारते थे। कुछ को डाँटते थे। कुछ को दृढता से पकड़ते थे। कुछ को नखों से नोंचते थे। कुछ को दाँतों से काटते थे। उन्होंने अश्व-सेना को इस प्रकार निहत किया कि अश्व पैर ऊपर किये तड़प उठे।

वानरों के टूट पड़ने से हाथियों की सेना यों विध्वस्त हुई, जैसे प्रभंजन के आघात से घनी घटाएँ विच्छिन्न हो जाती हैं। उनके दाँतों के मोती झर पड़े।

(वानरों के) वज्र-समान पैरों, हाथों तथा कालपाश के समान पूँछों की चोट, जिनसे हाथी भी निहत हो जायँ, खाकर राक्षस लौट गये और उन राक्षसों के शूलों की चोट से वानर लौट गये।

वानर-समूह प्रस्तरों से पूर्ण शैलों, करवाल-समान तीक्ष्ण दाँतोंवाले सर्पों, अश्वों तथा गजों को उठा-उठाकर फेंकता था, जिससे युद्धक्षेत्र की भूमि अरण्य के समान हो गई।

कपिसेना के वीर ज्यों-ज्यों बड़े शैलों को उठा-उठाकर बलवान् राक्षससेना पर फेंकते थे, त्यों-त्यों वे पर्वत गगन-तल से टकराकर, चूर-चूर होकर समुद्र में गिर जाते थे और ऐसे लगते थे, मानों समुद्र पर बादल छाये हों।

पैर फिसलकर यत्र-तत्र गिरनेवाले राक्षसों को वानर लोग उनके शूल, करवाल, फरसे आदि शस्त्र-सहित ही रक्तधारा में डुबोते थे और उन्हें भली भाँति घुमाकर रक्तप्रवाह में बहा देते थे।

बलवान् वानर रुधिर-प्रवाह में तैरकर बीच-बीच में टापुओं के जैसे स्थित हाथियों पर चढ़ जाते थे। फिर, उन हाथियों के प्रवाह में बहने पर उनके साथ ही समुद्र में पहुँच जाते थे और वहाँ तट न देखकर स्तब्ध हो जाते थे।

हाथियों के पैर उखड़ जाने से वे रुधिर-प्रवाह में बह चलते थे। वानरों की भीड़ उनकी पूँछों को पकड़कर यों चलती थी, जैसे नदी की धारा में अंधे लोग लकड़ी टेककर चल रहे हों।

राक्षसों के समुद्र ने अनेक बार कपिसेना को विक्षुब्ध कर दिया। तब बड़े-बड़े वानर भी अस्त-व्यस्त हो दूर जा गिरे।

तब लक्ष्मण 'डरो मत, डरो मत!' कहते हुए उनको धैर्य बँधाने और यम को प्रसन्न करनेवाले अपने धनुष की डोरी से भीषण टंकार निकालने लगे।

शास्त्र भले ही कहीं जाकर छिप जायँ, प्रसिद्ध पंचभूत भी मूल प्रकृति में विलीन हो जायँ, ब्रह्मा भी मिट जायँ, तो भी उनके धनुष की टंकार-ध्वनि वेदों की ध्वनि के समान कभी न मिटनेवाली थी।

लक्ष्मण ने जो तीक्ष्ण शर छोड़े, वे झट जाकर राक्षसों के शरीरों में अदृश्य हो गये। तब असंख्य राक्षसों के शव से अंतरिक्ष भर गया। उनके रुधिर से समुद्र भर गये।

लक्ष्मण के शर हाथियों की सूँड़ों को काट डालते, योद्धाओं के ऊँचे किरीट से शोभायमान सिरों को काट डालते। घोड़ों के पैरों को काट डालते और क्रूर आँखोंवाले राक्षसों के मांसमय शरीरों को भेद देते।

वे बाण वीरों के धनुषों को काट डालते। शूलों को काट डालते। उज्ज्वल कवचों को भेद डालते। वृक्षों को भेद डालते। ऊपर फेंके गये शैलों को बीच में काट देते। अश्वों को काट डालते। रथों को छिन्न-भिन्न करते। हिंसक गजों को भी मार डालते।

विजयी हाथियों के उज्ज्वल तथा वक्र दाँत कटकर वेग से गगन में उड़ जाते थे और तृतीया के दिन प्रकट होनेवाली चंद्रकला का दृश्य उपस्थित करते थे।

राक्षसों के अग्निमय सिर, जो लक्ष्मण के शरों से कटकर पृथ्वी पर गिरते थे। ऐसे लगते थे, मानों चंद्रमा के दो खंडों एवं कुंडलरूपी नक्षत्रों से युक्त ग्रह गगन से गिर रहे हों।

तीक्ष्ण दंत-युगल से युक्त तथा लटकती हुई सूँड़वाले काले पर्वत-समान मत्तगज लुढ़ककर गिरते थे। युद्धक्षेत्र में रुधिर-प्रवाह में डूबते हुए वे गज ऐसे लगते थे, मानों वाराहमूर्त्ति पृथ्वी को जल से उबार रहे हों।

विशाल रथ, जिनके अश्व शरों के आघात से मर गये थे और जो अपने स्थान से विचलित होकर लुढ़ककर पड़े थे, उन विमानों के जैसे लगते थे, जो (विमान) स्वर्ग में रहने का गौरव खोकर कर्मफल के अनुसार पृथ्वी पर आ गिरे हों।

लक्ष्मण के शरों के आघात से निष्प्राण हुए कबंध नाच रहे थे। मानों, इस बात पर प्रसन्न होकर कि उनकी आत्माएँ कर्म-बंधन से मुक्ति पा गई हैं, आनन्दित होकर नाच रहे हों।

कहते हैं कि जब चौदह हजार वीर युद्ध में निहत होते हैं, तब एक कबंध नाच उठता है। यदि यह सच है, तो उस युद्ध में करोड़ों कबंध नाच उठे थे। अतः, लक्ष्मण के पराक्रम का और क्या वर्णन किया जाय ?

हाथियों का रुधिर, राक्षसों का रुधिर तथा अश्वों का रुधिर, अरण्यों एवं पर्वतों पर बरसनेवाली प्रभूत वर्षा के जल की बाढ़ के समान बह चला।

शरों के आघात से महावतों के सिर कट जाने पर भी कुछ महावतों के पैर हाथियों की ग्रीवा पर बँधी रस्सी में फँसे थे और वे अपने उठे हुए हाथ में अंकुश पकड़े हुए थे, जिससे हाथी आगे बढ़ते जा रहे थे।

लक्ष्मण के घातक बाणों से अश्वारोही वीरों के सिर कट जाने पर भी उनके कबंध हाथ में खड्ग लिये अश्वों के फाँदने से नाच रहे थे।

महान् तपस्वी के शाप-वचन के समान अमोघ (लक्ष्मण के) शरों से अनेक योद्धाओं के सिर कट गये, तो भी उनके कबंध हाथ में धनुष लिये शर-संधान किये खड़े थे।

राक्षस, जिन्होंने सीता नामक एक भयंकर यम को खोजकर पाया था, अपने पिता, भाई, पुत्र, पौत्र आदि को निहत होते देख स्वयं भी मर जाते थे।

शरों के लगने मात्र से लुढ़क जानेवाले तथा स्पर्श करने से कठोर लगनेवाले सिरों को उठा ले जानेवाले गिद्ध आदि पक्षी ऐसे लगते थे, मानों नरमुख पक्षी ही संचरण कर रहे हों।

अनेक सहस्र कोटि बाण अत्यन्त वेग के साथ अग्नि उगलते हुए चलते थे, जिनसे असंख्य राक्षस विध्वस्त हो गये। उससे यमदूतों के पैर थक गये।

बड़े-बड़े राक्षस, जो पर्वत को भी हिला सकते थे (लक्ष्मण के) ज्वालामय बाणों से कटकर तड़प उठे। उस दृश्य को देखकर देवता सिर कँपाने लगे। शवों के भार से भूमि अपनी पीठ झुकाने लगी।

इसी समय मेरुपर्वत-समान भारी आकारवाला तथा जलती आँखोंवाला दारुक नामक राक्षस रथ पर सवार होकर, हाथ में धनुष लिये आया और (लक्ष्मण के) सामने आकर खड़ा हुआ।

उस (दारुक) ने पूर्व में तपस्या करके प्राप्त अनेक अग्नि-समान शर प्रयुक्त किये। वे शर गगन में सर्वत्र फैल गये। लक्ष्मण ने रुष्ट होकर उन शरों को अपने बाणों से हटा दिया।

फिर, महिमा-संपन्न लक्ष्मण के तीक्ष्ण बाणों के आघात से दारुक का विशाल सिर कटकर गगन में जा उड़ा और यम को भी भयभीत करते हुए गरजा।

फिर काल, कुलिश, कालशंख, माली, मारुत—वे पाँचों राक्षस त्रिशूल, परशु, 'भिंडिपाल', पाश आदि शस्त्र लेकर आये।

उन्होंने सहस्रों शस्त्र फेंके, पर लक्ष्मण ने उन सबको अपने अमोघ बाणों से काटकर छितरा दिया और उनकी विशाल सेना को भी छिन्न-भिन्न कर दिया।

तब अतिकाय के महान् सेनापतियों ने सात सहस्र मत्तगजों के साथ आकर लक्ष्मण को घेर लिया और एक ही साथ अनेक शस्त्र प्रयुक्त करने लगे।

राक्षसों ने वानरों को चारों ओर से इस प्रकार घेर लिया कि कोई बचकर नहीं जा सके। वे मत्त गजों को आगे बढ़ाते हुए आये तथा शस्त्रों से वानरों को आहत करते हुए कोलाहल कर उठे।

(वानरों के द्वारा) फेंके गये शैल और (राक्षसों के द्वारा) प्रयुक्त किये गये बाण परस्पर टकरा उठे। वज्र-समान ध्वनि करते हुए मेघों के जैसे सब दिशाओं में भर गये। उनसे सब लोक, दिशाएँ तथा आकाश छिप गये।

अग्निमय बाणों से युक्त लक्ष्मण ने उन सब शस्त्रों को काटकर फेंक दिया। उन राक्षसों के भारी हाथों को काटकर गिराया और चारों ओर से घेरकर आनेवाले त्रिविध मद से युक्त हाथियों को सब प्रकार से आहत कर दिया।

लक्ष्मण का एक शर लगने से ही पर्वताकार गजों के दाँत टूट जाते। सूँड़ कट जाती या उनका बलवान् सिर कटकर गिर पड़ता। ऐसे हाथी एक नहीं, अपितु असंख्य मरे।

एक बार में (लक्ष्मण के) धनुष से जो शर निकलते थे, उनके लगने से उज्ज्वल शस्त्र धारण किये हुए राक्षस, गजों के कंठ के साथ ही उनके दोनों पैरों के कटकर गिर जाने पर स्वयं पर्वत के समान लुढ़क जाते थे।

रोष-भरे मत्तगज, वज्र से भी भयंकर बाणों के आघात से, उनपर के हौदों तथा उनके मर्म-स्थानों के कट जाने से, सब दिशाओं में ऐसे पड़े थे, मानों काले रंग के पर्वत हों।

जलनेवाले तथा अपने लक्ष्य को खोजते हुए जानेवाले मत्तगज शर लगने से, अपने ऊपर स्थित पताकाओं के साथ कटकर गिर गये। उन गजों को चलानेवाले महावतों के सिर भी कटकर लुढ़क गये। उनको पाकर भूखे भूत बहुत आनंदित हुए।

पूरे बल से छोड़े गये बाण वर्षा की बूँदों से भी अधिक संख्या में आकर लगे, जिससे वज्राहत पर्वतों के समान मृत हो गिरे मत्तगजों के शरीरों से रुधिर बह चला और समुद्र से प्रतिस्पर्धा करने लगा। ७१०५

उनके ऊपर के महावतों के मर जाने पर कुछ मत्तगज, जो हलाहल एवं वज्र की समता करते थे, मद के प्रभाव से विक्षुब्ध होकर एक दूसरे से लड़ने लगे।

शरों की वर्षा से आहत होकर कुछ हाथियों के पैर टूट गये। कुछ की सूँड़ें टूट गई। कुछ की पूँछें कट गई। कुछ के पेट चिर गये और आँतें बाहर निकल आई और कुछ के चमड़े छिल गये।

आठों दिशाओं में (लक्ष्मण के) शरों से आहत हुए बिना कौन हाथी रह सका? लक्ष्मण ज्यों-ज्यों शर छोड़ते, त्यों-त्यों आक्रमण करनेवाले हाथी मरते।

जब छप्पन सहस्र हाथी विध्वस्त हो चुके, तब भय से रहित, दुर्गुणों से भरित,

तथा कठोर वैर से युक्त राक्षसों ने लक्ष्मण के सम्मुख अधिकाधिक संख्या में हाथियों को समुद्र के समान आगे बढ़ाया।

क्रूर राक्षस शरों की बड़ी वर्षा करते थे। असंख्य शत्रुओं को मारनेवाले वीर धनुर्धारी लक्ष्मण से यह कहते हुए कि 'मारो, देखें कितने को मारते हो', असंख्य हाथियों को अंधकार के समान भेजते थे।

उन मत्तगजों से लक्ष्मण यों छिप गये, जैसे मेघों से सूर्य छिप जाता है। फिर, ज्योंही उन्होंने इन्द्रधनुष-समान अपने धनुष को झुकाया, त्योंही प्रभूत वर्षा के समान बाण-समूह हाथियों पर जा बरसा।

मद से मत्त होकर अपने कानों से मदजल बहानेवाले, पर्वत-समान शरीरवाले, समुद्र-समान (रंगवाले) तथा अपनी आँखों से क्रोधाग्नि को उगलनेवाले हाथी, अपनी बलिष्ठ पीठ तथा सूँड़ से हीन हो गये। फिर भी, उनका मदस्राव नहीं रुका।

अपनी सीमा के भीतर रहनेवाले समुद्र के तटों को लाँघकर बहनेवाले प्रलय-कालिक प्रभंजन के समान लक्ष्मण के शर चल रहे थे। वे स्वर्णमय आभरणों से अलंकृत हाथियों के विशाल मुखों पर लगते थे, जिससे मेघ-समान वे हाथी धरती पर लुढ़क जाते थे।

पक्षियों के समान वेग से चलनेवाले हाथी (लक्ष्मण के) अर्धचंद्र बाणों के लगने से ऐसे लगते थे, मानों वे चंद्रकला से शोभायमान हों और ऐसे मरे पड़े थे, मानों इन्द्र के वज्र से पंखों के कट जाने पर पर्वत चूर-चूर होकर पड़े हों।

सूर्य के समान (लक्ष्मण के) शरों से आहत होकर भी रोष से हीन न होकर वेगवान् मेघ के समान गरजनेवाले हाथी वहाँ असंख्य थे। बाणों की अग्नि से मारे जाकर पर्वतों से टकराकर, रुधिर-प्रवाह के साथ समुद्र में जाकर गिरनेवाले हाथी भी वहाँ असंख्य थे।

कुछ हाथी उनकी आँखों में बाणों के लगने से अंधे होकर, रोष से भरे रहने पर भी निष्क्रिय हो खड़े रहे। कुछ भूमि पर चक्कर काटने लगे और यों राक्षससेना को ही कुचलने लगे।

जब लक्ष्मण एक बार निशाना लगाकर बाण छोड़ते, तब उससे एक ही साथ सहस्रों शर निकलते, जैसे काले मेघ से वर्षा की बूँदें गिरती हैं। उनसे (शरों से) दो सहस्र गज मर जाते। लक्ष्मण के ऐसे धनुःकौशल को देवता भी नहीं जान सके। अब और क्या कहें ?

दंतों तथा मद-प्रवाह से युक्त भयंकर मेघ-समान हाथियों से बहनेवाले रुधिर के समुद्र को रथ, हाथी, क्रोध-भरे वीर तथा घोड़े पार नहीं कर पाते थे और उस युद्ध-स्थल से लुढ़कते हुए विपरीत दिशा में बह जाते थे।

एक मुहूर्त्त के भीतर शत-सहस्र मत्तगज टुकड़े-टुकड़े होकर गिर गये। संसार के प्राणी भय से थरथरा उठे। तब रावण ने पर्वत-समान रोष-भरे और भी अधिक असंख्य हाथियों को भेजा।

पूर्व युद्ध में सब मत्तगजों के निहत हो जाने पर राक्षस-वीरों ने पुनः एक साथ

मद-प्रवाह बहानेवाले एक कोटि मत्तगजों को, वज्र के समान दो-धार बाणों को बरसाने-वाले लक्ष्मण के सामने भेजा।

संसार में जितने पर्वत हैं, उन सबको मिटाने की शक्ति रखनेवाले उन असंख्य हाथियों ने चारों ओर से लक्ष्मण को घेर लिया। फिर भी (तीसरी बार), उन सब हाथियों को लक्ष्मण ने अपने अनुपम धनुःकौशल से शिरोहीन और करहीन कर दिया।

तीस सहस्र योजन पर्यन्त दिशाओं में हाथी-ही-हाथी दृष्टिगोचर हुए। सब यह सोचकर डरने लगे कि अब संसार में सर्वत्र हाथी ही भर गये हैं, अंतरिक्ष धूलिमय हो गया और भूमि धूलि से रहित हो गई।

भूत भी उन गज-शवों की राशि का आद्यन्त नहीं देख पाये और उन्हें इस प्रकार उठाकर ले जाने लगे, मानों पहाड़ों को ही उठाकर ले जा रहे हों। उज्ज्वल शस्त्रों को बहा ले जानेवाले मद-प्रवाह भी लहरों से तरंगायमान रुधिर-समुद्र से जा मिले।

लक्ष्मण ने वज्र-समान उग्र, आतप-समान प्रकाशमान, त्रिशूल-समान तीक्ष्ण और समुद्र को भी सुखानेवाले बाणों से, एक शर से एक हाथी के क्रम से, वर्षा के समान मद-जल बहानेवाले पंक्ति में खड़े दस सहस्र हाथियों को मार गिराया।

(हाथियों को मरते देखकर) पर्वत भी काँप उठे। मेघ काँप उठे। अरण्य काँप उठे। दिग्गज भी अपने-अपने स्थान से विचलित हो गये। समुद्र की ऊँची-ऊँची तरंगें काँप उठीं। और क्या कहें? पाँच सूँड़वाले विनायक भी आशंकित हो उठे।

(लक्ष्मण जब अपने धनुष पर) शरों को चढ़ाते थे, तब उसके टंकार अरण्यों में यों फैल जाते थे कि गुहाओं में स्थित पुरुषसिंह भय से मर जाते थे। ज्यों अनेक वज्र गिर रहे हों, त्यों वर्षा की बूँदों के समान गिरकर उन बाणों ने हाथियों को मार गिराया और उनपर बैठे हुए महावतों की देह को भेदकर चले गये।

इसी समय (दूसरी ओर) सप्त समुद्र के समान राक्षसों से भेजे गये शेष हाथियों को देखकर हनुमान् ने अपने मन में विचार किया और मानों लक्ष्मण का शूलायुध बनकर वहाँ प्रकट हुआ।

मत्तगज की समता करनेवाले, नरसिंह भगवान् के समान पराक्रमवाले, वीरकंकण-धारी यशस्वी हनुमान् ने पवित्रमूर्त्ति (राम) के चरणों का ध्यान किया, गर्जन किया। अग्निमय आँखों से देखा और पास में स्थित एक अतिदृढ वृक्ष को उखाड़ कर अपने हाथ में लिया।

मारण-कार्य में चतुर यम, महान् भूत एवं प्रलयकालिक मेघ सब एक साथ मिल-कर विध्वंस करते हों और महान् वज्र पर्वतों पर गिर रहे हों, ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए हनुमान् ने अपने हाथ के वृक्ष से उन हाथियों पर मारा। तब काले मेघों के समान वे हाथी झुंड-के-झुंड निष्प्राण होकर गिर पड़े। अब और क्या कहें?

धर्म पर दृढ रहनेवाले हनुमान् ने अनेक हाथियों को अपने पैरों से कुचल डाला। अनेक को अपने वेग से ही मारा। अनेक को पराक्रम से मारा। अनेक को चलते समय

पीस डाला। अनेक को पूँछों से मारा। ललाट पर चपेटा मारकर अनेक को मारा। अपने अभ्यस्त छलाँग से अनेक को मारा। घूँसे से अनेक को मारा।

क्रोध-भरे हनुमान् ने, कुछ हाथियों को उनकी सूँड़ें खींचकर, कुछ को दो भागों में चीरकर, कुछ को (नखों से) खुरचकर, कुछ को बाँस के जैसे तोड़कर, कुछ की चमड़ियाँ उधेड़कर, कुछ को भेदकर, कुछ को दाँतों से काटकर, कुछ पर आक्रमण करके, यों अनेक प्रकार से, झुण्ड-के-झुण्ड हाथियों को मार डाला।

हनुमान् कभी हाथियों को उठाकर समुद्र में फेंक देता। लम्बे वृक्ष को लेकर, पैंतरे बदल-बदलकर हाथियों को ढकेल देता। उन्हें विशाल पृथ्वी पर लुढ़काकर रगड़ देता। पकड़कर भूमि पर पटक देता। उनकी आँतों को निकाल देता। उन्हें अंतरिक्ष में उछाल देता। उनके मुख पर पदाघात करता।

बड़े अजगर के समान अपनी पूँछ को बढ़ाकर हाथियों को बाँध देता। फिर, उनके महावतों के साथ ही उन्हें उठाकर पर्वतों पर फेंक देता, मानों वे विषभोजी शिवजी ही हों, यों मुख खोलकर हाथियों को ठूँसकर चबाता। पुरुषसिंह के समान क्षण-भर में ही सहस्र हाथियों को मार डालता।

उसने असंख्य हाथियों को निष्प्राण करके स्वर्ग में भेज दिया। फिर, पर्वताकार में निर्भय हो आये हुए शत-सहस्र मत्तगजों को कीचड़ बने रुधिर-समुद्र में सूक्ष्म अंजन के समान पीस दिया।

यों विलक्षण मद से युक्त एक कोटि हाथियों में से उसने शत-सहस्र हाथियों को मिटा दिया। हनुमान् ने कुछ को यह सोचकर कि ये लक्ष्मण के मारने योग्य हैं, छोड़ दिया, तो उन्हें लक्ष्मण ने अपने शरों से निहत कर दिया। तब दिक्पाल भी भयभीत होकर भाग गये।

सब दिशाओं में हाथियों के शव पड़े थे, अतएव बहुत-से राक्षस उनसे टकराते-लँगड़ाते हुए भागे। कुछ टकराकर पिस मरे। कुछ रथों से उतर भागे। तब उस दृश्य को देखकर देवान्तक अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

युद्धक्षेत्र के रुधिर-समुद्र में बड़ी-बड़ी शव-राशियाँ विविध प्रकार से पड़ी थीं। तो भी, देवान्तक ऊँचे रथ पर आरूढ़ होकर उस भीषण तथा विशाल युद्धभूमि में एकाकी ही प्रविष्ट हो गया और हनुमान् पर सूर्य के समान उज्ज्वल शस्त्र प्रयुक्त किये और मेघ के समान गरजा, जिससे समुद्र भी भयभीत हो गये।

तब हनुमान् भी एक पेड़ को उठाकर गरज उठा और यह कहते हुए कि 'इसके प्राण अभी मिट जायेंगे', बड़े वज्र के समान उसे फेंका। 'क्या यह अग्नि का ही रूप है?' ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले देवान्तक ने यह कहते हुए कि 'यह पेड़ क्या वस्तु है?' शर छोड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

तब विजयी वानरकुल के वीर हनुमान् ने एक पर्वत को उठाकर फेंका। किन्तु, उस शैल के अपने निकट आने के पूर्व ही देवान्तक ने उसे चूरकर बिखेर दिया। तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर हनुमान् ने लपककर देवान्तक के धनुष को छीन लिया।

देवों के हर्षध्वनि करते हुए, हनुमान् ने जब उस दीर्घ धनुप को तोड़ डाला, तब

उस राक्षस ने एक तोमर उठाकर हनुमान् के बायें कंधे पर मारा। तब देवता भी स्तब्ध रह गये।

देवांतक ने ज्योंही उज्ज्वल तोमर को प्रयुक्त करके कोलाहल-ध्वनि की, त्योंही स्त्रियों के बल को जीतनेवाले (अर्थात्, काम को जीतनेवाले) हनुमान् ने अत्यन्त रुष्ट होकर उसी तोमर को छीनकर, घुमाकर मारा, तो देवांतक का सारथि मर गया। वह दृश्य देखकर देवता प्रसन्न हुए।

तब हनुमान् हाथ में त्रिशूल उठाये देवांतक पर झपटा। विष-समान वह राक्षस भी सामने आया। यम की दो आँखों के समान मारुति ने उसे पकड़कर उसके ककुद् पर आघात करके उसके सिर को मरोड़कर उसे निष्प्राण कर डाला।

अतिकाय देवांतक की मृत्यु पर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसकी आँखें उष्ण रक्त-द्रव को उगलती हुई नवीन घाव के समान हो गईं। 'अभी इसके प्राण पीऊँगा, इसे नहीं छोड़ूँगा' कहते हुए उसने अपने सारथि से कहा कि रथ को शीघ्र चलाओ।

अतिकाय के आने पर राक्षस-सेना स्थिर खड़ी हो गई; भागनेवाले भी आ मिले। उत्तरी ध्रुव को भी भेद सकनेवाले अतिकाय ने स्वर्णमय मेरु-पर्वत के समान हनुमान् के सामने आकर यों कहा—

तुमने मेरे भाई (अक्षकुमार) को अकेले पाकर पृथ्वी से रगड़कर मार डाला और अतिविशाल समुद्र को लाँघकर अपने प्राण बचा लिये। अब राक्षससेना-वाहिनी में घुसकर देवांतक को मिटाया। यह देखकर मैं तुम्हारे सामने आया हूँ। आज तुम्हारे जीवन का अंत होनेवाला है।

यदि आज तुमको नहीं मार सकूँ, तो आगे कभी तुम्हारे सामने नहीं आऊँगा। तुमने एक नहीं, अनेक हानियाँ की हैं। आज विजय पाये बिना कदापि शांत न होनेवाले अपने शरों से लक्ष्मण को और तुमको मारकर ही लौटूँगा।

उत्तर के मेरु-पर्वत के समान अचंचल रहनेवाले हनुमान् ने उत्तर दिया—तुम कंदरा में रहनेवाले भीषण सिंह-समान लक्ष्मण पर एवं मुझपर अत्यधिक रोष दिखा रहे हो। तुम त्रिशिर को भी बुलाओ, जिससे मैं तुम्हारे साथ ही उसको भी पीस दूँ। यों कहकर हनुमान् ताली बजाकर और ठहाका मारकर हँस पड़ा।

हनुमान् के वचन सुनकर 'हाँ, हाँ,' कहता हुआ त्रिशिर भी वहाँ आ पहुँचा और गरजकर आक्रमण किया। तब राम का दूत हनुमान् यह कहकर कि 'तुम, कामुक और अज्ञान लोग, मुझसे युद्ध करने योग्य ही हो' उन राक्षसों के बीच घुस गया, जिससे आसपास खड़े लोगों की जीभ तक सूख गई।

फिर, हनुमान् झट त्रिशिर के रथ पर लपका और मेघों से आवृत पर्वत-समान उस त्रिशिर को पकड़कर बड़ी दृढ़ता से उठाकर धरती पर पटक दिया और रगड़-रगड़कर उसे मार डाला। फिर, पश्चिम द्वार पर युद्ध हो रहा है, यह जानकर वहाँ चला गया।

पलक मारते हनुमान् पश्चिम द्वार पर जा पहुँचा। पराक्रमी अतिकाय की समझ में नहीं आया कि अब क्या करना चाहिए। वह अश्रु एवं अग्नि उगलती आँखों के

साथ देखता खड़ा रहा। फिर सोचा, यदि यह क्रोध करके आ जाय, तो उमादेवी को अर्द्ध शरीर में धारण करनेवाले शिवजी भी इसके साथ युद्ध नहीं कर सकेंगे।

उसने फिर सोचा—मैं तो लक्ष्मण को मारने की प्रतिज्ञा करके आया हूँ, पर दूसरे कार्य में लग गया हूँ। यह वीरता नहीं है। तूणीर को पीठ पर बाँधे, बलवानों में उत्तम तथा स्वर्णमय शरीरवाले लक्ष्मण को देखूँगा। और, रथ बढ़ाकर वह लक्ष्मण की ओर चल पड़ा।

रथ की ध्वनि समुद्र की ध्वनि को ललकारती रही। धनुष का टंकार मेघ की ध्वनि को ललकार रहा था। युद्ध के नगाड़ों की ध्वनि दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। युद्ध की सज्जा से युक्त अतिकाय अपनी सेना-सहित बढ़ आया। लक्ष्मण भी देवताओं के विजय की घोषणा करते हुए उसके सम्मुख आये।

तब वालिकुमार (अंगद) अतिशीघ्र (लक्ष्मण के) निकट आया और नमस्कार करके कहा—वह (अतिकाय) चक्रवाले रथ पर आरूढ है। आप धरती पर खड़े रहकर उसके साथ युद्ध करें, यह ठीक नहीं। मैं यद्यपि इतना अधम हूँ कि आप जैसे धनुर्धारियों में तिलक-समान व्यक्ति के पवित्र शरीर का स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ, तथापि इस समय आप मेरे कंधों पर आरूढ हो जायँ।

रामचन्द्र के अनुज 'हाँ' कहकर अंगद के पुष्पमालालंकृत कंधे पर आरूढ हो गये। अंगद ने उनके चरण-कमलों को यों पकड़ लिया, ज्यों गरुड (विष्णु के चरणों को)। देवता आनन्दित हो पुष्प-वर्षा करने लगे।

जिसने क्षीर-समुद्र को मथकर उससे अग्नि तक उगलवा लिया था, उस वाली का पुत्र पैंतरे बदल-बदलकर, सहस्र अश्व-जुते (अतिकाय के) रथ के अनुसार ही अपनी चाल बदलता रहा। वह कभी ऊपर उछलता और कभी नीचे उतरता। जब वह रथ अंतरिक्ष में जाता, तब अंगद स्वयं भी गगन में चला जाता।

अंगद के उस संचरण को देखकर वानर-सेनापति हर्षध्वनि कर उठे। देवता यह कहकर कि गरुड में भी ऐसा कौशल नहीं है, अपने हाथों को हिलाने लगे। हाथियों और अश्वों पर लक्ष्मण के शर वर्षा के समान बरसने लगे।

नगाड़े बज उठे। हाथी चिंघाड़ उठे। दृढ रथ निनादित हो उठे। अश्व हिन-हिनाये। पूर्णशंख बजे। धनुष का टंकार फैला। वीर-वलय और मंजरी बज उठे। वीरों की धमकी एवं कोलाहल की ध्वनि मेघ-गर्जन से भी अधिक शब्दायमान हो उठी।

वीर (लक्ष्मण) के शरों की वर्षा यों हुई कि युद्धभूमि में हाथी मर गये। पदाति-सैनिक मर गये। पवन-सम वेगवाले अश्व मर गये। उस युद्ध की भयंकरता को देखकर यम भी भयभीत हो उठा। पीत-स्वर्ण के रथ जल गये। सम्मुख आई सारी सेना विध्वस्त हो गई।

राम के अनुज ने अतिकाय से पूछा—क्या तुम असंख्य शस्त्रों से युक्त सारी सेना के निःशेष होने के पश्चात् मुझसे युद्ध करोगे या अभी करोगे, तुम्हारी इच्छा क्या है?

तब यम से भी भयंकर अतिकाय ने उत्तर दिया—यहाँ सब युद्ध करनेवाले नहीं हैं। जिस युद्ध को देवता देखना चाहते हैं, वह मेरा और तुम्हारा ही युद्ध है।

चाहे जितने लोग तुम्हारी रक्षा करनेवाले हों, तुमसे युद्ध करने की इच्छा से ही तो मैंने तुम्हें बुलाया है।

चाहे तुम्हारा भाई ही तुमको बचाने आये, चाहे उमा को अर्द्ध भाग में रखनेवाले (शिवजी) आयें, चाहे सब देवता आयें, सातों लोक तुम्हारी रक्षा करें, तो भी आज तुम्हारे जीवन का अंत होनेवाला है।—यह कहकर उसने अपना शंख बजाया। यम-रूप धनुष का टंकार किया और वज्र के समान गरज उठा।

उसकी बातें सुनकर लक्ष्मण के मुख पर सुमन-समान मंदहास छा गया, और वे बोले—तुम जैसा कहते हो, मेरे भ्राता आदि कोई नहीं आनेवाले हैं। कदाचित् मैं भी परास्त हो जाऊँगा। यदि युद्ध में तुम मुझे जीत लोगे, तो समझो कि तुमने उन सबको भी जीत लिया। यह कहकर विद्युत् से भी अधिक उज्ज्वल एक शर प्रयुक्त किया।

पर्वत को भी तोड़नेवाले बल से युक्त कंधोंवाले अतिकाय ने लक्ष्मण के प्रयुक्त उस शर को गगन में ही एक भीषण बाण से काट डाला। फिर, यह कहकर कि 'इन शरों को रोको', नागसर्प-समान सोलह बाण बरसाकर हर्षध्वनि की।

लक्ष्मण ने अतिकाय के द्वारा प्रयुक्त सब शरों को काटकर बिखेर दिया और बड़े रोष से भरकर मेरु को भी भेद सकनेवाले शब्दायमान दृढ शरों को भेजा। कुबेर पर विजय पानेवाले अतिकाय ने उन सबका निवारण करके तीक्ष्ण बाण छोड़े।

पुरुषों में श्रेष्ठ लक्ष्मण ने अग्निमुख बाण छोड़कर उसके बाणों को जला दिया। फिर, दिव्य प्रभाव से युक्त बाण छोड़े, जिनके अमोघ लक्ष्य-वेध से अतिकाय का कवच भिद गया।

(लक्ष्मण के) एक सौ बाण कवच को भेदकर उसके शरीर में चुभ गये। उससे अतिकाय बहुत पीडित हुआ। वह अपने धनुष को टेके, रथ पर विश्राम करता हुआ खड़ा रहा। उस समय लक्ष्मण ने उसकी सेना पर शर-वर्षा करके उसे छिन्न-भिन्न कर डाला।

इतने में अतिकाय स्वस्थ हुआ। उसने देखा कि उसके आसपास खड़े वीर लुढ़क गये हैं और बाणों की संख्या कुछ जान नहीं पड़ती। तब अत्यन्त क्रोध से भरकर उसने वर्षा की बूँदों से भी तिगुनी संख्या में बाण प्रयुक्त किये।

अतिकाय ने ऐसे बाण प्रयुक्त किये कि गगन में बाण थे। दिशाओं में बाण थे। पृथ्वी पर बाण थे। पर्वत-शिखरों पर बाण थे। युद्धभूमि में खड़े लोगों की देहों पर बाण थे। समुद्र के मीनों पर बाण थे।—यों उसने सर्वत्र बाण बो दिये।

उन बाणों से दिशाएँ ओझल हो गईं। देवताओं के मन की तरह ही तीनों ज्योतिष्पिण्ड (अर्थात्, सूर्य, चन्द्र और अग्नि) मंद पड़ गये। बाण घने होने से एक दूसरे से टकरा गये, जिससे अंतरिक्ष में चिनगारियाँ भर गईं।

देवता यह कहते हुए भयभीत हुए कि क्या वानरों की सेना आज ही समाप्त हो जायगी? क्या राम का अनुज इसे जीत सकेगा? क्या इस (अतिकाय) ने यह मारण-कार्य स्वयं यम से ही सीखा है? अहो! इसका धनुःकौशल कैसा अनुपम है!

तब अतिकाय ने अंगद के ललाट पर, कंधों पर, वक्ष पर अनेक बाण यों गड़ा

दिये कि उनकी शिराएँ भी नहीं दिखाई देती थी। उसने तीन तीक्ष्ण बाण लक्ष्मण पर छोड़े और मेघ-समान शब्द करनेवाले शंख को फूँककर कोलाहल किया।

लक्ष्मण ने देखा कि अंगद के शरीर से वर्षा के समान रुधिर बह रहा है, जैसे किसी ऊँचे प्रदेश से लाल रंग का निर्झर बह चला हो। तब उन्होंने एक सहस्र शर चलाकर (अतिकाय के रथ के) अश्वों एवं सारथि के सिर काट डाले और अतिकाय के धनुष को तोड़ दिया।

तब अतिकाय दूसरे रथ पर चढ़कर तथा एक दूसरा धनुष लेकर आया। लक्ष्मण ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। राक्षस ने भी 'सँभलो!' कहकर स्वयं भी आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया।

वे दोनों अस्त्र परस्पर टकरा उठे। तभी लक्ष्मण के द्वारा प्रयुक्त वज्र से भी भीषण बाण ने अतिकाय के वक्ष को भेद दिया। किन्तु, उससे पीडित न होकर अतिकाय ने तिगुने शरों को बरसाया।

लक्ष्मण ने जब और बाण बरसाये, तब उनसे अतिकाय की देह यों छलनी हो गई कि उसके पीछे खड़े रहनेवाले (उसके) सामने खड़े रहनेवालों को अनायास ही देख सकते थे। ऐसी दशा में भी अतिकाय के प्राण नहीं गये और वह शिथिल भी नहीं हुआ। वह तीक्ष्ण बाण छोड़ता रहा।

शरों को उठा-उठाकर, अपने भीषण धनुष पर चढ़ा-चढ़ाकर, धनुष को भली भाँति झुका-झुकाकर बाण छोड़नेवाले वीर लक्ष्मण के निकट जाकर वायुदेव ने कहा— 'हे मित्र! तुम पुरातन ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करो।'

वीर (लक्ष्मण) ने 'ठीक है!' कहकर ब्रह्मास्त्र निकालकर यों छोड़ा, मानों विद्युत् का समूह ही निकला हो। वह अस्त्र पर्वत से ऊँचे खड़े अतिकाय के सिर को उड़ाकर चला गया। देवों ने भी अपनी आँखों से उस (अस्त्र) को देखा।

देवताओं ने आनन्दित होकर कहा—हमारा दुःख दूर हुआ। राक्षस रोते हुए अस्त-व्यस्त हो सर्वत्र भागे। वानर दुःख या हर्ष से रहित हो स्तब्ध खड़े रहे। विजयी धनुर्धारी (लक्ष्मण) अंगद के कंधों पर से उतरे।

लक्ष्मण के भीषण धनुष का प्रभाव देखकर विभीषण आश्चर्य से भर गया। गगन में संचरण करनेवाले सिद्धों की हर्षध्वनि भी सुनी। फिर सोचा—'यदि लक्ष्मण की मंत्र-सिद्धि ऐसी है, तो इन्द्रजित् अवश्य इनसे निहत होगा।'

इसी समय नरांतक (नामक राक्षस) अपना रथ चलाकर यह कहता हुआ आ गया कि 'अति सुन्दर वक्षवाला मेरा भाई (अतिकाय) मर गया है, यह सोचकर तुम अपने चंदनलिप्त वक्ष को देखते हुए, अपनी धनुष की ओर दृष्टि फेरते हुए तथा इतराते हुए कहाँ जा रहे हो? मत जाओ, मत जाओ।'

इस प्रकार कहता हुआ वह (नरांतक) आँखों से अग्नि-कण उगलता हुआ, अपने रथ से धरती पर उतर पड़ा। जैसे सूर्य ग्रहों के मध्य खड़ा हो, त्यों एक हाथ में ढाल और दूसरे हाथ में सजल मेघ में चमकनेवाली बिजली के समान खड्ग लिये वह आगे आया।

वानरों ने जो वृक्ष, शैल आदि उसपर फेंके, उन सबको उस (नरांतक) ने अपने खड्ग से काट-काटकर दिशाओं में बिखेर दिया। आगे, दोनों पार्श्वों तथा अन्य भागों में स्थित वानरसेना को जल की सेवार के समान अनायास ही दूर हटाता हुआ वह आया। तब अंगद ने उसे देखा।

अंगद एक वृक्ष को उखाड़कर ओंठ चबाता हुआ, राम के शर के समान आगे बढ़ गया और उस (नरांतक) पर आक्रमण किया। नरांतक ने अपने खड्ग से उसके सहस्र टुकड़े कर डाले, जिससे अंगद के हाथ के वृक्ष को कोई देख भी न सका।

तब अंगद रिक्तहस्त हो खड़ा रहा। 'अब यहाँ से हट जाना पौरुष नहीं'—ऐसा विचार करके क्षण-काल के भीतर अंगद वृष के जैसे लपका और उस (नरांतक) को करवाल-सहित जकड़कर आलिंगन में बाँध लिया।

वह दृश्य देखकर देवता ताली बजाकर हर्षध्वनि कर उठे। वे कह उठे—यह कार्य रुद्र के लिए भी संभव नहीं; केवल इसी के लिए संभव है। अंगद ने उसके खड्ग को अपने विशाल हाथ से छीन लिया और उससे उस (नरांतक) के दो समान टुकड़े कर डाले।

देवों ने कच्छप पर जिस पर्वत को खड़ा करके मंथन किया था, उस मंदर के समान कंधोंवाला, वज्र को भी खा जानेवाला 'युद्धमत्त' (नामक राक्षस) मद्यपान मत्त होकर एक चित्तियोंवाले मत्तगज पर चढ़कर आया।

उस राक्षस का वह गज ऐसा था कि यदि पवन नहीं होता, तो उसका वह वेग कैसे होता? यदि समुद्र नहीं होता, तो वह गर्जन कैसे होता? यदि यम नहीं होता, तो वह घातक कृत्य कैसे होता? यदि वज्र नहीं होता, तो वह रोष कैसे होता? पर्वत तो इसकी समता सर्वथा नहीं करता था। अब उस गज का कैसा वर्णन करें?

वानर अति वेग से जो शैल फेंकते थे, वे महावतों पर छोटे उपल के समान गिरते थे। उन (वानरों) के द्वारा फेंके जानेवाले बड़े-बड़े वृक्ष, हाथी के कपोल पर ऐसे गिरते थे कि उनसे केवल भ्रमर ही उड़ते थे। यदि वैसा नहीं, तो ईख के समान गिरते थे।

उस हाथी के पैरों-तले आकर, उसकी महान् सूँड़ से ताडित होकर, उसकी यम-सदृश पूँछ से आहत होकर, तीक्ष्ण दंतों से मारे जाकर सारी वानरसेना उसी दशा को पहुँची, जिस (दशा) को लक्ष्मण के शरों से आहत होकर राक्षससेना प्राप्त हुई थी।

अपनी सेना को यों निहत होते देखकर अग्निकुमार नील, वहाँ स्थित एक बड़े वृक्ष को उठाकर, उसे चारों तरफ घुमाता हुआ आगे बढ़ा, तो राक्षससेना अस्त-व्यस्त हो भागी।

तब गजारूढ राक्षस ने बारह शरों से उस वृक्ष को तोड़कर बिखेर दिया। नील ने एक शैल को उठाकर फेंका। उसे भी, अपने हाथी को चलाते हुए ही, राक्षस ने एक सौ बाणों से चूर कर डाला।

नील एक दूसरे पर्वत को ढूँढ़कर लाने के लिए घूमने लगा, किन्तु इतने में मंदर-

पर्वत के समान उस हाथी ने अपनी लंबी सूँड़ से नील को पकड़ लिया। वह दृश्य देखकर देवता भी पसीना-पसीना हो उठे।

वह हाथी वज्र-वलयों से अलंकृत अपने वक्र दंतों से उस (नील) को मारना ही चाहता था कि इतने में नील उसकी सूँड़ और सिर को चीरकर शीघ्र गगन में उड़ गया। इससे राक्षस थरथराये। देवता 'वाह ! वाह !' कह उठे।

अनेक सिरों को बहाते हुए चलनेवाले रुधिर-प्रवाह में शिरोहीन वह हाथी गिर पड़ा। उसपर स्थित 'युद्धमत्त' गगन में उछल गया और वहाँ से अर्द्धचंद्र बाणों को बरसाने लगा।

नील ने जिस हाथी को मारा था, उसके कुंभ से दाँतों को उखाड़ लिया और उन्हें अति वेग से राक्षस पर चलाया। पर, राक्षस ने एक ही बाण से उन दाँतों को काट दिया। फिर, एक बाण को पर्वताकार नील के वक्ष में गाड़ दिया।

राक्षस, एक दूसरे गज पर आरूढ हो गया। जब वह अपने मत्तगज को शीघ्रता से बढ़ाता हुआ आ रहा था, तब नील ने उस (राक्षस) को धनुष-सहित ही उठाकर उस मत्तगज के सम्मुख डाल दिया।

तब उस हाथी ने अपने दाँतों से उस (युद्धमत्त) को ढकेलकर सूँड़ से उठाकर फेंक दिया। तो भी वह (राक्षस) नहीं मरा, वरन् क्रुद्ध होकर अपने ही हाथी को मार डाला।

अपने ही हाथी को मारनेवाले उस राक्षस पर नील अत्यन्त रुष्ट होकर झपट पड़ा और उसके वक्ष पर एक घूँसा मारा। उससे वह (युद्धमत्त) मरकर गिर गया।

मत्तगज को मरते हुए एवं 'युद्धोन्मत्त' को घूँसे के आघात से निष्प्राण होते देख-कर 'वयमत्त' नामक उसका भाई धर्म से हीन पाप-कृत्य में निरत रहने के परिणामस्वरूप जीवन का अन्त निकट आ जाने से शीघ्र युद्ध के लिए आया।

वह (वयमत्त) भी बड़ी देहवाला था। उसके कंधे पर्वत को लजानेवाले थे। वह सूर्य के समान प्रताप से युक्त था। धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण था। वह वीर-वलयधारी राक्षसों के हर्षध्वनि करते हुए रथ पर आरूढ होकर आया, जिसमें उज्ज्वल दाँतोंवाले हजार भूत जुते हुए थे।

वह बड़ा कोलाहल कर रहा था। वज्र को डरानेवाली दृष्टि से देख रहा था। मृतकों की निन्दा कर रहा था। शरों की प्रभूत वर्षा कर रहा था और वानरसेना को भगा रहा था। तब ऋषभ (नामक वानर-वीर) आकर उससे जूझ पड़ा।

उस ऋषभ को देखकर 'वयमत्त' ने हँसकर कहा—तू छोटा है। तुझे परास्त करने में कुछ प्रयोजन नहीं। चाहे हनुमान् भी मेरा सामना करने को आये, तो भी मैं अतिकाय को मारनेवाले उस (लक्ष्मण) से ही युद्ध करूँगा।

तब ऋषभ ने उससे कहा—बढ़-बढ़कर बोलनेवाले मुंह लेकर तथा बलि का भोजन पाकर जीनेवाले भूतों को लेकर युद्ध जीतने के लिए आये हुए हे उन्मत्त ! हे मूढ !

तुम अपने पराक्रम की डींग मारते हो, पर अपने रोग का कुछ उपाय नहीं करते। तेरा यह पराक्रम अब समाप्त होनेवाला है।

तीक्ष्ण दाँतोंवाले 'वयमत्त' ने यह कहकर कि 'मैंने सोचा था कि तू भाग जायगा, लेकिन तू अभी कुछ बक ही रहा है! तेरे साथ आज खेलूँगा', अपनी भौंहों के साथ ही अपने सुन्दर धनुष को झुकाकर उस वानर-वीर पर दस शर छोड़े।

ऋषभ की देह रुधिर से सन गई। उसने बड़े वेग से उसके रथ को उठाकर फेंक दिया। उस रथ के साथ सब भूत भी समुद्र में जा गिरे, तब 'वयमत्त' गगन में जानेवाले मेघ के समान उस रथ से लटक रहा था।

वह राक्षस रथ के साथ ही समुद्र में गिरकर जल में डूब गया। फिर, जब वह निकला आ रहा था, तब ऋषभ ने कहा—'अरे पापी! तू कहाँ निकलकर आ रहा है?' यह कहता हुआ वह आगे गया।

मानों दिन रात्रि को पकड़ रहा हो—यों ऋषभ ने उस राक्षस को दृढता से जकड़ लिया, जिससे उस राक्षस के कंदरा-समान मुँह से नवीन रुधिर बह चला। उसके प्राण गगन में उड़ गये। वह इन्द्रधनुष-युक्त मेघ के जैसे धरती पर गिर पड़ा।

इसी समय सुग्रीव युद्धभूमि में दूसरी ओर 'कुंभ' (नामक राक्षस) के साथ लड़ रहा था। वे दोनों दायें और बायें सहस्रों बार घूम-घूमकर वृक्ष तथा गदा को लेकर युद्ध कर रहे थे, जिसे देखकर देवताओं के सिर और हाथ थरथराने लगे।

सिंहों के समान लड़नेवाले वे दोनों एक दूसरे के निकट आये और एक दूसरे की देह को रुधिर से लिप्त किया। आँखों से अग्नि की वर्षा की। उनके वीर-वलय तथा स्वर्णहार शब्दायमान हो उठे। यों वे बड़ा शब्द करते हुए एक दूसरे को मारने लगे।

कुंभ ने जब हाथ में गदा उठाकर मारा, तब मानों ब्रह्मांड फटने लगा। तब सुग्रीव ने एक बड़ा वृक्ष उठाकर उसे रोक लिया। जब वह वृक्ष टूट गया, तब उससे सुग्रीव अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

सुग्रीव यह सोचता हुआ खड़ा रहा कि 'अब इसे मार डालना चाहिए'; इतने में नील ने झट एक पर्वत-समान गदा लाकर उसको दिया।

सुग्रीव उस गदा को लेकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ। उसने धरती और आकाश को कँपानेवाले क्रोध के साथ, उन्मत्त-से बने हुए कुंभ के विशाल वक्ष पर प्रहार किया, जिससे उसकी देह भिद गई। राक्षस स्तब्ध रह गये।

वह राक्षस आहत होकर वज्राहत पर्वत के समान गिर पड़ा। यह सोचने के पूर्व ही कि अब उसके प्राण निकल जायेंगे, वह पुनः उठकर, 'तुम्हारे कंधे फाड़ दूँगा' कहकर सुग्रीव पर गदा का आघात किया।

कंधे पर आघात पाकर भी सुग्रीव अशिथिल ही रहा और शर के जैसे वेग से बढ़कर उस राक्षस पर मुष्टि-प्रहार किया।

उन दोनों ने एक दूसरे पर सहस्रों आघात किये। देवता संदेह करने लगे कि 'अब इनमें कौन जीतेगा?' उन दोनों की गदाएँ ऐसे टकराईं, जैसे वज्र से वज्र टकराया हो।

वे दोनों मत्तगजों के जैसे जूझने लगे। (उसके शब्द से) दसों दिशाएँ बहरी हो गईं। दोनों अनेक बार लपककर एक दूसरे से चिपक जाते। कंधों से ढकेलते। मुष्टिघात करते और स्वयं मुष्टिघात झेलने के लिए अपने वक्ष आगे करते—इस प्रकार वे जूझने लगे।

अन्त में, जब लुहार के हथौड़े के समान, सुग्रीव की मुष्टि बड़े वेग से गिरी, तब उस राक्षस का वक्ष फट गया।

फिर भी, वह राक्षस हँसता हुआ खड़ा रहा। तब सुग्रीव ने झट उसके मुँह में अपना हाथ यों घुसेड़ दिया जैसे बाँबी में साँप घुसता है और उसकी जीभ को पकड़कर बाहर खींच लिया, जिससे उसके प्राण उड़ गये।

तब निकुंभ (नामक राक्षस) आग उगलता हुआ आया। 'अब कहाँ जाओगे?' कहता हुआ वह आया। अंगद उसके सामने बढ़ा। वे दोनों भयंकर युद्ध करने लगे।

विष से भी भयंकर अंगद त्रिशूलधारी निकुंभ के निकट गया और वहाँ स्थित एक तालवृक्ष को हाथ में लेकर आक्रमण किया, जैसे नीले पर्वत पर कोई स्वर्ण-पर्वत आक्रमण कर रहा हो।

जब निकुंभ ने त्रिशूल फेंकने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया, तब ऐसा लगा कि बलवान् अंगद आज ही समाप्त हो जायगा। किन्तु, इतने में समय पर अग्नि के समान हनुमान् वहाँ आ पहुँचा।

हनुमान् ने उस निकुंभ को, जो अंगद को मारने के लिए प्राणहारी त्रिशूल अपने हाथ में उठाये हुए था, अपनी हथेली मारकर निष्प्राण कर दिया।

अबतक जो राक्षस-वीर खड़े थे, अब उनका कोई रक्षक नहीं रह जाने के कारण वे भागने लगे। वानर बड़े-बड़े पेड़ों को उखाड़कर उनको मारने लगे। इस प्रकार राक्षस-सेना निहत हो गई।

नगर-द्वार में घुसते समय भाग-दौड़ में अनेक राक्षस मरे। क्षतों से पीडित होकर अन्यत्र जाकर असंख्य राक्षस मरे।

अनेक राक्षस 'पानी पिलाओ!' कहते हुए भागे और मुँह का पानी भी सूख-जाने से मरकर गिर पड़े। अनेक राक्षस, जब उनके आँसुओं की धारा पैरों तक बही, तब उससे मार्ग को सिंचित करते हुए नगर में भागे।

गगन में उड़े हुए राक्षस निष्प्राण होकर धरती पर ऐसे गिरे थे, जैसे पर्वत पड़े हों। दिशाओं में भागे हुए राक्षस ऐसे मरे पड़े थे कि उनकी आँतें निकल आई थीं और शरीर भयंकर क्षतों से भर गया था।

कोई अपने परिचित से कहता—'हे मित्र! इस शर को निकाल दो!' पर, (उस मित्र के) आकर शर को निकालते ही वह निष्प्राण होकर गिर जाता। कुछ राक्षस अपना पूर्वरूप खोकर अपने गृहों में छिप गये।

घोड़ों के मरने पर कुछ खड़े-खड़े ही लड़ते रहे। हाथियों पर आये वीर हाथियों के मरने पर पैदल चलने लगे। कुछ राक्षस जलते हुए रथों के बीच खड़े रहे।

क्षतों से पूर्ण देहवाले कुछ राक्षस वानर-वेष धारण कर नगर की ओर गये, तो राक्षसों ने यह सोचकर कि ये वानर आ गये हैं, उन्हें पकड़-पकड़कर मारा।

(युद्धभूमि में) पड़े वीर आँखें खोलकर निकट-स्थित प्रियजनों से जल माँगते। पर, जल लाकर पिलाने के पूर्व ही वे प्राण छोड़ देते। अनेक जल को पीते-पीते मर जाते। कुछ पीने के पश्चात् मरते।

कुछ लोग युद्धभूमि में घायल हो पड़े अपने पुत्रों को उठाकर चलते; पर मार्ग में ही उनके मर जाने पर उनकी देह को फेंककर भागते और कुछ दुःख की अधिकता के कारण मुँह से रुधिर उगलते हुए तथा आँखों की ज्योति क्षीण हो जाने से टटोलते-टटोलते चलते।

इस प्रकार की दुर्दशा से ग्रस्त होकर राक्षस लंका नगर में प्रविष्ट हुए। दूत आँखों से आँसू बहाते हुए युद्धभूमि से भागे और रावण के चरणों पर जा गिरे।

रावण ने उनसे पूछा कि 'कहो, क्या घटना घटी है?' दूतों ने कहा—'हे प्रभु! युद्ध में जो सेना गई थी, उसमें से जो लौटकर आई है, वह 'कुछ' कहने के योग्य भी नहीं है। अतिकाय आदि सभी वीर निहत हो गये!

यह समाचार सुनकर रावण की आँखों से आँसू बह चले। उसके मन में रुदन, अभिमान, करुणा, वीरता, क्रोध आदि भाव एक के आगे एक होकर बढ़नेवाली तरंगों के समान उमड़ उठे। वह समुद्र के समान था।

वह (रावण) दिशाओं में दृष्टि फेरता। देवों की ओर देखता। अपने अपयश को देखता। अपने खड्ग को देखता। अपने हाथों को मलता। ऐसे निःश्वास भरता कि उसकी मूँछें झुलस जातीं। कामना से दीनता को प्राप्त करनेवाले के समान हँस पड़ता, रोता, रोष करता तथा लज्जित होता।

वह धरती को उखाड़ देने की बात सोचता, गगन को पकड़ने का विचार करता। सब प्राणियों को एक ही क्षण में मिटा देने की बात सोचता। स्त्री नामक सब प्राणियों को विध्वस्त करने का विचार करता। जैसे घाव में अग्निकण रख दिया गया हो, वैसे वह अभिमान के कारण अत्यन्त पीडित हुआ।

वहाँ के सब लोग मौन आहें भरते हुए रोते खड़े थे। घने वृक्षों से भरे अरण्य के समान रावण के सामने धान्यमालिनी (नामक रावण की पत्नी) रोती हुई आई।

ज्यों पर्वत-शिखर पर वज्रों का प्रहार हो रहा हो, ज्यों वह कंकणों को शब्दित करती हुई अपने हाथों से वक्ष को पीटती हुई चिल्ला-चिल्लाकर रो रही थी। संध्या की लालिमा के रंग से भरे उसके केश बिखरे थे। उसकी आँखों से रक्ताश्रु बह रहे थे।

जिसने दूसरों को भी कभी रोते हुए नहीं देखा था, वही धान्यमालिनी अब रावण के चरणों पर गिरकर मुँह खोले सर्पिणी के समान लोटती हुई कहने लगी—'हे निष्ठुर! तुमने मेरा सत्यनाश कर दिया।' और, दुःख-सागर में डूब गई।

फिर, कहने लगी—क्या तुम उन पराक्रमियों के पराक्रम को नहीं मिटाओगे? क्या तुम्हारी वीरता घट गई? क्या तुम मेरी बात नहीं सुन रहे हो? क्या मेरे वचनों को कान देकर सुनना नहीं चाहते हो? मेरी आँख की पुतली (अतिकाय) को क्या मुझे नहीं दिखाओगे?

स्वर्ग के देवता भी मेरी प्रशंसा यह कहकर करते थे कि तुमने इन्द्र को भी परास्त करनेवाला पुत्र पाया है। मंदराचल के समान कंधोंवाले उस मेरे पुत्र को एक नरजाति के पुरुष ने शर से मार डाला।

अक्षकुमार मरा। अतिकाय भी मरा। सब पराक्रमी वीर मरे। तुम्हारे पुत्रों में अब मंदोदरी का पुत्र ही जीवित बचा है। क्या अब तुम फिर दिग्विजय प्राप्त कर सकोगे?

हे प्रभु! तुम क्या सोच रहे हो? विजयमाला से भूषित होनेवाले असंख्य राक्षसों को, जो अब मर गये हैं, क्या पुनः नहीं बुलाओगे? अज्ञान से भरी कामुकता को लेकर क्या तुम जीवित रह सकोगे? सीता से अब और क्या-क्या पाना शेष रह गया है?

तुम्हारे विज्ञ भाई ने जो परामर्श दिया था, उसे तुमने नहीं सुना। कुलश्रेष्ठ विभीषण की बात भी नहीं मानी। कुंभकर्ण को मरवाकर मेरे उत्तम पुत्र को भी मरवा दिया। हे प्रभु! तुम्हारा शासन बहुत सुन्दर है!

इस प्रकार, विविध वचन कहकर, बछड़े से वियुक्त गाय के समान दुःखी होकर रोनेवाली उस धान्यमालिनी को रंभा और उर्वशी उठाकर विशाल प्रासाद के भीतर ले गईं।

अति सुन्दर लंका नगर में आज सब राक्षस एक साथ रो पड़े। उसे देखकर स्वर्ग की स्त्रियाँ भी करुणा से रो पड़ीं। फिर, अन्यों के बारे में क्या कहा जाय?

जब पुष्पमालाधारी दशरथ के प्रासाद से रामचन्द्र वन को चले थे, तब संसार को जो दुःख हुआ, वही दुःख अब लंका को प्राप्त हुआ। उस नगर में जो रोदन-ध्वनि सुनाई पड़ी, वह पूर्णचन्द्र को देखकर उमड़नेवाले समुद्र के घोष के समान थी। (१—२७६)

●

अध्याय १८

नागपाश पटल

इन्द्रजित् ने सोचा—'घातक करवाल-समान नेत्रोंवाली राक्षस-स्त्रियाँ आज क्यों बिखरे केशों के साथ, छाती पीटती हुई रो रही हैं? इसका कारण जानना चाहिए', और वज्र के समान निकलकर आ पहुँचा।

इन्द्रजित् ने सोचा—'क्या अष्ट दिशाओं को जीतनेवाला रावण आज भी युद्ध में जाकर लौट आया है, या वहीं मर गया है, अथवा क्या पहले (लंका में) आग लगानेवाले हनुमान् ने लंका को समुद्र के मध्य से उखाड़ लिया है? यों रोने का क्या कारण है?'

सामने आनेवाले लोगों से इन्द्रजित् ने पूछा—'क्या घटित हुआ है?' वे लोग कुछ उत्तर नहीं दे सके और काँपते हुए मौन खड़े रहे। तब इन्द्रजित् बहुत विकल होकर अपने रथ को अतिवेग से चलाता हुआ अपने पिता रावण के पास जा पहुँचा।

रावण के दर्शन से इन्द्रजित् का दुःख किंचित् शान्त हुआ। उसने हाथ जोड़कर पूछा—'अब क्या विपदा प्राप्त हुई है?' तब रावण ने उत्तर दिया—'हे वीर! यम तुम्हारे भाइयों के प्राण ले गया। कुंभ और निकुंभ के साथ अतिकाय स्वर्ग जा पहुँचा।'

धनुर्धारी वीरों को गिनते समय हाथ की पहली ही उँगली पर जिसका नाम रहता है, ऐसा वह इन्द्रजित्, वह बात सुनते ही अत्यन्त रोष से भर गया। उसकी आँखों से अग्निकण निकल पड़े। वह ओंठ चबाने लगा। वह आकाश की ओर देखकर बोला—'हाय! सब मर मिटे!'

इन्द्रजित् के यह पूछने पर कि उन सबको किसने मारा, कैलास को उठानेवाले (रावण) ने कहा—अतिकाय को मारनेवाला है पराक्रमी लक्ष्मण। अन्य वीर लंका को जलानेवाले हनुमान् तथा दूसरे वानरों के द्वारा मारे गये।

तब इन्द्रजित् ने कहा—'हे राजन्! बलवान् सेना से युक्त उन मनुष्यों के बल को जानते हुए भी तुमने मुझे युद्ध में नहीं भेजा! उन छोटे भाइयों को भेजा और वे मर गये। मानों तुमने स्वयं 'मरो!' कहकर उन लोगों को शत्रुओं के हाथ में सौंप दिया। यों कहकर वह रुष्ट हो उष्ण निःश्वास भरने लगा।

फिर बोला—अक्षकुमार को रगड़कर मारनेवाले (हनुमान्) को मैं ब्रह्मास्त्र से बाँधकर ले आया, तो तुमने उसे दूत कहकर बिना मारे ही छोड़ दिया। तब तुमने यह नहीं सोचा कि उस दूत को छोड़ देने से यहाँ की सब बातें शत्रुओं को विदित हो जायेंगी। अब तुम पुत्रों की सहायता से हीन हो गये। तुम्हारा जीवन कुंठित हो गया।

अब बीती हुई बातों को सोचने से क्या प्रयोजन? जबतक मैं उस शस्त्रधारी अतिकाय को मारनेवाले लक्ष्मण की देह से उसके प्राणों को पृथक् नहीं कर दूँगा, तबतक लंका नहीं लौटूंगा। यदि ऐसा न कर सका, तो मैं स्वयं अपने प्राण छोड़ दूँगा।

जिसके प्राण लेना असंभव था, ऐसे मेरे भाई को मारनेवाले उस लक्ष्मण के रुधिर को यदि भूमि नहीं पीये, तो ऐसा मानना कि मुझसे परास्त हुए इन्द्र से मैं चार बार हार गया हूँ।

यदि विशाल वानरसेना को छिन्न-भिन्न न कर डालूँ, उस लक्ष्मण को मार न डालूँ, तो विष्णु आदि देवता जो आज मेरे सामने आने से डरते हैं, मुझे देखकर हँसेंगे।

नागास्त्र, पाशुपतास्त्र, शिवजी का दिया हुआ खड्ग—इन सबको मैं बचाता आया हूँ। यदि वे सब आज के युद्ध में मेरे काम नहीं आयेंगे, तो मैं अपने प्राण छोड़ दूँगा। जीवित रहकर भोजन नहीं करूँगा।

अमृत-समान मेरे भाई को जिसने मार डाला, उस (लक्ष्मण) को यम का अतिथि बनाये बिना, देवों के द्वारा उपस्थापित मैं यदि व्यर्थ ही धनुष को ढोता हुआ पृथ्वी पर रहूँ, तो रावण जैसे पराक्रमी का पुत्र नहीं।—यों इन्द्रजित् ने कहा।

तब रावण ने कहा—तुम जाकर उस (लक्ष्मण) को नागास्त्र से बाँध दो और मेरा संताप दूर करो। तुम्हारे लिए असंभव कार्य कुछ नहीं है? इस समय, जब मुझे

असह्य पुत्रशोक प्राप्त हुआ है, यदि तुम शत्रुओं पर अपने दृढ धनुष को झुकाओगे, तो मुझे अपार आनंद होगा।

तब इन्द्रजित् ने रावण को नमस्कार करके किसी शस्त्र से अभेद्य कवच को एवं उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण खड्ग को धारण किया। एक स्वर्णमय तूणीर को पीठ पर बाँधा और एक अतिदृढ धनुष भी धारण किया।

कमलभव ब्रह्मा ने, इन्द्र के लिए वज्रमय पर्वत से उस धनुष को निर्मित किया था। इन्द्र को परास्त करके रावणपुत्र ने उसे छीन लिया था।

उसका तूणीर भी इन्द्र से हरण करके लाया गया था। सप्त समुद्र भी यदि जलहीन हो सूख जायें, तो भी वह तूणीर कभी बाणों से रिक्त नहीं होता था। कठोर यम के निवास-स्थान के समान था वह तूणीर।

उसने उन सब शस्त्रों को लिया, जिन्हें पूर्वकाल में युद्ध में हारे हुए सब देवों ने उसे दिये थे, महामेरु को धनुष बनानेवाले शिव ने दिये थे। ब्रह्मदेव ने जो दिये थे, ऐसे अनेक शस्त्रों को उसने चुनकर लिया।

उसके रथ में एक सहस्र सिंह जुते थे, जिनमें प्रत्येक एक-एक लाख शरभों के बल से भरे थे। वह स्वयं मानों एक लंका नगर था। वह देवताओं के लिए भी अगम्य था।

इन्द्रजित् का वह रथ ऐसा था कि स्वर्ण के वर्ण से भी विलक्षण वर्णवाला गरुड और परशुधारी शिव का वाहन वृषभ भी उसके सामने भागते, तो वह (रथ) उनका पीछा कर सकता। वह कभी किसी से हारनेवाला नहीं था।

सब भूत यह कहकर कोलाहल करने लगे कि 'अनुपम युद्ध में इन्द्र के बल को मिटाकर उसे बाँध लानेवाला महान् वीर आया है।'

उस रथ के पहियों से कितने ही असुर पिसकर मरे थे। उसके अग्रभाग में स्थित 'कलिका' नामक श्रृंग ने इन्द्र की पीठ को पीडित किया था। अब यह कौन-सी बड़ी बात है कि उसने दिग्गजों को भगाया था।

इन्द्रजित् ने युद्ध में सब देवों की पीठ को ही देखा। ऐसा पराक्रमी वीर प्रचण्ड रथ पर आरूढ होकर, वैसे ही सहस्र रथों से घिरा हुआ, मन में युद्धोन्माद से भरकर आया।

उसके साथ जो सेना गई, उसकी संख्या बताना मेरे लिए असंभव है। फिर भी, वेदज्ञ वाल्मीकि महर्षि ने उसे 'चालीस समुद्र' संख्यावाली कहा है।

धूम्रवर्ण आँखोंवाला राक्षस (धूम्राक्ष) तथा पहले कभी युद्ध में परास्त नहीं हुआ महापार्श्व (नामक राक्षस) उस महान् रथ के चक्रों की रक्षा करते हुए चले। उसके ऊपर धवल छत्र शोभायमान हो रहा था। उस सेना में शंख बज रहे थे और चारों समुद्रों के शब्द से भी अधिक भयंकर रूप में अनेक वाद्य बज रहे थे।

सहस्रों रथ साथ चल रहे थे। उनसे दुगुने हाथी पार्श्वों में चल रहे थे। अश्वों की पंक्तियाँ पीछे-पीछे चल रही थीं और पदाति-वीर आगे-आगे जा रहे थे। यों इन्द्रजित् युद्धभूमि में आया।

तब लक्ष्मण, यह सोचकर कि 'रावण का पुत्र (अतिकाय) मर गया। अब

या तो वह रावण स्वयं आयगा या इन्द्रजित् आयगा'—उमंग-भरे चित्त से युद्धक्षेत्र में अडिग खड़े रहे।

दूर पर इन्द्रजित् की सेना को आते देख वीर (लक्ष्मण) ने विभीषण से पूछा—'यह कौन आ रहा है?' विभीषण ने उत्तर दिया—'हे उत्तम! यह भयंकर युद्ध में इन्द्र को परास्त करनेवाला वीर है। अब जो युद्ध होगा, वह बहुत भीषण होगा।'

हे प्रभु! मेरी एक सलाह है। यह इन्द्रजित् अति विशाल सेना की सहायता से युद्ध करने आ रहा है। हमें भी ऐसी ही सेना की सहायता लेकर यहाँ रहना ठीक होगा।

हे दोषरहित! यशोभूषण! हनुमान्, जांबवान्, कपिराज अंगद आदि को साथ रखकर युद्ध में प्रवृत्त होना उचित होगा।

हे प्रभावशाली सुन्दर कंधों से युक्त! असंख्य देवताओं को साथ लेकर इन्द्र ने इसके साथ युद्ध किया था, किन्तु वह परास्त हो गया और पूर्व में पिये अमृत के प्रभाव से ही जीवित रह सका।

इसके बंधन से इन्द्र की दीर्घ भुजाओं में अनेक दाग हो गये थे, जो कभी मिटने-वाले नहीं! हनुमान् को भी इसने बाँध दिया था, तो इसके धनुःकौशल के बारे में और क्या कहा जाय?

यह कहकर विभीषण ने नमस्कार किया, लक्ष्मण भी उसके विचार से सहमत हुए। इतने में रावण के पुत्र के आगमन की सूचना पाकर वायुपुत्र (हनुमान) चिंतित होकर वहाँ आ पहुँचा।

यम भी भय से आँखें बन्द कर ले—ऐसी भीषण युद्धसज्जा से सुसज्जित होकर रावणपुत्र को आते देख हनुमान् लंका नगर के पश्चिम द्वार को छोड़कर अतिवेग से लक्ष्मण के निकट आ पहुँचा।

अंगद पहले से ही वहाँ आ गया था। ऊँचे कंधोंवाले अन्य वानर-वीर भी लक्ष्मण के निकट आ गये। अरुणकिरण (सूर्य) का पुत्र सुग्रीव समुद्र-समान विशाल सेना को लेकर आ पहुँचा।

अत्यन्त क्रोधावेश से भरकर आमने-सामने आनेवाली वे दोनों (वानर और राक्षस)-सेनाएँ ऐसी थीं, मानों तरंगों से भरे दो विशाल समुद्र युद्धोत्साह से उमड़कर भिन्न-भिन्न दिशाओं से आ गये हों।

देवता यह कहते हुए कि हमारे नयनों एवं मन का लाभ आज प्राप्त होगा, अपने-अपने निवास को छोड़ अपनी देवियों-सहित गगन में आकर खड़े हो गये।

दोनों पक्षों के वीरों के गर्जन, शंख, पटह आदि वाद्यों की ध्वनि सब मिलकर सर्वत्र फैले, तो देवताओं ने भी अपने कानों को बन्द कर लिया।

'पकड़ो, मारो, वार करो, फेंको'—ऐसे शब्द सुनाई पड़े। धनुषों के टंकार गूँज उठे। सब ध्वनियाँ प्रलयकालिक वज्रध्वनि से भी तिगुनी होकर फैलने लगीं।

दोनों सेनाओं पर पत्थर गिरे। वृक्ष आकर गिरे। यम-समान शूल भेदकर गिरे। शर चुभे, जिससे असंख्य वीर मरकर गिरे और जिनके भार से धरती काँप उठी।

वानर दंडों, लौह-शृङ्खलाओं, वृक्षों आदि से आघात करते थे, जिससे राक्षस-वीर शिरोहीन और विक्षत होकर गिरते थे। उनके कवंध युद्धक्षेत्र में नाच उठते थे।

राक्षसों के शस्त्रों से वानरों के सिर कट गये और उनके कंठों से रक्तधारा उमड़-कर बह चली। वह दृश्य ऐसा था, मानों दावाग्नि से वन के वृक्ष जल रहे हों।

वानर राक्षसों को दृढता से पकड़कर, उनके हाथों को तोड़कर, पदों से आहत कर, दाँतों से उनके कंठ काटकर, हाथों से उनको उठाकर, पृथ्वी पर पटककर, रगड़कर मारते और हर्षध्वनि करते थे।

राक्षस दीर्घ खड्गों से वानरों के वीरवलय-भूषित पैरों को काटते, सिरों को काटते, कंधों को चीरकर अलग करते, शरीरों के टुकड़े-टुकड़े करते और हर्ष से कोलाहल मचाते थे।

वानर नामधारी घूमनेवाले यम ने वृक्षों से राक्षसों के पर्वत-समान सिरों को छितरा दिया। उनके प्राण हरे। उनके कर-चरण तोड़ दिये।

आँखों से उज्ज्वल अग्निकण उगलनेवाले कुछ वानर अपने वृक्ष-सहित करों के कट जाने पर तथा अपने वक्ष में शूल से आहत होकर भी लपककर राक्षसों के कंठ को दाँतों से काटकर उनके साथ स्वयं मरकर गिरते थे।

युद्ध करनेवाले ऋक्ष, पर्वतों पर गिरनेवाले भीषण वज्रों के समान चलते थे और मदस्रावी गजों के कुंभों को चीरकर उनके मस्तिष्क को आनंद से खाने लगते थे।

पर्वतों से भी बड़े वानर राक्षसों के हाथियों पर लपकते, घोड़ों पर लपकते, दृढ रथों पर लपकते, उनके खड्ग पर लपकते, धनुषों के सिरों पर लपकते और उन (राक्षसों) के सिरों पर लपकते।

वानरों के शवों से बहनेवाली रुधिर की नदियाँ, राक्षसों के गदाघात से गिरने-वाले तथा उनके खड्गों से काटे गये देह-रूपी चंदन (वृक्ष) के टुकड़ों को बहाते हुए, तरंगायमान समुद्र में जा गिरती थीं।

हनुमान् ने हाथों से राक्षससेना को यों पीस दिया कि यह भेद करना कठिन हो गया कि कौन पताकाएँ हैं, कौन अश्व हैं, कौन धनुष हैं, कौन बाण हैं, कौन गदाएँ हैं, कौन शूल हैं, कौन मत्तगज हैं और कौन रथ हैं।

अंगद ने हाथ में वृक्ष लेकर रथ, गज आदि चतुरंग राक्षससेना को आहत-कर कीचड़ बना दिया। यम, पहले के जैसे अपने मन में भय का अनुभव न करके उस कीचड़ में दोनों हाथों से टटोल-टटोलकर यह देख रहा था कि कहीं कोई प्राण तो नहीं छिपा है।

(वानर) सब दिशाओं में हाथियों, रथों, अश्वों और वीरों को मार-मारकर शव के ढेर लगा रहे थे। यह देखकर देवर्षियों ने सोचा—'देवासुर-युद्ध इस (वानर-राक्षस) युद्ध के सामने कुछ नहीं था। यह युद्ध कुछ समता नहीं रखता।'

किन्तु, राक्षस-वीर जब कभी सिर उठाये आगे बढ़ आते थे, तब वानर-वीर पीठ दिखाकर भागने लगते थे और वानर-सेनापति उनको रोकते थे। राक्षसों ने समुद्र-सी फैली

वानरसेना में विध्वंस मचाया। अनेक वानर मरे। शेष भागे। किन्तु, वानर-सेनापति कुछ परवाह किये बिना युद्ध करते रहे।

त्रिशूल, परशु आदि शस्त्र लेकर अष्ट भुजाओंवाले शिवजी जैसे प्रलय मचा रहे हों, वैसे ही नील विध्वंस मचा रहा था। यम अपने परिवार के साथ पाशायुध लेकर उसी (नील) के पास खड़ा था। वहाँ से हटकर वह अन्यत्र नहीं जा सका।

कुमुद (नामक वानर-वीर), जो इतना क्रोधी था कि यम भी उसे देखकर काँप उठे, राक्षससेना को मिटा रहा था। वह प्रभंजन नहीं था। जल नहीं था। अग्नि नहीं था, तो भी केवल अपने दोनों हाथों से ही वह इतना विध्वंस मचा रहा था कि उसके युद्ध-कौशल के बारे में क्या कहा जाय?

ऋषभ ने अपने हाथों से उखाड़-उखाड़कर इतने वृक्ष फेंके कि समुद्र से आवृत पृथ्वी पर राम के द्वारा वेधे गये सात सालवृक्षों को छोड़ तथा प्रसिद्ध पर्वतों में सात कुलपर्वतों को छोड़ न कोई वृक्ष बचे, न कोई पर्वत।

देवता कहने लगे कि आज अश्वों, मत्तगजों, अश्व-जुते रथों से युक्त तथा क्रोधी सर्पों से भी अधिक उग्र असंख्य राक्षस मर मिटेंगे, अब राक्षसों से भय नहीं होगा। जल-द्वारों से जैसे जल की बाढ़ चलती है, वैसे ही रक्त की धारा बह चली है। जांबवान आज पेड़ों को घुमा-घुमाकर सब राक्षसों को मिटा देगा।

पनस नामक वानर-वीर ने टकरानेवाले अश्व-रूपी तरंगों, सुन्दर रथ-रूपी नौकाओं, ऊँचे मत्तगज-रूपी बड़े-बड़े मीनों तथा विविध शस्त्र-रूपी विक्षुब्ध होकर छिन्न-भिन्न होनेवाली मछलियों से युक्त राक्षससेना-रूपी समुद्र को मथ डाला।

मैन्द नामक वानर तथा उसका भाई द्विविद दोनों मेघों को चीरकर ऊपर के लोकों में जानेवाले दो गृद्धों (जटायु और संपाति) की समता करते थे। गवय नामक वीर सरोवर में उतरकर उथल-पुथल मचानेवाले हाथी की समता करता था। केसरी नामक वानर अपने स्थान से जरा भी विचलित हुए बिना घोर युद्ध कर रहा था।

बड़े-बड़े वानर-वीर राक्षसों के शवों के ढेर लगा रहे थे। तब पहले भागे हुए वानर भी आ मिले, जिससे राक्षससेना शिथिल हो गई। तब, राक्षस-वीर (इन्द्रजित्) एकाकी ही लड़ने लगा।

आभरणों से भूषित शरीर, दोनों ओर पर्वत-शिखरों के समान फूले हुए कंधे, अति दृढ खंभों के जैसे हाथों एवं घट्टे पड़े हुए उँगलियों से इन्द्रजित् ने अपने धनुष की डोरी को खींचकर टंकार किया, तो दूर-दूर के पर्वत एवं दिशाएँ बहरी हो उठीं और सारा संसार काँप उठा।

पुरुषसिंह के समान इन्द्रजित् ने समुद्र के समान बड़ा गर्जन किया। अपने सारथि को आज्ञा दी कि रथ को शीघ्र आगे बढ़ाओ। फिर, उसने अत्युग्र क्रोध के साथ अति घोर उज्ज्वल बाण छोड़े, जो उज्ज्वल दाँतों से विष उगलनेवाले शंखपाल, गुलिक आदि सर्पों की समता करते थे और जिनसे अंगद आदि वानर व्याकुल हो गये और देवता भयभीत।

वानरों ने चारों ओर से इन्द्रजित् पर जो वृक्ष तथा शैल फेंके, वे सब इन्द्रजित्

के चलाये तीक्ष्ण बाणों की उत्तरोत्तर बाढ़ से जलकर भस्म हो गये। कुछ पर्वत टुकड़े-टुकड़े होकर अंतरिक्ष में उड़ गये और फिर दिशाओं में गिरकर मिट्टी में गड़ गये।

कुछ वानर इन्द्रजित् के अतिवेगवान् तथा तीक्ष्ण बाणों के चलने से खिन्न होकर अपने हाथ में उठाये शैलों के पीछे अपनी बड़ी देह को संकुचित करके छिपाये हुए, धीरे-धीरे आगे बढ़कर अत्यन्त क्रोध के साथ उनको इन्द्रजित् पर फेंकने की चेष्टा करते थे। किन्तु, इन्द्रजित् उन पर्वतों पर यों बाण छोड़ता था कि वे बाण पर्वतों को एवं उनके पीछे छिपे वानरों को एक साथ भेदकर चले जाते थे।

एक मुहूर्त्तकाल में एक समुद्र संख्या में वानर निहत हुए। कुछ के कर कट गये। कुछ के कंठ कट गये। कुछ के दीर्घ पैर कट गये। कुछ की पूँछें कट गईं। वानर इन्द्रजित् पर शैलों को फेंकने के लिए गगन में उड़कर जाते, तो इन्द्रजित् उनके सिरों को बाणों से काट देता, तब उनके सिर और पत्थर एक ही साथ इन्द्रजित् पर गिर पड़ते।

वानरों के सिरों को काटकर चलनेवाले इन्द्रजित् के बाण, सूर्य-किरणों के समान, बाँबी में घुसनेवाले सर्पों के समान, पाताल में जा घुसे। समतल भूमि पर जो रुधिर-प्रवाह बहा, उसमें तरंगें उठने लगीं, जिससे वह (प्रवाह) समुद्र की समता करने लगा।

पर्वताकार वानरों पर इन्द्रजित् जो शर छोड़ता, वे (शर), यदि वे (वानर) आँखें खोलकर देखते, तो आँखों में घुसते। यदि खड़े रहते, तो उनके वक्ष में घुसते। यदि पीठ दिखाकर भागते, तो उनकी पीठ में घुसते। यदि उन बाणों को दूर हटाने की चेष्टा में इधर-उधर हटते, तो उनकी पूरी देह में लग जाते। यदि ऊपर उछलते, तो उनके पैरों में लगते। यदि हाथ उछालते, तो हाथों में लगते। यदि धमकी देते, तो उनकी जीभ में लगते और मन में सोचते, तो उस मनमें भी वे बाण प्रवेश कर जाते।

गगन में स्थित देवता इन्द्रजित् की उस निरन्तर बाण-वर्षा के कारण, बीच में होनेवाली किसी घटना को पूरा नहीं देख पाते थे। इन्द्रजित् के धनुष्टंकार के अतिरिक्त वे और कोई शब्द नहीं सुन पाते थे। असंख्य वानरों के निहत होने पर जो वानर भाग रहे थे, उनको देखकर वे अत्यन्त विकल हुए।

इन्द्रजित् ने देखा कि जहाँतक दृष्टि जाती है, वहाँतक सर्वत्र वानरों के शव-ही-शव दिखाई देते हैं और उसका सामना करनेवाला कोई नहीं है, तब शर-प्रयोग करना छोड़कर वह किंचित् विश्राम करने लगा। उसे यों देखकर दूर पर खड़े सूर्यपुत्र (सुग्रीव) ने उससे युद्ध करने का विचार कर मेघों से आवृत एक अति विशाल सालवृक्ष को उखाड़ लिया।

क्षीर-समुद्र का मंथन करनेवाले वाली-समान वह सुग्रीव अपनी सेना को अस्त-व्यस्त होते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और इन्द्रजित् के निकट जाकर अपने वृक्ष को घुमा-घुमाकर यों आघात करने लगा कि सारी राक्षससेना में हलचल मच गई।

इन्द्रजित् ने अपनी सेना को भागते देखकर सुग्रीव के पराक्रम की प्रशंसा की और उसपर विष-समान बाण चलाये। उसने सुग्रीव के ललाट पर दो तथा वक्ष पर पाँच बाण गड़ाये और उसके हाथ के पेड़ को टुकड़े-टुकड़े कर छितरा दिया।

तब हनुमान् हलाहल विष के समान क्रोध से भर गया। अपनी भुजा पर यों ताल ठोका कि सारा संसार काँप उठा। वज्र के समान गरजा। फिर, एक बड़े पर्वत को उठाकर इन्द्रजित् पर फेंका। दर्शकों ने यह समझा कि इससे इन्द्रजित् का प्राणान्त हो जायगा। किन्तु, उस राक्षस के बाणों से वह शैल चूर-चूर होकर बिखर गया।

युद्ध के पराक्रम से युक्त इन्द्रजित् ने हनुमान् से कहा—अरे! अरे! ठहर! ठहर! मैं तुझसे ही युद्ध करने आया हूँ। तू अपने पराक्रम की डींग मारता हुआ, बिना धनुष के ही जीवित रहकर यह खेल खेल रहा है। क्या तेरे ये पेड़ और पत्थर मेरे पराक्रम को दबा सकेंगे? कह तो रे! कह। महान् हनुमान् ने उसका उत्तर यों दिया—

हे कोमलांग! हमारे पक्ष में धनुष लेकर युद्ध करनेवाले कुछ महान् वीर भी हैं। पत्थरों से युद्ध करनेवाले भी हैं। दो-एक दिन में ही तू इस तथ्य को जान लेगा। उज्ज्वल शस्त्रधारी देवता तुझसे हार मानकर भाग गये थे। पर हम वैसे नहीं हैं। हम दूसरे प्रकार की युद्धकला सीखकर आये हैं।

क्या तू मुझसे लड़ेगा, या लक्ष्मण नामक हमारे नायक से युद्ध करेगा, या क्या तेरे पिता के सिरों को काट डालने के लिए आये हुए हमारे प्रभु से लड़ेगा? तू जैसे भी चाहेगा, वैसे ही युद्ध होगा। यों स्वर्णमय मेरु के अतिरिक्त और किसी से अपनी समता नहीं रखनेवाले हनुमान् ने कहा।

तब इन्द्रजित् ने हनुमान् से कहा—सिंह-समान मेरे भाई अतिकाय को मारकर, अपने प्राणों का हरण कराने के लिए मुझ जैसे वीर को यहाँ बुलानेवाला वह लक्ष्मण नामक हतबुद्धि कहाँ है? वह जहाँ है, वहीं जाकर उसे मारने के लिए मैं आया हूँ। यदि मैं समस्त लोकों को मिटाने में समर्थ बाण छोड़ूँगा, तो क्या तुम लोग उसे रोक सकोगे?

मेरे सब साथी हार जायँ। मैं अकेला ही अपना धनुष लेकर रथ पर रहूँ, तो भी तुम सबको मिटा दूँगा, यह निश्चित जानो! आओ। तुम लोग उन देवों को भी साथ लेकर आओ। आज एक दिन के भीतर ही युद्ध करके विजय पाऊँगा। मैं सबको जीतकर ही यहाँ से हटूँगा।

यह कहकर इन्द्रजित् ने नौ सहस्र भीषण बाण हनुमान् पर छोड़े। ज्यों-ज्यों वे बाण उसके शरीर में चुभते थे, त्यों-त्यों हनुमान् दाँत पीसता हुआ अधिकाधिक क्रोध से भर जाता था और एक महान् पर्वत को अनायास ही उठाकर, इन्द्रजित् के सामने खड़ा होकर बोला—

संसार में हाथी नामक जितने प्राणी हैं, चाहे वे सब एकत्र होकर आयें, तो भी फाँदनेवाले वेगवान् पैरों तथा उग्र पराक्रम से युक्त सिंह के सामने वे खड़े नहीं रह सकते। हमारे प्रभु के भाई के आने तक यदि तू मुझसे लड़ेगा, तो यह पर्वत तुम्हारे प्राण मिटा देगा। अरे! तू अपनी धनुर्विद्या के कौशल से अपने को बचा।

युद्ध के लिए अभ्यस्त विशाल हाथोंवाले हनुमान् ने जो पर्वत फेंका था, वह दिग्गजों के दाँतों से लड़नेवाले रावण के पुत्र के वज्रमय वक्ष से यों टकराया, ज्यों एक पहाड़ से दूसरा पहाड़ टकराया हो। किन्तु, वह पर्वत टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया।

उस पर्वत से टकराते रहने पर भी, वंचक गुणवाला इन्द्रजित् उत्तरोत्तर बढ़नेवाले क्रोध से, मेरु-पर्वत को या धरती को भी उखाड़ने में समर्थ तथा सुरभित माला से भूषित हनुमान् के वक्ष और कंधों पर सहस्रों बाण छोड़ता रहा।

जब एक से बढ़कर एक सहस्रों बाणों ने हनुमान् के शरीर को भेद दिया, तब वह रुधिर से लथपथ होकर, प्रभंजन के भीतर घुसकर पीडित करने पर, बाहर से स्वर्णमय होकर खड़े रहनेवाले मेरु-पर्वत के समान विकल किंकर्त्तव्य-विमूढ हो खड़ा रहा। इतने में नील वहाँ आ पहुँचा।

नील ने एक नील-पर्वत को उखाड़ लिया और उसे इन्द्रजित् पर फेंका। वह गगन-मार्ग से एक अग्निपिंड के समान उड़ चला। किन्तु, उसी क्षण इन्द्रजित् ने यम के शूल-समान उस पर्वत को अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर बिखेर दिया।

जो वानर जीवित रहे, वे भाग चले। देवों के तथा दूसरों के मन में भय समा गया। नील का महामेरु-समान शरीर बाणों से छलनी हो गया। यों अति तीक्ष्ण अग्नि को भी भयभीत करनेवाले तथा सर्प की क्रूरता से युक्त इन्द्रजित् के बाण ज्यों-ज्यों आते थे, त्यों-त्यों नील थरथरा उठता था।

तब वालिपुत्र (अंगद) इन्द्रजित् के वक्ष पर बड़े-बड़े पर्वतों को उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगा। देखनेवाले कहते—'यह मेरु है।' 'नहीं वह मेरु है।' किन्तु, जबतक इन्द्रजित् के हाथ में धनुष है, तबतक क्या कोई पर्वत उसपर लग सकता है? क्या पर्वत उसके निकट पहुँचते ही उसके तीक्ष्ण बाणों से चूर-चूर नहीं हो जायेंगे?

अंगद के ललाट में, कंधों में, विशाल वक्ष में, तथा दीर्घ पैरों में, बाँबी में घुसनेवाले सर्पों के समान बाण घुस रहे थे। अंगद लड़खड़ाने लगा। वह उज्ज्वल दाँतों को पीसता हुआ, 'क्या कर्त्तव्य है' यह नहीं जानता हुआ, हाथ मलता हुआ, आँखों से चिनगारियाँ उगलता हुआ खड़ा रहा। फिर, रुधिर के बहने से मूर्च्छित हो गया।

अन्य वानरों की देहों में भी बाण घुसे। जिससे वे खड़े-खड़े थरथरा उठे। वानरों की विशाल सेना विध्वस्त हो गई। जो मरे नहीं, वे चारों ओर भागे। उस दृश्य को देखकर रोष से भरे लक्ष्मण ने दाँत पीसते हुए ये बातें (विभीषण से) कहीं—

हे विभीषण! हमारा विचार व्यर्थ निकला। सब वानर-सेनापति रुधिर-धारा में डूब रहे हैं। हमारी सेना का बहुत बड़ा अंश विध्वस्त हो गया। मुझे एकाकी ही इस युद्ध में बुलाकर इसके प्राण लेना चाहिए था। अब यह युद्ध व्यर्थ ही हो रहा है।

तब विभीषण ने उत्तर दिया—हे प्रभु! यह ठीक है। जब यह (इन्द्रजित्) एकाकी ही लड़ता था, तब भी इसके सामने देवता खड़े नहीं रह सकते थे। आप ही इस दुःख को दूर करेंगे, तो कर सकेंगे। अन्य कोई इसके सामने जीवित नहीं बचेगा।

यह बात सुनकर लक्ष्मण, इन्द्रधनुष से शोभायमान एक स्वर्णमय मेघ के समान बढ़ गये। इन्द्रजित् ने अपने सम्मुख उनको देखकर अपने साथियों से पूछा—'क्या यही भरत के भ्राता रामचन्द्र का अनुज है?' उन्होंने कहा—'हाँ।'

क्रूर इन्द्रजित् के लक्ष्मण पर आक्रमण करने के पूर्व ही अन्य राक्षस यह कहते

हुए उनके निकट आये कि हे हमारे प्रभु के पुत्र (अतिकाय) को मारनेवाले ! हमारी आँखों के सामने आकर अब खूब फँस गये हो। अब तुम कैसे जीवित लौट सकोगे ?

ध्वजाओं से युक्त दृढ रथों, बड़े-बड़े हाथियों तथा घोड़ों को चलाते हुए शत-कोटि राक्षस भीषण कोलाहल करते हुए आ पहुँचे। भरत के भ्राता के अनुज (लक्ष्मण) ने उनको घेरनेवाले उन सब राक्षसों को क्रमशः निहत कर दिया।

लक्ष्मण के बाणों के वेग से सप्तलोक काँप उठे। ज्यों वज्र गिर रहे हों, त्यों पर्वत चूर-चूर हुए। धरती फट गई। शव-राशियों पर और भी सिर गिरते रहे। रक्तधारा उमड़ चली। यों लक्ष्मण ने भयंकर युद्ध छेड़ दिया।

महावीर (लक्ष्मण) ने अतिवेगवान् असंख्य शरों को छोड़ा, जो राक्षसों के वक्षों में धँसे। सर्वत्र फैले। ध्वजाओं को जलाया। अश्वों को काटा। तालवृक्ष जैसी सूँड़वाले हाथियों को मिटाया।

लक्ष्मण के शरों से निहत राक्षसों को देवता भी नहीं गिन पाते थे और न वे उन शवों को दृष्टि फेरकर पूरा-पूरा देख ही पा रहे थे। उन्होंने सोचा—'सप्तमेघों ने निरंतर वर्षा करने की कला को क्या इस लक्ष्मण से ही सीखा था ?'

लक्ष्मण के एक-एक बाण के लगने से मरकर गिरे हाथी पर्वताकार में सर्वत्र दिखाई देते थे। सिंह-समान वीरों से भरे उस युद्धभूमि में लक्ष्मण के घातक बाण समुद्र के वालूकणों से भी अधिक संख्या में फैल गये।

लक्ष्मण के बाण, ऐसे थे कि देवता कहते थे कि 'ये वास्तव में मांसभक्षी तथा पंखोंवाले बड़े-बड़े पक्षी ही हैं', युद्धक्षेत्र में सर्वत्र भरे थे और गगन को ढकते हुए आकर शवों पर बैठनेवाले पक्षियों की अपेक्षा अधिक संख्या में थे।

वीर-वलयधारी रावण-पुत्र के बाणों से पैंतीस समुद्र से भी अधिक वानर मरे पड़े थे। अब राक्षसों के शवों से वे वानर आवृत हो गये और उनके रक्त के प्रवाह से समुद्र भर गये।

राक्षसों में अनेक के हाथ कटे। पैर कटे। कंठ कटे। कवच टूटे। देह छिद गई। आँतें निकल पड़ीं। बोलने की भी शक्ति उनमें नहीं रही। वे मत्तगजों, अश्वों एवं रथों से हीन हो गये। जो राक्षस बचे, वे जान लेकर भागे।

जल सूखने पर जैसे समुद्र के मध्य कोई पर्वत खड़ा हो—यों राक्षसों से रहित हो एकाकी खड़ा हुआ दशमुख-पुत्र भौंहें सिकोड़कर अपने इच्छानुकूल चलनेवाले रथ को वेग से बढ़ाकर लक्ष्मण के निकट आया। तब हनुमान् भी आया।

हनुमान् ने लक्ष्मण से कहा—'हे प्रभु! मेरे कंधों पर आरूढ हो जाइए। हनुमान् ने लक्ष्मण के चरणों को नमस्कार किया। सिंह-समान लक्ष्मण उसके कंधे पर आरूढ हो गये। देवों ने हर्षध्वनि की। जैसे दो मेघ एक दूसरे पर आक्रमण करने आये हों, वैसे ही लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों एक दूसरे पर कालिका-समान शत्रु-भयंकर, यम-समान घातक एवं अग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण बाण चलाने लगे।

दोनों के धनुषों से वज्र-समान टंकार निकला। दिशाएँ अस्त-व्यस्त हुईं।

पर्वत टूट गये। ऊपर के लोक फट गये। सारे संसार में अग्नि-ज्वालाएँ फैल गईं। एक के वाणों ने दूसरे के वाणों को पकड़कर काट डाला।

एक के वाणों को दूसरे के वाण काटते। जो वाण नहीं काटते, वे अंतरिक्ष में जलकर भस्म हो गिरते। देवता भी दिग्भ्रान्त-से हो रहे। सब लोक थरथरा उठे। समुद्र में जानेवाली नौका के समान ब्रह्माण्ड ऊब-डूब हो उठा।

सिंह-जुता इन्द्रजित् का रथ और हनुमान्—दोनों अपार रूप में चक्कर काट रहे थे। जिससे लंका भी घूम उठी। जलनेवाले वाण चारों ओर यों फैले कि देवता भी यह नहीं जान सके कि वे दोनों (लक्ष्मण और इन्द्रजित्) हैं या नहीं। सब दिशाएँ घोर शब्द से प्रतिध्वनित होकर फट-सी गई।

इन्होंने धनुर्विद्या की जो निपुणता प्राप्त की है, वह एक ही प्रकार की नहीं है। इनके वल की भी कोई सीमा नहीं है। (इनका वल) आकाश से भी बड़ा है।—यों कहनेवाले देवता भी यह वोल उठे कि 'इन दोनों के युद्ध-कौशल को देखना भी असंभव है।' इससे इनका युद्ध कौशल प्रत्यक्ष प्रमाण का भी विषय नहीं वन सकता।

स्वर्णमय हार धारण करनेवाले देवता कुछ समझ नहीं पाते थे और कहते थे—'इन्होंने क्या किया है ? क्या किया है ?' फिर कहते—'इसके पूर्व ऐसा युद्ध किन्होंने किया है ?' और कहते—'भूतकाल में ही नहीं, भविष्य में भी ऐसा युद्ध कहीं नहीं होगा !' किन्तु, वे (देवता) भी यह जान नहीं पाते थे कि वे दोनों वीर किस दिशा में हैं।

तीक्ष्ण दाँतोंवाले इन्द्रजित् ने सहस्रकोटि भल्ल (नामक शर-विशेष) छोड़े। अनुजदेव (लक्ष्मण) ने सहस्रकोटि भल्लों से उनको काट दिया, इन्द्रजित् ने सहस्रकोटि नागशर प्रयुक्त किये। महिमा-संपन्न लक्ष्मण ने सहस्रकोटि नागशर छोड़कर उन्हें भी नष्ट कर दिया।

इन्द्रजित् ने अनेक कोटि भयंकर वाण छोड़े। लक्ष्मण ने कईगुना कोटि संख्या में वाण छोड़कर उन वाणों को काट दिया। अति क्रुद्ध इन्द्रजित् ने पुनः कोटि-कोटि शर चलाये। लक्ष्मण ने पुनः असंख्य वाणों से उनको काट दिया।

इन्द्रजित् ने एक करोड़ कंकपत्र (नामक शर-विशेष) प्रयुक्त किये। अनुजवीर (लक्ष्मण) ने एक कोटि कंकपत्र चलाकर उन्हें नष्ट कर दिया। लक्ष्मण ने एक कोटि अर्धचंद्र वाण चुनकर चलाये। इन्द्रजित् ने कोटि अर्धचंद्र वाणों से उनको दूर कर दिया।

इन्द्रजित् ने एक कोटि सरकंडे-जैसे नोंकवाले वाण छोड़े। लक्ष्मण ने भी एक कोटि सरकंडे-जैसे नोंकवाले वाण छोड़े। इन्द्रजित् ने पोठिया मछली के जैसे नोंकवाले एक कोटि वाण चलाये। लक्ष्मण ने भी उसी प्रकार के नोंकवाले वाण चलाकर उन्हें नष्ट कर दिया।

रावण-पुत्र ने कमल-कोरक के समान नोंकवाले एक 'पद्म' वाण छोड़कर हर्षध्वनि की। कमलनयन प्रभु के अनुज ने भी एक 'पद्म' संख्या में कमल-कोरक जैसे अग्रभागवाले वाण छोड़कर उन्हें निष्फल कर दिया।

वक्रदन्त राक्षस ने एक कोटि वज्र नामक वाण चलाये। दोष-रहित लक्ष्मण ने

एक कोटि वज्र-बाणों से उनको छितरा दिया। लक्ष्मण ने अतिवेग से त्रिशिर बाण चलाये। बलवान् इन्द्रजित् ने त्रिशिर बाणों से उनको रोक दिया।

बलवान् राक्षस ने पाँचकोटि 'अंजलिक' बाण चलाये। लक्ष्मण ने पाँच कोटि 'अंजलिक' बाणों से उनको हटा दिया। लक्ष्मण ने एक कोटि 'कुंजरकर्ण' नामक बाण चलाये। राक्षस ने एक कोटि 'कुंजरकर्ण' बाणों से उनको रोक दिया।

यों एक के बाणों को दूसरा व्यर्थ करके उन्हें सर्वत्र बिखेर देता था, जिससे संसार में सब कहीं बाण-ही-बाण भर गये। शब्दायमान समुद्र उन शरों के गिरने से उमड़ चला। किन्तु, वृषभ-समान वे दोनों वीर अधिकाधिक बढ़नेवाले क्रोध के साथ लड़ते ही रहे।

इन्द्रजित् ने हनुमान् की स्तम्भ-समान पुष्ट भुजाओं पर सहस्र बाण बरसाये। प्रलयकाल में जैसे मेघ वज्र गिराते हैं, वैसे ही एक सहस्र चार सौ बाणों को लक्ष्मण के कवच पर बरसाया।

गगन में स्थित देवों ने यह सोचकर कि 'अब राक्षस का हाथ ऊँचा हो गया है,' अपने कमल-समान मुखों को फेर लिया। देवर्षि, हनुमान् के कंधों पर से, पर्वत पर से निर्झर के समान, बहनेवाले रुधिर-प्रवाह को देखकर बोले—'युद्धकला में यह राक्षस अत्यन्त निपुण है।' और, भयग्रस्त हो गये।

युद्धकला के विशारद लक्ष्मण ने क्रोध से भरकर अनेक शत बाण चलाकर उसके रथ में जुते सिंहों को टुकड़े-टुकड़े कर गिराया। उसकी ध्वजा को काट डाला और उसके स्वर्णमय कवच में छह सौ बाण यों गड़ाये कि वे उस राक्षस की देह में चुभ गये।

कालमेघ पर जैसे सूर्य चमक रहा हो, वैसे उस राक्षस के कंधों तथा वक्ष पर लगे प्रकाशमान कवच से, जहाँ-जहाँ लक्ष्मण के बाण गड़े थे, वहाँ-वहाँ से रक्त की धाराएँ, प्रवाल-लता के समान प्रकट हुईं।

जब इन्द्रजित् के रथ के सिंह मिट गये, पताका टूट गई, सारथि मर मिटा एवं उसके कवच पर लक्ष्मण के बाण गड़ गये, तब कुछ विभ्रांत-सा होकर उसने सोचा—

यह (लक्ष्मण) वही नर है (जो भगवान् का अवतार था और नारायण का शिष्य बना था)। यदि वह नहीं, तो नारायण ही है। यदि वह भी नहीं है, तो शिव, ब्रह्मा आदि देवों की समानता करनेवाला है। हमारे नगर में कौन ऐसा है, जो दृढ धनुष धारण करनेवाले इस वीर से युद्ध कर सके?

अपने प्राण जाने पर भी युद्ध से विमुख न होनेवाला इन्द्रजित्, मुँह से आग उगलता हुआ, शरीर से रक्त बहाता हुआ, घृत पड़ने से भड़कनेवाली आग के जैसे क्रोध से भरकर पलक मारने के भीतर ही सहस्र अश्वों से जुते एक दूसरे रथ पर चढ़ गया।

इन्द्रजित् ने अनेक कोटि बाण चलाकर सारे अंतरिक्ष को भर दिया। शिवजी भी उस उग्रता को देखकर थरथरा उठे।

दोषहीन लक्ष्मण ने पंक्तियों में अनेक बाण चलाकर उसके बाणों को हटा दिया और इन्द्रजित् पर भी अनेक सहस्र बाण बरसाये।

इन्द्रजित् पर लक्ष्मण के सहस्र बाण लगे। उससे अग्नि के जैसे वह राक्षस भड़क उठा और पवित्रमूर्त्ति (लक्ष्मण) के ललाट पर एक सौ बाण चलाये।

अपने ललाट पर शत बाण लगने पर भी किंचित् भी पीडित हुए बिना लक्ष्मण ने उस क्रूर राक्षस के वक्ष में एक सौ बाण गड़ाये।

पराक्रम में जो अबतक कभी पीछे नहीं हटा था, वह इन्द्रजित् अधिकाधिक रुधिर के बह जाने से मन में किंचित् शिथिल पड़ गया और अपने धनुष को टेककर किंचित् विश्राम करता हुआ खड़ा रहा।

मारण-कृत्य में दूसरे यम के समान हनुमान् ने पदाघात से इन्द्रजित् के रथ को यों विध्वस्त कर दिया कि उसमें जुते अश्व गिरकर मर गये और उसके रत्न-खचित बड़े पहिये टूट गये।

तब इन्द्रजित् एक क्षण में एक दूसरे रत्न-खचित रथ पर चढ़ गया और पचास उज्ज्वल बाणों को लक्ष्मण की भुजाओं पर मारा।

लक्ष्मण उसके रथों को विध्वस्त करते रहे। वह एक सहस्र रथों पर चढ़ता-उतरता रहा, परन्तु कुछ युद्ध नहीं कर सका।

तब गगन में स्थित देवताओं ने लक्ष्मण को आशीर्वाद दिये। हर्षध्वनि की। पुष्प बरसाये। अपने मन की व्याकुलता से मुक्त हुए और अपने वस्त्र उछालने लगे।

तब उस इन्द्रजित् के साथ समान योग्यतावाले दस लाख राक्षस-वीर, युद्धक्षेत्र में प्रविष्ट होकर आगे बढ़ आये।

रथी, गजारूढ और अश्वारोही वे राक्षस-वीर मेघों के जैसे गरजते थे। धरती और आकाश में फैलनेवाले आकारों से युक्त थे। नगाड़ों के जैसे बोलीवाले थे।

जैसे सब दिशाओं में उमड़े मेघ गरज रहे हों—यों उनके गर्जन थे। उनके रथों की ध्वनि, विविध वाद्यों की ध्वनि और शस्त्र-प्रयोग से उत्पन्न ध्वनि गगन में भर गई।

उन राक्षसों के रथों में शरभ, सिंह, भूत, हाथी तथा मंडल गति में जानेवाले घोड़े जुते थे। उन सबके चलने से भी, शवों से पटी उस युद्धभूमि से धूलि नहीं उठी।

इन्द्रजित् अपने साथियों द्वारा लाये गये एक सिंह से जुते रथ पर आरूढ होकर सब दिशाओं में शरवर्षा करने लगा। संध्याकालिक प्रकाश से युक्त लक्ष्मण ने अपने एक बाण से ही उन सबको हटा दिया।

लक्ष्मण को घेरनेवाले राक्षसों ने जो-जो शस्त्र फेंके, चलाये या मारे, वे सब चूर-चूर होकर गिर पड़े। लक्ष्मण ने एक ही भीषण बाण से सहस्र राक्षसों के भयंकर सिरों को काट डाला।

समुद्र के समान फैली उस युद्धभूमि में आँतें सर्पाकार में पड़ी थीं। बलवान् मत्तगज पहाड़ों के समान पड़े थे। रथों के झुंड छितराये हुए थे। अनेक शस्त्रधारी राक्षस पीडित हो पड़े थे।

(राक्षसों के) कुंडल, मुक्ताहार, रत्नमालाएँ, वीर-वलय, कवच—सब प्रभंजन से विताडित होकर गगन से गिरे नक्षत्रों के समान सर्वत्र बिखरे थे।

लक्ष्मण ने अपने बाणों से क्रूर राक्षस (इन्द्रजित्) के आकार को ओझल कर दिया और उसके साथियों के सिरों के पर्वताकार ढेर लगा दिये।

लक्ष्मण जिसपर आरूढ थे, वह हनुमान् अपर यम के सदृश (राक्षसों को) अपनी पूँछ से लपेटता, उठाकर फेंकता, पैरों से रौंदता, ढकेलकर दूर फेंकता, गगन में उछालता, सम्मुख जाकर थप्पड़ लगाता, पद से मारता और घुड़की देता।

लक्ष्मण जिसपर आरूढ थे, वह मत्त हाथी जैसा हनुमान् घूरकर देखता, धमकियाँ देता, हाथियों को उठा-उठाकर फेंकता और समुद्र को पाट देता। भुजाओं पर ताल ठोककर हर्षध्वनि करता। अपने सुन्दर करों से सहस्रों रथों को पकड़कर खींचता।

वीर (लक्ष्मण) जिसपर आरूढ थे, वह सिंह-समान हनुमान्, अश्वों को, हाथियों को, करवालधारी राक्षसों को यों फूँक देता, जैसे फूल या पत्ते हों। उनको दोनों हाथों से उठाता और मसलकर पीस डालता।

वरद (लक्ष्मण) जिसपर आनन्द से आरूढ थे, वह अश्व-समान हनुमान्, रस्सियों के स्थान में सर्पों से लिपटे बड़े पहियोंवाले रथों को आपस में ऐसे टकराता कि क्षणकाल में एक सहस्र रथ विध्वस्त होकर गिर जाते।

उस समय, जैसे विष से पीडित व्यक्ति ओषधि खाकर स्वस्थ हो उठा हो, वैसे ही पहले (इन्द्रजित् के) बाणों से मूर्च्छित होकर गिरे हुए सब वानर उठ बैठे।

मूर्च्छा से उठे वे वानर अग्निमय आँखों से देखकर अधिकाधिक संख्या में उमड़-कर आये और लक्ष्मण का साथ देने लगे और असंख्य रूप में वृक्षों, शैलों और अन्य आयुधों को चलाने लगे।

उन वृक्षों और शैलों से आहत होकर रथ यों विध्वस्त होकर गिरे थे कि लगता था, मानों रथ बनानेवाले के आँगन में अभी अधूरे बने हुए रथों के विभिन्न अंग बिखरे पड़े हों।

अंगद एक बड़े पेड़ को उठाकर इन्द्रजित् के सामने आया और बोला—'यह तेरे प्राण लेनेवाला है, अपने प्राण बचा ले', और उसे बल लगाकर फेंका।

देखनेवाले कह उठे—'यह वृक्ष अनुचित कार्य करनेवाले राक्षस (इन्द्रजित्) को मिटा देगा।' उस वृक्ष ने एक क्षण में देवों के आवास को मिटानेवाले इन्द्रजित् के रथ को विध्वस्त कर दिया।

तब देवता यह सोचकर आनन्दित हुए कि पूर्वकाल में इन्द्र ने इससे जो अपमान पाया था, वह सब आज मिट गया।

तब इन्द्रजित् अपने टूटे हुए रथ से गगन में उछल गया और क्षण-भर में एक दूसरे रथ पर आरूढ हो गया। फिर, अंगद से यह कहता हुआ कि 'मत हट, ठहर', क्रुद्ध हो, बाण बरसाता हुआ आया।

इन्द्र के पौत्र अंगद को देखकर उस राक्षस ने कहा—'तू अपने प्यारे प्राण देकर जा', और उसके निकट आ पहुँचा। तब सब वानर-वीरों ने उस (इन्द्रजित्) को घेर लिया।

वानरों ने वृक्षों, शैलों और मृत राक्षसों के सिरों, विध्वस्त रथों, अश्वों,

हाथियों और सिंहों को दोनों हाथों से उठा-उठाकर उस (इन्द्रजित्) के बाणों से भी अधिक वेग से फेंका।

उस समय, महलों के जीवन, राजसी भोग एवं निद्रा को त्यागकर रहनेवाले लक्ष्मण ने अतिक्रूर दस लाख राक्षस-वीरों को क्षण-काल में मिटा दिया।

अहंकार एवं क्रूरता से भरा इन्द्रजित्, अपने साथियों को, हाथियों को एवं अश्वों को मिटते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर अग्नि के समान भड़क उठा।

इन्द्रजित् ने देखा—रुधिर-समुद्र बड़ा शब्द करता हुआ बड़ी शवराशियों को बहाकर ले जा रहा है। उसका रथ भी उस प्रवाह में बहने लगा, लेकिन उसके रथ-रक्षक (महापार्श्व और धूम्राक्ष) उसे बचाये खड़े रहे।

शव-राशियाँ गगन तक उठी थीं, जिनसे मेघों का मार्ग भी रुक गया था। अंधकार को मिटानेवाले सूर्य का रथ भी नहीं जा पाता था। राक्षस-वीर आगे न बढ़ सकने के कारण वैसे ही खड़े थे।

इन्द्रजित् ने अपने दोनों ओर स्थित राक्षसों (अर्थात्, धूम्राक्ष और महापार्श्व) को देखकर कहा—इस एकाकी धनुर्धारी ने हमारी चालीस 'समुद्र' सेना को विध्वस्त कर डाला। अहो! इसका कैसा पराक्रम है!

तब उन दोनों साथियों ने कहा—हे उत्तम! तुमने भी युद्ध में अपने बाणों से चालीस 'समुद्र' सेना को निहत किया है। तुम्हारा युद्ध भी उस (लक्ष्मण) के युद्ध के समान ही है।

इतने में वे दोनों (इन्द्रजित् और लक्ष्मण) पुनः युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। हनुमान् पर आरूढ होकर संध्याकालिक गगन के समान लक्ष्मण ने असंख्य बाण चलाये। देवों को जीतनेवाले इन्द्रजित् ने उन सबको अपने बाणों से काट दिया।

इन्द्रजित्, छह, सात, पचास, साठ, सौ, सहस्र बाण चलाकर पराक्रम से लड़ते हुए वानर-वीरों को मूर्च्छित कर देता और मूर्च्छा से उठकर युद्ध करनेवालों को विशाल धरती पर गिरा देता।

सूर्यपुत्र (सुग्रीव) आदि वानर-वीर रुधिर की धारा में बहकर दूर चले गये। तब लक्ष्मण ने अपने सम्मुख स्थित इन्द्रजित् पर अग्निमय बाण बरसाकर उसे शिथिल कर दिया।

जब इन्द्रजित् पीडित होकर शिथिल हो गया, तब उसके पार्श्वों में स्थित दोनों राक्षस-वीरों (धूम्राक्ष और महापार्श्व) ने उत्साह के साथ युद्ध छेड़ दिया। तब रामचन्द्र के अनुज ने असंख्य राक्षसों को निहत करनेवाले बाण छोड़े।

(लक्ष्मण के द्वारा) चुन-चुनकर प्रयुक्त किये गये उन बाणों से रथ, सूंड़वाले हाथी, अश्व सब निहत होकर गिरे। वे दोनों वीर (धूम्राक्ष और महापार्श्व) अकेले ही युद्धक्षेत्र में खड़े रहे। राक्षस नामधारी और कोई व्यक्ति वहाँ नहीं रहा।

जो राक्षस प्राण लेकर भागे, उनमें कुछ जल की प्यास से मरे, कुछ जल पीकर मरे, कुछ उनके बड़े-बड़े घावों में उस जल के उमड़ आने से मरे।

कुछ राक्षस, जिनका शरीर बड़े क्षतों से भिद गया था; बिना मरे ही अपनी

लाल केशोंवाली, सेवारत पत्नियों के पास जाकर उन्हें आलिंगन करके उनके प्राणों को भी साथ लेकर वीर-स्वर्ग में जा पहुँचे।

अग्निमय बाणों से अपने वक्ष में आहत होकर कुछ राक्षस अपने गृहों में जा घुसते। वहाँ अपने बंधुजन को देखकर कहते कि 'हमारी संतान की ठीक-ठीक रक्षा करना', और अपनी संतान का मुँह प्रेम से देखकर, उनके प्राणों को ले जाने के लिए आये हुए यम को क्रोध के साथ देखते हुए निष्प्राण हो गिर पड़ते।

कुछ राक्षस अपने बंधुजन को यह परामर्श देने के पश्चात् अपने प्राण छोड़ते कि कमलनयन राम के अनुज का पराक्रम ऐसा है कि इस लंका का विनाश निश्चित है। इन्द्रजित् के मरने के पूर्व ही तुम लोग वनों और पर्वतों में भागकर छिप जाओ।

कुछ राक्षसों के पर्वताकार शरीरों में लक्ष्मण के बाण उनके मांस को चीरते हुए मर्मस्थान में घुसे थे। वे यह सोचकर कि इनके निकलने पर हमारे प्राण भी निकल जायेंगे, उन्हें निकालते नहीं थे। किन्तु, वे मूर्च्छित हो जाते और मौनव्रतधारी संत के समान निःश्वास भरते पड़े रहते।

कुछ राक्षस, रथों पर न जाते। अश्वों पर न जाते। लाल नेत्रोंवाले मेघ-समान गजों पर न जाते। अपने पवन-वेगवाले पैरों से नहीं जाते। लज्जा के कारण लंका में भी नहीं जाते। युद्धक्षेत्र से अन्यत्र भी नहीं जाते। किन्तु, अपने प्राणों के मोह से वहीं एक कोने में छिपे पड़े रहते।

जिस स्थान पर पहले बरसा हो चुकी हो, उसी स्थान पर पुनः बरसनेवाले मेघ के समान लक्ष्मण, यह सोचकर कि अब शीघ्र ही इस (इन्द्रजित्) को मार डालना चाहिए, क्रोध-भरे यम के समान, अपने भीषण बाण चलाकर उस (इन्द्रजित्) के कवच को तोड़ डाला।

कवच के टूटने पर अपने अरक्षित शरीर में शर की चोट खाकर इन्द्रजित मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसके प्रज्ञा पाकर उठने के पूर्व ही, धूम्राक्ष और महापार्श्व दोनों ध्वजा से युक्त तथा अश्व से जुते रथ पर सवार होकर इस विचार से वेग के साथ आगे बढ़े कि हम शीघ्र इस (लक्ष्मण) के प्राण हरण कर लेंगे।

वे दोनों वीर हनुमान् पर तथा लक्ष्मण पर अग्निमय बाण बरसाते हुए आये। लक्ष्मण ने उनके रथ के अश्वों को तथा उसकी धुरी को अपने बाणों से विध्वस्त कर दिया। फिर, उसके सारथि को भी मार डाला।

उन दोनों वीरों के धनुष भी टूट गये। तब उन्होंने क्षण-भर में लौह-गदा लेकर वज्र के समान आगे बढ़कर हनुमान् पर आघात किया, जिससे चिनगारियाँ निकल पड़ीं। हनुमान् ने अपने बलिष्ठ हाथों से उनकी गदाओं को छीन लिया।

तब वे दोनों यह सोचकर भयग्रस्त हुए कि अब यह (हनुमान्) इन गदाओं से हमें ही मार डालेगा और अपने अन्नदाता की भी चिंता न करके अपने प्राणों की रक्षा करने लगे (अर्थात्, भाग गये)।

उस समय शीतल पवन का स्पर्श पाकर मूर्च्छित हुए वानर प्रज्ञा पाकर उठे;

क्योंकि उनकी मृत्यु का समय नहीं आया था। यम के आने के भी कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़े। वे अधिक उत्साह से भरकर उठे।

अंगद, कुमुद, नील, जाम्बवान्, सूर्यकुमार (सुग्रीव), मैन्द, उसका भाई द्विविद, शतवली, पनस आदि सिंह-समान वानर-वीर, देवों के जयकार करते हुए, शैलों को उठाये, मेघों के समान गरजते हुए आये।

उन सब वीरों ने वज्र-समान उन पर्वतों को एक साथ फेंका। अबतक इन्द्रजित् मूर्च्छा त्यागकर उठ गया था। उसने यह कहते हुए कि 'अहो! इनका युद्ध-कौशल इतना ही है।' हँसते हुए बाण चलाकर (उन पर्वतों को) चूर-चूर कर डाला।

वानर पुनः वृक्ष, शैल आदि बरसाने लगे। इसी समय सूर्य, मानों यह देखकर कि इन्द्रजित् एकाकी ही युद्धक्षेत्र में धनुष लेकर खड़ा है, अतः उसपर दया करके अस्तंगत हुआ।

सब दिशाएँ इस प्रकार अंधकार से ग्रस्त हो गईं, जिस प्रकार उस अज्ञ का हृदय होता है, जो यह नहीं जानता कि चारों वेद, स्मृति, धर्मशास्त्र, यज्ञ, सत्य, दिव्य स्वभाव से युक्त ब्राह्मणों के द्वारा इच्छित महान् फल—ये सब चक्रधारी भगवान् विष्णु ही हैं।

तब विभीषण ने लक्ष्मण से कहा—'सर्प के समान क्रोध करनेवाले हे उत्तम! यदि तुम एक घड़ी के चतुर्थ भाग के भीतर ही इसे मारो, तभी यह मरेगा। यदि वैसा न हो, तो रात्रिकाल आ जायगा, जब राक्षसों की माया बढ़ जाती है। तब यह (इन्द्रजित्) गगन में अदृश्य हो जायगा। फिर, यह विजयी हो जायगा।'

तब, अपने ऊपर तथा हनुमान् आदि वीरों के ऊपर शर बरसानेवाले राक्षस को मारने का संकल्प करके लक्ष्मण ने उस राक्षस के सुन्दर रथ को दिव्य प्रभाव से युक्त बाण से विध्वस्त कर दिया।

इसके पहले ही कि उसका रथ धरती पर गिरे, इन्द्रजित् झट आकाश में उड़ गया और यह विचार किया कि 'अब मैं इस (लक्ष्मण) को नागपाश से बाँध लूँगा और उस पाश से पीडित होकर यह निष्प्राण हो जायगा। वह यह गर्व नहीं कर सकेगा कि उसने बाण से मुझपर विजय पाई।

तब देवता यह सोचकर भागे कि 'स्वर्णमय देहवाले (लक्ष्मण) से युद्ध करनेवाला यह राक्षस, जो प्रशंसनीय पराक्रम से युक्त है, गगन में छिपा है। न जाने अब क्या परिणाम होगा!

हाथ में धनुष, पीठ पर तूणीर और सहज उमड़नेवाली क्रोधाग्नि से युक्त एवं निःश्वास भरनेवाला वह इन्द्रजित्, जो माया से धनी था, अंधकार में ओझल होकर मेघों के ऊपर जाने लगा।

नीलरत्न-समान देहवाला इन्द्रजित्, पूर्वकृत अक्षीण तप के प्रभाव से, अज्ञान को मिटानेवाले ब्रह्मा आदि देवों के वर-प्रभाव से एवं राक्षस-जाति के योग्य माया-बल से अणु के जैसे सूक्ष्म आकारवाला हो गया।

कमलभव ब्रह्मा हो, (सिर पर) चंद्र को धारण करनेवाले शिव हो, या चक्रधारी

विष्णु हो, किसी को भी भुजाओं को कसकर बाँधकर गिरा देनेवाले नागास्त्र का उसने ध्यान किया।

तब वानर, जो इन्द्रजित् के माया-कृत्य से अनभिज्ञ थे, यह कहकर हर्षध्वनि कर उठे कि युद्ध से डरकर इन्द्रजित् भाग गया है। राम के अनुज (लक्ष्मण) भी वैसा विचार करके मंदहास कर उठे।

क्या घटित होनेवाला है, इसे न जानते हुए लक्ष्मण हनुमान् के कंधों से उतर पड़े। अपने धनुष को अंगद के हाथ में दिया और अपने वक्ष पर फँसे वाणों को निकालकर विश्राम करने लगे।

इसी समय इन्द्रजित् ने क्रूर नागास्त्र का प्रयोग किया। वह अस्त्र दसों दिशाओं के लोगों को भयभीत कर भगाता हुआ जाकर लक्ष्मण की पर्वत के समान पुष्ट एवं दृढ भुजाओं से लिपट गया।

सब प्राणियों के एक साथ सामना करते रहने पर भी जो लक्ष्मण विचलित नहीं होते थे, अब हठात् ही नागास्त्र से बँध गये और कुछ न समझकर शिथिलबल हो कभी युद्धभूमि को और कभी आकाश की ओर देखते हुए पड़े रहे।

वायुपुत्र हनुमान् उग्र होकर यह कहता हुआ कि मैं गगन में उड़कर उस छली राक्षस को क्षण-भर में पकड़ लाऊँगा, ऊपर उठने लगा। तभी वह नागास्त्र उसके कंधों पर भी यों फैल गया, जैसे पूर्वकाल में वाली की पूँछ रावण की भुजाओं में लिपट गई थी।

उस नागास्त्र से निकले करवाल-जैसे दाँतवाले सर्प सब वानरों को घेरने लगे। वज्रस्तंभ एवं पर्वत की समता करनेवाले बड़े-बड़े दृढ हाथों पर यों लिपट गये कि उन्हें देखने से ऐसा लगा, मानों वे हाथ टूट ही गये हों।

नागास्त्र से बँधे वानर-वीर ऐसे उछलते थे, मानों पर्वत उछले हों। वे फिर गिरते, लोटते, सिर उठाते, गगन को देखकर आँखों से चिनगारियाँ निकालते, अपनी लहराती पूँछों को धरती पर पटकते, ओंठ चबाते और पौरुषवान् प्रभु के अनुज को देखकर दुःखी होकर सोचते 'हाय! इनकी भी हमारी जैसी दशा हो गई!'

विभीषण के मुँह को देखकर पूछते—'क्या इससे मुक्ति पाने का कोई उपाय है?' अंधकार पर क्रोध करते। 'हमारे सम्मुख क्या इनको यों शिथिल होना चाहिए', यों सोचकर लक्ष्मण की भुजाओं की ओर देखकर हँसते; गिर पड़ते। तब भी वे भय-रहित थे।

अब इस संकट को कौन दूर करेगा? हनुमान् भी तो इसी में पड़ा है—यों कहकर रोते। लक्ष्मण को देखकर कहते—'हमारी यह कैसी दशा हुई है?' फिर कहते—'प्रभु रामचन्द्र के अनुज की इस दशा को हम कैसे सहेंगे?'

उस समय की घटनाओं का विस्तृत वर्णन करने से क्या प्रयोजन है? अत्यन्त बलशाली इन्द्रजित् गगन से विद्युत्-समान बाण चला रहा था। स्वर्णमय अग्रभागवाले वे बाण वज्र के समान गिरते थे और वक्ष पर से पीठ में और पीठ पर से वक्ष में निकल आते थे।

चक्कर काटकर बहनेवाले प्रभंजन से जिस प्रकार पर्वत पर की घटाएँ अस्त-व्यस्त

हो जाती हैं, वैसे ही शिरोच्छेदन में समर्थ बाणों से आहत होकर वानरसेना स्थिर न रह सकी और गिर पड़ी।

हनुमान् की आँखों से क्रोध की ज्वालाएँ निकल रही थीं। सहस्र कोटि से भी अधिक बाण उसकी देह में चुभे थे, तो भी वह किंचित् भी पीडित नहीं हुआ। किन्तु, प्रभु के अनुज को पीडित देखकर वह अत्यन्त दुःखी हुआ।

अन्य वानर-वीरों की देहों में सौ से अधिक वज्रमय बाण लगे थे, जिससे रुधिर की धाराएँ बह रही थीं। असंख्य बाणों से आहत होकर भी अंगद अशिथिल पड़ा था।

सूर्यपुत्र, सामने से शरों के लगने पर भी यौवन के बल से भरा था। आँखों से चिनगारियाँ उगल रहा था। उसकी देह और मन में ऐसी ज्वाला थी, जैसे बड़े बाँसों के वन में दावाग्नि की ज्वाला हो। रुधिर से सना हुआ वह उदित होनेवाले अपने पिता (सूर्य) के समान ही लगता था।

अपनी समता न रखनेवाले लक्ष्मण, कठोर नागपाश से बँधकर असंख्य तीक्ष्ण बाणों से विद्ध देह के साथ पीडित हो (उससे मुक्त होने का) ज्ञान रखते हुए भी ऐसे ही पड़े थे, जैसे मनुष्य संसार के बंधन से मुक्ति पाने की शक्ति रखते हुए भी उसी में पड़े रहते हैं।

लक्ष्मण की देह पर बाण किरणों के जैसे थे। धीरे-धीरे बहनेवाला रुधिर आतप के समान था। उसकी कांति से चारों ओर का अंधकार फट रहा था। उनका रूप ऐसा लगता था, मानों सूर्य ही देवलोक से फिसलकर नीचे गिर गया हो।

रामानुज मूर्च्छित पड़े थे। अन्य सब वीर भी धरती पर पड़े थे। गगन में छिपा इन्द्रजित् लक्ष्मण के द्वारा प्रयुक्त शरों से पीडित हो रक्त उगलता हुआ यों सोचने लगा—

मैंने जो प्रण किया था, वह पूर्ण हुआ। मैं अपने को किंचित् स्वस्थ करके कल शेष कार्य पूरा करूँगा। इस नर का जीवन आज से समाप्त हो गया। वानरसेना मिट गई। और, इस प्रकार वह इन्द्रजित् दोनों ओर मंगल-वाद्यों के बजते हुए रावण के प्रासाद में जा पहुँचा।

घनी शरवर्षा करनेवाले लक्ष्मण नामक सद्गुण-भरित मेघ को गिराकर अब वह (इन्द्रजित्), कंचुक के बंधन की भी उपेक्षाकर उभरनेवाले स्तन-भार से युक्त मंदहास करनेवाली रमणियों के कटाक्ष-रूपी बाणों का लक्ष्य बन रहा था, जैसे अब भी वह युद्ध से विरत नहीं हुआ हो।

दीपहीन स्वर्गलोक की स्त्रियाँ रत्नखचित स्वर्णदीप लेकर तथा सर्पफन-समान नितंबवाली अन्य दस कोटि सुन्दरियाँ यश के गीत गाती हुई चलीं। राक्षस-स्त्रियाँ उसका मंगल मनाती चलीं।

इन्द्रजित् अपने पिता के निकट गया और उस दिन युद्धक्षेत्र में घटी सब घटनाओं को कह सुनाया। फिर, यह कहकर कि हे पिता! चिन्तामुक्त हो जाओ। मैं बहुत थक गया हूँ। शीघ्र विश्राम करके फिर कल का विचार करूँगा। अपने निवास में जा पहुँचा।

इधर विभीषण लक्ष्मण के संकट को देखकर मथानी से मथे गये दही के समान

व्याकुलचित्त होकर यह सोच रहा था कि शत्रुपक्ष के उस (इन्द्रजित्) ने मुझे नहीं मारा इस दयनीय दशा में भी मैं जीवित हूँ। मेरा हृदय कितना कठोर है और दुःख से उद्विग्न होकर धरती पर गिर पड़ा।

राम के अनुज को नागपाश से बँधे देखकर प्रेम के कारण सब वानर गिर पड़े। केवल मैं सप्राण पड़ा हूँ। लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे? यों सुरभित पुष्पमालाधारी वह विभीषण फूट-फूटकर रो पड़ा।

लोग यही कहेंगे कि सज्जन के जैसे साथ रहकर मैंने (लक्ष्मण को) युद्ध में मरवा दिया! या, यह कहेंगे कि अपने पुत्र (इन्द्रजित्) को विजयी होने दिया, या यह कहेंगे कि ऐसा बदला लेने के लिए ही मैंने अबतक बड़ी विनम्रता का व्यवहार किया! प्रेमयुक्त संसार के लोग अपनी-अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार विविध वचन कहेंगे।

जब उस (इन्द्रजित्) ने युद्ध छेड़ा; तभी मैंने अपनी गदा से उसके रथ को नष्ट करके अपने मन की वीरता को प्रकट नहीं किया। उससे मैं निहत भी नहीं हुआ। अब शिथिल हो पड़ा हूँ। मैं किसका बंधु होने योग्य हूँ? हाय! मैं डूब गया।

जब युद्ध में शत्रुओं से लड़कर वानर-वीर मरे, उसी समय मैं भी नहीं मरा, या जीवित रहकर अपने मनोभाव को हथेली के आँवले के समान स्पष्ट नहीं दिखाया। मैं उनका विरोधी बना। इनकी शरण में आकर भी मैं इनका अहितकारी बना। मैं दोनों ओर जलनेवाली उल्का के समान हूँ।

विभीषण को इस प्रकार के वचन कहकर विकल हो रोते देखकर अनल नामक राक्षस ने (जो विभीषण के संग राम की शरण में आया था) कहा—ऐसे अनेक उपाय हैं, जो इस संकट से मुक्ति दे सकते हैं। तुम भी कैसे अज्ञों के जैसे शिथिलचित्त हो रहे हो? स्वस्थ होओ। फिर उसने कहा—

तुम यहीं पर विश्राम करते रहो। मैं प्रभु से सब बात कहूँगा। फिर, अनल चला गया और साकार पुण्यरूप रामचन्द्र के चरणों को नमस्कार करके सब घटित वृत्तांत कहे। उसे सुनकर सहस्रनाम (विष्णु के अवतारभूत राम) भी दुःख-सागर में डूब गये।

रामचन्द्र दुःख से अश्रु बहाते हुए मूर्च्छित हो गये। फिर, कुछ कहे विना और अश्रु बहाये विना, कुछ देखे विना, क्रोधाधिक्य से सब लोकों को मिटाने का विचार किये विना, खुलकर रोये विना स्थिर रहे और मूर्च्छा से जगकर यही समझते रहे कि अभी लक्ष्मण जीवित है।

फिर, दुःख में निमग्न प्रभु ने सोचा—यों यहाँ बैठे रहने से कुछ नहीं होगा। फिर, झट उठ खड़े हुए और अतिवेग से उस युद्धभूमि में जा पहुँचे, जहाँ रुधिर का प्रवाह लाल हो बह रहा था।

रात्रि का अंधकार इस प्रकार फैला हुआ था, मानो (समुद्र में) उतरकर जल-पीकर ऊपर उठनेवाले मेघों से तरंगायमान समुद्र तथा नीलवर्ण की अन्य सब वस्तुओं को एक साथ निचोड़कर, उसी रात को उचित समय मानकर, उस कालिमा की बाढ़ को बरसाया जा रहा हो।

इस प्रकार घना अंधकार फैला था। उसे मिटाने के लिए सहस्रनाम प्रभु ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया, तो उस युद्धभूमि का प्रदेश यों प्रकाशित हो उठा, ज्यों सूर्य गगन के मध्य पहुँच गया हो।

राम ने देखा कि शस्त्रों से आहत शवों की राशियाँ पर्वतों के समान पड़ी हैं। बीच-बीच में रुधिर का तरंगायमान समुद्र भी फैला है। वह दृश्य ऐसा था, मानों गजचर्मधारी शिवजी, प्रलयकाल में सब प्राणियों को एक साथ मिटा रहे हों और समुद्र उमड़कर फैल गया हो।

उस दुर्गन्ध-भरी युद्धभूमि में, जो दुर्गा देवी का निवास थी, शवराशियों, रुधिर-धाराओं, शवों से भरे कीचड़ एवं शस्त्रराशियों के बीच में से होकर अर्धक्षण में रामचंद्र अपने भाई के निकट जा पहुँचे।

रामचंद्र लक्ष्मण की देह पर गिरे। अपने वक्ष से लगाते हुए उसका आलिंगन किया। आह भरकर, आँखों से अश्रु बहाते हुए, ऐसे दिखाई पड़े, जैसे कोई काला मेघ वर्षा की बूँदों से व्याप्त आकाश के मध्य सूर्य के निकट पहुँच गया हो।

जन्म लेकर भी वास्तव में जो जन्मरहित भगवान् थे, वे राम, शोकमग्न होते; उष्ण निःश्वास भरते, विकलप्राण होते, प्रज्ञा खोकर मूर्च्छित होते, कर्त्तव्यविमूढ होकर 'हा लक्ष्मण !' कहकर बार-बार पुकारते। (लक्ष्मण की) नासिका एवं मुँह पर अपना हाथ रखकर चिंतित होकर कहते—'क्या यह जी उठेगा ?'

रामचंद्र अपने कमल-समान करों से (लक्ष्मण के) चरणों को सहलाते। (लक्ष्मण की) जाँघ पर थपथपाते। पवित्र कमल-समान (लक्ष्मण की) आँखों को खोलकर देखते। वक्ष पर हाथ रखते और धड़कन के शब्द सुनकर प्रसन्न होते। गगन की ओर देखते। लक्ष्मण को उठाकर अपने वक्ष से लगाते। फिर, धरती पर लिटाते। 'क्या माया-कृत्य करने में निपुण इन्द्रजित् चला गया ?'—यों कहते।

अपना उपमान स्वयं ही बननेवाले कंधों से युक्त प्रभु, अपने धनुष को देखते। नागपाश के बंधनों को देखते। प्रभात न होनेवाली रात को देखते। गगन के देवताओं को देखते। 'धरती को उखाड़ दूँ', कहते। प्रवाल-समान ओंठ चबाते। विज्ञ लोगों के कथनों का स्मरण करते। (अंतिम वाक्य का यह भाव है—विज्ञों ने कहा है कि धर्म की विजय होगी। किन्तु, अब धर्म की पराजय-सी होती दिखाई पड़ रही है, इसी का विचार करते)।

प्रमाणों से परे रहनेवाले प्रभु नीचे गिरे वानर-वीरों को देखते। नियति के बारे में सोचते। वीरता के योग्य धनुष को निष्प्रयोजन होते देखते। अपने बाणों को देखते। 'इस धरती पर मेरे समान दीन और कौन है ?'—यों कहते। 'हाय ! मुझे ये कैसे संकट प्राप्त हुए,' कहते।

फिर, विभीषण की ओर देखकर बोले—लंकेश के पुत्र और लक्ष्मण में जो बड़ा युद्ध हुआ, उसकी सूचना तुमने मुझे नहीं दी और इस नागपाश का प्रयोग करनेवाले उस राक्षस के सिर और हाथों को काटने से तुमने मुझे वंचित कर दिया। हे विभीषण ! तुमने मेरा सत्यानाश कर दिया।'

रामचन्द्र के ये वचन सुनकर विभीषण व्याकुलचित्त होकर बोले—हमने पहले यह नहीं सोचा था कि इस युद्ध में इन्द्रजित् स्वयं ही चला आयगा। उसके आने पर मैं यही सोच रहा था कि उसकी पराजय होगी। किन्तु, छल से ऐसा हो गया है। यह दिव्य प्रभाववाले नागशस्त्र का परिणाम है।

अतिकाय का वध करने के पश्चात् लक्ष्मण ने यह सोचा कि अब लंकेश स्वयं आयगा और वे युद्धभूमि में डटे रहे। तब रावण का पुत्र चालीस समुद्र सेना के साथ यहाँ आया।

इन्द्रजित् सहस्र सिंह से जुते हुए रथ पर आया और शरवर्षा करके हमारी सेना की चालीस समुद्र सेना को मिटा दिया तथा वानर-सेनापतियों को धरती पर गिरा दिया। फिर, पौरुषवान् लक्ष्मण से युद्ध करने लगा।

हनुमान् पर आरूढ होकर लक्ष्मण ने उसके सहस्र रथों को मिटा दिया। उसकी चालीस समुद्र सेना को यों मिटा दिया, जैसे सूर्य के सम्मुख ओस हो। उसके वक्ष पर असंख्य शर चलाकर उसे विकल कर दिया।

तब सेना के निहत होने पर इन्द्रजित, शर के क्षतों से रक्त व[illegible] प्रक[illegible]हुआ, चिन्तित हो एकाकी खड़ा रहा। तब मैंने लक्ष्मण से कहा कि यदि यह [illegible]यगा, तो बड़ी माया करेगा। तभी सूर्य अस्त हो गया।

सारे संसार में अंधकार फैल गया, जो माया-कृत्य के अनुकूल था। शरों से पीडित इन्द्रजित् गगन में अदृश्य हो गया और अपने वरों के बल से नागास्त्र का प्रयोग कर सबको गिरा दिया—यों कहकर विभीषण आँखों से आँसू बहाता हुआ खड़ा रहा।

विभीषण ने पुनः नमस्कार करके राम से कहा—हे मेरे प्रभु! इनमें से किसी के प्राण नहीं गये हैं। जब नागपाश छूट जायगा, तब सब लोग उठ बैठेंगे। क्या ये क्षुद्र शरों के आघात से मरनेवाले हैं? नहीं; रोने से क्या प्रयोजन? दुःखी मत हो! पाप कभी धर्म को नहीं जीत सकता।

तब राम ने प्रश्न किया—इस पाश को किस देवता ने दिया? इसका प्रभाव क्या है? इससे छूटने का क्या उपाय है? जितना तुम जानते हो, सब कहो। तब महान् विभीषण ने कहा—हे दोषरहित! मैं सब बताऊँगा।

हे चक्रधारी सुन्दर पुरुष! पूर्वकाल में इस सृष्टि के कर्त्ता ब्रह्मा के यज्ञकुण्ड से यह उत्पन्न हुआ। शिव ने (ब्रह्मा से) इसे प्राप्त किया था। फिर, तपस्वी इन्द्रजित् के माँगने से उन्होंने उसे दिया था। यह सत्य है कि वह नागास्त्र प्रलयकालिक वज्र के समान प्रभाव से युक्त है।

सहस्रनेत्र (इन्द्र) की भुजाएँ इसी अस्त्र से बाँधी गई थीं। जब हनुमान् लंका में आया था, तब उसकी भुजाएँ भी इसी से बाँधी गई थीं। देवता स्वर्गवास की प्रतिष्ठा खो बैठते थे, तो वह इसी के प्रभाव से। अतः, और कुछ कहना व्यर्थ है।

हे मधुस्रावी तुलसी-माला से भूषित सुन्दर! यह नागास्त्र जब स्वयं छूटे, तभी छूटता है। ब्रह्मा प्रभृति सब देवों के प्रयत्न से भी यह नहीं छूटेगा। इस लोक के वासियों

के बारे में कुछ कहने से क्या प्रयोजन ? जब शरीर मिट जायगा और प्राण छूट जायेंगे, तभी यह छूटेगा।

देवों के दुःख को दूर करने के लिए शुभावतार लेनेवाले प्रभु ने विभीषण से कहा—क्या मैं उन देवों से युद्ध करूँ, जिन्होंने यह नागास्त्र उसे दिया, या सब लोकों को जलाकर भस्म कर दूँ, या लंका पर आक्रमण करके सब निवासियों को एक साथ मिटा दूँ ? इस समय कौन-सा कार्य उचित होगा ?—बताओ।

यदि इन्द्रजित् को यह अस्त्र देनेवाला देव स्वयं आकर मुझपर करुणा करे, तो उसे मैं स्वीकार करूँगा। यदि वैसा न करे, तो त्रिलोक की शक्ति को शिव के एक बाण से जलनेवाले त्रिपुरों के समान जलाकर भस्म कर दूँगा।

हे लंकेश के भाई ! यदि मेरा अनुज मर जाय, तो फिर मुझे अपने यश की क्या परवाह है ? अपवाद का क्या डर है ? धर्म या अधर्म है, इसकी चिंता ही क्या है ? विचार करके देखो। क्या ऊपर के निवासी तथा इस लोक के निवासी मेरे लिए इन वकीलों से भी बड़े हैं, जो मेरे लिए सर्वस्व अर्पित कर रहे हैं ?

अपने अनुज तथा साथियों पर अपार प्रेम रखनेवाले प्रभु ने फिर कहा—एक ने पाप किया भरो उसके लिए सब लोकों को मिटाना उचित नहीं है, और दुःखी होकर खड़े-खड़े आह भरने लगे।

वेद-रूपी अंकुश से दबे रहनेवाले दो सूँड़ोंवाले हाथी के जैसे प्रभु पुनः लक्ष्मण के निकट आकर उसके नागपाश को ध्यान से देखा और बोले यदि यह अस्त्र लक्ष्मण को निर्जीव कर देगा, तो मैं भी प्राण त्याग करूँगा।

राम की ऐसी दशा को देखकर गगन के देवता भय से काँपते हुए सोचने लगे कि न जाने अब क्या होगा ? तब उनके निकट स्थित महिमामय गरुड भगवान् रामचन्द्र पर अपनी भक्ति से व्याकुल होकर, अंधकार में धीरे-धीरे आकर प्रकट हुआ।

कभी विचलित न होनेवाला राम का चित्त लक्ष्मण के बंधन को देखकर विचलित हुआ, तो उससे उस (गरुड) का मन भी अत्यन्त दुःखी हुआ। उसे यह अच्छा न लगा कि राम का मन दुराचारी रावणादि के अतिरिक्त अन्य लोगों पर भी निष्करुण हो जाय। अतः, वह अपनी कांति से संसार को प्रकाशमान करता हुआ, अपने वेग से महामेरु को भी कँपाता हुआ, अपने विशाल पंखों से ऐसा प्रभंजन उत्पन्न करता हुआ कि दिग्गज भी एक बार पलकें बंद कर लें, नीचे आया।

रामचन्द्र को दुःखों की अधिकता से पीडित होते देखकर, वह (गरुड) करोड़ों 'खात' दूर से ही देख सकनेवाली अपनी आँखों से आँसू बहाने लगा। वह आया, तो शीतल तरंगोंवाला समुद्र विक्षुब्ध हो उठा। संसार का अंधकार हट गया। उसके पंखों से वेदस्वर सुनाई पड़े। नागास्त्र का बंधन ढीला पड़ गया।

विशाल दिशाओं में ऐसी निरंतर ज्योति फैली कि अंधकार कहीं नहीं रहा। लगता था, सूर्य का ही प्रकाश सर्वत्र फैला हो। उसके कंठ की कांति से चाँदनी का प्रकाश सर्वत्र फैल गया। उसका मुकुट मेरु-पर्वत पर शोभायमान सूर्य से भी तिगुना शोभित हुआ।

उसके कंठ पर शोभायमान रत्नहार तथा शीतल पुष्पहार, उसके पंखों के वेग से अपनी कांति के साथ उसके वक्ष पर कभी लगते और कभी नहीं लगते हुए हिल रहे थे। वह दृश्य ऐसा लगता था, मानों विद्युत् से युक्त कोई पर्वत ही उड़ता आ रहा हो, या सूर्य ही दक्षिण में उदित होकर उत्तर की ओर आ रहा हो।

(उसके शरीर पर) सर्पों के फनों से प्राप्त असंख्य माणिक्यों के बने अनेक आभरण विद्युत् से बने-जैसे दिखाई देते थे, जिनसे सूर्य का-सा प्रकाश फैल रहा था। यों गरुड आकर, दीर्घकालिक वियोग को मिटाता हुआ राम के प्रति नमस्कार करके खड़ा रहा।

वह सिर पर हाथ जोड़े हुए था। कालमेघ से भी अधिक नील प्रभु के चरणों पर नमस्कार करके वह अत्यन्त दुःख प्रकट करने लगा। वह (विष्णु) भगवान् की ध्वजा पर रहकर चौदहों लोकों के निवासियों के नमस्कार प्राप्त करता था, अब उसे छोड़कर धरती पर आकर खड़ा हुआ।

गरुड ने राम से कहा—(आदिशेष का) वास्तविक रूप छिपाकर जो (लक्ष्मण के रूप में) अवतरित हुआ है, उसके वियोग से दुःखी होनेवाले हे ब्रह्मा आदि के भी कारणभूत भगवन्! हे मायानट! हे मनोव्याकुलता को दूर करनेवाले! तुम इस प्रकार विकल हो रहे हो—यह कैसी माया है? हे मेरे प्रभु! चिंतित मत होओ! हे सर्वस्वामिन्! दुःखी मत होओ।

हे देवों तथा अधिदेवों के द्वारा स्तुत्यमान नामवाले! नित्य यौवन से स्थित रहकर चौदह लोकों की रक्षा करनेवाले! तुम (भक्तों को) अलभ्य आनन्द के साथ ही मोक्षलोक का वास प्रदान करते हो। आदि भगवन्! यह कैसा दुःख है? तुम्हारी इस माया को कौन जान सकता है?

तुम सब प्राणियों की सृष्टि, संहार एवं रक्षा के कारणभूत हो! सर्वत्र व्याप्त रहकर भक्तों के अभीष्ट पूर्ण करनेवाले हो! संपूर्ण ज्ञान से रहित मनुष्य-रूप धारण करके (अपने से भी छोटे) देवों को नमस्कार करके उनसे वर प्राप्त करते हो। दुःख से तप्त होते हो! ऐसी आश्चर्यमय शक्ति से पूर्ण हो तुम। तुम्हारी इस माया को जाननेवाला कौन है?

तुम अन्य दोनों देवों (ब्रह्मा और रुद्र) के साथ एक समान रहते हो। ऐसा होने पर भी वे दोनों देव तुम्हारे सत्य-स्वरूप को नहीं जान पाते। त्रिमूर्त्तियों में तुम आदि-मूर्त्ति हो। सृष्टि की सब वस्तुओं में अन्तर्यामी बने रहते हो। यदि तुम चाहो, तो तुम्हारे संकल्प-मात्र से सारी सृष्टि मिट जाय। तुम अविनश्वर हो। तुम्हारे ऐसे कृत्यों का अनु-संधान करने की शक्ति किसी में नहीं है। क्या हमारी बुद्धि ही इतनी सूक्ष्म है कि हम तुमको नहीं जान पाते, या अन्य कोई कारण है? इस माया को कौन जान सकता है?

हे वेदों से स्तुत्यमान! तुम सब प्राणियों को जीवन देते हो। अविनाशी होकर भविष्य में भी स्थित रहते हो। तुम अपने लिए किसी भी वस्तु की कामना नहीं करते हो। (भक्तों को) अभीष्ट फल अवश्य देते हो। तुम इन्द्रियों के विषय बनी वस्तुओं में हो। आत्मा की आत्मा हो। प्रत्यक्ष के विषय स्त्री-रूप, पुरुष-रूप एवं नपुंसक-रूप में भी स्थित हो। तुम्हारी इस माया को कौन जान सकता है?

तुम्हारे स्वरूप के बारे में चारों वेदों में से एक यह कहता है कि विष्णु का रूप अनन्त है। दूसरा कहता है कि तुम एक मूर्त्ति हो। अन्य एक वेद कहता है कि तुम चिरंतन ज्ञानज्योति-स्वरूप हो। और, एक वेद कहता है कि आँखों के सामने प्रकट होनेवाले तुम ज्योति-रूप में (अर्थात्, सूर्य-रूप में) आकाश को स्थान बनाकर रहते हो।

कभी असत्य न होनेवाले वेद अपने अंतिम भागों में (अर्थात्, उपनिषदों में) सत्यज्ञान के आधार पर कहते हैं कि तुम सत्यरूप हो। जो ज्ञानदरिद्र (नास्तिक) यह कहते हैं कि (स्वयं भगवान् को देखनेवाले किसी को) उसके अस्तित्व के बारे में कहते नहीं सुना गया है और सृष्टि का निर्माण अन्य किसी कारण से हुआ है, वे (नास्तिक) शास्त्रोक्त विधान से तुम्हारी करुणा का पात्र न बनकर नरक में गिरते हैं। किन्तु (भक्तों के लिए) तुम भृत्य के समान भी होते हो और राज्य भी करते हो ! तुम्हारी इस माया को कौन जान सकता है।

तुम अनुपम शब्द-स्वरूप कहे जाते हो। शब्द का अर्थ भी तुम हो। पवित्र वेदों के लिए भी अगम्य हो। हाथ में धनुष एवं बाण लेकर भी प्रकट होते हो। अपने सुन्दर कर में सुन्दर शंख को भी लिये हुए हो। '(राक्षसों को) मारो !' कह रहे हो। स्वयं राक्षस-रूप होने के कारण मारे भ जाते हो। हे विरुद्ध धर्मों से रहस्यमय भगवन् ! तुम्हारी माया को मैं नहीं पहचान सकता हूँ।

हे मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवन् ! तुम ऐसे खड़े हो, जैसे अपने वास्तविक रूप को भूले हुए हो। तुम ऐसे भी हो, जैसे अपने वास्तविक रूप को समझते हो। तुम्हारी इस माया को जानने की शक्ति मुझमें नहीं है। तुम अनासक्त-से हो, आसक्त-से भी हो। तुम्हारे स्वभाव को निश्चित रूप से कहना असंभव है। धर्म जब विस्खलित होने लगता है, तब उसे स्थिर करने के लिए तुम अवतीर्ण होते हो। हे अजन्मा ! तुम जैसे भी हो, तुम्हारी इस माया को कौन जान सकता है ?

तुम जीवों के पाप और पुण्य के अनुसार उन्हें विविध रूपों में सृष्ट करते हो। जो तुम्हारा ध्यान करते हैं, उन्हें कर्म-बंधनों से मुक्त करते हो, उनके मनोरथ को पूर्ण करते हो और स्वयं प्रकट हुए विना ही उनका मन बनकर रहते हो। मुनियों, मोक्षलोक में रहनेवाले नित्य सूरियों तथा अन्य त्रिमूर्त्ति आदि देवों के लिए भी अगम्य-रूप हो। तुम्हारी माया को कौन जान सकता है ?

हे महात्मन् ! अस्त्र चलानेवाले (अर्थात्, राक्षस), अस्त्र से आहत होनेवाले (लक्ष्मण, वानर आदि) तथा यह दृश्य देखकर दयार्द्र होनेवाले (देवता आदि)— इन सब में तुम्हीं व्याप्त हो। ज्ञानहीन लोग जिस ज्ञान का त्याग करते हैं, उसके साथ तुम भी उनसे दूर होते हो। फिर भी, उनमें अंतर्यामी होकर उनसे दूर हुए विना भी रहते हो। तत्वज्ञों से ज्ञेय होनेवाले सत्यज्ञान भी तुम्हीं हो। तुम्हारी इस माया को कौन जान सकता है ?

हे सहस्र नामवाले ! जन्म लेनेवाले सब पदार्थों में तुम वर्त्तमान रहते हो। तुम विनाशरहित हो। सबसे पृथक् रहकर भी संचरण करते हो (अर्थात्, भिन्न-भिन्न

अवतार लेते हो)। विभिन्न अवतारों में जीवधारी तुमको (अपनी ही जाति का व्यक्ति मानते हुए) तुम्हारे वास्तविक रूप को नहीं समझते हैं, तुम यों रहस्यमय हो। हे तीक्ष्ण चक्रायुध को धारण करनेवाले सुन्दर हाथों से युक्त ! (विराट्-स्वरूप में) तुम सारी सृष्टि का एकीकृत रूप बनते हो ! विचार करने पर तुम श्वेत 'काँदल' (एक पुष्प का पौधा) के कंद के समान भीतर से शून्य विदित होते हो ! यह तुम्हारी कैसी माया है ?

इस प्रकार से स्तुति-वचन कहकर गरुड अपने पंखों की कांति से अंधकार को दूरकर स्वर्णिम कांति फैलाता हुआ आया। उसे देखकर रामचन्द्र यह सोचने लगे कि यह कौन है और (उसकी ओर) सिर उठाये रहे। सप्तलोकों को भी आवृत कर सकनेवाले विशाल पंखों से युक्त गरुड, क्षण-भर में सीधे उड़ता हुआ प्रभु के निकट जा पहुँचा।

पापी (इन्द्रजित्) के द्वारा प्रयुक्त सब नाग उसी प्रकार मिट गये, जिस प्रकार अपने दानी स्वभाव के कारण मेघ का भ्रम उत्पन्न करनेवाले 'शडैयप्प' नामक दाता के गाँव 'तिरुवेण्णै नल्लूर' में आने मात्र से वेदज्ञों, शास्त्रज्ञों, विद्वानों तथा कवियों के परिवारों के सब व्यक्तियों की भूख मिट जाती है। वे सब नागपाश कमलनाल के भीतर स्थित सूत्र (रेशे) से भी अधिक सूक्ष्म हो गये।

अनेक सहस्र पंखों से युक्त (उस गरुड के) परों की हवा जब अंधकार को दूर करती हुई फैली, तब (लक्ष्मण आदि के) शरीरों में गड़े बाण छिन्न-भिन्न होकर छितरा गये। उनके शरीर पर पड़े बंधन के चिह्न भी यों मिट गये, ज्यों पूर्णज्ञान से युक्त व्यक्ति में उत्पन्न होकर भी छोटा पाप मिट जाता है।

धर्ममार्ग पर कभी पद न रखने के कारण, वज्र-समान क्रूर नेत्रोंवाले राक्षस, जीवित न हो सके। कमलभव ब्रह्मा ने पुनः सृष्टि की हो, यों धर्म (के संरक्षण) में निरत सब वानर सजीव हो उठे।

अनुज लक्ष्मण जब स्वस्थ होकर उठे तथा अपने भाई को नमस्कार किया, तब नीतिमार्ग पर स्थित रहनेवाले वीर प्रभु ने उनको अपने आलिंगन में बाँध लिया और बोले— आनेवाली विपत्तियों को दूर करनेवाला दैव स्वयं (गरुड के रूप में) अब प्रत्यक्ष हुआ है। फिर, सब वानर-वीरों को यों गले लगाया, जैसे वे अपने ही प्राण हों। फिर, सदा एक रूप रहनेवाले पूर्णचंद्र के समान खड़े हुए गरुड के निकट आये।

देवता भी जिनके वास्तविक स्वरूप से परिचित नहीं हैं, ऐसे वे (राम) गरुड से बोले—हे आर्य ! तुम कौन हो ? हमारी अपूर्व तपस्या के परिणाम से ही तुम यहाँ आये। जीवन प्रदान किया। तुम्हारा रूप देखने से ज्ञात होता है कि तुम मुझसे कुछ भेंट लेनेवाले नहीं हो। तुम्हारा प्रत्युपकार करने की योग्यता भी हममें नहीं है।

फिर, वे बोले—हे वीर ! तुम्हारे आने मात्र से हमें दुर्लभ जीवन प्राप्त हुआ, जो किसी से भी प्राप्त नहीं होनेवाला था। यदि तुम कुछ वर भी देना चाहो, तो अब और कौन-सी वस्तु प्राप्त करने को रह गई ? तुम्हारा उपमान किस लोक में है ?

मैं लक्ष्मण के बारे में आशंकित हो रहा था कि अब यह बचेगा या नहीं। उसको

तुमने जीवित कर दिया। हे महोपकारी! तुमसे मेरा पुराना स्नेह नहीं है। तुमने मुझे कभी देखा भी नहीं है। तुमने हमारे बारे में सुना भी नहीं होगा। हमारा तुमने उपकार किया, किंतु हमसे कुछ अपेक्षा नहीं की? तुमको कुछ आवश्यकता भी नहीं है, अतः हम तुम्हारी क्या सेवा करें? कहो।—यों राम ने कहा।

तब पवित्रमूर्त्ति पक्षिराज (गरुड) ने कहा—'हे मायाकृत इस जन्म के शत्रु! (इस जन्म से मोक्ष प्रदान करनेवाले!) जब तुम रावण का वध करके अवतार के लक्ष्य को पूर्ण करोगे, तब मैं पुनः तुमसे आकर मिलूँगा, और सब वृत्तांत सुनाऊँगा। अब आज्ञा दो; और वहाँ से चला गया।

उत्तम प्रभु उस जानेवाले की ओर देखते ही रहे। फिर बोले—'हमसे कुछ प्रयोजन की कामना न करके हमें जीवन प्रदान करके यह जा रहा है। करुणा-रूपी धन से संपन्न व्यक्तियों का कार्य ऐसा ही होता है। महान् लोग अपने उपकार का कुछ प्रत्युपकार नहीं चाहते। हम मेघ जैसे उपकारी का क्या प्रत्युपकार करते हैं?

हनुमान् ने प्रभु से निवेदन किया—'हे धर्ममय हृदयवाले! यह सोचकर कि लक्ष्मण मर गये हैं, सीताजी दुःखी होती होंगी। वंचक राक्षस भी जो वेसुध होकर सो रहे हैं, अब यह जानकर कि वानर जी उठे हैं, भयभीत हो जायें—यों हमें बड़ी हर्षध्वनि करनी चाहिए।

महिमामय प्रभु ने कहा—ठीक है। तब सब वानरों ने ऐसी तुमुल हर्षध्वनि की कि समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। आदिशेष के फन पर से धरती ऊपर उछल गई। संसार के प्राणी भय-चिंतित हुए। मेघ स्थानभ्रष्ट होकर गिर पड़े। पर्वत फट गये और विशाल दिशाएँ भिद गईं।

रावण ने, जो आँखें बंद करके अकलंकित हृदयवाली सीता का ध्यान कर रहा था, देह में उष्णता से भरकर, शिवजी के त्रिशूल के लिए भी दुर्भेद्य वक्ष में मन्मथ के पुष्पबाणों से आहत हो रहा था, वह हर्षध्वनि सुनी।

पिता की आज्ञा मानकर चलनेवाले धर्म-स्वरूप तथा भक्तों के दुःखों के दूर करनेवाले प्रभु राम का संतत ध्यान करती रहनेवाली सीताजी तथा उन सीताजी को याद करता हुआ आहतमन, किन्तु अनिर्गतप्राण रहनेवाला रावण—इन दोनों के अतिरिक्त और कौन ऐसा था, जो उस समय लंका में जग रहा हो?

पुरुषसिंह-समान रावण ने वह ध्वनि सुनी। यह सोचकर कि वानरसेना ने आक्रमण किया है, झट उठ खड़ा हुआ। फिर, यह कहकर कि '(इन्द्रजित् ने) जो कहा कि शत्रु निहत हो गये हैं, वह भी कैसी सुन्दर बात थी!' उस (इन्द्रजित्) की निन्दा करने लगा और हथेली पर हाथ मारकर (ताली बजाकर) कंधों को हिलाता हुआ हँस पड़ा।

रावण ने मन में कहा—राम का धनुष वज्र-समान टंकार-ध्वनि कर रहा है। उसके अनुज के धनुष का टंकार इस भयंकर रूप में फैल रहा है कि ब्रह्मांड फट जाये। हनुमान् का गर्जन मेरे कानों में चोट कर रहा है। सूर्यकुमार का शब्द सारे संसार में फैल रहा है।

अंगद गरज रहा है। क्रोधी नील गगन में शब्द फैला रहा है। अन्य वानर-वीर भी पृथक्-पृथक् बड़ा कोलाहल कर रहे हैं। अतः, धर्मदेव की सहायता से सब नाग-पाश से मुक्त हो गये हैं। इसमें संदेह नहीं है।

यह सोचकर रावण पलंग से उतरा। हाथों में करवाल ली और नौ कोटि राक्षसों से अनुसृत होता हुआ, सुन्दर आभरण-भूषित असंख्य सुन्दरियों के दीपों के प्रकाश में, अपने प्रासाद से इन्द्रजित् के निवास की ओर गया।

लता को भी लज्जित करनेवाली पतली कटि से युक्त स्त्रियाँ, अपने वस्त्र सँभालती हुई, शिथिल केशपाश से शोभायमान होती हुई, निःश्वास भरती हुई, अंतरिक्ष को भरने-वाले स्तन-भार से शोभित होती हुई, अलसाई आँखों के साथ लड़खड़ाते पद रखती हुई उठ-उठकर आईं।

देवस्त्रियाँ मद्यपान, निद्रा, अपने देखे स्वप्न तथा मधुरगान से मस्त होकर, मद्यपान के साथ किये जानेवाले छल में अभ्यस्त, मीन-समान नेत्रों को खोलती तथा बंद करती हुई, चरणों के नूपुरों से मधुर नाद निकालती हुई, लड़खड़ाती हुई आईं।

ब्रह्मा ने मेघ पर नीला रंग चढ़ाकर, अगरु आदि की सुगंधि लगाकर, पुष्पों को खोंसकर, यह विचार न करके कि इससे कृश कटि की हानि हो सकती है, जो महान् केश-पाश की सृष्टि की थी, उससे शोभायमान तथा काले नयनों, अरुण अधर एवं आभरणों से युक्त रमणियाँ निद्रालस हो उसके साथ-साथ चलीं।

सत्यलोक के निवासी ब्रह्मा ने अत्युत्तम सृष्टि करने का विचार करके मधु में, इक्षुरस में, दूध में तथा अमृत में स्थित मधुरता को लेकर वाणी बनाई। हरिणों, मीनों, करवाल एवं कमलों में स्थित सुन्दरता को लेकर आँखें बनाईं और ऐसी अपूर्व वस्तुओं से निर्मित अत्युत्तम स्त्रियाँ रावण के साथ-साथ चलीं।

वानरों के कोलाहल के कानों में पड़ने मात्र से, सिंह-समान सब राक्षस, सिंह का गर्जन सुननेवाले हाथियों के जैसे हो गये। सभी राक्षसस्त्रियाँ वज्र-ध्वनि सुननेवाली सर्पिणियों के समान हो गईं।

रावण शीघ्र अपने पुत्र (इन्द्रजित्) के स्वर्णमय प्रासाद में जा पहुँचा। वहाँ उसने उस इन्द्रजित् को देखा, जो लक्ष्मण के बाणों से उत्पन्न क्षतों से रुधिर के बहने के कारण अपार वेदना से पीडित था, सजल मेघ के समान पड़ा था, पुरुषसिंह से विताडित, शक्तिहीन हाथी के समान पड़ा था।

वह उठकर अपने पिता के चरणों को नमस्कार भी नहीं कर सका और बड़ी कठिनाई के साथ दोनों हाथों को सिर पर रखा। उसे देखकर रावण का हृदय वेदना से भर गया। उसने बार-बार पूछा—'हे पुत्र! तुम्हें क्या हो रहा है?' तब इन्द्रजित्, जिसका शरीर अत्यन्त पीडादायक क्षतों से भरा था, ये बातें कहने लगा—

हे तात! मेरे वक्ष में असंख्य बाण प्रविष्ट होकर पार कर गये। मेरे अनश्वर शरीर के रक्त को पी गये। मेरा कवच टूट गया। मैं अत्यन्त शिथिल पड़ गया। यदि मैं माया से नहीं छिप गया होता, तो अबतक मेरे प्राण निकल गये होते।

हे मंदर-पर्वत के समान कंधोंवाले ! देवेन्द्र, शिव तथा विष्णु से मैंने जो युद्ध किये, उनमें मैं कभी पीडित नहीं हुआ। आज जैसे दीनता-पूर्ण वचन मैंने कभी नहीं कहे थे। अहो ! उस नर (लक्ष्मण) के बल की कोई सीमा नहीं है !

विकसित पुष्पमाला धारण करनेवाले ! लक्ष्मण का पराक्रम ही ऐसा है, तो उसके भाई (राम) के पराक्रम का क्या कहना ? अब क्या परिणाम होगा, इसका विचार करना चाहिए। यह समझना उचित नहीं कि हमारी विजय निश्चित है।

यदि मैं वानर-वीरों के साथ उस लक्ष्मण को मार सका, तो वह माया से नागास्त्र का प्रयोग करने के कारण ही। अब एक राम ही बाकी रह गया है। अब भविष्य में चाहे जो भी हो।—यों इन्द्रजित् ने कहा। तब रावण बोला—

हे वीर-वलयधारी पुत्र ! अहो ! कदाचित् तुमने वह ध्वनि नहीं सुनी, जो अभी उस युद्धभूमि में लक्ष्मण के धनुष के टंकार से एवं वज्र को भी भयभीत करनेवाले वानरों के कोलाहल से प्रकट हुई थी।

तब इन्द्रजित् ने उत्तर दिया—हे पिता ! वे सब भयंकर नागपाश से बँध गये और वज्र-समान मेरे बाणों से उनके शरीर भिद गये हैं। वे प्रज्ञाहीन हो गये हैं। यह सब मैंने अपनी आँखों से देखा। तुम जो कहते हो, क्या यह सत्य है ? क्या नागपाश भी कोई साधारण बंधन है, जो सहज ही टूट जाय ? यदि ऐसा हो, तो जिस देव ने मुझे वह अस्त्र दिया था, उसका अपयश ही होगा न ?

जब यह संभाषण हो रहा था, तभी युद्धभूमि से कुछ दूत शीघ्र आ पहुँचे। रावण के चरणों पर नत हुए। रावण के पूछने पर वे सारा वृत्तांत सुनाने लगे।

हे सुरभित पुष्पमालाधारी ! कोशलाधिप का पुत्र (राम) अर्धरात्रि में रंगभूमि में नागपाश से बद्ध लोगों को देखकर पहले हास्यास्पद ढंग से रो पड़ा। फिर, बहुत क्रुद्ध होकर बोला कि मैं सब लोकों को जला दूँगा। तब गरुड प्रकट हुआ।

गरुड के आने पर सबके नागपाश छिन्न-भिन्न हो गये। सबके घाव भर गये। सबकी थकावट दूर हो गई। सब युद्धक्षेत्र में पुनः एकत्र हो गये हैं। यही घटित हुआ है। तब रावण बोला—

वर्णनातीत बल से युक्त भुजाओंवाले मेरे पुत्र के द्वारा प्रयुक्त नागास्त्र, पवन से मिट गया ! ओह ! देखो, देखो ! यह कैसी बात है ? यदि यह सत्य हो, तो मेरा रावण बनकर रहना व्यर्थ है। मेरा यह जीवन भी क्या है ? अब मेरे सभी प्रयत्न निरर्थक हो गये।

जिस विष्णु के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि उसने चौदह लोकों को निगलकर उन्हें फिर प्रकट कर दिया, पूर्वकाल में जब वह मुझसे युद्ध करने आया, तब तरंगायमान समुद्र में जा छिपा। तब यह गरुड नहीं आया।

जब मैंने उन नगरों को नष्ट किया, जिनकी रक्षा कालवर्ण चक्रधारी (विष्णु) कर रहा था, तब, और जब उस (गरुड के) वक्ष तथा पंखों में मेरे बाण जाकर लगे थे, तब क्या यह गरुड सहायता करने लिए आया था ?

इसे रहने दो ! जो हो, सो हो। जो जीवित हो उठे हैं, उन्हें पुनः मारना होगा।

हे पौरुषवान् पुत्र ! तुम्हीं पुनः जाकर भीषण युद्ध करो। तब वह गरुड लज्जित होगा। तब इन्द्रजित् ने कहा—

मैं आज केवल विश्राम करूँगा और अपनी थकावट दूर करूँगा। उसके पश्चात् जाकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करूँगा। रावण उसके लिए स्वीकृति देकर पुष्पमालाओं से अलंकृत अपने प्रासाद में जा पहुँचा। (१—३००)

●

अध्याय १९

सेनाध्यक्ष-वध पटल

(वानरसेना में, राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिए) उठे हुए उत्साहपूर्ण कोलाहल को सुनकर इधर राक्षस भी युद्ध करने के लिए उतावले हो उठे और पुष्पमालाओं से भूषित रावण के निकट जाकर कहने लगे—हमें युद्ध में जाने के लिए अभी आज्ञा दीजिए। तब राक्षसराज ने क्रोध से भरकर ये वचन कहे—

अरे वीर धूम्राक्ष ! तुम सेना का संचालन करते हुए महापार्श्व के साथ जाओ। रावण की यह आज्ञा राक्षस-सैनिकों को पसन्द नहीं आई और वे (सैनिक) रावण से कहने लगे—

जब इन्द्रजित् की सेना के हाथी, घोड़े, रथ तथा पदाति सैनिकों के समुद्र-सदृश विशाल दल (वानरों के आघात से) विध्वस्त हो गये थे, तब ये दोनों इन्द्रजित् को अकेले ही (युद्धरंग में) छोड़कर—'हाय ! वह लक्ष्मण का शर है ! शर है !'—यों चिल्लाते हुए (धूम्राक्ष एवं महापार्श्व) युद्धरंग से भाग खड़े हुए थे। अब ये फिर यहाँ आये हैं।

राक्षस-सैनिकों के वे वचन सुनकर कठोर कृत्यों में अभ्यस्त रावण ने, प्रज्वलित अग्नि जैसे क्रोध से भरकर कहा—'अहो ! इनकी सेवा ऐसी है ! तो पकड़कर बाँध दो इन दोनों को।'

रावण के यों कहते ही राक्षस-किंकरों ने उन दोनों (धूम्राक्ष और महापार्श्व) को पकड़ लिया। तब कालवर्ण रावण ने कहा—'इन्हें मार मत डालना। मेरी बात को ठीक से सुन लो', और आगे बोला—

गंध का स्वाद लेनेवाली उठी हुई इनकी नासिका को काट डालो और भीषण शब्द करनेवाले उत्तम डंके को बजा-बजाकर, इन्हें नगर-भर में घुमाते हुए घोषणा करो कि ये (धूम्राक्ष तथा महापार्श्व) युद्ध से डरकर भागे हुए कायर हैं। इससे उचित दंड और कोई नहीं है।

यह आज्ञा सुनकर, रावण के किंकर झट तीक्ष्ण करवाल हाथ में लेकर (धूम्राक्ष

और महापार्श्व की) नासिका को काटने के लिए उसके निकट आ पहुँचे। तब माली[1] नामक राक्षस ने रावण से विनती की कि हे यशस्वी वीर ! यह कार्य उचित नहीं है।

प्राचीन काल से ही यह होता आया है कि जो कभी युद्ध से डरकर भागे थे, वे ही पुनः किसी भयंकर युद्ध को जीतनेवाले हुए। और, जो कभी युद्ध में विजयी बने थे, वे अन्य किसी युद्ध में विजय न पाकर मारे गये। कौन ऐसे हैं, जो पौरुष को सदा अपने में ही बनाये रख सके हैं ?

अहो ! तुमने यह भेद नहीं समझा ! हे प्रभो ! देवता, दानव आदि की कितनी ही सेनाएँ हम राक्षसों का सामना करने के लिए आई थीं ; वे सब सेनाएँ हमसे पराजित हो गईं। स्वयं इन्द्र भी तो हमसे भीत हो भागा था। तुम इन सब बातों को सोचो।

यह वही राम है, जिससे डरकर वरुणदेव, इसकी दया प्राप्त करने के लिए (इसके सामने) थरथराता, आह भरता हुआ, विनम्रता से खड़ा रहा। तो अब इन राक्षसों की क्या बात है ? हे मेरे प्रभु ! विचार करने पर विदित होता है कि इनकी नासिका काट देना बुद्धिमानी का कार्य नहीं है।

जब चालीस 'समुद्र' संख्यावाली विशाल राक्षससेना मिट गई, उस सेना में धूम्राक्ष, महापार्श्व एवं इन्द्रजित्—ये तीन ही बचे रहे, तब हे विज्ञ ! अब इनसे बढ़कर वीर और कौन हो सकता है ?

(इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण पर जो नागास्त्र प्रयुक्त किया था) वह नागास्त्र भी विफल हो गया था। राक्षससेना आधी से अधिक विध्वस्त हो गई थी। हे वीर ! तुम भी एक बार युद्धरंग में जाकर लौट आये हो। ऐसे युद्ध में, तुम्हारे पुत्र के साथ नहीं ठहरनेवाले इन साधारण वीरों की नासिका काट देना क्या उचित है ?

'लक्ष्मण' का नाम कहने मात्र से राक्षस भय-व्याकुल हो अपने घरों के किवाड़ बंद कर लेते हैं। तो, उन सबकी नासिकाएँ काटनी पड़ेगी। ये राक्षस सप्तसमुद्रों से अधिक संख्या में भरे पड़े हैं। अतः, यदि इनकी नासिका काटने लग जायेंगे, तो युगांत तक काटते ही रहना पड़ेगा।

उस दिन (राम का) दूत बनकर हनुमान् आया था, तो (उससे डरकर) गिड़-गिड़ाते हुए उसको नमस्कार करनेवाले एवं उस (हनुमान्) के साथ के युद्ध से भागनेवाले अनेक राक्षस इस समय कलंक-रहित-से खड़े युद्ध कर रहे हैं। ऐसे राक्षस हमारी सेना में आधे से भी अधिक हैं। फिर भी, वे सब अपनी नाक बचाये रखे हुए हैं।

तुमने सीता को नहीं छोड़ा है। इसलिए वे राम और लक्ष्मण युद्ध की शपथ लेकर आये हैं। यह युद्ध एक ही दिन में समाप्त होनेवाला नहीं है। युद्ध में निपुण वे (राम और लक्ष्मण) अभी मरे भी नहीं हैं। तुमने पहले ही यह नहीं कहा था कि जो युद्ध से भागकर आयेंगे, उनकी नाक काट दूँगा। (अतः, अब इनकी नासिका काटना उचित नहीं है।)—यों माली ने कहा।

---

१. इस 'माली' का ही दूसरा नाम माल्यवान् था।

उस समय, धूम्राक्ष और महापार्श्व नामक वे दोनों राक्षस; यह जानकर कि माली के वचन से रावण शान्तक्रोध हुआ है, अपने मन की व्याकुलता को त्यागकर; धैर्य पाकर मन में रोष एवं आँखों में लाली भरकर, अपनी दशा के बारे में रावण से निवेदन करने लगे।

हे हमारे प्रभु ! उस युद्ध में यही घटित हुआ कि तुम्हारा पुत्र इन्द्रजित् पीछे हट गया। इतना ही नहीं। विद्युत्-से चमकनेवाले आकाश में अदृश्य होकर मायाकृत्य करने लगा और फिर इस नगर में आकर बच गया।

हे पराक्रम को पहचाननेवाले ! आज के दिन तथा कल के समय तक (आज से कल तक) हम शत्रुसेना को इस प्रकार मिटा देंगे, जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि तपे हुए ताँबे के थाल में पड़े मक्खन को पिघला देती है। इस कार्य में तीसरा दिन नहीं होने देंगे। (अर्थात्, दो दिन में ही सारी शत्रुसेना को मिटा देंगे।)

अब हमको युद्ध में भेज दो। फिर, तुम या तो यही सुनोगे कि हम युद्ध में मर गये हैं, या यह सुनोगे कि हमने शत्रुओं को मिटा दिया है। किन्तु, यह नहीं सुनोगे कि हम युद्ध से पराजित होकर लौट आये हैं।—इस प्रकार उन दोनों (धूम्राक्ष एवं महापार्श्व) ने आनन्द से तैयार होकर अपने प्राण त्यागने की शपथ ली।

तब रावण ने दस 'समुद्र' संख्यावाली पदाति-सेना को उनके साथ कर दिया एवं उसके योग्य हाथी; रथ तथा घोड़े की सेना भी भेज दी।

'यज्ञशत्रु' नामक वह राक्षस, जो घी डालने से भड़कनेवाली अग्नि से युक्त महान् यज्ञ को मिटा देता है एवं 'सूर्यशत्रु' नामक वह राक्षस, जो गगन में संचरण करनेवाले सूर्य के मार्ग में भी बाधा उपस्थित करता है, वीर-वलय से भूषित 'माली', 'पिशाच' नामक कराल राक्षस, वज्र को हरानेवाले कठोर खड्गदंतों से युक्त 'वज्रदंष्ट्र' नामक राक्षस—

इन सबको साथ लेकर, वे दोनों (धूम्राक्ष एवं महापार्श्व) सप्तलोकों पर विजय पानेवाले रावण की आज्ञा से निकल पड़े। उनके संग महान् हाथी, रथ और घोड़े भी चले और वे (राक्षस) ऐसे चले, मानों महान् पर्वत ही चल रहे हों।

उस सेना के चलने से धूलि उठी और अंतरिक्ष में भर गई। उस धूलि से देवताओं की आँखें भर गईं, जिससे वे (देव) भी उस अपार राक्षससेना की व्यवस्था को ठीक-ठीक नहीं देख सके।

बड़े-बड़े पहियोंवाले रथों एवं पैरों से युक्त पर्वत-जैसे लगनेवाले हाथियों पर जो श्वेत ध्वजाएँ फहरा रही थीं, वे वीचियों का दृश्य उपस्थित कर रही थीं। उस सेना में चमकनेवाले करवाल मछली-जैसे लगते थे। अतः, वह सेना अपार समुद्र-जैसी लगती थी।

नगाड़े धरती को आवृत करके रहनेवाले समुद्र के जैसे शब्द कर उठे। हाथी, मेघों की प्रतिद्वंद्विता करते हुए समुद्र के साथ, गरज उठे। अनेक बाजे वर्षा के समान शब्द कर उठे।

मृत्यु-जैसे मत्तगज, कभी आगे जानेवाली सेना-पंक्तियों का अनुसरण नहीं करते

और मुड़ जाते। कभी हाथीवानों के अंकुश के आघात को नहीं मानते। यों मुखपट्टों से शोभित पर्वतों के समान वे मत्तगज एक के पीछे एक चल रहे थे।

मदजल बहानेवाले वे हाथी जा रहे थे और कौए झुंडों में उनके साथ उड़ रहे थे। वे हाथी गगन को छूनेवाली अपनी सूँड़ों को मस्ती के साथ ऊपर उठाकर मेघों में भरे समृद्ध जल को भर लेते और आगे बढ़ना छोड़कर जल पीने में लग जाते।

प्रकाशमान विविध शस्त्रों की कांति, वीरों के अपूर्व आभरणों की कांति, रथों एवं तुरंगों के अलंकारों की कांति तथा हारों की कांति सर्वत्र फैल रही थी, जिससे अष्ट दिशाओं का अंधकार भी फट गया।

तब प्रभु (रामचन्द्र) ने उस महान् सेना को देखकर विभीषण से पूछा कि क्या इस उग्र सेना के साथ आनेवाला वह इन्द्रजित् ही है, जो माया से विजय प्राप्त करनेवाला है? तब, निस्संदेह जानकर विभीषण ने उत्तर दिया—

देखिए, वह व्यक्ति जो कंदरा में रहनेवाले सिंह के जैसे भयंकर युद्ध के लिए तत्पर होकर क्रोध के साथ आ रहा है, जो चंद्रकला के समान खड्गदंतों से युक्त अपने फटे हुए मुख-विवर से यों गरज रहा है कि वज्र भी चूर-चूर हो जाय, जो अग्नि उगलनेवाले बाणों से पूर्ण तूणीर को (पीठ पर) बाँधे, हाथ में धनुप लिये, मेघ-ध्वनि से युक्त रथ पर आरूढ होकर चला आ रहा है, वही महापार्श्व है।

वह व्यक्ति, जिसकी आँखें अग्नि-ज्वालाओं को उगलती हुई बहुत लाल दिखती हैं, जो शत्रुओं के प्राणों को पी डालनेवाला है, जो अट्टहास करनेवाले अपने विशाल मुख के कोनों पर बार-बार जीभ फेर रहा है और जो एक सुन्दर स्वर्णरथ पर आरुढ होकर आ रहा है, वही धूम्राक्ष है।

वह व्यक्ति, जो उन्मत्त के जैसे उतावलेपन से भरी अनर्गल बातें कह रहा है, जो हाथ में त्रिशूल लिये है, जो यह कहता हुआ युद्ध में जाकर भिड़ जाता है कि क्या यह (मेरा) सिर भी तुम्हारा हो सकता है? और जो पर्वत-समान शरीरवाला है, वही 'वज्रदंष्ट्र' है।

वह व्यक्ति, जिसका श्वेत केसरोंवाला अश्व पवन एवं मन को भी पीछे छोड़ देता है (अर्थात्, अत्यन्त वेगवान् है), जो अपने ओठों को भींचे हुए है, जो समुद्र के समान गरज रहा है एवं स्वर्ग को भी हरा देने की शक्ति से युक्त शूल को हाथ में रखे है, वही 'पिशाच' है।

वह व्यक्ति, जो समुद्र से अधिक भयंकर गर्जन कर रहा है, जो अग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण क्रोधवान् है और जो जगमगाते रथ पर आरूढ है, वही 'सूर्यशत्रु' है। हे आर्य! वह व्यक्ति, जो अपनी आँखों से रुधिर और अग्नि-ज्वाला को उगल रहा है, वही 'यज्ञशत्रु' है।

वह व्यक्ति, जो लाल धान के समृद्ध सस्य-जैसी अश्वसेना को साथ लिये है, जो प्राचीन काल में अति घोर तपस्या करके कृतकृत्य हुआ था और जो इतने भयंकर रूप में

रथारूढ होकर आ रहा है कि स्वयं शिवजी भी डर जायँ, वही 'माली' है।--यों विभीषण ने श्रीरामचन्द्र के चरणों को नमस्कार करके कहा।

तब वह वानरसेना-समुद्र श्रीराम का जयजयकार करता हुआ उमड़कर आगे बढ़ा। फिर, दोनों सेनाएँ परस्पर समान बल से युद्ध करने लगीं। (उस भयंकर युद्ध को देखकर) देवता भी अपने स्थान से नहीं हिल सके एवं थरथराते हुए व्याकुल हो खड़े रहे, जिससे वे पसीना-पसीना हो गये।

युगान्त में जिस प्रकार गरजनेवाले मेघ पत्थर बरसाते हैं, उसी प्रकार (राक्षसों के) धनुषों से बाण छूट रहे थे। गगन के मेघों से गिरनेवाली बिजलियों के जैसे वे बाण आकर लगते और पहाड़ के जैसे (वानरों के) सिर दाँतों को बिखेरते हुए टूटकर गिर पड़ते थे।

इधर वानर पत्थरों को ऐसे फेंकते थे कि उनके लगने से महान् मत्तगज मरकर गिर जाते थे। विशाल पहियोंवाले रथ चूर-चूर हो जाते थे। राक्षसों के शरीर विध्वस्त हो जाते थे। ऐसा लगता था कि उन पत्थरों से अनन्त (सर्प) के फन भी फट जायेंगे।

राक्षस चक्रायुध फेंकते थे। वे (चक्र) वानरों की युद्धचतुर दीर्घ भुजाओं को साथ लेकर उड़ जाते थे। उन (वानरों) के दीर्घ चरणों को साथ लेकर उड़ जाते थे। उनकी उठी हुई पूँछों को साथ लेकर उड़ जाते थे। और (उनके हाथों पर के) पर्वतों तथा वृक्षों एवं उनके बलिष्ठ सिरों को भी साथ लेकर उड़ जाते थे।

दिशाओं को पार कर चले जानेवाले तथा मनोवेग के समान फाँदनेवाले उत्तम अश्वों पर आरूढ (राक्षस-) वीर जो तोमर फेंकते थे, वे (तोमर) वानरों के पौरुषवान् नेताओं के शरीर को चीरते हुए भूमि में जा लगते थे।

इधर वानरसेना के वीर गरजते हुए जो पत्थर फेंकते थे, वे (राक्षसों के) सुन्दर रथों की ध्वजाओं को चीर डालते थे, सारथि के दाँतों एवं सिरों को तोड़ डालते थे। पापी राक्षसों के धनुषों के साथ उनकी ग्रीवा को भी तोड़ डालते थे।

अश्वारोही राक्षस-वीर जिन पतले फलवाले भालों को फेंकते थे, वे वानरों के शरीर में इस प्रकार प्रवेश कर जाते थे, जिस प्रकार ओलों की वर्षा होने पर सर्प, जिनके आँखें ही कान होती हैं, तेजी से पर्वत की कंदराओं में घुस जाते हैं।

कोई बड़ा गज किसी वानर की पूँछ को पकड़कर उसे उठाकर पटकता। उससे बचकर वह वानर उस हाथी की टाँग को उठाकर उसे पटक देता। कभी कोई बलवान् वानर जब हाथी को (उसकी सूँड़) पकड़कर उठाता और उस (हाथी) से राक्षसों को मारता, तब कठोर नेत्रवाले राक्षस उस वानर पर शूल फेंकते।

आगे बढ़नेवाली वानरसेना, तेजी से जो पत्थर फेंकती थी, उनसे काले समुद्र की जैसी राक्षससेना पट जाती। पापी राक्षसों के धनुषों से जो शर निकलकर चोट करते, उनसे वानरों के सिर, दाँत प्रकट करते हुए, टूटकर धरती पर गिर जाते थे।

जिस प्रकार कुछ मनुष्य दीन बनानेवाली दरिद्रता के प्राप्त होने से पीडित एवं दान से रहित हो, अति व्यथित जीवन व्यतीत करते हुए मरते हैं उसी प्रकार आग

बरसानेवाली शिलाओं के आ टकराने से स्वर्णमय रथों की धुरी टूट जाती थी और शक्ति-शाली घोड़े भी उन (रथों) को नहीं खींच पाते थे।

हाथी, अपने हाथीवानों के मर जाने पर लाल-लाल शोणित-प्रवाह में भटकते हुए, निकल जाने का मार्ग नहीं पाते थे। वह दृश्य ऐसा था, जैसे बड़े-बड़े जहाज, उनको चलानेवाले नाविकों के मर जाने पर, मस्तूल और पाल के साथ समुद्र में भटकते रहते हैं।

उनके शस्त्रधारी सवारों के मर जाने पर अनेक अश्व, समुद्र जैसे रक्त-प्रवाह में फँसते, रह-रहकर ऊपर उछलते और फिर उसी रक्त में धँस जाते एवं अपने मुख से रक्त उगलते हुए ऐसे लगते थे, जैसे अग्नि को उगलनेवाला (समुद्र में स्थित) वडवा नामक अश्व हो।

राक्षसों के खड्गदंतों से युक्त सिर (वानरों के फेंके हुए) पत्थर लगने से टूट-कर गिर जाते। उनकी स्त्रियाँ, अनेक दिन से उन (राक्षसों) से परिचित होने पर भी, उनके मुख तथा शरीर को ठीक-ठीक नहीं पहचान पाती थीं।

धूम्राक्ष और हनुमान् एक दूसरे का सामना करने लगे। पुष्पहार से भूषित अंगद महापार्श्व को रोके खड़ा रहा। दृढ धनुर्धारी माली एवं नील परस्पर क्रोध के साथ भिड़ गये। क्रमहीन युद्ध करनेवाला पिशाच तथा पनस (नामक वानर-वीर) परस्पर लड़ने लगे।

सूर्यशत्रु (नामक राक्षस) तथा सूर्यपुत्र (सुग्रीव) आमने-सामने हुए। यज्ञशत्रु रामचन्द्र के अनुपम भाई (लक्ष्मण) से जा भिड़ा। वीर वज्रदंष्ट्र और ऋषभ (नामक वानर) लड़ पड़े।

इस प्रकार, भयंकर आँखों और धवल दाँतोंवाले राक्षसों के तथा कपिकुल के सिंह जैसे योद्धा युद्धरंग में एक दूसरे के साथ ऐसा युद्ध करने लगे कि देव भी भयभीत होकर उस युद्ध को देखते खड़े रहे।

ऐसे युद्ध में आई हुई चमकते दाँतोंवाले राक्षसों की दस 'समुद्र' संख्यवाली सेना में छह 'समुद्र' सेना को वानरों ने मिटा दिया। शेष चार 'समुद्र' को लक्ष्मण ने अपने बाणों से मिटा दिया।

लवणमय समुद्र में जो रुधिर का प्रवाह बहा, तो वहाँ जल और रुधिर मिले हुए नहीं दिखाई पड़े, किन्तु सारा जल ही पिघले हुए ताँबे के समान लालवर्ण का हो गया। वहाँ के मोती घुँघुची के जैसे (लाल रंग के) दिखाई पड़े। मछलियाँ (रक्त और मांस का आहार पाकर) उमग उठीं एवं प्रवाल के समान दिखाई पड़ने लगीं।

वीचियों से पूर्ण सारा समुद्र शोणित हो गया। विचित्र कांतियों से युक्त रत्न सब लाल रंगवाले हो गये। मत्तगजों के कुंभस्थलों से बिखरे हुए मोती तथा शंखों से बिखरे हुए मोती एक रंगवाले होकर परस्पर भेदहीन हो गये।

इस प्रकार का घोर युद्ध जब हो रहा था, तभी सूर्य, लाल रंग के साथ उदित होता हुआ ऐसा दिखाई पड़ा, मानों अपने अरुण किरण-समूह से अंधकार-रूपी बलवान् हाथी को मारकर उसके लहू से लथपथ हो दिखाई पड़ रहा हो।

राक्षस-रूपी अंधकार को राम नामक सूर्य हटा रहा था और उष्ण किरण-वाला सूर्य दिशाओं के अंधकार को हटा रहा था। सारे संसार में इतना प्रकाश फैलने लगा, जैसे दो सूर्य ही उग आये हों।

सूर्योदय होते ही, अँधेरे के हट जाने से, सर्वत्र लहरानेवाला रुधिर-प्रवाह और दाँतोंवाले हाथियों के झुंड, यों प्रकट हुए, ज्यों जहाँ-तहाँ पर्वत एवं समुद्र फैले पड़े दिखाई पड़ते हों।

उस प्रभात में, रक्त-प्रवाह के मध्य, मृतकों के वदन, मांस के कीचड़ एवं शर-रूपी भ्रमरों से युक्त होकर, सूर्य-किरणों के छूने से विकसित भ्रमरों से घिरे कमलवन का दृश्य उपस्थित कर रहे थे।

युद्धरंग में रथ, गज और अश्व मिले पड़े थे। वह दृश्य ऐसा था, मानों प्रलयकालिक प्रभंजन के चलने से देवों के विमान मेघ तथा नक्षत्र-मंडल टूटकर धरती पर बिखरे पड़े हों।

निशा में संचरण करनेवाले चन्द्र के समान वदनवाली, पुष्पों से अलंकृत तथा आग के रंग के केशोंवाली राक्षसियों के द्वारा युद्धरंग में आलिंगित होनेवाले मृतक राक्षस ऐसे लगते थे, जैसे वे लताओं से आलिंगित गिरे पड़े हों।

लचकती कटियों, पर्वताकार स्तनों, दीर्घ केशों तथा धवल दाँतोंवाली राक्षसियाँ युद्धरंग में पहुँचकर अपने पतियों के कटे हुए सिरों को (खाने के लिए) उठा ले जाने-वाले भूतों का पीछा करती और उन्हें पकड़कर चीर डालती थीं।

उज्ज्वल कंकणधारिणी एक राक्षसी अपने पति को देखने चली। युद्धरंग में उसके पति का शरीर टुकड़े-टुकड़े होकर पड़ा था, वह ढूँढ़-ढूँढ़कर उन अंगों को एकत्र करने लगी, किन्तु उसकी आँतों और आँखों को सियार के द्वारा उठा लिये जाने पर वह उस (शृगाल) का पीछा नहीं कर सकी, इसलिए वह राक्षसी वहीं दीर्घ श्वास छोड़ती हुई मरकर गिर पड़ी।

दीर्घ करवाल-समान नयनोंवाली राक्षसियाँ, अपने मृतक पतियों की कटी हुई भुजाओं को खींचकर ले जानेवाले सियारों के पीछे-पीछे भागतीं और उनसे विनती करके उन अंगों को छोड़ देने की प्रार्थना करतीं। जब सियार उन अंगों को दिये बिना ही भागते, तब वे राक्षसियाँ भी दौड़ पड़तीं। किन्तु, धरती पर बिखरे हुए शस्त्रों से उनके महावर-लगे पैर कट जाते, जिससे वे आगे नहीं बढ़ सकती थीं।

हारों से भूषित, सुन्दर केशोंवाली तथा प्रेम से भरे हृदयवाली राक्षसियाँ अपने पति की देह को खोजती हुई शवराशियों पर चढ़ती-उतरती रहती थीं। वह दृश्य ऐसा लगता था, जैसे मयूरियाँ अपने साथी मयूरों को ढूँढ़ती हुई पर्वतों पर संचरण कर रही हों।

कुछ राक्षसियाँ अपने प्यारे पतियों को क्रोध से ओंठ भींचे ही मरे हुए पड़े देखतीं और मुग्धापन के कारण यह भ्रम करके रूठ जातीं कि वे (पति) किसी दूसरी स्त्री के साथ क्रीडा करते समय अपने ओंठ पर पड़े दंतक्षत को छिपा रहे हैं।

कुछ राक्षसियाँ, गगन जैसे काले रंगवाले सिरों से रहित होकर पड़े हुए अपने

पतियों को नहीं पहचान पातीं। फिर, उन देहों पर से कवच हटाकर उसकी भुजाओं पर पड़े अपने नखों से पहले किये गये ध्वजाकार चिह्नों को देखतीं और उन्हें पहचान लेतीं। फिर, वहीं प्राण त्यागकर गिर पड़तीं।

अश्रुवर्षा करनेवाली राक्षसियाँ अपने पतियों की वज्र-समान दृढ देह को ढूँढ़ती हुई युद्धरंग में जा पहुँचतीं और ऊँची-ऊँची शवराशियों से बह चलनेवाले रुधिर-प्रवाहों में डूबकर मर जातीं।

इसी समय, ऊँची तथा सुन्दर टाँगों से युक्त हनुमान् और धूम्राक्ष युद्ध करने लगे। भड़कती आग को उगलते हुए वे दोनों ऐसे लड़ रहे थे कि एक दूसरे से न आगे बढ़ते थे, न पीछे हटते थे और न एक दूसरे को नीचे पटक पाते थे।

अग्नि के समान कठोर धूम्राक्ष ने, घने तथा काले मेघ के समान हो क्रोधाग्नि उगलते हुए पचीस शरों को सत्यपरायण अंजना के पुत्र (हनुमान्) पर छोड़ा।

हनुमान् की दृढ भुजा में उन शरों के लगते ही लाल-लाल रुधिर फूट पड़ा। इससे हनुमान् ने प्रलयकालिक मेघ के समान क्रुद्ध होकर उस (धूम्राक्ष) के बड़े चक्रोंवाले रथ को विध्वस्त कर दिया।

जब रथ चूर-चूर हो गया, तब धूम्राक्ष अपने धनुष के साथ, सूर्य से प्रकाशमान गगन में उछल गया। लेकिन लक्ष्मण ने अपने बाणों से उसके धनुष को भी काट दिया। इतने में हनुमान् गगन में उछलकर उसे पकड़कर धरती पर ले आया।

हनुमान् ने पर्वत से भी बड़े आकारवाले उस (धूम्राक्ष) को धूल में पटक दिया; फिर समुद्र को फाँदनेवाले अपने पैरों से उसपर ऐसे आघात किये, जिनसे उसके प्राण सूख जायँ। फिर, फटे मुँह से आग की लपटें निकालनेवाले उसके सिर को अपने हाथों से मरोड़कर तोड़ दिया और उसे समुद्र में फेंककर अपना क्रोध शान्त किया।

महापार्श्व और अंगद आपस में जूझते हुए क्रोध-भरी आँखों से अग्नि-ज्वालाएँ निकाल रहे थे। साँसों से धुआँ निकाल रहे थे और एक दूसरे के प्राण निकालने को आतुर होकर लड़ रहे थे।

तब महापार्श्व ने अंगद की बड़ी भुजाओं पर क्रोध करके इक्यावन घोर बाण छोड़े। मानों अत्यन्त मद के साथ उमड़ उठनेवाले, बड़े आलान में बाँधने योग्य किसी हाथी पर मुद्गर चलाया जा रहा हो।

तब अंगद ने, जो सूर्य को ग्रसने के लिए सरण करते हुए चलनेवाले सर्प (राहु) के समान एवं बड़े मेघ के समान था, अपनी लंबी बाँहों से महापार्श्व को रथ-सहित उठाकर धरती पर दे मारा।

लेकिन, इतने में महापार्श्व, सूर्य के समान प्रकाशमान तथा धरती पर टकरानेवाले रथ से उछल पड़ा। उसने अपने हाथ के धनुष को फेंक दिया और झट एक शूल को, जो शाप-वचन के समान अमोघ था, उठाकर अंगद के बलिष्ठ वक्ष पर मारा।

किन्तु, इतने में लोकनायक (राम) ने, यह सोचकर कि यह साधारण शूल

नहीं है, अनादिकालिक कालपाश ही है, विष-लगे बाण का प्रयोग करके उस शूल को काट डाला।

चौदह भुवनों को नापनेवाले (वामनावतार लेनेवाले विष्णु के अवतारभूत राम) की वीरता की अंगद ने भूरि-भूरि प्रशंसा की और मनोवेग से भी अधिक शीघ्रता से शूल फेंककर आनन्दित होनेवाले महापार्श्व को पकड़कर चीर डाला।

यशस्वी माली और नील, दानवपति और देवराज के जैसे ही युद्ध कर रहे हैं— यों सोचकर देवों ने उनपर पुष्पों की वर्षा की।

नील ने एक पत्थर फेंककर माली के धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब बलवान माली हाथ में करवाल लिये, 'ठहरो' कहता हुआ नील के निकट आ पहुँचा।

जब इधर ऐसा हो रहा था, तभी दूसरी ओर से विजयी कुमुद आ पहुँचा और माली के रथ पर एक शिला को फेंककर उसे (रथ को) चूर-चूर कर दिया।

इतने में नील ने एक वृक्ष उखाड़कर माली पर फेंका, तो उस बलवान् राक्षस ने अपने खड्ग से उस वृक्ष को काट दिया। तब अवारणीय कर्म-परिणाम को भी दूर करनेवाले एवं वृषभ-समान वीर रामचन्द्र के अनुज (लक्ष्मण) ने एक बाण ऐसा प्रयुक्त किया कि माली की भुजा कट गई।

बिजली जैसे खड्ग के साथ ही उसकी भुजा कटकर गिरी। फिर भी, वह राक्षस (माली) बिना रुके युद्ध करने में लगा रहा। तब लक्ष्मण यह कहकर कि कटे हाथवाले के साथ युद्ध करना मुझ जैसे व्यक्ति के लिए उचित कार्य नहीं है, वहाँ से हट गये।

जब धनुर्धारी लक्ष्मण जल-भरे समुद्र के समान रंगवाले प्रभु के सम्मुख आये, तब योद्धा लोग उनके सम्बन्ध में यह कह उठे कि अहो! इस प्रकार धर्मयुद्ध करनेवाले वीर और कौन हो सकते हैं?

विशाल वक्षवाले लक्ष्मण के एक तीक्ष्ण बाण से उज्ज्वल अग्नि से युक्त यज्ञ का शत्रु बने हुए राक्षस (अर्थात्, यज्ञशत्रु नामक राक्षस) का धनुष कटकर गिर गया। उसके हाथों एवं पैरों के साथ ही उपलों की वर्षा भी कट गई। (अर्थात्, यज्ञशत्रु के हाथ-पैरों कट जाने से, वह जो यज्ञों पर पत्थरों की वर्षा करता था, वह वर्षा भी अब सदा के लिए बंद हो गई।)

यज्ञशत्रु के साथ युद्ध करनेवाले लक्ष्मण का एक बाण उसके वक्ष को भी चीरकर निकल गया।

सुग्रीव ने उस (सूर्यशत्रु नामक) राक्षस को मार डाला, जिसने पूर्व में कभी उस (सुग्रीव) के पिता (सूर्य) के मार्ग को रोककर उसको परास्त किया था, जो पर्वताकार शरीरवाला था और जो कभी पीछे न हटनेवाले पराक्रम से युक्त था।

ऋषभ (नामक वानर-वीर) ने अनुपम युद्ध-कौशल दिखानेवाले और विष उगलती आँखोंवाले राक्षस वज्रदंष्ट्र के शीघ्रगामी रथ को एक पर्वत के आघात से चूर-चूर कर डाला।

तब वह राक्षस एक दंड हाथ में लेकर क्रोध के साथ धरती पर उतर आया।

और उस दंड से ऋषभ पर ऐसा घोर आघात किया कि अष्ट भुजावाले रुद्र भी काँप उठे।

उस आघात से ऋषभ के प्राण व्याकुल हो उठे। ऐसा लगा कि अब यह (वानर-वीर) वज्र से आहत पर्वत-शिखर के समान गिर जायगा। किन्तु, इतने में ही हनुमान्, जो अपने इच्छानुसार कभी बड़ा और कभी छोटा होने की शक्ति से युक्त था, वहाँ आकर प्रकट हुआ।

वज्रदंष्ट्र ने, पास आये हुए उस हनुमान् के वक्ष पर, जो गगन को छूते हुए शरीर के साथ शक्तिशाली हो खड़ा था, ऐसा आघात किया कि चिनगारियाँ छिटक गईं।

उसके वक्ष पर आघात कर जानेवाले उस वज्रदंष्ट्र को हनुमान् ने अपने बायें हाथ से पकड़ लिया, उसके दंडायुध को छीनकर फेंक दिया और दूसरे कर से उसपर ऐसा घूँसा लगाया कि वह (वज्रदंष्ट्र) वहीं ढेर हो गया।

पनस (नामक वानर-वीर) ने, जो बलवान् व्याघ्र के समान ही वेगवान् था, (पिशाच नामक) राक्षस पर, उसके वक्ष पर लक्ष्य करके, एक बड़ा वृक्ष फेंका।

वह पिशाच यंत्र के समान घूमनेवाले एक घोड़े पर सवार होकर ऐसा संचरण करता था कि यह नहीं ज्ञात हो पाता था कि वह मेघ पर है, समुद्र में चला गया है, धरती पर खड़ा है, सूर्य के निकट जा पहुँचा है या किसी से युद्ध कर रहा है।

बाजों और चीलों से भरे उस युद्धरंग में, उस (पिशाच) का घोड़ा इस प्रकार संचरण कर रहा था कि छह सहस्र वानर यह सोचते हुए संशय में पड़े खड़े रहे कि कदाचित् एक शत सहस्र घोड़े ही तो नहीं दौड़ रहे हैं?

पिशाच का घोड़ा धरती पर नहीं चलता था। वह नेत्रों की दृष्टि से भी अधिक वेग से चलता था। मन से भी अधिक वेग से दौड़ता था। गगन में संचरण करनेवाले पवन से भी अधिक वेग से चलता था। जब वह भीतर रहता था, तब भी बाहर चलता हुआ दिखाई देता था।

गीध के जैसे बड़े और वेगवान् उस घोड़े पर बैठे हुए पिशाच के भाले से धरती में अनेक घाव हुए और वानरों के शवों का ढेर लग गया।

देव भी यह सोचकर भयभीत हुए कि जब यह अपने तीक्ष्ण भाले से, एक पल भी बिना रुके, क्षण-क्षण में शत और दो शत वानरों की सेना को विध्वस्त कर रहा है, तब अहो! अब क्या होगा?

यम के समान प्राण लेनेवाले तथा मानों अनेक रूप धारण करके फिरनेवाले उस पिशाच को पराक्रमशील लक्ष्मण ने (वायव्यास्त्र) से आहत कर काट डाला।

ताल के अनुरूप कदम रखकर चलनेवाले घोड़े पर आसीन पिशाच, सिर कट जाने के पश्चात् भी, प्राण-हरण करनेवाले अपने भाले को लिये हुए दूसरों पर चोट करता रहा।

भ्रमर, सुन्दर दाँतोंवाली (सीता) देवी के निकट, शुभ शकुन बनकर गा उठे। दक्षिण दिशा के अधिप यमराज के दूत, (युद्ध में गिरे हुओं के प्राण लेकर) अपने नगर को लौट गये। वंचक (रावण) के दूत भी अपने नगर के भीतर चले गये।

उन दूतोंने नगर-मध्य अपने राजा रावण के पास जाकर, प्रणाम करके, अशुभ समाचार देने की बात से दुःखी होकर, धीरे-धीरे सारी राक्षस-सेना के ध्वस्त हो जाने का समाचार (रावण को) सुनाया। (१-१०२)

●

अध्याय २०

मकराक्ष-वध पटल

दूतों के वचन अपने कानों में पड़ते ही लंकाधीश अत्यन्त दुःखी हुआ और सर्प के समान फुफकार भरने लगा। तब उसके निकट खड़े मकराक्ष ने उससे कहा—

हे प्रभु ! पूर्व में मेरे पिता[1] के प्राणों को जिसने पी डाला था, उसके प्राण लेने के लिए तुमने मुझे युद्ध में नहीं भेजा। तुमने मुझे पहचाना नहीं। क्या मेरे रहते हुए तुम्हें यों दुःखी होना चाहिए ?

मैं स्वयं युद्धक्षेत्र में चला जाता। किन्तु, मैंने सोचा कि स्वयं ही युद्धभूमि में जाना उचित नहीं है। हे प्रभु ! क्या धरती, गगन आदि भूत भी मुझे परास्त कर सकते हैं ?

मेरी माँ साश्रु नेत्रों के साथ रहती हुई दुःख-सागर में डूबी है। यह कहती हुई कि मेरे पति को मारनेवाले के कपाल-रूपी पात्र में ही मैं अपने पति का कर्म करूँगी, अभी तक उसने अपने मांगल्य-सूत्र को हटाया नहीं है। गीध को (भोजन देने के कारण) प्रिय लगनेवाले भाले से युक्त हे राजन् ! कृपा करके मुझे युद्ध में भेजो।

ये वचन सुनकर रावण ने कहा—'ठीक है ! जाओ। युद्ध में जाकर अपना पुराना वैर शांत कर लो।' वह क्रूरकर्मा मकराक्ष, आज्ञा पाकर उभरे कंधों के साथ धनुष लिये रथारूढ हो चला।

उसकी पाँच करोड़ संख्यावाली सेना तथा रावण की बीस 'समुद्र', संख्या की सेना घन-घटा के समान उमड़कर उसके पीछे चली। नगाड़े समुद्र के समान घोष कर रहे थे। उस समय धरती से जो धूलि ऊपर उठी, उसमें त्रिकूट पर्वत के शिखर भी धँस-से गये।

रावण ने आज्ञा दी कि शोणिताक्ष और सिंह दोनों (मकराक्ष के) अश्वजुते रथ के चक्रों की रक्षा करते हुए जायँ। वे पदाति प्रभृति (चतुरंग) सेना को लेकर चले। मकराक्ष उनके साथ यों चला, ज्यों नक्षत्रों से घिरा चंद्रमा जा रहा हो।

उस सेना में पताकाएँ वितान के समान इस प्रकार फैली थीं कि सूर्य की एक किरण भी नीचे नहीं आ पा रही थी। मत्तगजों की सुन्दर सूंड़ों से मदजल की बूंदें सर्वत्र बिखरती थीं। यों चलकर उस राक्षससेना ने कपि-सेना के युद्धश्रम को मिटा दिया।

---

१. मकराक्ष खर का पुत्र है। पंचवटी में राम के द्वारा खर के वध की बात इसमें कही गई है।

(अर्थात्, राक्षस-सेना की पताकाओं से छाया पाकर तथा मदजल की शीतल बौछार को पाकर कपिसेना की थकावट भी मिट गई।)

हाथी चिंघाड़ उठे। घोड़े हिनहिना उठे। भेरियाँ बज उठीं। राक्षस-योद्धा गरज उठे। इन सबको दबाकर युद्ध के बाजों की ध्वनि पृथ्वी की सीमा तक व्याप्त हुई। सब प्राणी साँस लेने का भी अवकाश नहीं पाते हुए अत्यन्त व्याकुल हो उठे।

गरमी से भरी सेना ने निरन्तर मारण से युक्त युद्धकर्म किया। सेनापति गर्व से उमड़कर जूझ पड़े। सैनिक हस्ताहस्ति[1] युद्ध करने लगे। पत्थर, शर आदि फेंके जाने लगे। उस समय रुधिर का प्रवाह ऐसा बढ़ा कि हाथी भी उसमें डूब चले।

वानरवीर जो शिलाएँ फेंकते थे, उनको राक्षस पकड़कर पुनः ऐसे उठाकर चलाते कि मेघ एवं नक्षत्र भी उनके टकराने से टूटकर गिरते। तब वानरों के झुंड यों मरकर गिरते थे कि शवभक्षी भूत आनन्द से कोलाहल करते हुए शवों को मुख में ठूँस लेते थे।

वानरवीर अपने दाहिने हाथ से, अंजन-जैसे वर्णवाले राक्षसों के करों से खड्ग को छीन लेते और उसे उनके वक्ष में घुसेड़कर उन्हें मार डालते। उधर राक्षसवीर वानरों के हाथ के वृक्षों एवं शिलाओं को छीनकर उनसे वानरों के वक्ष पर आघात कर उन्हें मारते।

भ्रमरों से घिरी रहनेवाली पुष्पमाला से युक्त वक्षवाला, मकर-समान नयनोंवाला; अति बल से युक्त और वानरों की सेना को मिटानेवाला मकराक्ष, अपने विजय-भरे स्वर्णमय तथा बड़े चक्रोंवाले रथ को, खेती से भरे और शीतल जल-समृद्ध गंगा से सिंचित कोशल देश के राजा (राम) की ओर चलाता हुआ जा पहुँचा।

वानरसेना यह आशंका करके कि कदाचित् इन्द्रजित् ही तो पुनः नहीं आ गया, विकल हो भागने लगी। वानरसेना के नायक शरों से यों मारे गये, ज्यों किसी यंत्र से आहत किये गये हों। मकराक्ष सुन्दर कंधोंवाले प्रभु के निकट पहुँचा।

अति मनोहर पुष्पमालाओं से, जिनके स्वर्णमय रज को भ्रमर उठा लेते थे, अलंकृत मकराक्ष ने (राम से) कहा—तुमने मेरे पिता को मार डाला, अतः मेरा वैर त्रिमूर्त्तियों से नहीं, वरन् तुम्हारे प्रति ही बढ़ रहा है।

यश पाने के लिए उत्पन्न अनुपम पराक्रम से युक्त कंधोंवाले प्रभु ने उस क्रूर की बात सुनकर कहा—दीर्घ वैर को शांत करने के लिए आये हुए हे वीर! क्या तुम खर के पुत्र हो? तुमने जो कहा, वह वीरों के योग्य ही है।

तब मकराक्ष ने वज्रध्वनि के समान धनुष्टंकार करके कहा—'तुमसे युद्ध करके मैं अपना क्रोध शान्त करूँगा।' और, रामचन्द्र पर ऐसी शरवर्षा की, जैसी वर्षा जल से समृद्ध काला बादल पिघलकर ऊँचे शिखरवाले पर्वत पर करता है।

मकराक्ष ने कमल-समान नयनोंवाले (राम) के कंठ में सहस्र बाण मारे। उनके अनुज (लक्ष्मण) के कवच पर दो सहस्र बाण मारे। कातर कर देनेवाले पराक्रम से युक्त, हनुमान् पर कठोर बाण बरसाये और ऐसे बाण चलाये कि देवों का समस्त लोक शरमय हो गया।

---

१. हस्ताहस्ति लड़ना—एक दूसरे को हाथों से मारकर लड़ना। मुष्टामुष्टि युद्ध भी ऐसा ही होता है।

रामचन्द्र ने (मकराक्ष के द्वारा) प्रयुक्त सब बाणों को अपने उज्ज्वल शरों से तोड़ डाला और पौरुषयुक्त उस राक्षस के विजयमाला-भूषित वक्ष पर एक शर मारा। वह शर सिकुड़नेवाली भौंहों से युक्त मकराक्ष के वक्ष में धँस गया।

(राम के) शरों से विद्ध होकर, सूर्यकांति पुष्प के समान शोणितवर्ण नयनों-वाले एवं मुँह से धुआँ उगलनेवाले मकराक्ष ने दिव्य यश से अंचित प्रभु के कवच को लक्ष्य करके मांस से युक्त (अर्थात्, शत्रुओं को मारने से उनके रक्त-मांस से युक्त) सहस्र शर मारे।

वह दृश्य देखकर देवता भी विस्मय से भर गये। चक्रधारी प्रभु ने मंदहास करके अतितीक्ष्ण छह बाण चलाकर (मकराक्ष के) रथ के अश्वों के खुर काट दिये। उस राक्षस के धनुष को काट दिया तथा उसके सारथि का सिर भी काटकर नीचे गिरा दिया।

तपस्या के बल से संपन्न उस मकराक्ष ने, वक्ष पर (राम के) एक बाण के लगते ही, अपने मुख से लाल रक्त उगलते हुए, वज्र और प्रभंजन उत्पन्न कर दिये। जैसे प्रलय-कालिक मेघ क्षणमात्र में प्रकट होकर वज्र और प्रभंजन करता है।

अनेक कोटि वज्र टूटे। प्रलयकालिक प्रभंजन चारों ओर बहा। काले-काले घोर मेघ उपल-वर्षा करने लगे। वानर-सेना तितर-बितर हो भागने लगी।

वानर जिन-जिन दिशाओं में भागे, वहाँ सर्वत्र धुएँ के साथ आग जल उठी। मेघों से मायामय अग्निवर्षा हुई, जिससे अनेक कोटि वानर मर मिटे। वह दृश्य देखकर प्रभु ने विभीषण से पूछा कि यह माया के कारण हो रहा है या (मकराक्ष के) तपोबल का प्रभाव है?

विभीषण ने उत्तर दिया कि करुणालु वायुदेव, वरुणदेव तथा अन्य देवों ने इस (राक्षस) की तपस्या को देखकर अनेक अकाट्य वर दिये हैं। तब शतदल-सदृश नयनों-वाले प्रभु ने कहा कि मैं पल-भर में इसकी तपश्शक्ति को मिटा देता हूँ।

उत्तमपुरुष (राम) ने वायवास्त्र तथा वारुणास्त्र प्रयुक्त किये। तब वर्षा एवं झंझावात गगन से शीघ्र भागकर विशाल समुद्र में जा छिपे।

यह देखकर मकराक्ष सारे अंतरिक्ष में व्याप्त हो गया और स्वयं छिपकर करोड़ों शूलों का प्रयोग करने लगा। तब ज्ञानरूपी प्रभु ने सोचा—'अहो! एक व्यक्ति कितनी माया रच रहा है!' वे फिर बोले—

मकराक्ष माया के प्रभाव से सर्वत्र इस प्रकार फैल गया कि यह ज्ञात नहीं हो पा रहा था कि वह कहाँ है। वह दृष्टिपथ में नहीं आ रहा था। इसके शरीर को देखकर यह निर्णय करना भी कठिन था कि क्या इसका स्वरूप इतना है। अग्नि के समान कठोर इस राक्षस के विषय में अब क्या किया जाय?

देवाधिदेव (राम) ने यह सोचा ही था कि 'शोणित को अपने मुख से उगलने-वाला राक्षस अपने शरीर को अन्तरिक्ष में फैलाकर स्वयं कहीं जा छिपा है।' इतने में एक स्थान पर लहू के चिह्न को देखकर यह अनुमान कर लिया कि यह राक्षस यहीं छिपा है। उन्होंने एक बाण चलाया, जिससे मकराक्ष का सिर कटकर नीचे गिर पड़ा।

वज्र समान तीक्ष्ण बाण के लगने से राक्षस (मकराक्ष) का शरीर आँधी की

वर्षा के समान लहू बरसाता हुआ धरती पर आ लुढ़का। निशांधकार में प्रकाश को मिटा-कर प्रकट होनेवाले स्वप्न जिस प्रकार (प्रभात वेला में) अदृश्य हो जाते हैं, उसी प्रकार राक्षस की सारी माया मिट गई।

उस समय, सुन्दर ध्वजा से सुशोभित ऊँचे रथ पर आरूढ हो, ग्रीष्मकाल के सूर्य का प्रकाश पड़ने से उज्ज्वल हुए काले मेघ के जैसे रूपवाला रक्ताक्ष (नामक राक्षस) जलते बाणों को चलाते हुए अति शीघ्र वहाँ आ पहुँचा। तब विशाल समुद्र में बाँध बाँधने-वाले तथा कठोर क्रोध से युक्त नल ने उसका सामना किया।

उस दिन रक्ताक्ष ने अपनी मालाभूषित भुजा का सारा बल लगाकर भयंकर धनुष को झुकाया और प्रलयकालिक अग्निशिखाओं के समान शर बरसाये। लेकिन, नल ने एक पेड़ से उन सब शरों को रोक दिया और आलान में बँधे हाथी के हथसार में घुसनेवाले सिंह के समान उस राक्षस के निकट गया।

अपने हाथ के पेड़ को तोड़ देनेवाले उस निडर राक्षस को देखकर नल ने अपने वक्ष को ऐसा संकुचित किया, मानों वह धरती के भीतर धँस रहा हो और फिर झट कूदकर उस राक्षस के सिर पर जा गिरा। तब देवों ने ऐसा कोलाहल किया कि दिशाएँ फट गईं।

अग्निमय पर्वत पर जैसे इन्द्रधनुष रखा हो, यों नल उस राक्षस के सिर पर दिखाई पड़ा। और उस (राक्षस) के सिर को इस प्रकार पदाघात करके नीचे गिरा दिया कि उसकी आँखों, कानों और नाक के मार्गों से लहू बह चला और उसका मस्तिष्क बाहर निकल गया।

ज बरक्ताक्ष मर गया, तब आँखों से आग उगलनेवाला सिंह (नामक राक्षस) धनुष-बाण लेकर छोटी ..टयों से भूषित रथ पर आरूढ होकर—'कहाँ जाता है, तू?' चिल्लाता हुआ आ निकला। इतने में त्रुटि-रहित मेरुतुल्य पनस (नामक वानर) इनके बीच में आ कूदा।

उस राक्षस ने 'मल्ल' नामक दस बाण पनस के कंधों और वक्ष में चुभाये। पनस ने घी से भड़कनेवाली अग्नि के जैसे क्रुद्ध होकर तुरन्त उसके रथ को अपने हाथ में उठा लिया।

तब वह लाल नेत्रोंवाला तथा मेरु-समान आकारवाला राक्षस नीचे कूद पड़ा। तब वज्र-समान भुजाओं से युक्त पनस ने रथ को उठाकर उस राक्षस पर ऐसे पटका कि वह राक्षस नीचे गिर पड़ा और उसकी देह से रक्त छिटक पड़ा।

चक्रवर्ती-कुमारों (राम-लक्ष्मण) के बाणों से एवं वानरों के द्वारा फेंके गये वृक्षों तथा पत्थरों से राक्षस-सेना के बीस 'समुद्र' सैनिक मारे गये। तब निःशस्त्र खड़े रहनेवाले रावण के दूत लंकानगर में भाग चले। (१—३८)

—/

अध्याय २१

ब्रह्मास्त्र पटल

नीतिमार्ग से भटके हुए (रावण) ने खरपुत्र (मकराक्ष) का मरना, रक्ताक्ष का वानर के पदाघात से पिस जाना तथा सिंह का वध एवं सब सेना के विनाश का समाचार अपने दूतों के द्वारा सुना और फिर आज्ञा दी कि मेरे पुत्र को शीघ्र बुला लाओ।

दूतों ने जाकर इन्द्रजित् से कहा कि तुम्हारे पिता ने तुम्हें स्मरण किया है। पर्वताकार कंधोंवाले उस (इन्द्रजित्) ने उनसे पूछा कि क्या युद्ध में जो राक्षस-सेना गई थी, वह सब विनष्ट हो गई? तब उन दूतों ने कहा—इस युद्ध में जाकर तुम्हारे अतिरिक्त और कौन लौट सकता है? दूतों से सारा समाचार पाकर इन्द्रजित् शीघ्र अपने पिता के निकट जा पहुँचा।

इन्द्रजित् ने पिता को नमस्कार करके कहा—हे पिता! सारी सेना विनष्ट हो गई, इस बात पर चिंतित होना उचित नहीं। आज अपार वानर-सेना मिट जायगी और युद्धक्षेत्र में उन नरों तथा वानरों के शवों का ढेर लग जायगा, जिन्हें कर्णाभरण से भूषित (सीता) देवी एवं देवता देखेंगे।

फिर, इन्द्रजित् अपने पिता की परिक्रमा करके, गगन पर चलनेवाले सहस्र सिंहों से युक्त ऊँचे रथ पर आरूढ होकर, युद्धभूमि में गया। तब युद्ध के बाजे बज उठे। विजय-माला से भूषित तथा करवालधारी राक्षसों की साठ 'समुद्र' संख्या की (पदाति) सेना एवं गजों, रथों तथा अश्वों की सेना भी उसके साथ गई।

'कुंबिका', 'तुमिल', 'शेंडे', 'कुरडु', बड़ी भेरी, पटह, मुरज, खंज, 'पांडिल', 'तूरि', 'कंपलि', 'उरुमै', 'तक्कै', करटिका, ढक्की, बाँसुरी, 'कंडे', 'ग्रंबलि', 'कणुवै', 'ऊमै', 'शकटै' आदि सभी वाद्य बज उठे।

हाथियों पर नगाड़ों के साथ उन (हाथियों) की घंटियाँ भी शंख के समान बज रही थीं। क्रोध-भरे अश्वों पर अलंकृत स्वर्णिम किंकिणियाँ 'कंडे' (नामक वाद्य) के समान बज रही थीं। सैनिकों के वीर-वलयों की ध्वनि, स्वर्णहारों की ध्वनि, शीशों से अलंकृत रथचक्रों की ध्वनि—ये सब ध्वनियाँ समुद्र-गर्जन के समान आकाश को भर रही थीं।

शंखों की ध्वनि, 'वयिर' (नामक वाद्य) की ध्वनि, 'आकुलि' (नामक वाद्य) की ध्वनि, काहल की ध्वनि, 'पीलि' नामक मयूर-पंखों से भूषित वाद्य की ध्वनि, बाँसुरी की ध्वनि, सिंहों के गर्जन की ध्वनि, अश्वों की ध्वनि, रथों की ध्वनि, दिशाओं में उमड़े मेघों के जैसे हाथियों की ध्वनि—ये सब ध्वनियाँ गगन के मेघ-गर्जन के साथ होड़ करती हुई निकल रही थीं।

मधुर राग एवं कोमल शब्दों से युक्त गीत करनेवाले विविध वाद्यों की मनोहर ध्वनि, वीणा की मधु-समान ध्वनि, 'याऴ्' (नामक वाद्य) की भ्रमर-गुंजार जैसी ध्वनि—ये सब ध्वनियाँ देवों के (कर्णपेय) अमृत के समान फैल रही थीं।

धनुष का टंकार, वीरों का गर्जन, डाँटने-डपटने की ध्वनि, वीरों के बोलने की ध्वनि, खखारने की ध्वनि, भुजाओं पर खम ठोंकने की ध्वनि, धरती पर पद रखने की ध्वनि—इन सब ध्वनियों के बढ़ने से समुद्र का गर्जन भी उन ध्वनियों में विलीन गया।

चतुरंग सेना के चलने से जो धूलि गगन में उठी, उसके लगने से देवस्त्रियों के क्षीरसमुद्र-समान नयनों से अश्रु-समुद्र उमड़ पड़ा।

देवताओं को कँपानेवाला इन्द्रजित् एक ऊँचे स्वर्णमय रथ पर आरूढ हुआ और उसके चारों ओर बड़े-बड़े योद्धा देवेन्द्र के प्रासाद जैसे सहस्रों रथों पर आरूढ हुए। वह दृश्य ऐसा था, जैसे सूर्य को चारों ओर से घेरकर नक्षत्र खड़े हों।

युद्धभूमि में पहुँचकर इन्द्रजित् ने अपनी सेना को क्रौंच-व्यूह में सज्जित करके खड़ा किया। क्रौंच पक्षी के पंख, चोंच, लाल आँखें, कंठ, शरीर, टाँगें, नाखून, पूँछ—इन सब अंगों के रूपों में, कभी पीछे न हटनेवाली अनेक 'समुद्र' संख्या की सेना को फैलाकर खड़ा किया।

इन्द्रजित ने यम-समान भयंकर उस दक्षिणावर्त्त शंख को अपने हाथ में लेकर बजाया, जो (शंख) युद्ध में पराजित इन्द्र का दिया हुआ था और जिसके पेट में प्रलय-कालिक सप्त महासमुद्रों का गर्जन छिपा हुआ था। उस शंख की ध्वनि से देवता थर्रा उठे और दिशाएँ अस्त-व्यस्त हो उठीं।

उस शंखध्वनि को सुनकर सारी वानर-सेना, सिंह-गर्जन को सुनकर भागनेवाले हाथियों के झुंड के जैसे तितर-बितर हो भाग चली और लापता हो गई। तब इन्द्रजित् ने अर्धनारीश्वर (शिवजी) के पर्वताकार धनुष जैसे अपने धनुष की डोरी को खींचकर टंकार-ध्वनि की और अट्टहास कर उठा।

उस ध्वनि को सुनकर वानरों के कान फट गये। मन टूट गये। उनके पैर आगे नहीं बढ़ सके। उनके हाथों के पेड़ और पत्थर फिसलकर गिर गये। वे काँप उठे। उनके मुख सूख गये। उनकी देह से रोम अत्यधिक मात्रा में झरने लगे और वे सोचने लगे—हाय! अब हम मर ही गये।

अरुणकिरण सूर्य का पुत्र (सुग्रीव), वायुपुत्र (हनुमान्), अंगद, प्रभु (राम) और उनके अनुज एवं तीक्ष्ण कांति बिखेरनेवाले किरीट से भूषित, रक्त नेत्रवाले विभीषण इत्यादि कुछ ही वीर वहाँ खड़े रहे। शेष सारी वानर-सेना विचलित हो भाग गई।

सेनापति स्थिर रहे, पर अपार वानरसेना-रूपी समुद्र किनारा तोड़कर बहनेवाली जल की बाढ़ के समान बह गई। तब राक्षस-सेना उत्साह से गरजकर समुद्र के समान उमड़ पड़ी और सब दिशाओं में भर गई। सारी युद्धभूमि राक्षस-सेना से भर गई।

हनुमान् के, हिलनेवाले हारों से विभूषित दृढ कंधे पर वीर (राम), तथा बालिपुत्र (अंगद) के पर्वत-शिखर समान कंधे पर प्रभु के अनुज (लक्ष्मण) आरूढ हुए। देवता उनकी जय बोलकर मधु-भरे पुष्प बरसाये।

हनुमान् और अंगद के कंधों पर विराजमान वे दोनों वीर (राम-लक्ष्मण), पुष्पमालाओं से शोभायमान थे। अपने दृष्टिपथ में आने पर महान् मेरु को भी चूर-चूर

कर सकते थे। वे ऐसे लगते थे, जैसे वृषभ और गरुड पर आसीन होनेवाले अपार महिमा से युक्त देव (शिव एवं विष्णु) हों।

नील आदि सेनापति अपने-अपने हाथों में ताड़ के पेड़ों एवं शिलाओं को लेकर आक्रमण करने को तैयार खड़े थे। उस समय, स्वर्ग और भूमि की रक्षा करनेवाले चक्रवर्त्ती (दशरथ) के कुमार राम ने, युद्ध से होनेवाले परिणाम की बात सोचकर कहा—

निष्ठुर इन्द्रजित् जब तुमलोगों पर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करेगा, तब तुम्हारे पेड़, पत्थर आदि उनको नहीं रोक सकेंगे। तुम उन शस्त्रों को नहीं सह सकोगे। अतः, हमें इस मोर्चे पर छोड़कर तुम सब पीछे हट जाओ और हमारे और राक्षसों के युद्ध-कौशल को देखो।

तब रामचंद्र की कृपा के पात्र वे वानर पीछे हट गये। प्रताप से पूर्ण वीर राम और लक्ष्मण ने चक्रवाले रथों और हाथियों पर बढ़कर आये हुए प्रलयकालिक मेघ-जैसे राक्षसों पर अपने धनुषों से वज्र-समान शरों की वर्षा की।

उन वीरों के युद्ध-कौशल का वर्णन हम किस प्रकार कर सकते हैं, जिनके धनुषों ने क्षणकाल में राक्षसों की बड़ी सेना को विध्वस्त कर दिया। उमादेवी को अपने शरीरार्ध में धारण करनेवाले देव (शिव) ने, मेरु को धनुष बनाकर जो त्रिपुरों पर शर चलाया था, जिससे अनेक राक्षस निहत हुए थे, कदाचित् वह दृश्य इसका उपमान बन सकता है।

उस युद्धभूमि में जो जैसे गिरते थे, वे वैसे ही पड़े रहते थे। अतः, हम केवल यही कह सकते हैं कि वहाँ बड़ी-बड़ी सेनाएँ गिरती रहती थीं।—इसके अतिरिक्त यह नहीं कह सकते कि कौन गिरता था। ऐसा पराक्रम-पूर्ण युद्ध करनेवाले उन दोनों (राम-लक्ष्मण) को इन्द्रजित् रथ पर धनुष टेके खड़ा-खड़ा देखता रह गया।

उसने सोचा—'अहो! हाथी मर गये।' उसने सोचा—'अहो! रथ विध्वस्त हो गये।' उसने सोचा—'अहो! तेजस्वी घोड़े जो आये थे, वे मर गये।' उसने सोचा—'अहो! मरे हुए लोगों को हटाने के लिए भी करवालधारी राक्षस-सैनिक नहीं रहे।' उसके चारों ओर गगन तक उठे हुए शवों के अंबार ऐसे पड़े थे कि आगे का दृश्य वह नहीं देख पाया।

वह फिर सोचने लगा—घोर युद्ध करनेवाले ये दो नर ही हैं। इनके हाथ जो सेना विध्वस्त हुई है, वह साठ समुद्र संख्या की है। ये सब सेनाएँ मिट जायें। कदाचित् ऐसे शापमात्र से वे इनको मिटा रहे हैं, धनुष के बाणों से नहीं। यह सब क्या कोई इन्द्रजाल ही तो नहीं है?

वह इन्द्रजित् शरों की वर्षा देखता। रुधिर की नदियाँ देखता। गगन को छूनेवाली शवराशियों को देखता। (हाथियों) के दाँत टूटने से बिखरे मोतियों को देखता। मरे हुए हाथियों को देखता। फिर, यह सब संहार करनेवाले वीरों (राम-लक्ष्मण) की सुन्दर भुजाओं को देखता।

वह (इंद्रजित्) पर्वतों को (अर्थात्, हाथी, अश्व आदि के शवों की राशियों को) देखता और गगनतल तक उठे हुए राक्षसों के सिरों के अंबार को देखता।

वीरों (राम-लक्ष्मण) के शर-प्रभाव को गुनता। एक दूसरे से टकराकर चिनगारियाँ निकालते हुए गिरनेवाले शस्त्रों की पंक्तियों को देखता। (राम-लक्ष्मण के) धनुष को देखता। उनके धनुषों के टंकार को कान देकर सुनता।

सहस्रों रथों को, शक्तिशाली हाथियों को, नाचनेवाले घोड़ों को, सहस्रों सिरों को, विनाशकारी शस्त्रों को तथा सबको काटकर दूर निकल जानेवाले (उन वीरों के) परों के वेग को चौंव से देखता और आगे बढनेवाले उन शरों के असीम प्रसार को देखता।

साठ समुद्र संख्यावाले राक्षस, उनके बल के योग्य शस्त्र फेंके जानेवाले, छोड़े जानेवाले, बरसाये जानेवाले एवं टकराये जानेवाले—इस प्रकार के सब शस्त्र लिये आये थे और यों राख बने पड़े थे, ज्यों टिड्डियों के दल के घिरने पर वन-प्रदेश विध्वस्त हो पड़ा हो। यह सब देखकर वह (इंद्रजित्) सोचता खड़ा रहा।

राक्षस-स्त्रियाँ दौड़कर आतीं और छाती पीटती हुई अपने पति के शरीर पर गिरकर यों रोने लगतीं, जैसे कोयल पंख कट जाने पर गिरी हो। इसके साथ उसने यह दृश्य भी देखा की राक्षस-वीरों के कबंध, उनके दाँत पीसनेवाले और फटे बिल जैसे मुँहवाले सिरों के कट जाने पर भी, युद्धरंग में नाच रहे हैं; जिनसे डरकर मांसभक्षी पक्षी धरती पर नहीं उतर रहे थे।

सिंह-समान अंगद तथा हनुमान् के पराक्रम को वह (इंद्रजित्) नहीं जान पाया। वह सोचता—अंगद अनेक करोड़ है। हनुमान के नामवाले इतने हैं कि उनके सचरण के लिए सारी धरती भी पर्याप्त नहीं है।

वह (इंद्रजित्) विजयघोष करनेवाले देवों को देखता। वहाँ बिखरे देवों के बरसाये पुष्पों को देखता। फड़कनेवाली बाहु भुजाओं को देखता। चारों दिशाओं में पड़े शवों को देखता। रुधिर के प्रवाह में बहकर जानेवाले हाथियों की देह को देखता।

एक सहस्र कोटि रथ एवं रथियों को छोड़ शेष सारी सेना विध्वस्त हो गई, यह देखकर भी वानरसेना, जो विचलित होकर भाग खड़ी हुई थी, स्वर्णरथ पर आरूढ इंद्रजित् के भय से लौटकर नहीं आई।

जब साठ समुद्र संख्या की राक्षस-सेना ध्वस्त हो गई और सहस्र करोड़ रथसेना ही शेष रह गई, तब अविचल पराक्रमवाले वीरों (राम-लक्ष्मण) के युद्ध-कौशल पर अंजना-पुत्र (हनुमान्) मुग्ध हुआ और अपनी विशाल भुजाओं पर ताल ठोकने लगा।

उस भयंकर युद्धरंग में हनुमान् के भुजास्फालन की वज्रध्वनि जब हुई, तब उसको सुनकर कुछ राक्षस रथों से गिर गये। कुछ अपने हाथ के शस्त्र धरती पर छोड़कर लौटने को आतुर हो उठे। स्वर्ण प्राचीरों से घिरी लंका में स्थित राक्षस भी लहू उगलने लगे।

मेघ से भी अधिक काले (इंद्रजित्) ने भय से काँपनेवाले राक्षस-सैनिकों को अपनी भौंहें सिकोड़कर देखा और कहा—आज एक के ताल ठोकने का शब्द सुनकर ही तुम यों थरथरा रहे हो, फिर तुमसे कठोर युद्ध करना कैसे संभव होगा? तुम भी इन मृत

वीरों के जैसे ही अब निष्प्रयोजन हो रहे। धिक्कार है! फिर वह अकेले ही दोनों (राम-लक्ष्मण) पर आ टूटा।

उसी क्षण सहस्र कोटि रथ भी घोर गर्जन के साथ पहियों को लुढ़काते हुए भूमि को मानो चीरते हुए युद्धरंग में प्रविष्ट हुए। आकाश के तारे टूटे। देवता काँप गये और दिग्गजों के सिर थरथराकर भूमि पर झुक गये।

झुके हुए धनुष को अपने अरुण कर में धारण किये हुए प्रभु को खड़े देखकर अनुज (लक्ष्मण) ने निवेदन किया। इस बलशाली राक्षस (इंद्रजित्) ने नागास्त्र से मुझे बाँधा था, अतः संसार कहेगा कि मैं इससे हार गया।

संसार में यह अपयश होगा कि मैं अपने साथियों को विपदा से नहीं बचा सका। उनके बंधन को दूर नहीं कर सका। एकाकी जाकर उस शत्रु (इंद्रजित्) के प्राण नहीं ले सका। इतना ही नहीं, उस शत्रु को कुछ बाधा देने में भी असमर्थ रह गया।

हे विजयी! इंद्र का शत्रु कहलानेवाले इस राक्षस के सिर को यदि मेरा शर काट-कर अंतरिक्ष में न उड़ा दे, तो मैं कठोर कर्मवाले (यम) का अतिथि बनकर गये हुए गोलों में एक नीच व्यक्ति गिना जाऊँगा।

हे स्वर्णमय पादवलय तथा आभरणों से भूषित मनोहर भुजाओंवाले प्रभु! जब-तक मैं आपके सम्मुख ही इस अन्याय-पथ पर चलनेवाले का सिर अपने शर से नहीं काट दूँगा, तबतक मेरा यह दास्य (सेवकाई) भी कृतार्थ नहीं होगा।

विशाल संसार के देखते हुए यदि मेरा शर इस राक्षस का सिर नहीं काट डाले, तो मेरा यह निश्चित वचन है कि मैं आपकी जो सेवकाई कर रहा हूँ, यह मेरे लिए निष्फल हो जाय—यों लक्ष्मण ने कहा।

जब पराक्रमी लक्ष्मण ने ये वचन कहे, तब देवता यह सोचकर कि अब हमारे सब दुःख दूर हो गये, हर्षध्वनि कर उठे। अपार संसार के सब प्राणी हर्षध्वनि कर उठे। सद्धर्म का देवता भी हर्षध्वनि कर उठा। यम भी (इंद्रजित् के प्राण पाने की आशा से) हर्षध्वनि कर उठा।

कमलनयन प्रभु ने मुख पर मंदहास के साथ कहा—तुम संहार करने का निश्चय करो, तो ठीक ही है; क्योंकि उसके योग्य कौशल तुम में अवश्य है। तुम्हारे पराक्रम के सम्मुख संहारकारक (रुद्र) और रक्षाकारक (विष्णु) का पराक्रम भी व्यर्थ है। ऐसे तुम्हारे पराक्रम का परिणाम अन्यथा कैसे होगा?

लक्ष्मण ने यह वचन सुनकर आनन्द से भरकर प्रभु के चरणों पर नत होकर कहा—यहाँ घेरकर आई हुई इस राक्षस-सेना को मैं मिटा दूँगा। अभी आप यह दृश्य देखेंगे और शीघ्रता से उठ खड़ा हुआ।

उस समय अंगद ने ऐसा गर्जन किया, जैसे मेघ से गिरनेवाले वज्र शब्द करते हैं। उसको सुनकर वीर इंद्रजित् के रथ में जुते हुए सिंह भी काँप उठे। प्रभु (राम) का शंख ऐसा बजा, जिससे समुद्र भी चुप हो गया।

राक्षसों ने परसे, भाले, चक्र, तोमर, दंड, शूल, त्रिशूल, 'कप्पण', पत्थर आदि अस्त्र जलवर्षा से भी दुगुने वेग से बरसाये।

मन्मथ-समान मनोहर वीर लक्ष्मण ने जो शर प्रयुक्त किये, उनसे गगन और भूमि को ढकते हुए, गगन से गिरे नक्षत्रों के जैसे जो राक्षसों के सूत्र आये थे, वे टूट-टूटकर तितर-बितर हो गिरे।

एक ही शर से सहस्रों रथ टूटकर गिरते। दौड़नेवाले अश्व मरकर गिरते। सारथि मरकर गिरते। सेना-पंक्तियों के भयंकर सिर कटकर गिरते। ऐसी आग भड़कती कि उससे सारा संसार ही जल जाय और धुआँ उठने लगता।

रथों के नीचे के भाग टूट जाते। दृढ पहिये धुरी के साथ टूट जाते। रथों में रखे दीर्घ धनुष टूट जाते। (रथों में जुते) अश्वों के वक्ष फट जाते। ध्वजाएँ टूट जातीं। छत्र टूट जाते। पराक्रमी वीरों के सिर टूट जाते। नगाड़े टूट जाते। अन्य सभी वस्तुएँ टूट जातीं।

सब वस्तुएँ छिन्न-भिन्न होकर बिखर गईं। यह नहीं ज्ञात होता था कि कौन क्या वस्तु है, रथ कौन है, अश्व कौन है, वीर कौन है।

शर से विद्ध होकर आकाश में उड़े हुए पुत्रों के सिर उनके पिताओं के रथों के मध्य आ गिरते। पिताओं के बड़े सिर पुत्रों के रथों पर आ गिरते।

तूणीर से निकले हुए शर से कटे हुए धनुष को पकड़े हुए तथा (तुम्बै) पुष्प की मालाओं से शोभित बड़े-बड़े हाथ लाल-लाल रुधिर-प्रवाह में ऐसे बह रहे थे, जैसे लाल आँखोंवाली मछलियाँ लकड़ियों के साथ बह रही हों।

तीक्ष्ण शरों के कटे हुए छत्र, ध्वजाएँ इत्यादि भयंकर रुधिर-प्रवाह में बहते हुए ऐसे दिखाई पड़ते थे, जैसे विविध प्रकार के पक्षी हों।

हाथियों पर रखे जानेवाले हौदे, शर, रथ, धनुष आदि ईन्धन बने थे और मृतक वीरों की आँखों से अग्नि की ज्वाला निकलकर उन सबको जला रही थी। यों जले हुए शवों को पिशाच चाव से खा रहे थे।

कुछ रथ पहियों के टूटने पर वैसे ही धँस गये। कुछ रथों में जुते घोड़े लगाम के टूट जाने से मिट्टी में लुढ़ककर एक दूसरे पर जा गिरे और मर गये। कुछ रथ, उनपर आरूढ वीर एवं सारथि के मर जाने से वैसे ही भटक गये।

रह-रहकर जगमगानेवाले रत्नों से युक्त तथा रक्त-प्रवाह में धँसे हुए रथ, ऐसा दृश्य उपस्थित कर रहे थे, मानों राक्षसों के युद्धरंग से उत्पन्न अनल-ज्वाला में लंकानगर जल रहा हो और उस अग्नि-ज्वाला के बीच में प्रासाद दिखाई पड़ रहे हों।

उस समय राम ने हनुमान् को (इंद्रजित् के निकट) जाने को प्रेरित किया और ऊपर से शरवर्षा की, तब जैसे गगन के सब विमान टूटकर गिरते हों, यों राक्षसों के सब रथ टूट-टूटकर गिर गये। इंद्रजित् अपने रथ पर अकेला ही खड़ा रहा।

राक्षसों के संग विविध मृगों के जुते उनके सब रथ विनष्ट पर्वतों के जैसे पड़े रहे। तब धनुःकौशल में पिछड़े हुए राक्षसों को देखकर रावणि ने राम-लक्ष्मण के प्रति क्रुद्ध हो कहा।

क्या तुम दोनों ही मेरे साथ युद्ध करोगे या कोई एक ही अथवा, अपनी सारी सेना के साथ आकर मेरे हाथ मरना चाहते हो? तुम्हारी क्या इच्छा है, बताओ। आज तुम्हारे योग्य युद्ध मैं तुमको दूँगा।

तब लक्ष्मण ने कहा—मैंने शपथ की है कि आज मैं करवाल, धनुष अथवा अन्य किसी भी प्रकार के शस्त्र को लेकर तुमसे लड़ूँगा और तुम्हारे प्राण हरण करूँगा। यह निश्चित जानो।

तब इन्द्रजित् ने कहा—ठीक है। तुमसे पूर्व उत्पन्न तुम्हारे भाई को तुम्हारे पीछे हनन करूँगा। उसके पीछे उत्पन्न तुमको उसके पूर्व ही मृत कर दूँगा।[1] यदि मैं यह कार्य न कर सका, तो मेरा रावण का पुत्र होना ही व्यर्थ है।

तुम्हारा नाम जो इलक्कुवन् (लक्ष्मण) है, यह ठीक ही है। मैं अब इस नाम को सार्थक करते हुए तुमको अपने शरों का इलक्कुवन् (लक्ष्य)[2] बनाऊँगा। पशु-रूप (वराह)-धारी विष्णु के जैसे ही यदि पशुवाहन (शिव) स्वयं भी इस युद्ध में आ जायें, तो उनको भी अपने शरों का लक्ष्य बनाउँगा, अब मेरे पराक्रम को तुम्हारा भाई देखे।

तुम दोनों ने साठ समुद्र संख्यावाली राक्षस-सेना को अपने शरों से विध्वस्त कर डाला। अब सत्तर समुद्र संख्यावाली वानर-सेना को एक ही शर से क्षण-भर में मिटाकर धरती को सूना कर दूँगा, तुम दोनों यह देखोगे और पश्चात्ताप करोगे।

मैं रावण का अनुज 'कुम्भकर्ण' नहीं हूँ, जिसे तुमने तीर से मार डाला। मैं रावण का पुत्र हूँ। मेरी समानता कोई नहीं कर सकता। अब तुम दोनों के लाल-लाल रक्त से मैं अपने भाइयों तथा चाचा (कुम्भकर्ण) को तिलांजलि दूँगा।

तब लक्ष्मण ने कहा—राक्षस कहलानेवाले लोगों के लिए योग्य तथा उनका उद्धार करनेवाला (श्राद्ध) कर्म करने के लिए विभीषण यहाँ आया है। तुमको अपने पिता के जो अंत कर्म करने हैं, उन सबको और तुम्हारा भी (श्राद्धकर्म) वही करेगा।

तब तीक्ष्ण दंतोंवाले राक्षस (इन्द्रजित्) ने मन में क्रुद्ध होकर मेघवर्षा से भी द्विगुण ऐसी शरवर्षा की, जिससे गगन, दिशाएँ सबको आवृत करती हुई क्षीरसमुद्र-समान (श्वेत वर्ण) वानरों की सेना को पीनेवाली अग्नि सर्वत्र फैलने लगी।

अंगद पर सहस्र बाण, तीक्ष्ण नेत्रोंवाले हनुमान् पर उनसे दुगुने बाण तथा सिंह-सदृश अन्य वानर-वीरों पर असंख्य बाण चलाकर उस (इन्द्रजित्) ने सर्वत्र शर-ही-शर कर दिये।

रावणि ने लक्ष्मण पर, राम पर, शत्रु बने वानरों पर ऐसे शर चलाये, जो उनकी देह में चुभ गये। उसका दृढ धनुष मंडलाकार चन्द्र के समान साठ घड़ी तक झुका रहा।

---

१. पूर्व उत्पन्न और पश्चात् मृत, इस भाव को बतानेवाले तमिल-शब्द हैं मुन्पिरन्द और पिन्पिरन्द। इनके प्रयोग में एक विशेष प्रकार का शब्द-चमत्कार है। —अनु०

२. तमिल में लक्ष्मण तथा लक्ष्य बननेवाले मनुष्य इन दोनों के लिए इलक्कुवन् शब्द है, कवि ने इन दो अर्थों के आधार से शब्द का चमत्कार दिखाया है। —अनु०

वस्त्र को कटि में बाँधकर दोनों हाथों से आगे-पीछे तथा सूर्य-किरण जैसे चारों ओर तीक्ष्ण बाणों को चलानेवाले इन्द्रजित् के हस्तकौशल को देखकर देवता भय से अपने नेत्र बंद करके खड़े रहे।

प्रभु के सिंह-समान उस अनुज ने बड़े वेग से युद्ध करते हुए शत्रु के भेजे सब दिव्य अस्त्रों को उतने ही दिव्य अस्त्रों के द्वारा निष्फल कर दिया, जैसे किसी बुद्धिहीन के बताये असत्य का, कोई बुद्धिमान् (अपने सत्य-वचन से) खंडन करता हो।

उस समय उदात्त गुणवाले प्रभु (इंद्रजित् पर) बाण छोड़ना अधर्म समझकर चुप खड़े रहे और अपने अनुज से पृथक् न होकर उनके पीछे ही रहे। लक्ष्मण और इन्द्रजित् के शर आकाश में ही टकराकर जलते रहे। अतः, उन दोनों में से कोई भी किसी की विजय नहीं देख पाया।

जब वे दोनों अपने बाण छोड़ते थे, तब चारों ओर आग फैलने से आसपास के अरण्य जल जाते थे, पर्वत जल जाते थे, स्वर्णमय लंका के प्रासाद जल जाते थे और वहाँ स्थित प्राणी जल जाते थे। इस प्रकार सारा संसार प्रलयकाल में जैसे जलने लगा।

फणोंवाले सर्प की शय्या छोड़कर जो (विष्णु राम के रूप में) अवतीर्ण हुए, उनके अनुज-रूप में उत्पन्न उस वीर ने (जो आदिशेष के अवतार थे) बाढ़ के जैसे आनेवाले विषमय शरों को हटा दिया और महान् बलवान् राक्षस को उसके रथ को खींचनेवाले मगर के जैसे भयंकर सहस्र सिंहों को और रथ को यमपुर में भेज दिया।

रथ के मिट जाने पर, दूसरा रथ नहीं रहने से, इन्द्रजित् अन्य ग्रहों के मिट जाने पर एकाकी बने सूर्य के समान खड़ा रहा। फिर, वह जलानेवाले शरों को बरसाकर शत्रुओं के पराक्रम को मिटाने पर तुल गया। फिर, शिव के शर से जलनेवाले त्रिपुरों के समान युद्धरंग भी जल उठा।

उस भयंकर युद्ध में टूटे रथ पर ही खड़े रहकर इन्द्रजित् ने अंगद की माला भूषित भुजाओं एवं लक्ष्मण की भुजाओं पर उज्ज्वल अर्धचन्द्र-सदृश अनेक शर चलाये और अपना शंख उठाकर बजाया, जिससे सारा संसार काँप उठा।

सिंह-सदृश लक्ष्मण ने दस तीक्ष्ण बाण चलाये, जिनसे शंख बजानेवाले रावणि का कवच टूट गया। फिर, उसने अपने धनुष की डोरी टंकारित की।

वह दृश्य देखकर काले मेघ-समान प्रभु ने अपने कमल-सदृश नयनों से हर्षाश्रु बहाते हुए और अर्धचन्द्र-समान मंदहास की कांति बिखेरते हुए (प्रलयकाल में) ब्रह्मांड को निगलनेवाले अपने मुख से कहा—हे वानरो! हर्षध्वनि करो। वानर-सेना में ऐसी कोलाहल-ध्वनि हुई, मानों उससे सारा ब्रह्मांड ही फट जानेवाला हो।

तब राक्षस (इन्द्रजित्) पलक मारते ही गगन में जा छिपा। उसको न देखकर महिमामय लक्ष्मण ने प्रभु से निवेदन किया कि यदि यह राक्षस बच जायगा, तो हमारी सेना को विध्वस्त कर देगा। अतः, अन्य कुछ सोचे बिना ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना ही ठीक है।

उस उत्तम (लक्ष्मण) का वह वचन सुनकर धर्मस्वरूप प्रभु ने कहा— सब लोगों

की सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा के अस्त्र का तुम प्रयोग करोगे, तो उससे तीनों लोक मिट जायेंगे। उसे रोकना किसी के लिए संभव न होगा। वह वचन सुनकर लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना छोड़ दिया।

अदृश्य हो खड़े इन्द्रजित् ने उन (राम-लक्ष्मण) के मन की बात ताड़ ली और स्वयं ही पहले उस दिव्य (ब्रह्मा) अस्त्र का प्रयोग करने का निश्चय किया। उसके लिए आवश्यक कर्त्तव्य पूर्ण करने के लिए वह वहाँ से हट गया। इसे देखकर देवता ताली बजाकर हँसने लगे।

अरुणकिरण सूर्य जहाँ संचरण कर रहा था, उस आकाश में बहुत दूर काले मेघ के समान जाकर वह इन्द्रजित् फिर अदृश्य हो गया। तब वानरवीर यह सोचकर कि वह (राक्षस) भय के कारण ही यहाँ से हट गया है, क्रोध और हास्य से भरकर हर्षध्वनि कर उठे।

पराजित होकर भागी हुई वानर-सेना, समुद्र में मिलने के लिए उमड़नेवाली नदी की धारा के समान बढ़ आई और बड़ी हर्षध्वनि करने लगी। पराजित होकर इन्द्रजित्, सबकी दृष्टि बचाकर, मथित क्षीरसमुद्र के समान हलचल से भरे लंका-नगर में जा पहुँचा।

'उज्ज्वल और दिव्य ब्रह्मास्त्र को ये प्रयुक्त करें, इसके पूर्व मैं ही उसका प्रयोग करूँगा'—ऐसा विचार करके इन्द्रजित् वेदोक्त विधान से मंत्रयुक्त यज्ञकर्म करने के लिए वहाँ से चला गया। किन्तु, वीरता से भरे वे दोनों (राम-लक्ष्मण) उसके मनोभाव को जानकर, उसके कार्य के संबंध में उपेक्षा से भरकर मौन रह गये।

वे दोनों हनुमान् और अंगद के कंधों पर से उतर पड़े। धनुष, तूणीर, कवच, हस्तावरण आदि उतार दिये। देवों ने पुष्पवर्षा करके उनका जयनाद किया।

वानर-सेना की हर्षध्वनि गगन में गूँजने लगी। तब अश्वों द्वारा शीघ्रता से खींचे जानेवाले रथ पर आरूढ सूर्य, गगन से उतर पड़ा और यों अस्तंगत हो गया, मानो वह, इन्द्रजित् के द्वारा पवित्रमूर्त्ति (लक्ष्मण) पर चतुर्मुख के अस्त्र का प्रयुक्त होना नहीं देखना चाहता हो और उसके पूर्व ही समुद्र में डूब जाना चाहता हो।

तब पुंडरीकाक्ष (राम) ने विभीषण से कहा—हे विभीषण! रात-दिन युद्ध करते-करते हमारे सैनिक थक गये हैं। इन्होंने कुछ खाया-पिया नहीं है। तुम शीघ्र जाकर इनके भोजन का कुछ प्रबंध कर दो।

स्वर्णकिरीटधारी विभीषण ने नमस्कार करके कहा कि अभी प्रबंध कर देता हूँ। वह झट उठा और अपने साथियों को संग लेकर चला गया। एक मुहूर्त्त में ही वायुदेव के समान, वह अनुपम समुद्र को पार कर गया। इसी समय प्रभु ने अपने भाई से ये वचन कहे—

हे तात! दिव्य महिमा से संपन्न अस्त्रों की यथाविधि पवित्र पूजा करके उसके पश्चात् ही उनका प्रयोग करना उचित है। मैं यह पूजा-कार्य पूर्ण करके आऊँगा। तब-तक तुम सेना की रक्षा करते रहो—यों कहकर राम युद्धक्षेत्र से चले गये।

उधर इन्द्रजित् ने अपने पिता के निकट पहुँचकर युद्ध का सारा वृत्तांत कहा और अपने ऊपर (राम-लक्ष्मण का) ब्रह्मास्त्र छोड़ने का विचार भी कहा। तब रावण ने विस्मया-विष्ट होकर पूछा—मेरे तात ! अब हमें क्या करना चाहिए ? तब इन्द्रजित् ने कहा—

बुद्धिमानों का कथन है कि यदि कोई हमें मार डालने का प्रयत्न करता हो और उसका वध करना हमारे लिए संभव हो, तो हमें चाहिए कि हम पहले ही उसको मार डालें। अब यही उचित है कि उन मनुष्यों से अदृश्य रहकर ही हम युद्धोचित ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दें।

यदि वे यह जान लेंगे कि मैं ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने जा रहा हूँ, तो वे स्वयं ब्रह्मास्त्र को छोड़कर मुझे रोक देंगे। देख लेने पर तो वे मुझे मारने की भी शक्ति रखते हैं। अतएव, मैं एक अच्छा यज्ञ करके उन मनुष्यों के प्राण क्षणमात्र में मिटा दूँगा।

युद्ध में निरत होकर वे मुझे भूले रहें—इसके लिए एक बड़ी सेना भेज दो। फिर, मैं शेष कार्य पूरा करूँगा। जब इन्द्रजित् ने इस प्रकार कहा, तब रावण ने अपने सम्मुख खड़े महोदर से कहा—

हे वीर ! घने फलोंवाले शूलों को धारण करनेवाले अकंप आदि दोषहीन राक्षसों की शत समुद्र सेना लेकर शीघ्र जाओ और उन मनुष्यों से भयंकर युद्ध करो।

यहाँ से तुम जाओ और माया के बल से घना अंधकार उत्पन्न कर दो। तुम अकेले ही तीनों लोकों में उत्तम वीर बनकर हमारे उन शत्रुओं के प्राण पी डालो। रावण ने महोदर से इस प्रकार कहा।

(रावण के) इस प्रकार कहते ही वह राक्षस, जो करवाल-जैसे दाँतों से युक्त था और यह सोचता हुआ खड़ा था कि '(मुझे रावण) कब आज्ञा देगा', उमंग से भर गया और वेग से आगे बढ़ चला। पर्वत को घेरनेवाले मत्तगजों के समान राक्षस-वीर उसे घेरकर चलने लगे।

एक करोड़, करोड़ कोटि, शत सहस्र सहस्र इत्यादि संख्याओं में महान् बलशाली गज उस सेना में पंक्ति बाँधकर चले। असंख्य दौड़नेवाले रथ दौड़े। त्रुटिहीन रूप में फाँदने-वाले अश्वों की अपार सेना दौड़ चली।

राक्षसों की पदाति-सेना यों चल पड़ी कि उनके शस्त्र, आभरण, उनके फटे मुखों से निकली हुई बड़े-बड़े दाँतोंरूपी चन्द्र-कलाएँ—इन सबकी कांति बदल-बदलकर चारों ओर धूप फैलाने लगी।

ध्वजाओं के समूह, अंतरिक्ष को आवृत कर यों फहराने लगे कि वज्रों के साथ उमड़कर आनेवाली वर्षा अस्त-व्यस्त हो गई। वे सेनाएँ चलने लगीं, तो उनके पैरों से ऊपर उठी हुई धूलि ऐसे उमड़ चली कि ब्रह्मांड की सृष्टि करनेवाले चतुर्मुख की आँखें भी धूल से भर गईं।

गज नामक बड़े पर्वतों से झरनेवाली मदजल-रूपी स्वर्ण-नदियाँ, अश्वों के मुख से झरनेवाले फेन की धारा के साथ मिलकर, अरण्य के बड़े-बड़े वृक्षों एवं पर्वत की शिलाओं को ढहाकर बहा ले जातीं और अनिवार्य वेग से चलकर समुद्र में जा मिलतीं।

गगन में जो बिजलियाँ चमक रही थीं, वे ऐसी लगती थीं, मानों ओंठ चबानेवाले एवं करवाल-जैसे खड्ग-दंतोंवाले राक्षसों के दाहिने हाथों में धारण किये हुए खड्ग ही हिलते हुए रह-रहकर चमक रहे हों और चिनगारियाँ निकालते हुए गगन में जा रहे हों।

उस दिन, रावण की भेजी हुई वह शत समुद्र (संख्यावाली) सेना लंकानगर के द्वार से बाहर निकल रही थी। वह दृश्य ऐसा था, जैसे पूर्वकाल में वामनमुनि (अगस्त्य) समुद्र को पीकर पुनः अपने मुख से उसे निकाल रहे हों।

शंख, भेरी, काहल, ताल, सेनापतियों का सिंहनाद, धनुषों का टंकार; वैर रखनेवाले क्रोधी गजों का चिंघाड़, घोड़ों का हींसना, उज्ज्वल रथों के विशाल पहियों से निकलनेवाली ध्वनि—इन सबने मिलकर सारे संसार को इस प्रकार अपने में समाहित कर लिया, मानों विष्णु ने ही पृथ्वी को अपने भीतर कर लिया हो।

वह विशाल राक्षस-सेना घोर युद्ध करने के लिए युद्धभूमि में जा पहुँची। विशाल वानर-सेना भी एकत्र हो गई। वानरों ने राक्षसों द्वारा प्रयुक्त शरों को बड़ी शिलाओं से रोककर हर्षध्वनि की। क्रोध किया और वज्र के समान गरजे।

स्थान-स्थान पर वानर, लक्ष्य पर निशाना लगाकर करोड़ों शिलाओं को फेंकते, जिससे एक-एक (शिला) से चार-पाँच राक्षसवीर आहत हो प्राण छोड़ देते। युद्ध करनेवाले गज, फाँदनेवाले घोड़े और मनोहर रथ भी विध्वस्त हो गये।

परसे, शूल, चक्र, 'नांजिल', करवाल, भाले, 'एक्कु', 'तोट्टि', दंड, शर इत्यादि शस्त्रों के आघात से झुंड-के-झुंड वानर मरकर गिरने लगे।

मुद्गर, मुसल, 'भुशुंडि', चक्र, भिंडिपाल, दंड, कर्पण, वलय इत्यादि शस्त्र (वानरों के द्वारा प्रहार के लिए फेंकी गई) शिलाओं को चूर-चूर कर डालते और वानरों को भी मिटा देते थे।

राक्षसों ने जगमगाते हुए ऐसे-ऐसे तीक्ष्ण शस्त्र प्रयुक्त किये कि वानर-सेना आगे न बढ़ सकी। आहत हो मरनेवालों के शव पहाड़ों के जैसे पड़े रहने से एवं रुधिर-धाराएँ चारों ओर बह चलने से राक्षस भी आगे नहीं बढ़ सके।

उस युद्धक्षेत्र में जो वानर मरते थे, वे देवता बन जाते थे और अन्य देवताओं के साथ गगन में संचरण करने लगते थे। देवस्त्रियाँ, जो अबतक विरह के लिए व्याकुल रहती थीं, अब अपनी इच्छा की पूर्त्ति होने से इस प्रकार उनका आलिंगन करती थीं, जैसे प्राणों का ही आलिंगन कर रही हों।[१]

छल, कपट, माया, चोरी—ये ही जिनके कर्त्तव्य थे, करुणा आदि धर्म के मार्ग में जो कभी नहीं जाते थे, ऐसे राक्षसों को भी लक्ष्मण के शर देवता बना देते थे (अर्थात्, उन्हें मारकर वीर-स्वर्ग में पहुँचा देते थे)। तो, उन शरों से बढ़कर पावन वस्तु और क्या हो सकती है?

लक्ष्मण ने यम के उत्तम अस्त्र को अभिमंत्रित करके अपने कर में लिया और

---

१. विष्णु भगवान् जब राम के रूप में अवतीर्ण हुए, तब देवता वानर बनकर जनमे। इसी बात की ओर इस पद्य में संकेत किया गया है। —अनु०

युद्धक्षेत्र में सर्वत्र घूमते हुए चंद्रकला-समान खड्ग-दंतोंवाले राक्षसों को, हाथियों को तथा रथों को—जो भी उनके सम्मुख आया उन सब को, शरों से मार-मारकर यों उड़ा दिया कि गगन में अब अवकाश ही नहीं रह गया।

उस समय, युद्धभूमि में पड़े हुए उस दंडायुध को, जो कुंभकर्ण के द्वारा वहाँ छोड़ा गया था, जो बड़े हीरक-पर्वत के जैसा तीक्ष्ण प्रकाश फैला रहा था, जिसने पूर्वकाल में देवों को युद्ध से भगाया था, जिसने (अपने भार से) धरती को झुका दिया था और जो उज्ज्वल रत्नों से जटित था, हनुमान् ने अपने हाथ में उठा लिया।

वीरता में दृढ रहनेवाला हनुमान् उस दंडायुध को लेकर राक्षसों पर यों टूट पड़ा और उन्हें मारने लगा कि उसके वेग और संहार-लीला को देखकर देवता भी यह कहते हुए कि 'यह वायुदेव नहीं, 'यह अग्निदेव नहीं', अपलक खड़े रहे। ऐसा लगा, मानों यम स्वयं क्रोधमय स्वरूप धारण करके उस भयंकर युद्ध में आ गया है।

सर्वशास्त्रों का पंडित वह वीर (हनुमान्), तीक्ष्ण नेत्रोंवाले मत्तगजों पर, वेगवान् अश्वों पर, दौड़नेवाले रथों पर, राक्षसों के झुंड पर, उनकी देह पर और सिर पर—सर्वत्र यों संचरण कर रहा था, मानों चतुर्वेदों के द्वारा प्रतिपादित भगवान् पुंडरीकाक्ष (विष्णु) वही हो।

(हनुमान्) उसके ऊपर उमड़कर आनेवालों को अपने नेत्रों से चिनगारियाँ निकालता हुआ घूरकर देखता। उनको चीर डालता और उन्हें पीसकर यों चूर कर देता कि युद्धभूमि में मज्जा का प्रवाह बह चलता। गगन तक उठे हुए उसके आकार को देखकर देवता भी आशंका करने लगे कि कदाचित् तीनों लोकों को नापनेवाले विष्णु यही हैं।

मत्तगजों के मस्तकों को पकड़कर वह फोड़ देता था, जिनसे मोती निकलकर उसकी देह पर बिखर जाते। इससे मेघों को छूनेवाली उसकी वह देह इस प्रकार शोभित होती, मानों प्रलयकाल में प्रभंजन के बहने से मेरुपर्वत पर सब नक्षत्र गिर पड़े हों और उसपर सूर्य भी अपना प्रकाश फैला रहा हो।

हनुमान् अपने हाथ में दंडायुध को लिये यों डग भरता हुआ चलता, ज्यों वह धरती को आकाश के साथ टकरा देगा। उसने समुद्र जैसी राक्षस-सेना को चूर-चूरकर डाला। मत्तगजों तथा रथ आदि सब पदार्थों को चटनी बनाकर उनके प्राण पी लिये। यों, शत्रु का नाश करके अपना स्वर ऊँचा करके उसने गर्जन किया।

एक मुहूर्त्त में ही, रुधिर के भयंकर प्रवाह में शत-सहस्र मत्तगजों को कीचड़ बना डालनेवाला उस वीर (हनुमान्) ने, सिंह के समान सहस्रों बलवान् राक्षसों को अपने पैरों से पीस डाला और मद से मत्त हो संहार मचानेवाले दिग्गज के समान दिखाई पड़ा।

बल से युक्त होकर रथों, अश्वों और मेघ-समान मत्तगजों पर आरूढ, शरों की वर्षा करनेवाले, युद्धकला में निपुण, अनेक युद्धों में विजयी बने हुए—इस प्रकार के असंख्य वीर उस (हनुमान्) को घेरकर आये। लेकिन, उसने अपने दंडायुध को घुमा-घुमाकर सबको उड़ाकर आकाश में पहुँचा दिया।

वानरराज (सुग्रीव), नील, अंगद, कुमुद, जांबवान्, पनस—सब सेनापति युद्धोचित क्रोध से भर गये और उस भयंकर युद्ध में शत्रुसेना के समुद्र में इस प्रकार घुस गये कि एक दूसरे से पृथक् हो गये।

मारुति, जो 'समुद्रों' की संख्यावाली राक्षस-सेना के समुद्र में घुसकर (सैनिक-रूपी जल को) दोनों हाथों से उलीचनेवाला था, जो नख को शस्त्र बनाये हुए नरसिंह-मूर्त्ति के समान भयंकर था, अपने दंडायुध से शत्रुओं का मर्दन करता हुआ अकंप के सम्मुख आ पहुँचा।

पर्वत जैसे शरीरवाले सहस्र अकंप के उसके रथ में जुते थे, वह रथ मन से भी अधिक वेग से चलता था। ऐसे रथ पर वह धनुष लिये इस प्रकार खड़ा था, मानों पूर्वकाल में कार्त्तिकेय भगवान् के धनुःकौशल से आहत हो तारकासुर ही यह रूप धारण करके अब आ गया हो।

उसने हनुमान् को देखकर सोचा—यदि देवेन्द्र, चक्रधारी अनुपम वीर विष्णु, त्रिपुरों को जलानेवाले शिव, या अन्य कोई भी इस वानर से युद्ध करने आये, तो यह उसके प्राण अवश्य हरण करेगा।

यदि इस (हनुमान्) को मैं अभी नहीं रोकूँ, तो फिर सप्त समुद्रों से आवृत इस धरती का क्या होगा? (अर्थात्, सारी धरती विध्वस्त हो जायगी)। देव भी इसे नहीं रोक सकेंगे। संसार में क्षत्रिय नामक कुल को ही यह मिटा देगा—यों विचार करके शरों की वर्षा करता हुआ वह आगे बढ़ा। नक्षत्रों को छूनेवाले ऊँचे आकार से युक्त हनुमान् भी शीघ्र आ पहुँचा।

गजों, तुरगों और राक्षसों के संग, मेघ, आँधी और आग के संग, आगत प्रलय-काल के समान वह स्वर्ण-वीरवलयधारी अकंप ज्योंही आया, त्योंही वज्र-समान कंधोंवाले हनुमान् ने अपने दंडायुध को बड़े वेग से घुमाया।

शत्रुओं ने उस (हनुमान्) पर जो शस्त्र प्रयुक्त किये, फेंके या बरसाये, वे सब छितरा-छितराकर गिर पड़े। उस दृश्य को देखकर देवता भी आश्चर्यचकित रह गये। अबतक जैसा संहार-कार्य उस (हनुमान्) ने नहीं किया था, वैसा करना उसने अभी सीखा।

कल्पांत के प्रभंजन से भी विचलित न होनेवाले मेरु-जैसे हनुमान् ने, अकंपन के देखते-देखते, दस करोड़ हाथियों, मुख में लगाम से युक्त अश्वों तथा दृढ धुरीवाले रथों को चूर-चूरकर ढेर लगा दिया।

तब राक्षस अकंप, यह विचार कर कि आज इसे वीर-स्वर्ग में पहुँचा दूँगा और करवालधारी लंकाधिप को विजयी बनाऊँगा, नरों को परास्त करूँगा और देवों को अविनश्वर दुःख में डुबो दूँगा—आगे बढ़ा। तब हनुमान् ने 'आओ! आओ!' कहते हुए उसका स्वागत किया।

अकंप ने युद्धभूमि को आँख उठाकर देखा। बिल के समान अपने मुख को दृढता से बंद किये, शत्रु-संहार के लिए आँखों से क्रोधाग्नि निकालता हुआ, ध्वजाओं से अलंकृत

रथ को शीघ्रता से चलाता हुआ, शरों की वर्षा करता हुआ और मेघ के समान गर्जन करता हुआ वह आया और पर्वत के समान खड़े हुए हनुमान् के निकट जा खड़ा हुआ।

अकंप के अनेक शर, जो वज्र के समान थे, जो घनी अग्नि-ज्वालाएँ बरसाते थे, जिनमें गिद्धों के बड़े-बड़े पंख बँधे थे, जिन्होंने देवों के वक्ष भी चीर डाले थे, जो स्वर्ण-वलयों से अलंकृत थे, हनुमान् के कंधों एवं वक्ष पर छितरा गये।

हनुमान् के वक्ष और कंधों पर जब शर लगे, तब रुधिर का प्रवाह होने लगा। उसने झट अपने दंड को इस प्रकार चलाया कि रथ के दोनों ओर जुते हुए खच्चर एवं रथ की धुरी चूर-चूर हो गिरे।

'इसे धनुष से जीतना असंभव है'—यों विचार करके, साकार अंधकार के जैसे उस राक्षस ने, समुद्र के जैसे गरजते हुए, देव-शिल्पी के द्वारा निर्मित एक भयंकर दंडायुध को अपने बलिष्ठ हाथ में लिया।

फिर, दोनों परस्पर टकराये। दाहिनी और बाईं ओर झुक-झुककर पैंतरे बदलते हुए घूमे। प्रलयकाल के जैसे गरजे। ताल ठोंका। नीचे झुककर परस्पर निकट आये। झट ऊपर की ओर उछले। (दंड को) घुमाकर एक दूसरे को मारा। एक दूसरे पर आघात कर फिर पृथक् हुए।

फिर, भुजाओं पर ताल ठोंककर एक दूसरे से भिड़ गये। ऊपर की ओर उछले। धरती पर झुके। एक दूसरे के निकट धीरे-धीरे आ पहुँचे। बड़े वेग से अपने पर किये गये आघात को नीचे से, ऊपर से रोका। (शत्रु का बल अधिक है या अपना बल, यह) कुछ भी नहीं जान पाये। एक दूसरे को मार डालने की शपथ ली। घूम-घूमकर पैंतरे बदलना छोड़कर सीधे चल पड़े।

असत्य से विरोध रखनेवाले (हनुमान्) ने, अंजन का विरोध करनेवाले (अर्थात्, अंजन से भी अधिक काले रंगवाले अकंप) के दृढ वक्ष पर दंड से प्रहार किया। उस घोर राक्षस ने अपने दंडायुध से उसे रोक लिया। लेकिन (हनुमान् के दंड के आघात से) उस (राक्षस) का हाथ उसके दंड के साथ ही टूटकर धरती पर गिर पड़ा।

दाहिना हाथ टूटकर गिर जाने पर, समुद्र के समान क्षुब्ध हो खड़े अकंप ने हनुमान् के मालालंकृत वक्ष को लक्ष्य करके अपने बायें हाथ से प्रहार किया। तब ऐसा लगा, जैसे हीरक-पर्वत पर ही वज्र टूटा हो।

राक्षस महान् वज्र जैसे दंड को अपने कर में रखे हुए था, तो भी हनुमान् ने यह सोचकर कि यह शस्त्रहीन है, इसे दंड से मारना अधर्म है, ओंठ चबाते हुए अपने बायें हाथ से उस राक्षस के वक्ष पर प्रहार किया। तब उस राक्षस ने मुँह से यों रुधिर उगला, ज्यों पहले से ही रुधिर पिये खड़ा हो।

पुनः हनुमान् ने अपने बायें हाथ से उस (अकंप) की कनपटी पर मारा, जिससे वह नीचे गिर पड़ा। उसके प्राण निकल गये। सारी राक्षस-सेना महान् सिंह को देखकर भागनेवाले वन्य पशुओं के समान तितर-बितर हो गई।

अकंप मरकर गिरा। राक्षस-सेना भी नष्ट हुई। वानर-सेना (जो भाग रही थी) लौटी। पौरुष से भरे वीर (लक्ष्मण) के शरों से बड़ी सूँड़वाले क्रोधी हाथी मिट गये। पताकाओं से अलंकृत रथों के टूटने से उनमें जुते अश्व भी मिट गये।

उधर हनुमान्, जो शत्रुसेना के भीतर बहुत दूर चला गया था, लक्ष्मण के गर्जन को नहीं सुन सका। वज्रघोष को भी दबा देनेवाली उनके धनुष्टंकार को नहीं सुन सका। अपने वीरों में से किसपर क्या विपदा पड़ी है, इस बात को बतानेवाला भी कोई नहीं था। अतः, युद्ध करनेवाले किसी पर्वत के जैसे वह वीर (हनुमान्) बहुत दुःखी हुआ।

बहुत दूर तक फैली हुई वानरसेना-रूपी समुद्र में अंगद नैर्ऋत (दक्षिण-पश्चिम) दिशा में सप्त योजन दूर निकल गया था। वानराधिप (सुग्रीव) उसी दिशा में अंगद से भी आगे, चौदह योजन दूर निकल गया था। लक्ष्मण सुग्रीव से आगे पचास योजन दूर पर था।

अन्य वानर, युद्ध करते हुए चार पाँच योजन तक (राक्षस-सेना के भीतर) निकल गये थे। उनको घेरकर राक्षस-सेना, जल पर कोंई के समान फैल गई थी, जिससे मारुति एवं लक्ष्मण एक दूसरे से दो-तीन खात दूर पर हो गये थे।

थका हुआ हनुमान् लक्ष्मण के निकट जाने का विचार करके प्रलयकालिक चंडमारुत के समान चल पड़ा और (लक्ष्मण के शरों से निष्पन्न) अनेक चिह्नों को देखता हुआ आगे बढ़ा।

हनुमान् ने देखा कि रुधिर-प्रवाह गजदंतों, मयूरपंखों के बने छत्रों, विविध रत्नों एवं स्वर्ण और मोतियों को बहाता हुआ चल रहा है और श्वेत छत्रों से युक्त होकर जलचर मीनों से भरा-सा एवं शस्त्रों की कांति-रूपी फेन से युक्त दिखाई पड़ रहा है।

हनुमान् ने देखा कि दिशाओं में फैले हुए राक्षसों पर प्रयुक्त शर, कटे हुए सिरों के साथ गगन-तल में जाकर (एक दूसरे से) टकराते हैं, जिनका शब्द सर्वत्र प्रतिध्वनित होता है। फिर, वे ऐसे गिरते हैं, जैसे प्रलयकाल में शिलाओं की वर्षा होती है।

हनुमान् ने देखा कि बड़े शूलधारी राक्षसों के द्वारा प्रयुक्त शस्त्र वीर लक्ष्मण के शरों से टकराकर दिशाओं में चिनगारियाँ बिखेरते हुए जा गिरते हैं, जैसे नक्षत्र गगन से गिर रहे हों और दावाग्नि के जैसे जल उठते हों।

हनुमान् ने देखा कि करुणावान् पुरुषश्रेष्ठ (लक्ष्मण) के शर गगन में सर्वत्र फैलकर निरंतर यों चमक रहे हैं, ज्यों अँधेरे श्मशान में, देवों के देखते हुए, नृत्य करनेवाले अष्ट भुजाओं से युक्त देव की घुँघराली जटाएँ ही जगमगा रही हों।

गगन तक उठे हुए उस (हनुमान्) ने उस कबंध-समूह को (राक्षसों के धड़ों के ढेर को) देखा, जो पर्वत के समान रुधिर-धाराओं को बहाता हुआ पड़ा था और ऐसा लगता था, मानों काल, अंधकार को रात्रि का राजा मानकर (उसके स्वागत में) दीप जला रहा हो।

हनुमान् ने देखा कि रथ, हाथी और घोड़े राक्षस-वीरों के मर जाने पर इस प्रकार भटक रहे थे, जिस प्रकार सुशासन करनेवाला राजा के अभाव में किसी देश की प्रजा भटक रही हो।

हनुमान् ने देखा कि पुष्पमालाओं से अलंकृत वक्षवाले लक्ष्मण के दृढ शरों की वर्षा जलवर्षा से भी तिगुने वेग से हो रही थी, जिससे राक्षस-वीर मरकर सर्वत्र बिखरे पड़े थे। उनके रक्त और शस्त्रों से समुद्र, दीर्घ अरण्य तथा मेघों से आवृत पर्वत भर गये थे।

युगांत के बवंडर के समान घूमनेवाले तथा रुधिर-समुद्र को फाँदकर चलनेवाले पराक्रमी (हनुमान्) ने ब्रह्मांड को भेद डालनेवाली धनुष का टंकार सुना (और उसे लक्ष्मण के धनुष का टंकार जानकर) संसार को मिटानेवाले प्रलय-समुद्र से भी दुगुना गर्जन किया।

टंकार को सुनकर वह (लक्ष्मण के) समीप आ पहुँचा और यह सोचते हुए कि अब इनसे और सब (वानर-वीरों) की बात ज्ञात हो सकती है, उन (लक्ष्मण) के देखने के पूर्व ही स्वयं झट जाकर उनको प्रणाम किया, फिर यों कहा—

उस वीर (हनुमान्) ने सिर पर हाथ जोड़कर कहा— हे आर्य! वानर-वीर कहाँ हैं? सूर्यकुमार (सुग्रीव) तुमसे कैसे पृथक् हो गया? अंगद किस ओर गया? विशाल अंधकार में समुद्र के समान फैली हुई सेना में जो घटित हुआ है, उसका कोई ज्ञान मुझे नहीं है। आप बतलाइए।

समुद्र के साथ ऐंद्र व्याकरण को भी जिसने पार किया था, उस (हनुमान्) ने कहा—हे आर्य! कौन-कौन भाग गये और युद्ध में खड़े रहनेवालों में से किसकी क्या दशा हुई? यह कुछ भी मैं नहीं जानता हूँ। किसी (वीर) के लौटकर आने के पश्चात ही उसके बारे में कुछ ज्ञात हो सकता है।

हे आर्य! हमारे शत्रुओं ने माया उत्पन्न की है। अब इस माया को दूरकर प्रज्ञा प्राप्त करने का उपाय भी है। तुम अपने विवेक से उस उपाय को करो। दिव्य अस्त्र के प्रयोग से इस माया को दूर कर दो, नहीं तो तुम्हारा कोई भी व्यक्ति यहाँ से लौटकर नहीं जा सकेगा—यों हनुमान् ने कहा।

(तब) धनुर्विद्या की संपत्ति से समृद्ध (लक्ष्मण) ने कहा—ठीक है। वैसा ही करूँगा। फिर, सहस्रनामवाले (विष्णु के अवतार, राम) को नमस्कार कर, शरों में से एक को चुनकर मेरु को धनुष बनानेवाले (शिवजी) के अस्त्र का अभिमंत्रण किया (अर्थात्, पाशुपतास्त्र के मंत्र का उच्चारण किया) और विद्युत् के समान दाँतोंवाले राक्षसों पर छोड़ा।

ज्यों ही पाशुपतास्त्र का प्रयोग हुआ, त्यों ही दावाग्नि से संपूर्ण रूप से आवृत बाँसों के झुण्ड के जैसे ही राक्षस-सेना का समुद्र जलने लगा। सब दिशाओं से अँधेरा दूर हो गया। सब वानर-वीर मोह से मुक्त हो गये।

पाशुपतास्त्र का प्रयोग हुआ, यह जानकर और काले मोहांधकार के दूर होने से महोदर वहाँ से अदृश्य हो गया। जो वानर तितर-बितर हो गये थे वे, सब लक्ष्मण के निकट यों एकत्र हो गये, ज्यों बादल घिर आये हों और हर्षध्वनि कर उठे।

देवों के देव (राम) के अनुज ने जब देखा कि किसी (वानर-वीर) की कुछ हानि नहीं हुई, तब उनके मन की आशंका दूर हुई। उनको घेरकर खड़ी वानर-सेना में हर्ष-ध्वनि गूँज उठी। देवता पुष्पवर्षा करने लगे, लक्ष्मण अत्यन्त उज्ज्वल हो शोभायमान हुए।

दूत लंकेश के निकट दौड़कर गये और सारी घटनाएँ कह सुनाईं। तब रावण ने पूछा—क्या तुम लोग भयभीत होकर भाग आये हो? क्या शत-समुद्र (संख्यावाली) सेना को एक ही अस्त्र से पराजित करना संभव है? दूतों ने उत्तर दिया—पाशुपतास्त्र से वह संभव हुआ। फिर, रावण कह उठा—हाँ, उससे संभव हुआ होगा।

रावण ने दूतों से कहा—विकसित पुष्पमालाधारी मेरे पुत्र (इन्द्रजित्) को यह समाचार सुनाओ। दूतों ने वैसा ही किया। यह सुनकर (इन्द्रजित्) व्याकुलचित्त हुआ। फिर प्रश्न किया—पुरुषों में श्रेष्ठ वह (राम) कहाँ है? वीर हनुमान् कहाँ रहता है? अन्य वानर एवं विभीषण कहाँ हैं? शीघ्र बतलाओ।

दूतों ने उत्तर दिया—'राम अभी नहीं लौटा है। किसी पर्वत पर है। (राक्षसों की) माया को पहचाननेवाला विभीषण सेना के लिए भोजन लाने गया है। शीघ्र कार्य पूर्ण करनेवाले हे प्रभु! यही घटित हुआ है।' तब इन्द्रजित् ने पूछा—'महोदर कहाँ है?' उन्होंने उत्तर दिया—'गगन में।' रावणि बोला—'बहुत सुन्दर।'

रावणकुमार ने सोचा—'यही (ब्रह्मास्त्र के प्रयोग का) उचित समय है।' फिर, वह एक विशाल वटवृक्ष के नीचे गया। राक्षस-पुरोहितों ने, जो नीति के मार्ग से हटे हुए थे, प्रधान होम के लिए सब आवश्यक साधन जुटाये।

उस (इन्द्रजित्) ने शरों की समिधा सजाई। 'तुंबै' पुष्प बिखेरे। काले तिल बिखेरे। अग्नि प्रज्ज्वलित करके उसमें दाँत एवं सींग से युक्त बकरी का रक्त और मांस का होम किया।

होमाग्नि सुगंधि फैलाती हुई भड़क उठी और दाहिनी ओर घूम उठी। उसे शुभसूचक बड़ा शकुन मानकर राक्षसों की सारी निष्ठुरता का आगार वह राक्षस (इन्द्रजित्) यह सोचकर कि युद्ध में विजय होगी—ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने के निमित्त ऊपर की ओर उठा।

बड़ी माया से युक्त वह (इन्द्रजित्) गगनमार्ग में अदृश्य होकर चला। जब तक संचरण करनेवाले ग्रहों का उचित योग न हो, तबतक उचित समय की प्रतीक्षा करता हुआ, मेघों के मध्य यों छिपा रहा कि देवताओं की दृष्टि और मन भी उसपर नहीं गये। मुनि भी उसे नहीं पहचान सके।

इन्द्रजित् इस प्रकार खड़ा रहा। इसी बीच महोदर ने एक छल किया। उसने अपनी माया से इन्द्र का वेष धारण कर ऐरावत जैसे हाथी पर आरूढ हो राम से युद्ध करने आया। उसके साथ देवता और मुनि भी थे।

उसकी माया से ऐसा दृश्य उत्पन्न हुआ कि राक्षस, मनुष्य एवं वानर—इनके अतिरिक्त सृष्टि में जितने प्राणी थे, वे सब उसके साथ युद्धक्षेत्र में आ पहुँचे। वह दृश्य देखकर विशाल वानर-सेना भय से काँप उठी।

वानर यह सोचकर चिन्तित हुए कि चार दाँतोंवाले श्वेत गज पर आरूढ वह इन्द्र ही है। अन्य सैनिक देवता हैं। शेष लोग देवों की इच्छा के अनुसार कार्य करनेवाले ऋषि हैं। क्या कारण है कि ये सब क्रुद्ध होकर हमसे युद्ध करने आ गये हैं?

चक्र को छोड़कर धनुष हाथ में लेनेवाले कमलाक्ष (राम) के भाई (लक्ष्मण) ने हनुमान् के उज्ज्वल मुख को देखकर पूछा—हमने कौन-सा ऐसा अपराध किया कि देवता और मुनि हमसे युद्ध करने चले आये हैं? शीघ्र कहो।

जब लक्ष्मण यों पूछ ही रहे थे, तभी पलक मारने के भीतर ही इन्द्रजित् ने (लक्ष्मण पर) ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया। मानों स्वर्णमय पर्वत पर असंख्य पक्षी आ टूटे हों, ऐसे ही उनपर अवर्णनीय कांति से युक्त अनेक शर आ लगे।

कोटि-कोटि शत सहस्र कठोर बाण उनके सारे शरीर को ढककर चुभ गये। लक्ष्मण किंकर्त्तव्यमूढ होकर, अपनी प्रज्ञा खोये हुए इस प्रकार मूर्च्छित हो गिर पड़े, जिस प्रकार बलवान् हाथी अपने सोने के स्थान पर लेट जाता हो।

हनुमान् यह सोचने लगा कि हमारा मित्र इन्द्र क्यों हम पर आक्रमण कर रहा है? अब इसके हाथी के साथ ही इसको उठाकर फेंक दूँगा—ऐसा करने के लिए वह उद्यत हुआ। किन्तु, इतने में उसकी देह पर असंख्य शरों के आ लगने से वह निश्चल और मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

सूर्यपुत्र (सुग्रीव) की देह पर अनेक तीक्ष्ण बाण सर्वत्र चुभ गये, वह पिघले ताँबे के जैसे नेत्र किये गिर पड़ा। उसकी देह से रक्त-प्रवाह होने लगा। वह दृश्य ऐसा था, जैसे स्वर्णमय पर्वत पर पलाश-वन पुष्पित हुआ हो।

दस सहस्र तीक्ष्ण बाण लगने से अंगद धराशायी हो गया, जैसे वज्राहत होकर सिंह गिर गया हो। वानर-सेना में बड़ा यश पाया हुआ जांबवान् भी वक्ष और कंधों में बाण लगने से धरती पर लोट गया।

नील ने सहस्र बाण लगने से यम-मुख का दर्शन किया। ऋषभ स्वर्ग जा पहुँचा। पनस के प्राण उन बाणों से समाप्त हो गये। कुमुद, बाणों से आये यम के द्वारा, निहत हुआ।

समुद्र में बाँध बनानेवाला नल सहस्र बाणों से मृत हो गया। वाली के समान बलवाला मैन्द और उसका भाई दुर्मिन्द मरकर गिर पड़े। यम के समान भयंकर गवय ने स्वर्ग के दर्शन किये। शर-पंक्ति के आ लगने से केसरी मिट्टी में अदृश्य हो गया।

विंध्याचल के समान कंधोंवाला शतबली, सुषेण, विनत गंधमादन, हिडुंब, दधि-मुख—सब उमड़कर आनेवाले असंख्य शरों के उनकी देह में लगने से प्रज्ञाहीन होकर धरती पर गिर पड़े।

अनेक सहस्र अनुपम बाणों के लगने से अन्य सब वानर प्राणहीन होकर गिर पड़े। उनके रक्त का प्रवाह गरजती हुई वीचियों से शब्दायमान समुद्र में जा मिला।

ब्रह्मास्त्र ने सबको धराशायी कर दिया। वानर उस अस्त्र से बचने का कोई मार्ग नहीं देख पाये। जिस प्रकार कोई कील को घेरकर दृढता से भूमि में ठोंक दे, उसी प्रकार इन्द्रजित् ने अपने वज्र-समान शरों से उनको आहत किया, तो वे खड़े-खड़े ही निष्प्राण होकर गिर पड़े।

(लक्ष्मण और अन्य वानर) बेहोश होकर धरती पर पड़े थे और कुमुद-पुष्प जैसी

आँखोंवाली देवस्त्रियाँ सिर झुकाये व्याकुल हो रहीं थीं। रक्त-प्रवाह ऊपर, नीचे और चारों ओर वह चला, जिससे वह वानर-सेना का समुद्र प्रवाल-वन से शोभायमान क्षीर-समुद्र के समान दिखाई देने लगा।

वानरों के अनेक 'समुद्र' स्वर्ग जा पहुँचे (अर्थात्, अनेक 'समुद्र' संख्यावाले वानर स्वर्ग जा पहुँचे)। देवों ने उनको देखकर अपने अतिथि मानकर बड़े आनंद के साथ उनका कुशल पूछा और सत्कार किया। फिर, आग्रह से कहा—अभी (राक्षसों का वध करने के लिए) धरती पर लौट जाइए।

देवों ने वानरों से कहा—सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा) के अस्त्र का तुम लोगों ने आदर किया है, अन्यथा तुम मृत्यु पाने योग्य नहीं हो; क्योंकि दृढ धनुर्धारी विष्णु के अवतार राम के दासों के दास भी दृढ मूलवाले संसार के बंधन से मुक्त हो जाते हैं। (तुम लोग राम के दास हो, अतः स्वर्ग के नहीं, मोक्षपद के योग्य हो)।

हमारे कार्य करने के लिए तुम लोग धरती पर उत्पन्न हुए। तुम्हारे प्राण हमारे ही प्राण हैं। केवल शरीर भिन्न हैं। कमलाक्ष (राम) की सहायता करते हुए तुमने प्राण छोड़े हैं, अतः तुम हमारे लिए पूज्य हो।

उधर इन्द्रजित् ने यह कहकर कि तीक्ष्ण नेत्रवाले वानरों के संग लक्ष्मण मर गया है और राम युद्धभूमि से अन्यत्र चला गया है—उनकी निन्दा की। फिर, विजयशंख बजाता हुआ शीघ्रता से अपने पिता के निकट जा पहुँचा और हलचल से भरे युद्ध में जो घटित हुआ था, कह सुनाया।

रावण ने पूछा—क्या वह राम नहीं मरा। पुत्र ने उत्तर दिया—वह भयभीत होकर सब-कुछ छोड़कर चला गया है। जब भाई, मुख्य मित्र तथा अन्य वानर-सेना ये सब मारे गये, तब क्या वह इसका प्रतिकार किये विना अपना बल भूलकर चुप बैठा रहेगा? (अर्थात्, राम अवश्य युद्ध करने आयेंगे और उसमें उनको पराजित किया जायगा—यह इन्द्रजित् का अभिप्राय है)

रावण ने कहा—हाँ, यह ठीक है और मन में शान्ति पाई। उसका पुत्र (इंद्रजित्) भी अपने आवास को गया, महोदर भी राजा की आज्ञा पाकर अपने घर चला गया। प्रभु (राम) अन्यत्र ही रहे।

वीर (राम) ने सब दिव्य अस्त्रों की यथाविधि पूजा इस प्रकार संपन्न की कि उनके रक्तकमल-समान कर और भी लाल हो उठे। पूजा पूर्ण करके (राम) युद्धभूमि की ओर चल पड़े।

उन्होंने जलती उल्का जैसे अपने बाण (आग्नेय अस्त्र) को अपने हाथ में लिया। ऐसे अंधकार को, जो इतना घना था कि चुल्लू में भरकर पिया जा सके, दूर किया। अपने अवारणीय पद-कमल को रखते हुए वे (राम) युद्ध-क्षेत्र में जा पहुँचे और सेना से पटी हुई उस विशाल धरती पर शीघ्र दृष्टि फेरी।

विशाल दिशाओं में दृष्टि डाली। प्रयत्नपूर्वक ध्यान से बारी-बारी से देखा।

उनका विशाल कमल जैसा मुख तमतमा उठा। शवों से भरे युद्धक्षेत्र के भीतर वे घुस गये और रक्षण-कार्य में समर्थ अपने साथी सेनापतियों को एक-एक करके देखा।

जब सुग्रीव को पड़ा देखा, तब उनकी कमल-जैसी दोनों आँखों से अश्रु की बाढ़ उमड़ पड़ी। वे दीर्घ समय तक खड़े उसास भरते रहे, फिर बोल उठे—'हाय! क्या यह तुम्हारे लिए उचित है?' जब उसके पार्श्व में दृष्टि फेरी, तब वहाँ मारुति को पड़ा देखा।

मन में अत्यंत व्याकुल होकर राम अश्रु बहाते हुए रो पड़े—समुद्र पार कर, राक्षसों को जड़ से हिलाकर मुझे जीवित रखने के लिए तुमने जो सहायता की, क्या वह सब इसीलिए था? राक्षस के छोड़े हुए बलिष्ठ बाण क्या तुम्हारे शरीर को भी भेदकर निकल गये?

फिर, राम बोले—हे यशस्विन्! पापकृत्यवाला मैं तुम्हारा साथी हो गया, इसलिए क्या पूर्व में ही देवों के द्वारा तुमको दिये गये वरदान[1] मुनियों के वचन एवं सीता के द्वारा की गई सहायता— सब व्यर्थ हो गये? मेरे समान (अभागा) कौन होगा?—इस प्रकार वे अपनी निन्दा करने लगे।

(फिर, राम बोले) नीच कृत्य करने के लिए क्षुद्र राज्य को पाना चाहा। अपने पिता की मृत्यु का कारण बना। पितृतुल्य जटायु को मिटाया। आज इतने वीरों को मरवाकर मैं चुप खड़ा हूँ। क्या मेरी कठोरता की कोई सीमा भी हो सकती है?

बड़े भाई को मारकर उसके अनुज को (सुग्रीव को) वानरों का राजा बनाया। यह सब मैंने विनाश फैलाने के लिए ही किया। तुम सबको, जो क्षमा में दृढ रहनेवाले हो; मैंने इतनी विपदाओं में डाल दिया। मैं धरती का भार बनकर रहने के लिए ही उत्पन्न हुआ हूँ।

वृषभों के बीच में पड़े एक वृषभ के समान, अंगद को मृत पड़ा देखा। उनकी आँखों से आग निकल पड़ी और 'शस्त्रों का बोझ ढोनेवाला मैं, पापी, इस विपदा को देखकर भी इनकी रक्षा के लिए जो प्रयत्न कर रहा हूँ, यह भी खूब है!' यह कहते हुए रो पड़े।

फिर, राम की दृष्टि अपने ही समान अनुज (लक्ष्मण) पर पड़ी, जो अपनी देह पर लगे असंख्य शरों के अपार कांतिपुंज से प्रकाशित रुधिर में, शवों के मध्य पड़ा सो रहा था, जैसे रुधिर की धारा में कोई सर्प बह रहा हो।

उनका मन व्याकुल हो उठा। दुःख उमड़ उठा। आहें भरते रहे। उनके मन के जैसे ही उनकी नीलरत्न समान देह भी काँप उठी। वज्र से आहत सालवृक्ष के समान वे (राम) मूर्च्छित हो धरती पर गिर पड़े, तो धर्म-देवता भी अपनी आँखें पीटकर रो पड़ा।

करुणा की मूर्त्ति वे (राम) एक मुहूर्त्त-भर साँस लिये बिना पड़े रहे। बिलकुल बेसुध-से रहे। शरीर से पसीना नहीं निकला। आँखें नहीं खोलीं। उनके हाथ और पैर अपने स्थान से हिले नहीं, किन्तु उनके प्राण नहीं छूटे।

---

१. ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि देवों ने हनुमान् को वर दिये थे कि ब्रह्मदंड, वज्र, पाश या अन्य किसी शस्त्र से यह नहीं मरेगा। —अनु०

उस विपदा में उनकी सहायता करनेवाला कोई नहीं था। वे अपने अनुज को छाती से लगाकर मूर्च्छित हो पड़े रहे। उनको उठानेवाला कोई नहीं था। मुख से आश्वासन के वचन कहनेवाला कोई नहीं था। उनके साथी सब मृत हो गये थे। ऐसी दशा में एकाकी उन (राम) की वेदना को दूर करनेवाला कोई नहीं रहा।

स्वर्गलोक की स्त्रियाँ अपने पेट पीट-पीटकर रो रही थीं। उनके अश्रु, वर्षा के जैसे लगातार बरस रहे थे। देवता अश्रु बहा रहे थे। वह चराचर जगत् सारा ज्ञानस्वरूप विष्णु का ही आकार है, अतः सब प्राणी उनकी (राम की) व्यथा से व्याकुल होकर काँप उठे।

सद्योविकसित कमल पर आसीन देव (ब्रह्मा) एवं त्रिनेत्र (शिव) के मुख मंदहास-रहित होकर करुणा से मुरझा-से गये। एक ही वर्ग में देवताओं की ऐसी दशा हुई, तो अन्य देवों के दुःख का वर्णन करने की क्या आवश्यकता? राम की विपदा को देखकर शत्रु भी रो पड़े। पाप का देवता भी उनको देखकर रो पड़ा।

महिमामय राम ने कुछ होश में आकर दीर्घ श्वास भरते हुए आँखें खोलकर अपने भाई को देखा। यह सोचकर कि लक्ष्मण स्वर्गवासी हो गया और अब वह नहीं लौटेगा, वे मन में अत्यधिक दुःखी हुए। घाव में जैसे अग्निकण रख दिया गया हो, वैसे ही वे तड़पकर रो पड़े।

'मेरे पिता का देहान्त हुआ'—यह सुनकर भी मैं जीवित रहा। समस्त राज्य भरत को ही दे देने की बात छोड़ दी (अर्थात्, चौदह वर्ष के पश्चात् भरत राज्य लौटा देगा और उसे स्वीकार करने की सम्मति मैंने प्रकट की)। यह सब इसीलिए मैंने किया कि मैं अकेला नहीं था, तुम भी मेरे साथ थे। किन्तु, अब तुम्हारे शब्द मैं नहीं सुन रहा हूँ। अब मैं नहीं जिऊँगा। हे तात! मैं आ गया! हे तात! मैं आ गया। (अर्थात्, मैं भी तुम्हारे साथ ही मर रहा हूँ)।

(मेरी) माता तुम्हीं हो, पिता तुम्हीं हो, तपस्या तुम्हीं हो, पुत्र तुम्हीं हो, भाई तुम्हीं हो, संपदा तुम्हीं हो। ऐसे प्रिय तुम; यश की भी कामना छोड़कर; मुझे छोड़कर चले गये। मैं तो तुम्हें छोड़कर अब भी जीवित हूँ, तुम से भी बढ़कर कठोर हृदय रखता हूँ।

गहरे घावों से भरे तुम्हारे शरीर में प्राण नहीं देख रहा हूँ। अभी मैं सब कुछ सहते हुए अपने प्राणों को ढो रहा हूँ और रो रहा हूँ। हे सिंह-समान! मैं मिट जाऊँगा। अहो! मेरा हृदय अभी दो टुकड़े नहीं हुआ, वह जैसे के तैसा ही है। (अतः) और भी दीर्घ काल तक जीवित रहना हो, तो भी जीवित रहूँगा।

विशाल कानन में चौदह वर्ष तक हम एक साथ निवास करते थे। उस समय तुम मेरे भोजन के लिए सब प्रकार के (फल, कंद आदि) भोजन ला देते थे और स्वयं तुम बिना खाये रहते थे। तुम धूप की भी परवाह किये बिना (मेरी सेवा करते) रहते थे। आज क्या तुम देह से बहुत थक गये हो और मन से भी अत्यंत शिथिल होकर सो रहे हो? क्या इस निद्रा को नहीं त्यागोगे?

दो हृदय जो परस्पर संदेह नहीं करते, वे एक ही होते हैं—यह कथन जब निरर्थक हो गया है, तब मुझ पापी में करुणा नामक गुण कैसे रहेगा? किंचित् भी दोष

जिसमें नहीं है, ऐसे तुम को छोड़कर मैं अभी तक (प्राणों के साथ) संचरण कर रहा हूँ। हे तात ! अब तुम्हारे साथ सम्बन्ध (अर्थात् बंधुत्व) रखनेवाले मेरे प्राण हैं या मैं हूँ ? यह नहीं तो (मेरा) और कौन-सा (भाग) है ?

(जनक द्वारा किये गये) यज्ञ में जाकर धनुष को भंग किया और यह विचार करके कि यह हमारे जीवन को सुखी बनायेगा, एक विष को (अर्थात् , सीता देवी को) ले आया। बुरे विचार करके अपने बंधुजनों को तपाया। इन सब कार्यों में किंचित् भी मैं पीछे नहीं रहा। इतनी विपदा मैंने उत्पन्न कर दी।

मिट्टी की कामना करके (अर्थात् , राज्य के लोभ से) मैंने माता (कैकेयी) आदि बंधुजनों को ऐसी पीडा उत्पन्न कर दी, जैसे घाव पर आग रख दी हो। स्त्री की कामना करने के कारण यह दुर्भाग्य मैंने पाया। हाय ! मेरा प्रशंसनीय यश भी बहुत सुन्दर है ! मैं क्या कोई साधारण नर हूँ ?

तुम मृत हो गये। अब मैं जीवित नहीं रहूँगा। (यदि मैं अपने प्राण छोड़ दूँ, तो) भरत पृथ्वी का शासन नहीं करेगा। हाय ! दुःख को न सहकर सब बंधुजन अपने प्राण छोड़ देंगे। अहो ! मैंने उत्तम धर्म का विचार करके (ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किये बिना) किंचित् शिथिल रहा, तो उसका परिणाम क्या यही होना था ?

तुमने मेरे लिए किसी की परवाह नहीं की और धर्म, माता, पिता, बंधुजन तथा अन्य सबको छोड़ दिया। पर, तुम सत्य को कभी नहीं भूले। मेरे साथी बनकर जनमे। मेरा वियोग नहीं सहन करके, मेरा अनुसरण करते हुए वन में आये। अब तुम मर गये। ऐसे तुमको (इस निष्प्राण दशा में) देखकर भी मैं प्राणों को धारण किये हूँ। तो क्या मैं कोई साधारण नर हूँ।

किसी महान् पुरुष की पुत्री को कोई बलवान् राक्षस बंदी बनाकर रखे (तो यह चाहिए था कि धर्म उस राक्षस का विनाश कर दे, किंतु ऐसा नहीं हुआ) और जब महात्मा लोगों के द्वारा प्रशंसित सद्धर्म भी उस राक्षस के अधीन होकर रहे, तब तीनों लोकों को एक साथ विनष्ट हो जाना चाहिए। यदि ऐसा न हुआ, तो क्या मेरे दृढ धनुष का अमोघ कौशल नहीं प्रकट होगा ? (अर्थात् , मैं अपने धनुःकौशल से त्रिलोक को मिटा दूँगा)।

समुद्र कहलानेवाली गहरी खाई, विराध, वायु के समान उड़नेवाले काकासुर की पुतली, खरासुर, सुदृढ धड़वाले सात सालवृक्ष, वाली—क्या केवल इनके ऊपर ही मेरा बल सफल होकर रह जायगा ? अहो !

मैंने तुमसे कहा था कि इन्द्रजित् को तुम्हीं जीतो (और स्वयं मैं चुप रह गया था)। अब मैं जीवित भी रहूँ, तो क्या (इंद्रजित् आदि) महान् रथियों का वध कर सकूँगा ? हाय ! तुम जैसे भाई के साथ मैं नहीं रह सका और अपने इस झूठे जीवन का भार भी ढोने से असमर्थ हो रहा हूँ।

माता, बंधुजन, देश में रहनेवाले वेदज्ञ पंडित आदि सबलोग यह चिंता कर रहे होंगे कि हाय! अरण्य में उन (राम-लक्ष्मण) की क्या दशा हुई है ? न जाने वे कितने

व्याकुल रहते होंगे। हे वत्स (लक्ष्मण)! उनको देखने की मेरे मन में बड़ी इच्छा है। आओ। मुझे सिंहासनारूढ कराओ।

जिस समय तुम नागपाश से बँध गये थे, उस समय और इस समय, जब शत्रुओं ने यह विनाश उत्पन्न किया है, तब मैं तुम्हारे साथ न रहकर हट गया था। स्नेहहीन व्यक्तियों के जैसे कार्य करके भी मैं जीवित हूँ। संसार के लोग क्या मेरी विजय का उपहास नहीं करेंगे।

पहले, मैंने विभीषण को राक्षस-राज्य का मुकुट एवं उनकी अनुपम संपत्ति प्रदान की (अर्थात् , उन सबको दिलाने की प्रतिज्ञा की), किन्तु उस प्रतिज्ञा को पूरा किये विना ही मैं मर रहा हूँ। इससे इक्ष्वाकु-वंश को असत्याचरण का अपयश लगेगा। मुझ जैसे अविवेकी ने स्वयं ही अपना यश मिटा दिया है।

इस प्रकार के अनेक वचन कहते हुए राम बड़ी व्यथा से आह भरते रहे। फिर, सब इंद्रियों के एक (मन नामक) इंद्रिय में विलीन होने से, मृत जैसे पड़े हुए अपने भाई को प्रेम से गले लगाकर कुछ बोले विना मौन हो अपने को भूले हुए पड़े रहे।

देवों ने (राम को उस प्रकार पड़े) देखा। वे अपनी आँखें पीट-पीटकर रोते रहे, यह सोचकर कि न जाने इन सबका परिणाम क्या होगा, वे काँपने लगे। फिर, प्रेम से कह उठे— हे प्रभो ! हे भगवन् ! हमारे लिए तुम ऐसा अभिनय कर रहे हो, मानों वास्तव में इस प्रकार के दुःख भोग रहे हो। अन्यथा तुम्हें कैसे दुःख होगा ? (अर्थात् , तुम स्वयं भगवान् हो, अतः ये सब दुःख तुम्हें नहीं लगते)।

(देवता बोल उठे—) हे सुख-दुःखहीन ! तुम्हें यथास्थित रूप में जानने का सामर्थ्य हममें नहीं है। तुम्हारी सृष्टि के तत्त्व को भी हम नहीं समझते। भविष्य में क्या होनेवाला है, यह भी हम नहीं जानते। अतीत की घटनाएँ भी हमें ज्ञात नहीं हैं। वर्त्तमान की घटनाओं को यथार्थ रूप में जानने की शक्ति हममें नहीं है। तुम्हें नमस्कार करें और तुम्हारे बताये मार्ग पर चलें—इसके अतिरिक्त हम, तुम्हारे दास और क्या कर सकते हैं ?

हमने जब प्रार्थना की कि राक्षस-कुल का समूल नाश करके हमारे दुःख दूर करो, तब हम पर कृपा करके तुमने अपने लिए इस अयोग्य रूप को धारण किया और पृथ्वी के रक्षक बने हुए सूर्यवंश में उत्पन्न हुए, धर्म की रक्षा के लिए क्या तुम छिपे रहकर भी अपनी माया दिखाना चाहते हो ?

तुमने हमारी सृष्टि की। हमारे दुःख दूर करने के लिए तुम क्षत्रिय-वंश में मनुष्य बनकर अवतीर्ण हुए। तुम तीनों लोकों के दुःख दूर करनेवाले हो, हम इस आशा से प्रयत्नशील हैं। इस प्रकार प्रयत्न करके भी, तुम्हें साधारण मानव मानकर हम तुम्हारे वास्तविक स्वरूप को भूल गये हैं। यह माया भी अनुपम है। हे हमारे स्वामी ! (हमारे अज्ञान के अनुकूल) क्या तुम झूठ भी बोलने लगे हो ?[1]

हे परमेष्ठिन् ! तुम सारे ब्रह्मांड को तथा सृष्टि के समस्त प्राणियों को (अपने उदर के) भीतर और बाहर अवस्थित रखते हो। (इन सबको) निगल जाते हो, उगल देते हो,

---

१. देवों के सामने भी राम मनुष्य के जैसे ही अभिनय कर रहे हैं, इसलिए देवता राम को झूठ बोलनेवाला कह रहे हैं। —अनु०

नापते हो, धारण करते हो; इन सबके बाहर और भीतर तुम्हीं परिव्याप्त रहते हो; अतः तुम उस मकड़े के जैसे ही हो, जो अपने ही मुँह से सूक्ष्म सूत्र को उगलकर उससे जाल बनाकर स्वयं उससे लिपटा रहता है।

तुम्हारा यह खेल दुःखजनक-सा लगता है; किन्तु तुम्हें दुःख नहीं सताते। अतः, यह भी तुम्हारे लिए सुखजनक ही है। फिर भी हम अज्ञों को, तुम्हें दुःखी देखने पर, तुम्हारे प्रति प्रेम ही उत्पन्न होता है। करुणा और कोमल भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। हे आदि, मध्य और अन्त से हीन! यह सब (खेल) तुम्हारे बनाये ही पूर्ण होते हैं। हमसे कुछ भी नहीं होता।

तुम (प्राणियों के लिए) ज्ञात जैसे होकर भी उनके ज्ञान का विषय नहीं होते हो। तुम अवतीर्ण हुए हो—यह सोचकर हम आनंदित हो निर्भय रहते हैं। अब बीच में दुःख उत्पन्न होने से हम बलहीन हो गये हैं। तुम मनुष्य होकर हमारी रक्षा करने में निरत हो। हे हमारे शरण्य! हे लक्ष्मी के निवासभूत वक्षवाले! यदि तुम स्वयं ही हमारे दुःख नहीं दूर करोगे, तो हमसे ये दुःख नहीं दूर होंगे।

पूर्वकाल में तुम ने अंबरीष पर कृपा की थी,[१] ब्रह्मा के पुत्र (शिव) पर कृपा की थी।[२] हे हमारे स्वामी! जब हम तुमसे ही रक्षा की कामना करते हैं, तब तुम मन में यों व्याकुल होकर दुःखी क्यों होते हो? हम दिग्भ्रांत हो अत्यंत शिथिल हो रहे हैं। हे अपने अनुज के साथी! क्या तुम अपने इस दुःख को दूर करके हमारे ज्ञान को हमें लौटा नहीं दोगे?

इस प्रकार, अनेक वचन कहकर देवता दुःखी हो रहे थे। रामचन्द्र, जिन्होंने दुःख भोगनेवाले मनुष्य के आचरणों को अपनाने का संकल्प कर लिया था, अब मूर्च्छित होकर पड़े रहे। क्षुद्र कार्य करनेवाले राक्षसों के दूत ने रावण को यह समाचार सुनाया।

रावण ने (उन दूतों से) पूछा—तुम्हारे आने का क्या प्रयोजन है? तब दूतों ने उत्तर दिया—घोर युद्ध में तुम्हारे पुत्र ने जो शर छोड़ा, उससे (राम के) अनुज एवं साथी गिर गये, इसपर रामचन्द्र भी अत्यंत दुःख के कारण निष्प्राण हो गये। (१–२३०)

●

---

१. एकादशी-व्रत का अनुष्ठान करनेवाले अंबरीष पर दुर्वासा मुनि इसलिए क्रुद्ध हुए थे कि उनके स्नान करके आने के पूर्व ही अंबरीष ने तुलसी खाकर एकादशी का उपवास समाप्त कर दिया था। इस पर विष्णु भगवान् ने दुर्वासा के क्रोध से अंबरीष की रक्षा की थी। —अनु०

२. भस्मासुर को शिवजी ने यह वर दिया था कि जिसके सिर पर वह असुर अपना हाथ रखेगा, वह जलकर भस्म हो जायगा। तब उस असुर ने स्वयं शिवजी के सिर पर ही अपना हाथ रखकर उस वर की परीक्षा करनी चाही। तब विष्णु स्त्री के रूप में प्रकट हुए और उस असुर से कहा कि स्नान-संध्या आदि पूरा करने के पश्चात् वह आवे और उन्हें अपना बना ले। असुर ने जब संध्या करते समय अपने सिर पर हाथ रखा तब वह स्वयं जलकर भस्म हो गया। —अनु०

अध्याय २२

युद्धभूमि-दर्शन पटल

सत्पथ से विमुख वह (रावण) यह सोचकर कि दूत झूठ नहीं कह रहे हैं, (राम-लक्ष्मण के मारे जाने की बात सुनकर) आनंदित हुआ। उसका आनंद यों उमड़ पड़ा कि उसने अपनी संपत्ति की अनन्त राशियों को यों लुटा दिया कि माँगनेवाले भी ऊब उठे। फिर, आज्ञा दी कि बड़े हाथी पर डिंडोरा पीटकर यह समाचार घोषित किया जाय कि नगर के लोग आनंद मनावें और अभ्यंग-स्नान करें।

फिर, राक्षस (रावण) ने मरुत्त नामक राक्षस को आज्ञा दी कि पहले तुम जाकर युद्धक्षेत्र में गिरे हुए सब राक्षसों के शवों को शीघ्र समुद्र में डाल दो। यह बात तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जानने न पाये। यदि जान लेगा, तो मैं तुम्हारा सिर कटवा लूँगा और तुम्हारा सारा गौरव मिटा दूँगा। उस राक्षस ने शीघ्र जाकर राक्षसों के शव समुद्र में डाल दिये।

(फिर, रावण ने राक्षसियों से कहा—) दिव्य (पुष्पक) विमान पर सीता को आरूढ करके युद्धभूमि में ले जाओ और उन मनुष्यों (राम-लक्ष्मण) की जो दशा हुई है, उसे दिखा लाओ। जबतक वह (सीता) स्वयं नहीं देखेगी, तबतक वह हमारी बात पर विश्वास नहीं करेगी। राक्षसियाँ बड़ी हर्षध्वनि करती हुई उस सीता के पास गईं, जो चिन्ता-मग्न हो यह सोचती हुई बैठी थी कि अब मैं जीवित नहीं रह सकूँगी। वे उन्हें विमान पर बिठाकर युद्धक्षेत्र में ले गईं।

अपने पति (राम) के रूप के अतिरिक्त अन्य किसी को कभी आँख उठाकर भी न देखनेवाली उन सीता देवी ने अपनी आँखों से यह दृश्य देखा। (उस दृश्य को देखते ही) सीता देवी की देह, प्रज्ञा एवं श्वास एक साथ निष्पंद हो गये, मानों उन्होंने विष खा लिया हो। शीतल कमल मानों आग में गिर गया हो, ऐसी ही उनकी दशा हुई। यदि एक स्त्री ऐसी बड़ी विपदा पाये, तो सारे संसार को वह बहुत बड़ी (विपदा) दिखाई पड़ेगी न ?

वह (सीता) देवी रोईं। स्वर्ग की मयूरियाँ (अर्थात् देवस्त्रियाँ) रोईं। वृषभारूढ (शिव) के अर्धांग में स्थित कोयल (पार्वती) देवी रोईं। रक्तकमल पर आसीन (लक्ष्मी) देवी रोईं। गंगा रोईं। वाणी रोईं। कमल-जैसे विशाल नयनोंवाले विष्णु की वाहन (दुर्गा) रोईं ! कभी दया न करनेवाली राक्षसियाँ भी व्याकुल हो रोईं।

स्वर्णमय कर्णाभरण से भूषित (सीता) देवी को जन्म देनेवाली भूमिदेवी बड़ी करुणा से रो पड़ी। अपार वेद तथा धर्म-देवता बहुत दुःखी होकर रो पड़े। पीड़ा देने में पीछे न हटनेवाला पाप भी रो पड़ा ! तो अब दूसरों के रोने की बात क्या कही जाय ? सब लोग जहाँ खड़े थे, वहीं रो पड़े। सीता देवी की प्रज्ञा तथा संज्ञा विलीन हो गईं।

झुण्ड में खड़ी हुई राक्षसियों ने प्रज्ञा-रहित सीता देवी के मुख पर जल छिड़का

और उन्हें उठाया। दीर्घ समय के पश्चात् धीरे-धीरे उनका श्वास लौट आया। काले मेघ-जैसे (राम) को (युद्धक्षेत्र में) पड़े देखकर वे पुनः रोती हुई क्रोध से अपनी आँखों पर अपने करों से मारा।

कोकिल-समान स्वरवाली उस देवी ने अपने स्तनों को पीटा, उदर को पीटा। वे रोती हुई, आग में गिरी लता के समान (तप्त होकर झुक गईं। विकल हुईं। काँप उठीं। बिजली के समान प्राणों के घटने से मुरझा गईं। घूम उठीं। उनके प्राण ऐसे व्याकुल हुए, जैसे पीडा को ही उन्होंने पी लिया हो।

वह (विमान पर) नीचे गिरकर लोट गईं। उनके सारे शरीर से स्वेद बह चला। वे खिन्न हुईं। मन में उत्तप्त हो उठीं। उठ बैठीं। कमल-जैसे करों को मरोड़ने लगीं (मसलने लगीं)। हँस पड़ीं। रोईं। 'हे प्राणेश्वर!' कहकर पुकार उठीं। 'हे अयोध्या-नरपति!' कहकर पुकार उठीं। 'हे सब लोकों के निवासियों के लिए प्रणाम करने योग्य चरणवाले!' कहकर बार-बार पुकार उठीं।

सीता देवी कहने लगीं—हे धर्मदेवता! मेरा पति तुम्हारे प्रति ही अधिक प्रेम रखते थे। तुम्हारा विरोध करनेवालों से किंचित् भी स्नेह नहीं रखते थे। ऐसे मेरे पति से तुमने प्रेम नहीं रखा। किन्तु, अधर्म करनेवाले (राक्षस) लोगों के वश में हो गये। हे निष्ठुर! क्या यही तुम्हारी दया की रीति है?

सत्य के पक्ष में न रहनेवाली हे नियति! क्या तेरे लिए यह उचित है कि जो व्यक्ति वेदोक्त मार्ग को छोड़कर कभी अन्य मार्ग पर नहीं चलता, ऐसे महापुरुष का दुःख देखती रहो? मैं तुझे किसी महत्त्व की वस्तु नहीं समझूँगी। तू कैसे कठोर खेल खेलती है!

मैं बड़ी पापिन हूँ। यह दृश्य मैं कैसे देख सकी? हे यम! क्या तेरे लिए यह उचित है कि तू मुझे जीवित छोड़कर मेरे पति के प्राण हरण कर ले? हे मेरे प्राणनाथ! मुझ-पर तुम बड़ी कृपा रखते थे। अब क्यों कभी समाप्त न होनेवाले दुःख में मुझे डाल रहे हो?

हे संसार के प्राणियों के लिए प्राणसमान प्रिय! देवों की बड़ी शक्ति बने हुए! मेरे नयन-समान (प्रिय)! अमृत-समान मधुर! दया के आगार! मैं जो अपने दुःख की चिंता किये बिना इतने दिनों तक यहाँ रही, वह क्या तुम्हारी आहत देह को प्राप्त करने के लिए ही?

हे कमल पर आसीन (लक्ष्मी) देवी के लिए अमृत जैसे मधुर! वेदों से ज्ञेय परम पुरुष! भगवान्! मिथिला नगर में अग्नि के सम्मुख तुमने मुझ पापिन का पाणिग्रहण किया था, वह क्या मेरे कारण अपने प्राणों को विपदा में डालने के लिए ही तुमने ऐसा किया था?

हे मत्तगज-सदृश! (तुम्हारी इस दशा को जानकर) उत्तम कौशल्या देवी अपने प्राणों को धारण कर जीवित नहीं रहेंगी। हे प्रभु! अन्य माताएँ भी जीवित नहीं रहेंगी, हमारी विपदा की कामना करके हमें अरण्य में भेजनेवाली कठोरहृदया कैकेयी का क्या यही उद्देश्य था?

जब माँ (कैकेयी) ने कहा कि अयोध्या नगर को, जो तुम्हारे योग्य मनोहर

शोभा से युक्त है, छोड़कर जाओ, तब उसका कुछ उत्तर दिये बिना, उसी वाक्य को अपना आधार मानकर तुम दावाग्नि से युक्त अरण्य में आकर रहे और माया (मृग) आदि पापियों (राक्षसों) को परास्त किया। ऐसे तुम्हारे प्रति मेरे मन में प्रेम नहीं रहा। हाय!

उस दिन (जब मायामृग के पीछे तुम गये थे) लक्ष्मण से मैंने कहा था कि तुम अपने हाथ का धनुष छोड़कर पराई स्त्री के साथ रहोगे। तब लक्ष्मण दुःखी होकर मेरी रक्षा करना छोड़कर चला गया था। वैसा करना क्या ऐसे महान् युद्ध में तुम्हें मरवाने का मेरा षड्यंत्र-मात्र था?

हे लक्ष्मण! पाप के परिणाम से जब हम दोनों (मैं और राम) वन में जाने लगे, तब तुम भी हमारे संग चले। उस समय माता (सुमित्रा) ने तुमसे कहा था कि हे वत्स! यदि विधिवश तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु होने की संभावना उत्पन्न हो, तो उनसे पूर्व तुम अपने प्राण त्याग देना। तुमने वह आज्ञा पूर्ण की।

हे प्रियतम! पुष्पों एवं पल्लवों से सजाई गई राजाओं के योग्य सेज पर निद्रा करना छोड़कर अब क्या तुम राक्षसों के धनुषों से छूटे हुए बड़े शरों की शीतल शय्या की कामना करके यहाँ आकर सो रहे हो?

घृतों से उत्पन्न हवि से युक्त बड़े-बड़े यज्ञ करते हुए तुम विशाल खेतों से भरे जल-समृद्ध कौशल देश का न्यायपूर्ण शासन करते, किन्तु मेरे शरीर का स्पर्श करने के कारण तुम्हारा सत्य वचन एवं पुण्य भी व्यर्थ हो गये हैं।

चाहे परसे का आघात हो या करवाल की चोट पड़े, पर मेरे मन का निश्चय नहीं बदलेगा। ऐसा दृढ मन रखे हुए रोनेवाली मैं अब अपने दुःख को शांत करने के लिए इस महानुभाव (राम) के शरीर पर गिरकर अपना प्राणत्याग करूँगी। —यों कहकर ज्यों ही सीता उठीं, त्यों ही त्रिजटा ने उन्हें रोककर कहा—

वह त्रिजटा जो (सीता के द्वारा) पूर्व जन्म में अर्जित तपःफल के समान थी, उन देवी की मनोव्याकुलता को दूर करने के लिए, उनको घेरकर खड़ी रहनेवाली खड्ग-दंतों से भयंकर राक्षसियों को हटाकर, प्रतिमा-समान उन देवी के निकट आई और उसने उन्हें गाढालिंगन में यों बाँध लिया, जैसे वे दोनों एक हो गई हों। ऐसा करके उसने देवी के कान में कहा—

हे माँ! बीते हुए दिनों में मायामृग को भेजने की रीति, माया जनक को बनाने की रीति, इन सब बातों को भूलकर तुम अपने प्राण छोड़ने की बात सोच रही हो। हे माता! सन्मार्ग पर कभी पैर न रखनेवाले राक्षसों की माया को क्या तुम किंचित् भी नहीं समझती?

हम जो शुभ स्वप्न और शुभ शकुन देखे थे, उनको, अपने पातिव्रत्य को, दंडकारण्य में घटित घटनाओं को और धर्म की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण हुए भगवान् की वीरता को तुम भूल मत जाओ। कमल-समान नेत्रोंवाले उस महान् पुरुष (राम) की क्या इन क्षुद्र राक्षसों के हाथ मृत्यु हो सकती है? कदापि नहीं।

हे अबोध नारी! क्या तुम यह नहीं देखती कि इन चक्रायुध धारण करनेवाले

(राम) के शरीर में एक भी शर नहीं लगा है ? हे भूमिपुत्रि ! शर से आहत लक्ष्मण का शरीर कल्पांत के सूर्य के जैसे प्रकाशमान है, अतः ये दोनों मरे नहीं हैं। तुम व्यर्थ ही दुःखी मत होओ।

यदि राम (राक्षसों के हाथ) मृत होंगे, तो चतुर्दश भुवन विनष्ट हो जायेंगे। भगवान् का अस्तित्व संदेहास्पद हो जायगा। ब्रह्मा प्रभृति सब प्राणी मिट जायेंगे। अभी ये सब यथापूर्व स्थित हैं। अतः, राम भी मरे नहीं हैं। धर्म भी मिटा नहीं है। यह निश्चित है। हे माँ ! तुम भय से व्याकुल मत होओ।

हे नारी ! तुम्हारे दिये हुए वर के प्रभाव से हनुमान् की मृत्यु कभी नहीं होगी। यदि वह मर गया होता, तो तुम्हारे पातिव्रत्य की ही हानि होती न ? (अर्थात्, तुम्हारे पातिव्रत्य का प्रभाव कम हो जाता। अतः, तुम्हारा विचार (कि राम-लक्ष्मण प्राणहीन हो गये हैं) ठीक नहीं है। ब्रह्मास्त्र के कारण उनकी यह जो दशा हुई है, वह शीघ्र ही दूर हो जायगी। क्या देवता भी कभी भूल कर सकते हैं ?

मैंने देखा कि देवता राम-लक्ष्मण के दर्शन करके, स्वर्ण-आभरणों से भूषित अपने करों को सिर पर रखे (नमस्कार करते हुए) दर्प के साथ खड़े हैं। जैसे वे त्रिमूर्त्तियों के दर्शन कर रहे हों। वे शोक से उद्विग्न नहीं हैं। हे माता ! डरो नहीं। यह मत समझो कि समुद्र एक छोटे से कुएँ में अदृश्य हो जायगा।

हे नारी ! जिसका पति मर गया हो और मंगलसूत्र टूट गया हो, ऐसी (विधवा) स्त्री को यह दिव्य विमान वहन नहीं करता। मेरे बताये सब लक्षणों से तुम सत्य को पहचान लो और दुःख-समुद्र के पार पहुँच जाओ।—यों त्रिजटा ने कहा। तब मन में संशय से उद्विग्न सीता के प्राण किंचित् स्वस्थ हुए।

कमल का निवास छोड़कर जनक की पुत्री के रूप में अवतीर्ण उन (सीता) देवी ने (त्रिजटा से) कहा—हे माता ! अबतक तुम्हारा कोई वचन व्यर्थ नहीं हुआ। तुम्हीं को दैव मानकर इतने समय तक मैं अपने प्राण रोककर जीवित रही। आज की रात्रि व्यतीत होने तक अपने प्राण रखूँगी। मेरे लिए मरण निश्चित ही है न ?

सीता ने त्रिजटा से आगे कहा—स्त्रीजनोचित लज्जा को मैंने पहले ही त्याग दिया। एक गृहिणी बनकर रहने योग्य सब अच्छे गुणों का त्याग किया। फिर भी, अपने धनुर्धारी कालमेघ को (अर्थात्, राम को) पुनः प्राप्त करने की आशा रखकर मैं अभी तक जीवित रह रही हूँ। गुणों से या सम्मान से हीन इस शरीर को त्याग देना मेरे लिए अत्यन्त सुलभ है।

रामचन्द्र के शरीर पर लगनेवाले भाले-जैसे विशाल नयनोंवाली उन (सीता) देवी को अपने हाथों से पकड़े हुए विमान चलानेवाली वे राक्षसियाँ उन यमदूतों के समान लगती थीं, जो यथार्थ जीव को संसार में छोड़कर झूठी देह को लिये हुए, अपनी शक्ति से विधि के विधान का भी अतिक्रमण करके, जा रहे हों। (१–३२)

अध्याय २३

ओषधि-पर्वत पटल

सीतादेवी (युद्धरंग को देखने के पश्चात्) अपने स्थान को चली गईं। इधर विभीषण, जो राम की आज्ञा से सेना के लिए भोजन की सामग्री लाने गया था, आवश्यक खाद्य पदार्थ लाकर खेमे में रखा और युद्धक्षेत्र में जा पहुँचा।

उसने (युद्धभूमि का दृश्य) देखा। उसे प्रतीत हुआ, मानों संसार, सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के वचन (शाप) से मर गया हो। (ब्रह्मास्त्र से) आहत हो मृत-जैसे पड़े हुए वानर-वीरों की दशा अपनी आँखों से देखी और यों स्तब्ध और मूर्च्छित हुआ, मानों उसने विष खा लिया हो।

पूरी घटना से अनभिज्ञ वह (विभीषण) मूर्च्छा से उठा, तो शोक से उद्विग्न हुआ और यों श्वासोच्छ्वास करने लगा, ज्यों इसके प्राण अभी निकल जायेंगे। फिर, घिरे हुए भूतों एव श्रृगालों से अस्त-व्यस्त हो भागते हुए, वह धीरे-धीरे चला और लक्ष्मण के साथ पड़े हुए राम के पास जा पहुँचा।

अस्थियाँ, देह और प्राण—ये सब (प्रेम की तुलना में) तुच्छ हैं। यदि हम ऐसा न मानें, तो भी वे अपनी दशा से बदलते नहीं हैं। कुछ लोग कहेंगे कि उनके बिना प्रेम संभव नहीं, इसलिए वे ही प्रेम से श्रेष्ठ हैं। फिर भी, ठीक-ठीक विचार करने पर विदित होता है कि प्रेम का स्वरूप अमर लोगों (देवताओं) के लिए भी दुर्जेय है।

(प्राणों से भी अधिक प्रेम रखनेवाले) विभीषण ने जाना कि उन (राम-लक्ष्मण) के प्राण नहीं गये हैं, अतः वह (विभीषण) मरा नहीं, मुक्तकंठ रोया भी नहीं। उसके हृदय में अग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण दुःखाग्नि जल रही थी। कुछ क्षण तक वह स्तब्ध रहा, फिर, स्वस्थ हो उसने विचार किया और यह देखकर कि राम के शरीर में कहीं कोई घाव नहीं है, उसकी अधीरता दूर हुई।

उसने अनायास जान लिया कि ब्रह्मास्त्र का ही यह परिणाम है। बलवान् इंद्रजित् ने ही वह अस्त्र प्रयुक्त किया है और रामचन्द्र अपने अनुज की दशा को देखकर ही मूर्च्छित हुए हैं। फिर, वह विचार करने लगा कि इसे (ब्रह्मास्त्र के प्रभाव को) दूर करने का उपाय क्या है।

उसने सोचा—हृदय में शोक बढ़ जाने से राम मूर्च्छित हुए हैं। वे होश में आ जायँ, फिर भी उनके अन्तर्मन की गति को स्पष्ट जानना संभव नहीं। उदार गुणवाले राम, अपने अनुज के मरने पर जीवित नहीं रहेंगे। फलतः, छल और माया से जीवन बितानेवाले वंचक (राक्षस) विजयी होंगे। हाय! —यों सोचता हुआ वह अश्रु की वर्षा करने लगा।

(उसने फिर सोचा—) जैसे नागास्त्र का बंधन टूटा था, वैसे ही ब्रह्मास्त्र का बंधन भी आज टूट जायगा। अनुज (लक्ष्मण) की मृत्यु असंभव है। युद्धभूमि में शस्त्रों से आहत हो गिरी हुई वानर-सेना भी जीवित हो उठेगी। तुच्छ एवं निष्ठुर रावण क्या युद्ध में विजय पा सकेगा?—यों विचार कर वह स्वस्थ हुआ।

राम के स्वस्थ होने तक प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। उसके पूर्व ही, इस विपदा में कुछ सहायता करनेवाला कोई साथी कहीं जीवित हो, तो उसको ढूँढ़कर शीघ्र लाऊँगा—यों सोचकर विभीषण अपने हाथ में एक जलती लुकाठी लेकर समुद्र-जैसे रुधिर-प्रवाह में अकेला ही चल पड़ा।

विभीषण ने (एक स्थान पर), ओठों को भींचकर, दोनों हाथों को ऐंठकर, रक्ताक्त नेत्रों से आग उगलते हुए, सहस्र करोड़ हाथियों के शवों की राशि-रूपी सेज पर पड़े हुए उस हनुमान् को देखा, जिस वीर ने समुद्र को लाँघा था।

हनुमान् को पड़े देख कर विभीषण की आँखों से आँसू वर्षा के जल-जैसे वह चले। फिर, उसको मालूम हुआ कि हनुमान् की देह में अभी प्राण शेष हैं। उसने उसके घावों से बहनेवाले रक्त को पोंछकर, धीरे-धीरे एक-एक करके सभी बाणों को उसकी देह से निकाला। फिर, मेघों से जल लेकर उसके मनोहर शरीर पर छिड़का।

हनुमान् की साँस चलने लगी। उसकी देह में पुलक फैल गई। पसीना छूटा। आँखें खुलीं। धीरे-धीरे वह हिला। उसके मुँह में लार एकत्र हुई। हिचकी आई और उसकी मूर्च्छा दूर हुई। उसने राम की जय कहा। यह देखकर देवताओं ने हर्षनाद किया।

दुःख एवं आनंद से युक्त विभीषण ने उमड़ते हुए प्रेम से उसको (हनुमान् को) गले लगाया। हनुमान् ने विभीषण का आलिंगन करके पूछा—'हे उत्तम! प्रभु सकुशल हैं न?' विभीषण ने कहा—'हाँ सकुशल हैं'। यह सुनकर उस पवित्रात्मा (हनुमान्) ने त्रिलोक के लिए शिरोधार्य (रामचन्द्र के प्रति) हाथ जोड़े।

फिर, विभीषण ने कहा—अपने अनुज के प्रति प्रेम के कारण रामचन्द्र प्रज्ञाहीन हो गये हैं। शोक के कारण वे मूर्च्छित पड़े हैं। अब उनके प्रज्ञा प्राप्त करने पर क्या होगा—यह ज्ञात नहीं। तब हनुमान् ने पूछा—महिमावान् जांबवान् कहाँ है?

घनी मालाओं से भूषित राक्षसराज (विभीषण) ने उत्तर दिया कि मैं उस जांबवान् के बारे में कुछ नहीं जानता। वह कहीं नहीं दिखाई पड़ा। न जाने, उसकी देह से प्राण निकल गये हैं, या वह सप्राण है। कुछ नहीं जानने से ही यहाँ आया हूँ। तब वायुपुत्र ने कहा—जांबवान् अमर है। अतः हम उसे यहीं कहीं ढूँढ़ेंगे।

फिर, हनुमान् ने कहा—हे राक्षसराज! यदि हम उस जांबवान् को देखेंगे, तो वह निश्चय ही हमारे उद्धार का कोई मार्ग बतायगा। उसपर विभीषण ने कहा—तब तो हम बच गये। चलो, हम शीघ्र उसे ढूँढ़ें। फिर उन दोनों ने उसी रात्रि में, थोड़ी ही देर में जांबवान् को ढूँढ़ लिया।

बढ़ते हुए बुढ़ापे के कारण, शरों के घावों की पीड़ा के कारण, मन को व्याकुल करनेवाले दुःख के कारण और साँस रुक जाने के कारण यद्यपि जांबवान् का मन मोहग्रस्त और शिथिल हो गया था, तथापि वज्र-समान दृढ कंधोंवाले उस वीर के कानों ने उन दोनों वीरों के आने की आहट सुन ली।

जांबवान् ने सोचा— यह आनेवाला राक्षस (विभीषण) है? मेरे प्रभु (राम) हैं?

हनुमान् हैं, अथवा दया के कारण आनेवाले देवता, या मुनिगण हैं ? अथवा कौन है ? हमारे शत्रु निशाचर तो लौटकर चले गये हैं, अतः वे नहीं होंगे। ये आनेवाले हमारे ही पक्ष के कोई होंगे।

ज्योंही वे दोनों (हनुमान् और विभीषण) जांबवान् के निकट खड़े होकर पर्वत से बहनेवाले झरने के समान आँसू बहाने लगे, त्योंही उसने उन्हें सांत्वना देते हुए पूछा—हे असीम गुणों से पूर्ण लोगो ! तुम कौन यहाँ आये हो ? इतने में विभीषण के ये शब्द उस (जांबवान्) के कानों में पड़े—'अजी। हम बच गये ! हम बच गये !'

फिर जांबवान् ने प्रश्न किया—'बगल में खड़ा हुआ वह कौन है ?' तब हनुमान् ने उत्तर दिया—'हे विजयी ! तुम्हारी जय हो। यह मैं हनुमान् खड़ा हूँ। तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ।' उस बात को सुनने से किंचित् शक्ति पाकर जांबवान् बड़े आनंद से बोल उठा—'हे तात ! (हम) मृत नहीं हुए हैं। हम सब जीवित हैं। हम जागे हैं।'

मैं पहले से ही जानता हूँ कि ब्रह्मदेव का ही अस्त्र क्यों न हो, वह वेदों के प्रतिपाद्य सूक्ष्म विषय तथा शत्रुओं के विनाश में समर्थ उन (राम) का कुछ नहीं बिगाड़ सकता, वे इतने शक्तिशाली हैं। यह बताओ कि उन महानुभाव ने क्या किया ? यों-जांबवान् ने पूछा। तब हनुमान् ने उत्तर दिया—हे महानुभाव ! वह उत्तम पुरुष (राम) दुःख-समुद्र में डूबकर निद्रामग्न हो गये हैं (प्रज्ञाहीन हो गये हैं)।

जांबवान् ने कहा—अपने अनुज को निष्प्राण पड़े देखकर क्या वे (राम) सहन कर सकते हैं ? जन्म से ही वे दोनों एक साथ रहे हैं। उनके शरीर-मात्र भिन्न हैं, किन्तु प्राण एक ही हैं। हे शत्रुभयंकर वज्र-समान कंधोंवाले (हनुमान्) ! ऐसी दशा में अब तुम किंचित् भी विलंब किये बिना क्षण-भर में ही जाकर ऐसी ओषधि ले आओ, जिससे सभी जीवित हो उठें।

हे पुत्र ! किंचित् मात्र भी विलंब किये बिना तुम मेरी बात को ही अपना मार्ग-दर्शक मानकर जाओ। सत्तर 'समुद्र' (संख्यावाली) सेना, राम, उनके अनुज, त्रिभुवन, धर्मदेवता तथा अकलंक वेद—ये सब तुम्हारे प्रयत्न से ही बच सकते हैं।

हे शक्तिशाली ! यह जो समुद्र तुम्हारे सम्मुख दीख रहा है उसको बहुत पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाओ। नौ सहस्र योजन की दूरी पार करके जाने के बाद तुम्हें हिमाचल-पर्वत दिखाई देगा। वह दो सहस्र योजन विस्तीर्ण है। उसे भी पीछे छोड़कर आगे बढ़ोगे, तो हेमकूट-पर्वत पर पहुँचोगे।

उस हेमकूट-पर्वत से नौ सहस्र योजन दूर पर निषद नामक सुन्दर पर्वत है। उस पर्वत से इतनी ही दूरी पर मेरु पर्वत है। हे दृढ कंधोंवाले ! उस (मेरु) की विस्तीर्णता बत्तीस सहस्र योजन है।

मेरु पर्वत को पारकर नौ सहस्र योजन जाओगे, तो सीधे नीलगिरि नामक पर्वत मिलेगा, जो दो सहस्र योजन विस्तीर्ण है। हे मारुति ! उससे चार सहस्र योजन पर ओषधिमय पर्वत है। वहाँ पहुँच जाओगे, तो हमारी यह विपदा दूर हो जायगी।

उस पर्वत पर मृतक को जीवित करनेवाली (संजीवनी) ओषधि मिलती है।

शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ, तो उन्हें पुनः जोड़नेवाली ओषधि मिलती है। शरीर में गड़े शस्त्रखंडों को बाहर निकालनेवाली भी एक ओषधि मिलती है। विकृत रूप को यथापूर्व बनानेवाली भी ओषधि वहाँ है। हे वीर ! तुम उन ओषधियों को ले आओ।—यों जांबवान् ने कहा।

ये चारों ओषधियाँ देवों के द्वारा समुद्र को मथे जाते समय उत्पन्न हुई थीं। देवताओं ने उनको सुरक्षित रखा है। त्रिविक्रमावतार धारणकर विष्णु भगवान् ने जब त्रिभुवन को नापा था, तब मैं डिंडोरा पीटता हुआ और भगवान् की विजय गाता हुआ चक्कर लगाते फिरा था। उसी समय उन ओषधियों के बारे में मुझे ज्ञान हुआ था।

अनेक देवता उन ओषधियों की रक्षा करते रहते हैं। अनेक चक्रायुध उन ओषधियों की रक्षा में लगे रहते हैं और किसी को उसके पास नहीं जाने देते। हे असत्य के समीप भी नहीं फटकनेवाले ! अपने कार्य के महत्त्व का ठीक-ठीक विचार करके, किसी भी उपाय से उन ओषधियों को ले आओ और हमें बचाओ, अन्यथा सारी सेना मिट जायगी।

तब वेद-समान हनुमान्, यह कहकर कि यदि इतना ही कार्य पूरा करना है, तो समझ लो कि वे सब लोग अभी जीवित हो उठे, हमारे प्रभु (राम) की कुछ हानि न हो; सावधानी से इसका खयाल रखना—ऊपर उठा और गगन के ऊपरी तल में जा पहुँचा। उसके दोनों कंधे दिशाओं में फैल गये। उसका आकार ऐसा हो गया, मानों वह गगन को ही निगलने जा रहा हो।

ग्रह और नक्षत्र (हनुमान् के) वक्ष पर रत्नहार-जैसे लगे। एक कंधे से दूसरे कंधे तक की दूरी सहस्र योजन-पर्यन्त या उससे भी अधिक हो गई। एक पैर उठाकर रखने के लिए भी लंका में स्थान नहीं रहा। उसकी दीर्घ बाहुओं को हिलाकर चलने के लिए दिशाएँ भी पर्याप्त नहीं थीं, ऐसा उसका आकार था।

विजय से भूषित कंधोंवाला हनुमान् पूँछ टेढ़ी करके, हाथ ऊपर उठाकर, मुख को किंचित् फैलाये हुए भींचकर, अपने महान् पैरों को धरती पर रखकर, वक्ष को फैलाकर, कंठ को समेटकर, शरीर के रोंगटों को खड़े करके, बड़े वेग से ऊपर उठा, तो सारी लंका यों घूमकर ऊब-डूब करने लगी, मानों समुद्र के मध्य डूबकर उतराई हुई कोई बड़ी नौका हो।

(हनुमान् के गगन में उड़ने से) मेघ-पटल फट गये। विशाल समुद्र फट गया। पूर्व और पश्चिम में नक्षत्र झर पड़े। पर्वतों और वृक्षों के समुदाय (हनुमान् के पैरों के) साथ उड़ चले। गगनगामी देवों के बड़े-बड़े विमान समुद्र में वज्र के जैसे गिरकर किनारे से जा टकराये, जिससे समुद्र का जल सब दिशाओं में फैल गया।

जब हनुमान् आगे लपककर चला; तब उसके शरीर के वेग से उठनेवाले प्रभंजन से सभी पर्वत उत्तर की ओर झुक गये। उसका वेग ऐसा था, मानों उसका पिता (वायुदेव) भी उसके साथ चलने में असमर्थ होकर रुक गया। (उस वेग से) समुद्र सूख गये। मेघ झुलस गये। बड़े-बड़े अरण्य जल उठे।

वह (हनुमान्) पवन के जैसे बड़े वेग से जा रहा था। उसके पैर बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ रहे थे। समुद्र पीछे छूट रहा था। उसका मन उसके पीछे-पीछे जा रहा था।

उसके उस आकार को देखकर देवों ने कहा—जब अभी इसने अपनी ऐसी शक्ति दिखाई है, तब निश्चय ही यह गंभीर समुद्र से घिरे राक्षसों के निवासभूत लंकानगर नामक भूखंड को समुद्र में डुबोकर हमारा दुःख दूर करेगा।

हनुमान् मेघ-मंडल को पारकर ऊपर उठा। चंद्र एवं सूर्य के संचरण-पथ से भी ऊपर उठा। नक्षत्र-मंडल को पार कर गया। पुण्य करनेवाले जिस स्वर्ग में पहुँचते हैं, उसे भी पार कर उस स्थान तक ऊपर उठ गया, जहाँ से कमलभव (ब्रह्मा) का (सत्य) लोक दूर नहीं था।

स्वर्गलोक में रहनेवाले कुछ लोगों ने कहा कि यह (हनुमान्) बलवान गरुड है, जो विष्णु के वैकुण्ठलोक को जा रहा है। कुछ लोगों ने कहा—यह ब्रह्मदेव ही है, जो इस सृष्टि से परे स्थित अपने लोक को जा रहा है और कुछ ने कहा—यदि यह ईश्वर न होता, तो ऊपर के लोकों में इतनी दूर कैसे जाता। अतः, यह त्रिनेत्र ही है।

ऊपर के लोकों में स्थित कुछ लोगों ने कहा—यह इच्छित रूप को धारण करनेवाला सत्यमय वेदों के लिए भी अगम्य स्वरूपवाला विष्णु ही है। ठीक-ठीक देखकर समझने की इच्छा रखनेवाले कुछ लोगों ने कहा—अहो! पलक मारने के भीतर ही यह दृष्टिपथ से ओझल हो गया। देख लेना, यह अपुनरावृत्ति के (जहाँ से कोई पुनः नहीं लौट आता) मोक्षमार्ग में ही जा रहा है।

समस्त सृष्टि के तत्त्व को पहचाननेवाले ज्ञानी भी, समुद्र को पार कर युद्ध में विजय पानेवाले उस (हनुमान्) की दशा को ठीक-ठीक नहीं पहचान पाये, इसलिए कुछ ने कहा—यह ज्योतिरूप है। कुछ ने कहा—ब्रह्मांड से परे रहकर सृष्टि का कारण बनी हुई वस्तु ही है। और, कुछ ने कहा—यह वायवीय रूप है।

गगन के ऊपरी तल को छूनेवाले हनुमान् के स्वर्णमय कंधे, सुरभिमय तथा विकसित कमल पर आसीन ब्रह्मा के लोक तक फैल गये और ऊपर के गगन को भर दिया। उन कंधों से (हनुमान् की गति के कारण) जो शब्द निकले, उससे दिक्पालकों के सिर काँप उठे। ब्रह्मांड थर्रा उठा।

वह क्षण, जब हनुमान् ऊँचा उठा था, उस क्षण के समान ही था, जिस क्षण विकसित पुष्पमालाओं से भूषित देवों, मुनियों तथा अन्य महाभागों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए वामन ने, असुराधिप (महाबलि) की दी हुई भूमि को नापने के लिए त्रिविक्रम बनकर अपना पैर उठाया था।

त्रिलोकनिवासी देव, मुनि, सिद्ध और उनकी देवियाँ सबने निकट होकर जो रत्न और सुगंधपूर्ण पुष्प बरसाये, उनके लगने से हनुमान् की देह कल्पवृक्ष के समान दिखाई पड़ने लगी।

वह (हनुमान्) हिमाचल पर पहुँचा। वहाँ के निवासी अपलक नयनोंवाले (देवता), क्षमाशील मुनि तथा धर्ममार्ग पर चलनेवाले लोगों ने उसे आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा कार्य सफल हो। उसके पश्चात् वह उस शिखर के दर्शन करके आनंदित हुआ, जहाँ उमा को अपने शरीर के अर्द्धभाग में धारण करनेवाले (शिवजी) रहते हैं।

हनुमान् ने ईशान दिशा के अधिपति, परशुधारी शिवजी के निवास कैलास को देखकर अपने कमल-समान अरुण कर जोड़े और आगे बढ़ गया। तब शिवजी ने उमा से कहा—वह देखो, वायुपुत्र जा रहा है।

तब जगन्माता (उमा) देवी ने पूछा—यह क्यों गगन-मार्ग से जा रहा है? शिवजी ने उत्तर दिया—यह क्षत्रिय-वंश में अवतीर्ण रामचन्द्र का दूत है। ओषधि लाने के लिए जा रहा है। दक्षिण दिशा में रहनेवाले वंचक राक्षसों की लंका के कारण जो विपदा उत्पन्न हुई है, उसका विनाश निश्चित है। हे मनोहर ललाटवाली! हम कल चलकर वह भयंकर युद्ध देखेंगे।

चक्रायुध के समान बड़े वेग से जानेवाला वह (हनुमान्) सहस्र योजन विशाल प्रदेश को पारकर हेमकूट पर्वत पर पहुँचा। वहाँ अनन्त कामभोग का उपभोग करनेवाले देवों को देखा। फिर, उस लोक को भी पारकर वह निषद-पर्वत पर जा पहुँचा।

फिर, वह (हनुमान्), जो मन के लिए, अपार ज्ञानवालों के ज्ञान के लिए, अचिन्त्य देव-हृदय के लिए भी अज्ञेय वेग से जा रहा था, उस मेरु-पर्वत पर जा पहुँचा, जो भूमि के लिए, दिशाओं की सीमाओं के लिए एवं ब्रह्मलोक के लिए मापदंड के समान बना हुआ था।

अपलक नयनोंवाले देवता भी जिस मेरु-पर्वत की स्थिति को यथारूप नहीं जानते, उस पर्वत पर जाकर हनुमान् ने उस महान् जंबूवृक्ष को देखा, जिसके कारण शीतल समुद्र से वेष्टित यह भूमि जम्बूद्वीप नाम से त्रिलोक में प्रसिद्ध हुई।

उस धर्मरूप (हनुमान्) ने उस महान् मेरु-पर्वत के शिखर पर, सारी सृष्टि की रचना करनेवाले ब्रह्मदेव के उत्तम नगर को देखा और उसके मध्य एक श्रेष्ठ स्वर्ण-कमलासन पर विराजमान चतुर्मुख के दर्शन करके उनको नमस्कार किया।

फिर (कल्प) वृक्षों से भरे उद्यान में, देवों की प्रस्तुति प्राप्त करते हुए, मुनियों के वेदगान करते हुए, सुगंधित तुलसी-माला धारण किये भूदेवी एवं लक्ष्मी देवी के साथ विराजमान समस्त जगत् के आदिकारणभूत विष्णु के दर्शन किये तथा उनको नमस्कार किया।

फिर, हनुमान् ने, उस (मेरु) पर्वत की ईशान दिशा में, सहस्रों सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान, पाँच मुखों से युक्त, त्रिलोकवासियों के द्वारा अर्चा में अर्पित पवित्र पुष्पों से घिरे हुए, स्वर्णाभरणों से युक्त उमादेवी को शरीर के अर्द्धभाग में धारण करनेवाले, अष्ट भुजावाले (रुद्र) देव को देखकर उनको नमस्कार किया।

फिर, हनुमान् ने देवेन्द्र को आसीन देखा, जो चन्द्रमा के समान विजय-छत्र को सिर के ऊपर धारण किये हुए था, जिसपर सुन्दर रमणियाँ अपने मनोहर हाथों से चामर डुलाकर मलयानिल बहा रही थीं, अंतरिक्ष-लोक के निवासी विजय-भेरी बजाकर जिसके चरणों की वंदना कर रहे थे। हनुमान् ने हर्षित होकर उसे नमस्कार किया और आगे बढ़ा।

मेरु-पर्वत की उज्ज्वल कांति पुष्पों से भरे कल्पवृक्षों को आवृत किये हुए फैल रही थी। देवों के आवासभूत उस पर्वत के शिखर की सीमाओं पर त्रिलोक को घेरकर

रहनेवाली अष्ट दिशाओं की रक्षा करनेवाले दिक्पाल रहते थे, उनपर (हनुमान् की) दृष्टि पड़ी।

वह उदार (हनुमान्) उस महान् पर्वत को पार कर उत्तरकुरु में जा पहुँचा, जहाँ सूर्य की किरणें स्थिर रहकर अंधकार को मिटाती रहती थीं। यह देखकर अपने कार्य में दक्ष हनुमान् ने सोचा कि हाय! अभी दिन निकल आया! क्या मेरी शीघ्रता का यही परिणाम हुआ? यह सोचकर वह अत्यन्त दुःखी हुआ।

अपना उपमान न रखनेवाला हनुमान् यह सोचकर दुःखी हो रहा था कि आदि-मूर्त्ति (राम) के मूर्च्छा से उठने के पूर्व ही अपूर्व ओषधि ले जाकर, अर्द्धरात्रि के पहले ही सब को स्वस्थ करने का निश्चय करके मैं आया था, किंतु अभी सूर्य उदित हो गया। अब क्या करना चाहिए, यह ज्ञात नहीं होता।

तपोबल से संपन्न तथा पवन से भी अधिक वेग से चलनेवाले उस (हनुमान्) ने फिर पश्चिम दिशा में सूर्य को उदित होते हुए देखकर, जाना कि अभी प्रभात नहीं हुआ है। वेदों के ज्ञाता जिस प्रकार कहते हैं, उसी प्रकार सूर्य (रात्रि के समय) मेरु के उत्तर में प्रकट हो रहा है। इससे हनुमान् की चिन्ता दूर हुई।

हनुमान् ने लक्ष्मी के निवास कमलपुष्प के समान उस उत्तर कुरुदेश को देखा, जहाँ पुण्यवान् लोग दम्पती-रूप (युगल-रूप) एक साथ ही उत्पन्न होकर अनंत आयु प्राप्त करके, परस्पर प्राण और मन से एक होकर, अनुपम आनंद का अनुभव करते रहते हैं।

अग्नि-ज्वाला जैसी जटाओं से भूषित देव (शिव), कमल पर आसीन देव (ब्रह्मा) एवं नित्य यौवन से युक्त लक्ष्मी को (वक्ष पर) धारण करनेवाले विष्णु जहाँ शासन करते हैं, ऐसे उत्तर कुरुदेश को देखा, जो सिर पर सद्यःविकसित पुष्पमाला धारण करनेवाले धनी एवं त्यागी वीर चोलराज के पोन्निदेश (चोलदेश) का उपमान बननेवाले प्रदेशों से युक्त था। उसे देखता हुआ वह (हनुमान्) आगे बढ़ चला।

विशाल मेरुपर्वत को भी पार कर चलनेवाले, महिमा से पूर्ण, ब्रह्मपद को प्राप्त करनेवाले, जन्म-मरण से रहित और अपूर्व गुणों से भरित उस (हनुमान्) ने उस नील पर्वत को देखा, जो पूर्व में त्रिभुवन को नापनेवाले भगवान् विष्णु के समान ऊँचा खड़ा था।

अंधकार को भी दूर करनेवाली उज्ज्वल कांति से युक्त उस (नील) पर्वत को पीछे छोड़कर स्वर्णपर्वत-समान कंधोंवाला वह (हनुमान्) आगे चला। वहाँ अपनी दृष्टि दौड़ाई और ज्ञानी जांबवान् के कहे हुए उस ओषधि-पर्वत को देखा। वे दिव्य ओषधियाँ अपनी कांति से ऊपर के लोकों को भी प्रकाशित करती थीं। उनके इस लक्षण से उस पर्वत को हनुमान् ने ठीक-ठीक पहचान लिया।

हनुमान् झट उस (ओषधि) पर्वत पर लपका। उसके लपकते ही वह पर्वत उसके वेग को न सहन कर सकने के कारण पाताल में धँस गया। ओषधियों के रक्षक देवता घबरा उठे। फिर, उन देवों ने (हनुमान् को) रोककर क्रोध से पूछा—तू कौन है? क्यों आया है? विवेकवान् (हनुमान्) ने अपने आगमन का सारा वृत्तांत विस्तार से कह सुनाया।

उन देवों ने सुनकर यह कहा—हे वत्स! आवश्यक कार्य संपन्न होने पर उन

ओषधियों को यथापूर्व यहाँ भेज देना। फिर, उसकी जय कहकर वे देव अदृश्य हो गये। कमलाक्ष (विष्णु) का चक्रायुध भी दर्शन देकर अदृश्य हो गया। फिर, वज्र-समान भुजाओंवाले उस (हनुमान्) ने उस पर्वत को धरती से उखाड़ा।

यह सोचकर कि यदि मैं वहाँ रहकर आवश्यक ओषधियों को चुनता रहूँ, तो विलंब हो जायगा, झट उस पर्वत को अपने मनोहर हाथ पर रख लिया और बड़े वेग से ऊँचे गगन में उड़ गया।

संसार में व्याप्त यशवाले उस (हनुमान्) ने उस संजीवन-पर्वत को, जो सहस्र योजन ऊँचा और सहस्र योजन नीचे की ओर फैला था, 'अय्' कहने के समय के भीतर ही (अर्थात्, क्षण-भर में) अपने एक हाथ पर उठा लिया।

उधर उस (हनुमान्) का यह वृत्तांत रहा। इधर वे दोनों (जांबवान् और विभीषण) राम के निकट शीघ्र जा पहुँचे और अपने हाथों से उनके चरणों को दबाने लगे। अब उत्तम (राम) की दशा का वर्णन करेंगे

रामचन्द्र के नयन, जिनपर रमणियों के मन (कमल पर) भ्रमरों के समान मँड़राते थे, जो करुणा के ऐसे आकर थे, जिससे करुणा प्राप्त करना सब प्राणियों के लिए सुलभ था, जो वर देने में दक्ष थे और जो युगल कमल-जैसे थे—धर्म के समान ही विकसित हुए।

राम ने अपने निकट चिन्ताग्रस्त खड़े हुए भल्लूकराज (जांबवान्) तथा यशस्वी राक्षस-कुलोत्पन्न (विभीषण) को देखा, जिनके नयन अश्रुपूर्ण थे तथा जो हाथ उठाकर नमस्कार कर रहे थे।

राम ने करुणा के साथ विभीषण से पूछा—जो कार्य करने को मैंने कहा था; क्या उसे पूरा कर दिया? क्या तुम सकुशल हो? फिर जांबवान् से पूछा—क्या तुम्हारे प्राण लौट आये?

फिर राम ने उनसे कहा—हे सज्जनो! कुछ उपाय न होने से मूर्च्छित होकर गिरे हुए लोग मूर्च्छित ही पड़े हैं। हमारी दशा ऐसी विनाशपूर्ण हो गई है। यदि अब कुछ करने योग्य उपाय हो, तो हे उत्तम ज्ञान से युक्त सत्यवान् वीरो! बताओ।

सीता नामक एक नारी के कारण मैं क्लांतमन होकर विवेकहीन हो गया हूँ। मेरी जो यह निम्नदशा हो गई है, उसे क्या बताऊँ? मैंने अपनी इस कठोर अपयशपूर्ण कथा को, जो इस संसार के अनुरूप नहीं है, सदा के लिए शाश्वत कर दिया है।

हे प्रिय बंधुओ! 'यह मायामय मृग है'—ऐसा कहनेवाले अपने पुण्यात्मा तथा सत्यवान् अनुज की बात मैंने स्वीकार नहीं की और उस (मृग) के पीछे गया। स्त्री का वचन मानकर चलने के कारण मुझे ऐसा अपयश उत्पन्न हुआ है।

अपनी आँखों मैंने रावण को देखा। शक्ति-भर युद्ध किया। फिर भी, पूर्वकृत पाप के कारण, उस (रावण) के प्राण मैं नहीं हर सका और अब स्वजनों को अपने प्राण खोने दिये हैं।

मेरे भाई ने कहा कि ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके इस पापी का वध करेंगे। पर, मैं

उस कार्य के लिए सहमत नहीं हुआ। अनुपम विधि की क्रूरता के कारण ही मुझे यह विनाश प्राप्त हुआ है।

अपने भाई के साथ युद्धभूमि में खड़ा न रहकर मैंने शस्त्रों की यथाविधि पूजा करने का विचार किया। पाप की बहुलता के कारण हमारे सब लोग मर मिटे। मेरा भाई राक्षस को परास्त किये बिना ही अपने प्राण खो बैठा।

अब यहाँ बैठकर ये अविवेकपूर्ण वचन कहते रहना उचित नहीं है। अब इस युद्ध में जो मेरे साथी बने हुए थे, उन लोगों को स्वर्गलोक में जाकर देखना ही उचित है। अब और कोई उपाय नहीं है।

जब मेरा भाई और मेरे मित्र सब मर गये, तब इसके पश्चात् युद्ध में राक्षसों का समूल नाश करने से, अपने बाणों से रावण के मारने से और देवों की सहायता करने से ही क्या प्रयोजन है ?

जब मेरा भाई ही मर गया, तब अब मुझे किससे क्या प्रयोजन है ? अपार यश पाकर भी क्या करना है ? धर्म से क्या प्रयोजन है ? पराक्रम से क्या प्रयोजन है ? वृक्ष की शाखाओं के जैसे विस्तीर्ण बंधुवर्ग से क्या प्रयोजन है ? राज्य से क्या प्रयोजन है ? मित्रता से क्या प्रयोजन है ? पुण्य कर्म से क्या प्रयोजन है ? वेद-विधि से क्या प्रयोजन है ? सत्य से ही क्या प्रयोजन है ?

दया नामक गुण का त्याग कर मैंने अपने भाई को मरने दिया। यदि अब अपने पराक्रम से राक्षसों को पराजित कर राज्य करने भी लगूँ, तो कठपुतली के जैसे नेत्रोंवाला ही बनूँगा (अर्थात्, कठोर नेत्रोंवाला बनूँगा)। बड़ा चोर होऊँगा। वंचक होऊँगा। अतः अब जीवित रहकर मैं क्या करूँगा ?

(अब यदि सीता को मुक्त कर ले जाऊँगा, तो) महान् पुरुष यह कहकर मेरी निन्दा करेंगे कि यह (राम) पिता के मरने पर, (पितृतुल्य) जटायु के मरने पर, प्रेम करने-वाले सब बंधुजनों के मरने पर एवं सब अवस्थाओं में इसकी रक्षा (सेवा) करनेवाले अपने भाई के भी मरने पर सीता के प्रेम में अनुरक्त है। यह सहृदय व्यक्ति नहीं है।

विजय पाकर, राक्षसों को मिटाकर, सद्गुणों से परिपूर्ण अपने स्नेहपूर्ण भाई के बिना ही मैं अयोध्या में जाकर जीवित रहूँ और राज्य करूँ ? अहो! यह मेरा कार्य कितना बहुत सुन्दर है ! बहुत सुन्दर है !!

मेरी यह दशा हो गई है, अतः अब अन्य कुछ विचार किये बिना अपने प्राण छोड़ देना ही मेरा कर्त्तव्य है।—यों राम ने कहा। तब तुरंत जांबवान् ने उनके चरण-युगल को प्रणाम करके कहा—

हे किसी के लिए भी अज्ञेय स्वरूपवाले ! ऐसा प्रतीत होता है कि तुमने अपने को नहीं पहचाना है। यह दास पहले से ही तुमको पहचानता है। पर, अभी यह सब कहना मेरे लिए उचित नहीं है ; क्योंकि (वैसा कहने से) देवताओं का संकल्प व्यर्थ हो जायगा। तुम पीछे चलकर स्वयं ही अपने को जान लोगे।

हे हमारे महान् नेता ! (मन को) व्याकुल करनेवाले इस युद्ध में तुम्हारे भाई को

तथा असंख्य वानरों को जिस अस्त्र ने आहत करके गिरा दिया है, मैंने जान लिया है कि वह अस्त्र ब्रह्मदेव का (ब्रह्मास्त्र) ही है। मेरा यह विचार सत्य ही है।

जब उस ब्रह्मास्त्र का प्रयोग होता है, तब वह देवों तथा दानवों को भी अवश्य निष्प्राण कर देता है। हे सर्व पदार्थों से भी श्रेष्ठ ! वह (अस्त्र) तुम्हारी कुछ हानि न करके शान्त हो गया है। अब इससे बढ़कर आनन्द का कारण और क्या हो सकता है ? (अर्थात्, इसपर हमें बहुत आनन्दित होना चाहिए।)

बहुत बुद्धिमान् हनुमान् संज्ञा पाकर अपार दुःख में मग्न हो पड़ा था। मैंने उसे देखकर कहा कि तुम उत्तर दिशा में जाकर संजीवनी ओषधि शीघ्र ले आओ। हमारी बात मानकर वह इसके लिए उत्तर दिशा में दौड़कर गया है।

हनुमान् हिमाचल को पार कर, सबसे बड़े उस (मेरु) पर्वत के भी पार पहुँच गया है। वह अभी एक क्षण में लौट आयगा। हे पुरातन ! मन को बहुत व्याकुल करनेवाले दुःख से तुम मुक्त हो जाओ।

हे मन्मथ-सदृश मनोहर रूपवाले ! उन ओषधियों के यथार्थ तत्त्व को मेरे सृष्टि-कर्त्ता तथा मेरे पिता (ब्रह्मा) शिव के तथा चक्रधारी (विष्णु) के सिवा और कोई नहीं जानता।

वे ओषधियाँ (क्षीर) समुद्र को मथते समय अमृत के साथ निकली थीं। कालवर्ण भगवान् (विष्णु) का चक्र उनकी रक्षा करते हैं। वे मेरु के उत्तर में, कुरुदेश के भी उस पार में हैं। कोई भी व्यक्ति उनको नहीं पहचान सकता है।

जब वे उत्पन्न हुई थीं, तबसे अबतक किसी ने उनको नहीं छुआ है। हे यशस्वी ! उनमें कितनी शक्ति है, सुनो। यदि त्रिलोक की सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा भी मर जाय, तो उनको भी जीवित करने की शक्ति उन (ओषधियों) में है।

हे पुरातन ! उनमें एक ओषधि (शरीर में प्रविष्ट) शस्त्रों को निकालनेवाली है, एक शरीर की संधियों को जोड़नेवाली है, एक प्राणों को लौटा ले आनेवाली है और एक शरीर को यथापूर्व स्वस्थ बनानेवाली है।

वे (ओषधियाँ) अवश्य आ जायँगी। तुम चिन्ता मत करो। धर्म हनुमान् को मार्ग दिखायेगा। वह अविलंब ही उन्हें ले आयेगा। यह कोई दुष्कर कार्य नहीं है—जांबवान् ने यों कहकर (राम के) चरणों को नमस्कार किया। द्विविध कर्मों (पुण्य एवं पाप) के बंधनों को दूर करनेवाले प्रभु उस वचन को सुनकर आनंदित हुए।

तब ज्यों ही राम ने यह कहा कि मैं इसपर तनिक भी संदेह नहीं करता कि हनुमान् मेरु के उत्तर में भोगभूमि में जाकर उत्तम ओषधियाँ ले आयेगा, त्यों ही वहाँ उत्तर दिशा की ओर से बड़ी ध्वनि सुनाई पड़ी।

समुद्र उमड़कर ऊपर की ओर उठने लगा। मेघों से आवृत पर्वत उखड़कर गगन में यत्र-तत्र उड़ने लगे। स्वच्छंद रूप से बहनेवाला चंडमारुत उत्तर दिशा में प्रकट हुआ।

नक्षत्रमंडल स्थानभ्रष्ट होकर गिर पड़ा। सूर्यमंडल अस्त-व्यस्त होकर ऊपर उदित हुए चन्द्रमंडल से जा लगा। (और, चन्द्रमंडल में स्थित) हरिण भय से घबरा उठा।

मधु के छत्ते के हिल जाने पर उड़नेवाली मक्खियों के समान ही घनी घटाएँ उमड़ीं और बिखरती हुई वह चलीं।

वृक्ष की जड़ों एवं फूलों के गुच्छों आदि से सारा गगन-प्रदेश आवृत हो गया। पर्वतखंड, वृक्ष आदि समुद्र में गिरकर पहले के जैसे (अर्थात्, जब राम लंका को आये थे, उस समय के जैसे) उसे भरने लगे। हनुमान् ने, वहाँ स्थित राम, जांबवान् और विभीषण की चिन्ता को दूर करते हुए, गर्जन किया।

सिंह के जैसे हनुमान् का वह गर्जन ऐसा घोर था, मानों मेघ, समुद्र तथा धरती के रहनेवाले सब (प्राणी) गगन में रहकर एक साथ गरज उठे हों।

जब देव और दानव ऊँची तरंगों से भरे विशाल क्षीरसमुद्र को मथने चले तब गरुड ने यह आज्ञा पाकर कि 'घनी कांति से युक्त मंदर-पर्वत को उठा लाओ', उस (पर्वत) को यों उठा लाया, मानों वह (पर्वत) बिलकुल खोखला हो। उसी (गरुड) के जैसे हनुमान् (ओषधि-पर्वत लाता हुआ) दिखाई पड़ा।

एक बार जब भूलोक में आदिशेष के साथ पवन का संघर्ष हुआ था, तब युद्ध के योग्य बड़ा पराक्रम रखनेवाले सबसे प्रशंसित विजयी पवनदेव ने त्रिकूट-पर्वत को लंका में ला दिया था। हनुमान् अपने पिता (पवन) के समान ही दिखाई पड़ा।

लो, वह (हनुमान्) आ गया—इतना वाक्य पूरा करने के पूर्व ही हनुमान् ने झट आकर धरती पर पैर रख दिये। किन्तु, पापियों के (लंका) नगर में जाने की इच्छा न होने से वह (संजीवन) पर्वत गगन में ही रह गया।

तब वायुदेव उन ओषधियों का एक साथ पान करके सबके आनन्द को बढ़ाते हुए ऐसा बहा कि सूर्यपुत्र (सुग्रीव) तथा अन्य सब वीरों को जगा दिया। वे सब वीर हर्षध्वनि करते हुए उठ बैठे।

जो पुण्यवान् (युद्ध में ब्रह्मास्त्र के लगने से) स्वर्ग पहुँचकर स्वर्गवासियों के अतिथि बने हुए थे और उनकी प्रशंसा पा रहे थे, अब (ओषधि-युक्त) हवा लगने से पुनः अधिक शक्ति तथा सुन्दरता से युक्त होकर, यम को हराकर, अपने पूर्वरूप में उठ आये।

राक्षसों के शरीर (रावण की आज्ञा से मरुत् नामक राक्षस के द्वारा) समुद्र में डाल दिये गये थे, अतः वे जीवित नहीं हुए। उनके अतिरिक्त नौकाओं पर पड़े शव भी जीवित हो उठे। तो अब अन्य वानरों के बारे में क्या कहा जाय?

लक्ष्मण की देह से दीर्घ शर निकल गये। उनसे उत्पन्न घाव, जो जलन उत्पन्न कर रहे थे, शीतल होकर भर गये। माला के समान घुँघराले केशों से युक्त लक्ष्मण संज्ञा पाकर उठ बैठे। सारा संसार उन्हें नमस्कार करने लगा।

सब वानर-वीरों के जीवित होकर गर्जन करने से लक्ष्मण यों उठ बैठे, जैसे देवताओं के प्रशंसा-भरे वचनों को सुनकर क्षीरसमुद्र में शयन करनेवाले भगवान् (विष्णु) योगनिद्रा छोड़कर उठे हों।

प्राणों के लौट जाने से जब लक्ष्मण उठ गये, तब प्रभु ने उन्हें अपनी झूलती हुई

भुजाओं में बाँध लिया। वे दुःख से मुक्त हुए। देवता भी चिन्ता से मुक्त हुए। संसार में उत्पन्न सारी पीडाएँ मिट गईं।

अप्सराएँ नाच उठीं। किन्नर आदि वाद्यों के मधुर संगीत सुनाई पड़े। सारे संसार में आनन्द-पर्व मनाया गया और लोगों ने अभ्यंग-स्नान किये। मुनिगण वेदगान करने लगे।

वेद ध्वनित हो उठे। वेदज्ञ विद्वानों का ज्ञान ध्वनित हो उठा। प्रशस्तियाँ ध्वनित हो उठीं। समुद्र ध्वनित हो उठे। देवताओं के चित्त भी जलधि के समान शीतल हो ध्वनित हो उठे।

जब सब मृत्यु से मुक्त हो गये, तब ब्रह्मास्त्र ने आकर सुन्दर धनुर्धारी (राम) की परिक्रमा की और नमस्कार करके उनके सामने खड़ा हुआ और यह कहकर कि तुमने शाश्वत सत्य की रक्षा की है, जिससे तुम्हारी महिमा बहुत बढ़ गई है, अदृश्य हो गया।

उस समय अनुपम नेता (राम) ने, अत्यधिक दुःख के दूर हो जाने से, पवित्र प्रेम से उमड़नेवाले आँसुओं से सिक्त आँखों के साथ, माता के समान प्रेम से युक्त (हनुमान्) को आलिंगन में बाँध लिया। सब देवता हर्षध्वनि कर उठे।

राम ने द्रवित होकर, चंदनलेप से भूषित (सीता देवी के) उभरे स्तनों के अग्रभाग से लगनेवाले अपने वक्ष से मारुति को लगा लिया। वायुपुत्र विनम्रता से उनके चरणों पर नत होकर खड़ा हो गया। तब राम ने कहा—

हम उन वीर दशरथ के पुत्र बनकर जनमे थे, जिन्होंने हमारे पूर्वजों के द्वारा अनुसृत धर्म पर स्थिर रहकर मेरे कारण उत्पन्न दुःख से अपने प्राण छोड़े, किन्तु हम ब्रह्मास्त्र से मृत हुए। हे सत्पथगामी! अब तुमने हमको जीवित किया है।

हे तात! निकले हुए प्राणों को जो लौटा दे, उसके उपकार का बदला क्या स्वयं उन प्राणों को दे देने से भी चुकाया जा सकता है? (नहीं।) तुमने तो (प्राण लौटा लाने के अतिरिक्त) हमें अपयश से बचाया। शत्रुओं का नाश किया। हमारे कुल को बचाया और वेदमार्ग की रक्षा की।

आज एक क्षण के लिए हमारी जो दुर्दशा हुई, वह भी उचित ही हुई; क्योंकि मेरे भाई के प्रति (मेरा और तुम्हारा) दृढ प्रेम प्रकट हुआ। प्रलयकाल तक जीवित रहनेवाले तुमने इस उचित समय पर हमारी सहायता की। अन्यथा, क्या कहा जाय? ये सप्त लोक ही मिट गये होते।

आज तुमने सबके प्राण बचाकर, दीर्घकाल तक हमारे जीवित रहने का बड़ा उपाय किया। तुम्हें कोई भी दुःखदायक व्याधि कभी उत्पन्न न हो और चिरंजीवी बने रहो। यह मेरा आशीर्वचन है।

अन्य लोगों ने भी, जो हनुमान् के उपकार से पुनः जीवित हो उठे थे, अत्यधिक प्रेम के साथ उसे घेरकर उसकी प्रशंसा करने लगे। फिर, हनुमान् ने उनको सारी घटनाएँ सुनाईं।

तब जांबवान् ने हनुमान् से कहा—हे असीम शक्ति से युक्त वीर! यदि तुम्हारी

लाई ओषधियाँ सबकी सहायता करती रहें, तो असत्याचरणवाले राक्षसों का विनाश भी नहीं हो सकेगा। अतः, ओषधियों से भरे इस पर्वत को इनके स्थान पर रख आओ।

जांबवान् के यों कहने पर हनुमान् यह कहकर कि 'यह बात ठीक है, मैं एक मुहूर्त्त में लौट आऊँगा' उस दिव्य पर्वत को लेकर चल पड़ा। (१-११७)

अध्याय २४

विनोद-उत्सव पटल

इधर (राम आदि) की ऐसी अवस्था रही। उधर रावण, अत्यन्त उत्साह से भर गया और आपे से बाहर हो गया (क्योंकि उसने सोचा कि ब्रह्मास्त्र से सारी शत्रुसेना मिट गई है)। किन्नर आदि का सुलक्षण एवं सुमधुर संगीत होने लगा और मीन-जैसे नेत्रोंवाली मयूरी-तुल्य रमणियाँ नाचने लगीं। ऐसे विनोद-उत्सव को देखकर रावण आनंदित हुआ।

देवस्त्रियाँ, विद्याधर-स्त्रियाँ, राक्षस-स्त्रियाँ: असुर-स्त्रियाँ, कच्चे नारियल के जैसे कोमल स्तनोंवाली नागस्त्रियाँ, यक्षस्त्रियाँ, ईख से भी अधिक मधुर बोलीवाली सिद्ध-स्त्रियाँ—इन सबकी एक अपार मंडली मयूरियों के झुंड को भी भयभीत करती हुई चली आई।

मेनका, उज्ज्वल करवाल-समान नयनोंवाली तिलोत्तमा, रंभा, मधु-जैसे मीठे वचनोंवाली उर्वशी इत्यादि देव-नर्त्तकियाँ 'आनक' नामक नगाड़े, शंखवाद्य, 'मुरुडु' नामक पटहवाद्य आदि के बजते हुए छोटी मणियोंवाली पायलों को शब्दित करती हुई, नाचती हुई चली आईं।

'शुरुल्' (लिपटे हुए ताड़ के पत्ते के जैसे आकारवाला स्वर्ण का बना हुआ एक आभरण) कर्णाभरण, लटकनेवाला झुमका, केशों का अलंकार स्वर्णमय पीला पुष्प, तिलक, सेमल के फूल के जैसे लाल अधरों से आवृत एवं मंदहास करनेवाले मुक्ता-समान दाँत; कमल-जैसे लाल नयन, इन सबसे युक्त होकर मानों केशों का वन आक्रमण करने आया है[1]—इस कारण से उद्विग्न होकर मानों कलंक से शोभित चन्द्रमा रोष कर उठा हो।

उज्ज्वल किरणों को बिखेरनेवाले मंदहास की शुभ्र चंद्रिका, अत्यन्त प्रकाशमय आभरणों से प्रकट होनेवाला बालातप, दीप को भी प्रकाशित करनेवाली तथा उज्ज्वल स्वर्णमय आभा से पूर्ण रमणियों की देहकांति—इन सबके फैलने से यहाँ घिरा हुआ अंधकार, उन (सुन्दरियों) को देखनेवालों के विवेक के समान ही अदृश्य हो गया।

जिसने उत्तम विद्याधन की सहायता से दोषहीन मार्ग को अपनाकर, भावी के परिणाम को जाननेवाले पवित्र स्वभाववाले लोगों से सदुपदेश ग्रहण कर, सच्चा ज्ञान नहीं

१. मधपान करने से उन रमणियों के मुख लाल हो गये हैं और केश बिखरे हुए हैं। कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि केशों के आक्रमण करने से मुखरूपी चन्द्रमा रोष से लाल हो गया है।—अनु०

प्राप्त किया हो, ऐसे अविवेकी पर किसी वंचक व्यक्ति की वंचना का प्रभाव जैसे अतिवेग से बढ़ता हो, वैसे ही मद्य का प्रभाव उन लोगों पर बढ़ने लगा।

सर्वत्र हास्य फूट पड़ा। शरीर स्वेदकण से भर गये। सेमल के फूल-जैसे अधर फड़क उठे। चमेली के पुष्प-जैसे दाँत धवल कांति को प्रकट करने लगे। हत्या करने में (अर्थात्; पुरुषों को काम-वेदना से पीडित करने में) अभ्यस्त, भाले-जैसे नेत्रों की कोर लाल हो गई। विजयी धनुष-जैसी भौहें भाल पर टेढ़ी हो गईं। (मद्यपान करनेवाली स्त्रियों के शरीर में जैसे विकार उत्पन्न होते हैं) लाल-लाल मुख श्वेत हो गये।

सुन्दर केशभार-रूपी काले मेघ उमड़कर, उनके विशाल जघन-रूपी रथ को पार कर नीचे लटक गये। नवपुष्प-समान कोमल वस्त्र से लगकर शब्द करनेवाली मेखला, नूपुरों से भूषित आम्रपल्लव जैसे चरणतल से आ लगी। अस्पष्टोच्चारण से बोलनेवाली स्त्रियाँ शीघ्र ही नशे में चूर हो गईं।

राजसभा में निम्न व्यक्ति कोई क्षुद्र कार्य कर दे, तो भी ऊँचे स्वभाववाले व्यक्ति उत्तम कार्य करके ही उस दोष को मिटाते हैं। ऐसे ही जब मेखला के साथ ही (उन स्त्रियों के) कटिवस्त्र भी मनोहर जाँघों पर आ गिरे, तब केशभार ने झट फैलकर उनकी लज्जा रखी।

उन स्त्रियों की आँखें अपने क्रूर कार्य से विरत हो गईं। मानों अनंग (मन्मथ) ने अपने बाणों को तूणीर में बंद कर दिया हो। वे (स्त्रियाँ) राग-क्रम से फिसलकर, स्वरों के काल की मात्रा को पार कर, तंत्री-वाद्यों के बजने के क्रम के विरुद्ध अन्य क्रम से संगीत गाने लगीं।

बाँसुरी के नाद से प्रतिस्पर्धा करनेवाले मधुर स्वर से युक्त स्त्रियाँ, मद्य के नशे में चूर होकर, निर्दिष्ट राग की रीति से बहुत भटक गईं और जैसे अक्षुण्ण अमृत के साथ खट्टी शराब मिला दी गई हो, यों कठोर कंठ-स्वर में ऊँचे संगीत गाने लगीं।

दर्शकों के सम्मुख इन्द्रजाल के समान सब वस्तुओं का रूप प्रकट करके अभिनय करने में चतुर वे स्त्रियाँ, अब (नशे के कारण), हरिण-समान नयनोंवाली सुन्दरियों और सुन्दर पुरुषों की ओर संकेत करके, मुख से हाथी कहकर, अभिनय में रथ का दृश्य उपस्थित करती थीं।

(मद्यपान करके) कुछ रोतीं, कुछ हँसती, कुछ गातीं और नाचतीं। कुछ समीप खड़े लोगों का आलिंगन करतीं। कुछ सो जातीं। कुछ उछल पड़तीं और थककर बैठ जातीं। कुछ लाल-लाल मुख से मधु-जैसे लाल जल को बहातीं। कुछ शिथिल हो-होकर एक दूसरे पर गिरतीं। कुछ अरुण करवाल-जैसी आँखें बंद करके अँगड़ाई लेतीं।

वे स्त्रियाँ, जोर-जोर से बातें करने लगीं और अपने मन की गूढ बातों को सब लोगों के सम्मुख स्पष्ट रूप से प्रकट करने लगीं। मद्यपान का वहाँ ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ। पंचेन्द्रियों पर विजय पाकर सदा भगवान् का ही ध्यान करनेवाला वेदज्ञ मुनि भी यदि उस दृश्य को देखते, तो उनके शरीर पर मन्मथ के बाण-स्वरूप रोंगटे खड़े हो जाते।

चंचल भ्रमर जैसे नेत्रोंवाली राक्षसियों की काली पुतली से युक्त नीलोत्पल जैसी आँखें (मद्यपान के कारण) लाल हो गईं। रक्त कमल और लाल सेंवार की समता करनेवाले

उनके लाल मुख श्वेत हो गये। ऐसा लगता था, मानों शस्त्रधारी पापी राक्षसों के विनाश की सूचना देते हुए पुष्प अपने स्वाभाविक रंग को छोड़कर विकृत हो रहे हों।

मीन, यम का तीक्ष्ण शूल, मन्मथ का शर—ये भी जिनकी समता नहीं कर सकते, ऐसे नयनों से युक्त राक्षसियाँ, नशे के कारण अपने युगल स्तनों पर के हार, मेखला तथा कटिवस्त्रों को हाथों में लेकर अपने सिर पर रखने लगीं।

मोती के समान दाँतों से युक्त, मंदहास करनेवाली राक्षसियों की ऐसी दशा को देखता हुआ रावण बैठा था। उसी समय उधर (पुनः जीवन पाकर) उठी हुई वानरसेना-रूपी समुद्र में जो हर्षध्वनि उठी, वह रावण के (बीसों) कानों में आकर भर गई, जिससे उसका कामोन्माद से पूर्ण शरीर श्रांत हो गया।

(वानरसेना की) वह ध्वनि ज्यों ही सुनाई पड़ी, त्यों ही प्रवाल जैसे मुखवाली रमणियों के नृत्य, आनन्द का कोलाहल, अमृत से भी अधिक मीठे गान, नगाड़ों का नाद, मान, कटाक्षपात, गद्‌गद स्वर इत्यादि सब मुरझाये पुष्प-जैसे हो गये।

वीर-वलयधारी दोनों वीरों के दिव्य धनुष की टंकार-ध्वनि, पूर्वकाल में क्षीरोदधि को मथने के समय उठी हुई ध्वनि के समान ही चारों दिशाओं में फैल गई, जिससे आलानों में बँधे मत्त गज अपने स्थान में ही क्लान्त हो उठे। लंबे केसरों से युक्त अश्व स्तब्ध हो गये। राक्षस भय से थरथराने लगे।

उस समय (रावण को) मोती को हरानेवाले मंदहास से युक्त मुख तथा शूल-समान तीक्ष्ण दृष्टि फेंकनेवाले नयनों से शोभायमान सब राक्षस-सुन्दरियाँ वानर-जैसी दिखाई पड़ीं। उसका मन मथे जानेवाले समुद्र के जैसे उथल-पुथल हो गया। वह रात्रि उसके मुख-रूपी दस चन्द्रों के लिए दिन बन गई।

जब ऐसा हो रहा था, तभी कुछ दूत भ्रमर-रूप धारण कर रावण की पुष्पमालाओं पर जा बैठे और (उसके कानों में) वानर-सेना का सारा समाचार कह सुनाया। यह सुनते ही कि शत्रु सकुशल है, उसका मन चौंक उठा। वह तुरन्त कल्पवृक्षों के पुष्पों से भरे आँगन को छोड़कर अपने मंत्रणालय में जा पहुँचा। (१—२१)

●

अध्याय २५

माया-सीता पटल

(जब रावण मंत्रणालय में जा पहुँचा) तब उसका पुत्र (इन्द्रजित्), महोदर आदि सेनापति, अन्य वृद्धजन वहाँ एकत्र हुए। रावण ने सारी घटनाएँ स्वयं उन्हें सुनाईं।

तब माली ने रावण से कहा—यदि हमने बड़ी क्रूरता के साथ राक्षसों के शव समुद्र में नहीं डाले होते, तो वे भी जीवित होकर उठ बैठते। ब्रह्मा का अवार्य अस्त्र भी

हमारे लिए व्यर्थ हो गया। अब शत्रुओं की समस्त सेना युद्ध करने आयगी। उन्हें कोई रोक नहीं सकेगा।

इस स्थिर सृष्टि के कारणभूत भगवान् (राम) की करुणा प्राप्त होने से, लंका से मेरु तक को पार कर क्षण काल में संजीवन-पर्वत को ले आनेवाला विजयी व्यक्ति वह विशाल कंधोंवाला हनुमान् ही रहा होगा।

यदि वह (हनुमान्) लंका के आधार त्रिकूट पर्वत को ही उखाड़कर धरती पर पटक दे और इस धरती को तोड़-फोड़ दे, तो कौन बच सकेगा ? अब उन शत्रुओं से हम कैसे लड़ सकेंगे ? हनुमान् संजीवन-पर्वत को यथास्थान रखने के लिए गया है। यदि वह स्वर्णमय मेरुपर्वत का शिखर ही तोड़कर लाये और लंका पर फेंक दे, तो उसे कौन रोक सकेगा ? अब उन शत्रुओं से हम कैसे लड़ सकते हैं ?

यदि वह (हनुमान्) चाहे तो अपनी शक्ति से सब कुछ कर सकता है। वेद जो कहते हैं (कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर, तीन ही प्रधान देवता हैं) यह असंगत बात है। वास्तव में ऐसे देव चार हैं, जिनमें शब्दायमान वीर-वलयधारी हनुमान् भी एक है।

हे प्रभु ! जो मर चुके, वे चल बसे। अब हम दूसरा जन्म लेने के बाद ही जीवित कहलाने योग्य होंगे (अर्थात् , हम भी मृतप्राय ही हैं)। हम भूल जायँ कि हम बचकर प्राणों के साथ जीवित रह सकेंगे। अभी सही, हम सीता को उस धर्मपरायण व्यक्ति को सौंपकर उसकी शरण में जायेंगे।

त्रिशूल से कैलास को उखाड़कर, उस पर्वत के साथ शिवजी को भी उठानेवाले विजयी कंधों से युक्त हे वीर ! उस (राम) ने वालि को एक ही शर से मार डाला। समुद्र को अपने अधीन कर लिया। कुम्भकर्ण को मारा। ऐसे वीर को, जल के बुद्बुदे-जैसे राक्षस क्या जीत सकेंगे ?

तरंगों से भरे समुद्र को पीकर, गगन को धरती के साथ उखाड़कर उठाने की शक्ति रखनेवाले राक्षस सब मर मिटे। अब लंका बची है और तुम अपने वीर पुत्र (इन्द्रजित्) के साथ बचे हो। अब और कौन वीर बचे हैं ? हमारा अपने को विजयी मानना भी झूठ है।— इस प्रकार भविष्य के परिणाम को जाननेवाले माली ने कहा।

जब माल्यवान् ने इस प्रकार कहा, तब रावण ने यों हँसकर; मानों मेघ के बीच बिजली चमक उठी हो, अपने दाँत दिखाते हुए, भयंकर रूप में धमकी देते हुए, अपने दाँतों को ऐसे पीसा कि उसके फटे मुखों के भीतर वज्र की-सी ध्वनि सुनाई पड़ी। फिर अपने हित को नहीं समझनेवाले उस (रावण) ने कहा—तुम्हारी बात बहुत सुन्दर है ! बहुत सुन्दर है !

अपनी आँखों से आग उगलते हुए रावण ने कहा—चाहे सब राक्षस मिट जायँ, चाहे हमारे सब शस्त्र विनष्ट हो जायँ, फिर भी जबतक (मेरे) तन में प्राण हैं, तबतक मैं सीता को नहीं छोड़ूँगा। वासना मुझे मरण-पीड़ा दे रही थी, जिससे प्रेरित होकर मैं उस कोकिलवयनी को ले आया। अब क्या उसे यों ही छोड़ दूँगा ?

पुत्र क्या हैं ? बंधुजन क्या हैं ? कायर बनकर जीवन की लालसा रखनेवाले लोगो ! अपने प्राण बचाकर तुम जाओ। मैं कल प्रलयाग्नि के समान धधककर शर बरसाऊँगा

और उन नरों के साथ उस मर्कट (हनुमान्) को भी मिटा दूँगा। जब क्रूर राक्षसपति ने यों कहा, तब उसके पुत्र (इन्द्रजित्) ने कहा—

यदि समझ-बूझकर कही हुई मेरी बात आप स्वीकार करेंगे, तो मैं यह कहना चाहता हूँ : कमलभव (ब्रह्मा) के अस्त्र को अभिमंत्रित करके अपार अग्नि के साथ मैंने जो प्रयुक्त किया था, वह राम के लिए भी था। लेकिन, वह अस्त्र राम के विषय में व्यर्थ हो गया और उनकी देह को छूकर लौट आया।

हे मधुपूर्ण पुष्पमाला से भूषित राक्षसराज! वह राम साधारण मनुष्य नहीं है। देवता नहीं है। कोई मुनि नहीं है। मुझे निस्संदेह ज्ञात हो रहा है और जैसा विभीषण ने भी कहा, वह अहंकार-विकार से हीन योगियों के ध्यान का विषय अनुपम भगवान् ही है।

अब इस विषय को छोड़ दें। उसे कहना अब पौरुष के योग्य नहीं है। जो हुआ, सो हुआ। हे वीर! आप चिंतित मत हों। मैं शीघ्र ही निकुंभला (नामक स्थान) में जाऊँगा और वहाँ एक यज्ञ पूर्ण करूँगा, उससे हमारी चिंता दूर हो जायगी।

रावण ने कहा—'ठीक है। वैसा ही करेंगे।' तब इन्द्रजित् ने कहा—परन्तु, आपके भाई (विभीषण) के कहने पर वे (राम-लक्ष्मण) उस यज्ञस्थल में आकर ऐसा युद्ध करेंगे, जिससे वह यज्ञ अपूर्ण रह जायगा। तब रावण ने पूछा—उन्हें रोक रखने का क्या उपाय किया जाय?

तब इन्द्रजित् ने कहा—हम सीता का एक मायारूप बनायेंगे। उस सीता की दशा को जाननेवाले गगनोन्नत हनुमान् के सामने जाकर मैं खड्ग से उस (माया-सीता) का वध कर डालूँगा। फिर, यह कहकर कि मैं अयोध्या पर आक्रमण करने जा रहा हूँ, बड़ी सेना के साथ (निकुंभला) को चला जाऊँगा। शत्रु यह सोचकर कि मैं अयोध्या पर आक्रमण करने जा रहा हूँ; बहुत चिन्तित होंगे।

वे यह सोचकर कि सीता मर गई, अब यहाँ रहने से कोई प्रयोजन नहीं और यह आशंका करके कि कहीं अयोध्या में भाई तथा माताएँ भी न मिट जायें, सेना के साथ अयोध्या की ओर चल पड़ेंगे।

यदि वे अयोध्या को न भी जायँ, तथापि हनुमान् को वहाँ (अयोध्या में) भेजकर जबतक वहाँ का वृत्तांत नहीं जान लेंगे, तबतक वे निश्चिन्त नहीं रह सकेंगे। मैं इतने में शीघ्र ही अपना यज्ञ पूर्ण करके लौट आऊँगा और कठोर अस्त्र से शत्रुओं को मिटाकर विजय पाऊँगा।

रावण इस कार्य के लिए सहमत हो गया। इन्द्रजित् माया-सीता का निर्माण करने गया। जब इधर इस प्रकार हो रहा था, तभी उधर सूर्यपुत्र ने राम से कहा कि इस पुरातन लंका की रक्षा को मिटाते हुए हम इसमें आग लगा देंगे।

राम ने भी कहा कि ठीक है, वैसा ही करो। झट सुग्रीव झपटकर उस प्राचीन नगर के गोपुर पर जा पहुँचा। सत्तर 'समुद्र' संख्या में वानर प्रत्येक अपने-अपने हाथ में एक-एक लुकारी लेकर चल पड़े।

असंख्य वानर पुरातन लंका को भयभीत करते हुए, धरती पर बहुत बड़ी सुरक्षा

से युक्त उस लंका के प्राचीर के द्वार पर ऐसे जा पहुँचे, जैसे श्वेत मेघों के झुण्ड बिजली चमकाते हुए आ जुटे हों।

अर्धरात्रि में गगन से नक्षत्र जिस प्रकार टूटकर गिरते हैं, उसी प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए दोषहीन वानरसेना सब दिशाओं में जलती लकड़ी फेंकने लगी।

मत्त गजों के जैसे वे वानर वंचक रावण के आवासभूत उस नगर पर जो लुकारियाँ फेंक रहे थे, वे अंजनवर्ण (राम) के द्वारा समुद्र पर प्रयुक्त रक्तवर्ण आग्नेयास्त्र के समान लग रहे थे।

विशाल प्राचीर की सुरक्षा अस्तव्यस्त हो गई और लाल-लाल अग्नि-ज्वालाएँ लंका के निकट जा पहुँचीं। ऐसा लगता था, जैसे राम ने विशाल तथा काले समुद्र पर शर छोड़ा हो।

विविध उद्यान आग लगने से जल उठे। उनमें निवास करनेवाले विविध पक्षिकुल के शब्द से वे उद्यान गूँज उठे।

त्रिलोक के निवासी तथा तीनों देव भी जिसकी कामना करें, ऐसे धनुःकौशल से युक्त वीर राम ने, दीप के जैसे कुछ शर प्रयुक्त किये, जिनसे (लंका नगर का) गोपुर टूटकर त्रिकूट पर जा गिरा।

जिस समय लंका में यह हो रहा था, उसी समय हनुमान्, संजीवन-पर्वत को हाथ में उठाकर, वायु के जैसे वेग से गया और उसे मेरु के पार रखकर लौट आया।

शब्दायमान वीर-वलय से भूषित हनुमान् ने गर्जन किया। वह शब्द लंका में सुनाई पड़ा। तब लंका की वही दशा हुई, जो गरुड के पंखों का शब्द सुनने से सर्पों की होती है।

मारुति पश्चिम द्वार पर पहुँचा। अवार्य माया से संपन्न, बलवान् तथा यम को बाँधनेवाला इन्द्रजित् उसके सम्मुख आ पहुँचा।

वह (इन्द्रजित्) सीता के जैसे मायामय आकार को ले आया। एक हाथ से उसने उसके पुष्पों से अलंकृत केशपाश को पकड़ा और दूसरे हाथ में मांस-लगी तलवार को उठाया और क्रोध के साथ कहा—

'इस (सीता) के लिए ही तुम लोग आये हो और युद्ध कर रहे हो। मेरा पिता इसकी उपेक्षा करके चुप रह गया। मैं इसके प्राण लूँगा'—तब नाशरहित हनुमान् भय से अधीर हो गया।

हनुमान् ने देखा और सोचा—मैंने जिन मूर्त्ति के दर्शन किये थे, यह वही है। हाय! अब हमारा जीवन ही व्यर्थ हो गया। और, उस दुःख के निवारण का कोई उपाय न जानकर सूखकर मृतक जैसा हो गया।

फिर, यह सोचकर कि इस समय इसे नीति-वचन कहने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है, बोला—हे गुणों में उत्तम! तुम दोषहीन कुल में उत्पन्न हुए हो। क्या तुम एक स्त्री की हत्या करोगे? इससे तो तुम्हारा अपयश ही होगा।

तुम ब्रह्मा की चौथी पीढ़ी में उत्पन्न हुए हो। तुमने शास्त्रों के मुख्य तत्त्वों का

सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त किया है। किंचित् भी दया के बिना एक स्त्री का वध करना तुम्हारे लिए बड़ा कलंकदायक होगा न ?

(तुम्हारे इस कार्य को देखकर) धरती काँप रही है। गगन भी काँप रहा है और इस दृश्य को नहीं देख पा रहा है। मेरी बुद्धि भी विचलित हो रही है। हे दयागुण का त्याग करनेवाले ! स्त्री-हत्या से बड़ा कलंक उत्पन्न होता है।

यदि तुम मुझपर दया करके यह कृत्य छोड़ो, तो सारा संसार तुम्हारे अधीन हो जायगा, तुमने अपनी परंपरा (के बड़प्पन) को किंचित् भी नहीं जाना। अजी ! क्षुद्र कार्य करने से तुम्हारा महान् यश विनष्ट हो जायगा।

मारुति ने यों कहा। तब इन्द्रजित् ने कहा—मेरी बात सुनो। मेरे पिता तथा लंका को विनाश से बचाने के लिए (सीता वध) से बढ़कर और उत्तम कार्य कुछ नहीं है। यह कहकर वह हँस पड़ा और आगे कहने लगा—

मैं इस प्रकार करवाल से मारूँगा कि जिससे मेरे पिता तथा लंका के निवासी मुक्त हो जायें और स्वर्गवासी देवता भाग खड़े हों—ऐसा कहकर वह क्रोध से भर गया। वह फिर कह उठा—

अरे वानरों ! चले जाओ। तुम्हारा यहाँ आने का प्रयोजन व्यर्थ हो गया। यदि हो सके, तो अब जाकर अयोध्या को बचाओ। मैं अभी उस (अयोध्या) को जलाकर भस्म करनेवाला हूँ।

मेरे तीक्ष्ण तथा आग उगलनेवाले शरों से (राम की) माताएँ एवं भाई मिट जायेंगे। यदि देवता भी आकर रक्षा करें, तो भी उनके प्राण नहीं बच सकेंगे।

मैं अभी इस पुष्पक विमान पर आरूढ होकर जाऊँगा। मेरे ताप-भरे तीक्ष्ण बाण जाकर लगेंगे, तो क्या उनके प्राण बच सकेंगे ?

वह माया-सीता चिल्ला रही थी—'हे मेरे रक्षक ! बचाओ ! बचाओ !' किन्तु उसपर थोड़ी भी दया दिखाये बिना इन्द्रजित् ने करवाल से उसे काट डाला और विशाल समुद्र जैसी अपनी सेना को लेकर चल पड़ा।

वह (इंद्रजित्) स्वर्णमय पुष्पक विमान पर आरूढ होकर दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा की ओर गया। तब मारुति मूर्च्छित होकर टूटे हुए बड़े पर्वत शिखर के जैसे गिर पड़ा।

अयोध्या के मार्ग में जानेवाला इंद्रजित् कुछ दूर पर मार्ग बदलकर निकुंभला में जा पहुँचा। पवित्र गुणोंवाला हनुमान् व्याकुलमन होकर प्रलाप करने लगा।

हनुमान् अपने अपार पराक्रम के कुंठित होने से (सीता को) कभी हंसिनी कहता। कभी नारीकुल के (उद्धार के) लिए नौका-समान कहता। कभी 'मेरी माँ !' कहकर पुकारता। कभी कहता, क्या देव नहीं है ! उस माता का वध होते देखकर मेरा पापी हृदय तथा प्राण एक-दूसरे से अलग क्यों नहीं हुए—यों कहकर दुःखी होता।

वह कभी उठकर इंद्रजित् पर झपटना चाहता, किन्तु दुःख के भार से दबकर उसास भरता हुआ गिर पड़ता। वह अत्यंत शिथिल होता, तीक्ष्ण ज्वालामय साँसें छोड़ता। काँप उठता। सिर को धरती पर पटकता। अन्त में वह फिर यों कहने लगा—

मैं सोच रहा था कि हमारा लक्ष्य सिद्ध हो गया। त्रिलोक का अंधकार मिट गया। किन्तु, अब पुनः कठोर दुःख-रूपी अंधकार की बाढ़ आ गई है। पाप फैल गया है। हाय ! उस पापी ने लक्ष्मी को मार दिया। धर्म मिट गया।

घोर कारागार में पड़ी हुई सीता जैसी पतिव्रता देवी मेरी आँखों के सामने ही मारी जा रही थी और मैं पंख-कटे पक्षी के समान अशक्त हो पड़ा रह गया। प्रभु की पत्नी को बंधन से मुक्त करने का मेरा यह ढंग बहुत ही सुन्दर है !

दिव्य पत्नी, तपस्विनी, अबोध, उत्तमकुलजात स्त्री तथा लक्ष्मी के अवतार-स्वरूप सीता को जिस राक्षस ने बंदी बनाया, उस पापी के पुत्र ने उस पतिव्रता देवी को मार डाला और मैं इसे देखता रह गया ! यह कार्य बड़ी करुणा से पूर्ण है।

ज्ञान में श्रेष्ठ काकुत्स्थ (राम) का दूत बनकर मैंने (सीता देवी को) शुभ संदेश सुनाया था। (आज मेरा कार्य ऐसा ही है कि) दुःख देनेवाले-राक्षसों का नाश करने के निमित्त आकर अब मैं यह कहूँ कि तुमको मैं निष्ठुरता के साथ मरवाने के लिए आया हूँ, मुक्त करवाने नहीं। इससे मैंने एक बहुत बड़ा अपयश कमाया है।

लता-समान (सीता) देवी को कहीं न पाकर जो चिन्तातुर हो भटक रहे थे, उन धनुर्धारी वीर को मैंने यह समाचार दिया कि मधुर बोलीवाली सीता वहाँ (लंका में) है। मैंने उसे देखा और उनके मन को शान्त किया। आज मुझे ही यह कहना पड़ेगा कि वह (सीता) मर गई है। हाय ! मेरा जन्म भी व्यर्थ ही हुआ।

अपार समुद्र को पार किया। इस नगर में आग लगाई। हलचल से भरे समुद्र में सेतु बाँधा। मेरु को पारकर संजीवन-पर्वत को ले आया। तुम्हारे समान व्यक्ति नहीं है— ऐसी प्रशंसा पाकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ। मेरा दासत्व (राम की सेवा) वैसे ही व्यर्थ हो गया, जैसे बड़े समुद्र में सुगंधित द्रव्य को घुलाया गया हो।

मैं अपने क्षुद्र शरीर से तुच्छ प्राणों को छोड़ नहीं सका। (सीता को) मारने के लिए सन्नद्ध उस राक्षस को मारने से हिचककर पीछे हट गया। अपनी आँखों से (सीता को) मारे जाते हुए देखता खड़ा रहा। फिर भी, अपने हाथों से विविध फलों को तोड़कर खाते हुए जीवित रहने की इच्छा रख रहा हूँ। क्या मैं कोई साधारण व्यक्ति हूँ ? निश्चय ही मैं एक असाधारण व्यक्ति हूँ !

यों कहकर वह बहुत दुःखी हुआ। फिर सोचा कि वंचक राक्षस (इन्द्रजित्) ने यह कहा कि वह अयोध्या को जा रहा है। उसी ओर वह गया भी। यदि मैं उसका पीछा करता हुआ जाऊँ, तो प्रभु यहाँ का वृत्तांत नहीं जान पायेंगे। अतः अब क्या करूँ ? मेरा क्या कर्त्तव्य है ?—यों सोचता हुआ वह उद्विग्न हो उठा।

यहाँ घटित वृत्तांत प्रभु को सुनाऊँगा। यदि प्रभु प्राण छोड़ देंगे, तो उनके साथ मैं भी मर जाऊँगा। यदि वे वैसा न करेंगे, तो उनकी आज्ञा के अनुसार कार्य करूँगा। मेरा अन्य कुछ कर्त्तव्य नहीं है। यही मेरा निर्णय है।—यों सोचकर सुन्दर भुजाओंवाला हनुमान् रामचन्द्र के चरणों के समीप जा पहुँचा।

हनुमान्, पुरुषसिंह-सदृश वीर (राम) के वीर-वलय भूषित चरणों के पास

पहुँचा। उसकी देह, मन, नयन और प्राण दुःख से विकल हो रहे थे। आह के साथ उमड़ती हुई वेदना सारी देह को आवृत करके फैल गई। उसकी आँखों से अश्रु की उष्ण-धारा बह चली। वह बड़े पर्वत के समान धड़ाम से गिर पड़ा।

यों गिरे हुए हनुमान् को देखकर वीर (राम) ने पूछा कि क्या हुआ है, बताओ और उसकी दोनों दीर्घ बाँहों को पकड़कर उठाया। तब हनुमान् दुःख का सहन नहीं कर सका। उसने शीघ्रता से यह कहकर कि उमड़ती वेदना से पूर्ण देवी को राक्षस ने तीक्ष्ण करवाल से काट डाला—रोता हुआ (धरती पर) लोट गया।

यह सुनकर राम का शरीर नहीं हिला। साँस नहीं चली। पलक नहीं गिरी। आँखों से अश्रु भी नहीं उमड़े। (मुँह से) कोई शब्द नहीं निकला। मन दुःख से प्रताडित होकर टूटा भी नहीं। वे रोते हुए धरती पर भी नहीं गिरे। (उनकी देह में) स्वेद भी नहीं प्रकट हुआ। उनके मन में जो शोक उत्पन्न हुआ, उसे देवों ने भी नहीं जाना।

हनुमान् की बात सुनते ही सब वानर स्तब्ध रह गये। उनके मन विकल हो उठे। बड़े प्रभंजन से आहत वृक्ष के समान काँप उठे और पर्वत-समूह के जैसे वे (वानर) कल्पवृक्ष-समान राम के चरणों पर गिर पड़े।

चित्र के समान स्थित प्रभु ने अपनी संज्ञा खो दी। अपने मित्रों के मुख नहीं देखे। अनुज के पूछने पर भी कुछ नहीं बोले। उन्मत्त (या मूर्ख) लोग भी जिसको नहीं सह सकते, ऐसा कठोर अपमान नामक शस्त्र उनके हृदय में जा लगा, जिससे वे निष्प्राण-से होकर गिर पड़े।

अनुज (लक्ष्मण) ने प्रभु की दशा देखी। अपना अपमान देखा। अबतक जो बनता आया था, उसे बिगड़ते हुए देखा। उनकी देह, मन तथा आँखें, उनके प्राणों के साथ ही शिथिल पड़ गये, जिससे वे (लक्ष्मण) मातृविहीन बछड़े के जैसे होकर धरती पर गिर पड़े।

अतीत को जाननेवाला विभीषण अपने मन में अत्यन्त विकल हुआ। अपार वेदना के कारण वह यह भी नहीं जान सका कि क्या घटित हुआ है और मन में सोचने लगा—अहो ! ये (राम-लक्ष्मण) अविजेय हैं। किन्तु, उस नारी (सीता) के कारण इनका ऐसा विनाश हुआ है। उनका वध जो इन्द्रजित् के हाथ हुआ, वह ठीक ही है।

फिर, विभीषण ने (राम के) मुख पर शीतल जल छिड़का। उनकी देह का स्पर्श करके उन्हें होश में लाने का सारा उपचार किया। उनके सुन्दर कमल-समान चरणों, हाथों और शरीर को धीरे-धीरे सहलाया। तब वेदों के लिए भी अगम्य उस महान् उदार पुरुष ने धीरे-धीरे आँखें खोलकर देखा।

तब लक्ष्मण ने सोचा—मेरे प्रभु, झरने-जैसे आँसू बहाते हुए, स्तब्ध-से पड़े हुए हैं। घटित वृत्तांत को जानकर अप्रतिकार्य शोक से अत्यन्त व्याकुल हैं। अब ये शत्रु का नाश करने के लिए सन्नद्ध नहीं होंगे। अभिमान के कारण अपने प्राण छोड़ने का भी विचार करेंगे। फिर, राम को आश्वस्त करने के विचार से यों कहने लगे—

नीच व्यक्तियों का यह स्वभाव होता है कि जब उनके अन्त का समय आता है,

तब वे शोकरूपी विशाल समुद्र में डूब जाते हैं। आपके ऐसा करने से अपयश ही उत्पन्न होगा। हमारे कुल को भी कलंक लगने का डर है। आप क्या धर्ममार्ग से शत्रुओं को मारकर संसार की रक्षा करना छोड़ अपने मन की धीरता खो देंगे और इस प्रकार शिथिल होकर अपने प्राण छोड़ देंगे ?

कठोर राक्षस ने एक स्त्री को, निस्सहाय, तपस्विनी, धर्म से विचलित न होने-वाली, पातिव्रत्य की देवी और आपकी पत्नी के शरीर का स्पर्श कर उसे मारा। अब शोक करते रहने से क्या उद्धार होगा ? ऐसा करना क्या धर्म के अनुकूल होगा ?

राक्षस हों, देवता हों, ब्राह्मण हों, गुरुजन हों, मुनिगण हों, वेदों के सिद्धान्त हों, उससे क्या ? यदि दर्प करनेवाले दुर्जन बलवान् हो जायँ और सन्मार्ग पर चलनेवाले मिट जायँ, तो ऐसी दशा में इन तीनों लोकों को अग्निसात् किये बिना चुप रहने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?

(जब सीता मर गई और राक्षस विजयी हो गये) अब भी क्या सप्तलोक अपनी व्यवस्था को बचाये रखकर उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहेंगे ? क्या राक्षस जीवित रहेंगे ? क्या हम धर्म की सत्ता पर विश्वास कर उसकी सेवा करते रहेंगे ? क्या मेघ बरसेंगे ? क्या हम विकल होकर रोते रहेंगे ?—(नहीं, नहीं, यह सब नहीं होना चाहिए) अहो। बहुत सुन्दर है हमारी धनुर्विद्या !

हमें इस लंका में घुसकर क्षण-भर में उसे भस्म कर देना चाहिए। राक्षस जिस दिशा में जायें, उस दिशा को जला डालना चाहिए। स्वर्ग में आग लगा देनी चाहिए। हमें सर्वत्र सर्वनाश फैला देना चाहिए। यदि ऐसा न करके हम अश्रु बहाते हुए पड़े रहें और शोक का अनुभव करते बैठे रहें, तो क्या यह सब कार्य हमारे लिए क्षुद्र नहीं कहलायेंगे ?

इस धर्म का विचार करके ही हम अयोध्या का राज्य खोकर अरण्य में आये। आपकी पत्नी को वंचक राक्षस चुरा ले गया, तब भी धर्म की सीमा को न लाँघकर, जीवित रहे। अब लंका में आने के पश्चात् भी यदि हम इस प्रकार का दुःख भोगते रहें, तो हमारे शत्रु, हमारी सरलता को देखकर, बड़े उत्साह से हमें हथकड़ियाँ लगा देंगे और अपने दास बनाकर रखेंगे।

शोक की अधिकता के कारण यदि हम अपने प्राण त्याग दें, तो लोग हमारी अपकीर्त्ति ही फैलायेंगे। वे कहेंगे कि इसकी आँखों के सामने ही राक्षसों ने इसकी सुगन्धित मनोहर केशोंवाली स्त्री को करवाल से मार डाला। अपने शत्रु को मारने की शक्ति न होने से इन्होंने लज्जित होकर अपने प्राण त्याग दिये। किसी भी प्रकार से विचार करते हैं, तो (विदित होता है कि) अब प्राण छोड़ना ठीक नहीं है। अतः, आप अज्ञानियों के जैसे क्यों शोक से व्याकुल हो रहे हैं ?

जिस समय लक्ष्मण ये वचन कह रहे थे, उसी समय शोक से मूर्च्छित सुग्रीव, झट उठ बैठा, जैसे स्वप्न देखकर उठा हो और कहा—अब क्या विचार कर रहे हैं ? दीपक पर झपटनेवाले शलभ जैसे एवं अपने घर में छिपे रहनेवाले उस राक्षस (रावण) के वक्ष पर अब हम टूट पड़ेंगे। आओ।

हम लंका को खोदकर उखाड़ फेकेंगे। कठोर आँखोंवाले राक्षसों को, स्वर्ण-कर्णाभरणधारिणी स्त्रियों, स्तन्य पीनेवाले शिशुओं एवं उनके कुल के लोगों के साथ एक साथ मिटा देंगे। यदि देवता भी हमारा विरोध करने आयेंगे, तो हम स्वर्ग एवं धरती को भी मिटा देंगे।

यदि धर्म का भंग भी हो, तो भी हम नहीं रुकेंगे। हे प्रभु ! इस प्रकार अलग बैठकर शोक करने से कुछ नहीं होगा। अब युद्ध करके, तीनों भुवनों में चरखी के समान घूम-घूमकर देवलोक को भी जड़ से उखाड़ देंगे।—यों निश्चय करके बल से पुष्ट भुजाओं-वाला सुग्रीव लंका पर झपटने को खड़ा हुआ।

अन्य वानर-वीर भी बोल उठे—हम अपने राजा (सुग्रीव) के पूर्व ही लंका में जाकर राक्षसों के सब घरों को उखाड़ देंगे, और चल पड़े। तब हनुमान् बोला—अभी एक बात और कहनी है। वंचक इन्द्रजित् अयोध्या पर चढ़ाई करने गया है।

इन्द्रजित् उस अयोध्या की ओर गया है, जहाँ माताएँ और भाई तपस्या कर रहे हैं। ज्यों ही यह शब्द राम के कर्ण-कुहरों में प्रविष्ट हुआ, त्यों ही सीता के प्रति उनका दुःख वैसे ही दब गया, जैसे चोट से उत्पन्न घाव की पीडा अग्नि से जलने पर दब जाती है।

जैसे गंभीर क्षीरसमुद्र से योगनिद्रा को तजकर (विष्णु भगवान्) उठे हों, वैसे ही राम शोक-सागर से किनारे पर आये। वे राम, जो एक उड़द के हिलने के समय पर्यंत भी (अर्थात्, एक क्षणार्द्ध काल भी) आलस्य नहीं करते थे और सतत प्रयत्नशील रहते थे, कभी शांत न होनेवाली क्रोधाग्नि एवं कंपन से भरकर विकलमन हो खड़े रहे।

(राम सोचने लगे —) मेरा दुर्भाग्य इस सीता के साथ ही समाप्त होनेवाला नहीं है। किन्तु, सूर्यवंश की जड़ को ही खोद देनेवाला है। न जाने अभी यह किस-किसका पीछा करेगा। इस दुर्भाग्य को बदलने का क्या कोई उपाय है ? क्या मेरे भाई बचे रह सकेंगे ?

विचार उत्पन्न होने के पूर्व ही जो अपने लक्ष्यस्थान पर पहुँच जाता है, ऐसे विमान पर आरूढ होकर जानेवाले इन्द्रजित् दीर्घकाल के पूर्व ही चला गया था। अबतक वह अपना कार्य समाप्त करके लौट आया होगा। मैं पापी, जिस कुल में उत्पन्न हुआ, वह कुल भी अबतक भस्म हो गया होगा। यहाँ भी मेरी पत्नी मर गई। अहो ! और क्या-क्या विपदाएँ आनेवाली हैं, इसको जानने की क्षमता मुझमें नहीं है। मेरे लिए मृत्यु भी नहीं है।

मुझ एक व्यक्ति का दुर्भाग्य, मेरे पिता को, पितृतुल्य जटायु को, मुझसे बिछुड़ी हुई सीता को यमपुर में भेज करके ही समाप्त नहीं होगा। वह अबोध स्त्री के रूप में उत्पन्न हुआ है। वह मेरी माताओं, दोषहीन प्यारे भाइयों, नगर के लोगों तथा देश के लोगों को भी मृत्यु के मुँह में पहुँचायगा।

यहाँ जो घटना घटित हुई है, उसके संबंध में मेरे भाई कुछ नहीं जानते। यदि यहाँ का वृत्तान्त जानकर वे इन्द्रजित् से युद्ध करने को आयें भी, तो वह राक्षस कठोर

नागास्त्र का प्रयोग करके उन्हें गिरा देगा। अब पक्षिराज गरुड (उनकी सहायता के लिए) नहीं आयगा। संजीवन-पर्वत को लाने के लिए हनुमान् वहाँ नहीं होगा। उन (भाइयों) के प्राणों को लौटा लानेवाला वहाँ कौन होगा ?

हे वज्र-समान दृढ कंधोंवाले (हनुमान्) ! इस विशाल गगन के मार्ग से शीघ्र ही (अयोध्या) पहुँचने का कोई उपाय हो, तो बताओ। यहाँ सब मिट जायँ। लंका का युद्ध भी समाप्त हो जाय। पहले (अयोध्या में जाकर) इन्द्रजित् की आँखों को कौए का भोजन बनाऊँगा। उसके पश्चात् लंका को लौटकर मैं अपने लक्ष्य पूरा करूँगा।

तब अनुज (लक्ष्मण) ने कहा—हे आर्य ! शर-प्रयोग करने में चतुर इन्द्रजित् भरत को बाँधने की शक्ति नहीं रखता। यदि त्रिलोक भी युद्ध करने आये, तो वे भी (भरत से) युद्ध में परास्त हो जायँगे। आप शोक-समुद्र में न डूबें। मेरा निवेदन सुनें।

क्या भरत मुझ जैसा है, जो पापी दुष्ट तथा वंचक राक्षस के द्वारा प्रयुक्त ब्रह्मास्त्र के छूने मात्र से मृत होकर गिर पड़ेगा। आप जाकर देखेंगे कि किस प्रकार इन्द्रजित् अपने बंधुजन-सहित आहत होकर यम को पुकारता हुआ पड़ा है।—लक्ष्मण ने अत्यन्त व्यथा के साथ यह कहा।

तब वहाँ खड़े हुए हनुमान् ने कहा—मेरे दोनों दृढ कंधों पर या मेरे दोनों हाथों पर आप दोनों आरूढ हो जायें। मैं वायु के वेग को भी परास्त करता हुआ इसी क्षण अयोध्या पहुँचा दूँगा। यदि अवकाश हो, तो मैं सब दिशाओं में जाऊँगा। मैं स्वयं ही जाकर सब शत्रुओं को मिटा दूँगा।

हे सुयोग्य वीर ! यदि लंका के साथ ही सत्तर 'समुद्र' सेना को कंधे पर उठाकर ले जाने को कहें, तो भी मैं उसे उठाकर ले जाऊँगा। अब क्षण-भर का भी विलंब क्यों किया जाय ? पुष्पक विमान के वहाँ (अयोध्या में) पहुँचने के पूर्व ही मैं वानर-सेना को भी उठाकर ले जाऊँगा और यम के समान वहाँ जाकर कूद पड़ूँगा।

जब इन्द्रजित् (सीता को) मारने को उद्यत हुआ, तब मैं उससे नीति के वचन कहता हुआ खड़ा रहा। जब उसने (सीता को) मार दिया, तब मैं वेदना से हार गया और मूर्च्छित हो धरती पर गिर गया। उस समय वह पापी भाग गया। ऐसा न होता, तो वह पापी मेरे हाथ तभी मारा गया होता।

मैं मन से भी अधिक वेग से चलकर, पुष्पक विमान के पहुँचने के पहले ही, अयोध्या पहुँच जाऊँगा और उस (इन्द्रजित्) की प्रतीक्षा करता रहूँगा। अब अधिक विलंब क्यों ? हे तुलसीमाला को धारण करनेवाले ! आप दोनों मेरे कंधों पर आरूढ हो जायँ ? पुष्पक विमान के (अयोध्या में) पहुँचने के पहले ही हम जा पहुँचेंगे।

जब राम-लक्ष्मण (हनुमान् के कंधों पर) आरूढ होने को उद्यत हुए, तभी विभीषण ने उन्हें नमस्कार करके कहा— हे आर्य ! एक निवेदन है। दुःख की अधिकता से मैं व्याकुल होकर कर्त्तव्य को न जानते हुए दिग्भ्रांत हो खड़ा रहा। अब संज्ञा प्राप्त कर चुका हूँ। मुझे संदेह है कि सीता को मारने का वह कार्य कोई माया ही न हो।

जिस समय वह पापी (इन्द्रजित्) पत्नी (सीता) देवी का स्पर्श कर उन्हें

मारता, उसी समय तीनों लोक जलकर भस्म हो जाते। कदाचित् वह घटना (सीता को मारने की घटना) सत्य भी हो, तो भी इन्द्रजित् का अयोध्या जाना कुछ विचित्र-सा लगता है। कुछ ही क्षणों में सारा सत्य प्रकट हो जायगा।

पलक मारने के भीतर ही मैं सीता देवी के निवास-स्थान में जाऊँगा और ठीक-ठीक देखकर, सारा वृत्तांत जानकर लौट आऊँगा। मेरे लौटकर आने के पश्चात आपको जो करना हो, वह करें। विभीषण के ये वचन सुनकर राम ने कहा—तुम्हारा कहना ठीक ही है। तब विभीषण गगन-मार्ग से उड़ चला।

राम के मन के समान ही विभीषण भ्रमर का रूप लेकर अशोक-वाटिका में, सीता देवी के रहने के स्थान पर, शीघ्र जा पहुँचा और अपनी आँखों से देखा कि वह देवी चित्र-लिखित मूर्त्ति के समान यों बैठी थी कि उन्हें देखकर संदेह होता था कि इनमें प्राण हैं या नहीं।

सीता इस विचार में निमग्न बैठी थीं कि मैं अपने दुःख को अपनी मृत्यु के द्वारा ही समाप्त कर सकूँगी और मधुर वचन कहनेवाली त्रिजटा उनको सांत्वना दे रही थी और उनके विचार को बदलने का प्रयत्न कर रही थी। प्रलयकाल में उमड़नेवाली काली घटा के समान गर्जन करनेवाली वानर-सेना की ध्वनि उनके कानों में अमृत के समान लगती थी, जिससे वे अपने प्राण रोके बैठी थीं।

सीता का वध केवल माया है, यह जानकर विभीषण का हृदय आनन्द से भर गया। उसका दुःख मिट गया। फिर, उसने यह भी देखा कि भयंकर धनुषवाला इन्द्रजित् निकुंभला में यज्ञ करने गया है और सब राक्षस-वीर भी वहीं जा रहे हैं।

विभीषण ने देखा कि देवता इस विचार से आशंकित हो रहे हैं कि यज्ञोचित समिधा, घृत तथा अन्य साधन हमारा सर्वनाश कर देंगे। उस (विभीषण) ने समझ लिया कि इन्द्रजित् ने सोच-समझकर यह उपाय किया है। वह तुरन्त रामचन्द्र के निकट आकर उनके चरणों पर नत होकर खड़ा हुआ।

विभीषण ने कहा—(सीता) देवी सकुशल हैं। मैंने स्वयं अपनी आँखों से उन्हें देखा। उन अरुंधती के समान पतिव्रता देवी का नाश भी क्या संभव है? राक्षस माया से हमें धोखा देकर निकुंभला में जा पहुँचा है। यज्ञ पूरा करके हमारा सर्वनाश करने पर तुला हुआ है।

विभीषण के इस प्रकार कहते ही समस्त वानर-सेना इस प्रकार हर्षध्वनि करके उछल पड़ी, मानों सप्तलोक, इस पृथ्वी पर के सप्तद्वीप, सप्तसमुद्र, सब एक साथ गरज उठे हों। वह दृश्य देखकर देवता भी विस्मय से भर गये। (उस गर्जन से) पर्वत-समूह भी चूर-चूर हो गया। (१-६७)

अध्याय २६

निकुंभला-यज्ञ[1] पटल

श्रीराम की आशंका दूर हुई। उन्होंने विभीषण को अपनी देह से यों आलिंगन-बद्ध कर लिया, ज्यों उन दोनों के प्राण एक हो गये हों। फिर कहा—हे श्रेष्ठ! (मेरा) दुःख दूर होना कोई दुष्कर कार्य नहीं है; क्योंकि तुम हो, दैव है, मारुति है, हमारा पूर्वकृत तप है और शक्ति है।

तब विभीषण ने नमस्कार करके कहा— यदि (इन्द्रजित् का) यज्ञ पूर्ण हो जायगा, तो कोई उसे जीत नहीं सकेगा। विजय राक्षसों की हो जायगी। अतः, अनुज लक्ष्मण के साथ मैं वहाँ जाऊँगा और उसके प्राण मिटाकर उसके यज्ञ को भी मिटा दूँगा। तब प्रभु ने कहा—ठीक है, वैसा ही करो। फिर उन्होंने—

अपने भाई का आलिंगन करके कहा—हे वीर! यदि शत्रु ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करे, तो उसका निवारण करने के लिए ही तुम ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करना। असमय उसका प्रयोग मत करना, अन्यथा उसके प्रयोग से ऊपर के लोक एवं यह लोक सब मिट जायेंगे। अतः, ऐसा कार्य मत करना।

हे यशस्वी! कदाचित् वह राक्षस पाशुपतास्त्र और चक्रधारी आदिभगवान् का अस्त्र (नारायणास्त्र) का पहले प्रयोग करेगा। वैसा करे, तो तुम भी उन्हीं अस्त्रों का प्रयोग करके उनका निवारण कर देना। उन सब अस्त्रों को शान्त करने के पश्चात् तुम अपने शर-प्रयोग के कौशल से उस (इन्द्रजित्) के प्राण हरण करना।

हे यम-समान! वह राक्षस अपनी सीखी हुई सारी माया-विद्याओं का उपयोग करेगा। उन सबको समझकर, धर्मदृष्टि से भली भाँति विचार कर प्रत्यक्ष रूप से उस माया को हटा देना। घोर युद्ध के पश्चात् जब वह श्रान्त हो जाय, तब देवों के लिए यम-समान उस राक्षस का वध कर देना।

धनुर्विद्या के क्रम को कभी न भूलनेवाले! वह (इन्द्रजित्) व्याकुल होकर अनेकानेक बाण बरसायगा। तुम उनको अपने बाणों से हटा देना। जब वह शिथिल पड़ जायगा, तब अति दृढ बाण से उसके मर्मस्थान को बेधकर उसका वध कर देना।

हे चतुर! उसके किसी अस्त्र का संधान करने के पूर्व ही उस अस्त्र का निवारण करनेवाले अस्त्र का संधान कर देना। उसके इंगितों से उसका मनोभाव जानकर, वायुवेग से अत्यधिक संख्या में (उसके द्वारा) प्रयुक्त होनेवाले शरों को ध्यान से देखकर उनको रोकने-वाले शर स्वयं छोड़ना।

राम ने अपने बलवान अनुज को इस प्रकार के उपाय बतलाकर फिर यह कहकर कि 'हे तात! भगवान् विष्णु, जो स्वयं त्रिलोक-स्वरूप हैं और जिनकी बड़ी महिमा को वे

---

१. 'निकुंभला' एक बटवृक्ष का नाम है। इन्द्रजित् ने उसी वृक्ष के नीचे यज्ञ आरम्भ किया था। अतः, उस वृक्ष के नीचे सम्पन्न यज्ञ को 'निकुंभला-यज्ञ' कहा गया है। —अनु०

स्वयं भी नहीं जानते हैं, के द्वारा धारण किया गया यह धनुष है। इसे तुम ग्रहण करो और विजयी बनो'—अपना धनुष दे दिया।

इस (वैष्णव) धनुष के संबंध में उस दिन तमिल-मुनि (अगस्त्य) ने जो कुछ कहा था, वह सब तुम सुन चुके हो न? यह सहस्र शीर्षवाले उस महापुरुष (विष्णु) का धनुष है। ब्रह्मा के द्वारा किये गये यज्ञ में, होम-कुंड से यह प्राप्त किया गया था—यों कहकर राम ने धनुष के साथ कवच भी दिया।

इस सृष्टि के आधारभूत, चक्रायुध धारण करनेवाले विष्णु अपनी पीठ पर जो तूणीर धारण करते थे, वह (तूणीर) भी (राम ने लक्ष्मण को) दिया। पुनः धीरता उत्पन्न करनेवाले अनेक वचन कहकर शिवजी के जैसे स्थित लक्ष्मण को गले लगाया। तब गगन में स्थित देवों ने आनन्दित होकर कहा—अब हमारी दुर्दशा मिट गई।

देव मंगल-वचन कह रहे थे। देवस्त्रियाँ आशीष देकर विजय-गान गा रही थीं। ऐसे समय में, युद्ध के लिए प्रस्थान करनेवाले लक्ष्मण उसी प्रकार शोभायमान हुए, जिस प्रकार चन्द्रशेखर त्रिपुर-दाह करने के लिए क्रोध से भरकर चले थे।

राम ने (लक्ष्मण को) यह कहते हुए विदा किया कि हे वीर! मारुति आदि वानर-वीरों को साथ लेकर जाओ और विजयी बनकर लौट आओ। तब लक्ष्मण ने प्रभु के कमल-चरणों को अपने मन के भीतर ही नहीं, किन्तु बाहर अपने सिर पर भी अंकित करते हुए उनको नमस्कार किया। फिर, वह धर्मधन (लक्ष्मण) चल पड़ा।

मनोहर मेघ के समान शरीरवाले तथा आँखों से अश्रु को धरती पर गिरानेवाले प्रभु की परिक्रमा करके, दृढ धनुष को बाइं ओर लेकर और यह कहते हुए कि उस वंचक राक्षस (इन्द्रजित्) का शिर लाऊँगा, लक्ष्मण क्रोधपूर्ण हो शीघ्र गति से चल पड़ा।

कभी राम लक्ष्मण से पृथक् नहीं हुए थे। जब वे देह से निकलनेवाले प्राण के जैसे ही प्रभु से दूर और आँखों से ओझल हुए, तब राम की दशा वैसी ही हुई, जैसी विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए, अपनी किशोरावस्था में दोनों भाइयों के वन जाते समय दशरथ की हुई थी।

वानर-सेना के सेनापति तथा अन्य वीर अपने हाथों में जलती हुई लुकारियाँ लिये हुए अरण्यों और पर्वतों के मध्य से होकर चले और निकुंभला में जा पहुँचे।

जैसे सारी सृष्टि को अपने पेट में रखकर एक छोटे वटपत्र[1] पर भगवान् लेटे हों, वैसे ही गगन को भी छोटा बना देनेवाला विशाल राक्षससेना-समुद्र (निकुंभला में) खड़ा था। उन वानरों ने उसे देखा।

वह राक्षस-सेना चक्रव्यूह बनाकर, कठोर कृत्योंवाले इन्द्रजित् की होमाग्नि की रक्षा कर रही थी। ज्वालामय दावाग्नि से युक्त समुद्र के समान वह सेना खड़ी थी। वानरों ने उसे देखा।

मेघों की समता करनेवाले, क्रोध-भरे मत्तगज, रथ, घोड़े, पदाति वीर आदि

---

१. 'निकुम्भला' एक वटवृक्ष का नाम है, जिसके तले इन्द्रजित् ने यज्ञ किया। वटपत्र का उल्लेख इस पद्य में अर्थगर्भ है। —अनु०

सब प्रकार के सैनिक सहस्र करोड़ की संख्या में वहाँ खड़े थे। वे वैसे ही फैलकर खड़े थे, जैसे जलमय समुद्र से सटकर कोई दूसरा समुद्र खड़ा हो। (उसे वानरों ने देखा।)

न जाने कितने ही स्वर्णमय रथ, अश्व और गज युद्धभूमि के द्वार पर खड़े थे। पदाति-वीरों को गिनना ही असंभव था। वह व्यूह इतना बड़ा था कि वह सारी धरती की परिधि को सहस्र बार पार कर सकता था।

काले-काले शरीरों पर उगे हुए लाल-लाल रोम मेघ-मंडल को छूते थे। वह दृश्य ऐसा था; जैसे राम के आग्नेयास्त्र के लगने से काला होकर कोई समुद्र उमड़ रहा हो।

उस राक्षस-सेना में धनुषों से टंकार नहीं होता था। वे मेघों के मध्य इन्द्र-धनुष जैसे लगते थे। शंख, समुद्र के बीच रहनेवाले (शंखों) के जैसे निश्शब्द थे। नगाड़े गर्जनहीन विशाल मेघों के जैसे (निश्शब्द) थे।

राम की आज्ञा पाकर कभी शिथिल न होनेवाले वानर-वीर निश्चल खड़ी हुई; समुद्र की समता करनेवाली, उस राक्षस-सेना के पास जा पहुँचे और ऐसा गर्जन किया कि जिससे आकाश भी फट गया।

वानरों के गर्जन के उत्तर में राक्षसों ने गर्जन किया। युद्धोचित पुष्पमालाओं से अलंकृत नगाड़े बज उठे। इधर से वानर-वीरों ने शिलाशस्त्र फेंके, उधर से राक्षसों ने मेघ से गिरनेवाली जलवर्षा के समान बाण बरसाये।

वह प्रख्यात कपिसेना चमकते हुए शस्त्रोंवाली भयंकर राक्षस-सेना पर इस प्रकार टूट पड़ी, जिस प्रकार भरी हुई बावड़ी में हंसों की पंक्तियाँ कूद पड़ती हैं।

वानरों द्वारा प्रयुक्त पत्थरों, वृक्षों और उनके मुक्कों के आघात से बलवान् राक्षसों के धनुष, परसे, दाँत, सिर, शरीर सब टुकड़े-टुकड़े होकर भूमि पर बिखर गये।

राक्षसों ने दंड, परसे, शूल, चक्र, बाण आदि शस्त्रों को फेंके, तो वानरों की पूँछ, सिर, पैर, पेट, हाथ आदि अंग कट-कटकर गिर गये।

तब विभीषण ने विजयी योद्धा (लक्ष्मण) को देखकर कहा—यहाँ विलंब करना उचित नहीं है। यदि हम अभी जाकर उसके यज्ञ को विध्वस्त नहीं करेंगे, तो हम इस राक्षससेना-रूपी समुद्र को कभी नहीं जीत सकेंगे?

तब देवता, असुर, चतुर्मुख (ब्रह्मा), त्रिभुवन का अधिपति देवेन्द्र इत्यादि देवताओं में से कोई ऐसा नहीं रहा, जो उस महान् युद्ध को देखने के लिए वहाँ नहीं आया हो।

विविध प्रकार की सेना के मध्य अनेक रथ खड़े थे, जिनपर वीर लोग बैठे थे। विविध क्रमों में सजी हुई अश्वसेना खड़ी थी। अर्धचंद्राकार बाणों तथा उज्ज्वल दाँतों के जैसे चुभनेवाले बाणों से लैस पदाति-वीर खड़े थे। नगाड़ों के साथ अनेक गजों की पंक्तियाँ भी खड़ी थीं।

उस समय, लक्ष्मण उस सेना के भीतर घुस गये और तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए आगे बढ़े। उससे राक्षस अपने प्राण छोड़कर गिर पड़े। वे (राक्षस) अपना नगर छोड़कर यमराज के आवास, दक्षिण दिशा में जा बसे।

उन्माद से भरे हुए बड़े-बड़े गज, रथ और घोड़े लाखों-करोड़ों की संख्या में मारकर ढेर लगा दिये गये। वे कीचड़ से भरे रक्त-सागर में यत्र-तत्र बिखर गये।

बड़े-बड़े हाथी जहाँ गिरते थे, वहाँ बड़े-बड़े गड्ढे पड़ जाते थे और उन गड्ढों में गिरनेवाले राक्षसोंके सिर, जिनपर अग्नि-ज्वालाओं के समान लाल-लाल केश थे, ऐसे लगते थे, मानों चटचटाहट से बढ़नेवाली होमाग्नि में होम किया जा रहा हो।

(लक्ष्मण के) बाणों से बिंधे गये बड़े-बड़े हाथी पड़े थे, जो अपने शरीर से बहनेवाले रक्त की बाढ़ में पर्वत एवं झरने का दृश्य उपस्थित करते थे।

भालुओं के दाँतों के जैसे चुभे हुए बड़े-बड़े शरों के साथ धूल में पड़े हुए मणिमय मुकुटों से भूषित सिर, ऐसा दृश्य उपस्थित कर रहे थे, जैसे जुगनुओं से भरी हुई बाँबियाँ हों।

वर्षा के समान शरों के बरसाने से रक्त की धाराएँ बहकर समुद्र में जाकर गिरने लगीं। समुद्र में बहनेवाली बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ ऐसी लगती थीं, जैसे बड़े-बड़े मेघ गिरकर बह रहे हों।

शत्रुओं के बड़े-बड़े श्वेत छत्र, शरों के लगने से अपने दंडों से कट जाते थे और गिरकर रक्त-प्रवाह में डूब जाते थे। वे ऐसे लगते थे, जैसे सर्प (राहु) के द्वारा ग्रस्त होनेवाला चन्द्र हो।

बड़े-बड़े हाथी, सूँड़ और टाँगों के कट जाने से निष्प्राण होकर रक्त की बाढ़ में ऐसे बह रहे थे, जैसे दीर्घ जल-प्रवाह में नावें जा रही हों।

(हाथियों के शवों) से भरी उस युद्धभूमि में वन में रहनेवाले शृगाल आहार की खोज में आ गये। वहाँ भगोड़े सैनिकों के द्वारा छोड़े गये नगाड़े मृतकों की देह के समान यत्र-तत्र पड़े थे।

क्रोधी गजों पर अग्निमुख बाणों के लगने से उन (गजों) के सब अलंकार झुलस गये, जैसे बाँसों से आवृत पर्वत पर दावाग्नि फैल गई हो।

भालुओं के नाखून लहराते लाल केशों से भरे राक्षसों के सिरों को नोचकर नीचे गिरा देते थे। वह दृश्य ऐसा था, जैसे वे पर्वत पर की बाँबियों को कुरेदकर गिरा रहे हों।

सुन्दर शरों की बड़ी वर्षा होने से बड़े-बड़े शरभों और मृगों को भी मार देनेवाले राक्षस-वीर तथा हाथियों तथा अश्वों पर आरूढ वीर—सब उनके कठोर सिरों पर मँड़रानेवाले काले-काले भ्रमरों के साथ ही मरकर गिर पड़े।

पराजित सेनापतियों के अंग छिन्न-भिन्न होकर यत्र-तत्र पड़े थे। गृद्ध उन अंगों को नोचते थे, जिनसे रक्त का प्रवाह लहराकर बढ़ चलता था और वहाँ गिरे हुए सिरों को धो देता था।

पूर्वकाल में जिस प्रकार दशरथ ने एक ही रथ पर आरूढ होकर दसों दिशाओं में जाकर अनेक रथों पर आये हुए दानवों का विनाश किया था, उसी प्रकार लक्ष्मण अपने शरों से राक्षसों की विशाल सेना को नष्ट कर रहे थे।

प्रलयकालिक प्रभंजन के चलने पर जैसे पर्वत, मेघ तथा गगन के नक्षत्र झरकर

गिरते हैं, वैसे ही (राक्षसों के) सिर तथा अंग शरों से कटकर गिरने लगे। इस प्रकार, लक्ष्मण (इन्द्रजित् की) मनोव्यथा को बढ़ाते हुए प्रज्वलित होमाग्नि से युक्त उस यज्ञ-शाला में प्रविष्ट हुए।

मत्तगज के समान लक्ष्मण ने अपने शरों से राक्षसों के पुष्पमालाओं से भूषित बड़े-बड़े सिरों को काट डाला। उन सिरों के जाकर टकराने से मंत्रपूत रत्नपूर्ण मंगल-घट टूट गये।

लाल-लाल घावों से बहनेवाले तथा ऊँची लहरों से भरे रक्तप्रवाह अंकुशवाले मत्तगजों को बहाते हुए तथा कमल की स्पर्धा करनेवाले सिरों को लुढ़काते हुए ऐसे बह चले कि होमकुंड की अग्नि भी बुझ गई।

लक्ष्मण के द्वारा प्रयुक्त तीक्ष्ण शरों से लाल रोमों से भरे, वीर-कंकण से भूषित राक्षसों के बड़े-बड़े हाथ करवाल के साथ कटकर गिर पड़े, जिनके आघात से होम करने के निमित्त लाकर रखे गये भैंसे और बकरियाँ कटकर मर गइं।

जो सैनिक मत्त हाथियों के कपोलों से बहनेवाले प्रभूत मदजल की धारा में पड़े हाथियों की छाया में अक्षत पड़े हुए थे, वे लक्ष्मण के द्वारा निरन्तर प्रयुक्त होनेवाले शरों के डर से बलहीन होकर ज्यों-के-त्यों पड़े रहे।

लक्ष्मण के शर लगने से राक्षसों के सिर, पैर आदि कट गये; फिर भी यत्र-तत्र कुछ सैनिक, शरों के उनके शरीर में गड़े रहने से तथा शूल को टेके हुए रहने से, बाहर निकली हुई अपनी आँतों के साथ काँपते हुए ज्यों-के-त्यों खड़े रहे।

कुछ राक्षस, क्रोध के साथ युद्ध करते हुए कटे हुए अपने पुत्रों के शरीर को कंधे पर लटकाये एवं पीठ की ओर बाहर निकली आँतों को भीतर दबाते हुए लक्ष्मण के निकट आ पहुँचे।

राक्षसों के अंग कट-कटकर गिर गये, जिनके धक्के से घृत, लाजा आदि होम-द्रव्यों से भरे घड़े चूर-चूर हो गये। कुछ कटे हुए धड़ वैसे ही नाचते रहे।

लक्ष्मण ने आँधी के जैसे, विष के जैसे, कपड़ा बुननेवालों के सूत के जैसे, शरीर में फैली व्याधि के जैसे, दूध में डाले गये जामन के जैसे, कई बार उस शूलधारी राक्षस-सेना में मिलकर उसे काट डाला।

विशाल पृथ्वी पर लहरानेवाले समुद्र के समान फैली हुई वह राक्षस-सेना, लक्ष्मण के शरों से, गगन से बहनेवाली आँधी में उजड़े हुए उद्यान के समान छिन्न-भिन्न होकर सब दिशाओं में बिखर गई। इन्द्रजित् ने यह दृश्य देखा।

उस (इन्द्रजित्) ने बलवान् तथा भयंकर मत्तगजों के शवों के गगनचुंबी ढेरों में मरे हुए अश्वों, टूटे रथों, कटे शरीरों, सिरों तथा लहरानेवाले रक्त-समुद्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखा।

एक वीर (लक्ष्मण) के तीक्ष्ण बाणों ने, वीर-वलय से भूषित तथा भयंकर युद्ध करनेवालों का जो ढेर लगा दिया, उन ढेरों तथा रक्तमय कीचड़ के अतिरिक्त कोई भी अक्षत (पूर्ण) शरीर उस (इन्द्रजित्) को कहीं नहीं दिखाई पड़ा।

विष से भी अधिक भयंकर कुछ राक्षस, भयभीत होकर थरथराते हुए, सूखे गले के साथ इन्द्रजित् के पास आ पहुँचे। कुछ क्रोधी राक्षस अपने स्थानों से उठ न सकने के कारण निस्सहाय हो भय से ही मर गये।

प्रज्वलित होमाग्नि बुझ गई। वहाँ रखी होम-सामग्री, दर्भ तथा अन्य वस्तुएँ अस्त व्यस्त हो गईं। आग बुझकर धुआँ निकलनेवाले होमकुंड के समान ही इन्द्रजित भी दिखाई पड़ा।

उस समय युद्ध में लक्ष्मण के शरों से जो राक्षस निहत हुए, उनको छोड़कर शेष राक्षस इन्द्रजित् को घेरकर खड़े हो गये। तब वानरवाहिनी भीतर घुस आई।

सहस्र पद्म राक्षस-सेना 'अरे' कहने के भीतर (अर्थात् क्षणकाल में) ही विनष्ट हो गई। इन्द्रजित् का मन पवित्रमूर्त्ति (लक्ष्मण) के धनुःकौशल तथा पीडादायक क्रोध से अत्यंत उद्विग्न हो उठा।

इन्द्रजित् ने अपनी आँखों से देखा कि विशाल भूदेवी को कँपा देनेवाले, क्रूर कर्म करनेवाले राक्षस झुण्ड-के-झुण्ड मरकर गिर रहे हैं और वह दृश्य देखकर मुनि आनन्द से हाथ उछाल रहे हैं।

(अथवा, इसका भाव यह भी हो सकता है कि इन्द्रजित् के यज्ञ में उपस्थित मुनियों के हाथ भय के कारण काँप रहे थे।)

उस (इन्द्रजित्) का अभिमान मिट गया। यज्ञार्थ धारण किया हुआ उसका मौनव्रत भग्न हो गया। अपार बल से युक्त सेना विध्वस्त हो गई। मंत्रोक्त सब क्रियाएँ विनष्ट हो गईं। तब वह यों कहने लगा —

पच्चीस समुद्र राक्षस-सेना में अब केवल दस अक्षौहिणी सेना बची है। वह भी मिट जायगी। अतः, अब यज्ञ में मन लगाकर उसे समाप्त करने का प्रयत्न मूर्खता होगी। अब यह यज्ञ विनष्ट हो गया।

मेरे द्वारा आरम्भ किये हुए यज्ञ की धूमयुक्त अग्नि बुझ गई। इससे यह सूचना मिलती है कि अब विकराल युद्ध में मेरी विजय भी बुझ जायगी।

अब इस बात को रहने दें। लेकिन, मैं अब इन नरों के सामने बलहीन हो गया। पर मैं दीन बनकर, ऐसी नीचता के साथ इन बातों को सोचता हुआ बैठा क्यों रहूँ? क्या युद्ध करने के लिए क्या मेरा भुजबल नष्ट हो गया है?

यदि मैं मन में यह सोचकर चिंतित होता रहूँ कि मेरा मंत्रयुक्त यज्ञ विनष्ट हो गया, तो क्या स्वर्गवासी देव यह कहकर मेरी निन्दा नहीं करेंगे कि मैं मनुष्यों से ही हार गया? फिर देवेन्द्र के सामने मेरा क्या वस चलेगा?

जब वह अपने मन में यों सोच रहा था, तभी वानरों ने शिलाओं, वृक्षों, शवों तथा मृत हाथियों को उठा-उठाकर भीतर फेंका।

उनसे घबराकर काँपते हुए राक्षस एक के पीछे एक दुबकने लगे। किन्तु, वे लक्ष्मण के शरों से आहत हो गये। उनकी देह चिर गई और आँतें बाहर निकल आईं। वे मदहीन हाथियों के समान निःशक्त होकर गिर पड़े।

वानरों के द्वारा फेंके गये पत्थर, वृक्ष आदि के साथ लक्ष्मण के द्वारा प्रयुक्त शर राक्षस-वाहिनी में जा गिरे, जैसे बड़ी आँधी में महान् वर्षा के साथ बड़े-बड़े मेघ भी (समुद्र में) जा गिरते हों।

वीचीमय समुद्र-जैसी राक्षस-सेना को वृक्षों से मार-मारकर छिन्न-भिन्न कर देनेवाले हनुमान् ने इन्द्रजित् के निकट जाकर उसे क्रुद्ध करनेवाले ये वचन कहे—

अनेक मायाओं, असत्यों तथा छलों में निपुण हे राक्षस! मैंने विनयपूर्वक जो नीति-वचन तुमसे कहे थे, उनको अनसुनी करके तुमने जानकी का वध किया। सेना के साथ कुबेर के दिये हुए विमान पर चढ़कर तुम उत्तर दिशा में गये। इनकी गिनती किस माया में है?

ओह! विशाल समुद्र-समान चक्रव्यूह को भेदकर उसके भीतर रहनेवाले को क्या हम देख सकते हैं? (तुम्हारी सेना के भीतर से) तुम्हारे धनुष्टंकार को हम कैसे सुन सके? अयोध्या जाकर वहाँ सब लोगों को मिटाकर तुम कब यहाँ लौटे? क्या तुम्हारा यज्ञ संपूर्ण हो गया? तुम्हारे कार्य तो बहुत सुन्दर हैं!

आदिशेष आदि के द्वारा धारण की हुई सारी धरती पर सुन्दर स्वभाव से शासन करनेवाले सद्गुण राजा तथा आदिशेष से भी अधिक शक्तिशाली, भरत को देखकर अपनी शक्ति दिखलाकर तथा उनके प्राणों को हरकर तुम आये हो? फिर भी, यह सब तुम्हारे लिए कोई नई बात नहीं है।

गगन-मार्ग में आये हुए दृढ धनुर्धारी शंबरासुर को मारकर देवताओं की सहायता करनेवाले अनुपम दशरथ चक्रवर्त्ती के चार गुणवान् पुत्रों में से कनिष्ठ पुत्र (शत्रुघ्न) को देखकर भी क्या तुमने अपना धनुःकौशल दिखाया था?

आज (लक्ष्मण के) अग्नि-समान तीक्ष्ण बाण लगने से तुम्हारे कानों से, मुख से तथा आँखों से रक्त बहे और लंका में बैठकर छल करने तथा अपनी माया को दिखाकर युद्ध करने की तुम्हारी सारी चतुराई समाप्त हो जायगी।

अब आप[१] नागपाश, कमलभव (ब्रह्मा) का महान् अस्त्र, पुराना शिवजी का अस्त्र (पाशुपतास्त्र), मायावी भगवान् (विष्णु) का अस्त्र, इनमें से कौन-सा अस्त्र प्रयोग करने का विचार कर रहे हैं? उस अस्त्र से हम भयभीत हो रहे हैं! (आपका कौशल) उचित है! उचित है! यमदेव भी निकट आ गये हैं!

आपने जो वर पाये हैं, माया का जो कौशल सीखा है, महिमामय देवों से जो दिव्य अस्त्र प्राप्त किये हैं और आपकी जो देहशक्ति है—वह सब आपमें वर्त्तमान है न? फिर भी, हम अपने इस प्रण से कि आपका सिर काटेंगे, विमुख नहीं होंगे!

विषमय कंठवाले देव (शिवजी), ब्रह्मा, फनवाले सर्प पर शयन करनेवाले भगवान् (विष्णु)—ये सभी यदि आपकी सहायता के लिए आयेंगे, तो भी आप नहीं बच सकेंगे। आपका वाम भाग अब फड़क रहा है न? आप ही बतायें; अब क्या आप जीवित रह सकेंगे?

---

१. यहाँ 'आप' शब्द का प्रयोग व्यंग्यसूचक है।

धनुर्धारी वीर (लक्ष्मण) आपके मारने की प्रतिज्ञा करके आपके समीप आये हैं और आपकी सारी सेना को छिन्न-भिन्न करके आपको युद्ध के लिए शीघ्र आने का आह्वान कर रहे हैं। उन के दृढ धनुष से उठनेवाला टंकार भी क्या आपके यज्ञ का ही एक अंग है?

त्रिभुवन के रक्षक भगवान् (विष्णु के अंशभूत राम) के भाई, अब जो युद्ध करनेवाले हैं, उसे देखने के लिए देव, ऋषि तथा अनेक लोक-निवासी आकर खड़े हैं। अब क्षण-भर का भी विलंब क्यों हो? आज आपका मरण निश्चित है न?—हनुमान् ने, जो धर्म-रक्षा करने के लिए आया था, इस प्रकार कहा।

उन वचनों को सुनकर पुष्पमालालंकृत कंधोंवाले इन्द्रजित् ने अग्निमय साँस भरकर तथा अपने फटे मुँह से उज्ज्वल दाँतों का प्रकाश फैलाकर उपहास करते हुए कहा—तुमलोग मेरे सामने आकर ऐसे वचन कह रहे हो, इस तरह मेरा उपहास करने का क्या अर्थ हो सकता है? यों कहकर वह आगे बोला—

हे आत्मश्लाघा करनेवाले! पिछले युद्ध में तुम सब मरकर पड़े थे और नियम के विरुद्ध पुनः प्राण पाकर उठे हो। पुनः जीवन पाकर क्या तुम उस मरण की बात भूल गये? अब मरने की इच्छा से मुझे 'आओ' कहकर ललकार रहे हो। यदि तुम इतने लोग मर जाओगे, तो क्या सबको जिलाने की दवा तुम्हारे पास है?

चाहे लक्ष्मण हो, चाहे राम ही क्यों न हो, जो भी यहाँ आकर तुम लोगों को बचाने का प्रयत्न करना चाहता है, वह आये। फिर भी, अनेक समुद्र वानर-सेना की मृत्यु, उनपर मेरी विजय और उन मनुष्यों का दुःख—यह सब निश्चित है। देवता और मुनि इसको देखेंगे।

जबतक मेरा धनुष है, मेरी मनोहर भुजाएँ हैं, तबतक कोई देहधारी प्राणी मुझसे बचकर रह सकता है क्या? मैं कुबड़े वानरों एवं नरों का पीछा करता हुआ स्वर्ग में भी जाऊँगा और वहाँ के लोगों को भी मार डालूँगा। इस बार मरोगे, तो किसी भी ओषधि से नहीं जियोगे।

मैं जो यज्ञ कर रहा था, वह आज ध्वस्त हो गया। इससे अपने को विजयी समझकर वीरवाद करनेवाले लोगो! वैसा मत समझो। शीघ्र ही तुम सबको पृथक्-पृथक् काटकर गिरा देनेवाली मेरी वीरता, मेरे हाथ के शर बनकर प्रकट होगी।

मैं तुम लोगों के जैसे अपने मुख से कुछ भी (आत्मश्लाघा) नहीं कहूँगा। तुमने दो बार मुझे विजय दी है। अब आतुर होने से विजय नहीं पा सकोगे। पहले जब मैं युद्ध के लिए आया था, तब क्या तुमने मेरे क्रोध के सम्मुख अड़े रहना भी सीख लिया? अब भी क्या तुम मरकर गिरोगे या यहाँ से भागोगे?

वह (इन्द्रजित्) 'ठहरो, ठहरो' कहता हुआ, अग्निकण उगलता हुआ और घूरता हुआ उठा और दीर्घ बिजली के समान कवच धारण कर, तूणीर को कंधे पर बाँधकर, वीरता के द्योतक स्वर्णमय अंगुलित्राण लगाकर, धनुष लेकर, सूर्य के समान प्रकाशमान वज्रमय रथ पर आरूढ होकर निकला और धनुष का टंकार किया।

उसने शंख बजाया। देवता यह समझकर कि क्षण-मात्र में ही यह सबका

विनाश कर देगा, आशंकित हुए। उज्ज्वल कंकणधारिणी देवस्त्रियाँ अपनी आँख पीटकर रोने लगीं। कैलासवासी तथा कमलवासी कह उठे—आज भयंकर युद्ध छिड़ा है।

फिर, देवता यह सोचकर स्वस्थचित्त हुए कि इन्द्रजित् का आरम्भ किया हुआ यज्ञ हमारी तपस्या से नष्ट हो गया, अतः अब वह नहीं बचेगा। युद्ध के लिए इसका आह्वान करना विधि का विधान ही है। लक्ष्मण के शर से इसका निहत होना हम देखेंगे।

उस (इन्द्रजित्) के धनुष्टंकार की ध्वनि फैलकर जब वानरों के कानों में पड़ी, तब वे अपना पराक्रम भूल गये। उनके हाथ के वृक्ष, शिला आदि छूटकर भूमि पर जा गिरे। वे (वानर) भी मुड़कर गिर पड़े। फिर, वे (वानर) यह समझकर कि हम सचमुच ही मर गये हैं, अस्त-व्यस्त होकर भागे।

उस (वानर-) सेना के पराक्रमी सेनापतियों के अतिरिक्त अन्य सब वानर, प्रलयकाल में असह्य प्रभंजन के बहने से किनारों पर उमड़कर बहनेवाले समुद्र-जल के समान तितर-बितर होकर भागे।

तब यम के लिए यम बने हुए उस राक्षस (इन्द्रजित्) ने (हनुमान् के प्रति) कहा—अरे! ठहर, अरे! ठहर। तू पत्थर हाथ में उठाये बड़ी-बड़ी बातें करता हुआ क्या खड़ा है? क्या यह सोच रहा है कि देवों के देखते हुए तू मुझे युद्ध में मार देगा? तेरी समझ भी खूब है। यह मर्कट के योग्य ही है। तू अच्छा है। लड़ना चाहता है, तो आ जा।

वीरों का वीर (इन्द्रजित्) हाथ में धनुष लेकर क्रोध के साथ खड़ा था। उसके सामने हनुमान् शिला को उठाये हुए फेंकने के लिए सन्नद्ध खड़े थे। इसको देखकर देवता आश्चर्य के साथ कहने लगे—अहो! उठे हुए बलवान् कंधोंवाले इस हनुमान् की धीरता कैसी है!

हनुमान् ने उस दृढ पर्वत को इस तरह फेंका कि गगन में तथा सब दिशाओं में चिनगारियाँ बिखर गईं। उस पर्वत को, जो ऐसा लगता था, मानों पृथक्-पृथक् स्थित सहस्र पर्वत मिलकर एक हो गये हों, आते हुए देखकर सारा संसार भय से थरथरा उठा। राक्षस-समूह भी तितर-बितर हो गया।

उस राक्षस (इन्द्रजित्) ने, जिसके कानों के कुंडल प्रकाश फैला रहे थे और जिसके कंधे मेरु के जैसे उभरे थे, ऐसा गर्जन किया कि सारा ब्रह्मांड हिल उठा। उसने हनुमान् के द्वारा वज्र को भी कँपाते हुए फेंके गये उस पर्वत को टुकड़े-टुकड़े करके छितरा दिया। अपलक रहनेवाले देवता भी उसकी इस क्रिया को नहीं देख पाये।

दूसरा एक पर्वत उठाकर घूमनेवाले हनुमान् के वक्ष पर, कंधों पर, वायुगति से चलनेवाले पैरों पर, हाथों पर, कंठ पर, ललाट पर और आँखों पर (इन्द्रजित् के) तीक्ष्ण, घातक, विष से लिप्त, अग्निमुख बाण अप्राकृतिक ताप के साथ आ लगे।

तब हनुमान्, बाँसों से भरे शिखरों से युक्त (त्रिकूट) पर्वत के पार्श्व में खड़े रहने से, अपनी देहकांति से अंधकार को दूर करते रहने से, बाणों से किरण-समान कांति-पुंज के निकलने से तथा रक्त के कारण अरुणवर्ण हो जाने से ऐसा दिखाई पड़ा, जैसा उदीयमान सूर्य हो।

जब हनुमान् (इन्द्रजित् के) शरों से विद्ध होकर शिथिल-सा पड़ा था, तभी अंगद आदि वीर बड़े क्रोध के साथ आ पहुँचे। उनको देखकर क्रूर राक्षस क्रोध के साथ यों कहने लगा—

क्रोध-भरे युद्ध में भी सिंह रोष के साथ हाथी पर ही झपटता है, न कि मर्कट पर। तुमपर शर छोड़ने से क्या लाभ ? तुम रोष क्या दिखा रहे हो ? मेरे साथ लड़ने का थोड़ा सामर्थ्य रखनेवाले उस हनुमान् को देखो।—यों इन्द्रजित् ने कहा।

हनुमान् को देखा न ? क्या तुम उससे भी अधिक बलवान् हो ? मेरा यह धनुष अभी है न ? मेरा भुजबल क्या अभी समाप्त हो गया ? तुम लोग वही हो न, जो पहले थे ? नहीं तो क्या तुमको कहीं से अधिक बल मिल गया है ? तुम मुझे उस नर को दिखाओ और तुम अपनी पहाड़ी राह पकड़कर चले जाओ।

यों कहकर इन्द्रजित् लक्ष्मण की ओर बढ़ने लगा। तब वानरों ने उसपर वृक्ष और पर्वत फेंके। तब उन वानरों की पंक्तियों पर मेरु को भी भेदनेवाले अनेक करोड़ तीक्ष्ण बाण जा लगे। उस शरवर्षा से आहत होकर वानर शक्तिरहित हो गये।

उस समय रावण के भाई (विभीषण) ने लक्ष्मण से कहा—तुम्हारी यह विशाल वानर-सेना विनष्ट हो रही है। शत्रु विजयी काल की तरह मेघवत् शरवर्षा कर रहा है। उसका यज्ञ मिट गया, अब उसे जीवित न छोड़कर शीघ्र मार डालो। अनुजदेव (लक्ष्मण) भी युद्ध में तन्मय हुए।

इतने में प्रभूत गुणवाले मारुति ने आकर कहा—'हे प्रभु ! मेरे कंधे पर आरूढ हो जाओ।' तब लक्ष्मण उसके कंधे पर आरूढ हो गये। जब हनुमान् पैंतरे बदलकर चलने लगा, तब देखनेवाले कह उठे—इसने देवों के दुःख दूर कर दिये।

क्रूर राक्षस (इन्द्रजित्) ऐसा दिखाई दिया, जैसे सहस्र कालमेघ एक हो खड़े हों। वह एक सहस्र अश्व-जुते रथ पर ऊँचाई पर दिखाई पड़ा। दोनों वीर (लक्ष्मण और इन्द्रजित्) आमने-सामने हुए। दीर्घ आकारवाला हनुमान् सहस्र नामवाले (त्रिविक्रम) के समान सब दिशाओं में बढ़ गया।

निद्रा का त्याग करनेवाले उस वीर (लक्ष्मण) ने अग्नि के जैसे जलानेवाले, वज्र के जैसे उग्र, प्राणों को पीने की इच्छा से विचरण करनेवाले भूतों के जैसे गतिमान्, भूख के जैसे, व्याधि के जैसे, अवारणीय प्राकृतिक सम्बन्ध से युक्त कठोर कर्मबन्ध के जैसे, मन के जैसे और गिद्धों की माँ के जैसे, कुछ बाण छोड़े।

बलवान् राक्षस ने उन बाणों को वैसे ही बाणों से काट डाला। तब लक्ष्मण ने विस्तीर्ण आकाश, विशाल अष्ट दिशाएँ, बड़े समुद्र इन सबको तथा अन्य समस्त अवकाश को भर देनेवाली प्रलयकाल की वर्षा के समान असंख्य बाण छोड़े कि जिससे ऐसा लगता था, मानों अब संसार में कोई बाण ही शेष नहीं रह गया है।

तब इन्द्रजित् ने पक्षियों के समूह के जैसे शर-समुदाय से उन बाणों को हटा दिया। जब वे बाण चिनगारियों के जैसे बुझ गये, तब लक्ष्मण ने उतने ही बाण पुनः प्रयुक्त किये। इन्द्रजित् ने उनको रोककर हजारों पैंतरे बदले।

शिला, पर्वत, वृक्ष, घास, लता—इनका भेद किये बिना सब प्रदेशों में समान रूप से प्रलयकालिक चंड मारुत-सदृश पराक्रम से पूर्ण इन्द्रजित् का रथ एवं क्रोध से भरे महाबली मारुति के पैर चल रहे थे।

यह असुक है, यह अमुक है—इसका ज्ञान खोकर दोनों वीर (इन्द्रजित् और लक्ष्मण) घूमते हुए शर छोड़ रहे थे। तब देवता भी प्रशंसा करने लगे कि कोई भी वीर इनकी समता नहीं कर सकता। वे दोनों ऐसे लड़ रहे थे, जैसे तरंगों से भरा एक समुद्र तरंगों से भरे दूसरे समुद्र के साथ जूझ रहा हो।

छोड़े गये बाण गगन में जा रहे हैं, या नहीं? इसे देवों की अपलक आँखें भी नहीं देख सकीं। मन भी नहीं जान पाया। उन शरों को गिन सकनेवाली कोई संख्या भी नहीं रही। उन शरों के बीच शक्तिशाली पवन भी नहीं जा सका। केवल देहों पर घाव ही प्रकट दिखाई पड़ते थे, उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई पड़ता था।

दीर्घ धनुषों के टंकार वज्र के समान गूँजती हुई, सब वस्तुओं को चूर-चूर करती हुई गगन में फैल गई। धनुषों से निकलनेवाले दीर्घ तथा तीक्ष्ण बाण संसार-भर में अग्नि-ज्वाला फैलाते हुए, (परस्पर टकराकर) चूर-चूर होते हुए और वज्र के समान जलते हुए दिशाओं में गिरने लगे। आकाश के नक्षत्र काले-से पड़ गये।

धनुषों की डोरियों से निकलनेवाली ध्वनि (आकाश से) गिरनेवाले वज्र के समान शब्द करती हुई ऐसे फैलती थी कि दिशाएँ फट जाती थीं। (धनुष के) दोनों शरों के परस्पर मिलने से (अर्थात्, धनुष के झुकने से) दृढ़ता से छोड़े गये अग्निमय बाण शब्दगुण आकाश में जाकर अपने वेग से अग्नि-ज्वालाएँ उत्पन्न करते थे। इन सबको देवताओं ने देखा।

(उन बाणों से) समुद्र सूख गये। पर्वत छिद गये। सूर्य की देह अग्नि से जल उठी। वृक्ष अग्नि के ताप से झुलस गये। शोणित की कांति सर्वत्र बिखर पड़ी। मांस की दुर्गन्ध अत्यधिक मात्रा में फैल गई। छूट-छूटकर बिखरनेवाले बाणों से समुद्र के विशाल गर्त्त फटकर उभरे प्रदेश बन गये। सारी धरती चक्कर खाकर घूमने लगी।

(उन दोनों वीरों के द्वारा प्रयुक्त) जलनेवाले तीक्ष्ण धारवाले बाण दोनों सेनाओं को अस्त-व्यस्त करते हुए चारों दिशाओं में बिखर रहे थे। हाथी मरे। अश्व ध्वस्त हुए। वानर बिखरे। रुधिर-प्रवाह समुद्र के समान तरंगायित होकर प्रकट हुआ। अनेक वीर योद्धा कटकर गिर पड़े।

कालवर्ण सिंह-सदृश प्रभु के अनुज (लक्ष्मण) के द्वारा छोड़े गये शरों में से कुछ बल खाते हुए चले। कुछ धुआँ छोड़ते हुए चले। कुछ झुलसाते हुए चले। कुछ जलते हुए चले। कुछ काले होकर चले। कुछ बाईं ओर चले। कुछ दाईं ओर चले। कुछ सघन हो चले। कुछ बिखरकर चले। वे दिशाओं में सर्वत्र फैलकर चले।

(लक्ष्मण के समान) युद्ध करनेवाले राक्षस (इन्द्रजित्) के शरों में कुछ जल के जैसे थे। कुछ अग्नि के समान थे। कुछ पर्वत के समान थे। कुछ ऊपर उठनेवाले मेघों के समान थे। कुछ वज्र के समान थे। कुछ समुद्र के समान थे। कुछ सूर्य के रथ के समान थे।

कुछ वृषभवाहन (शिव) के अट्टहास के समान थे और कुछ (भय से उत्पन्न) स्वेद-जल के समान थे।

(इन्द्रजित् और लक्ष्मण) के शर काम उत्पन्न करनेवाले कुल में जन्म लेनेवाली नवयुवतियों के (अर्थात्, वारनारियों के) कटाक्ष के समान, रक्षा करनेवाले दृढ कवच से आवृत पराक्रमपूर्ण वक्ष से जा लगते। योद्धाओं के मनोहर कंधों से जा लगते। मुखों से जा लगते। भुजाओं से जा लगते और पैरों से जा लगते।

देवता विस्मित होकर कह रहे थे कि किस देव या दानव ने किस दिन और कहाँ इनके जैसे युद्ध किया था। उन दोनों ने अपने-अपने स्वर्णमय धनुष को, शुक्लपक्ष की दूज के चाँद के समान एक बार जो झुकाया, वह वैसे ही झुका रहा और उनसे निरन्तर शर निकलते रहे।

उनके द्वारा प्रयुक्त शरों से लोक संतत हो उठे। (गगन में) संचरण करनेवाले ज्योतिष्पिंड (सूर्य आदि) झुलस उठे। देवता भी ताप से व्याकुल हुए। दिग्गज संदेह करने लगे कि युगांत तो नहीं आ गया है? धनुष का टंकार सबको व्याकुल कर रहा था।

(दोनों के शरों के कारण) आकाश से नक्षत्र झड़ पड़े। सूर्य को भी संताप उत्पन्न हुआ। पूर्णचन्द्र ने अपना हिरण गिरा दिया। गगन ने मेघ गिराये। कुलपर्वत चूर हो गये। (अनेक) सम्मानित सिर कटकर नीचे गिर पड़े। संसार के अनेक प्राणी अपने प्राण छोड़कर गिर गये।

सब दिशाओं पर विजय प्राप्त करनेवाले रावण के पुत्र ने पच्चीस तीक्ष्ण शर छोड़े, जो अनुजदेव (लक्ष्मण) की देह में जा लगे। लक्ष्मण ने अपना धनुष भली भाँति झुकाकर अग्नि बरसानेवाले ऐसे कुछ बाण छोड़े, जिनसे इन्द्रजित् का कवच टूटकर गिर पड़ा।

बलवान् राक्षस ने मारुति के उन्नत कंधों पर ऐसे बाण छोड़े, जिन्होंने देवेन्द्र के क्रोधी ऐरावत को खदेड़ दिया था। पूर्व में देवों को तितर-बितर कर दिया था और जो आग उगलते हुए चलते थे।

अपार गुणों से भरे मारुति को, रुधिर के बहते हुए झरनों से पश्चिम दिशा में पहुँचे हुए सूर्य के समान (रक्तवर्ण) देखकर युवक सिंह-सदृश लक्ष्मण ने इन्द्रजित् के रथ को किसी भी दिशा में न जाने से रोककर उसे चूर-चूरकर डाला।

उस (इन्द्रजित्) के रथ को टूटते हुए देखकर देवता हर्षध्वनि कर उठे। त्रिमूर्त्ति हर्षित हुए। तब इन्द्रजित् वज्र के समान क्रोध के साथ लपककर एक दूसरे रथ पर जा बैठा और लक्ष्मण के शिर को लक्ष्य करके दस बाण छोड़े। उनके लगने से अनुज-देव छटपटाने लगे।

लक्ष्मण शिथिल होकर फिर स्वस्थ हो उठे और फटे मुखवाले कुछ तीक्ष्ण बाण छोड़े। इसके पहले कि इन्द्रजित् उनका निवारण कर सके, लक्ष्मण ने एक बाण इन्द्रजित् के वक्ष पर यों मारा, ज्यों पूर्वकाल में वृषभवाहन देव (शिव) ने दर्प से आनेवाले यम के वक्ष पर पदाघात किया था।

वह बाण इन्द्रजित् के कवच तथा वक्ष को पार कर निकल गया। इन्द्रजित् उससे शिथिल हुआ। इसपर देवता ऊँचे स्वर से हर्षध्वनि कर उठे। तब लक्ष्मण ने दिन के आरम्भ में उदित होनेवाले सूर्य के जैसे दिखाई पड़नेवाले एक बाण से उस राक्षस की ध्वजा को काट डाला और उसके पुष्ट कंधों को छेद दिया।

उस राक्षस की देह से बहनेवाला रुधिर प्रज्वलित अग्निशिखा के समान उमड़कर प्रकट हुआ और वह विचलित मेरु-सा हिल गया। अपनी देह को फिर सँभालकर उसने नौ सहस्र तीक्ष्ण शर चलाये। किन्तु, वे (लक्ष्मण के) ज्योति-सदृशअ भेद्य कवच से टकराकर छितरा गये। उस दृश्य को देखकर इन्द्रजित् अत्यन्त रुष्ट हुआ।

सहस्र अश्व-जुते रथ पर बैठे हुए, इन्द्रजित् ने पुनः चुनकर अति तीक्ष्ण सहस्र बाण (लक्ष्मण के) मर्मस्थान को लक्ष्य करके छोड़े। अनुपम नायक (राम) के अनुज ने उन सबको ध्यान लगाकर देखा और निष्फल कर दिया। फिर, कुछ शरों से इन्द्रजित् के शरीर को वेध करके उसके धनुष की डोरी काट डाली।

इन्द्रजित् इस आशंका से विचलित हुआ कि इस (लक्ष्मण) के हाथ में स्थित यह धनुष कदाचित् विष्णु, ब्रह्मा या शिवजी का ही धनुष तो नहीं है। फिर, ध्यान से देखकर यह भी जान लिया कि वे बाण उसके कवच को तोड़ने पर भी स्वयं पूर्ण ही रहते हैं। वह यह सोचकर कि अब विजय पाना असंभव है, दुर्बलचित्त हो गया।

तब उसके चाचा (विभीषण) ने उसके मनोभाव को जान लिया और मुक्तिदायक (भगवान् विष्णु के अंशभूत) लक्ष्मण के निकट जाकर कहा—मेरी एक बात सुनो। किसी भी देवता को युद्ध में परास्त करनेवाले इस (इन्द्रजित्) को तुमने पराजित कर दिया। युद्धोन्माद से भरा हुआ (इन्द्रजित्) अब दुर्बल पड़ गया। अब यह जीवित नहीं रहेगा।

तब यम के समान रोषपूर्ण, घातक करवाल एवं दाँतों से युक्त उस राक्षस ने अपने चढ़ाये धनुष की डोरी से सप्तलोकों में प्रतिध्वनित होनेवाला टंकार निकाला। फिर, यह कहते हुए कि इसे रोक सको, तो रोको—वायवीय अस्त्र को छोड़ा। किंतु, लक्ष्मण ने उसी अस्त्र से उसे रोक दिया।

तब इन्द्रजित् ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया। लक्ष्मण ने उसी अस्त्र से उसको भी रोक लिया। वारुणास्त्र छोड़ा, तो वारुणास्त्र से उसे रोका। काले हृदयवाले राक्षस ने अत्युज्ज्वल सूर्य का अस्त्र चलाया। रोष-भरे सिंह जैसे लक्ष्मण ने उसी अस्त्र से उसे भी रोक दिया।

इन्द्रजित् ने यह कहकर कि 'क्या तुम इससे बच सकोगे'—'इषीकास्त्र' छोड़ा। तब लक्ष्मण ने उसी अस्त्र से उसको रोक लिया। तब इन्द्रजित् ने यह कहकर कि अब तुम पर अविनाशी अस्त्र फेकूँगा, जिससे तुम अपने को मृत ही समझो, ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर दिया।

तब गगन में स्थित शिव, ब्रह्मा, मुनि तथा देव एवं धर्मनिष्ठ देवों के अधिपति सब भयभीत होकर यह कहने लगे कि कदाचित् इस अस्त्र से लक्ष्मण की कुछ हानि न हो।

चक्रधारी (विष्णु के अवतार राम) के भाई ने उस ब्रह्मास्त्र को देखकर, जो

यों आ रहा था, ज्यों प्रलयकाल में सारी दृष्टि को मिटानेवाली समुद्र-मध्य स्थित वडवाग्नि सूर्य के साथ मिलकर जल उठे, तो भी उसकी समता नहीं कर सके, मन में सोचा—

इस (इन्द्रजित्) ने यह सोचकर कि पहले ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने पर मैंने उसे न लौटाया, न रोका ही था, किन्तु, निष्प्राण होकर गिर पड़ा था, अब पुनः मुझपर उस अस्त्र का प्रयोग किया है। यदि अब भी मैं अपने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग न करूँ, तो वह उचित कार्य नहीं होगा।—यों सोचकर लक्ष्मण ने कमलभव के अस्त्र का संधान किया।

उस श्रेष्ठ पुरुष (लक्ष्मण) ने कहा—'संसार का कल्याण हो'। यह भी कहा—'ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने का साहस करनेवाले इस राक्षस के प्राण मत लेना।' फिर, यह कहा कि 'यह अस्त्र इस (इन्द्रजित् के द्वारा प्रयुक्त) ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दे।' यह कहकर उन्होंने ब्रह्मास्त्र को छोड़ा। स्वर्ग के देवता लक्ष्मण के सद्गुण को देखकर आश्चर्य-चकित हो गये।

स्वर्गवासी विस्मय के साथ कह उठे—लक्ष्मण के द्वारा छोड़ा हुआ यह अस्त्र स्वर्ग एवं भूमि को सुरक्षित छोड़कर अधर्मपूर्ण राक्षस के शरीर काट सकता है। किन्तु, इसने कहा है कि केवल (राक्षस के द्वारा प्रयुक्त) ब्रह्मास्त्र का ही शमन कर देना। अहो! इसने अधार्मिक रोष नहीं प्रकट किया। इसकी कैसी करुणा है?

यदि अग्नि जल उठे और उसके सामने वज्र आ गिरे, तो जिस प्रकार वह अग्नि दब जाती है, वैसे ही विष्णु (के अंश राम) के भाई द्वारा छोड़े हुए ब्रह्मास्त्र से इन्द्रजित् का अस्त्र मिट गया और वह (लक्ष्मण का) अस्त्र सप्तलोकों को जलानेवाली अग्नि को प्रकट करके फैल गया।

तब सूर्यकुल में उत्पन्न वीर (लक्ष्मण) ने उस ब्रह्मास्त्र को गगन में फैलने से रोकने के लिए एक शर को यह कहकर भेजा कि इस अस्त्र के निकट जाओ। जिस प्रकार एक विष का प्रभाव दूसरे विष से शांत होता है, उसी प्रकार ब्रह्मास्त्र का प्रभाव दूसरे शर से शांत हो गया।

स्वर्गवासियों ने राम-लक्ष्मण का कार्य देखकर कहा—इन दोनों बलशाली वीरों के लिए क्या कोई कार्य असंभव भी हो सकता है? और, यह सोचकर कि उनका कार्य सिद्ध होगा, वे आनन्दित हुए। तब ललाटनेत्र ने उन देवों से कहा—अच्छी तरह विचार किये विना तुम लोगों ने यह कहा है कि क्या इनके लिए कोई कार्य असंभव हो सकता है? वास्तविक बात मैं कहता हूँ, सुनो—

ये राम-लक्ष्मण नर और नारायण के ही अवतार हैं, जो हम सबके मूल कारण-भूत हैं, जो निखिल सृष्टि के आदिकारणभूत ब्रह्म हैं, जो कर्मबन्ध से मुक्त पुरुषों के लिए भी अगम्य हैं, जो अनुपम माया के भीतर अदृश्य रहते हैं, जो हमारे द्वारा अध्ययन किये जानेवाले चार वेदों के भी परे हैं, वह पुराणपुरुष ही इनके रूप अवतीर्ण हुए हैं।

ये ज्ञान के लिए अगम्य हैं। जब-जब धर्म की हानि होने लगती है, तब-तब ये साधारण भूतलवासी के जैसे ही यहाँ आकर धर्म की रक्षा करते हैं। ये क्रूर राक्षसों का नाश करने के लिए यहाँ आये हैं। फिर, भी अपने सामर्थ्य से अपने कार्य को लोगों के लिए अगोचर बनाकर संचरण करते रहते हैं।

यह लक्ष्मण निस्संदेह वह परमात्मा ही है, जो सब प्राणियों में स्थित रहकर सब की प्रशंसा पाता है। राम भी वही परमात्मा है, जो सारी सृष्टि में उसी प्रकार व्याप्त है; जिस प्रकार दूध में जामन फैलकर दही का कारण बनता है। यह परमार्थ है। इस सत्य को तुम सब यथारूप में जान लो।

क्षीरसागर में शयन करनेवाले, पूर्व में हमारी प्रार्थना को सुनकर अविनश्वर भाग्यशाली राक्षसों का नाश करके उत्तम धर्म की रक्षा करने के लिए अवतरित पुरुष भगवान् ही ये हैं—यों अष्ट ऐश्वर्य के अधिष्ठाता जटाधारी देव (शिवजी) ने कहा।

तब देवों ने यह कहा—हे आश्रितों के कर्म-दुर्विपाक को दूर करनेवाले! यह सब जानकर भी हम भगवान् की माया के कारण अज्ञ हो गये। अतः, संशय करने लगे। अब हमारा संशय मिट गया। आपका वचन हमारा धैर्य बढ़ा रहा है। अब हमारे सब शत्रु मिट गये। हम अपने सब दुःख भूल गये।

वक्र तथा उज्ज्वल दंष्ट्राओं से युक्त उस राक्षस (इन्द्रजित्) ने मायावी भगवान् (विष्णु) का अस्त्र उठाया और यह कहकर कि यदि तुम इसको रोक सको, तो तुम्हें जीतने-वाला कोई नहीं होगा? किन्तु; यह निश्चित है कि अब तुम इस लोक को छोड़कर जानेवाले हो। उस पवित्र मूर्त्ति (लक्ष्मण) पर उसका प्रयोग किया।

देवताओं ने सिर पर कर जोड़कर उसको नमस्कार किया और अपने को बचा लिया। मुनि तथा अन्य लोगों ने भी वैसा ही किया। कभी कुंठित न होनेवाले और सब कार्यों को पूर्ण करनेवाले उस अस्त्र को उसे नमस्कार करनेवालों के सामने शांत होते हुए देखकर लक्ष्मण, अपने चक्रधारी विष्णु का अंश होने की बात स्मरण कर उस अस्त्र के सम्मुख गये।

वह अस्त्र इस प्रकार आ रहा था, मानों वह सप्तलोकों को जला देनेवाला हो। लक्ष्मण ने यह स्मरण किया कि मैं अविनाशी आदिब्रह्म ही हूँ। तब वह अस्त्र उनकी कुछ हानि न करके और उनकी परिक्रमा करके अंतरिक्ष में जाकर अदृश्य हो गया।

तब देवता प्रशंसा करके नाच उठे। कपिकुल के वीर आनन्द से नृत्य करने लगे। देवस्त्रियाँ नर्त्तन करने लगीं। तपस्वी यह कहकर कि तुमने सारे संसार की रक्षा की है, हर्षनृत्य करने लगे। कमलभव एवं परशुधारी (ब्रह्मा एवं शिव) मुक्तकंठ प्रशंसा करने लगे।

इन्द्रजित् ने जब विष्णु के अस्त्र को व्यर्थ जाते हुए देखा, तब उसे संदेह हुआ कि यह कौन है? फिर सोचा, यह चक्रधारी विष्णु ही तो नहीं है। पुनः यह सोचकर कि चाहे यह कोई भी हो, मैं इसमें आगा-पीछा नहीं करूँगा, पाशुपतास्त्र को छोड़ा।

सारे ब्रह्मांड को एक दिन में ही मिटाने में समर्थ पाशुपतास्त्र का प्रयोग करने का उस राक्षस का विचार जानकर देवता काँप उठे। सारा संसार विनष्ट होने की आशंका से भय-व्याकुल हो उठा।

अनेक दिन तक कठोर तपस्या करने पर स्वयं शिवजी ने प्रत्यक्ष होकर मुझे यह अस्त्र दिया था, जिसे अन्य कोई नहीं प्राप्त कर सका है। अतः, यह अस्त्र इस (लक्ष्मण) के

प्राणों को हरेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। इसी के कारण आजतक कोई मेरे सामने खड़ा नहीं रह सका—यों इन्द्रजित् ने सोचा।

इन्द्रजित् ने पुष्प, जल, चन्दन, धूप, हवि आदि पूजा-योग्य द्रव्यों का मन से ही ध्यान करके, उस अस्त्र की पूजा की। उसने किसी भी प्रकार से अवारणीय उस अस्त्र के प्रति यह कहकर कि इस लक्ष्मण के प्राण हरण कर लौट आओ, बड़े रोष के साथ धनुष की डोरी को कंधे तक खींचकर बाण छोड़ा।

तब शूल, परसे, जलानेवाले बाण, अग्नि-ज्वालाएँ, विष, सर्प, वज्र, काले भूत, पिशाच तथा नाना रूपों में यम संसार-भर में फैल गये।

एक ओर प्रलयकाल की अग्नि (उस अस्त्र) के साथ व्याप्त हुई। दूसरी ओर उस सेना-समुद्र के ऊपर, जो सप्तसमुद्र तथा उससे परे स्थित महाजलधि के जैसे उस युद्धक्षेत्र में फैला हुआ था, बहुत घना अंधकार छा गया। चक्कर काटनेवाला चंडमारुत भी उस सेना को व्याकुल करने लगा।

बड़े-बड़े देवता अपना स्थान छोड़कर भागे। मुनि यह कहकर कि यह अस्त्र व्यर्थ नहीं होगा, इससे लक्ष्मण को कुछ हानि अवश्य होगी, बहुत चिंतित हुए। वानर पिस गये। उस पाशुपतास्त्र से जो उत्पात हुआ, उसका वर्णन नहीं हो सकता। उस (अस्त्र) के घूमने से दोनों ज्योतिष्पिंड (सूर्य-चन्द्र) तथा सारा संसार घूम उठे।

उत्तम गुणवाला विभीषण उसे देखकर भय से उसास भरने लगा और पसीना-पसीना होकर पुकार उठा—हे पवित्रमूर्त्ति! क्या इसे रोकने का भी कोई उपाय है? इसके उत्तर में लक्ष्मण हँस पड़े। पुष्पमाला-भूषित वानर-वीर लक्ष्मण के पैरों की छाया में आकर छिप गये।

सब वानरों को 'अभय दो! अभय दो!' कहते हुए देखकर लक्ष्मण ने कहा—डरो मत। मैंने तुमको अभय दिया और अपना हाथ उठाकर उनको शान्त किया। उसने गगन और भूमि के भय को जान लिया। अब मैं चुप नहीं रहूँगा। पंचमुख रुद्र का अस्त्र संधान करूँगा।—यों मन में निर्णय किया।

उस सुन्दर अस्त्र (रुद्रास्त्र) का स्मरण करके, उसकी पूजा करके और यह कहकर कि इस अस्त्र को शान्त कर दो और कुछ मत करो—अपनी शक्ति के योग्य एक बाण छोड़ा। उस अस्त्र ने इन्द्रजित् के अस्त्र के पीछे-पीछे जाकर क्षण-भर में उसे निगल लिया।

स्वर्गवासियों ने हर्षध्वनि की। भूमि के निवासियों ने हर्षध्वनि की। स्वर्ग-वासियों के मनोहर नगाड़े गरजे। समुद्र गरजे। मेघ गरजे। कला-कुशल लोगों के मन गरजे। वेद गरजे। विजयश्री गरजी। धर्म गरजा। इस प्रकार सर्वत्र हर्षध्वनि सुनाई पड़ी।

प्रलयकाल में सारी सृष्टि को मिटानेवाले रुद्र के उस शक्तिशाली अस्त्र का बलवान् लक्ष्मण ने निवारण कर दिया और संसार को बचा लिया। यमराज से भी भयंकर इन्द्रजित् लक्ष्मण के उस सामर्थ्य को देखकर स्तब्ध रह गया। पहले पैर उखड़ जाने से भागनेवाले वानर-वीरों ने जाना कि वे (लक्ष्मण) हरि ही हैं।

उस दिव्य अस्त्र के व्यर्थ हो जाने से इन्द्रजित् निरुत्साह नहीं हुआ। मैं अस्त्र-प्रयोग में दक्ष हूँ, मेरी दक्षता अमोघ है—यों कहते हुए उसने कुछ शर छोड़े। वे शर बलवान् लक्ष्मण के कंधों एवं ललाट में चुभ गये।

उसने सुग्रीव आदि वानर-वीरों पर, जो निरन्तर पत्थरों को बरसाकर राक्षस-वाहिनी को मार रहे थे, सहस्रों ऐसे बाण छोड़े कि जिससे ऐसा लगा कि वे वानर अब नहीं बचेंगे, तब गौरवर्ण लक्ष्मण के पार्श्व में खड़े हुए अपने पितृव्य (विभीषण) को देखकर इन्द्रजित् ने कहा—

बड़ा दंडायुध हाथ में लिये तुम जातिभ्रष्ट के जैसे वर्गहीन होकर मनुष्यों की प्रशंसा करते हो। अज्ञ दास के जैसे उनकी सेवा करते हो। उनके पीछे-पीछे चलते हो। बजनेवाले नगाड़े के जैसे उनके वचनों को दुहराते रहते हो। आज तुम्हारा सिर काटकर गिरा देता। लेकिन, यह सोचकर कि ऐसा करने से अपकीर्त्ति होगी, मैं चुप हूँ।

त्रिमूर्त्ति भी भले ही दृष्टिपात पाने के लिए डरते हुए सम्मुख गिरकर नमस्कार करते रहें, त्रिभुवन का राज्य भी प्राप्त हो जाय, तो भी तुम्हारे जैसा जीवन कौन पसन्द करेगा। अपनी सेना को सँभाल सकने की शक्ति रखनेवाले किसी भी वीर के लिए ऐसा जीवन असह्य और अपयशमय होता है।

जबतक जल रहता है, तबतक मीन अपने प्राण धारण कर उसके साथ रहता है, उसी प्रकार सब राक्षस रावण के साथ रहकर युद्ध में मर मिटने के लिए भी तैयार हैं। किन्तु, कोई राक्षस अपने प्राण रखकर उनसे पृथक् नहीं हुआ है। तुम जो अब पृथक् हो गये हो और अकेले ही जीवित रहना चाहते हो, यदि तुम (लंका का) राज्य भी करने लगो, तो तुम्हारा साथ देने के लिए कौन राक्षस रह जायगा?

पहले मेरे पिता ने सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के पिता (विष्णु) को हराया था, कार्त्तिकेय के पिता (शिव) को कैलास पर्वत के साथ एक हाथ में उठाया था। वे जो इतना पराक्रम दिखाकर राज्य कर रहे हैं, वह क्या इन मनुष्यों की सहायता से ही है? (अंतिम पंक्ति से यह ध्वनि निकलती है कि विभीषण मनुष्यों की सहायता से लंका का राज्य करना चाहता है, जो उपहासास्पद है।)

कमल पर आसीन ब्रह्मदेव के ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न तुम अनुपम पराक्रमी हो। तुम्हारे इस उत्तम कुल के कारण सब देवता तुमको नमस्कार करते। किन्तु, तुम अब इन मनुष्यों का दास बनकर रावण का राज्य पाना चाहते हो। तुममें अभिमान कहाँ है? वह (अभिमान) तो हमारे साथ ही मिट जानेवाला है।

हमारी निन्दा कराके, स्वयं हमारी निन्दा करके, अपनी बहिन की नाक काटनेवालों से अपने भाई को एवं उनकी उज्ज्वल शस्त्रधारी सेना को विध्वस्त कराके, अबतक दबे पड़े हुए यम के परिवारों को अब विजयी बनाकर[1] तुम जो जीवन बिताना चाहते हो, उससे तो इस जीवन का न रहना ही तो अच्छा है?

१. यमदूत अबतक रावण से डरते थे। किन्तु, अब वे निर्भय होकर राक्षसों के प्राण हर रहे हैं—यह ध्वनि इससे निकलती है। —अनु०

हे विजयी भुजाओंवाले ! जिस दिन चित्रांकित जैसे सौंदर्य से युक्त रावण राम के शर से विद्ध होकर धूल में लोटेगा, उस दिन तुम क्या उसके शरीर पर गिरकर रोओगे, या आनन्द से हर्षध्वनि करोगे, या इस राम की 'जय' कहकर उसकी सेवा करोगे ? तुम क्या करने पर तुले हो ?

मांसमय शरीर से प्राणों के निकल जाने पर पुनः ओषधि से उन प्राणों को लौटानेवाले मनुष्य क्या लंकेश को मार सकेंगे ? क्या तुम उस रावण के वैभव को पाकर उसे भोगने के योग्य हो ? यदि मैं अपयश की चिन्ता न करके एक शर से तुमको मार डालूँ, तो तुम स्वर्ग में जा पहुँचोगे न ?—यों इन्द्रजित् बोला।

इन्द्रजित् के वे वचन बड़ी शांति से सुनकर विभीषण ने पुष्पमालाओं से भूषित अपना सिर हिलाया और मंदहास प्रकट किया। फिर, यह कहकर कि हे तात ! पाप कठोर होता है। धर्म ही उत्तम है। मेरी बात सुनो। वह आगे बोला—

मैं धर्म को ही साथी बनाकर जीऊँगा। कठोर नरक का कारण बननेवाले पाप को अपना साथी बनाकर अमिट निन्दा का भागी बनकर नहीं जीऊँगा। यदि असत्य आचरण करना पड़े, तो उस आचरण को ही त्याग दूँगा। किन्तु, सत्य को कभी नहीं छोड़ूँगा। जिस दिन लंकेश ने दुष्कर्म किया, उसी दिन से मैं उसका भाई नहीं रहा।

मैंने मद्यपान नहीं किया। झूठ नहीं बोला। अपने बल से किसी भी वस्तु का अपहरण करने का पाप नहीं किया। माया और छल से कार्य करने के विषय में कभी सोचा भी नहीं। किसी ने मुझमें कोई पाप-कार्य नहीं देखा। तुम लोग भी देख रहे हो न ? मुझमें कौन-सा पाप है ? एक स्त्री की कामना करके अनुचित कार्य करनेवाले का साथ छोड़ देना क्या दोष है ?

जब मैंने कहा कि तीनों लोक जिसकी प्रशंसा करते हैं, उस आदि भगवान् देवाधिदेव विष्णु (के अवतार राम) की पातिव्रत्य धर्म में श्रेष्ठ पत्नी को दुःखी बनाकर सताना उचित नहीं है, तब तुम्हारे पिता ने क्रोध करके कहा—'निकल जाओ !' तब मैं भी चला आया। इससे क्या मैं नरक में जाऊँगा ?

क्रूरता से धर्म की परवाह किये बिना वासना की ही कामना रखकर मरनेवाले तुम लोगों को यश प्राप्त हो। श्रेय भी मिले। सत्त्वगुण में दृढ रहकर, महानों का अनुसरण करनेवाले तथा धर्म का आचरण करनेवाले हमलोगों को अपयश मिले, नरक प्राप्त हो !

यह जानकर ही कि धर्म को अधर्म नहीं जीत सकता, विवेकपूर्ण कार्य मानकर मैं देवाधिदेव राम की शरण में आया। बाह्य संसार में चाहे मुझे यश मिले या निन्दा मिले। आगे चलकर मैं चाहे उन्नति प्राप्त करूँ या पतन की ओर जाऊँ, मुझे इसकी परवाह नहीं।—यों विभीषण ने कहा।

तब वज्र-समान रोषवाले इन्द्रजित् ने यह कहकर कि तुम जिन श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त करने की आशा कर रहे हो, वे सब मेरे हाथ के इस अर्द्धचन्द्र बाण से मृत्यु को ही श्रेष्ठ मानेंगे, अब तुम बचकर कहाँ जाओगे ?—गरुड के समान एक घातक शर को चुनकर विभीषण के स्वर्णाभरणों से अलंकृत कंठ को लक्ष्य करके छोड़ा।

वह बाण, वज्र-सा, अग्नि-सा, विषकंठ त्रिनेत्र (शिव) के त्रिशूल-सा, बड़े वेग से चला। देवता बोल उठे—(विभीषण) अब मरा! अब मरा! किन्तु इतने में उदारगुण (लक्ष्मण) ने अपने शर से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

उस बाण के टूट जाने पर, यम के लिए यम बने हुए उस राक्षस (इन्द्रजित्) ने एक भाला उठाकर फेंका। वह ऐसे आया, जैसे सूर्य ही गिर रहा हो। उसे देखकर सप्त भुवन काँप उठे। किन्तु, धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण उन (लक्ष्मण) ने उसे भी काट दिया।

तब विभीषण ने यह कहकर कि मुझपर इसने भाले का प्रयोग किया—रोष करके वायुवेग से पद रखते हुए चलकर अपने हाथ से स्वर्णमय दंडायुध से (इन्द्रजित् के) सारथि, ध्वजा एवं दूध के सदृश रंगवाले बड़े-बड़े अश्वों से युक्त रथ पर आघात कर उन्हें चूर-चूर कर दिया।

टूटे हुए रथ पर ही खड़े-खड़े इन्द्रजित् ने विभीषण के कंधों पर, लक्ष्मण की भुजाओं पर एवं अन्य वानरों के वक्ष पर अनेक सहस्र बाण बरसाये। जब सबको डुबाता हुआ रक्त का प्रवाह बह चला, तब उसे देखकर वह राक्षस अट्टहास कर हँस पड़ा।

इन्द्रजित् यों कोलाहल उत्पन्न करके और यह सोचकर कि एक अच्छे रथ के बिना युद्ध करना कठिन है, देखनेवालों के पलक मारने के भीतर ही गगन में अदृश्य हो गया और रावण के निकट जा पहुँचा। (१—१८३)

●

अध्याय २७

इन्द्रजित्-वध पटल

इन्द्रजित् जब अंतरिक्ष में अदृश्य हो गया, तब वानर-वर्ग यह आशंका करते हुए कि पहले के जैसे अब भी वह मायाकृत्य करेगा, अपनी आँखों को तरेरकर देखने लगा। इधर रावण ने वीरता का सम्मान पाये हुए अपने पुत्र के घावों से रक्त बहते हुए देखकर कहा—

तुम्हारा यज्ञ पूर्ण नहीं हो पाया—यह बात तुम्हारे कंधे पर लगे शर से ही ज्ञात हो रही है। तुम्हारी देह काँप रही है। तुम्हारी दशा गरुड़ के निकट सिर झुकाये सर्प की भाँति हो गई है। कहो क्या हुआ?

तब इन्द्रजित् ने उत्तर दिया—मैंने जो मायाजाल फैलाये, उन सबको तुम्हारे भाई (विभीषण) ने व्यर्थ कर दिया। जब लक्ष्मण ने आक्रमण करके मेरे यज्ञ को भ्रष्ट कर दिया, तब मैंने क्रुद्ध होकर घोर युद्ध छेड़कर सभी महान् अस्त्रों का प्रयोग किया। किन्तु, (लक्ष्मण ने) उन सबको रोक दिया।

भूमि और स्वर्ग को उत्पन्न करनेवाले विष्णु का अस्त्र भी लक्ष्मण की परिक्रमा करके चला गया। अब कौन-सा बलवान् अस्त्र शेष रह गया है? हमारे कुल के दुर्भाग्य से तुमने यह भयंकर वैर मोल लिया है। यदि लक्ष्मण रोष करे, तो अकेले ही वह त्रिभुवन को मिटा सकता है।

पहले के युद्ध में यह सोचकर ही कि उससे सारा लोक मिट जायगा, उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग नहीं किया। इसलिए, मैं विजयी होकर लौट आया था। जब मेरा छोड़ा हुआ ब्रह्मास्त्र उसके निकट गया, तब भी उसने अपने को बचा लिया। अभी वह युद्ध के लिए बड़े उत्साह से भरा है। अपनी शक्ति से ही मुझे मारने का निश्चय करके खड़ा है।

मेरे ऐसा कहने से यह मत समझना कि मैं डर रहा हूँ। यदि तुम उस सीता की कामना छोड़ दो, तो वे (राम-लक्ष्मण) भी अपना क्रोध छोड़ देंगे। वे लौटकर चले जायेंगे। तुम्हारे किये अपराध को भी क्षमा कर देंगे। तुम्हारे प्रति प्रेम के कारण ही मैं यह कह रहा हूँ।

जब इन्द्रजित् ने यह कहा, तब लंकेश अपनी दाँतों से बाल-चन्द्रिका को प्रकट करके और अपने कंधों को हिलाकर हँस पड़ा और बोला—कदाचित् अब तुम युद्ध के लिए न जाकर कहीं दूर जानेवाले हो। मनुष्य को देखकर डर गये हो। डरो मत। दुःखी मत होओ। मैं अपने एक धनुष के सहारे आज उन मनुष्यों को मारकर विजय दिलाऊँगा।

मैंने जो (सीता का हरण) किया है, वह यह सोचकर नहीं कि अभी तक जो युद्ध करके मर गये, वे मेरे वैरभाव को मिटा देंगे या अभी जो बचे हैं, वे विजय पाकर लौटेंगे अथवा तुम उनको हरा सकोगे। मैंने अपने ही अपार बल का विश्वास करके यह वैर कमाया है।

हे पुत्र! तुमने विवेकहीन परामर्श दिया। मैं अपनी बीस भुजाओं से युद्ध करके सारे ससार के मिटने पर भी अमिट रहनेवाले यश को स्थापित करके, देवों के देखते हुए, जल के बुलबुले के समान इस शरीर को भले ही छोड़ दूँ, किन्तु सीता को नहीं छोड़ूँगा।

यदि मैं विजय न भी पाऊँ, तो भी उस राम के नाम के साथ मेरा नाम स्थिर बना रहेगा और वेदों रहते समय तक मैं अमर बना रहूँगा। मेरी मृत्यु कभी नहीं होगी। वह (मृत्यु) तो सबके लिए सामान्य विषय है। जो आज हैं, वे कल मरेंगे ही। किन्तु, यश अमिट रहता है।

ज्योंही मैं सीता को छोड़ दूँगा, त्योंही सब देवता आकर मुझे बाँधकर ले जायेंगे। कोई मुझसे डरेगा नहीं। मैं दसों दिशाओं को जीत चुका हूँ। मैं हीनता प्राप्त करके नहीं मरूँगा।

अधिक कहने से क्या लाभ? तुम अपने निवास में जाओ। कंधे में चुभे बाणों को निकालकर युद्ध के श्रम को दूर करो और सुख से रात्रि व्यतीत करो।—यों कहकर (रावण) उठा। खुले मुँहवाले व्याघ्र-समान उस (रावण) ने आज्ञा दी—'रथ शीघ्र ले आओ।'

तब इन्द्रजित् ने उसके चरणों पर झुककर कहा—हे मेरे पिता! आप रोष छोड़ दें। मैंने जो परामर्श दिया, उसके लिए मुझे क्षमा करें। मैं जब मर जाऊँगा, तब आप मेरे वचनों को ठीक मानेंगे। यों कहकर और मरने का निश्चय करके इन्द्रजित् एक दिव्य रथ पर आरूढ हुआ।

अपने प्रयत्न से प्राप्त किये गये नाना प्रकार के शस्त्रों को, शिवजी के द्वारा दिये गये अस्त्रों को तथा अन्य वस्तुओं को रथ पर रखे। सब माँगनेवालों को दान दिया। फिर, क्रूर रावण को कटाक्षों से देख-देखकर, दोनों आँखों से अश्रु बहाता हुआ चल पड़ा।

लंका के निवासी सब राक्षस शोक के मारे, यह कहते हुए कि 'हे पर्वत-समान मनोहर कंधोंवाले ! तुमको छोड़कर हम नहीं रह सकते। हम मर जायेंगे।' परिक्रमा करते हुए उसके साथ चले। उनको देखकर इन्द्रजित् ने कहा—तुम लोग राजा (रावण) की रक्षा करो। किंचित् भी विचलित मत होओ। मैं अभी जाकर उन मनुष्यों को हरा दूँगा।

सदा भयभीत रहनेवाली एवं कर्णाभरणों से भूषित राक्षस-रमणियाँ निकट आकर नमस्कार करतीं। विजय-कामना करतीं। इन्द्रजित् के रूप को देख-देखकर उनका मुख सूख जाता। वे उसासें भरतीं। मन में द्रवित होतीं। रोने लगतीं। इस प्रकार (विलाप करनेवाली) उन स्त्रियों के कटाक्ष-रूपी तीक्ष्ण बरछों से भरे हुए युद्धक्षेत्र को पार करके वह (इन्द्रजित्) किसी प्रकार वहाँ से गया।

इस प्रकार इन्द्रजित् युद्धभूमि को जा रहा था। इधर धनुर्धारी लक्ष्मण ने ऊपर फैले गगन में दृष्टि डालकर कहा—हे विभीषण ! क्रूर गुणवाला इन्द्रजित् कदाचित् अंतरिक्ष को पार करके कहीं उस ओर चला गया है। उसने कुछ किया नहीं है। तभी सहस्र अश्व-जुते रथ की ध्वनि सुनाई पड़ी।

वह रथ स्वर्णमय दंड पर दृढ़ता से लगाई हुई ध्वजा से युक्त था। वज्र की-सी ध्वनि करता हुआ चलता था। रत्नमय अलंकारों के कारण विद्युत्-समुदाय की-सी कांति से युक्त था तथा त्रिभुवन में जाने की शक्ति रखता था। वह रथ यों आया, ज्यों मेरु का शिखर ही लुढ़कता हुआ आ रहा हो। उसके इस प्रकार आने से त्रिकूटाचल का प्रदेश चूर-चूर हो गया और सारा संसार यों डरकर अस्त-व्यस्त हो उठा, ज्यों उसने समुद्र से बाहर निकलती हुई वडवाग्नि को देख लिया हो।

जब शत्रु का वह रथ आया, तब रात्रि दिन के समान (प्रकाशयुक्त) हो गई। समुद्र हलचल से भर गया। संसार व्याकुल हो उठा। दिग्गज अपना स्थान छोड़कर भागने लगे। अष्ट कुलपर्वत काँप उठे। भूमि में गड्ढे पड़ गये। उसके चलने के मार्ग की धूलि उड़कर गगन में भर गई। भूमि के नीचे स्थित आदिशेष का फन, जो अंधकार के समान विष उगलता हुआ उठा, विचलित हो चकराने लगा।

राक्षसों की सेना में हर्षध्वनि उठी। देवता भयभीत हुए। वानर-दल भय से व्याकुल होकर पसीना-पसीना हो उठा। जब घातक कृत्यवाले उस राक्षस (इन्द्रजित्) ने तीर बरसाये, तब पवित्र मूर्त्ति (लक्ष्मण) ने उसके सम्मुख आगे बढ़कर अपने धनुष से ऐसा टंकार किया कि दिशाएँ बहरी हो गईं। उन्होंने अति शीघ्रता से भयंकर युद्ध छेड़ दिया। संसार में भीषण धूम फैलने के साथ बड़ी अग्निज्वाला भभक उठी।

विभीषण ने दोषहीन, शक्ति से पूर्ण तथा युद्ध में चतुर लक्ष्मण को देखकर नमस्कार किया और कहा—यदि अब कुछ भी विलंब करोगे, तो 'वाहै' (पुष्पों की) माला नहीं धारण कर सकोगे (अर्थात्, विजय नहीं पा सकोगे)।' तब उस सुन्दर कुमार ने महान्

१. तमिल-साहित्य में ऐसा वर्णन मिलता है कि विविध युद्धों में वीर विविध पुष्पों की माला धारणकरते थे: जैसे 'वेटश', 'करंद' आदि। विजय पाने पर वीर 'वाहै' नामक पुष्प की माला पहनते थे। —अनु०

शब्द करनेवाले अपने धनुष से ऐसा टंकार उत्पन्न किया कि संसार घबरा उठा। कुलपर्वत चूर-चूर हो गये। भूमि के नीचे रहनेवाले आदिशेष भी भय से काँप उठा। फिर, उन्होंने वज्र के जैसे भयंकर बाण बरसाये।

लक्ष्मण ने सहस्रों तीक्ष्ण मुखवाले बाण छोड़े। उधर इन्द्रजित् ने भी उनके उत्तर में बाण छोड़े। वे जलनेवाले बाण लोगों के प्राण पी डालते थे। उनसे डरकर असंख्य वानर एवं राक्षस सब दिशाओं में भाग गये। यों वे दोनों वीर, दो बड़े-बड़े मेघों के समान थे, जो समान रूप में जलनेवाले बाण एक दूसरे पर फेंक रहे थे।

आग उगलती आँखोंवाले राक्षस (इन्द्रजित्) के द्वारा छोड़े गये घातक बाण बीच में ही गिर जाते थे। सिंह-समान विजयी (लक्ष्मण) के द्वारा फेंके गये बाण उस (इन्द्रजित्) के शरीर में भरे रक्त को पीते हुए चुभ जाते थे। उसके द्वारा प्रयुक्त दीर्घ शर आकर लक्ष्मण के उज्ज्वल कवच में लग जाते थे। उसके बाण बाँबी में घुसनेवाले सर्प के समान हनुमान् के शरीर में घुस जाते थे, तो भी हनुमान् को उनका अनुभव नहीं होता था।

उस समय, लक्ष्मण ने विष के समान अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस इन्द्रजित् के कवच को भेदनेवाले तीक्ष्ण बाण छोड़े। उनसे इन्द्रजित् की देह में छेद पड़ गये। उसने आँखों से आग उगलते हुए क्रुद्ध होकर अग्निमुख बाणों का प्रयोग किया, किन्तु उसके बाण अपने लक्ष्यस्थान पर न लगकर बीच में ही गिर जाते थे। वह दृश्य देखकर देवता हर्षित हुए।

अपने धनुष को व्यर्थ होते देख इन्द्रजित् ने, सूर्यकिरण से भी अधिक तीक्ष्ण एक शूल उठाकर, अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे चलाया। ब्रह्मदेव के पुत्र पुलस्त्य से दिया हुआ वह शूल दिन से भी अधिक प्रकाश फैलाता हुआ आया। उसे देखकर लक्ष्मण ने सप्त ऋषियों के शाप-वचन से भी अधिक भयंकर एक शर का प्रयोग कर उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

लक्ष्मण ने यह सोचकर कि यदि इसके पास रथ रहेगा, तो इसका बल कम नहीं होगा। इसके अश्व अति वेगगामी हैं, अतः इसके रथ को तोड़ देना चाहिए, एक घातक शर छोड़कर उस रथ के सारथि का पर्वत-जैसा सिर नीचे गिरा दिया।

जब रथ को चलानेवाला सारथि मर गया, तब उस रथ की वैसी ही दशा हो गई जैसी उस तपस्वी की होती है, जो पंचेंद्रियों से आकृष्ट होता है अथवा उस वारनारी के प्रेम की जैसी होती है, जो असत्यमय आचरण के द्वारा अपने प्रेम को बेचती है।

इन्द्रजित् ने, उछलकर चलनेवाले अश्व-जुते अपने रथ को स्वयं बार-बार संचालित करते हुए, अपने वक्ष को ही तूणीर बनाकर उसमें गड़े हुए बाणों को ही एक-एक करके खींचकर लक्ष्मण पर, हनुमान् पर तथा अन्य वीरों पर चलाया और गर्जन किया।

तब देवों ने यह कहकर उसकी प्रशंसा की कि वीर कहलानेवालों में यह महावीर है। क्या इसकी वीरता की समता अन्य किसी की वीरता के साथ हो सकती है? मृत्यु निकट होने पर भी जो अपनी वीरता न खोये, वही सच्चा शूर है- और उसपर दिव्य पुष्प बरसाये।

लक्ष्मण आश्चर्य से कह उठे—मैंने नौ दृढ बाणों का प्रयोग किया, यह उनको

(अपनी देह से) उखाड़कर मेरे ऊपर चला रहा है! करोड़ों बाण अपनी देह में लगे रहने पर भी यह विचलित नहीं होता! इसके प्राण विकल नहीं होते! यह शिथिल नहीं हो रहा है! पौरुष एवं पराक्रम कदाचित् इसके साथ ही समाप्त हो जायेंगे!

तब विभीषण ने कहा—यह (इन्द्रजित्) अपने रथ को अंतरिक्ष में भी ले जायगा। इस युद्ध को तजकर मायायुद्ध भी करने लगेगा। मेघ-मंडल के पीछे छिपकर वहाँ से युद्ध करेगा। यह क्रूर राक्षस दिन में नहीं मरेगा, किन्तु रात्रिकाल में ही मरेगा।

लंकेश के भाई ने जब यों कहा, तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया—अब यह मरनेवाला ही है। यहाँ से यह और कहीं नहीं जा सकेगा। जहाँ भी यह जायगा, मेरा बाण इसका पीछा करेगा। इसकी शक्ति अब क्षीण हो गई है। यह अभी पराजित हो जायगा। उसी समय—

लाल-लाल रुधिर-प्रवाह के जैसे दिशाओं में लालिमा फैल गई। शरों के समान सहस्र किरणें दिखाई देने लगीं। अत्युष्ण रथ भी निकल आया। यों सूर्य, उस राक्षस-वीर के समान ही, गगन-मार्ग में प्रकट हुआ।

अहो! प्रभात हो गया। सूर्य प्रकट हुआ। दीपों के जैसे ही राक्षसों का प्रताप भी मंद पड़ गया। इसकी शक्तिशाली माया अब समाप्त हो गई। अब यह (इन्द्रजित्) मरा—यों कहकर देवताओं ने हर्षध्वनि की।

भविष्य को जाननेवाले विभीषण ने लक्ष्मण से कहा—हे अमिट यश प्रदान करनेवाली वीरता से पूर्ण! जबतक त्रिशूलधारी (शिवजी) के द्वारा करुणा से दिया गया यह रथ नहीं मिटेगा और जबतक इसके हाथ में यह शूल रहेगा, तबतक यह युद्ध में नहीं मरेगा, यह निश्चित है।

तब धनुर्विद्या में निपुण वीर (लक्ष्मण) ने सोचा—इस रथ में जुते अश्व तब-तक नहीं मरेंगे, जबतक बड़ा शब्द करनेवाले इसके पहिये भूमि पर नहीं गिरेंगे। फिर, उन्होंने अपनी धनुष-चातुरी से पहियों की रक्षा करनेवाली धुरी की कील उड़ा दी और वज्र जैसी धुरी से चक्रों को पृथक् कर दिया।

रथ के जोड़ ढीले पड़ गये और वह टूटकर बिखर गया। उसमें जुते हुए अश्व उसी प्रकार बिखरकर बेलगाम हो खड़े रहे, जिस प्रकार एक बड़े वृक्ष के कुल्हाड़े से कटकर गिर जाने पर उसपर निवास करनेवाले पक्षी बिखर जाते हैं।

इन्द्रजित् उस टूटे रथ के ऊपर से सब शस्त्रों को उठा उठाकर वानर-सेना पर फेंके, पर लक्ष्मण ने उन सबको अपने बाणों से काट दिया। इतने में मुख का वचन पूरा होने के पूर्व ही (अर्थात्, अतिशीघ्र) वह (इन्द्रजित्) गगन में उड़ गया और ऐसा गरजा कि जिससे त्रिभुवन फट गया। कोई उसको देख नहीं सका। उसका शब्द-मात्र सुनाई पड़ा।

बलवान् कंधों से युक्त इन्द्रजित् ने अपने तपोबल से बड़े मेघ के समान पत्थरों को बरसाया। तब बड़े-बड़े वानर-वीर किसी भी दिशा में बचकर नहीं जाने पाये और शिर तथा देह को धरती पर झुकाकर गिर पड़े।

इन्द्रजित् अंतरिक्ष में अदृश्य हो खड़ा रहा। लक्ष्मण ने उसकी बरसाई हुई

पत्थरों की वर्षा देखी; किन्तु उसे नहीं देख सके। तब उन्होंने सब दिशाओं को भरनेवाले त्रिविक्रम के जैसे सब दिशाओं में निरंतर अपने दृढ़ शर बरसाये।

उन बाणों से सब दिशाएँ आवृत हो गईं। इन्द्रजित् की युद्ध करने की शक्ति घट गई। तब लक्ष्मण ने मेघों के मध्य गगन की लालिमा के समान स्थित इन्द्रजित् को देखा और मन में यों विचार किया—

'मेरे बाण से उस (इन्द्रजित्) का धनुष भले ही न टूटे, किन्तु उसकी पर्वत-समान भुजा अवश्य कट जायगी।' उन्होंने अपने दृढ़ धनुष को झुकाकर अर्द्धचन्द्र बाणों को चलाया और उस राक्षस के हाथ को काट दिया। वह (हाथ) अमूल्य आभरणों तथा धनुष के साथ धरती पर आ गिरा।

प्रलयकालिक प्रभंजन के चलने से इन्द्रधनुष के साथ गगन के मेघ जैसे गिर पड़े हों, वैसे तीक्ष्ण बाण के आघात से उसका वह बड़ा हाथ धनुष के साथ धरती पर गिर पड़ा।

ज्यों भूमि को वहन करनेवाला आदिशेष अर्द्धचन्द्र को काट रहा हो, त्यों मनोहर उँगलियों से दृढ़ता से पकड़े धनुष के साथ वह हाथ ऐसे तड़पा कि वहाँ की शिला और पेड़ चूर हो गये और वानर मर मिटे।

स्वर्ग के देवता बोल उठे—अहो! सूर्य मिटा नहीं है, चन्द्र मिटा नहीं है, मेरु-पर्वत भी नहीं मिटा है। किन्तु, इन्द्रजित् का हाथ अभी कटकर गिर गया है। यंत्र के समान इस नश्वर जीवन की इच्छा अब कौन करेगा? (भाव यह है कि इन्द्रजित् जैसा पराक्रमी वीर भी मर जाता है, तो किसको जीवन की नश्वरता का ज्ञान नहीं होगा?)

असत्य को अतिक्षुद्र पाप समझनेवाले रावण के पुत्र को, जिसका हृदय काजल से भी अधिक काला था, धर्म की स्थूल मूर्त्ति के जैसे उन वीर (लक्ष्मण) के शर से आहत देखकर राक्षस यों विकल हुए, ज्यों उनका अपना ही सिर कट गया हो।

जब ऐसा हुआ, तब वानर-सेना हर्षध्वनि करती हुई उमड़ पड़ी और बिजली के जैसे दाँतोंवाले राक्षस-सेना पर टूट पड़ी और अपने घातक नखों, हाथों, लातों, वृक्षों तथा बड़ी शिलाओं से (मारकर) एक को भी छोड़े बिना, सबको एक नये जीवन में (स्वर्ग में) पहुँचा दिया।

तब इन्द्रजित् ने, जो विषकंठ देव (शिव) के द्वारा दिये गये शूल को अपने हाथ में लेकर चिल्ला रहा था कि 'मैं अभी फेकूँगा' और वर्षाकालिक मेघ के समान काला पड़ गया था, कहा—'तुम अपने शत्रु के कुल तथा पराक्रम को नहीं जानते हो, तुमको मारे बिना मैं नहीं मरूँगा।'

इन्द्रजित् पवन, वज्र, अग्नि एवं यम जैसे ही शूल लेकर (लक्ष्मण को) मारने के लिए प्रकट हुआ। तब अयोध्या के राजा (राम) के भाई ने यह सोचा कि अब इस राक्षस का सिर काटने का समय आ गया है।

इधर लक्ष्मण ने यह कहकर कि यदि राम वेदों के द्वारा अन्वेषणपूर्वक जानने योग्य परमपुरुष हैं और वेदज्ञ ब्राह्मणों के लिए वंद्य धर्म-स्वरूप हैं, तो यह मेरा बाण चन्द्रकला-जैसे दाँत से युक्त इस राक्षस को मार दे, अपनी सारी शक्ति लगाकर एक बाण फेंका और सृष्टि को स्थिर किया।

वह शर चक्रायुध, वज्रायुध, ललाटनेत्र (शिव) के भीषण त्रिशूल एवं ब्रह्मदेव के अस्त्र—सबको लजाता हुआ और आग उगलता हुआ गया और इन्द्रजित् के सिर को काट डाला। तब (देवों के द्वारा) पुष्पों की वर्षा हुई।

इन्द्रजित् का सिर ऊपर की ओर उड़ गया और उसके धरती पर गिरने के पहले ही उस छली की देह शूल एवं उसमें लगे बाणों के साथ धरती पर यों आ गिरी, ज्यों प्रलय-काल के प्रभंजन से आहत होकर बिजली एवं वज्र के सहित मेघ गिर पड़ा हो।

दो खड्गदंतों, कुंडलों एवं लाल केशों के साथ उसका सिर गिर पड़ा। मानों प्रखर उष्ण किरणों से युक्त सूर्यमंडल, गगन के दो चन्द्रमंडलों के साथ, विद्युत् के जैसे जगमगानेवाले दो कुंडलों के साथ एवं रक्तवर्ण अग्निशिखाओं के साथ गिर पड़ा हो।

जब शरीर से आत्मा निकल जाती है, तब प्रज्ञा, पंचेन्द्रिय तथा अंतःकरण जिस प्रकार बाहर निकल जाते हैं, उसी प्रकार (इन्द्रजित् के मरते ही) तीक्ष्ण दाँतोंवाले राक्षस अपने हाथ के शूलों को वैसे ही फेंककर ऊँचे प्राचीरों से घिरी लंका की ओर बड़ी घबराहट के साथ भाग गये।

धनुर्धारियों में उत्तम वीर इन्द्रजित् के मरते ही देवता यह कहकर कि अब लंकेश (रावण) का शासन नहीं चलेगा, हर्षध्वनि करते हुए, अपने कमर की धोती खोलकर और उसे उछाल-उछालकर नाचने लगे। उस समय वे देवता न मारने (अहिंसा) का व्रत रखनेवाले अर्हत्-देवों (जैनों के पूज्य दिगम्बर तीर्थङ्करों) के समान लगे।

उस समय वर देनेवाले भगवान् (विष्णु), हरिणधारी उदारगुणवाले देव (शिव) चतुर्वेदों का पाठ करनेवाले देव (ब्रह्मा), देवेन्द्र इत्यादि सभी करुणालु देव अगोचर न रहकर भूमि पर प्रकट दिखाई पड़े। उनको वानरों ने भी अपनी आँखों से देखा।

पापी राक्षस के शर से जिन वानरों के सिर कट गये थे और वे मरे पड़े थे, वे देवताओं की कृपा से सप्राण हो उठे। महात्माओं की यह उक्ति प्रमाणित हुई कि जो धर्म को अपनाते हैं, उनका विनाश कभी नहीं होता।

(इन्द्रजित् के) शरीर से कटकर गिरे सिर को आनन्द से भरा हुआ वालिपुत्र अपने मनोहर कर में लिये आगे-आगे चला। लक्ष्मण हनुमान् के कंधे पर आसीन होकर, आकाश से देवों के द्वारा विमान से बरसाये गये पुष्पों की छाया में चले।

पुष्ट कंधोंवाले, जिसका वैरभाव तिल-तिल करके विलीन हो रहा था, ऐसे स्वभाववाले तथा उत्तरोत्तर उमड़ते हुए हर्षवाले प्रभु (राम) ने दूर से देखा कि पूर्व काल में देवों के लिए क्षीरसागर को मथनेवाले वाली का पुत्र (अंगद) अपने लाल हाथ में एक सिर लिये आ रहा है।

राम ने मन में कहा—मैं यह सोचकर कि रात्रिकाल में चमकनेवाले उज्ज्वल चन्द्र पर लगे कलंक के समान ही मुझपर लगा हुआ कलंक भी नहीं मिटेगा—दुःखी हो रहा था। किन्तु, प्रख्यात धर्मदेव की करुणा से मेरा दुःख दूर हो रहा है। अब लक्ष्मी को भी मैं प्राप्त करूँगा, इसमें संदेह नहीं। मेरी दीनता भी मिट जायगी।

फिर, राम ने कहा—दक्षिण समुद्र से घिरी हुई और दृढ प्राचीरों से युक्त लंका

पर राज्य करनेवाले कपटी राक्षस के पुत्र को मेरे अनुज ने मार डाला और तुम उस सिर को हाथ में लिये हुए आगे-आगे आ रहे हो। हे वानरराज! इससे अबतक लज्जा से झुका हुआ मेरा सिर ऊँचा हो रहा है। अब मैं अपने श्वेतच्छत्र को भी ऊँचा करूँगा।

तब राम के निकट खड़े वीरों ने (अंगद से) कहा—अक्षय मधु से पूर्ण पुष्पों की माला से भूषित हे वीर! देवों को पराजित करनेवाले पापी इन्द्रजित् का सिर तुम उठा लाये हो। इससे स्वर्गवासी अपना सिर उठा सकेंगे। समुद्र से आवृत पृथ्वी के निवासी (भय छोड़कर) अपना सिर उठा सकेंगे और चारों वेद भी अपने सिर उठा सकेंगे।

कभी विचलित न होनेवाले स्वभाव से युक्त राम यह सोचते हुए लक्ष्मण की प्रतीक्षा में बैठे थे कि लक्ष्मण मायावी राक्षस (इन्द्रजित्) को अवश्य मारकर लौटेगा और धर्म को स्थिर करेगा। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार व्रत को अपनाये हुए भरत उन (राम) के सजीव लौट आने की प्रतीक्षा करते हुए बैठे थे। इतने में उन्होंने अपने अनुज को आते हुए देखा।

शत्रु के पास जाकर उसका वध करके अनुज लौटे। राम के नयन उनपर गड़े हुए थे। उनके कमलनयनों से जो जलधारा निरन्तर बही, वह (अश्रधारा) क्या प्रेम के कारण बही, या दुःख के कारण बही, या आनन्द के उमड़ने से बही, या अस्थियों को भी गला देनेवाली करुणा के कारण बही? इसका रहस्य कौन जान सकता है?

(राम) आँखों से अश्रु बहाते हुए, उमंग एवं हर्ष के साथ उठकर सामने आये। (लक्ष्मण ने) उनके युगल चरणों के आगे भेंट के रूप में इन्द्रजित् के उस सिर को रखा, जो ज्वाला-समान लाल केशों से युक्त था और जिसके फटे मुँह में ओंठ चबाते हुए दाँत निकले हुए थे।

रामचन्द्र (इन्द्रजित् के) सिर को देखते। अनुज की, विजयलक्ष्मी से आलिंगित स्वर्णपर्वत-समान भुजाओं को देखते। सामने खड़े हुए मारुति के पराक्रम को देखते। (लक्ष्मण के) धनुष को देखते। देवताओं के कृत्य को देखते। अपने अनुज के द्वारा की गई इन्द्रजित् की हत्या को देखते और हर्षमग्न हो कुछ कह नहीं पाते, अपितु ज्यों-के-त्यों खड़े रह जाते।

जिनका उपमान करनेवाला कोई भी पदार्थ कहीं नहीं है, ऐसे गुणों से पूर्ण उन राम ने अपने चरणों पर नत हुए अनुज को अपनी बाँहों में बाँध लिया। वह दृश्य ऐसा था, जैसे कालमेघ के साथ अरुण गगन मिल रहा हो या काले पर्वत पर प्रभातकालीन आतप फैल रहा हो। राम के वक्ष एवं कंधों पर रुधिर के लाल-लाल चिह्न लग गये।

राम ने कहा—मैं यही सोच रहा हूँ कि आलान में बाँधे जानेवाले मत्त गजों के अधिपति जनक महाराज की पुत्री अब मेरे पास पहुँच गई। तुमने इस कथन को सिद्ध कर दिया कि इस सृष्टि में वह व्यक्ति, जिसके अनुज हो, शत्रु से नहीं डरता।[1]

राम ने (लक्ष्मण के) कंधे पर बँधे तूणीर को उतारा। कंधे एवं वक्ष पर बँधे कवच को खोला, घाव करनेवाले शरों की नोंक लगने से जो क्षत उत्पन्न हो गये थे, उनको

१. यह पद्य प्रक्षिप्त-सा लगता है। —अनु०

पुनः-पुनः आलिंगन से तथा हाथों के स्पर्श से ऐसे दूर कर दिया कि उनके चिह्न भी नहीं रह गये।

विकसित पुष्पमालाधारी प्रभु ने लक्ष्मण से यह कहा कि हे पुरुषश्रेष्ठ! यह विजय तुम्हारे कारण नहीं हुई है। उत्तम बलविशिष्ट हनुमान् के कारण प्राप्त नहीं हुई है। किसी देवता की महिमा से नहीं मिली है। यह विजय विभीषण की दी हुई है। फिर, वे मौन हो रहे। (१—७१)

●

अध्याय २८

रावण-शोक पटल

दूतों के दल इन्द्रजित् के पिता (रावण) को समाचार देने के लिए, सर्वत्र फैलकर बहनेवाली शीतल रक्तधारा से बचकर, आर्त्तनाद करनेवाले राक्षस-समुद्र को भी पार कर लंका के भीतर इस प्रकार दौड़ चले, जैसे पर्वत की कंदरा में घुस रहे हों।

घरों के आँगनों में सर्वत्र राक्षस-स्त्रियाँ एकत्र होकर रो रही थीं, मानों सुन्दर तथा काले रंगवाली क्रौंचियाँ रो रही हों। ऐसे समय में अत्यन्त चिन्ता करते हुए कि आज लंका का नाश हो गया, दूतों के दल उज्ज्वल शूलधारी रावण के निकट जा पहुँचे।

उनके दाँत, मुख, पैर, मन सब प्राणों का बोझ लिये काँप रहे थे। भय व्याप्त होने से वे अत्यन्त विह्वल हो गये थे। उन्होंने किसी प्रकार (रावण को) यह समाचार सुनाया कि आज तुम्हारा पुत्र नहीं रहा।

यह समाचार सुनते ही वहाँ स्थित देवता, नृत्य करनेवाली तनुमध्या रमणियाँ तथा अन्य लोग इस आशा से कि आज यह संसार नष्ट हो जायगा, वहाँ से भाग-भागकर इधर-उधर छिप गये।

रावण की आँखों की पुतलियों से धूम-सहित क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसने करवाल को कोष से निकालकर झट उन दूतों के कंठ पर चलाया, पर बड़े समुद्र की तरंगों के जैसे हाथों के शिथिल होने से वह करवाल फिसल गया और स्वयं भी गिर पड़ा।

पुत्रशोक ने रावण की ऐसी दशा कर दी कि लगता था, उसकी क्रोधाग्नि जैसे मुख में उत्पन्न होकर, साँसों में बढ़कर, अत्यन्त जलती हुई आँखों में ज्वाला बनकर, इस सारे लोक को आवृत कर लेगी। (इस पद्य में ओंठ चबाना, उसास भरना, घूरकर देखना आदि क्रियाओं की ओर संकेत है)।

उस रावण की देह शिथिल बनकर (पृथ्वी पर) पड़ी रही। उमड़कर बाहर प्रकट होनेवाली क्रोधाग्नि से वह विष को उत्पन्न करनेवाले समुद्र के समान क्षुब्ध हो उठा, जिसमें फनोंवाला आदिशेष और पृथ्वी विचलित तथा दुर्बल हो गये।

सबको अस्तव्यस्त कर देनेवाली क्रोधाग्नि, उत्तरोत्तर बढ़नेवाला (पुत्र-) प्रेम तथा शोक, इन सबके कारण अग्निशिखा-समान उसकी बीस आँखों से आँसुओं की धारा, पिघले हुए ताँबे के समान बह चली।

उसने दाँत कटकटाये, तो पर्वतों पर बरसनेवाली घनी घटा के गर्जन की जैसी ध्वनि सर्वत्र सुनाई पड़ी। उसने अपने हाथ उठाकर नीचे पटका, तो उससे पर्वत चूर-चूर हो गये और उन पर्वतों के स्थान में समुद्र का जल उमड़कर भर गया।

जैसे जले हुए घाव में शूल चुभ गया हो—ऐसी पीडा का अनुभव करता हुआ वह कभी कहता, 'हे पुत्र! अरे!' कभी कहता, 'हे उत्तम सुत!' कभी कहता, 'मेरे तात!' कभी कहता, 'मेरे प्राण!' कभी कहता, 'तुम से भी पहले उत्पन्न होकर मैं अबतक जीवित हूँ, हाय!'

कभी कहता, 'आज इंद्र का वैर पूरा हुआ!' कभी कहता, 'हमसे दुःखी रहनेवाले स्वर्ग के देवता आज आनन्दित हुए!' कभी कहता, 'करदै (नामक) पुष्पधारी शिव एवं क्षीरसमुद्र में छिपे रहनेवाले विष्णु, अब अपना वैर समाप्त होते देख रहे हैं।'

विभूतिधारी (शिव) तथा विष्णु, जो हमारे सामने से हटकर पर्वत पर एवं समुद्र में छिपे रहते हैं, अब निर्बाध होकर वृषभ एवं गरुड पर आरूढ होकर संचरण करेंगे।

स्वर्गवासी देवता एवं उनके विमान, जो भाग-भागकर दिशाओं में छिपे हुए थे और अबतक लौटकर अपने स्थानों में नहीं आ पाते थे, क्या उनके लौट आने का उपाय इन तुच्छ मनुष्यों ने कर दिया?

मेरे क्रूर दूतों ने जैसे कहा—मेरा पुत्र एक दीन मनुष्य के हाथ मारा गया। यों कहता हुआ वह गला फाड़कर बार-बार पुकारता, चिन्तित होता, पीडा से व्याकुल होता।

शोक के बढ़ने से वह उठता, बैठता, चलता, दीनता से रो पड़ता, दहाड़ कर कलपता, शिथिल होता, स्वेद से भर जाता, उठकर चलता हुआ गिर पड़ता, आँखें खोलकर देखता, पुनः बंद कर लेता, अपनी देह से भूमि को कुरेदता और लोटने लगता।

जहाँ उसका एक सिर 'हे तात!' कहता और दूसरा सिर 'क्या मैं अब भी राज्य करने के योग्य हूँ' कहता, वहाँ तीसरा सिर कहता, 'मैंने ही तुमको शत्रुओं के हाथ दे दिया। अब मैं क्या कर सकता हूँ?'

चौथा सिर कहता, 'तुम चन्दन चर्चित-अपनी भुजाओं से हाय! मेरा आलिंगन नहीं करते हो!' तो पाँचवाँ सिर कहता—'हे महान् वीर! क्या यह उचित है कि एक सिंह को हरिण खा जाय?'

छठा सिर कहता—'नीलकंठ और चक्रपाणि जिन बड़ी सेनाओं को साथ लेकर सामना करने आये थे, उन सबको हराकर तुमने उन्हें भगा दिया था। अब क्या तुम पुनः अपना स्वर नहीं सुनाओगे?'

सातवाँ सिर कहता—'हाय! क्या तुम मर गये? मेरा कोई साथी नहीं रहा, यह क्या कोई छल है? क्या तुम लौटकर नहीं आओगे? हाय! मैं अकेला होकर डर रहा हूँ।'—यों कहकर वह रोता।

आठवाँ सिर कहता—'उस दिन तुम इन्द्र के किरीट के साथ उसकी विजयमाला को भी छीन लाये थे। तब सुन्दरियों ने जो सद्योविकसित पुष्प तुम्हारे सिर पर रखे थे, क्या अब उन्हें कौए उड़ाकर ले जायेंगे? क्या युद्धक्षेत्र में मुझे यही दृश्य देखना पड़ेगा?'

नवाँ सिर कहता—'हे वीर! अब क्या मीन-जैसी आँखोंवाली यक्षपत्नियाँ तुम्हारे धनुष के टंकार को सुनकर भयभीत हो अपने मंगलसूत्र उतारकर देंगी?'

दसवाँ सिर कहता—'हे असीम शक्ति से पूर्ण! यम भी तुम्हारे निकट आकर तुम्हारे प्राण हरने की धीरता नहीं रखता था। अब तुम मुझसे भी अदृश्य होकर किस लोक में जा पहुँचे हो?'

शोक से उद्विग्न रावण यों रोता हुआ, सोचने के पूर्व ही, उठ गया और दौड़कर प्रलयकालिक लाल आकाश के रंगवाले रुधिर से पूर्ण युद्धभूमि में अपने उत्तम पुत्र की देह को ढूँढ़ने के लिए जा पहुँचा।

देवता आदि उसके सब सेवक रावण के साथ ही युद्धक्षेत्र में गये और यह सोचकर कि 'न जाने, अब तीनों लोकों की क्या दशा होगी,' व्यथित हो उठे।

युद्धक्षेत्र में रावण को देखकर कुछ भूत तथा मांसभक्षी पक्षी, जैसे प्रेम दिखा रहे हों, रो पड़े। कुछ उसके चरणों को नमस्कार करने लगे। कुछ मूर्च्छित हो गये। कुछ मृत मत्तगजों के शरीरों के भीतर जा छिपे।

अपने पुत्र की देह को ढूँढ़ते हुए, अनेक कोटि अश्वों, बलवान् राक्षसों के शरीरों, मुखपट्टों से भूषित गजों और रथों को वह दिन-भर उलटता-पलटता रहा।

उसकी सभी आँखों से आँसू बह चले। घी डालनेवाले पर भड़कनेवाली अग्नि के समान (क्रोध से पूर्ण) हृदयवाले रावण ने (इन्द्रजित् के) हाथ को देखा, जो दृढ तथा भारी धनुष को पकड़े हुए पड़ा था।

उभरे कंधे पर तूणीर एवं शर के साथ पड़ा हुआ वह हाथ भीषण नेत्रोंवाले सर्प के समान था। रावण ने उसे अपने लाल करों में उठाकर अपने सिर पर रख लिया।

मुमूर्षु व्यक्ति के समान साँस लेता हुआ रावण (इन्द्रजित् के हाथ को) कभी अपने पर्वत-समान वक्ष पर लगाता। कंठ पर फेर लेता। सिर पर लपेट लेता। आँखों पर दबाता। नाक पर रखकर सूँघता। इस प्रकार, वह अत्यन्त शोक से पीडित हो उठा।

उस हाथ को देखने के पश्चात् रावण ने कुचले समुद्र के समान (इन्द्रजित् की) देह को भी देखा। उसकी अश्रुधारा समुद्र बनकर, वीरों के शरीर-रूपी लहरों से भरे युद्धभूमि-रूपी समुद्र को आवृत कर फैल गई। उस देह पर रावण गिर पड़ा।

शरों से भरे उस (इन्द्रजित् के) शरीर को अश्रुवर्षा से भरे अपने शरीर से लगाता। मुँह खोलकर बिलखता। रावण ने जैसा शोक अनुभव किया, वैसा और किसने अनुभव किया होगा?

वह इन्द्रजित् के वक्ष में बिंधे शरों को उखाड़-उखाड़कर तोड़ देता। मूर्च्छित होता। उसकी देह को सूँघता। उसका आलिंगन करता और ऐसे क्रुद्ध होता कि देखनेवाले

यह आशंका करने लगते कि यह उष्णकिरण सूर्य के साथ सप्त लोकों को अपने मुँह में रखकर चबा जायगा।

'इसका क्रोध क्या त्रिमूर्त्तियों और त्रिलोक के साथ ही समाप्त हो जायगा ?' ऐसी आशंका करके देवों के साथ मुनि संचरण करना छोड़ कहीं छिप गये।

रावण ने इन्द्रजित् का सिर ढूँढ़ा, पर नहीं मिला। यह सोचकर कि वह मनुष्य उसका सिर ले गया है, अत्यधिक क्रुद्ध हुआ। उससे हृदय में मानों एक घाव फट गया और वह बड़े शोक से सिसकी भरकर ऐसे रो पड़ा कि (उस शब्द से) आकश विदीर्ण हो गया।

स्थिर दिशाओं में रहनेवाले दिग्गज तथा ललाटनेत्र शिव का पर्वत (हिमालय) ही क्या मेरे उखाड़ने के लिए सुलभ थे ? मेरे दोषहीन पुत्र के सिर को एवं उसके प्यारे प्राणों को हरनेवाले उन शत्रुओं के शरीरों में प्राण रहते हुए भी तुच्छ गुणवाला मैं अभी तक अपने प्राण ढो रहा हूँ ! धिक्कार है मुझे।

मैंने ही अलका नगरी को अग्नि का आहार बनाया था ? मैंने ही इन्द्र के नगर को जला दिया था ? मैंने ही त्रिलोक पर अन्य किसी का अधिकार नहीं होने दिया था और मैंने ही (उन लोकों पर) शासन किया था। मुझे धिक् है ! पुष्पमाला-भूषित सिर से विहीन अपने पुत्र की देह को शृगालों से खाये जाते हुए देखकर भी मैं जीवित हूँ। मैं जो आहार लेता हूँ, वह श्वान के आहार से भी अधम है।

शत्रु पर आक्रमण करने के लिए मेरे पुत्र के साथ जो गये थे, वे लौटकर नहीं आये। सब मर गये। किन्तु, उस पक्ष में तपस्वी के वेष में रहनेवाले दो मनुष्यों एवं उनके साथ युद्ध में आये हुए वानरों में से कोई नहीं मरा। रावण के प्रतापी जीवन के बारे में और क्या कहा जाय !

गंधर्व, यक्ष, सिद्ध, राक्षस, इन सबकी स्त्रियाँ, जो लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दर हैं, संगीतमय कंठस्वर से युक्त हैं और तुम्हारी प्रेयसियाँ हैं, यदि यह कहेंगी कि मेरे पति को दिखाओ, तो मैं जो यम को भी पराजित करनेवाला हूँ. क्या उनके साथ मिलकर रोऊँगा ? हाय !

मैंने सर्वत्र विजय पाई। इन्द्र की संपत्ति पाई। जो भी चाहा, वह सब पूरा किया। किन्तु, अब सुन्दर आभरणधारिणी एक स्त्री (सीता) की कामना करके मैं उन सब उत्तर कर्मों को स्वयं तुम्हारे लिए करनेवाला हूँ, जिन्हें (पुत्र की हैसियत से) मेरे लिए तुम्हें करना उचित था।[1] हाय ! मेरे समान व्यक्ति इस संसार में कौन होगा ?

इस प्रकार के अनेक वचन कहकर ऊँचे कंठ से विलाप करता हुआ, द्रवितचित्त हो रोता हुआ रावण अपने प्यारे पुत्र (की देह) को उठाये, राक्षसियों के मुक्त कंठ से रोते हुए, स्वर्णमय लंका में प्रविष्ट हुआ। उसे देखकर जो लोग रो पड़े, उनकी ध्वनि दसों दिशाओं में गूँज उठी।

---

१. पिता का श्राद्धादि कर्म करना पुत्र के लिए योग्य है; पर आज रावण को ही अपने पुत्र के लिए वे सब कर्म करने पड़ेंगे।—अनु०

स्त्रियों की भीड़ अपार नदी के समान बढ़ आई। वे अपनी आँखें निकाल देतीं, कंठ काट लेतीं, वक्ष को चीर लेतीं और उस घाव से अपने गुर्दों को बाहर निकाल फेंकतीं, अपनी जीभ उखाड़ देतीं, इस प्रकार असह्य शोक से वे पीड़ित हुईं।

सब दिशाओं पर विजय प्राप्त करनेवाले दृढ भुजाओं से युक्त इन्द्रजित् की मुकुट-भूषित सिर से विहीन देह को ढोता हुआ रावण आ रहा था। उसे देखनेवाली स्त्रियों की आँखों से करुणासूचक अश्रुधारा समुद्र के समान उमड़कर वह चली।

इन्द्रजित् पर प्राणों से बढ़कर प्रेम रखनेवाली राक्षस-स्त्रियाँ, झुण्डों में एकत्र होकर सिर पर कमल जैसे करों को जोड़े, चित्रस्थ प्रतिमाओं के समान स्तब्ध खड़ी रहतीं और फिर पृथ्वी पर गिरकर लोट जातीं। ऐसी दशा में रुधिर उमड़नेवाली आँखों से युक्त रावण शीघ्र राजप्रासाद में प्रविष्ट हुआ।

तब मयपुत्री (मंदोदरी) अपने स्तनों को, अपने करों से पीटती हुई शोकविह्वल होकर आई, जैसे नारियल के कच्चे फलों पर कमल से मार रही हो। उसके लंबे केशभार खुलकर एँड़ी तक लटक रहे थे। ऐसा संदेह होता था कि मेखला का भार ढोनेवाले विशाल नितंबों के अतिरिक्त इसके कटि भी है या नहीं?

वह (मंदोदरी) सिर पर हाथ रखे, पृथ्वी पर यों पैर रखती हुई, जैसे आग पर चल रही हो, हृदय में उमड़ते प्रेम के साथ आई और शोक से विह्वल होकर इन्द्रजित् की देह पर यों गिरी, ज्यों व्याध के तीक्ष्ण बाण से आहत होकर कोई मयूरी पर्वत पर गिरी हो।

वह दीर्घ काल तक श्वासहीन तथा प्रज्ञाहीन होकर यों पड़ी रही, ज्यों प्राणहीन हो गई हो। उसके शरीर से स्वेद नहीं निकला। वह कुछ नहीं बोली। फिर, धीरे-धीरे उसकी मूर्च्छा दूर हुई और प्रज्ञा पाकर मुक्त कंठ से विलाप करने लगी।

बढ़ते हुए चन्द्र के समान किशोरावस्था में तुमको बढ़ते हुए और अपने धनुष से इन्द्र पर विजय पाते हुए देखने की तपस्या मैंने की थी। अब तुम्हारे शिरोहीन शरीर को देखने के लिए न जाने कौन-सी तपस्या की है? हाय! सद्हृदय से हीन होकर मैं अब भी इस नश्वर देह को ढोती हुई जीवन व्यतीत करने का विचार कर रही हूँ।

हे तात! हे प्यारे! हे अलभ्य अमृतचक्रधारी (विष्णु) तथा परशुधारी (शिव) के बल को भी जीतनेवाले एवं यम-समान बलवाले! त्रिलोक में अनुपम वीर! हे युद्ध में कुशल! तुम्हारे कमल-समान मुख को देखे बिना क्या मैं जीवित रह सकती हूँ?

जब तुम बालक ही थे और पैरों में नूपुरों को शब्दित करते हुए घुटनों से चलते थे, तभी तुम दो बलवान् सिंहों को पकड़कर ले आये थे और आँगन में उन दोनों को परस्पर टकराकर लड़वाते थे। क्या मैं अभागिन तुम्हारी ऐसी क्रीडा को फिर कभी देख पाऊँगी?

हे महान् गजसदृश! मैं तुम्हारी उस क्रीडा को पुनः देखना चाहती हूँ, जिसमें तुमने चन्द्र को 'चन्दा मामा आओ' कहकर पुकारा था और उसके पास आने पर दोनों हाथों से उसे पकड़कर, व्यर्थ ही उसमें लगे रहनेवाले कलंक को, खरगोश कहकर उसमें से निकालने की चेष्टा की थी। क्या तुम मेरी इच्छा को पूर्ण करने के लिए उठकर नहीं आओगे?

हे सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय) के समान सौंदर्यपूर्ण! यक्ष, राक्षस, विद्याधर आदि की

निष्कलंक चन्द्र-सदृश मुखवाली स्त्रियों के द्वारा प्रेमजाल में फँसाये जाकर क्या अब पुष्पशय्या पर निद्रामग्न होकर पड़े हो, अथवा क्या युद्ध के श्रम से थककर सो रहे हो ?

तीनों लोकों में जितने भी युद्धों में गया, उन सबमें विजयी होनेवाला तथा त्रिनेत्र आदि को भी पराजित करनेवाला मेरा पुत्र क्या एक मनुष्य के मारने से मर जायगा ? (यह तो हुआ) जैसे एक अणु के लात मारने से गगन तक उठा हुआ मेरु-पर्वत टूटकर गिर जाय, अहो !

कठोर कोपवाले मनुष्यों से राक्षसों का सेना-समुद्र ऐसे ही मिट गया, जैसे रूई में आग लग गई हो। मैं बहुत भयभीत हो रही हूँ। उस सीता नामक अमृत में छिपे हुए विष से क्या कल लंकापति भी इसी दशा को प्राप्त होगा ? हाय !

जब मंदोदरी इस प्रकार विलाप कर रही थी, तभी रावण यह कहता हुआ दौड़कर आया कि यह सारा दुःख विशाल नितंबवाली सीता के कारण ही उत्पन्न हुआ है। उस छल-भरे कठोर चित्तवाली को करवाल से मारकर शत्रुओं को मिटा दूँगा।

(रावण को) यों दौड़कर आते हुए देखकर मंदोदरी डर गई और यह सोचकर कि कहीं स्त्री की हत्या करके यह (रावण) अमिट अपयश का भागी न बन जाय, वह उसके निकट जाकर उसके चरणों पर गिरकर साहसपूर्ण हृदय से कहने लगी—हे राजन् ! तुम्हारे यश में कलंक लग जायगा।

अबतक अनेक युद्धों में विजय प्राप्त किये हुए हे महावीर ! क्या तुम ऐसा अपयश पाना चाहते हो, जो समस्त जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश तथा पवन—इन पंचभूतों के रहते तक अमिट रह जायगा ?

महाबलशाली कालकेयों के सिरों तथा दिग्गजों के धवल दाँतों को काटकर गिरानेवाले अपने दिव्य करवाल को यदि तुम लता-समान कटि तथा अरुण अधर से युक्त एक स्त्री पर चलाओगे, तो वह करवाल लज्जा से कुंठित ही हो जायगा, किन्तु एक स्त्री के प्राण नहीं हरेगा।

तपस्विनी के वेष में रहनेवाली एक स्त्री को यदि तुम किंचित् भी संकोच किये विना करवाल से मारोगे, तो गंगा को अपनी सुन्दर जटा में रखनेवाले (शिव), विष्णु, तथा ब्रह्मदेव यह कहकर ताली बजाकर हँसेंगे कि यह राक्षस के अयोग्य एक तुच्छ व्यक्ति है।

पुलस्त्य के उत्तम वंश में उत्पन्न होने का यश प्राप्त करनेवाले हे वीर ! यह कार्य भूलोकवासियों के योग्य नहीं है, स्वर्गवासियों के योग्य नहीं है और किसी भी प्रकार के लोगों के योग्य नहीं है। उत्तम व्यक्तियों का धर्म नहीं है। नीतिशास्त्र के अनुकूल नहीं है। विजय के योग्य भी नहीं है। अतः, क्या तुम ऐसे अमिट अपयश को पाकर दुःखी होना चाहते हो ?

अब इस नारी को मारकर और राम को भी जीतकर क्या तुम प्राचीन लंका-नगर में मन मारकर पड़े रहना चाहते हो ? 'सीता मर गई है'—यह सोचकर वे लोग

स्वयं ही लौट जायेंगे। उनको बिना हराये ही जाने देना क्या वीरता की बात होगी? सीता को मारने में कौन-सा औचित्य है? बताओ।

मंदोदरी के इस प्रकार कहने पर रावण ने उठाये हुए करवाल को पृथ्वी पर डाल दिया और यह कहा—पुत्र के सिर को एवं उन शत्रुओं के सिरों को लिये बिना मैं नहीं लौटूँगा। प्राचीन परिपाटी के अनुसार इस इन्द्रजित् की देह को तैल-भरी नौका में रखा जाय। (१—६१)

●

अध्याय २६

सेना-संदर्शन पटल

सेवकों ने वैसे ही किया (रावण की आज्ञा के अनुसार इन्द्रजित् की देह को तैल-भरी नाव में रखा)। सब दिशाओं में रहनेवाले राक्षसों की सेनाओं को एकत्र करने के लिए गये हुए दूत आ पहुँचे और रावण से नमस्कार करके निवेदन किया—तुम्हारी इस विशाल नगरी में असंख्य पंक्तियों में खड़ी रहनेवाली सेनाओं के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है। इतनी सेना एकत्र हो गई है। अब क्या आज्ञा है?

प्रसन्न होकर रावण उठा और उसने पूछा—(सेना) कहाँ है? तब मुकुलित कर वाले दूतों ने निवेदन किया—यह कैसे कहा जा सकता है कि वह अमुक स्थान में है? जैसे प्रलयकाल में सातों समुद्र उमड़ उठते हैं, वैसे ही हमारी सेनाएँ उमड़ आई हैं? सारे संसार में भी इनके लिए पर्याप्त स्थान नहीं है।

जब वे विशाल सेनाएँ पृथ्वी पर चल रही थीं, तब उससे उठी हुई धूलि इस प्रकार आसमान पर छा गई कि गगनगामी देवता भी उसपर पैर टेककर (ठोस धरती के जैसे) चलने लगे। प्रलयकाल की घटाओं के जैसे ही एक-पर-एक राक्षस-सेनाएँ लंका में प्रवेश करने लगीं।

करवाल ऐसे चमक रहे थे, जैसी बिजलियाँ भी मेघों में नहीं चमकतीं। नगाड़े ऐसे बज रहे थे, जैसे मेघ भी नहीं गरजते। वे सेनाएँ ऐसी काली थीं, जैसे मेघ भी नहीं होते। पैने शस्त्रों से युक्त पदाति, हाथी, अश्व, रथ आदि यदि समुद्र के ऊपर पैर रखकर चलते थे, तो वह समुद्र भी उनका उपमान नहीं बन पाता था। अब और क्या उपमान दिया जा सकता है?

जब संख्यातीत सेनाएँ एक के पीछे एक चलने लगीं, तब (उनको देखकर डर से) ऊपर के लोक एक दूसरे से जाकर सट गये। चंद्र और नक्षत्र अपने-अपने स्थान छोड़कर हट गये। सूर्य भी आगे बढ़ना छोड़कर एक ओर हट गया।

वहाँ एकत्र राक्षस-सेना लंका के गगनचुंबी मेरु के समान चार ऊँचे दरवाजों

से नगर में प्रवेश कर रही थी। वह दृश्य ऐसा था, मानों भूमि का भार कम करने के लिए काले समुद्र को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचाया जा रहा हो।

यदि संकीर्ण दरवाजों से ही वह सेना लंका में प्रवेश करती रहे, तो दीर्घ समय तक वह कार्य होता ही रहेगा, इसलिए वह लंका के प्राचीरों के ऊपर भी चढ़कर ऐसे प्रवेश कर रही थी, जैसे ब्रह्मांड-भर के काले मेघ एकत्र होकर वहाँ आ गये हों।

तब रावण ने इस प्रकार उस सारी राक्षस-सेना को एक साथ देखना चाहा, जिस प्रकार कोई मूर्ख सप्तसमुद्रों को एक साथ देखने की इच्छा करे। वह सुन्दर गोपुर पर चढ़कर क्रमशः उस सेना को देखने लगा।

जैसे कोई समुद्र एक दिशा से दूसरी दिशा को जा रहा हो, वैसे ही चलनेवाली उस विशाल सेना को दूत, पृथक्-पृथक् पंक्तियों में दिखाकर उसी प्रकार विवरण देकर कहने लगे, जिस प्रकार कोई वेद-वेदांतों के तत्त्व का विवेचन करके सुनाता है।

वे हैं—शाकद्वीपवासी। दानवों ने जो यज्ञ किया था, उसमें ये उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सब देवताओं को मोहित किया था। मायाकृत्य करने में ये प्रधान स्थान रखते हैं। मेघ को छूनेवाला आकार रखनेवाले हैं।

हे पराक्रमशाली! वे हैं कुशद्वीपनिवासी। ये यम तथा ब्रह्मा से क्रमशः वैर तथा पराक्रम बढ़ानेवाले हैं। ये ऐसे रहते हैं, मानों स्वयं विजय के अवतार हों। इन्हीं के कारण स्वर्गवासी अपना यश, संपत्ति, आवास सब कुछ खो बैठे हैं।

ये शाल्मली-द्वीप के रहनेवाले हैं। इन्होंने पूर्व में ऐसा युद्ध किया था, जिससे अनिमेष देवों के अधिपति की स्वर्णनगरी (अमरावती) विनष्ट हो गई थी। चंद्र को सिर पर धारण करनेवाले देव (शिव) के द्वारा प्राप्त वरों से ये महिमावान् हुए हैं। पवन से बढ़नेवाली दावाग्नि के समान क्रोध से भरे हैं।

ये क्रौंचद्वीपवासी हैं। पहले एक बार ये लोग देवों के शाश्वत निवासभूत उस पुरातन मेरु-पर्वत को उखाड़कर समुद्र में गिराने का प्रयत्न कर रहे थे। तब अत्यन्त भयभीत होकर देवों ने इनसे प्रार्थना की कि वैसा न करें। तभी ये अपने प्रयत्न से विरत हुए।

ये प्रवालद्वीप में निवास करनेवाले हैं। शुक्राचार्य एक कमल-समान नयनवाली राक्षस-रमणी पर कामासक्त हुए, तो उनकी संतति होकर ये उत्पन्न हुए। इनकी संख्या दस कोटि है। ये इतने शक्तिशाली हैं कि इन्होंने धवल क्षीरसमुद्र को कुछ दिनों तक यों बाँध दिया था कि वह सूखने लगा था।

हे राजन्! ये खड्ग-समान दाँतोंवाले राक्षस, इस नील-समुद्र के पार, मंद-मारुत से युक्त गंधमादन नामक पर्वत पर निवास करते हैं। अपने वर्ण में अंधकार एवं हलाहल की समता करते हैं। हम इनकी संख्या जान नहीं सकते हैं।

मलय-पर्वत 'पोदिय' पर्वत का ही दूसरा नाम है। उसमें उत्पन्न ये राक्षस समुद्र के मध्य स्थित एक द्वीप में वसते हैं। ब्रह्मदेव ने यह सोचकर कि इनसे यह संसार ही मिट जायगा, इनका निवास उस द्वीप में बनाया।

हे यशस्विन् ! इधर ये राक्षस हाथों में हथौड़े लिये हुए हैं। त्रिशूल रखनेवाले हैं। 'भुशुंडि' नामक आयुध रखनेवाले हैं। चक्र रखनेवाले हैं। धनुष रखनेवाले हैं। ये प्रसिद्ध वीर सातों समुद्रों के प्रभु हैं। पुष्पकर (पुष्कर) नामक विशाल द्वीप में रहनेवाले हैं।

ये राक्षस 'इरलि' नामक बड़े द्वीप में रहनेवाले हैं। पूर्वकाल में अपनी महिमावती माता के कहने से इन्होंने यम को हराकर उसे चक्रवाल पर्वतों में बंदी बनाकर रखा था। फिर, ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर उसे मुक्त कर दिया था।

हे प्रभु ! बेताल (नामक एक भूत) के जैसे हाथोंवाले ये राक्षस ब्रह्मा के यह कहने पर कि पृथ्वी पर तुम सबके निवास के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है; अतः तुम सब पाताल में जाकर बसो—पाताल जाकर रहने लगे थे। तुम्हारे प्रतिप्रेम से वे अब यहाँ आये हैं।

ये राक्षस निर्ऋति (नामक दिक्पालक) के कुल में उत्पन्न हुए हैं। तुम्हारे कुल के बंधु हैं। देवों के भीषण शत्रु हैं। यदि इनके पीने के लिए रुधिर न प्राप्त हो, तो ये सप्त समुद्रों को भी पी जायेंगे। अंधकार के जैसे रंगवाले हैं। इनमें से कोई एक व्यक्ति ही सात पर्वतों को उठा सकता है।

पूर्वकाल में भूमि का आलिंगन करनेवाले आदिवराह को प्रेम की दृष्टि से देखने के कारण इन लोगों ने पीत स्वर्ण के वीर-वलय प्राप्त किये थे। विशाल दिशाओं में अपनी विजय की सूचना देनेवाले मत्तगजों को रखकर, इन्द्र को भी हराकर इन लोगों ने विजय-माला पहनी थी।

प्रखर नेत्रों तथा कठोर क्रोध से भरे हुए ये पर्वताकार वीर, पाताल की उस गहराई तक जाने की शक्ति रखते हैं, जिसके नीचे अन्य कोई स्थान ही नहीं है। इनके संचरण करते रहने के कारण सहस्र फनवाला अनन्तशेष निद्राहीन होकर दुःखी रहता है।

पूर्वकाल में जब ललाटनेत्र (शिव) ने कालिका देवी को अपना तांडव दिखाकर परास्त किया था, तब उस देवी की क्रोधाग्नि से ये राक्षस उत्पन्न हुए थे। ये भूतों के अच्छे भाई हैं। हाथ में करवाल एवं मुखों में जगमगाते हुए दाँत रखते हैं। ये बड़े-बड़े झुंडों में एकत्र होकर आये हैं।

अपने धनुषों को दिखाते हुए उत्तर दिशा से आनेवाले ये राक्षस तभी उत्पन्न हुए थे, जब पाप उत्पन्न हुआ था। जैसे दो कंदराओं में दो दीप चमक रहे हों, वैसी आँखों से ये भयंकर लगते हैं। क्रुद्ध होने पर अपनी माता के भी प्राण पी सकते हैं।

ये राक्षस, क्रोध से पूर्ण पाँच मुखोंवाले रुद्र के ललाटनेत्र से उत्पन्न हुए थे। उधर से आनेवाले वे राक्षस, 'केशोंवाला यम' कहने योग्य एक स्त्री की क्रूरता का सहारा बनकर पूर्वकाल में उत्पन्न हुए थे।[1]

शूलधारी ये राक्षस, पूर्वकाल में जब रुद्र ने यम के वक्ष पर पदाघात किया था, तब उस वक्ष से बहे रुधिर से उत्पन्न हुए थे। ये असंख्य हैं। ये हलाहल और अमृत—दोनों के उत्पन्न होने के पूर्व ही उत्पन्न हुए थे।

---

१. इस पद्य का उत्तरार्द्ध अस्पष्ट है। इससे कदाचित् कोई पुरानी कथा सम्बद्ध है।—अनु०

ये राक्षस (क्षीरसागर मथते समय) वासुकि द्वारा उगले हुए विष को वडवाग्नि में डालने पर उत्पन्न हुए थे। वहाँ खड़े वे राक्षस, जिनके केश अग्निशिखा के जैसे उठकर मेघ-मंडल को छू रहे हैं, शिवजी के द्वारा त्रिपुर के जलाये जाने पर उत्पन्न हुए थे।

हे प्रभु! यह कहना असंभव है कि इनकी संख्या कितनी है और ये कैसे व्यक्ति हैं। इनके बारे में कुछ विचार करना या कहना असंभव है। इनके माया-कौशल, बड़े वर, तप आदि का वर्णन करने लगेंगे, तो अनेक सहस्र युगों का समय भी पर्याप्त नहीं होगा।

हे देवों के लिए भी दुर्लभ वैभव से युक्त! इस विशाल सेना में स्थित कोई एक ही वीर जाकर उस अति बलशाली कपि को तथा अतिशक्तिशाली कहलानेवाले उन दोनों (राम-लक्ष्मण) को एक हाथ से ही मारकर गिरा सकता है। अब अधिक क्या कहूँ?— इस प्रकार उन दूतों ने कहा। तब रावण बोला—

यह बताओ कि इस सेना की संख्या कितनी हो सकती है? तब उन दूतों ने कहा—जो यह कहेंगे कि इस सेना की संख्या एक सहस्र 'समुद्र' है, वे उन्मत्त कहलायेंगे। अभी जितनी संख्याएँ प्राप्त हैं, वे सब इसे सूचित करने में असमर्थ हैं।

तब रावण ने दूतों से कहा—इस सेना में स्थित सब दलों के नेताओं को मेरे पास ले आओ, जिससे मैं उनको सारा घटित वृत्तांत सुनाकर आवश्यक परामर्श लूँ और उचित रीति से उनका सत्कार करूँ।

उन दूतों के कहने पर, समुद्र के जैसे फैली हुई उस विशाल सेना में से प्रत्येक दिशा से एक के बाद एक लगातार चलकर सब सेनापति आये और रावण के चरणों पर पुष्प बरसाकर प्रणाम किया। उनके किरीटों के (चरणों पर) लगने से जो शब्द निकला, वह गगन में प्रतिध्वनित हो उठा।

जब सब लोग निकट आकर, चरणों पर नत होकर, खड़े हो गये, तब वीर रावण ने उनको देखकर कहा—तुम लोगों का शुभागमन हो। फिर, प्रसन्न होकर उनसे यों प्रश्न किया—क्या तुम्हारी पत्नी एवं संतान सकुशल हैं?

तब उन सेनापतियों ने कहा—तुम महान् बलिष्ठ भुजाओंवाले वीर हो। तप के बल से प्राप्त वर भी तुम्हारे वश में अनेक हैं। तब भी क्या सब अभीष्टों को पूर्ण करना असंभव है? हमने देवों को पराजित कर भगा दिया। अन्य शत्रु अब कोई नहीं रहा। हमारे लिए दुर्लभ क्या है?

उन सेनापतियों ने रावण से पूछा—तुम्हारे यहाँ की स्त्रियों एवं पुरुषों में व्याकुल न होनेवाला कोई नहीं दीखता, तुम भी बहुत चिंतित हो। इस दशा का क्या कारण है? कहने की कृपा करो।—उसके उत्तर में रावण ने सीता के कारण उत्पन्न सारा वृत्तांत कह सुनाया।

कुंभकर्ण को, इन्द्रजित् को तथा वीर कुल में उत्पन्न क्रोधपूर्ण राक्षसों के समूह को मारनेवाले क्या तुच्छ मनुष्य हैं? हमारी शक्ति भी खूब है! उनकी सेना भी वानरों की है!—यों कहकर वे (सेनापति हँस पड़े।)

तुमने हमें यहाँ बुलाया है, किसलिए? आदिशेष के सिर पर से इस लोक

को हटाने के लिए नहीं, अनुपम सप्त कुलपर्वतों को हथेली से उखाड़ने के लिए नहीं, किन्तु, तुमने हमें बुलाया है, शाखाओं से पत्ते नोंचकर खानेवाले उन वानरों पर आक्रमण करने के लिए ! अहो !

यह कहकर वे राक्षस ताली बजाकर, वज्र के समान शब्द करते हुए हँस पड़े। उन उज्ज्वल दंतों को दिखानेवाले राक्षसों को अपने हाथ के संकेत से शान्त करके पुष्कर-द्वीप के अधिपति वह्नि नामक राक्षस ने पूछा—उन मनुष्यों की शक्ति कितनी है ?

तब माल्यवान् ने कहा—मैं सारी घटनाओं को, उन मनुष्यों के पराक्रम को तथा उनके आये वानर-वीरों के कृत्यों को सुनाऊँगा। सुनो, और वह आगे कहने लगा—

समुद्र की समता करनेवाले तुम लोग उस वाली को जानते हो न, जो प्रलय-कालिक प्रभंजन के समान सब समुद्रों को पार कर जाता था ? एक शर ने, सप्त कुल-पर्वतों को भी उखाड़ने की शक्ति रखनेवाले उस वीर के वक्ष को भेदकर उसके प्राण पी लिये।

पुष्ट भुजाओंवाले विराध और मारीच मरे। काले पर्वत-समान खर और दूषण तथा उज्ज्वल शूलधारी त्रिशिर भी, तरंगायित समुद्र-समान अपनी सेनाओं के साथ, एक मुहूर्त्त काल में मिट गये।

तुम यहाँ आकर क्या पूछते हो ? (जब राम ने आग्नेय अस्त्र को समुद्र पर चलाया था, तब) तुम्हारे रहने के स्थान में क्या समुद्र नहीं तप्त हुआ था ? उसपर तुमने क्या ध्यान ही नहीं दिया था ? गंगा को धारण करनेवाले (शिव) के महान् धनुष को जब तोड़ा गया था, तब वह ध्वनि क्या तुम्हारे बड़े कानों में नहीं पड़ी थी ?

लंका में अग्नि के समान प्रखर राक्षस-सेना सहस्र समुद्र थी। वह सारी सेना यज्ञोपवीत से भूषित वक्षवाले उन दोनों वीरों के दो धनुषों से छोड़े गये शरों से ही यमपुर को जा पहुँची।

विजयी धनुष से युक्त कुंभकर्ण तथा तुम्हारे राजा (रावण) के पुत्र प्रहस्त आदि वीर सब इन्द्रजित् के साथ ही मर गये। मैं और ये ही (रावण) अबतक बचे हैं।

मूलबल नामक एक प्रधान सेना भी अभी बची है, जिसकी संख्या तीन सौ समुद्र है। आज युद्ध में जाने का आदेश उसी को दिया गया है। तुम लोग भी समय पर आ गये हो। अब शत्रुसेना के बारे में कहता हूँ। सुनो—

एक वानर लंका में आया और आग लगाकर सारे नगर को जला दिया। अति रोषवान् अक्षकुमार को भूमि पर रगड़कर मार डाला और सब राक्षसियों को व्याकुल करके रुला दिया। फिर, विशाल सेना को मारकर, अपना सन्देश सुनाकर, बड़े समुद्र को पार करके चला गया।

युद्ध करने के लिए आनेवाले वानरों ने समुद्र में पर्वतों को डालकर मार्ग बनाये, क्या तुमने उसे नहीं देखा ? उनकी सेना सत्तर समुद्र है। एक वानर मेरु के पार जाकर एक क्षण में संजीवन-पर्वत को उठा ले आया।

यह युद्ध बड़ी तपस्या से युक्त असाधारण पातिव्रत्य-संपन्न सीता नामक नारी के कारण उत्पन्न हुआ है। यह विधि का विधान है। चाहे वे धनुर्धारी जीतें, चाहें तुम लोग

जीतो। मैंने तो केवल घटित वृत्तांत सुना दिये—माल्यवान् यह कहकर चुप हो गया।

तब वह्नि ने रावण से पूछा—'इतने वीरों के मरते तक क्या तुम युद्ध किये विना चुप रहे?' तब रावण ने उत्तर दिया—'वानर-सेना की क्षुद्रता को देखकर युद्ध में जाने से लज्जित होकर मैं चुप रहा।' तब वह्नि ने कहा—'तो अब तो युद्ध करना हमारा कर्त्तव्य है।'

प्राचीन वृत्तांतों को जाननेवाले इस माल्यवान् के कथन का अभिप्राय सीता नामक उस स्त्री को मुक्त कर देना और उन मनुष्यों से संधि कर लेना है। किंतु, वह कार्य पहले ही करना चाहिए था। अब प्यारे इन्द्रजित् की मृत्यु के पश्चात् वैसा करना अपयश का कारण बनेगा। अब हम उस प्यारे इन्द्रजित् को कहाँ देखेंगे?

उस नारी को मुक्त भी कर दें, तो भी भीषण युद्ध में मरे हुए वीरों को पुनः नहीं प्राप्त कर सकेंगे। इससे हमें अपयश ही मिलेगा। अतः, जितना भी परिश्रम हो, अब शत्रुओं का समूल नाश करने के बदले उनसे संधि करना कष्टदायक ही होगा। युद्ध ही कर्त्तव्य है।

वह्नि यह कहकर उठा। सब राक्षस सेनापतियों ने (रावण से) कहा—तुम यहीं रहो। हमीं जाकर उन नरों के छोटे शरीर का रक्त पीकर लौट आयेंगे। यदि हम पीछे हटें, तो समझना कि हम बलहीन क्षुद्र जाति के व्यक्ति हैं।—यों कहकर वे सेनापति चले गये। (१–१२)

अध्याय ३०

मूलबल[1]-वध पटल या प्रधान सेना-विध्वंस पटल

दानव-रूपी महान् हाथियों को करवाल से विध्वस्त करनेवाले रावण ने (राक्षस-सेनापतियों से) कहा—मैं एक ओर से आक्रमण करके वानरों की महान् सेना को छिन्न-भिन्न कर डालूँगा और उनके प्राण पी लूँगा। तुम लोग दूसरी ओर से जाकर उन दोनों शत्रुओं (अर्थात्, राम-लक्ष्मण) को युद्ध करके मार डालो।

रावण के इस प्रकार कहते ही वे सेनापति उठकर अपने-अपने रथों पर आरूढ हुए और समुद्र के समान फैली हुई राक्षस-सेना में जा मिले। तब रावण ने आज्ञा दी—अब और कुछ करना नहीं है। प्रधान सेना (मूलबल) को आगे जाने को कहो।

देवों के सच्चे यश को मिटा देनेवाला वह (रावण) प्रमुख सेना को भेजकर, स्वयं भी युद्ध करने की इच्छा से तीनों लोकों एवं मुनियों को भयभीत करते हुए, एक बड़े रथ पर चढ़कर अतसीपुष्प-समान वर्णवाले प्रभु (राम) की सेना पर एक ओर से आक्रमण करने गया।

दोषहीन 'वल्लुव' लोग (राजा की घोषणा नगाड़े बजाकर जनता को सुनानेवाली एक जाति) हाथियों पर से नगाड़े बजा-बजाकर घोषणा करने लगे। उस घोषणा को सुनते ही गगन तथा दिशाओं में स्थित प्रधान राक्षस-सेना एकत्र होकर उमड़ आई।

---

१. सेना छह प्रकार की होती थी, उसमें 'मूलबल' नामक एक प्रधान सेना भी होती थी, जिसमें राजा के अत्यन्त विश्वासपात्र तथा कुल-परम्परा से सेवा करनेवाले सैनिक होते थे। —अनु०

जिस प्रकार समुद्रों से पूर्ण ब्रह्मांड में विशाल पर्वत एवं प्राणिसमुदाय अन्त-निहित रहते हैं, उसी प्रकार महान् शस्त्रों से सज्जित वह मूलबल सेना संकीर्ण सीमावाली लंका के भीतर प्रविष्ट हुई। उस समय वह (लंका) उस वामन (विष्णु) के जैसी हो गई, जिसके उदर में तीनों लोक निविष्ट थे।

उस मूलबल के सैनिक धर्म को मुँह में डालकर चबानेवाले थे, करुणा को पी जानेवाले थे, धर्म के प्रतिकूल अधर्म को अपनाकर पाप से विवाह कर लेनेवाले वर (दुल्हे) थे। अपने रंग से मेघों को मात कर रहे थे। उनका मन भी मेघ-जैसा ही था। उनके केश ऐसे (लाल) थे, जैसे स्वयं अग्नि को जलानेवाली आग हो और उनके हृदय के भीतर की अग्नि ही उमड़कर बाहर प्रकट हो गई हो। काल (मृत्यु) भी इनके कृत्यों को देखकर उनकी प्रशंसा करता था।

वे अपने लंबे हाथों से समुद्र के जल को हटाकर (समुद्र के भीतर रहनेवाले) मत्स्यों तथा मगरों को भी पकड़कर मुँह में डालकर चबा लेनेवाले थे, मेघों से उत्पन्न होनेवाले वज्र को अपने कर्णाभरण बनाकर पहन लेनेवाले थे। गगन में उमड़कर आनेवाले मेघों को वस्त्र बनाकर पहननेवाले थे। वे ऐसे क्रूर थे।

वे क्रूर वीर मेघ-रूपी नूपुरों को, जिनके भीतर बड़े-बड़े पर्वत-रूपी कंकड़ पड़े हों, पर्वतों के भीतर छिपे रहनेवाले बड़े-बड़े सर्पों की डोरी में गूँथकर अपने पैरों में बाँधनेवाले थे। सबसे ऊँचा उड़नेवाले गरुड और प्रचण्ड मारुत—ऐसे चार-चार को एक साथ मिलाने पर जैसी गति उत्पन्न हो, वैसी अति तीक्ष्ण गति से वे डग भरते चलते थे।

अपने भोजन के योग्य मांस समय पर नहीं मिले, तो उनकी ऐसी भूख लगती थी कि धरती पर खड़े गजों (अर्थात्, दिग्गजों) को पकड़कर मुँह में रखकर चबा जाने की शक्ति रखनेवाले थे। उनकी ऐसी प्यास होती थी कि पर्याप्त जल न मिलने पर गगन में जानेवाले मेघों को हाथों में रखकर उन्हें मुँह में निचोड़ लेते थे।

वे अपने बरछों को जाँचने के लिए मंदर आदि बड़े-बड़े पर्वतों पर प्राघात करके उन्हें भेद डालते थे। चन्द्रकला को पकड़कर उससे खुजलाकर अपनी देह की खुजलाहट मिटाते थे। वे ऐसी गदाएँ रखते थे, जिनको पहाड़ों पर मार-मारकर उसका प्रयोग करना उन लोगों ने सीख लिया था। वे वज्र के समान भीषण शब्द करनेवाले (चिल्लानेवाले) थे।

यदि वे लोग त्रिशूल हाथ में उठा लेते थे, या चमकते परसे को उठा लेते थे, अथवा जगमगाता करवाल या भीषण धनुष हाथ में लेते थे, या बरछे अथवा गदा उठा लेते थे, या चक्र को घुमाने लगते थे, तो यम, कार्त्तिकेय, शिव या विष्णु कोई भी उनको जीत नहीं सकता था।

उनमें से कोई एक व्यक्ति ही समस्त संसार को जीतने के लिए पर्याप्त था। यदि दो मिल जायँ, तो सप्तलोकों को भी हरा दे सकते थे। जब वे घूमते थे, तब विशाल धरती भी उनके साथ घूम जाती थी। जब सीधे चलते थे, तब उनके वेग से खिंचकर समुद्र भी उनके पीछे चल पड़ते थे।

ब्रह्मा की सृष्टि में जितने मेघ थे, उतने ही हाथी थे उनकी सेवा में। शब्दायमान

घंटियों से युक्त रथ असंख्य थे। उस युद्ध में जितने रथ आये थे, उनके योग्य संख्या में घोड़े भी थे। सुन्दर लक्षणवाले वे अश्व जितने थे, उनके ही अनुपात में पदाति-सेना भी थी।

सब प्रकार के हाथियों, घोड़ों और रथों के शरीर पर सर्वत्र रहनेवाले आभरण एवं ऊपर के आसन स्वर्ण एवं रत्नों से ही निर्मित थे। इनमें (स्वर्ण और रत्न) के सिवा अन्य किसी वस्तु का चिह्न तक नहीं दिखाई पड़ता था।

जब उमड़ती हुई और भीषण शब्द करती हुई यह सेना जा रही थी; तब उसके ऊपर जो प्रवालवर्ण की धूलि उठी, उससे आवृत होने से मेघ भी लाल हो गये। हाथियों के मदजल के आ मिलने से प्रभूत जल तथा नमक से भरे समुद्र का खारापन दूर हो गया।

जब वह मूलबल सेना लंका के विशाल दरवाजों से बाहर निकली, तब वे दरवाजे उस भगवान् के मुख के समान लगते थे, जिस (मुख) से, पहले निगले गये पर्वत, समुद्र, तथा अन्य पदार्थ, देवों का लोक एवं उसके ऊपर के लोक भी उगले जा रहे हों।

गंडस्थलों से मदजल बहानेवाले हाथियों, रथों, घोड़ों एवं पदाति-सैनिकों के भार से विशाल फनवाला अनंतनाग भी काँप उठा। वानर उस राक्षस-सेना को देखकर, हलाहल को देखकर, भागनेवाले देवों के समान ही, भयभीत होकर अपना स्थान छोड़कर भागे और समुद्र के उत्तरी तीर पर जा ठहरे।

चक्रवालपर्वत-रूपी बाड़े के भीतर सप्त समुद्रों के प्रदेश में राक्षस-रूपी शिकारी घुस आये और विशाल प्राचीरों से आवृत लंकारूपी मृगशाला में आ पहुँचे।

पदाति-वीरों की ध्वनि, घड़घड़ाहट के साथ चलनेवाले रथों के पहियों की ध्वनि, घोड़ों के हींसने की ध्वनि, इन सबको दबाकर ऊँचा सुनाई पड़नेवाली विविध बाजों की ध्वनि—सबकी ऐसी सम्मिलित ध्वनि उठी, जिससे ब्रह्मांड भी फटने लगा।

उस भरी हुई प्रधान सेना-रूपी समुद्र में प्रयुक्त करने योग्य विविध शास्त्र ही मीन थे। मत्त गज मकर थे। उठ-उठकर गिरनेवाले अश्व लहरों के समान थे। नगाड़ों का शब्द ही बड़ा गर्जन था और रोष-भरे राक्षस-रूपी 'शुरा' (नामक मांसभोजी) मीन भी थे।

घटों के समान पुष्ट कंधोंवाले राक्षसों की उस सेना के द्वारा हरियाली से भरे भू-प्रदेशों के रौंदे जाने से एवं हाथियों से झरनेवाले मदजल के प्रवाह से सारी लंका कीचड़ बनकर मिट जाती। किंतु, ऐसा नहीं हुआ; क्योंकि अधिकतर सैनिक गगन के मार्ग से उड़कर ही चले।

देवताओं ने पृथ्वी को देखा। समुद्र को देखा। विशाल गगनतल को देखा। दीर्घ दिशाओं को देखा। सर्वत्र घने रूप में एकत्र ध्वजाओं को देखा। कहीं भी उस राक्षस-सेना के अतिरिक्त खाली स्थान नहीं देखा। और, वे थरथराकर पसीना-पसीना हो गये।

वे (देवता) संदेह करने लगे—संसार में हमसे भिन्न जितने प्राणी हैं, वे ही तो कहीं राक्षस-रूप धारण करके इस युद्ध में नहीं आये हैं? अन्यथा, विशाल जल एवं वीचियों से भरे सातों समुद्र ने ही यों असंख्य जीवों की सृष्टि तो नहीं कर दी है?

देवता भय से काँपते हुए विषकंठ (शिव) के निकट जा पहुँचे और उनसे यह कहकर कि हे प्रभु, हमें किसी ऐसे स्थान का पता नहीं लग रहा है, जहाँ हम छिपकर जीवित रह सकें। ये राक्षस हमको तोड़कर चबा जायेंगे। पहले किसी ने इनकी शक्ति नहीं जानी थी (अर्थात्, अबतक इनके पराक्रम को किसी ने नहीं देखा)। हमारी शक्ति अब समाप्त हो गई है।

फिर, वे बोले—इनमें से एक-एक राक्षस को मारने के लिए एक सहस्र राम एक साथ आकर चौबीस बरस तक खड़े रहकर युद्ध करें, तो भी इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। इन राक्षसों को मारने के लिए पहले खड़े होने के लिए ही स्थान कहाँ है? (यदि कहीं स्थान पाकर खड़े भी हो जायें, तो भी) इस भयंकर सेना को आँखों से देखकर कोई अपने प्राणों को सँभालकर रख सके, तभी तो युद्ध हो सकेगा? (अतः, इनसे युद्ध करना सर्वथा असंभव है।)

देवों ने यह कहकर प्रणाम किया। तब नीलमणि के समान कंठवाले देव (शिव) ने उनसे कहा—तुम लोग किंचित् भी मत डरो। वह विजयी वीर (राम) इन सब वंचकों (राक्षसों) को एक साथ मिटा देगा। समस्त राक्षस-कुल के मिट जाने की जो विधि है, उसी विधि (या नियति) ने इन सबको अब यहाँ एकत्र किया है।

बाँबी से बड़े-बड़े साँपों के झुण्ड को निकलते देख जैसे चूहों का झुण्ड यह सोचकर कि हमारी शक्ति समाप्त हो गई—दुःखी होकर अस्त-व्यस्त हो भाग जाता है, वैसे ही वह विशाल वानर-सेना त्रस्त होकर विजयी वीरों (राम-लक्ष्मण) की भी परवाह न करके थरथराती हुई भागकर तितर-बितर हो गई।

कुछ वानर बाँध (सेतु) पर भागे। कुछ समुद्र पार करने के लिए नावों को ढूँढ़ने लगे। कुछ तैरकर जाने लगे। कुछ झुण्ड-के-झुण्ड जल में कूदकर डूब गये। कुछ सब की आँखों से ओझल होकर वृक्षों की शाखाओं के बीच में जा छिपे। अनेक वानर पर्वतों की कंदराओं के भीतर छिप गये।

कुछ वानर बोल उठे—समुद्र पर हमने जो सेतु बाँधा है, उसने हमारे प्राणों को विपदा में डाल दिया है। वे राक्षस हमारा पीछा करते हुए न आयें, अतः इस सेतु को तोड़ देंगे। कुछ वानरों ने कहा—राक्षस, गगन में भी हमारा पीछा करते हुए आयेंगे। कुछ ने कहा—ब्रह्मा के द्वारा की गई सृष्टि में सभी दिशाओं में राक्षस ही राक्षस हैं (अतः, हम कैसे इनसे बच सकते हैं?)

महान् वीर (राम) ने देखा—कपिकुल के राजा (सुग्रीव), हनुमान् एवं अंगद—ये तीनों ही प्रभु को छोड़कर नहीं गये और उनके साथ खड़े रहे। इन तीनों के अतिरिक्त अन्य सब (वानर) तितर-बितर हो भाग गये। (वानरों के गमनावेश से) महान् वीचियों से पूर्ण समुद्र भी उद्वेलित होने लगा।

राम ने विभीषण से पूछा—यह भीषण सेना अबतक कहाँ थी? तब यथार्थ बल से समृद्ध विभीषण ने उत्तर दिया—हे वीर! जब दूतों ने सब दिशाओं और सप्त द्वीपों में जाकर बुलाया, तब ये राक्षस आकर एकत्र हुए हैं।

इस सेना में, वे राक्षस भी हैं, जो नीचे के सातों लोकों से प्रलयकालिक समुद्र के समान उमड़कर आये हैं। यह आगे बढ़कर आनेवाली सेना उस (रावण) की प्रधान सेना है। इसके परे (इससे बढ़कर) कोई राक्षस-समुद्र नहीं है।

पापकर्मों का परिपाक इनको आगे की ओर प्रेरित कर रहा है। इस ब्रह्मांड में राक्षस-सेना नाम की जो वस्तु है, वह सब यहाँ एकत्र हो आई है। मेरा मन कह रहा है कि बलवान् विधि की प्रेरणा से ही यह सेना आज विध्वस्त होनेवाली है—यों विभीषण ने प्रभु के चरणों में नमस्कार करके कहा।

वह वचन सुनकर राम के मन में रोष और मुख पर मंदहास प्रकट हुए और उन्होंने कहा—देखो, एक ही क्षण में इनकी क्या दशा होती है। उन्होंने अंगद के प्रति कहा—हे बलवान् वीर ! भय से भागनेवाले वानरों को उनका डर दूर कर क्या लौटा नहीं लाओगे ? तब अंगद दौड़कर चला।

अंगद ने उन वानरों के प्रति कहा—हे नाना दिशाओं में तितर-बितर होकर भागनेवालो ! जरा ठहरकर मेरी बात सुनो और उसके पश्चात् भागो। लेकिन, वे वानर बोले—'नहीं, हम कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हैं।' लेकिन, अपार बलशाली वानर-सेनापति रुक गये।

भागना छोड़कर समुद्र के किनारे एक कोने में सटकर खड़े हुए उन वानर-सेनापतियों को देखकर अंगद ने कहा—तुम लोग क्या समझकर यों अंधाधुंध भाग रहे हो ? तब उन्होंने कहा—हे कपिराज ! तुमने कदाचित् उन राक्षसों को नहीं देखा। हम मरकर क्या करेंगे ?

उन सेनापतियों ने फिर कहा—एक इन्द्रजित् नामक राक्षस जब जीवित था, तब युद्ध में क्या-क्या उत्पात हुए, क्या उनको तुम भूल गये ? ये राक्षस उस (इन्द्रजित्) से कम नहीं लगते। ये अपराजित रहकर किसी के साथ युद्ध करेंगे तो क्या दो वीर धनुष लेकर इनको रोके खड़े रह सकेंगे ?

वर प्रदान करके लोकों की रक्षा करनेवाले विष्णु और त्रिपुरों को दग्ध करनेवाले शिव भी उनके सामने अड़े न रहकर छिप गये, तो अब ऐसे राक्षसों को क्या ये मनुष्य वानरों की सहायता से मार देंगे ?

रुद्र, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र ये सब मिलकर सहस्र कोटि युग-पर्यन्त युद्ध करके यदि इनमें से एक राक्षस को भी मार सकें, तो मार सकें।

अहो ! क्या आश्चर्य है ! सत्तर समुद्र संख्या में यह वानर-सेना क्या एक (राक्षस) के भोजन के लिए भी पर्याप्त होगी ? हम छोटे व्यक्ति क्या देवताओं से भी अधिक बलवान् हैं ? समस्त सृष्टि को रचनेवाला ब्रह्मदेव यदि दिन-भर बैठकर इस सारी राक्षस-सेना की गिनती करे, तो भी वह नहीं गिन सकेगा। हम यह सोचकर ही पहले शिथिल पड़ गये थे कि इनका सामना करना असंभव है।

एक नेता है, जिसके दस सिर हैं और बीस हाथ हैं। अब यहाँ जो आये हैं, वे

सहस्र सिरवाले और उसके दुगुने हाथवाले-से लगते हैं। अजी! ये तो समुद्र-तट पर के बालू-कण से भी अधिक संख्या में हैं!

कुंभकर्ण नामक जो राक्षस था, उसके बाण सहने की शक्ति ही हममें नहीं थी। उसकी करतूत तुम जानते ही हो। देवों से भी अधिक ज्ञानवान् और कौन हैं? (वे भी तो अब डरकर भाग गये हैं।) हे भाई! तुम तो अबोध बालक हो! इसीलिए (भय न जानकर) अकेले ही पैदल चलकर यहाँतक आये हो।

हनुमान् का बल, सुग्रीव का बल और दोनों वीरों (राम-लक्ष्मण) के धनुषों का बल भी उनके अपने प्राण बचाने के लिए ही पर्याप्त नहीं हैं। फल, शाक आदि भोजन तो मिल ही जाते हैं, छिपकर जीवन बिताने के लिए पर्वत-कंदराएँ भी हैं, अब इस धरती पर मनुष्य राज्य करें या राक्षस राज्य करें, हमें इसकी कुछ परवाह नहीं है।

जब हम स्वयं बचे रहेंगे, तभी न अपनी संपत्ति को भी बचायेंगे? यदि हम बचे रहेंगे, तो हमारे बंधुजन भी जीवित रहेंगे। तुम्हें चाहिए कि हमें जाने की आज्ञा देकर विदा कर दो। हे रक्षक! हमसे मरने के लिए कहना तुम्हारे लिए उचित नहीं है— यों उन वानर-सेनापतियों ने विकलता के साथ कहा।

तब वालिपुत्र ने जांबवान् को देखकर कहा—हे ज्ञानिश्रेष्ठ! कुमुद-शत्रु (सूर्य) से ऐन्द्र व्याकरण सीखनेवाले (हनुमान्)[१] के समान वीर! तुमने ही तो पहले हमें यह बताकर कि यह राम आदिशेष पर शयन करनेवाले भागवान् (विष्णु) ही हैं, हमें आनंदित किया था।

विचार-पूर्ण वचन कहकर इन अविवेकी वानरों को तुम समझाते, किन्तु तुम भी डर के कारण विचारहीन हो गये हो। जब तुम अपने प्राणों का ही विचार रखोगे, तब तुम्हारे यश का क्या होगा? तुम्हारे ज्ञान का क्या होगा? नेतृत्व करनेवाले लोग भी युद्ध के आगे जाने पर निर्बल हो जाते हैं?

अब हम डर जायँ, तो इस सुन्दर भूमि पर अपयश के भागी बनेंगे। हम कहीं भी जायँ, यदि यम हमारे सम्मुख प्रकट होगा, तो हम मरने के अतिरिक्त क्या जीवित रह सकेंगे? (यदि हम राम-लक्ष्मण को छोड़ जायेंगे, तो) हम विषमुख अमृत-जैसे ही होंगे न? ये वीर हमारी रक्षा का वचन देकर आये हैं। क्या हम इन्हें निस्सहाय छोड़ दें? इससे तो मरना ही भला है।

क्या तुम भूल गये कि उस वाली ने क्षीरसमुद्र को मथ डाला था, जिसे दानव एवं देवों के साथ विष्णु भी नहीं मथ सके थे। उस (वाली) को राम ने एक ही बाण से मार डाला। हे उत्तम! मत्स्यों से भरे समुद्र की (राम के शर से) क्या दशा हुई, इसे तुम भूल गये?

राक्षस चाहे जितने भी हों, किन्तु उनके साथ धर्म नहीं है न? क्या तुमने कहीं सुना है कि प्रभूत धर्म को पाप जीत लेता है? अहो! तुम भी उन्मत्त के समान, उन

---

१. कथा है कि हनुमान ने सूर्य से व्याकरण का ज्ञान प्राप्त किया था।—अनु०

वानरों के साथ मिलकर हमें छोड़कर भाग गये। यह तुम्हारे योग्य नहीं है !—यों अंगद ने अपना कथन समाप्त किया।

तब जांबवान् लज्जा से कुछ क्षण दुःखी हो खड़ा रहा। फिर कहा—हे स्तंभ-सदृश भुजाओंवाले वीर ! (अंगद !) अब जो राक्षस आये हैं, उनके भयंकर आकार को देखने की या उनके सम्मुख खड़े रहने की शक्ति क्या विषकंठ रुद्र में भी है ? तो फूल और फल खाकर जीवन बितानेवाले इन टेढ़े शरीरवाले वानरों का क्या दोष ?

पूर्वकाल में जिन देवों और राक्षसों ने युद्ध किया था, उनमें से किसको मैंने नहीं देखा ? तीनों लोकों में इन राक्षसों के जैसे अत्यन्त क्रूर पापी कौन हैं ? स्वयं यम भी इनसे वैर करने की शक्ति नहीं रखता।

मैंने माली को देखा है, माल्यवान् को देखा है, कालनेमि को देखा है, हिरण्य को देखा है, भीषण हलाहल विष को देखा है, मधु नामक असुर को अपने भाई (कैटभ) के साथ समुद्र को क्षुब्ध करते हुए देखा है, किन्तु उनमें से किसी में इन राक्षसों की जैसी शक्ति नहीं थी !

इन राक्षसों ने बल ही नहीं, वर भी प्राप्त किये हैं। माया में निपुण हैं। गरजते समुद्र के बालू-कणों से भी अधिक संख्या में हैं। इनके मन को देखने पर ये कलि से भी अधिक क्रूर लगते हैं। अनेक शस्त्र रखते हैं। ऐसे राक्षसों को देखकर जब देवता भी भयभीत होते हैं, तब वानरों की क्या बात है ?

फिर भी, तुम कुछ संशय मत करो। हम भले ही मर जायँ, तो भी युद्ध से नहीं डरेंगे। यह डरना अच्छा नहीं है। इससे अपयश ही होगा और नरक मिलेगा। हम लौट आयेंगे ? हे तात ! अब एक बात और कहनी है। हम सब किस प्रकार जाकर मेघ-सदृश प्रभु के सम्मुख मुँह दिखायेंगे ?

जब भालुओं के राजा (जांबवान्) ने यों कहा, तब उस अंगद ने, जो शक्तिशाली वज्र का प्रहार करके पर्वतों के पंख काटनेवाले एवं रजत-पर्वत पर एकत्र मेघ के जैसे पर्वताकार ऐरावत पर आरूढ होनेवाले इन्द्र के पुत्र (बाली) का पुत्र था, यों कहा—

(युद्ध में) जीतना और हारना, शत्रुओं का सामना करना, हमारा सामना करनेवालों को मार गिराना—योद्धा का जीवन अपनानेवालों के लिए ये सब सहज ही हैं। उसे रहने दो। तुम सब मेरी बात सुनने के लिए यहाँ आ एकत्र हुए हो। अतः, विचार करने पर विदित होता है कि तुम विवेकवान् ही हो।

तुम किंचित् भी मत डरो। हे तात ! हम सब एक साथ मिलकर खड़े हों, तो भी कुछ करने की शक्ति हममें नहीं है। यदि चक्रधारी (विष्णु के अवतार राम) ही स्वयं युद्ध करें, तो हम विजय पा सकेंगे, नहीं तो, उन (राम) के साथ हम भी अपने प्राण त्याग करेंगे।

तब जांबवान् ने अपनी सेना के प्रति कहा—अपने सम्मुख आई हुई राक्षस-सेना से डरकर हम क्यों भागें ? इस तरह भागने से हमारा बड़ा अपयश ही तो होगा। अतः, अब हम सब लौट जायेंगे। तब सब वानर युद्धभूमि में लौट आये। उसको देखकर राम ने अपने अनुज से कहा—

हे तात ! क्या असुर, क्या राक्षस, चाहे ये लोग जितने भी हों, मेरे बाण छोड़ते ही, आग में गिरे हुए शलभ के समान सब दग्ध हो जायेंगे। यह तुम जानते ही हो न ? मेरे मन में ऐसी कोई आशंका नहीं है कि (मेरे युद्ध में) कोई बाधा उत्पन्न होगी।

रक्षक नहीं होने से व्याकुल होकर वानर-सेना अपने-अपने निवासस्थान की ओर भागने लगी है। अतः, जबतक मैं इस राक्षस-सेना पर आक्रमण करके इसको पूरी तरह नष्ट न कर दूँ, तबतक तुम राक्षसों से इस वानर-सेना की रक्षा करते रहो।

ऐसी भयंकर सेना को इस ओर भेजकर दूसरी ओर से यदि वह मायावी तथा क्रूर राक्षस (रावण) आकर वानर-सेना को मिटाने की बात सोचें, तो हे वीर! तुम्हारे अतिरिक्त और कौन (उस रावण को) रोक सकेगा ?

तुम हनुमान् एव कपिराज को साथ लेकर शीघ्र जाओ। मेरे अकेले जाने की बात सोचकर चिन्तित मत होओ। ऐसी चिन्ता करोगे, तो इस युद्ध में हम हार जायेंगे।—इस प्रकार उस महान् वीर (राम) ने कहा।

तब लक्ष्मण ने कहा—हे प्रभु! यही कर्त्तव्य है। यदि हम आपके निकट खड़े रहें, तो देवताओं के जैसे हम भी सिर पर कर जोड़े आपके स्वर्ण-वलय से अलंकृत धनुष का कौशल देखते रह जायेंगे। इसके अतिरिक्त आपकी सहायता क्या कर सकेंगे ?

यह कहकर लक्ष्मण जाने लगे। तब हनुमान् ने राम से कहा—हे प्रभु! यह दास सोचता है कि यदि मुझे नीच कृत्यवाला कपि कहकर मेरी उपेक्षा न करें, तो आप मेरे कंधों पर आरूढ होकर युद्ध करें। यही ठीक होगा। अन्यथा, श्वान-समान यह दास आपकी सेवा से विलग होकर रह जायगा और इसका जीवन व्यर्थ नष्ट हो जायगा। यही मेरा निवेदन है।

तब प्रभु ने हनुमान् से कहा—हे तात! तुम्हारे लिए असंभव कार्य कुछ नहीं है। हे वीर, जब रावण हाथ में धनुष लेकर वीर लक्ष्मण के साथ युद्ध करने आयेगा, तब तुम उसके साथ नहीं रहोगे, तो क्या विजय प्राप्त हो सकेगी ? इतना ही नहीं। वानर-सेना भी नष्ट हो जायगी न ?

जब पहले सुन्दर केशोंवाला इन्द्रजित् युद्ध करता हुआ आया था, तब तुम्हारा सहारा देकर ही तो मैंने लक्ष्मण को भेजा था। और, तुम्हारी ही सहायता से उस युद्ध में इन्द्रजित् पर लक्ष्मण की विजय मिली थी न ? हे वीरों के वीर! अब भी वह लक्ष्मण तुमसे पृथक् न रहने पर ही विजयी होगा।

सेना की रक्षा करो, हमारे मन से अतीत स्वर्ग एवं धरती की रक्षा करो एवं वेदों की रक्षा करो—यों राम ने कहा। हनुमान् कुछ उत्तर न दे सका। वह लक्ष्मण के पीछे-पीछे चला।

फिर, प्रभु ने विभीषण से कहा—हे विभीषण! तुम भी अपने भाई (अर्थात्, लक्ष्मण) के साथ ही जाओ। क्रूर राक्षसों की माया को बताना और विजयी सेना का सहारा बनकर रहना। यदि ऐसा नहीं करोगे, तो हमारा अहित होगा। यह बात सुनकर वह (विभीषण) भी लक्ष्मण के पीछे-पीछे चलने लगा।

सुग्रीव भी रामचन्द्र के वचन का आदर करके वैसे ही चला। सब लोग उसे ही उचित कार्य मानकर समुद्र-समान वानर-सेना की रक्षा करते खड़े रहे। अब हम वीर रामचन्द्र के कार्यों का वर्णन करेंगे।

तब करुणासमुद्र प्रभु ने धनुष को नमस्कार करके उसे अपने हाथ में उठाया। उसपर डोरी चढ़ाई। मेरु के जैसे उन्नत अपने वक्ष पर कवच पहना और अपौरुषेय वेदों के समान अक्षय रहनेवाले, बाणों से पूर्ण तूणीर को पीठ पर बाँधा।

इतने में शत योजन विस्तीर्ण वर्त्तुलाकार शत्रुपंक्ति ने आगे बढ़कर, महिमामय प्रभु को, कहीं अवकाश छोड़े बिना, चारों ओर से घेर लिया। उन राक्षसों से प्रयुक्त शस्त्र एवं बाण जब प्रभु के निकट आये, तब देवों के शरीर कंपित हो गये। उस समय जो धूलि उठी, उससे सारा अंतरिक्ष भर गया।

तब देवता यह कहकर प्रार्थना करने लगे कि हे भगवन्! हे हम दीनों की रक्षा करने के लिए कवच के जैसे बने हुए! हे समुद्र-समान वर्णवाले! हे धर्मप्राण! हे वेदज्ञों के आश्रय! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन इस सेना का सामना कर सकेगा? हमारी आशा तुम पूर्ण करो।

मुनि आदि धर्मिष्ठ व्यक्ति राम के अकेलेपन को एवं राक्षस-सेना की विशालता को देखकर व्याकुल हुए और छलछलाती आँखों एवं घबराये हुए हृदय के साथ यों आशीर्वाद किया—'प्रभु की विजय हो, सब पापियों की हार हो।'

सब धर्मपरायण स्वर्गवासियों ने कहा—विजयी धनुष को धारण करनेवाले प्रभु की विजय हो! वंचनाशील मायावी राक्षस मिटें! भूमि पर के सब पाप मिट जायँ! धरती पर के भीषण शस्त्रधारी राक्षसों ने यों कहा—

जब सारी (वानर) सेना तितर-बितर होकर भाग गई, तब यह राम, हमारी विशाल सेना को देखकर किंचित् भी डरे बिना अकेला ही खड़ा है और चुने हुए तीक्ष्ण शर लेकर आ रहा है। इसका यह कार्य विजय से भी बढ़कर है! माली ने इसके बारे में जो कुछ कहा, वह सत्य ही लगता है।

जब शिव ने त्रिपुरदाह किया था, तब अनेक देवता भी उसके सहायक बने थे। जब विष्णु ने राक्षसों पर पहले आक्रमण किया था, तब वह गरुड पर आरूढ होकर आया था, किन्तु यह एकाकी ही पैदल चलकर हमारे साथ युद्ध करने को आ रहा है।

(हमारे पास) मेरु-पर्वत के आकारवाले रथ, घोड़े, हाथी, सिंह, शरभ आदि तथा सप्त समुद्रों से भी अधिक विशाल सेना है। इतना होने पर भी एक मनुष्य हमें 'आओ, आओ' कहकर युद्ध के लिए ललकार रहा है। अहो! यह हमसे बचकर कैसे जायगा?

यों कहते हुए उन राक्षसों ने राम को इस प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार एक सिंह को असंख्य हाथी घेर लेते हैं। तब वेदों के नाथ (राम) ने 'यह भी भला है!' कहते हुए अपने विजयी धनुष से टंकार उत्पन्न किया।

तब (उस टंकार को सुनते ही) राक्षस-सेना की रक्षा के हेतु आये हुए हाथियों का मद शांत हो गया। उनके मन में उमड़नेवाला क्रोध दब गया। वहाँ खड़े वीरों के मुँह सूख

गये। अश्वों के पैरों की गति मंद पड़ गई। अति वेगवान् तथा भयंकर आकारवाले राक्षसों का युद्धकौशल भी अदृश्य हो गया। तो, अब प्रभु की विजय के सम्बन्ध में क्या कहना है ?

जब राक्षसों की सेना में ऐसी घबराहट उत्पन्न हुई कि सिंह तथा भूत दिग्भ्रांत होकर, भगदड़ मचाकर, घोड़े जुते हुए बड़े पहियोंवाले रथों को तोड़ते हुए निकल भागे। हाथी अंकुश चलानेवाले हाथीवानों को रौंदते हुए तितर-बितर हो भागे।

देवता यह सोचकर कि ये (राक्षसों के) निमित्त दुश्शकुन है, आनन्द से नाच उठे। जब इन दुश्शकुनों से राक्षस चिंतित हो रहे थे, तभी वेदों के प्रभु (राम) ने उनपर ऐसे बाण छोड़े; जो सीधी की हुई विद्युत् के जैसे थे।

वीर (राम) ने, अत्यधिक मात्रा में भूमि की धूलि ऊपर उड़ानेवाले शरभों पर; सैनिकों पर; हाथियों पर, नाचनेवाले अश्वों पर, वीरों पर, वीरों के रथों पर, उनके बाणों पर तथा उनके धनुषों पर बाण छोड़े।

रोष-भरे हाथी ऐसे गिरे, जैसे पर्वत गिरते हों। फाँदनेवाले घोड़े योद्धाओं के सिरों के जैसे ही गिरे। आधारहीन होकर गिरनेवाले धनुषों के जैसी ध्वजाएँ भी गिरीं। धवल दंत ऐसे गिरे, जैसे चन्द्रकलाएँ गिरी हों।

राम के शर ऐसे बरस पड़े, जैसे चतुर्दिक् से पवन के बहते हुए, विशाल गगन की मेघ-पंक्तियाँ बरस पड़ी हों। उनके आघात से मुखपट्ट से भूषित हाथी, बलवान् अश्व, वीरों के रथ तथा पदाति-सैनिक निहत होने लगे। तब रुधिर का जो प्रवाह निकला, उसका अंत दृष्टि में नहीं आ सकता था।

घूरनेवाली आँखें, हाथ, शरीर, कंठों के ऊपर विजय का उपहास-सा करनेवाले मुँह, काँपते हुए पैर, कंधे—सब वर्षा को परास्त करनेवाले शरों से विध्वस्त होते रहे। किन्तु, उन (राक्षस) वीरों के द्वारा छोड़े गये शर तथा अन्य शस्त्र राम का कुछ बिगाड़ नहीं सके।

उन (राक्षसों) के चढ़ाये हुए शरों के साथ उनके धनुष भी टूटकर गिरे। उनके उठाये खड्गों के साथ उनकी भुजाएँ भी कटकर गिरीं। उनके वेगवान् पैर भी तुरन्त कट जाते। तब राक्षस किस प्रकार सम्मुख खड़े रहकर राम के बाणों को रोकते और स्वयं रोष से राम की कुछ हानि पहुँचाते ?

राम-बाण शत-शत होकर अपने लक्ष्य पर जाकर लगते थे। जिनसे वे घोड़े, जिनको राक्षस-वीर अपने वर के बल से साहस पाकर आगे बढ़ाते रहते थे, खुर कट जाने से, आँखों के उखड़ जाने से, दाँतों के साथ ऊपरी मुख के कट जाने से और विशाल वक्ष के भिद जाने से गिर जाते थे। किन्तु, प्राणों के साथ भाग नहीं पाते थे।

यदि रथ भूमि पर दौड़कर चलने लगते थे, तो मार्ग में इधर-उधर पड़ी हुई शव-राशियाँ बाधा डालती थीं। यदि फाँदकर जाने लगते थे, तो रामचन्द्र के बड़े बाण लगकर वे सैकड़ों टुकड़ों में टूटकर बिखर जाते थे। अतः वे, रथ निष्क्रिय होकर खड़े रहने के अतिरिक्त और क्या कर सकते थे ?

आघात करने के लिए आनेवाले क्रोध से भरे तथा भीषण आँखों से युक्त हाथी;

शर के लगने से ऐसे गिरते थे, मानों पहले से ही मरकर यहाँ पड़े हों। वे यह सूचित करते थे कि अष्ट दिशाओं में स्थित बलवान् सेनाएं तथा वीर योद्धा भी एकत्र होकर आयें, तो बचकर नहीं जा सकते। फिर वे क्या कर सकते थे?

जल में स्थित अरुण कमल-समान नयनोंवाले (राम) जब एक बाण प्रयुक्त करते थे, तब उससे शतकोटि प्राणी मर जाते थे। इस कारण से कमलभव ब्रह्मा भी मरे हुए प्राणियों को गिनने में असमर्थ होकर बैठ गये। उस युद्ध में आकर प्राणों को ले जानेवाले यम की कैसी जल्दी थी? यह कहना कठिन है।

करोड़ों शरों के समूह राक्षसों के सिरों को काटते हुए अतिवेग से चले जाते थे। उनके अग्रभाग से निकलनेवाली अग्नि से रथों एवं गजों पर स्थित ध्वजाएँ, ग्रीष्म ऋतु में वज्र से आहत वनों के समान जलकर भस्म हो जाती थीं।

राक्षसों के द्वारा शक्ति लगाकर फेंके गये भाले, खड्ग आदि शस्त्र (राम के बाण से) कटकर तथा बाणों के वेग से प्रेरित होकर ऊपर उड़कर समुद्र के मध्य जा गिरते थे और बड़ी उष्णता के कारण 'सर'-'सर' करते हुए जल को सोख लेते थे, जिससे समुद्र का जल सूख जाता था और जलचर प्राणी भूमि पर पड़े तड़पने लगते थे।

युद्ध में शत्रुओं को निहत करनेवाला तीक्ष्ण राम-बाण, उमड़कर आनेवाले राक्षसों के त्रिपुर पर चलनेवाले (शिवजी के) बाण के समान चमकता हुआ चलता था। (राम के आग्नेयास्त्र प्रयुक्त करने पर) जैसे (समुद्र का) जल दग्ध होकर सूख गया था, वैसे ही राक्षस-वीरों के सिर चूर-चूर होकर जल उठे। ऊँचे रथ भी जल उठे।

हाथियों पर से युद्ध करनेवाले वीरों की भुजाएँ, हाथ में पकड़े खड्गों तथा भालों के साथ ही कटकर बड़े साँपों के जैसे तड़पने लगीं। वज्र से आहत होकर (गगन तक उठे हुए) पर्वत-शिखर जैसे टूटकर गिरते हों, वैसे ही ओंठ और मुखों से युक्त राक्षसों के सिर कटकर गिरे।

नरों की रक्षा करनेवाले (अर्थात्, नारायण), संसार के शासक, ज्ञानमय, नन्दक (नामक खड्ग) धारण करनेवाले और वीरता के स्वामी (राम) के वेगवान् शर लगने से भीषण शरभ, सिंह, बलवान् भूत, इनके साथ भेड़िये जुते हुए रथ, अपने सारथियों-सहित, शतकोटि संख्या में विध्वस्त हो गये।

धूलि-भरा युद्धरंग (अब) प्रलयकालिक समुद्र की समता करता था। रुधिर की धारा में बड़े-बड़े पहियोंवाले रथ डूब गये। पदाति-सैनिक डूब गये। महावत के साथ ही मुखपट्ट से भूषित हाथी डूब गये। घोड़े भी डूबते हुए चक्कर खाने लगे।

स्वर्गवासी यह सोचकर कि कटकर ऊपर उड़नेवाले सिर कहीं उनपर आकर न गिरें, इसलिए इधर-उधर हटते रहते थे। धरती पर रहनेवाले यह सोचकर चिंतित होते थे कि कहीं वे सिर पत्थरों की वर्षा के समान हम पर न आ बरसें।

सर्वनाश करने में प्रलयकालिक वर्षा के जैसे राम-बाणों के समुदाय से छिन्न-भिन्न होकर गगन तक उठे हुए शरीर धरती पर ऐसे आ गिरते, जैसे बरसनेवाले मेघ गिर रहे हों, या प्रभंजन से आहत होकर गगनगामी विमान गिर रहे हों।

कुछ राक्षस उत्तम देवास्त्र छोड़ते थे। कुछ जलानेवाले बाण धनुष पर चढ़ाकर छोड़ते थे। कुछ शस्त्र फेंकते थे। पैंतरे बदल-बदलकर घूमते हुए अनेक पर्वतों को उठाकर फेंकते थे। कुछ ऐसे वेग से झपटते थे, जैसे राम को पकड़ लेना चाहते हों। कुछ, शस्त्र न रहने पर, मुँह से निंदा के वचन कहते खड़े थे। कुछ धमकी देते थे। कुछ सामने बढ़कर आते थे। कुछ चक्कर काटते थे। ३३३।

सूर्य को भी नीचे गिरानेवाले प्रलयकालिक घोरघटा के समान शस्त्रों को उठाकर असंख्य राक्षस गरज रहे थे। अनेक राक्षस निकट आकर युद्ध करते थे। अनेक, एक के पश्चात् एक करके लगातार अनेक शस्त्र फेंक रहे थे। अनेक त्रिशूल फेंकते थे। अनेक छिप जाते थे। अनेक आँखों से आग उगलते हुए घूरकर देखते थे। अनेक बड़े-बड़े पहाड़ों को जड़ से उखाड़ रहे थे।

उन (राक्षसों) के फेंके हुए, चलाये हुए, उठाये हुए, पकड़े हुए—सब प्रकार के शस्त्र राम के बाणों से कटकर गिरे। आक्रमण करनेवाले तथा घूमकर चलनेवाले रथ टूटकर गिरे। हाथी निहत हुए। केशों-सहित सिर कटकर लुढ़क गये। ऊँचे कंधोंवाले राम ऐसे शोभायमान हुए, जैसे घने अंधकार के हटने पर सूर्य प्रकाशमान होता है।

जिस कोशल देश के खेतों में कृषक कमल-पुष्पों के साथ धान की फसल भी काटते हैं, उस देश के प्रभु (राम) के शर, महापुरुषों के वचनों की उपेक्षा करनेवाले राक्षसों के कवच तोड़ देते। शरीरों को काट देते। धनुष को तोड़ देते। सिरों को काट देते। उनके बल को मिटा देते। युद्ध-कौशल को नष्ट कर देते। (उनके द्वारा) ऊपर फेंके गये पत्थरों के टुकड़े कर देते। वृक्षों को काट देते। उन (राक्षसों) के हाथों को काट देते। तो अब उन शरों का सामना करनेवाला कौन था ?

देवता इतना ही कह सकते थे कि हाथी पूँछ, पैर, सूँड़, पीठ पर बँधे हौदे और दाँत के कटने से गिरे। किन्तु, अति वेग से आनेवाले राम-बाणों से वे समुद्र के जैसे फैले हुए पर्वताकार गज वर्षा-समान मद खोकर, रोष खोकर और निष्क्रिय होकर कैसे मिटे—यह वे (देवता) भी नहीं कह पाये।

(उस युद्ध में राम पर) चलनेवाले भाले शतकोटि थे। गगन पर ऊँचे चलनेवाले विशिख (नामक बाण) शतकोटि थे। घातक पर्वत-जैसे भीमकाय हाथी शतकोटि थे। अश्व-जुते, बड़े-बड़े पहियों से लुढ़ककर चलनेवाले रथ शतकोटि थे। किन्तु, उन सबको विध्वस्त करनेवाला व्यक्ति वह एक ही था।

सप्तलोकों को भी पीडित करनेवाले बड़े-बड़े धनुष धारण करनेवाले असंख्य राक्षस उस एक धनुर्धारी (राम) पर, एक-ही समय में एक ही साथ बड़ी शरवर्षा करते थे। किन्तु, वे शर राम-बाण से चूर-चूर हो जाते थे और उन (राक्षसों) के सिर कटकर उनके पर्वताकार शरीर भी छिन्न-भिन्न हो जाते थे।

शत-सहस्र गजों के बल से युक्त राक्षस (राम का) एक बाण लगने मात्र से अपने पर्वताकार शरीर को लेकर मिट जाते। रुधिर की सहस्रों धाराएँ चल निकलतीं

और उन धाराओं में फँसकर असंख्य हाथी किनारे पर नहीं चढ़ सकने से, बहते हुए जाकर वीचियों से भरे समुद्र में गिर पड़ते।

उस अचूक लक्ष्यवाले राम-बाण से परसे टुकड़े-टुकड़े होकर गिरते। पर्वत टूट-कर गिरते। वलय (नामक शस्त्र) गिरते। मूसल टूटकर गिरते। बरछे टूटकर गिरते। मत्त गज की पसलियाँ टूटकर बिखरतीं। घोड़े कटकर गिरते। रक्त की धारा उमड़कर बहती।

काल तथा उसके सब दूत, दो ही पैरवाले होने के कारण संसार में स्थित सब प्राणियों के प्राणों को एक ही समय में उठा ले जाने में समर्थ थे, अतएव इधर से उधर और उधर से इधर घूम-घूमकर श्रांत होकर सहस्रों प्राणों को लिये हुए अपने मार्ग पर जाना भूलकर खड़े रहे।

हाथियों, रथों और अश्वों की पंक्तियाँ मिटकर, एक के ऊपर एक पड़ी हुई थीं और गगन को छूती हुई पड़ी थीं। कबंध ऐंठकर नाच उठते थे। वह दृश्य ऐसा लगता था, जैसे शव ही सप्राण हो गये हों। उनको देखकर सब प्राणी काँप उठते थे।

मृतकों के शरीर से निकले रुधिर के छींटे प्रभु के पावन शरीर पर गिरते थे। तब दृढ धनुष को लिये कालवर्ण सूर्य जैसे स्थित राम, प्रलयकाल में सारे संसार को जलाने-वाले सूर्य के समान शोभायमान होते थे तथा शत्रुओं के शरीरों के कीचड़ में सने परशुराम के जैसे लगते थे।

(राम के) अग्नि-समान तथा वज्र-समान बाण बरसने पर भी माया-कृत्य करने-वाले राक्षस अपनी वीरता को न छोड़कर (राम-बाणों के द्वारा) अपने प्राणों के पिये जाने पर भी, एक साथ आकर राम को घेरने लगे। तब वे लोग मक्खियों के जैसे लगते थे और राम मधु के जैसे।

राम ने अपने को इस प्रकार घेरनेवाले राक्षसों को वेग से चलनेवाले शरों से क्षणमात्र में आहत कर दिया। शरों से विद्ध वे राक्षस बड़ी गोटियों के समान लगते थे (अर्थात्, ऊपर की ओर उछल जाते थे)।[१] राम के अचूक बाणों से शत्रुओं के वेगवान् हाथी तथा भारी रथ टूटकर कीचड़ के जैसे हो गये। 3345

(राम के बाणों से) कई राक्षसों के प्राण निकल गये। कई अपना स्थान छोड़कर भागे। कई राम के बाणों का लक्ष्य बनने से अपने को बचाकर हट गये। कई पीडित हुए। कई उत्साह से युद्ध में कूद पड़े। कई शरीर तोड़ने लगे। कई मिट्टी में लुढ़क गये। कई लौट गये। कई जल गये। कई झुलस गये। कई उठ गये। कई गिर गये। कई कट गये। कितनों की तो आँतें बाहर निकल आईं। कई आगे बढ़कर आये और सिर कट जाने से गिर पड़े।

कटकर गिरनेवाले राक्षसों के शरीरों से रत्न-कुंडल, कंकण, मकराभरण (कर्णा-भरण), मुकुट, कवच, वीर-वलय, तिलक आदि आभरण बिखर गये और ऐसे दिखाई दिये, जैसे जल-भरे बादलों से बिजलियाँ प्रकट हो रही हों। 3346

---

१. गोटी खेलनेवाला जिस प्रकार गोटी को ऊपर की ओर उड़ाता है, उसी प्रकार राम-बाण राक्षसों को उड़ाते थे।— अनु०

रामचन्द्र यों पैंतरे बदलकर युद्ध कर रहे थे कि क्रूर राक्षस यह कहकर आश्चर्य करते थे कि अहो! यह (राम) आगे है, पीछे भी है। हमारे मुख पर है, अन्तर में भी है। हमारे पार्श्व में है। सिर पर है। पर्वत पर है। धरती पर है। गगन में है—इसका अनुपम वेग भी कैसा है!

सब समझते थे कि (राम) मेरे ही सामने हैं। इस प्रकार, स्वर्ण-वलयों से बँधे हुए धनुष को हाथ में लिये, अनुपम गंभीरता से युक्त सिंह के जैसे स्थित राम, घेरकर आनेवाले शत्रुओं के बड़े समुद्र को तोड़ते हुए भी, उस (समुद्र) की वीचि के समान ही उसके साथ घूमती हुई छाया बनकर रहे (अर्थात, शत्रुओं के अति निकट रहते हुए भी यह राम उनकी पकड़ में नहीं आये)।

गर्त्तों से युक्त सप्तसमुद्रों तथा सप्तलोकों के राक्षस, जिनकी संख्या अनेक 'समुद्र' थी, यद्यपि महान् वैर रखनेवाले थे एवं मायामय कृत्य करके अपने रूपों को छिपा सकते थे, तथापि रामचन्द्र उनके अन्तर में ही नहीं, अपितु उनके बाहर भी सर्वत्र संचरण करते हुए लग रहे थे।

रामचन्द्र एक स्थान से दूसरे स्थान को इतने वेग से संचरण कर जाते थे कि देवता भी उनके इस कार्य को ठीक-ठीक नहीं पहचान पाते थे और यह समझने लगते थे कि कदाचित् राम ने अपने सर्वव्यापी परमात्मस्वरूप को ही अब अपना लिया है तथा अब राक्षसों के संहार का कार्य भी छोड़ने लगे हैं (अर्थात्, अपने अवतार के उद्देश्य को भी भूल गये हैं।)

भयंकर प्रचंड मारुत के चलने से जैसे पर्वत-शिखर एवं वृक्ष टूटकर धरती पर गिर जाते हैं—यों संचरण करनेवाले क्रूर राक्षसों को काटकर गिराते हुए रामचन्द्र घूम रहे थे। वे अपने उत्साह से ब्रह्मांड को भरनेवाले त्रिविक्रम के समान हो गये थे और शर बरसा रहे थे।

समुद्र पर शयन करनेवाले प्रभु (विष्णु-अवतार राम) संचरण करते हुए, मत्त गजों, दीर्घ रथों, शीघ्रगामी घोड़ों, शरभों, रोषवाले सिंहों तथा क्रोधी योद्धाओं की, भूमि से आकाश तक उठी हुई शव-राशियों पर, एक राशि से दूसरी राशि पर पैर रखते हुए चल रहे थे।

राम के शरों से निहत होकर, गगन को छूनेवाली ध्वजाओं-सहित एवं हौदों के साथ मत्त गज रुधिर के प्रवाह में डूब गये—जैसे समुद्र के जल में बड़ी नौकाएँ डूब गई हों। 3353

अपने मन में कपट रखनेवाले राक्षसों के सिर राम के शरों से कटकर ऊपर की ओर उड़ जाते और फिर नीचे आ गिरते थे। ऐसा लगता था, मानों युद्ध-रूपी नारी गोटियाँ (ऊपर उछाल-उछालकर) खेल रही है।

मारण-कृत्य में लगे रहनेवाले (राक्षसों के) कंकण-भूषित हाथ, ढालों के साथ कटे हुए दिखाई पड़ते थे। 'तुंबै' पुष्पों की माला से अलंकृत उनके पाप-भरे सिर लुढ़क रहे थे।

पुरुषश्रेष्ठ (राम) के तीक्ष्ण शर-रूपी सर्प से युक्त होकर (राक्षसों की) भुजाएँ

उनके कंठ के समान हो गईं। (अर्थात्, भुजाएँ बाणों की माला पहनकर कंठ के समान लगने लगीं)। उन राक्षसों की मधुस्रावी पुष्पमालाओं के साथ उनका क्रोध भी युद्धक्षेत्र में झर गया।[1]

सूत्र से संयुत वीर-कंकण धारणवाले राक्षसों की दंष्ट्राएँ राम के शरों से टूटकर हाथियों के पेट को भेदकर उसके भीतर जा छिपती थीं। वे ऐसी लगती थीं, जैसी गगन के मध्य मेघ के बीच छिपनेवाली चंद्रकला हो।

राक्षस-वीरों के खड्ग-दंत तथा पर्वताकार हाथियों के धवल दंत ढेर-के-ढेर पड़े थे, मानों अनेक दिनों तक प्रकट हुई अनेक चंद्रकलाएँ गिर-गिरकर एकत्र हो धरती पर पड़ी हों।

असंख्य राक्षसों की देह से रुधिर निकलकर सब द्वीपों में भी भर गया। अतः, द्वीपों में निवास करनेवाले सब प्राणी वहाँ के पर्वतों पर चढ़ गये।

शरीरों में स्थित प्राणों से गगन-प्रदेश भर गये। घावों से निकले रक्त से समुद्र भर गये। गिरे शरीरों से युद्धभूमि भर गई। धनुःकौशल के अद्भुत दृश्य से देवताओं की आँखें भर गईं।

क्रोधी राक्षसों के बड़े-बड़े शस्त्र बिखरकर, रुधिर-प्रवाह में बहकर समुद्र में जा गिरे और उनकी चोट से वहाँ के अनेक जलचर कटकर मर गये।

तब वह्नि (नामक सेनापति) ने सोचा—'यह एक निर्बल मनुष्य हम राक्षसों के व्यूह को काट दे और पर्वताकार राक्षस विजय का कोई उपाय नहीं देखकर श्वेत दाँतों को चबाते रह जायें!' फिर, उसने राक्षसों के प्रति कहा—

(राम का) शर हमारे ऊपर आ लगने के पूर्व ही यदि हम इसपर जाकर गिरें, तो भी यह मर जायगा। किन्तु, पैर-कटे मेघ जैसे दिखाई पड़नेवाले वीरो! तुमलोग बुद्धि के भ्रष्ट होने से स्तब्ध खड़े हो।

हमारी सहस्र समुद्र सेना शरों से निहत हो जायगी। उसके मिटने पर हम क्या कर सकेंगे? अतः, तुम लोग दृढचित्त होकर तुरन्त ही इसपर झपटो—यों अपने नायक (रावण) का हित करनेवाले उस (राक्षस) ने कहा।

तब क्रोध से उमड़कर उठनेवाली उस सेना ने बाढ़ के जैसे बढ़कर राम को घेर लिया और इस प्रकार शस्त्र बरसाये, जिस प्रकार मेघ किसी पर्वत पर वर्षा करते हैं।

राम ने लक्ष्य पर फेंके गये (अर्थात्, निशाना लगाकर फेंके गये) तथा चलाये गये विविध अस्त्रों के टुकड़े टुकड़े कर डाले और शरों को चलाकर रथों, गजों और अश्वों को मारकर सेना को तितर-बितर कर दिया।

शब्द करते हुए आगे बढ़नेवाले विविध प्रकार की नोंकवाले शरों से अनेक रक्त-प्रवाह शब्द करते हुए बढ़ चले। अग्निमुख पिशाच गाते हुए नाचने लगे, तो वे समुद्र-तीरस्थ द्वीप-स्तंभों के जैसे दिखाई पड़े।

१. यहाँ से इस पटल के अनेक पद्यों में यमक की अद्भुत छटा दिखाई गई है, जिसे अनुवाद में ठीक-ठीक प्रकट करना सम्भव नहीं। —अनु०

रुधिर-धाराओं से भरे समुद्र-रूपी रक्त वस्त्र पहननेवाली तथा (मांस एवं रुधिर) के रक्तचंदन से अलंकृत भूमि-रूपी स्त्री विवाह-मंगल के समय रक्तवर्ण अलंकरणों से भूषित नारी के समान दिखाई पड़ी।

लवण, मधु, घृत, दुग्ध, दधि, इक्षुरस तथा मधुर जल के सप्त समुद्र भी रुधिर के समुद्र से आवृत हो गये। आज यह कथन कि समुद्र सात हैं, एक धनुष से असत्य कर दिया गया।

संधान करके छोड़ना तो एक ही बार होता था। लेकिन, उससे निकलनेवाले शर एक करोड़ होते थे। आज राम का धनुष ऐसा झुका है, जैसी चंद्रकला हो, फिर भी न जाने, उनका सामना करनेवाले राक्षस कब मिटेंगे ?

शस्त्र को उठानेवाले, गर्जन करनेवाले, समीप आकर शस्त्र फेंकनेवाले, वीरता के साथ सामने आकर डटनेवाले, शिथिल पड़नेवाले, पराजित होकर पीछे मुड़नेवाले, मत्त गज के समान वेगवाले, दर्प करनेवाले, क्रोध करनेवाले, रोष के साथ शर-संधान करनेवाले—सब राक्षस राम के बाणों से निहत होकर गिरे।

राम एक सहस्र बाण संधान करते थे, किन्तु उनसे आहत होनेवाले भयंकर धनुर्धारी राक्षस एक सहस्र नहीं, दस सहस्र होते थे। उन शरों का वेग वैसा था। उनका प्रयोग करनेवाले (राम) का मन भी वैसा था, उन वेग को दृष्टि या मन पहचान नहीं पाते थे। ये राक्षस बरछे उठाते थे, तो चोट खाकर गिरने के लिए ही। इसके अतिरिक्त और क्या कर सकते थे ? 1372

राम के शर (युद्धभूमि के) अग्रभाग में, सम्मुख में, दोनों पार्श्वों में तथा पीछे के भाग में—सर्वत्र ऐसे फैल जाते थे कि एक सूई के जाने के लिए भी स्थान नहीं रह जाता था। ऐसे शर (राक्षसों के) प्राण पीते। दिशाओं में जाते। उनके पार भी पहुँच जाते। उन शरों के इस ओर रहनेवाले राक्षस (अर्थात्, वे शर जितनी दूर तक जाते थे, उस अवकाश के भीतर रहनेवाले) भगवान् के सम्मुख प्राण खोकर गिरने के अतिरिक्त और क्या कर सकते थे ?

मांस से संयुत वे शर युगांतकालिक अग्नि के समान थे। राक्षस, उस अग्नि से विध्वस्त होनेवाले वृक्ष-कानन थे। मत्त गज पर्वत थे (जो उस अग्नि में तप रहे थे)। मनुकुल-संजात (राम) के बलवान् शर फैलाये गये जाल थे। समुद्र-जैसे फैले हुए और मरनेवाले वे राक्षस जाल में फँसकर मरनेवाले जलचर थे।

राम प्रलयकालिक प्रभंजन के समान थे। उनसे युद्ध करके चूर होकर गिरनेवाले वे राक्षस पर्वत थे। राम प्रलयकालिक समुद्र थे, जो उमड़कर सप्त लोकों को डुबो देता था। और, वे राक्षस तरंगों से बहाये जानेवाले प्राणी थे।

राम वह युगान्त का काल थे, जो सबका आदिकारण बना रहता है एवं मध्य तथा अंतिम समय भी हो जाता है। वे राक्षस युगांत में मिटनेवाले चराचर प्राणी थे। राम शब्दायमान समुद्र से उत्पन्न हलाहल थे और राक्षस मीन थे।

राक्षस, वंचकों के कृत्य करनेवाले तथा महत्त्व से पूर्ण न्यायसभा में झूठा साक्ष्य

देनेवाले लोगों के जैसे थे। राम धर्म थे। वे (राम) विषमय जल थे। राक्षस अकाल से पीडित तथा उस जल को पीकर मरनेवाले जीव थे।

जब एक शत समुद्र राक्षस मरे, तब समुद्र, लंका का प्रदेश, सर्वत्र ऊँच-नीच भूमि को समतल करता हुआ रुधिर-प्रवाह फैल गया। हरिण के समान विशाल नयनोंवाली, वंचक हृदयवाली राक्षसियाँ अपने शिथिल पैरों को लेकर प्राचीरों के भीतर-बाहर अंधा-धुंध भागने लगीं।

वे राक्षस-वीर निकट आकर युद्ध करके मर मिटे। शव-राशियाँ भूमि पर गगन को छूती हुई पड़ी रहीं। रक्तप्रवाह समुद्र के समान तरंगायित होकर दिशाओं की सीमाओं से टकराता हुआ फैल गया। तब शतकोटि अवारणीय राक्षस-सेनापति राम का सामना करके खड़े हो गये।

वे राक्षस-सेनापति, रथ, मत्त गज, पर्वतों पर संचरण करनेवाले शरभ, अश्व, बलवान् सिंह आदि सब वाहनों को चलाते हुए राम की ओर चले और मेघ, वज्र एवं प्रचण्ड अग्नि के समान शस्त्र तथा बाण अतिवेग से चलाते हुए (राम के) निकट जा पहुँचे।

रामचन्द्र उनको देखकर यह कहते हुए कि 'आओ! निकट आओ! (मेरे) सामने आकर तुम अपने प्राण, वर एवं अन्य सब कुछ दे दो' ऐसे तीक्ष्ण शर छोड़े, जिनका निवारण करना असंभव था। वे शर भयंकर बिजलियों तथा समुद्र के जैसे फैल गये। वे क्रूर राक्षस-सेनापति अपनी सेना को युद्धक्षेत्र से भागकर जाने से रोके खड़े रहे।

वे अति शक्तिशाली राक्षस एक साथ घुसकर, उन शरों से रुष्ट होकर, एक क्षण में उन बाणों को हटाकर, आँधी से भी अधिक वेग से शरों को बरसाते हुए राम को प्रत्येक दिशा से, पंक्ति बाँधकर, रोके हुए दर्प के साथ अति निकट आ गये। तब देवताओं ने त्रिनेत्र के निकट पहुँचकर उनके चरणों को नमस्कार करके ये वचन कहे—

इन सेनापतियों में से प्रत्येक रावण के तिगुने बलवान्-जैसा लगता है। इनकी कोई सीमा भी नहीं दिखती। ये सब एकत्र होकर संसार के सारे अवकाश को भरकर सर्वत्र विनाश फैला रहे हैं। राम अकेला है। हे अग्निरूप! अब क्या होगा? कहें।

राम के शरों के अपने पास आने के पूर्व ही ये राक्षस उन शरों को हटाकर सप्त लोकों पर घिरनेवाली घोरघटा के समान घेरकर आ पहुँचे हैं। इन राक्षसों को यदि शाप देकर मिटायें, तो मिटायें। किन्तु, केवल शस्त्रों के बल से इनको मिटाना तुम्हारे लिए या विष्णु के लिए भी असंभव-सा लगता है।

तब शिवजी ने उन देवों से कहा—डरो मत। राक्षस जितने भी हों, सब अग्नि लगने पर रूई के समान दग्ध हो जायेंगे। पहले भी इस प्रकार हुआ है। विष अमृत को भले ही जीत ले। अधर्म धर्म को भले ही जीत ले। किन्तु, राक्षस कभी राम को नहीं जीत सकेंगे।

उस विभीषण को छोड़कर और कोई राक्षस अब संसार में बचा नहीं रहेगा। यदि करुणा गुण है, तो उससे धर्म की ही वृद्धि होती है। अब तुम्हें छिपने के लिए पर्वतों की कंदराओं को खोजने की आवश्यकता नहीं रहेगी। आज के मध्याह्न तक

कपिराज को अपने दास के रूप में प्राप्त करनेवाले सिंह-सदृश राम सब राक्षसों को मिटा देंगे।

जब शिवजी ने यह वचन कहा, तब ब्रह्मा ने भी वैसे ही कहा। तब देवता चिंता छोड़कर स्वस्थ हुए। मनुकुल-संजात वीर (राम) ने वर्षा के पानी से भी अधिक वेग के साथ शर बरसाकर राक्षसों के सिरों के कुल-पर्वत जैसे ऊँचे ढेर लगा दिये।

मगरों एवं मत्स्यों से पूर्ण अपार समुद्र के जैसे वे राक्षस राम के उन शरों से आहत हुए। वीर स्वर्ग में जाकर ऐसे भर गये कि अनादि स्वर्गलोक में स्थान नहीं बचा।

उनके कटे पैरों से लंका की परिखा पट गई। उनके सिर चूर-चूर होकर गिरे। उनके घोड़ों के सिर कटकर गिरे और वे राक्षस स्वर्ग पहुँचकर अप्सराओं के द्वारा आलिंगित होकर आनंदित हुए।

पर्वतों में, तरंगायमान समुद्रों में, अरण्यों में, मरुभूमि में अविनश्वर अमरलोक में सर्वत्र राक्षसों के सिर, शरीर, रुधिर-प्रवाह, प्राण—सब फैल गये।

जब ऐसा युद्ध हो रहा था, तब सम्मुख युद्ध करने के लिए आये हुए सब राक्षस एक साथ निहत हुए। उनके प्राण छटपटाये। देवों के द्वारा बरसाये गये पुष्पों से मधुबिन्दु छितराये।

राक्षस-सेनापति, अस्त-व्यस्त होकर भागनेवाली अपनी सेना से, आँखों से आग उगलते हुए कहने लगे—'अरे शक्तिहीनो! लौटो, लौटो!'—यों धमकियाँ देकर उन सैनिकों को तथा हाथियों, अश्वों एवं सिंहों को लौटाकर ले आये।

उन राक्षसों ने चमकते हुए वज्र-समान शस्त्र फेंके, तो सारा संसार बहरा हो उठा। गगन के मेघ झर पड़े। ऊँचे पर्वत हिल गये। देवों के सिर काँप उठे। यों वे राक्षस राम को घेरकर खड़े हो गये।

सुरूप (राम) ने भी यह कहते हुए कि 'बहुत सुन्दर है! बहुत सुन्दर है!' जैसे आनन्द के साथ अतिथियों का स्वागत कर रहे हों, त्योंही उनका स्वागत करते हुए उनपर अग्निमुख बाण चलाये।

सूर्य को छूनेवाली ध्वजाएँ सब दिशाओं में भर गईं। रोष-भरे अश्व घने होकर (राम पर) टूट पड़े। उज्ज्वल मणियों से युक्त रथ महिमामय राम के साथ युद्ध करने के लिए मेरु-पर्वत के समान आ पहुँचे।

शरों से विध्वस्त होनेवाले रथों पर से राक्षसों के शरीरों को बाज एवं बड़े पंखों-वाले गीध उठाकर उड़ जाते थे। उनसे सूर्य का प्रकाशमय मंडल भी अदृश्य हो जाता था। धरती का प्रदेश कीचड़ बन गया।

राम दो सूँड़ोंवाले अनुपम हाथी के जैसे संचरण करते थे, तो पास के समुद्र भी घूम जाते थे। अपार पर्वत अस्त-व्यस्त हो जाते थे। सूर्य और चन्द्र आसमान में स्थानभ्रष्ट होने लगते थे। सारा संसार जब कुम्हार के चक्र के जैसे घूम उठा, तब सारी वस्तुएँ अपने स्थान से विचलित हो गईं।

उस समय, भूतों के झुण्ड, यम, राम का दृढ धनुष और धर्म—सभी नाच रहे थे। शिव, ब्रह्मा, देवता तथा मुनिगण सभी शीघ्रता के साथ (आनन्द के कारण) पलटा खाने लगे।

वेदपुरुष ने प्रशंसा की —त्रिभुवनों के देवताओं में कौन ऐसा है, जो परिणाम को जानता है ? इस भयंकर युद्ध को देखकर त्रिमूर्त्ति भी थरथरा उठते हैं। हे धर्म के आश्रय के आश्रय ! हे अतसीपुष्प-सदृश ! तुम्हारी महिमा अवर्णनीय है !

राम के द्वारा प्रयुक्त अनुपम शरों से भयंकर गज, अश्व, पदाति-सैनिक तथा रथ —सभी सप्त समुद्रों में जा गिरे। तब राक्षसों के पैर उखड़ गये और वे यों शिथिल पड़ गये, जैसे क्षीरसागर को मथने के समय देवों और राक्षसों के हाथ शिथिल हो गये थे।

महिमामय राम के द्वारा प्रयुक्त शर हाथी, रथ, जीनवाले घोड़े, सैनिक—सब पर लगकर घाव उत्पन्न कर देते थे। वह ऐसा लगता था, मानों वे शर उनकी गिनती करते हुए उनपर चिह्न लगा रहे हों।

तब राम ने यह सोचकर कि अब राक्षस-सेना घट गई है, अतः बचे हुए राक्षस किसी कोने से आँख बचाकर भागने लगेंगे, चारो ओर शरों को चलाकर प्राचीर-सा बना दिया और उनको भागने से रोक दिया।

संसार को जीतनेवाले, माल्यवान् जैसे राक्षस, जो पर्वत के जैसे थे, मधु-कैटभ असुरों के समान थे और कवचों से भूषित थे, वे भी उस शरमय प्राचीर को तोड़कर नहीं जा सके।

मरनेवाले राक्षसों के मर जाने पर शेष राक्षस इस प्रकार एक दिशा में आकर जुट गये, जिस प्रकार प्रलयकाल में बडवाग्नि से सुखाये जाकर सप्त समुद्र सूखकर संकीर्ण बन गये हों।

राक्षस सोचने लगे—त्रिपुर-दाह करनेवाले शिव, गरुड पर आरूढ होनेवाले महाविष्णु, भली भाँति तीक्ष्ण किये गये वज्रायुध को हाथ में रखनेवाला इंद्र आदि भी हमारी शक्ति को नहीं मिटा सके। अब एक मनुष्य हमारी वरदान से प्राप्त शक्ति को मिटा रहा है ! यह कैसी बात है ?

हममें से एक-एक व्यक्ति ऐसा है, जो समुद्र से आवृत सारी धरती को रोककर (संसार के साथ) युद्ध कर सकता है। ऐसे राक्षस-वीरों की सेना सहस्र समुद्र थी। इतनी विशाल सेना को एक धनुष से क्षणकाल में इसने निहत कर दिया।

हम राक्षसों से देवों की सेना निहत हो जाती है। जो निहत नहीं होते, वे भी हारकर भाग जाते हैं। किन्तु, आज राम के एक शर से करोड़ों राक्षस मर गये। राक्षसों का जन्म कितना तुच्छ हो गया।

सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा तथा वृषभारूढ शिव एवं अन्य देवता गगन में एकत्र होकर हर्षध्वनि कर रहे हैं। उनमें मायावी विष्णु को हम नहीं देखते। अतः, हो न हो, यह (राम) वह छली विष्णु ही है।

आज राम ने कोटि पद्म से भी अधिक संख्या में हम राक्षसों को मारा है। अतः, राक्षस-सेना समुद्र संख्या तक ही सीमित रह गई है। अब और क्या सोचते खड़े रहें ? अब तो क्या करना है, यही निश्चय करना है। जब राक्षस यों कह रहे थे, तभी (वह्नि) बोला—

यदि मारे जाने से डरकर हम वापस लौट जायेंगे, तो रावण के मुख पर कैसे

दृष्टि डाल सकेंगे? क्या हम अपनी ही निंदा करते रहेंगे? अतः, युद्ध में निहत होकर हम यश कमाते हुए अपुनरावृत्ति (मुक्ति) के मार्ग पर जायेंगे।

यदि हम इस संकट से बचकर पुनः युद्ध करने के लिए आने की बात सोचते हैं, तो भी तीक्ष्ण शरों की इस दीवार को तोड़कर जाना असंभव है। अतः, हम सब एक साथ युद्ध करके मर जायँ।—यों वह्नि ने कहा।

अति दृढ पर्वतों को भी बहाकर ले जानेवाली धाराएँ जैसे समुद्र में जा गिरती हों, या शलभ दीपशिखा में जाकर गिरते हों, वैसे ही वे राक्षस, जो पर्वताकार थे, दैव (पाप-परिणाम) के द्वारा कंठ को पकड़कर धकेले जाने से भीषण कोलाहल मचाते हुए राम को घेरने लगे।

उन राक्षसों ने परसे, दंड, शर, वलय, काँटे, करवाल, कुंत, भाले, शूल, तोमर, पराक्रम को प्रकट करनेवाले 'कप्पण' इत्यादि अनेक शस्त्रों को गोष्ठ में स्थित व्याघ्र के समान रामचन्द्र पर छोड़ा।

तब चक्रवर्त्ती (राम) ने दिव्य महिमा से युक्त गांधर्व अस्त्र को धनुष पर चढ़ाकर प्रयुक्त किया। वह अग्निमय अस्त्र सर्पों के राजा आदिशेष के समान तथा पक्षियों के राजा (गरुड) के समान चलकर राक्षसों को जा लगा।

तब तीन नेत्रोंवाले, पाँच मुखोंवाले, उज्ज्वल अग्नि-समान देहवाले, अग्नि बरसानेवाले और गगन तक उड़नेवाले अनेक शर बरस पड़े और शिवजी द्वारा त्रिपुर-दाह का दृश्य उपस्थित करने लगे।

दस कोटि राक्षस-वीर निश्शेष रूप में मिट गये। तपस्या के बल से युक्त रावण का मूलबल क्षणकाल में निश्शेष हो गया।

तब सातों महाद्वीपों में, विविध प्रकार से रक्षा करने योग्य पर्वतों में तथा अन्य प्रदेशों में रक्षा का कार्य करनेवाले तथा रावण के प्रति अपार भक्ति रखनेवाले असंख्य राक्षस निकल आये।

अत्युन्नत मेरु की परिक्रमा करनेवाले सूर्य और चन्द्र को गूँथकर माला बनाकर पहननेवाले वे राक्षस इतने वरों से युक्त थे कि उन वरों को देते-देते कमलभव (ब्रह्मा) की जीभ पर छाले पड़ गये होंगे।

वहाँ जो राक्षस आये थे, उन्होंने वह्नि (नामक सेनापति) से कहा—यदि यह (राम) हममें से किसी एक को जीत ले, तो वह इस भीषण युद्ध में रावण को भी अवश्य जीत लेगा। अब क्या हम सब एक ही साथ 'हूँ' कहने के भीतर (अर्थात्, एक क्षण में) ही इसपर टूट पड़ें, या पृथक्-पृथक् जाकर इसके साथ लड़ें?

तब उस प्राचीन सेनापति वह्नि ने कहा—यदि हम सब एक साथ ही अतिशीघ्र जाकर इसे घेरकर बड़े कौशल के साथ युद्ध नहीं करेंगे, तो इसे नहीं जीत सकेंगे। सब बलशाली राक्षसों ने उसके कथन को स्वीकार किया।

उन राक्षसों ने समुद्र के समान गर्जन किया। फिर, भीषण शंख की ध्वनि इस प्रकार की कि बिजलियों से भरा गगन भी टूटकर गिर जाय और भुजाओं पर ताल

ठोंकते हुए आ पहुँचे। अब न जाने यह संसार क्या होगा ? ये दिशाएँ क्या होंगी ? वे राक्षस चिल्ला उठे। तब राक्षसों के पराक्रम को मिटाकर विजय पानेवाले राम ने अपने धनुष से टंकार निकाला। वह टंकार उस शंखध्वनि के समान था, जो विष्णु के अपना पद उठाकर विश्व को नापते समय सर्वत्र गूँज उठा था।

अनेक कोटि संख्या में, अनेक प्रकार की कलाओं में कुशल, शस्त्रों का ठीक-ठीक प्रयोग करने में चतुर, सब लोकों में प्रसिद्ध युद्धों में विजय पाकर प्रसिद्ध होनेवाले धनुर्धारी राक्षसों में प्रधान स्थान रखनेवाले—

सब लोकों को जीतनेवाले, स्वर्गवासियों के साथ दानवों के समूह को भी एक ही साथ मिटा देनेवाले, प्राण हरने के लिए ही उत्पन्न यम के समान सब प्राणियों को खानेवाले, ऐसे वे राक्षस राम के निकट आ पहुँचे।

वे ऐसे आये, जैसे मत्त गज को आलान में बाँधने का प्रयत्न कर रहे हों। उन्होंने आकर राम को घेर लिया और पृथक्-पृथक् वज्र के समान गरजते हुए नाना प्रकार से युद्ध करने लगे। वह दृश्य देखकर देवों के मन मलिन हो गये।

उन राक्षसों के द्वारा प्रयुक्त शस्त्रों से उठी अग्नि एवं उनकी आँखों से निकली हुई अग्नि सब मिलकर ऐसे भभक उठीं कि सातों लोक झुलस गये।

रथों की गड़गड़ाहट, वीरों की धमकियाँ, मंजीरों की ध्वनि, वीर-वलयों का शब्द, युद्ध में धनुष की डोरी को खींचकर छोड़ने से निकलनेवाला टंकार, काले रंगवाले हाथियों का चिंघाड़—सब वहाँ भर गये।

उस सेना में स्थित प्रत्येक राक्षस रावण के जैसा था। ऐसा कोई लोक नहीं था, जिसे उन्होंने न जीता हो। वे अपार शक्ति से पूर्ण थे। ऐसी अति प्राचीन राक्षस-सेना को आते देखकर राम भी अत्यन्त रोष के साथ युद्ध करने के लिए आगे बढ़े।

राम ने प्रलयकालिक अग्नि को उगलनेवाले अनेक ऐसे शर प्रयुक्त किये, जिनसे उन राक्षसों के द्वारा प्रयुक्त चक्रायुध एवं शर छितरा गये।

शक्ति-भरे राम-बाणों ने विजयमाला से भूषित राक्षसों के विशाल वक्षों को भेद डाला। वे राक्षस अपने रथों के साथ ऐसे विध्वस्त होकर गिर पड़े जैसे, अरुणवर्ण सूर्यग्रहों के साथ गिर पड़ा हो।

घातक कार्य करनेवाले वे उज्ज्वल बाण जब मानो मांस-संयुत यमदंतों से अनुसृत होते हुए राक्षसों पर जा लगे, तब धनुष के साथ ही कटकर गिरनेवाले (राक्षसों के) हाथ ऐसे लगे, जैसे बिजलियों के साथ बादल झर पड़े हों।

कटकर शरों के साथ गिरे हुए वे हाथ ऐसे थे, जैसे लाल रंगवाले तरंगायमान समुद्र में रोष से दौड़नेवाले साँप ऊपर की ओर उठी हुई वृक्ष-शाखाओं के साथ ही गिर पड़े हों।

स्वर्णमय मुखपट्ट धारण करनेवाले बड़े-बड़े हाथी, आगे बहनेवाले रुधिर-प्रवाह में फँसकर बह गये और धरती को आवृत कर रहनेवाले प्राचीन समुद्र में ऐसे गिरे, जैसे बिजली के साथ मेघ गिरे हों।

गंध से भरे रुधिर-समुद्र में वीरता से पूर्ण राक्षसों के दक्षिण हाथ, जो चमकते करवाल के साथ ही कटकर गिरे थे, ऐसे लगते थे, जैसे तड़पकर ऊपर उछलने-फाँदनेवाले घोड़े हों या बड़े-बड़े मीन हों।

उज्ज्वल बाणों के द्वारा कटे हाथों से छूटकर रक्त-प्रवाह में गिरे हुए शस्त्रों से रक्षा करनेवाले ढाल ऐसे लगते थे, जैसे महान् समुद्र में बड़े-बड़े कछुए तैर रहे हों।

जैसे आँधी के वेग से आहत होकर नौकाओं पर के मस्तूल एवं पाल समुद्र में डूब रहे हों; ऐसे ही खंभों में लगी ध्वजाएँ कालवर्ण होकर वह चलनेवाले उस रुधिर-प्रवाह में तैर रही थीं।

रुधिर के बहुत बड़े प्रवाह में गिरे हुए कटे हाथ, शरों से घिरे हुए इस प्रकार तड़प रहे थे, जिस प्रकार कमल के नाल के काँटों से रगड़कर दृढ सूँड़वाले 'शुरा' मीन तड़प रहे हों।

धवल स्फटिक-खंडों से जटित रथ विध्वस्त हो गये, तो उनके स्फटिक-खंड बिखरकर शरों के कारण प्रकट हुए रुधिर-प्रवाह में गिरकर, ऐसे लगते थे, जैसे समुद्र में अनेक चंद्र डूब रहे हों।

(राम ने) सन्मार्ग पर न चलनेवाले और (अबतक) विजय पाते रहनेवाले राक्षसों का सम्मुख समर में स्वयं ही वध करने का संकल्प कर लिया था। अतः, जब कभी वे बाण चलाते थे, तब करोड़ से भी अधिक संख्या में राक्षसों के सिर कटकर पर्वताकार ढेरों में गिरते थे।

(राक्षसों के) दृढ वक्षों पर कसकर बँधे कवचों के मध्य शरों के तीक्ष्ण अग्रभाग चुभ जाते थे। वे शरपुंज मधुर मधु का पान करने में लिप्त मुखवाले भ्रमरों के झुण्ड के जैसे लगते थे।

गिद्ध जहाँ मँड़रा रहे थे, ऐसे शत योजन विस्तीर्ण युद्धभूमि में एकाकी ही रामचन्द्र दिन के एक चतुर्थ भाग (अर्थात्, एक पहर) के भीतर ही असंख्य राक्षसों का वध करके संचरण कर रहे थे।

राम, खड़े रहनेवालों से खड़े रहकर, अन्यत्र पद रखकर चलनेवालों के सम्मुख जाकर, यों घूम-घूमकर उन (राक्षसों) का वध करते थे। वे अपने पिता से विरोध करनेवाले पुत्र (प्रह्लाद) के सम्मुख ही उसके पिता (हिरण्यकशिपु) को मारनेवाले नरसिंह के जैसे लगते थे।

राम इतने वेग से घूम रहे थे कि राक्षस 'राम यहाँ है, यहाँ है' कहते हुए बड़े रोष से व्याकुलचित्त होकर राम को लक्ष्य न करके और कहीं अपने बाण प्रयुक्त कर देते थे और स्वयं निहत हो जाते थे।

(राम के उज्ज्वल शर अंधकार को दूर कर सर्वत्र प्रकाश फैला देते थे अतः,) राक्षस कहते, 'यह रात्रि नहीं है! दिन ही है।' और, यह नहीं सोचते हुए कि राम एक ही हैं, यह कहते कि 'समुद्र के बालू-कणों के समान असंख्य राम हैं'।

उस प्रधान सेना के पर्वताकार वीर, जिनकी संख्या 'सहस्र समुद्र' थी, भ्रम से एक

दूसरे को राम समझकर परस्पर के प्राण हर लेते थे। उनके प्राण राम ने नहीं लिये। वे स्वयं ही निहत हो गये।

राम रथ पर हैं, घोड़े पर हैं, रक्तवर्ण नेत्रवाले हाथी पर हैं, विशाल समुद्र पर हैं, धरती पर हैं, गगन में हैं।—इस प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए रामचन्द्र सर्वत्र व्याप्त थे।

चक्रवर्त्ती-कुमार (राम) सब स्थानों में उपस्थित होते। (उन राक्षसों के) पीछे, पार्श्व में और आगे, उनके शरीर से पृथक् नहीं होते हुए समीप रहते। घूमते, उज्ज्वल दिखाई पड़ते। वह दृश्य देकर राक्षस-वीर भ्रांत हो गये।

राम के दीर्घ धनुष में बँधी घंटी ज्योंही भयंकर ध्वनि कर उठती थी, त्योंही मद-भरे हाथी और घोड़े गिर पड़ते थे। हिमालय जैसे रथ ध्वस्त हो जाते। दिशाएँ फट जातीं। विशाल समुद्र कीचड़ बन जाते; घातक व्याघ्र जैसे राक्षसों की स्त्रियों की विशाल आँखों से शोकाश्रु बहने लगते।

अनुपम वीर राम, मांस से संयुत शस्त्रों को लिये हुए राक्षस-वीरों में से प्रत्येक के सम्मुख बार-बार झुकनेवाले धनुष को लेकर उनके शरीर के अनुसार ही कूद पड़ते थे और अपने वेग से ऐसा भ्रम उत्पन्न करते थे कि युद्ध करनेवालों या मरनेवालों के रथ जैसे ही रथ राम के पास हैं, ऐसा प्रतीत होता था।

शत्रुओं को जलानेवाला महान धनुष एक ही था, तूणीर भी एक ही था, फिर भी उससे बरसनेवाले बाण वर्षा की बूँदों से भी अधिक थे। उस समय राम के दो अरुण हाथों ने सहस्र हाथों का कार्य किया। अहो! यह कैसा आश्चर्य है कि एक सहस्र हाथ दो हाथ हो गये।

यह (राम) एक मुखवाले मनुष्य के रूप में हैं, यह यथार्थ नहीं है। हमने सत्य को जान लिया है। क्या यह कभी सम्भव है कि सहस्र समुद्र राक्षसों के सब कार्य एक मुख देख पाये? अतः, उन (राम) के एक सहस्र मुख नहीं, किन्तु असंख्य मुख हैं।

ललाटनेत्र (शिव) एवं चतुर्मुख (ब्रह्मा) राम के द्वारा प्रयुक्त शरों को गिनने लगे, किन्तु उन असंख्य बाणों को गिन नहीं सके और बड़े आनन्द के साथ बोल उठे—हम कैसे गिन सकते हैं?

अन्य देवता कहने लगे—युद्ध के लिए आये हुए राक्षस सहस्र समुद्र थे। राम से प्रयुक्त शर भी उतनी ही संख्या में थे—ऐसा कहना भी क्या यथार्थ कथन हो सकता है? नहीं, क्योंकि उन राक्षसों के भयंकर शरीर के शत-शत टुकड़े हो गये हैं। यह कार्य क्या एक-एक शर से संभव है? अहो! क्या राम ने ही इतने बाणों को छोड़ा?

मुनियों ने कहा छत्र और ध्वजाओं से सुसज्जित सेना के शस्त्र, शर, हाथी, रथ, घोड़े आदि सबका विध्वंस करनेवाले (राम के) बाणों की गिनती के लिए क्या कोई संख्या भी दी जा सकती है?

(राम के) बाण भयंकर युद्ध करनेवाले राक्षसों का पीछा करते हुए उनके कंठ

तथा ऊपर कपाल में जा लगते थे और उनको निहत कर देते थे। विभिन्न अंगों के कट-कर पड़े रहने से वहाँ ऐसा लगता था, मानों ब्रह्मा, गर्भ के पिंड के अनेक अंगों का निर्माण करके ब्रह्मांड में भर रहे हों।

जब दस करोड़ शस्त्रधारी राक्षस-वीर रोते-कलपते मारे जा चुके, तब शेष वीरों ने सोचा—'हम साधारण शस्त्र छोड़ते हुए क्यों मारे जायँ? दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करके इसे (राम को) आवृत कर देंगे।' सब दिव्यास्त्रों का प्रयोग करने लगे।

उन राक्षसों ने विष्णु का अस्त्र, ब्रह्मास्त्र आदि सब प्रकार के अस्त्रों का एक साथ प्रयोग किया। देवता भी उस दृश्य को देखकर काँप उठे। ब्रह्मांड ऊब-डूब होने लगा। राम ने मंदहास करके उन्हीं दिव्यास्त्रों का प्रयोग करके उन्हें रोक दिया।

उदारगुण राम ने यह सोचकर कि यदि वे स्वयं भी दिव्यास्त्रों का प्रयोग करें, तो उनका निवारण कोई नहीं कर सकेगा और जैसे पुष्प वडवाग्नि में फँस जायँ, वैसे ही यह सारा संसार झुलस जायगा।

राम ने राक्षसों पर दिव्यास्त्रों का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने असंख्य बाण प्रयुक्त करके ही राक्षसों के सिर काट डाले। वे सिर कटकर ऐसे गिरे, जैसे वज्र से आहत होकर पर्वत-शिखर गिरते हैं।

जब सहस्र 'समुद्र' राक्षस निहत होकर गिरे, तब भूमिदेवी का भार हल्का हो गया और भूमि समुद्र से बाहर होकर शत योजन दूर तक ब्रह्मांड में ऊपर की ओर उठ गई।

जब युद्ध में सहस्र हाथी, दस सहस्र रथ, एक करोड़ अश्व तथा सहस्र सैनिक विध्वस्त होते थे, तब एक पुष्ट कबंध नाच उठता था। जब ऐसे सहस्र-सहस्र कोटि कबंध नाचते थे, तब रामचन्द्र के धनुष की घंटी एक बार बज उठती थी। इस युद्ध में (राम के धनुष की) वह घंटी साढ़े सात मुहूर्त्त-पर्यंत बजती ही रही।

देवता अपना ध्येय पूर्ण होते देखकर चिंतामुक्त हुए। इन्द्र इसपर आनन्दित हुआ। राम ने विजयमाला पहनी। अपौरुषेय वेद स्थिर रूप में सुरक्षित हुए। (भूमि का भार वहन करनेवाला) आदिशेष बोझ कम होने से सिर उठाकर साँस भरता हुआ श्रममुक्त हुआ।

माता के यह कहने पर कि तुमने जो संपत्ति प्राप्त की है, उसे (भरत को) दे दो—राम ने अपना राज्य भाई को सौंप दिया और देवों के किये तप के फल से, बाँसों से भरे अरण्य में आकर अपने अस्त्र-कौशल से सब दुःखों को दूर किया। सभी मुखवाले उन राम को देखकर प्रशंसा करके उनको नमस्कार करने लगे।

जब रामचन्द्र ने अग्नि के जैसे लाल नेत्रोंवाले राक्षसों को मार गिराया, तब देवता राम की प्रशंसा करते हुए उनपर पुष्प बरसाने लगे; उस समय वे राम ऐसे लगते थे, जैसे शृगाल और भूतों से पूर्ण श्मशान के मध्य नीलकंठ (शिव) खड़े हों।

विशाल युद्धभूमि-रूपी ब्रह्मांड में वीर राक्षस-रूपी जीवराशि को मिटाने के लिए प्रलयकाल आ गया था; और रामचन्द्र वह भगवान थे, जो पुनः सृष्टि रचने के लिए सारी सृष्टि को अपने उदर में अदृश्य कर रहे थे।

देवताओं ने दुःखमुक्त होकर जो पुष्प एवं चन्दन की राशि बरसाई, उनसे रामचन्द्र के शरीर की पीडा दूर हो गई। राक्षसों का महान् विनाश करने के पश्चात् वह उदार पुरुष उस युद्धक्षेत्र को छोड़कर उस ओर चल पड़े जहाँ रावण के साथ लक्ष्मण युद्ध कर रहे थे।

अबतक हमने रामचन्द्र का वृत्तांत सुनाया। अब हम वानर-सेना के कृत्यों, उनपर आक्रमण करनेवाले रावण के कार्यों एवं लक्ष्मण के वीरतापूर्ण युद्ध-कौशल का वर्णन करेंगे।

जो वानर पहले भाग गये थे, वे सब सोचने लगे—बड़े-बड़े सेनापति जो युद्धक्षेत्र में गये थे, अभी तक लौटे नहीं हैं, अतः हमको भी अब युद्धक्षेत्र में जाना चाहिए। यदि हम जीवन की इच्छा रखकर भाग जायेंगे, तो भी हमें रोकनेवाला कोई नहीं है फिर भी, हमारे लिए यही उचित है कि हम अपने अपयश को मिटा दें। यदि युद्ध में मरेंगे, तो वीर-स्वर्ग प्राप्त करेंगे—ऐसा सोचकर सब वानर-वीर वापस आ गये। (१–२३५)

●

अध्याय ३१

शूल-सहन पटल

रावण एक रथ पर आरूढ होकर चला, जिसमें सहस्र पहिये थे तथा छोटे केशरों-वाले सहस्र घोड़े जुते हुए थे। वह रथ सूर्यमंडल के समान प्रकाशमान हो रहा था। उसके हाथ में देवों का विनाश करनेवाला धनुष एवं बाणों से पूर्ण एक तूणीर था।

उसने यह कहकर कि 'उन मनुष्यों को युद्ध में हराकर भगा दो' एक सहस्र समुद्र राक्षस-सेना को एक ओर भेज दिया और स्वयं भयभीत होनेवाली वानर-सेना पर आक्रमण करने के लिए उन (वानरों) के सम्मुख आ उपस्थित हुआ।

रोष-भरे सिंह-समान रावण के साथ शतकोटि रथ, अतिवेगवान् दो शत कोटि अश्व, मद-प्रवाह को बहानेवाले दस कोटि महान् गज और इन सबसे दुगुने पदाति-सैनिक चले।

बड़े-बड़े नगाड़े, शब्दायमान शंख, वज्र-समान शब्द करनेवाले काहल आदि वाद्यों की ध्वनियाँ ऊपर के सात लोकों एवं नीचे के सात लोकों में यों शब्दायमान हो उठीं, जैसे वे यह घोषित कर रही हों कि स्वर्गभूमि और पाताल से परे भी किसी लोक में कोई वीर (रावण के साथ) युद्ध करना चाहता हो, तो वह आये।

राक्षसों के माया-कृत्यों से पीडित होनेवाले देवों के प्रभूत पाप के जैसे स्थित, स्मरण करने मात्र से वीरों के हृदय को अग्नि के जैसे जला देनेवाले उस राक्षसराज को तथा असंख्य रूप होकर महान् कोलाहल करनेवाले राक्षससेना-समुद्र को वानर-सेना ने देखा।

जब वानरों ने उस (रावण) को और उसकी सेना को देखा, तो उन्होंने तुरन्त अपनी सेना का व्यूह बनाया। 'राम के लिए घोर युद्ध में अपने प्राण भी त्याग करेंगे', ऐसा निश्चय करके, यम को भी भयभीत करते हुए, अपने कंधों पर ताल ठोंकते हुए, वज्र के जैसे आघात करनेवाले बड़े-बड़े पर्वतों को उठाकर ऐसा गर्जन किया कि ब्रह्मांड भी फटने लगा।

राक्षस-सेना एवं अपने प्राण भी छोड़ने के लिए सन्नद्ध वानर-सेना एक दूसरे के साथ जूझ गई। क्षणकाल में वहाँ अग्नि भड़क उठी। रुधिर अग्नि में पिघले ताँबे के समान बह चला।

सिरों के कटने पर देहों से उमड़नेवाले रुधिर से गगन-मंडल उदयकालिक लालिमा से भर गया। रुधिर-बिन्दु गगन के मेघों पर लगकर सर्वत्र बरस पड़े, जिससे सारा संसार ही युद्धक्षेत्र-सा हो गया।

उस सुन्दर सेना-नामक समुद्र में खड़े होकर ज्योंही लक्ष्मण ने शर छोड़े, त्योंही मत्त गज के मुखपट्ट गिर गये। उनपर मँड़रानेवाले भ्रमर-भ्रमरियाँ उड़ गये। बड़े-बड़े शरों से विद्ध होकर वे शिथिल हो गये। उनके शरीरों से रुधिर झरने लगा। वे चक्कर खाकर गिर गये तथा कटी आँतों के साथ तैरने लगे।

मरनेवाले राक्षस-वीर आँख खोलकर देखते थे, फिर मरकर गिर जाते थे। उनकी पत्नियाँ उनके मुख पर मंदहास देखकर प्राचीन मधुर स्मृतियों को याद करती हुई अपनी नूपुर-ध्वनि के साथ राग मिलाकर रोदन करती थीं और असह्य पीडा से प्राण छोड़ देती थीं।

ऊपर के सात लोकों और नीचे के सात लोकों में प्रलयकाल के जैसे सर्वनाश फैलानेवाले युद्ध को देखकर रावण ने सोचा, ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी महान् सेना भी विनष्ट हो जायगी।

वानरों के फेंके पत्थरों एवं वृक्षों से राक्षसों के धनुष, खड्ग, परशु, त्रिशूल, आदि सब शस्त्र टक गये। उन (राक्षसों) के सिर पत्थरों से चूर-चूर हो गये। यों वानर-सेना से राक्षस-सेना निहत होती रही। उधर दूसरी ओर लक्ष्मण भी युद्ध कर रहे थे।

हनुमान् और लक्ष्मण सूत रखने की नाली और सूत्र के समान संचरण कर रहे थे और आँखों से अग्नि उगलनेवाले हाथियों, अश्व-जुते रथों एवं घोड़ों के शरीरों से रक्त-समुद्र निकलकर उन सबको डुबो रहा था।

जैसे यम ही धनुष धारण करके घूम रहा हो, वैसे ही लक्ष्मण संचरण कर रहे थे और सारी सेना को निहत कर रहे थे। बलवान् सिंहों तथा वज्र के सदृश हनुमान के नख और दाँत तीक्ष्ण होते जाते थे। उधर राक्षसों के शस्त्र मंद पड़ते जाते थे।

रावण कुछ क्षण तक यह विनाश-कार्य देखता रहा। उसने फिर सोचा—'यदि अब विलंब करेंगे, तो यम राक्षसों के प्राण पी जायगा। अतः, मैं स्वयं भयंकर युद्ध में शत्रुओं का विनाश करके विजय पाकर लौटूँगा।' और, वह रोष से भर गया।

रावण ने पवन के समान वेगवाले, वज्र के समान भयंकर, पर्वतों को भेदनेवाले, ब्रह्मांड को छेदकर जानेवाले, दिशाओं को नापनेवाले, अवर्णनीय यम के दूत जैसे तीक्ष्ण शरों का प्रयोग किया।

सिंह के समान रावण जब सामने आकर युद्ध करने लगा, तब यह कहना आवश्यक नहीं कि वानर उस युद्धक्षेत्र में श्वानों के जैसे खड़े थे। रावण अर्धनिशा में आई हुई कालिका के समान खड़ा था और वानर हवा से डरकर छिपनेवाले 'पूलै' नामक जड़ी के समान हो गये।

लक्ष्मण ने पैर उखाड़कर भागनेवाले वानरों को करुणा से पुकारकर कहा—'वानरो ! डरो नहीं ! डरो नहीं ! और, हनुमान् के कंधे-रूपी रथ पर आरूढ होकर, प्रज्वलित क्रोधाग्नि से युक्त रावण के सामने जाकर उससे युद्ध करने लगे।

वानर-सेना को सांत्वना देकर जब लक्ष्मण ने रावण पर बाण छोड़े, तब उसने शत कोटि से भी अधिक अग्निमुख बाणों को लक्ष्मण पर प्रयुक्त किया। किंतु, लक्ष्मण के चलाये बाणों से (रावण के) वे बाण प्रभंजन के आगे रूई के समान छितरा गये।

जब लक्ष्मण ने रावण के बाणों को छितरा दिये, तब रावण ने लक्ष्मण के विशाल कंधों एवं वक्ष पर अनेक शर गड़ा दिये ! दस बाण लक्ष्मण के शरीर को भेदकर पार हो गये, तो भी वे अविचल रहकर, अत्यन्त रुष्ट होकर, उस बलवान् राक्षस पर अति तीक्ष्ण बाण चलाकर उसे पीडित करते रहे।

अवारणीय वेग से शर-प्रयोग करनेवाले लक्ष्मण के शरों को भी रावण ने चूर-चूर कर दिया। उसने सोचा—'शत्रुओं का विनाश करनेवाले इस वीर को युद्ध में निहत करना असंभव है। पर, यदि अब इसको छोड़ दूँ, तो मेरी वीरता का प्रयोजन ही क्या रह जायगा ?'

'यदि मैं दिव्य अस्त्रों को प्रयोग करूँ, तो उनको यह दूर कर देगा और सबको मिटा भी देगा। यह यम के बल की भी परीक्षा करनेवाला है। यह अपने भाई (राम) के जैसे सब लोकों को तपायेगा, किसी से नहीं हारेगा।'

'मोहन नामक अस्त्र मेरे पास है, जिसे पूर्वकाल में भगवान् ने बनाया था। यह शिवजी को भी हराने की शक्ति रखता है। इसपर मैं उस बाण का प्रयोग करूँगा और कौओं से भरी युद्धभूमि में उसे शीघ्र गिरा दूँगा।'

यों सोचकर रावण ने बलवान् लक्ष्मण पर उस मोहनास्त्र का प्रयोग कर दिया। उसे देखकर विभीषण ने शीघ्र लक्ष्मण के निकट आकर प्रेम के साथ कहा—नारायणास्त्र का प्रयोग करके इस अस्त्र को शान्त कर दो। लक्ष्मण ने उस (नारायण) अस्त्र को छोड़ा।

विभीषण के कहने से लक्ष्मण ने जो नारायणास्त्र प्रयुक्त किया, उससे वह मोहनास्त्र शान्त हो गया। तब रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने अपने मन में सोचा कि समीप में स्थित विभीषण के बताये उपाय के कारण ही ऐसा हुआ है, अतएव वह अत्यन्त कुपित हुआ।

मय ने अपनी पुत्री के साथ ही (रावण को) एक शूल दिया था। उस शूल को ब्रह्मा ने प्रज्वलित अग्नि से पूर्ण होमकुंड से प्रकट किया था। वह शूल चक्र एवं वज्र के समान था और प्रलयकालिक अग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण था। रावण ने उस शूल से साकार विजय के जैसे खड़े हुए अपने भाई (विभीषण) को मार डालने का निश्चय किया।

प्रयोग करने पर वह शस्त्र एक ही व्यक्ति के प्राण लेकर लौट सकता था। स्वयं चतुर्मुख भी क्यों न हो, उसके लगने पर, प्राणहीन होकर गिर सकता था। रावण ने ऐसे शूल की प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करके दूर पर खड़े विभीषण पर बड़े वेग से फेंका।

उस शस्त्र की शक्ति को जाननेवाले विभीषण ने लक्ष्मण से कहा—'हे आर्य !

इससे बचने का उपाय नहीं है। अब यह मेरे प्राण हरेगा।' तब उदारगुण वीर (लक्ष्मण) ने कहा—'तुम मत डरो। मैं इसके निवारण का प्रयत्न करूँगा।'

लक्ष्मण ने जो-जो शर उस शूल पर छोड़े, वे सब उसी प्रकार व्यर्थ हो गये, जिस प्रकार प्रभूत तपस्या के बल से संपन्न किसी व्यक्ति पर नीच कृत्य करनेवाले के शाप-वचन व्यर्थ होते हैं। तब देवता भी यह सोचकर कि 'अब विभीषण नहीं बचेगा, यह मरा।' अत्यन्त चिंताकुल हुए।

तब लक्ष्मण ने यह सोचा कि 'मैं भले ही मर जाऊँ, फिर भी मेरा यश तो स्थिर रहेगा ही। सज्जन लोग मेरी प्रशंसा करेंगे। हमारी शरण में आये व्यक्ति को मरते हुए कैसे देखते रहें? इससे बड़ा अपयश होगा। अतः, वैसा अपयश होने के पहले ही मैं अपने ही वक्ष पर इस शूल को सह लूँगा', आगे बढ़कर खड़े हो गये।

तब लक्ष्मण के आगे विभीषण जाकर खड़ा हुआ। इतने में सबके आगे हनुमान् जाकर खड़ा हो गया। अहो! उस करुणा-पूर्ण स्थिति का क्या वर्णन भी हो सकता है?

किन्तु, लक्ष्मण अपने आगे खड़े हुए सबको अपने पीछे करके वायुवेग से आगे बढ़ गये। 'ठहरो! इसको मैं लूँगा'—कहते हुए उस शूल को अपने वक्ष पर यों सहन कर लिया कि वह शूल उनके वक्ष को भेदता हुआ पीछे की ओर से निकल गया। उसे देखकर देवता लोग अपनी आँखों को पीट-पीटकर रोने लगे।

विभीषण ने यह कहकर कि 'तुम भागकर कहाँ जाओगे?' सिंह के समान रुष्ट होकर रावण के रथ में जुते, फाँदनेवाले अश्वों एवं सारथि को अपनी गदा से मार दिया, जिससे वानरों के सिर ऊँचे हो गये।

रावण निकट में गगन की ओर उड़ गया और रोष करके दस तीक्ष्ण बाण विभीषण की देह में एवं सहस्र बाण हनुमान् की देह में गड़ा दिये और यह कहता हुआ कि यह युद्ध समाप्त हो गया, लंका की ओर चल पड़ा।

तब विभीषण ने कहा—'मुझ, शरणागत व्यक्ति की रक्षा करने के लिए श्रीमान् (लक्ष्मण) घायल होकर गिरे हैं। अब तुम अपने छली मन के साथ कहाँ भागे जा रहे हो? तुम्हारे साथ ही मैं भी अपने प्राण छोड़ूँगा'—यह कहकर वह रावण से युद्ध करने को आगे बढ़ा।

तब रावण ने यह सोचा कि 'अब तो मुझे विजय प्राप्त हो गई। अब विभीषण नामक गाय को मारने से क्या प्रयोजन?' और, वहाँ खड़े न रहकर उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखकर, सारा क्रोध छोड़कर, समीप में स्थित, प्राचीरों से आवृत लंका के भीतर प्रविष्ट हो गया।

रावण चला गया। विभीषण अपने प्रेम को न छिपाकर मुक्त कंठ से रोने लगा और साकार दया का रूप बनकर लक्ष्मण के चरणों पर गिरकर अश्रु-प्रवाह करने लगा। वानर-सेना एवं सेनापति दुःख में डूब गये।

मनोहर पुष्पमाला से भूषित, पर्वत-समान कंधोंवाले लक्ष्मण के मरने पर मेरा जीवन व्यर्थ हो गया। मैं भी इसी क्षण अपने प्राण त्याग करूँगा। अब मेरे प्रभु (राम)

कैसे जीवित रहेंगे ? यों विभीषण अत्यन्त व्याकुलचित्त हुआ। इतने में 'ठहरो ! ठहरो !' कहता हुआ जांबवान् वहाँ आ गया।

जांबवान् ने उसका दुःख दूर करते हुए कहा—'संकल्प-मात्र से सब लोकों में संचरण करनेवाला और संजीवनी को लाकर देनेवाला हनुमान् जब हमारे साथ है, तो हमें प्राणों की क्या चिंता ? वीर लक्ष्मण सप्राण ही हैं। किंचित् भी दुःखी मत होओ।'

फिर, जांबवान् ने वायु के प्रिय पुत्र हनुमान् के वक्ष पर के सब शरों को निकाल-कर कहा—रामचन्द्र अपने भाई को इस दशा में कैसे देख सकेंगे ? यह जानकर भी तुम चुप क्यों बैठे हो ? शीघ्र जाकर औषध क्यों नहीं लाते ?—तब तुरन्त हनुमान् भूमि के विशाल प्रदेशों को पारकर चला गया।

पहले हनुमान् संसार के विशाल प्रदेश को पारकर उत्तर दिशा में गया था और उस अमोघ औषध को पर्वत के साथ ही उठा लाया था। पर, इस बार उस औषध को पहचानकर पुनः उसे ले आया।

हनुमान् औषध लाया। उसके लगते ही लक्ष्मण के प्राण लौट आये। जो औषध मृतकों के प्राण भी लौटा सकता है, उसके लिए घायलों का दुःख दूर करना बहुत छोटा ही कार्य है न ? चुटकी बजाने के पूर्व ही लक्ष्मण स्वस्थ होकर उठ बैठे। देवता हर्ष-नाद कर उठे।

लक्ष्मण स्वस्थ होकर उठे और उठकर दोनों हाथों से हनुमान् का आलिंगन करके पूछा—'हे मेरे तात ! विभीषण जीवित है न ?' इतने में उन्होंने विभीषण को हाथ जोड़े हुए पास खड़े देखा और भय तथा शंका से मुक्त हुए। वे अपनी आँखों से आनन्दाश्रु बहाते हुए बोल उठे 'अब मेरी भाभी बंधन से मुक्त हुईं और रावण मरा।'

'विद्वान् लोग धर्म नामक जिस अनुपम तत्त्व के विषय में कहते हैं, उसे आज हनुमान् ने अपने आचरण से निरूपित कर दिया। इससे सूचित होता है कि रामचन्द्र के लिए असंभव कार्य कुछ नहीं है। इहलोक और परलोक के बारे में विचार करने पर यही प्रमाणित होता है कि धर्म जीतता है और पाप (अधर्म) पराजित होता है।'—यों कहते हुए सब लोग रामचन्द्र के निकट गये।

'यहाँ एक नहीं, असंख्य शवराशियाँ और रक्तसमुद्र हैं'—यह कहते हुए और उन सबको पार करते हुए वे लोग रामचन्द्र के चरणों पर जाकर नतमस्तक हुए। तब रामचन्द्र ने पूछा—'कहो, क्या घटित हुआ।'

जांबवान् ने सारी घटना कह सुनाई। महावीर (राम) ने हनुमान् को बार-बार गले से लगाया और बोले—हे महिमामय ! मैंने तुमको प्राप्त करके सब कुछ पा लिया है। तुम निर्बाध चिरायु से युक्त होओ।

जो (लक्ष्मण) अपनी आँखों से मेघ के जैसे अश्रुवर्षा कर रहे थे, जो आनन्द और दुःख दोनों से भरे खड़े थे और जो प्राण के बाहर खड़े रहने पर पड़े हुए शरीर के समान थे, अब अपने भाई का दर्शन करके यों आनंदित हुए, जैसे वे अपने को दुःख में डालकर अपने

स्वर्गस्थ पिता को ही लौटकर आये हुए-से देख रहे हों। रामचन्द्र को प्रणाम करके वे उनके समीप खड़े हो गये।

तब अपने अनुज का आलिंगन करके राम ने कहा—हे तात! शरणागत की रक्षा के लिए अपने प्राण देने का संकल्प करके तुम सूर्यकुल के योग्य प्रताप से संपन्न हुए। हे पुष्पमालाधारिन्! तुमने यदि वह साहस-पूर्ण कार्य किया, तो वही उस समय के योग्य रहा होगा।

वह शिबि भी तुम्हारी समता नहीं कर सकता, जिसने एक कपोत की रक्षा के लिए अपने शरीर को काटकर दिया था, तो अन्य उपमानों के बारे में क्या कहा जाय? दयालु लोग, अपने आश्रित लोगों के दुःख को देखकर बछड़ेवाली गाय के जैसे हो जाते हैं।—यों राम ने कहा।

फिर, नील रंगवाले सूर्य के जैसे राम ने कवच आदि युद्धसज्जा का भार उतारकर शर बरसानेवाले अपने धनुष को हनुमान् के हाथ में दिया और मेघों से संयुत एक पर्वत-शिखर पर विश्राम करने लगे। (१–५०)

●

अध्याय ३२

युद्धक्षेत्र-संदर्शन पटल

उस समय, कपिराज (सुग्रीव) अपार वानर-सेना के साथ रामचन्द्र के सुन्दर चरणों को नमस्कार करके खड़ा हुआ। वे सब राम के द्वारा निहत क्रूर राक्षसों के पराक्रम को सोचकर काँप उठे, स्तब्ध हुए और कुछ समझ सकने के कारण लज्जित हो खड़े रहे।

खंभों के जैसी भुजाओंवाले सूर्यपुत्र (सुग्रीव) ने राम से पूछा—'युद्ध में बढ़कर आई हुई (राक्षसों की) सेना त्रिलोक को भी भरनेवाली थी। हे प्रभु! आपने उस अपार सेना को किस प्रकार विध्वस्त किया?' राम ने उत्तर दिया—'तुम विभीषण के साथ युद्धरंग में जाकर देखो।'

तब सब सेनापति राम को नमस्कार करके कुतूहल से प्रेरित होकर, रावण के अनुज विभीषण को साथ लेकर शीघ्र गये। उस युद्धभूमि को देखा और भय से व्याकुल हो गये। वहाँ गीध, बाज, भूत, काक आदि के झुण्ड सर्वत्र विचरण कर रहे थे।

वे वानर चिंतित हुए। काँप उठे। मन में भयाक्रांत हुए। उनके मुँह सूख गये। चित्त में संतप्त हुए। फिर धीरे-धीरे स्वस्थ होकर हर्ष से भर गये। तब उनकी जो दशा हुई, उसका वर्णन कौन कर सकता है?

वानरों ने कहा—'हे विभीषण, तरंगों से पूर्ण सप्त समुद्र एकाकार हो गये हों—ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले राक्षसों से भरे प्रदेशों को देख-देखकर हम रोते ही खड़े रहेंगे। सहस्र वर्ष-पर्यंत देखने पर भी पूरा-पूरा नहीं देख पायेंगे। अतः, तुम्हीं सब बताओ। तब विभीषण ने कहा—

हे मेरे बन्धुओ ! देखो काकों के वितान से युक्त, रक्तवर्ण युद्धक्षेत्र में यम के बंधु के समान राम के शस्त्रों से मरे (राक्षसों के) शरीर और गजों के शव सभी एकत्र होकर पर्वतों के समान सर्वत्र पड़े हैं।

पूर्वकाल में विजयी होनेवाले, रक्त नयनवाले, अतिरुष्ट, अतिवेग से एक के आगे एक होकर चलनेवाले राक्षस राम के बाणों से निहत होकर इन (गजों के) ढेरों पर ऐसे पड़े हैं, जैसे सर्पों के आवास बने पर्वतों पर सिंह सो रहे हों।

हे बन्धुओ ! देखो ! करुणा में तैरती आँखोंवाले राम के द्वारा प्रयुक्त तीक्ष्ण बाण लगने से मद्य के नशे में चूर रहनेवाले राक्षस जो मरे हैं, उनके उज्ज्वल मुख अपार समुद्र के पुलिनों पर विकसित कमल-वन का दृश्य उपस्थित कर रहे हैं।

हे बंधुजन ! देखो ! अति महान् गगनस्पर्शी श्वेत ध्वजाओं से युक्त तथा अश्व-जुते रथ, तीक्ष्ण बाणों की चोट खाकर वज्र से आहत पर्वत-से लगते हैं। अश्वों के मरने पर रक्त की धारा में वे ऐसे लगते हैं, जैसे तरंगों से पूर्ण समुद्र में दृढ पालों से युक्त नौकाएँ हों।

त्रिविध मदजल को बहानेवाले बड़े-बड़े हाथी रक्त-प्रवाह में जीवित ही डूब गये हैं। वे ऐसे लगते हैं, जैसे मत्स्यराज अपने किसी अपरिचित तरंगायमान समुद्र में गोते लगा रहा हो।

हे बंधुजन! कबंध मेघ को छूते हुए उठ खड़े होते हैं और भूतों के ताल और लय के अनुसार पैंतरे बदलकर नाच उठते हैं, मानों भरतनाट्य का कोई आचार्य नृत्यशाला में नृत्य करने का ढंग (विद्यार्थियों को) दिखा रहा हो।

हे बन्धुओ ! मुखों में फरसे-जैसे दाँतों से युक्त विजयी राक्षस-वीरों को देखो। उनके शरीरों से नसें निकलकर, बंधन में डालनेवाले यंत्र के समान होकर, समीप में आनेवाले भूतों के पकड़ लेती हैं और वे चालाक भूत उस बंधन से फिसलकर निकल आते हैं।

स्वर्णमय मुखपट्टों तथा मुख पर बिंदियों से शोभित बड़े-बड़े हाथी मरकर ऐसे गिरे हैं कि किसी का मुख इस ओर है, तो किसी का मुख उस ओर। यों साथ-साथ पड़े हुए वे हाथी ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं, जैसे उनके एक ही शरीर में दोनों ओर मुख हों।

भयंकर युद्ध में मरे हुए राक्षसों के फटे हुए मुँहों से, जो कठोर क्रोध और हास से युक्त हैं और विशाल समुद्र के समान हैं, धूम और अग्नि निकल रही हैं, जिससे वे होमकुंडों के जैसे दिखाई पड़ते हैं।

जो हाथी भीषण युद्ध में अपना कौशल दिखाते हुए नाच उठे थे, उन उज्ज्वल मुखाभूषधारी हाथियों की कनपटी से गिरे हुए धवल चामरों को देखो। जल के मध्य स्थित कमल-समान वीरों के मुखों पर पड़े हुए वे चामर ऐसे लगते हैं, जैसे कमलों पर हंस सो रहे हों।

कहीं-कहीं पंक्तियों में न रहकर पृथक्-पृथक् होकर आक्रमण करनेवाले हाथी, वीरों से रहित रक्त-प्रवाह में मरे पड़े हैं। उनके दाँत ऐसे लगते हैं, जैसे गगन में मेघों के मध्य लालिमा में प्रकाशमान चंद्रकला हो।

ध्वजा, धनुष, बाण एवं भाले—इनसे पूर्ण रथों पर, नगाड़े के जैसे पैरवाले

पर्वताकार हाथियों पर, चर्म के बने हौदों पर (सवार होकर युद्ध में आनेवाले राक्षस) राम-बाण से निहत होकर पड़े हैं। उनकी आँखों से जो अग्नि निकलती है, उसमें पके हुए मांस को खाकर भूत नाच रहे हैं।

सगर-पुत्रों के द्वारा खोदे गये समुद्र एवं युद्धभूमि से बहे हुए रक्त-प्रवाह दोनों अस्त-व्यस्त होकर चल रहे हैं। पर्वताकार हाथी बहकर आते हैं, जिन्हें देखकर कुछ 'शुरा'[1] मत्स्य विस्मय एवं भय से भर जाते हैं और लज्जित-से होकर अपने स्थान की ओर लौट जाते हैं।

राम-बाण से निहत होकर कुछ गगनगामी राक्षस धरती पर चलनेवाले कुछ राक्षस-वीरों पर गिर पड़े हैं। शवों के नीचे वे राक्षस दब गये हैं और बाहर नहीं निकल सकने के कारण आँखों से आग उगलते हुए रो रहे हैं।

दृढ़ धुरीवाले रथों पर, हाथियों पर, अश्वों पर तथा गगन पर जानेवाले राक्षसों के रक्त-प्रवाह से टकराने से मध्याह्नकाल का सूर्य भी उदयकालिक सूर्य के जैसा दृश्य उपस्थित कर रहा है।

पवन-वेग से चलनेवाले वीर जब कटकर गिरते थे, तब उनके रक्त-प्रवाह नदी की भ्रांति उत्पन्न करते हुए गगन में फैल जाते थे। सूर्य से दूरस्थ चंद्रमा उस रक्त से लाल होकर एक दूसरा सूर्य बन जाता था।

रक्त के प्रवाह से आकाश भींग गया। धरती भींग गई। मकर जहाँ निवास करते हैं, वह समुद्र भी भर गया। यों शवों से निकलनेवाले रक्त के छींटे के बरसने से नक्षत्र-समान (श्वेतवर्णवाले) और सुरभि-पूर्ण पुष्प एवं मधुपायी भ्रमर अपना रंग बदलकर लाल हो गये हैं। वन-प्रदेश (पत्तों पर रक्तबिंदु गिरने से) मानों नवीन पल्लवों से भर गये हैं।

रक्त-प्रवाह की तरंगें पर्वताकार हाथियों के युगल दंतों, उज्ज्वल मोतियों और रत्नों को बहाकर एक ओर राशि लगा देती थीं। शाखाओंवाले वृक्षों को उखाड़कर बहा ले जाती थीं, जिससे उनपर के पक्षि शोर मचाने लगते थे। श्वेतच्छत्र, पताकाएँ एवं चामर फेन के समान दिखाई पड़ते थे। वे प्रवाह शवराशियों को बहाकर समुद्र में गिरा देते थे।

(इस युद्धभूमि में) सूँड़वाले पर्वताकार हाथी-रूपी बड़े किनारे से युक्त, राक्षसों की भुजा-रूपी पुलिनों से युक्त, ध्वजाओं से युक्त, अश्व-रूपी तरंगों से युक्त, लड़नेवाले हाथियों की सूँड़-रूपी मगरों से युक्त, उज्ज्वल बदन-रूपी कमल-वन से युक्त, गिरनेवाली आँत-रूपी सेवार से युक्त, मज्जा-रूपी कीचड़ से युक्त, रक्तवर्ण रुधिर-तडाग असंख्य दिखाई पड़ते हैं।

जहाँ दीर्घ खड्ग-रूपी हल से जोतकर मज्जा-रूपी कीचड़ में रक्त-रूपी जल को बहाया गया है, हाथी-रूपी भैंसे जहाँ आराम कर रही हैं। जहाँ राक्षस-वीर रूपी कृषक पंक्तियों में रहकर खेत को समतल बना रहे हैं। जहाँ कमल की सुगंध से युक्त सिर-रूपी अंकुरों की गाँठें हैं, ऐसा वह युद्धक्षेत्र असंख्य नारियों से पूर्ण बड़े खेतोंवाले सुरभिमय मरुद प्रदेश (खेतों से भरा भूप्रदेश) के समान लग रहा है।

१. 'शुरा' मत्स्य हाथियों के आकार के बड़े-बड़े होते हैं। —अनु०

रामचन्द्र के बाण, आलान में बाँधे जानेवाले हाथियों के जैसे वीरों को गिराते हुए, खूब खींची हुई डोरी से वज्रघोष करते हुए निकलते और भूमि को चीरकर पाताल-लोक में जा पहुँचे थे। (उन वीरों के) शरीर से निकलकर बहनेवाले तथा हाथियों को भी बहाकर ले जानेवाले रक्त-प्रवाह में बड़ी-बड़ी भौंरियाँ दिखाई पड़ रही हैं।

राम के बाण हाथ, पैर, काले कंठ, दीर्घ भुजा, वक्ष—सबको काटते हुए दिगंतों में जाकर, धरती को चीरकर, पाताल-लोक में जाकर ठहरते थे। यही कहा जा सकता है। यह कहना उचित नहीं है कि वे शर मत्त गजों, अश्वों तथा राक्षसों के शरीरों में ठहर गये।

कुमुद की गंधवाले मद से भरे, यम के समान तथा वराहों के जैसे कृत्यवाले, बड़े-बड़े हाथी अपने महावतों के साथ मरकर पड़े हैं। ऐसे दस कोटि हाथी, जो क्षीर-समुद्र से अमृत के साथ उत्पन्न हुए थे, मरकर पड़े हैं।

मेघों की वर्षा तथा ऊँची तरंगोंवाले समुद्र का जल भले ही सूख जायँ, किंतु उन हाथियों का मद-प्रवाह कभी नहीं सूखता था। ऐसे बारह करोड़ हाथी, जो ब्रह्मा के यज्ञकुंड से उत्पन्न हुए थे, मरे पड़े हैं।

चौदह कोटि हाथी ऐसे थे, जो प्राण जाने पर भी, रक्त जाने पर भी और मद का नशा जाने पर भी अपने मद से मुक्त नहीं होते थे। पूर्व दिशा में स्थित इन्द्र के वाहन ऐरावत की परंपरा में उत्पन्न हुए थे (जो अब मरे पड़े हैं)।

ऐसे हाथी, जो ब्रह्मा के द्वारा नियुक्त नहीं किये जाने के कारण ही दिशाओं की रक्षा नहीं करते थे, जो कभी पलक नहीं मारते थे, जो मुख से मदजल बहाते थे और जो उत्तर दिशा के (सार्वभौम नामक दिग्गज) की परंपरा में उत्पन्न थे (अब मरे पड़े हैं)।

देवेन्द्र के द्वारा कर के रूप में दिये गये हाथी एक सहस्र कोटि थे और दानव-राजाओं के द्वारा दिये गये हाथी भी असंख्य थे (जो अब मरे पड़े हैं)।

क्षीरसमुद्र से अमृत के साथ जो शब्द करते हुए उठे थे, ऐसे अश्व अनेक सहस्र थे (जो अब मरे पड़े हैं)।

बड़ी निधि के अधिपति कुबेर के खोये हुए अपूर्व अश्व सहस्र थे। महान् रोष-वाले विद्याधरों के राजा से युद्ध कर छीने गये अश्व एक पद्म संख्या में थे (जो अब मरे पड़े हैं)।

विभीषण ने जब यह कहकर दिखाया, तब वानरों ने कहा—'यदि मूलबल से पटी हुई युद्धभूमि को दीर्घ काल देखते रहेंगे, तो भी इसे पूरा नहीं देख सकेंगे। हम भले ही हिमाचल को पूरा-पूरा देख लें, पर इस युद्धभूमि को नहीं देख सकते। अतः, हम चक्रधारी (राम) के निकट चलें।' यह विचार कर वे राम के पास गये।

सबने राम को नमस्कार किया। उनके अनुपम युद्ध-कौशल को सोच-सोचकर सब लोग विस्मयाविष्ट हो जाते थे। निःश्वास भरते थे। फिर, वे आगे का कर्त्तव्य सोचने लगे। (१—३६)

अध्याय ३३

विनोद-उत्सव पटल

रावण वानरों को निश्शक्त बनाकर और लक्ष्मण को मूर्च्छित बनाकर अमिश्रित हर्ष के साथ विराजमान हुआ, मानों देवता विपन्न होकर मर गये हों।

(रावण ने) अपने प्रति भक्ति के साथ, गंभीर युद्धसज्जा करके युद्ध में आकर पीडित हुए वीरों को एक अति महान् भोज देने का विचार किया।

रावण ने आज्ञा दी कि स्वर्गवासी अतिशीघ्र आ जायँ। दानवों-सहित वे देवता आ गये। उनको देखकर रावण ने कहा—स्वर्ग के जैसे भोग का यहाँ प्रबन्ध करो। यदि उसमें किंचित् भी कमी हो जायगी, तो मैं तुम लोगों को मिटा दूँगा।

अत्यधिक मद्य, मांस तथा अन्य भोजन-सामग्री, वस्त्र, चन्दन, पुष्प, स्नान-योग्य जल, पर्यंक आदि वस्तुएँ प्रासाद में सर्वत्र एकत्र कर दी गईं।

कस्तूरी से सुरभित तैल लगाने, सुरभित जल में स्नान कराने, भोजन खिलाने तथा शय्या सजाने के लिए देवस्त्रियाँ आ पहुँचीं।

कुछ देव-रमणियाँ नाचतीं। कुछ गातीं। कुछ शय्या का सुख प्रदान करतीं। जैसे कोई पूँजी लगाता है और उससे अत्यन्त लाभ उत्पन्न होने पर उसका भोग करता है, वैसे ही वे राक्षस देवस्त्रियों से भोग प्राप्त कर आनंदित हुए।

राजकुल से लेकर दासों तक के सब पर्वताकार राक्षस अतिशीघ्र इन्द्र-भोग प्राप्त होने से अपार आनन्द से मत्त हो गये।

जब यह हो रहा था, उसी समय राक्षसराज के निकट कुछ दूत आ पहुँचे और नमस्कार करके उसके कान में मूलबल के विनष्ट होने की बात कह सुनाई।

वे दूत काँपते शरीर, सूखती जीभ, रुँधती साँस, व्यथित मन एवं धँसनेवाली आँखों के साथ मुँह से बलात् शब्द निकालते हुए कहने लगे—

हे युद्धभूमि में देवताओं से प्रदत्त विजय को प्राप्त करनेवाले राजन्! तुम्हारी भेजी हुई अपार सेना सात घड़ियों के भीतर ही राम के हाथ के धनुष से विध्वस्त हो गई। अब यहाँ कौन भोज खायगा?

यदि तुम अपने पराक्रम से देवताओं के द्वारा राक्षस-वीरों को विविध भोग दिलाने का विचार कर रहे हो, तो उसके लिए यह समय नहीं है। जो नगर में थे, वे ही जीवित हैं। उनके अतिरिक्त तुम्हारे कुल के अन्य व्यक्ति अब इस समुद्र से आवृत पृथ्वी पर नहीं हैं। उनको तिलांजलि देना ही अब कर्त्तव्य है। —यों दूतों ने कहा।

अपूर्व हर्ष का अनुभव करके रहनेवाला रावण अचानक दूतों का यह वचन सुनकर क्रोध, भय और दुःख से भर गया। उसकी लाल लाख-जैसी आँखों से आग निकल पड़ी। वह निःश्वास भरता हुआ स्तब्ध चित्त के साथ चित्रस्थ मूर्त्ति के समान हो गया।

वह फिर बोला—(मूलबल के) सैनिक मुझसे भी अधिक बलवान् हैं। वे नहीं मरे होंगे।

उनकी संख्या मन की कल्पना से भी परे हैं। समुद्रस्थ सिकता-कण के जैसे वे असंख्य हैं। तुम जो कहते हो कि एक भी नहीं बचा है और वे निःशेष मिट गये हैं, अवश्य झूठ होगा।

तब उसके समीपस्थ माल्यवान् ने कहा—ऐसा संशय करना निराधार है। ये दूत कभी झूठ नहीं बोलेंगे। प्रलयकाल में रुद्र एकाकी ही समस्त जगत् की वस्तुओं को संकल्प-मात्र से अग्नि उत्पन्न करके जला देता है न ?

हमने सुना है न कि एक परमात्मा ही मन के संकल्प-मात्र से सारी सृष्टि को बनाता है, उसका पालन करता है और मिटा देता है। विभीषण का यह वचन कि रामचन्द्र आदिशेष पर शयन करनेवाले भगवान् (नारायण) ही हैं, क्या असत्य हो सकता है ?

जगत् के प्राणी अपने योग्य आहार पाने पर ही उसे खाते हैं। किन्तु, अग्नि ऐसी होती है, जो किसी भी पदार्थ को भस्म कर देती है। शिलाओं, वृक्षों, तृणों तथा विविध प्राणियों को मिटानेवाले पवन को भी हमने देखा है। अतः, शक्ति की कोई सीमा नहीं होती। 356

ऐसा भी समय था, जब तुम्हें इन्द्र का भोग प्राप्त था। यह भी सत्य है कि अब वह तुमसे हट रहा है। हे प्रभु ! अब और कुछ कर्त्तव्य नहीं है। तुम्हारे हेतु तुम्हारे सब बन्धुओं को विपदा उत्पन्न हुई है। अतः, तुम शिष्ट लोगों का मार्ग अपनाओ।—यह सुनकर रावण रुष्ट हुआ।

रावण ने कहा—मैंने लक्ष्मण को शूल से आहत करके उसे यम को सौंप दिया है। वानर-वीर सब दुःखमग्न हैं। उस दृश्य को देखकर राम जीवन से निराश होकर मर जायगा। यदि मूलबल के वध से दुःख उत्पन्न हुआ, तो हो। फिर भी, विजय मुझी को प्राप्त होगी।

तब उस युद्धभूमि से आये हुए कुछ दूतों ने कहा—हे राजन् ! मारुति के द्वारा लाये गये औषध से लक्ष्मण जीवित होकर उठ बैठा है। उसके प्राण लौटने में कुछ भी विलंब नहीं हुआ। यह सत्य है। सब सेनापति उस कमलनयन (लक्ष्मण) का आलिंगन कर रहे हैं, जाकर देखो।

चित्त में संशयग्रस्त होने से वह (रावण) स्वर्ण से अलंकृत गोपुर के ऊपर चढ़ गया और उमड़कर आनेवाली अपार सेना को युद्धक्षेत्र में निहत होकर पड़े देखा और उसका पहले से ही दुःखी हृदय और भी दुःखी हुआ।

युद्ध में सिर कटकर मरे हुए वीरों की पत्नियाँ सिर पीटकर रो रही थीं। कुमुद को हरानेवाली उनकी करवाल-तुल्य आँखें लाल हो गई थीं। वह रोदन-ध्वनि समुद्र-गर्जन के समान सर्वत्र फैल रही थी। रावण ने वह ध्वनि अपने कानों से सुनी।

रावण ने अपनी आँखों से अश्रु बहाते हुए देखा कि रक्त की नदियाँ बड़े-बड़े पहाड़ों को ढाहती हुई संख्यातीत हाथियों के शवों को बहाती हुई, पृथ्वी के नीचे के जल तक मिट्टी को खोदती हुई बह रही हैं और भूतगण उसमें स्नान कर रहा है।

छोटे पैरवाले सियार संगीत गा रहे थे, अनेक भूत ताल बजा रहे थे और क्रूर राक्षसों के कबंध यों नृत्य कर रहे थे, मानों वे राम के बाणों के लगने से नवीन जीवन प्राप्त करके आनन्दित हो रहे हों।

रावण ने देखा कि भूत गगनचुंबी ऊँचे कंधों से युक्त राक्षसों के घावों में से नवीन मज्जा को निकाल-निकालकर खा रहे हैं। तब उन राक्षसों की पत्नियाँ उन भूतों का धरती पर एवं आकाश में पीछा करती हुई जाती हैं और उनको पकड़कर अपने तीक्ष्ण नखों से उनकी आँखों को उखाड़ लेती हैं।

बुद्बुदों से भरे अश्रु, अग्नि एवं रुधिर को उगलनेवाली आँखों से रावण ने देखा कि जो राम-बाण तमिल-भाषा की शक्ति के समान ही अनुपम थे तथा विविध रीतियों से युक्त थे, उनसे निहत राक्षसों के रुधिर का प्रवाह नदी की तरह उमड़ रहा है, मानों समुद्र रक्त पीकर उसे उगल रहा हो।

गगन भी फट जाय—यों तुमुल हर्षध्वनि करनेवाले वानरों को देखा। आँखें फट जायँ—यों घूरकर देखनेवाले देवों को देखा। यह सब देखकर रावण का हृदय फट गया और वह उस गोपुर से नीचे उतरा।

हास से युक्त मुँहवाला, जीभ को मुँह के कोनों पर फेरनेवाला, नाक से धूम निकालता हुआ, आँखों से चिनगारियाँ उगलता हुआ, दोष की भावना से भरे चित्तवाला, रोषाग्नि के उमड़ने से ज्वालामय शब्द बोलनेवाला रावण शासन के कार्यों के बारे में विचार करने के स्थान (मंत्रणालय) में जा पहुँचा। (१–२७)

●

अध्याय ३४

रावण-रथारोहण पटल

पर्वताकार शरीरवाले, धूम्रवर्ण भौंहोंवाले, आँखों से अग्नि उगलनेवाले महोदर ने परामर्श दिया कि जो थोड़ी सेना लंका में अभी जीवित है, उस सारी सेना को युद्ध में ले चलें। उसे देखकर रावण ने आज्ञा दी कि सुन्दर नगाड़े बजाकर (इसकी) घोषणा कर दो।

ज्योंही वह घोषणा सुनाई गई, त्योंही चौदह शत कोटि क्रूर राक्षसों की सेना एकत्र हो आई। ध्वजाओं से अलंकृत रथ, हाथी, घोड़े और पदाति-सैनिक ऐसे आकर इकट्ठे हुए कि लंकानगर सूखनेवाले समुद्र के जैसा हो गया।

रावण ने परम ऐश्वर्यवान्, अनिमेष नेत्रत्रय से युक्त भगवान् (शिव) की इह-लोक और परलोक के योग्य पूजा की। उत्तम वेदों में प्रतिपादित सब दान दिये। जिस व्यक्ति ने जो कुछ चाहा, उसे वह सब दिया और अशिथिल युद्ध करने को सन्नद्ध हो गया।

झरनों से भरे काले पर्वत पर सहस्र सूर्य एक साथ, अन्य रूप (रावण का रूप) लेकर उदित हुए हों—(ऐसा भ्रम उत्पन्न करते हुए) रावण ने उस कवच को धारण किया, जो ब्रह्मदेव के यज्ञ में उत्पन्न हुआ था और जिसे इन्द्रजित् ने युद्ध में इन्द्र को पराजित करके प्राप्त किया था।

मंदर-पर्वत पर वासुकि सर्प लिपटा पड़ा हो—यों उसकी कटि पर प्रयत्नपूर्वक स्वर्णमय कमरबन्द लपेटा गया और उसके बाईं ओर करवाल खोंसा गया। मेरु की

परिक्रमा करनेवाले सब ग्रहों को एक साथ गँथ दिया गया हो—यों रत्नों से निर्मित, मगर के मुख के आकार में बनाये गये कटिसूत्र उसकी कमर में बाँधा गया।

जैसे स्वयं वेदव्यास ही बन गया हो—यों महान् गरुड के पंखों के जैसे फैले हुए कौशिक वस्त्र (धवल पट्ट) धारण कर लिया। उस वस्त्र पर कटि में चंद्रकला-समान दंष्ट्राओं से युक्त सर्प को बाँध लिया।

मेघों के मध्य स्थित सब वज्रों को लाकर, उनको भीतर रखकर और रत्न जड़कर बनाये गये हों—इस प्रकार लगनेवाले नूपुरों को, जो ऐसे शब्द करते थे, जैसे कंदराओं में पड़े बलवान् सिंहों का झुंड गरज रहा हो, अपने पैरों में पहन लिया।

वज्र के गरजने पर जिस प्रकार सर्प काँप उठते हैं, वैसे ही गगन, पृथ्वी एवं अन्य सब लोकों के निवासियों को भय-कंपित करते हुए बजनेवाले, स्वर्णमय, वीर-वलयों को यों पहन लिया कि जिससे उसके वस्त्र पर उनकी कांति के बिखरने से मनोहर दृश्य उत्पन्न होने लगा।

जीभ बाहर निकाले हुए सर्प-तुल्य कंकण को हाथ में पहन लिया। अपने बीस हाथों में काले हस्तावरण यों पहन लिये, ज्यों अनंत (नाग) के विषमय कंठ पर अमिट काली रेखा पड़ी हो। अपनी उँगलियों पर अंगुलित्राण पहन लिये।

समुद्र को मथनेवाले बड़े पर्वत के चारों ओर ज्यों सर्प-रूपी रस्सी लिपटी पड़ी हो—त्यों उसकी भुजाओं पर वलय पड़े थे। उसने कुंडल पहन लिये, जो ऐसे उज्ज्वल थे, मानों (त्वष्टा[1] के द्वारा) सान पर चढ़ाये गये सूर्य की देह से गिरे हुए टुकड़े हों।

जैसे उदयाचल पर सूर्य-किरण व्याप्त हो, वैसे ही कुंकुम-चंदन से लिप्त उसके बीस कंधों पर अंधकार के शत्रु के जैसे उन कुंडलों की पंक्ति विराजमान हो रही थी। (कंठ पर के) मोती ऐसे लगते थे, जैसे पूर्णचंद्र और नक्षत्र चमक रहे हों।

जैसे उदयकाल में सब (बारहों) सूर्य आकर समुद्र-मध्य शोभायमान हों, ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए उसने अपने दसों सिरों पर शिरोमाला पहन ली। उसके दसों सिरों पर ऐसे छत्र शोभित हो रहे थे, जैसे चंद्र अनेक रूप धारण कर विराजमान हो।

विविध प्रकार की पर्वतमाला में जैसे कंदराएँ दिखाई पड़ती हों—यों दिखाई पड़नेवाले उसके मुँहों में, अधरों के कोनों में लगातार वक्रदंष्ट्राएँ चमक रही थीं। वह दृश्य ऐसा था, जैसे नीले बादलों से भरे आकाश की लालिमा के बीच में चंद्रकलाएं अंकुरित हुई हों।

उसके ललाटों पर अति मनोहर मुक्ता-जटित पट्टियाँ बँधी थीं, जिससे ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था, जैसे मुक्तामय मुखपट्टों से भूषित दिग्गजों के ललाट हों, जो पंक्ति में दिखाई पड़ रहे हों।

---

१. त्वष्टा की पुत्री संज्ञा देवी थी, जिसका विवाह सूर्य से हुआ। सूर्य के अमित प्रकाश को न सहने के कारण संज्ञा अपनी छाया को सूर्य के निकट रखकर स्वयं पितृगृह को चली गई। फिर, त्वष्टा ने सूर्य से प्रार्थना करके उसे (सूर्य को) सान पर चढ़ाकर उसके आकार को छोटा करके उसकी कांति को भी मंद कर दिया। —अनु०

मान करनेवाली सुन्दरियों के नूपुर-भूषित चरणों को छोड़कर अन्य किसी के चरण पर कभी न झुकनेवाले उसके रत्नजटित मुकुट, एक लोक में ही अंधकार को दूर करनेवाले सूर्य को भगाकर संसार में सर्वत्र अंधकार को दूर करके प्रकाश फैला रहे थे।

पूर्वकाल में स्वर्ग, धरती और ब्रह्मलोक—सब पर विजय प्राप्त करके देवों से प्राप्त विजयमाला को एवं उसके साथ ही अब युद्ध में जाने की सूचना देनेवाली 'तुंबै' पुष्प की माला भी उसने पहन ली, जिस (माला) पर भ्रमरों के साथ कलापी-तुल्य सुन्दरियों के नयन भी गड़े थे।

उसके तूणीर में कितने शर भरे थे, इसकी समता लंका में परिखा के समान रहनेवाले समुद्र, कालसमुद्र के सिकता-कण, मीन तथा विद्या के साथ क्यों करें ? शाश्वत पंचभूत भले ही मिट जायँ, फिर भी जो अमिट रहता है, ऐसे उसके यश के समान ही असंख्य शर उसके तूणीर में भरे थे।

'रथ लाया जाय'—इतना कहने मात्र से ही उसका रथ आ पहुँचा। वह रथ ऐसा था कि उसपर स्वर्ग, भूमि और पाताल के सब निवासी आरूढ हो जायँ, तो भी उनका सारा भार (उस रथ के लिए) शिखा में रखी जानेवाली चूडामणि से अधिक न जान पड़े। अश्वों के न रहने पर भी रावण के संकल्प-मात्र से वह रथ सर्वत्र जा सकता था।

उस रथ में अमृत के साथ (क्षीरसमुद्र में) उत्पन्न, सूर्य के अतिवेगवान् हरित अश्वों की परम्परा में उत्पन्न, विशाल समुद्रजल को पीनेवाली वडवा नामक अश्व के उदर में पवन से उत्पन्न एक सहस्र अश्व उस रथ में जुते थे।

वह रथ धरती पर चल सकता था, गगन में भी जा सकता था। विशाल जल पर चल सकता था। अग्नि में जा सकता था। भीषण युद्धभूमि में दौड़ सकता था। ब्रह्मांड की सीमा पर एवं ब्रह्मा के लोक में भी जा सकता था। एक पलक में किसी भी लोक में जाने की वह शक्ति रखता था।

उस रथ में, अष्ट दिशाओं के महान् दिग्गजों की घंटियों की जैसी घंटियाँ बँधी थीं। सर्वत्र ऐसे रत्न जड़े थे, जैसे ऊँचे मेरु पर अनेक सूर्यमंडल एकत्र करके रखे गये हों और जिन (रत्नों) से समस्त ब्रह्मांड को भी मोल लिया जा सकता था।

उस रथ पर समुद्र के सिकता-कण के जैसे असंख्य अस्त्र एकत्र करके रखे थे, जो इस ब्रह्मांड में सर्वप्रधान मुनियों, देवों आदि के द्वारा प्रदत्त थे। जो युद्ध में (रावण से) पराजित व्यक्तियों से प्राप्त किये गये थे और जो युद्ध में अवर्णनीय विनाश फैला सकते थे।

विष्णु का चक्र, ललाटनेत्र का परशु, कमल पर आसीन ब्रह्मदेव का कमंडलु—ये सब भले ही मिट जायँ, तो भी वह रथ अमिट रहनेवाला था। देवों के लिए भी अज्ञेय कला-कौशल से पूर्ण था। विजय का आगार बनकर वह (रथ) सत्य के समान ही महान् था।

उस रथ की (रावण ने) यथाविधि पूजा की। 'इतने हैं'—यों कहने को अवश्य (अर्थात् , संख्यातीत) ब्राह्मणों को कल्पनातीत रूप से अनेक निधियाँ दान देकर उसने अपने कर्त्तव्य पूर्ण किये।

उस रथ को प्रणाम करके वह उस पर चढ़ा। तब देवता बुद्धि-(भ्रान्त) होकर

मूर्च्छित हो गये। मुनि कुछ करने योग्य उपाय न जानकर भयभीत हुए और उनकी पंचेन्द्रियाँ क्षीण हो गईं।

'मैं युद्ध करने जा रहा हूँ। आज या तो सुरभिमय मनोहर केशोंवाली जानकी अत्यन्त दुःखी होकर अपने कोमल करों से अपने पेट को पीटती हुई शोक में डूब जायगी या मय की पुत्री (मंदोदरी) वही कार्य करके शोक में डूबेगी।—इन दोनों में से एक अवश्य होगा।'—यों रावण ने कहा।

रावण के कंठों पर के दसों सिर मुकुटों के साथ उज्ज्वल हो गये, बीसों हाथ अपार शस्त्रों से भरकर स्थिर हो गये और वह त्रिविक्रम के जैसे बढ़ गया। उसे देखकर भूमि एवं स्वर्ग के निवासी सब आश्चर्यचकित रह गये।

रावण ने भुजा पर ताल ठोंका, तो गगन दो टुकड़े हो गया, पर्वत फट गये, धरती पर जैसे ताजा घाव उत्पन्न हो गया, सूर्य स्वर्णमय कलश के समान अपने स्थान पर उलट गया, चन्द्र पीडित होकर अमृतबिन्दु बरसाने लगा।

'भयंकर युद्ध समीप आ गया है'—यह सोचकर वह (रावण) बड़े उत्साह से भर गया और अपने धनुष की डोरी से टंकार निकाला, तो बड़े-बड़े पर्वत फट गये। वक्र कर्णाभरणों से युक्त वानर-युवतियाँ एवं दानव-स्त्रियाँ भयभीत होकर अपने मंगलसूत्र को छूने लगीं।

रावण ने अपना आकार बढ़ाया, तो समुद्र का जल उमड़ पड़ा, जिसमें सूर्य और चन्द्र के मंडल घूम उठे। अनेक प्राणी काँपते हुए चिल्ला उठे। ऐसा लगा, मानों अनन्त-सर्प, भूमि का भार ढोना छोड़कर अपने सब फनों को फैलाकर आकाश में उठ रहा हो।

सुरों और असुरों से लेकर त्रिलोक के सब प्राणी, यह सोचकर कि रावण अब सर्वनाश करने के लिए युद्ध में निरत हुआ है, रुधिर वमन करने लगे। यों रावण वडवाग्नि से भी अधिक चमकनेवाली आँखों के साथ युद्धक्षेत्र में आ पहुँचा।

संसार में उत्पन्न हलचल, देवताओं की चिन्ता, पर्वत, गगन, धरती—इनका विचलित होना, तरंगायमान समुद्र का शिथिल पड़ना इत्यादि लक्षणों को अवार्य पराक्रम से युक्त सुग्रीव आदि वीरों ने देखा।

ब्रह्मांड यों अस्त-व्यस्त हो रहा था, जैसे फट रहा हो। एक विलक्षण घोष भयंकर रूप में गूँज रहा है। क्या प्रलयानंतर सृष्टि के प्रारम्भ का समय आ गया है? यह भयंकर दशा क्यों उपस्थित हो रही है?—इस प्रकार सुग्रीव आदि सोचने लगे।

समुद्र, हिमालय पर्वत, मेघ, अत्युन्नत मेरु—सब गगन में चलते हुए-से दिखाई पड़े। इतने में उन्होंने देखा कि अपार सेना को लेकर रावण आ गया है। उसका रथ शब्दायमान समुद्र से भी अधिक निर्घोष करते हुए आ रहा है।

तब विभीषण ने सत्वर राम से कहा—हे विजयी वीर! रावण बाहर आया है। राक्षसों की सेना का अग्रभाग पहले आ पहुँचा है। हमारी सेना थरथराकर (भय में) डूब रही है। देवता भी डर से पृथ्वी पर गिरकर बिखर गये हैं। (१-३५)

अध्याय ३२

राम-रथारोहण पटल

कपिसेना के वीरों का गला रुँध गया। वे हाथ जोड़े, थरथर काँपते हुए, नीचे गिरते थे और बहुत चिल्लाते थे। उनकी विपदा को देखकर रामचंद्र 'मत डरो !' कहकर अभय देते हुए शीघ्रता से उठे, जैसे पूर्वकाल में देवों को अभय देते हुए वे क्षीरसमुद्र में शय्या पर से उठ बैठे थे।

मद बहानेवाले हाथी-जैसे राम ने अनुपम यम के विषमय पाश-समान करवाल को अपनी कटि में दाहिनी ओर बाँधा और कहा—'आज लता-समान मुग्धा (सीता) के दुःख का एवं विशाल स्वर्ग के निवासियों के दुःख का अंत हो जायगा।'

हम यह कहने का साहस नहीं करेंगे कि उन महान् (राम) को कवच ने अपने में आवृत कर लिया। क्योंकि उन (राम, जो भगवान् हैं) से परे अन्य कोई वस्तु नहीं है। सब वस्तुएँ उनके मन में (अर्थात्, संकल्प में) ही रहती हैं। अतः, वह स्वयं भगवान् ही हैं, जो इस प्रकार रामचन्द्र का कवच बने।

राम ने मन में रोष करके अपने पुष्प-समान (कोमल) हाथों में अंगुलित्राण एवं हस्तत्राण पहने, जो संतप्त होनेवाले यम के रसोईघर के समान थे। फिर, संसार के पदार्थों के समान ही अपार शरों से पूर्ण तूणीरों को पीठ पर बाँध लिया।

तब शिवजी ने देवों को देखकर कहा—हे देवो ! अब जो युद्ध छिड़ा है, वह आज ही समाप्त हो जायगा। विजय पौरुषवान् राम को प्राप्त होगी, इसमें संदेह नहीं। तुम लोग भयमुक्त हो जाओ और पहियोंवाले तथा अश्व-जुते एक स्वर्ण-रत्नमय रथ राम के पास भेज दो।

देवता रुद्र की सलाह मानकर बोले—'यही कर्त्तव्य है।' देवेन्द्र ने भी वैसे ही कहकर मातलि को आज्ञा दी कि त्रिभुवन के आगे चलनेवाले रथ को सजाकर एक क्षण में ले आओ। उसे मैं राम का मंदिर बनाऊँगा।

समुद्र से घिरी पृथ्वी पर चलनेवाले रथ को मातलि ले आया। वह रथ ऐसा था कि चंद्र आदि नक्षत्र उसके चरणतल बनने के योग्य थे। वह रथ गगन में आ पहुँचा।

उसका अग्रभाग सप्तकुल पर्वतों के जैसे दृढ था। उसमें तरंगायमान समुद्र के समान बलिष्ठ पहिये और धुरी लगे थे। रोष-भरे आठ महानागों को ही रस्सी बनाकर उसमें बाँधा गया था। वह गगन को छूता हुआ ऊपर उठा हुआ था।

वह रथ वर्ष, ऋतुएँ, मास एवं दिन तथा भूत, वर्त्तमान और भविष्य से संयुत पीठवाला था (अर्थात्, वर्ष, ऋतु, मास आदि के जो अधिष्ठाता देवता हैं, उन्हीं से वह रथ बना था। वह स्वयं देवमय था)। नक्षत्र-रूपी रत्नों की अतुलनीय मालाओं से वह अलंकृत था। वह ऊँचे शैल के समान बड़ा था।

दिशाएँ उस रथ के चारों ओर की दीवारें थीं। मेघमाला उसकी ध्वजा बनी थी। वह रथ अविनश्वर पंचभूतों के बल से परिपूर्ण था।

सब प्रकार के वृक्ष तथा लतागुल्मों से उसका निर्माण हुआ था। अनेक तरंगों से पूर्ण समुद्र प्रलयकाल में उमड़ रहा हो—ऐसा ही उग्र शब्द उस (रथ) के चलने पर निकलता था।

उसका शिखर, पूर्व में विष्णु भगवान् की नाभि से उत्पन्न, ब्रह्मा के उत्पादक कमल-कोरक के समान था। वह अपनी विशालता से समस्त प्राणिजात को अपने उदर में रखनेवाले विष्णु की शय्या बने हुए आदिशेष की समता करता था।

उस सुन्दर रथ में चार वेद, यज्ञ-समुदाय, सप्तसमुद्र, सप्तशैल, पंचभूत, तीन अग्नि, असत्य से रहित महान् तप, पंचेन्द्रिय तथा—

पंचाग्नि, चार दिशाएँ, संचरण करनेवाले दस पवन, दिन, रात्रि—ये सब अश्व बनकर जुते थे।

उस रथ को आया हुआ देखकर देवों ने उसे प्रणाम करके कहा—हे पराक्रमशाली! हमारे प्रभु (देवेन्द्र) की आज्ञा से तुम आये हो। हमारी सहायता करो। विजय प्रदान करो। यह कहकर देवों ने उसपर पुष्प बरसाये। मातलि शीघ्रता से उस रथ को चलाने लगा।

सब लोग यह कहकर उस रथ की प्रशंसा कर रहे थे कि यह कर्म-बंधन के विरोधी सत्यज्ञान के जैसा है और उत्तम मन के जैसे वेगवान् होकर अंतरिक्ष को चीरता हुआ जा रहा है। स्वर्गवासी एवं सर्वलोकों के निवासी उसको नमस्कार कर रहे थे। इस प्रकार विचार को भी पीछा छोड़ता हुआ अति वेग से वह रथ रामचन्द्र के निकट आकर खड़ा हुआ।

इसे सूर्य का एक चक्रवाला रथ कहना संगत नहीं। प्रलयकालिक अग्नि की कांति कहना भी ठीक नहीं। यह अचल रहनेवाला मेरु-पर्वत शिखर भी नहीं है। यह कितना ऊँचा है। अहो! यह अनुपम त्रिमूर्त्तियों का विमान ही तो नहीं है?—यों राम ने सोचा।

चक्रवर्त्तीकुमार (राम) ने यह विचार किया कि यह रथ मेरे पास क्यों आया है और मातलि को देखकर पूछा—किसके कहने से तुम इस स्वर्णमय रथ को ले आये हो? तब मातलि ने कहा—

हे मेरे मातृसमान! सृष्टि के आरंभ में त्रिपुर-दाह करनेवाले (शिव) तथा चतुर्मुख के द्वारा यह रथ निर्मित हुआ था। यह सहस्र सूर्यों के समान है। युगांत में भी इसका नाश नहीं होगा। ऐसा यह रथ इन्द्र का है।

इस प्रकार के असंख्य ब्रह्मांडों को भी यह अपने ऊपर उठाकर ले जा सकता है। उन अंडों को अपने ऊपर रखे हुए यह छोटा या बड़ा बन सकता है। सृष्टि को निगलनेवाले विष्णु का उदर ही इसका उपमान हो सकता है। हे कमल-सदृश अंगोंवाले! यह तुम्हारे शर के जैसे वेग से जानेवाला है।

हे मेरे प्रभु! यह रथ नेत्र, मन तथा पवन को भी अपने वेग से हरा सकता है। मन की भावना के भी आगे दौड़ सकता है। गगन तथा पृथ्वी का अन्तर इसके लिए कुछ नहीं है। यह जल और अग्नि में भी जा सकता है।

हे सृष्टि को बनानेवाले ! सप्त समुद्र हैं। उनसे दुगुने लोक हैं। किन्तु, वे सब परिवर्त्तनशील हैं। किसी-न-किसी समय उनमें परिवर्त्तन होता है। किन्तु, कभी परिवर्त्तित न होनेवाला एकमात्र वस्तु यह रथ ही है।

हे आदिपुरुष ! देवता, मुनि, शिव, ब्रह्मा, सबने मिलकर प्रेरित किया, तो देवेन्द्र ने इसे आपके पास भेजा है—यों अश्वों के मन को पहचाननेवाले मातलि ने राम से कहा।

राम ने यह सुनकर मन में संशय किया—कदाचित् मायावी राक्षसों का छल ही तो नहीं है ? तब उस रथ में जुते घने केसरोंवाले अश्वों ने अनादि वेद के वचन कहकर मातलि की बात को सत्य घोषित किया।

राम ने संशय से मुक्त होकर सद्गुणों से पूर्ण उस सारथि से प्रश्न किया—'तुम्हारा नाम क्या है, कहो।' उसने नमस्कार करके सहर्ष उत्तर दिया—'मुझे, इस रथ का चालक मातलि कहते हैं।

तब आर्य (राम) ने मारुति एवं अपने अनुज को देखकर पूछा—'तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?' उन्होंने प्रणाम करके कहा—'हे प्रभु ! इसमें संदेह नहीं है। यह रथ इन्द्र का ही भेजा हुआ है।'

रामचन्द्र आनन्द से उस रथ पर आरूढ हुए। उस समय पापकर्म मिट्टी में गिरकर रो रहे थे। सत्कर्म सहर्ष नाच रहे थे। अबतक दुःख में डूबे हुए देवता तथा ब्राह्मण अपने सिरों पर कर जोड़कर प्रार्थना कर रहे थे। (१—२७)

●

अध्याय ३९

रावण-वध पटल

ज्योंही वीर (राम) उस मनोज्ञ रथ पर आरूढ हुए, त्योंही उस (रथ) के चक्र धूल में लुढ़कते हुए बढ़ चले। यह देखकर देवों ने जयकार किया और प्रलयकालिक प्रभंजन के समान गरुड की कोई चिन्ता न करके हनुमान् के कंधों पर पुष्प बरसाये।

देवताओं ने यह कहकर कि 'यह रथ चले और सब प्रकार का बल इसे प्राप्त हो। इसके प्रवेश से आज ही रावण युद्ध करता हुआ मारा जाय। राजाधिराज (राम) विजयी बनें। युद्ध करनेवाले राक्षसों को स्त्रियाँ धराशायी हों'—हर्षनाद कर उठे। जब वह भारी रथ चला, तब उसके पहिये मिट्टी में धँसते हुए लुढ़क रहे थे।

रामचन्द्र को इस प्रकार रथ पर आते हुए अपनी आँखों से देखकर रावण ने सोचा—यह दृढ एवं बड़ा रथ देवों का दिया हुआ है, और क्रोध से ओंठ चबाने लगा। फिर, यह कहकर कि 'जैसे भी हो' अपने सारथि को आज्ञा दी कि उज्ज्वल तथा दृढ धनुष अपने अरुण कर में धारण करनेवाले राम पर हमारा दृढ रथ चलाओ।

जो वानर पहले अस्त-व्यस्त होकर भागे थे, वे सब यह सोचकर कि 'देवों ने रथ दिया है, शत्रुओं को मिटाने के बल से युक्त रामचन्द्र विजयी होंगे, इसमें कोई संदेह नहीं,' भय से मुक्त हुए और लौटकर वृक्ष, शिला आदि बरसाने लगे। तब ऐसी ध्वनि सुनाई पड़ी, जिससे यह प्रतीत हुआ कि सब दिशाओं के साथ ब्रह्मांड भी फट गया हो।

नगाड़ों की ध्वनि, युद्ध के वीरों की ध्वनि, युद्धभूमि में चतुरंग सेना के घिरने से उत्पन्न ध्वनि, राम एवं रावण के रथों की गड़गड़ाहट की ध्वनि—सब ध्वनियाँ ऐसी उठीं कि कान के परदे फट गये और पृथ्वी के सब प्राणी सुनकर भय से प्राणहीन-से हो गये।

चक्रवर्त्तीकुमार (राम) ने मातलि से कहा—तुम अपने कर्त्तव्य के बारे में एक बात प्रेम से सुन लो। हर्षित चित्तवाले शत्रु के द्वारा आक्रमण किये जाने के पश्चात् तुम मेरे मनोभाव को समझकर धीरता से कार्य करना। आतुर मत होना।

तब मातलि ने उत्तर दिया—हे वदान्य! तुम्हारा चित्त, अश्वों का मन, शत्रु की मनोवृत्ति, शत्रु की कमी अथवा पूर्णता, उसका परिणाम, निर्व्याज रूप में फल प्रदान करनेवाले काल की रीति तथा प्राप्त कार्य—इन सबका यदि ठीक-ठीक विचार नहीं करूँ, तो मेरी विद्या किस काम की? तब अकलंक प्रभु ने कहा—ठीक है।

महोदर नामक पर्वताकार राक्षस ने लंकेश से कहा—यह राम देवेन्द्र के द्वारा प्रेषित रथ पर आरूढ होकर प्रकट हुआ। तुम दोनों का परस्पर युद्ध छिड़ गया है। तुम्हारे बीच साक्षी बनकर मेरा रहना उचित नहीं है। अतः, मुझे आज्ञा दो, जिससे मैं अन्यत्र जाकर शत्रुसेना के साथ युद्ध करूँ।

रावण ने उससे कहा—कमल-समान नयनोंवाले इस वीर (राम) को मैं उसी प्रकार मिटा दूँगा, जिस प्रकार सिंह हाथी को मार डालता है। तुम जाकर इसके साथ आनेवाले लक्ष्मण को रोककर युद्ध करो, तो उससे मुझे विजय प्रदान करनेवाले बनोगे। क्रोध से तप्त होनेवाले महोदर ने 'वैसे ही करूँगा' कहकर उस आज्ञा को स्वीकार किया।

महोदर लौटकर लक्ष्मण के निकट जानेवाला ही था कि इतने में पौरुषपूर्ण राम का दिव्य रथ उसके निकट आ गया। उसके समीप आते ही महोदर ने भड़कनेवाले क्रोध के साथ अपने सारथि से कहा—'जैसे रथ रुष्ट हो गया हो, यों हमारे रथ को राम के रथ के सामने ले जाकर भिड़ा दो।' तब उसके सारथि ने नमस्कार करके कहा—

'महिमा में श्रेष्ठ इस वीर के रूप को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि इसके सम्मुख एक रावण नहीं, किन्तु संख्यातीत कठोर नयनोंवाले रावण एक साथ आ जायें, तो भी वे पृथ्वी पर गिर जायेंगे। लौटकर नहीं जाने पायेंगे। हे वीर! अरुण कमल-समान इस वीर (राम) को छोड़कर हट जाना ही तुम्हारे लिए उचित है।

सारथि के यह कहने पर महोदर ने ओंठ खींच लिये और अपने फटे मुँह के बाहर निकले दाँतों को ढक लिया और फिर बोला—अरे, तुझे उठाकर खा जाऊँ, तो भी कुछ दोष नहीं होगा। क्रोधाग्नि को उगलनेवाले पर्वत-समान उस (महोदर) के रथ के ठीक सामने राम का रथ आ निकला।

स्वर्णमय रथ, अश्व, गज, उज्ज्वल करवालधारी, पर्वताकार दृढ भुजाओंवाले

पदाति-वीर—सबकी घनी सेना-रूपी समुद्र रामचन्द्र के शर-रूपी वडवाग्नि से सूख गये। अतः, महोदर ने अकेले ही अपने रथ पर से राम का सामना किया।

महोदर ने राम के रथ पर स्थित वज्रध्वजा पर, शब्दायमान रथ पर, रास खींचकर हाथ में रखनेवाले सारथि पर, विजयी वीर (राम) के उज्ज्वल कंधों पर, वेगवान् शरों की वर्षा की और ऐसा गर्जन किया कि गगन एवं दिशाएँ फट गईं। तब पवित्रमूर्त्ति (राम) मंदहास कर उठे।

फिर, उस महात्मा (राम) ने उस राक्षस के धनुष को एक बाण से, कवच को एक बाण से शक्तिशाली बाँहों को, एक-एक बाण से, पर्वत के जैसे कंधों को एक-एक बाण से और कंठ को एक बाण से काट डाला। वह राक्षस कुछ बोलता हुआ एवं कुछ अन्य कार्य करता हुआ मृत होकर गिर पड़ा।

महोदर को मरते हुए देखकर त्रिलोक एवं सब दिशाओं को विजित करनेवाले पराक्रम से युक्त रावण ने कहा—(रथ) बढ़ाओ, बढ़ाओ। सारथि ने अश्वों को सत्वर हाँका। वह महान् रथ (राम के) निकट आ पहुँचा।

तब राम ने सोचा—जबतक इसकी विशाल राक्षस-सेना ओसकण के जैसे ही मिट नहीं जायगी और यह एकाकी नहीं रह जायगा, तबतक यह परास्त नहीं होगा (अर्थात्, यदि सारी सेना मिट जायगी, तो यह कदाचित् मेरी शरण आयगा), ऐसा सोचकर सूक्ष्म विचारवान् प्रभु ने इतनी शीघ्रता से धनुष को झुकाकर राक्षस-सेना को विध्वस्त कर डाला कि रावण देख भी नहीं सका कि क्या हुआ।

उसी समय रावण की वाम भुजाएँ फड़क उठीं और उसके अंगद आदि रत्नखचित आभरण टूटकर बिखर पड़े, जैसे प्रलयकाल में ब्रह्मांड को डुबोते हुए उठनेवाले समुद्रों को सुखाते हुए प्रभंजन के चलने पर मेरु आदि पर्वतों के शिखर विचलित हो उठते हैं।

संसार में रक्त की वर्षा हुई। बिजलियाँ गगन को कँपाते हुए गरजकर बड़े-बड़े पहाड़ों को चूर करती हुई गिरीं। मंद पड़े सूर्य के चारों ओर परिवेश-मंडल दिखाई देने लगा।

फाँदकर चलनेवाले अश्व थरथरा उठे। कभी पीछे न रहकर बाण छोड़नेवाले धनुष की डोरी बीच में टूट गई। रावण के मुँह और जीभ सूख गईं। उसके पहने सद्यो-विकसित पुष्पों से मांस की गंध निकलने लगी।

वीणा के चित्र से अंकित उसकी उन्नत ध्वजा पर गिद्ध और काक आ बैठे। वेग से दौड़नेवाले उसके घोड़ों की आँखों से जल बहने लगा। मुखपट्ट-भूषित उसके हाथी ऐसे खड़े हो गये, जैसे आलान में बँधे हुए हों।

देवों को हर्ष प्रदान करनेवाले अनेक प्रकार के अपशकुन रावण को दिखाई पड़े। फिर भी, उसने यह सोचते हुए कि क्या यह मनुष्य मुझे हरा सकता है, उन अपशकुनों की परवाह नहीं की।

जब रावण का रथ अति वेग से चला, तब सब (वानर)-वीर मार्ग के दोनों ओर तितर-बितर होकर हट गये, जैसे समुद्र के उमड़ आने पर सारा संसार हट रहा हो।

राम और रावण आमने-सामने होकर यों युद्ध करने लगे, ज्यों ज्ञान (योग) एवं कर्म (बंधन) हों, विद्या एवं अविद्या हों, अविनश्वर धर्म एवं शक्तिशाली पाप हों।

जैसे एक सहस्र फनवाला आदिशेष एवं शक्ति तथा विजय से पूर्ण गरुड लड़ पड़े हों। अथवा, दिन और रात्रि लड़ पड़े हों—यों राम और रावण लड़ने लगे।

वे दोनों ऐसे दिखाई पड़े, जैसे दो विजयी दिग्गज लड़ रहे हों। अथवा, जैसे नरसिंह एवं स्वर्णमय असुर (हिरण्यकशिपु) हों।

पूर्वकाल में, 'आदि भगवान् कौन है'—इस बात की परीक्षा देने के लिए, विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दो उज्ज्वल धनुष लेकर, त्रिलोक को (त्रिविक्रमावतार में) अपने स्वर्णमय चरण से नापनेवाले विष्णु तथा शिव लड़ पड़े थे, वैसे ही राम और रावण लड़ पड़े।

जब रावण ने अपना शंख बजाया, तब उस युद्ध को देखनेवाले शंकर और ब्रह्मा के हाथ काँप उठे। पुरातन ब्रह्मांड फट-सा गया और ऊपर के लोकों में देवों का सारा कोलाहल मौन पड़ गया।

तब उस शंखध्वनि को न सहकर विष्णु का धवल शंख (पांचजन्य) स्वयं बज उठा, जिससे (रावण के) उस शंख की ध्वनि काँप उठी। देवता यह जानने के कारण कि यह कैसा शंख है, चिंतित हुए।

विष्णु के पाँचों आयुध चरण-सेवा करने के लिए राम के निकट आ पहुँचे। फिर भी, देवों के सच्चे अधिपति राम ने (मानुष-भाव को अपनाकर) उन आयुधों को उसी प्रकार नहीं देखा, जिस प्रकार सत्यमय उन (विष्णु) को वेद नहीं देख पाते हैं।

तब मातलि ने इन्द्र का शंख बजाया। उससे दिशाएँ, गगन, तरंगायमान समुद्र, देश, पर्वत एवं देवता भय से काँप उठे। ब्रह्मांड विचलित हो उठा।

राम के सुन्दर शरीर पर राक्षस (रावण) के द्वारा लगातार प्रयुक्त किये गये बाणों के आकर लगने के पूर्व ही कमल-समान मुखवाली स्वर्गस्थ नर्त्तकियों (अर्थात्, अप्सराओं) के कटाक्ष अनन्त रूप में आ लगे।[1]

युद्ध में आये हुए राम और रावण के रथों में जुते हुए अश्व, अत्यन्त रोष के साथ, गुंजा के समान लाल-लाल आँखों से परस्पर घूरने लगे, मानों परस्पर को खा जाने की इच्छा कर रहे हों।

(रावण के रथ पर की) वीणा से अंकित ध्वजा एवं (रामचन्द्र के रथ पर स्थित) वज्रध्वजा अनेक बार परस्पर टकराकर यों शब्दकर उठीं, ज्यों धरती, आकाश, समुद्र आदि सब विध्वस्त हो जायेंगे।

अत्यन्त क्रोध से लाल हुई आँखोंवाले रावण का धनुष्टंकार यों निकला, ज्यों सातों समुद्र एक साथ गरज उठे हों। चक्रधारी (राम) का धनुष्टंकार उस बड़े मेघ के गर्जन के समान था, जो (मेघ) ब्रह्मांड को फोड़कर प्रलयकाल में बरस पड़ता है।

---

१. भाव यह है—राम के कोमल शरीर पर राक्षस के बाण आकर लगेंगे, यह सोचकर तथा द्रवित होकर देवस्त्रियाँ राम की ओर देखने लगीं।—अनु०

वहाँ खड़े रहकर देखनेवाले दृढ चित्तवाले हनुमान् आदि वीरों के मन भी विचलित हो गये। वे अपने को भूले हुए किंकर्त्तव्यमूढ होकर खड़े रहे।

उस टंकार-ध्वनि को सुनकर देवता यह निर्णय नहीं कर पाते थे कि कौन विजयी बनेगा। भविष्य को जानने में असमर्थ होकर वे चिंता के साथ आते-जाते रहे और घबराहट के कारण कुछ करना ही भूल गये।

(राम के) बलवान् शर ज्योंही आकाश में चलने लगे, त्योंही राम के ऊपर युद्ध देखने के लिए एकत्र देवताओं के हाथों से पुष्पों की वर्षा होने लगी। दर्प (और अंहकार) का कौन साथ देता है ? (अर्थात्, रावण का, जो अहंभाव से भरा था, साथ देनेवाला कोई नहीं था)।

प्रभु के हाथ का धनुष एवं राक्षस का स्पर्श न करने योग्य धनुष—दोनों ऐसे थे, मानों गगन में अत्यन्त उज्ज्वल रूप में चमकनेवाले दो इन्द्रधनुष ही हों।

रावण ने मुँह खोलकर जो गर्जन किया, वह शब्द एवं पर्वताकार उस धनुष के टंकार का शब्द—इन दोनों के अस्तित्व को सूचित करते हुए मानों समुद्र एवं बादल ही असीम रूप में गरज उठे हों।

रावण की आँखों से जो चिनगारियाँ निकलीं, वे अत्यन्त वेग से अंतरिक्ष में चली गईं। उस कारण आकाश में चलनेवाले सजल बादल गगन से धरती पर गिरकर संचरण करने लगे।

विष्णु (के अवतार राम) को देखकर भी विचलित न होनेवाला रावण ज्यों-ज्यों हँसता था, त्यों-त्यों देवताओं की जीभ सूख जाती थी एवं चरण काँप उठते थे। घोरघटा थरथरा उठती थी और लंका विकंपित हो उठती थी।

उस युद्धक्षेत्र में चलनेवाले शस्त्रों की कांतियाँ ऐसी फैलती थीं, जैसे धरती पर बिजलियाँ दौड़ रही हों, या कटनेवाले मेघों से आग उत्पन्न होकर गिर रही हो। यों विनाश फैलाते हुए शस्त्र चल रहे थे।

रावण कह उठा—मैं अपने धनुष का उपयोग करना नहीं चाहता। मैं इस छोटे-से नर को देवों के भेजे रथ के साथ ही उठाकर गगन में घुमाकर धरती पर पटककर मार डालूंगा।

वह फिर कहता—सान पर चढ़ाये बिजली के जैसे तीक्ष्ण शरों को चलाकर इस नर के भुजबल को मिटा दूँगा। इसके रथ के टुकड़े कर दूँगा और इसके धनुष के साथ ही इसे बंदी बनाऊँगा।

आतुर मन, बीच बीच में भड़कनेवाला रोष, सर्वत्र बोई जानेवाली चिनगारियों-सी दिखाई पड़नेवाली रोषपूर्ण आँखें—इनसे युक्त क्रूर रावण ने अपने धनुष को झुकाकर उससे अति कठोर बाण प्रयुक्त किये।

वे बाण बिजली के समान थे। अग्नि के समान थे, बलवान् यम के भी मर्मस्थान में पहुँचनेवाले थे। वर्षा के समान थे। दिव्य अस्त्रों को भी मिटा देनेवाले थे। अमृत मथनेवाले मंदर को लपेटकर पड़े वासुकि सर्प से भी अधिक भयंकर थे।

देवों ने आशंका की कि ये बाण मेरु को भेदकर फिर उससे बाहर निकलकर ब्रह्मांड को छेदकर निकल जायेंगे। पर कृपासमुद्र (राम) ने अपने शरों से उन बाणों को तोड़ डाला।

जैसे प्रारब्ध कर्म या पाप-परिणाम के कारण उत्पन्न होनेवाली विपत्ति किसी बलवान् पुरुष के कारण बीच में ही मिट गई हो—उसी प्रकार (रावण के) शर व्यर्थ हो गये। फिर भी, वह युगांत की विनाशकारी घोर घटा के समान अनंत शरवर्षा करता ही रहा।

रावण के शरों ने अंतरिक्ष को भर दिया। दिशाओं को भर दिया। पर्वतों को भर दिया। वेग को देखनेवाली दृष्टि को भर दिया। समुद्र को भर दिया। पृथ्वी को भर दिया। कला-निपुण व्यक्तियों की भावना को भर दिया। उन्माद से भरकर सर्वत्र अंधकार को भर दिया। गजचर्म का आवरण धारण करनेवाले (शिव) ने भी विस्मय किया कि अहो! इसका युद्धकौशल कैसा है!

शिव के अतिरिक्त अन्य महिमामय सब देवता, वेदज्ञ ब्राह्मण आदि भय के कारण हाथों से आँखों को ढककर खड़े हो गये। उस समय वानर-सेना की वैसी दशा हो गई, जैसी सहस्र वज्रों से आहत पर्वत की होती है। वह दृश्य देखकर राम उन शरों के टुकड़े-टुकड़े करने लगे।

तब आदि भगवान् (राम) के द्वारा प्रयुक्त तीक्ष्ण बाण ऐसे थे, जैसे अरुण अग्नि में आहुति देनेवाले वेदज्ञ ब्राह्मणों को अकाल के समय भोजन-दान करने से होनेवाला पुण्य हो। रावण के द्वारा प्रयुक्त बाण उसी के किये पाप-कर्मों के परिणाम के समान थे।

अदम्य पराक्रम से युक्त क्रूर रावण एक क्षण में लक्ष-लक्ष तीक्ष्ण बाण छोड़ता था। परन्तु अनुपम प्रभु उनको तोड़ देते थे। टूटकर चिनगारियों के साथ बिखरनेवाले बाण समुद्र में गिरते थे, जिससे समुद्र का जल सूखकर कीचड़ बनकर, धूल बनकर, फिर वालुका बनकर रह जाता था।

भयंकर युद्ध करने में चतुर तथा प्रतापवान् रावण ने अपने धनुष से शर प्रयुक्त करनेवाले राम के सम्मुख परशु, तोमर, गदा, आयस, मूसल, चक्र, त्रिशूल आदि विविध शस्त्र अपने दीर्घ हाथों से उठा-उठाकर फेंके।

सजल बादल के जैसे राम ने पवन के गुणवाले, अग्नि के गुणवाले, वज्र के गुणवाले तथा इसी प्रकार के विविध गुणोंवाले बाण प्रयुक्त किये, तो उनमें से एक शर के लगने से सहस्र परशु, एक से सहस्र शूल, एक से सहस्र विशिख, एक से सहस्र बाण टुकड़े-टुकड़े हो गये।

जब यों युद्ध चल रहा था, तभी राम का शर रावण को जा लगा, तो वह वैसे ही भड़क उठा, जैसे काँटेवाली छड़ी[1] चुभाने पर बैल भड़क उठता है। तुरंत उसने तीक्ष्ण बाण चुनकर अपने धनुष से यों प्रयुक्त किये, ज्यों काले बादल से वर्षा की बूँदें निकलती हैं।

राम के द्वारा प्रयुक्त शरों की वर्षा एवं अग्नि बरसानेवाले नीच राक्षस (रावण)

---

१. दक्षिण में कहीं-कहीं गाड़ीवान बैलों को हाँकने के लिए छड़ी में लोहे की कील लगाकर रखते हैं।—अनु०

के द्वारा प्रयुक्त शरों की वर्षा सर्वत्र भर गई, जिससे पुलक के साथ उत्साहित हो युद्ध देखनेवाले पाँचों भूत तीक्ष्ण अग्नि के ताप से तप्त होकर दूर हट गये।

तब रावण का रथ गगन में उठ गया और ऐसा लगा, जैसे गगनगामी मंदराचल हो। मारुति के द्वारा आकाश-मार्ग से लाया जानेवाला संजीवन-शैल हो, त्रिपुर हों या गंधर्वनगर हो।

लंकेश ने गगन में उठे हुए रथ पर से जो शर छोड़े, उनसे आहत होकर वानर-सेना, राम को देखते-देखते शीघ्र मिटने लगी।

उसे देखकर राम ने (मातलि से) कहा—हमारे वृषभ-समान वानर-वीर मर रहे हैं। अब उस (रावण) के नगाड़े जैसे कंधों तथा किरीट से भूषित दस सिरों को काटकर गिरा देना चाहिए। तुम भी सावधानी से गगन पर रथ को चलाओ।

मातलि ने यह कहकर कि वैसे ही करूँगा, उस रथ-रूपी प्रलयकालिक प्रभंजन को चलाया। वह अत्युज्ज्वल महिमामय रथ ऐसे चला, जैसे चन्द्रमंडल पर सूर्यमंडल आक्रमण कर रहा हो।

राम का रथ और रावण का रथ—दोनों एक दूसरे के आमने-सामने संचरण करने लगे। तब मेघ-समुदाय तितर-बितर होकर सब दिशाओं में बिखर गये। नक्षत्र-समुदाय चूर-चूर होकर गिर पड़े। ऊँचे पर्वतों के शिखर टूटकर गिर पड़े।

वे दोनों रथ दाहिने चलते, बायें चलते। कंपित होते-होते गगन से धरती की ओर आते। कभी दाइँ, कभी बाइँ ओर होकर ऊपर उठते। समुद्र, कुलपर्वत, ब्रह्मांड सब यों चक्कर काटने लगे, जैसे कुम्हार के चाक हों।

जब वे रथ लुढ़ककर चलते थे, तब सात लोकों में पहुँच जाते थे। यों अतिवेग से चलनेवाले उन रथों को देखकर उनसे परिचित देवता भी यह नहीं कह पाते थे कि कौन-सा रथ राम का है और कौन-सा रथ रावण का। वे इतना ही देख पाते थे कि दोनों रथ पृथक्-पृथक् पिंडाकार हैं और घूम रहे हैं।

ऐसे नक्षत्र नहीं थे, जो (उन रथों के) चक्रों का धक्का लगने से गिर नहीं जाते थे। ऐसे शैल नहीं थे, जो उनके आघात से आग नहीं उगलने लगते थे। ऐसे प्राणी नहीं थे, जो मुँह से रुधिर वमन नहीं करते थे।

उस युद्ध को देखनेवाले देवता कहते—अब (राम और रावण अपने रथों के साथ) इन्द्रलोक में हैं। फिर कहते, अब चन्द्रलोक में हैं। फिर कहते—नहीं, नहीं, वहाँ नहीं हैं। कमलभव (ब्रह्मा) के लोक में हैं। फिर कहते—नहीं, नहीं, वे मंदर-पर्वत पर हैं।

महान् ज्ञान से युक्त देवता कहते—अब वे (राम और रावण अपने रथों-सहित) क्षीरसागर के मध्य हैं। फिर कहते—विविध प्रकार के सप्त समुद्रों के पार हैं। फिर कहते—पूर्व दिशा में हैं। फिर कहते—पश्चिम दिशा में हैं। और फिर कहते—उनके रथ चक्रों के बीच (अर्थात् मेघ-मंडल में) है।

कदाचित् समस्त लोकों का अन्त ही तो नहीं आ पहुँचा है, यों कहनेवाले वे देवता कहते—वे रथ क्या लौट गये हैं? फिर कहते, क्या गगन को चीर करके टुकड़े-टुकड़े

कर डाला है। फिर कहते—क्या पृथ्वी पर हैं? और कहते— रथों में अश्व जुते हुए ही हैं या कोई नया पवन है।

वे रथ सात समुद्रों में, सात द्वीपों में, सात पर्वतों में तथा सात लोकों में फैले हुए इस ब्रह्मांड की सीमा पर—सर्वत्र प्रलयकालिक प्रभंजन के समान संचरण करते रहे।

रावण ने धरती के आवरणभूत समुद्र में, सात लोकों में, सात द्वीपों में और सात कुलशैलों में जो-जो शस्त्र थाती के समान सुरक्षित रखे थे, वे सब (शस्त्र) वर्षा की बूँदों के समान हो गये।

रावण के द्वारा प्रयुक्त सब शस्त्र और शर राम के सम्मुख टिक नहीं पाते थे और बिखरकर सब लोकों में गिर पड़ते थे। राम उन शस्त्रों को काटते और हटाते रहते थे। इस कार्य के अतिरिक्त उन्होंने स्वयं क्रुद्ध होकर कुछ नहीं किया।

पर्वतों में, समुद्रों में, ऊपर के लोकों में, नीचे के लोकों में, जहाँ सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिर्मंडल संचरण करते थे, उन लोकों में— सर्वत्र हलचल उत्पन्न करते हुए घूमनेवाला प्रभंजन अंत में लंका में जा पहुँचा।

अति चतुर सारथियों के द्वारा हाँके जानेवाले (राम और रावण) —दोनों के अश्व दौड़ते हुए समुद्र की सिकता से भी अधिक अमेय रूप में सब लोकों में संचरण करते रहे। फिर भी, वे थके नहीं और न उनकी देह से स्वेद ही निकला।

तब अग्नि उगलती हुई लाल आँखोंवाले (रावण) ने इन्द्र द्वारा (राम के पास) भेजे गये रथ पर ऊँची उठी हुई अकाट्य वज्रध्वजा को भी एक चन्द्राकार बाण से काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

वह वज्रध्वजा जब टूटकर गरजते हुए गंभीर समुद्र में जाकर गिरी, तब वह समुद्र ऐसे सूख गया, जैसे खूब तपे हुए लोहे के गोले के डूबने पर जल सूख जाता है।

वेद के समान अविनश्वर राम के रथ में जुते अश्वों पर (रावण ने) तीक्ष्ण बाण छोड़े। फिर सधे हुए, प्रशंसा के लिए असाध्य मातलि के वज्र-समान वक्ष में अति कठोर बारह शर गड़ा दिये।

काले रंगवाले राक्षसराज के द्वारा प्रयुक्त वे बाण ज्योंही सद्गुणों से पूर्ण मातलि के वक्ष में लगे, त्यों ही राम को जो पीडा उत्पन्न हुई, वह लक्ष्मण के सुन्दर वक्ष में त्रिशूल लगते देखकर उत्पन्न पीडा से भी अधिक थी।

रावण का धनुष वर्त्तुलाकार में झुककर इन्द्रधनुष एवं खंडित चन्द्र के आकारवाला बन गया और उससे निकले अति तीक्ष्ण बाण राम पर ऐसे छाये कि उनसे ढक जाने के कारण राम को अनिमेष देवता भी नहीं देख सके।

ज्ञान में श्रेष्ठ देवता भी उस समय यों भय करने लगे कि राम पराजित हो जायेंगे। इधर शत्रु-राक्षस हर्षनाद कर उठे। पवन का ऊपर-नीचे संचार थम गया। सारा ब्रह्मांड अस्त-व्यस्त हो गया।

अग्नि की कांति मंद पड़ गई। समुद्र की लहरें रुक गईं। सूर्य-चन्द्र गगन में संचार करना छोड़कर हट गये। मेघों की वर्षा सूख गई।

रावण के छोड़े वाण मेघ-मंडल को भी दबाकर अतिवेग से बढ़ जाते थे। (उसे देखकर) दिशाओं में रहनेवाले आठों दिग्गज मदहीन हो गये। समुद्र निष्पंद रहकर शब्द करने से भी डरकर चुप हो गये। मेरु-गिरि भी काँप उठा।

वानरपति (सुग्रीव) तथा अनुज (लक्ष्मण) एवं अन्य वीर यह कहने लगे कि ओह! हम अपने प्रभु को नहीं देख रहे हैं। यूथपति को न देखकर व्याकुल होनेवाले गजों के समान वे व्याकुल हो उठे। अन्य लोग समुद्र के मीनों के समान घबरा उठे।

तभी राघव ने (रावण के प्रयुक्त) सब वाणों को पलक मारने के भीतर ही अति तीक्ष्ण वाणों से काट दिया और शीघ्र ही राक्षस पर असंख्य शर प्रयुक्त करके उसके मन को दुःखी बनाया। तब देवता स्वस्थ हुए।

जो ज्ञानी अपने आहार के समान ही (विष्णु के अवतार) राम का ध्यान करते हैं, उनके हृदयों में आनन्द के साथ निवास करनेवाले उन प्रभु ने ऐसे अति दूर जानेवाले अनुपम वाण छोड़े, जिनसे रावण के खंभे के समान दस हाथों में रखे हुए दस धनुष वीच से टूटकर गिर पड़े।

तब युगांत में उमड़कर आनेवाले समुद्र के आकारवाला गरुड (राम) के रथ पर की ध्वजा पर आकर आसीन हो गया। तब देवों के सब दुःख मिट गये और अति विशाल दिशाएँ स्थिर हो गईं।

निद्रा करते हुए भी अपनी सर्वज्ञता से सब कुछ जाननेवाले ज्योतिःस्वरूप अनुपम भगवान् (राम) ने अति प्रकाशमान तीक्ष्ण तथा जलानेवाले वाणों को प्रयुक्त करके (रावण के) उस कवच को, जिसमें कहीं कुछ जोड़ नहीं था, छेद दिया और उसके शरीर का रुधिर (उन शरों को) पिलाया।

रावण की वह ध्वजा, जिसका पट दिशाओं में फैला था, जिसके वेग से बादल विखर जाते थे, जिसपर मुकुल-समान एक गुंबज लगा था तथा जिसपर विशाल सिरवाली मधुर नाद का आधार वीणा का चित्र अंकित था, रामचन्द्र के शरों की चोट से कटकर धरती पर गिर पड़ी।

देवता यह सोचकर कि समुद्र से आवृत सारी धरती की परिक्रमा कर सकनेवाला गरुड राम की ध्वजा वनकर बैठा है, अतः हमें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, आनन्दित हुए।

इसी समय विनाशकारी कृत्य करनेवाले क्रूर रावण ने ज्ञान से प्राप्य अनुपम प्रभु (राम) को अक्षत देखकर तामस नामक अस्त्र को प्रयुक्त किया, जिससे सर्वत्र अंधकार फैल गया।

उस तामस अस्त्र से जो शर उत्पन्न हुए, उनमें कुछ अग्निमुख थे, कुछ देवमुख थे, कुछ भूतमुख थे, कुछ उन सर्पों के जैसे मुखवाले थे, जो विलमुख में घुसते हैं।

वे शर एक दिशा से दूसरी दिशा तक अपने विषमय दंत गड़ाते हुए जाते थे। वे बहुत बड़े थे। वे सब संकल्प पूर्ण करनेवाले थे। जलते हुए सूर्य-चन्द्रों को भी पी डालनेवाले थे।

एक दिशा में अंधकार और दूसरी दिशा में धूप फैल गई। एक दिशा में बवंडर और दूसरी दिशा में वर्षा होने लगी। एक दिशा में पत्थरों की वर्षा होने लगी। एक दिशा में चक्र और दूसरी में वज्र गूँज उठे। सर्वत्र मोहांधकार व्याप्त हो गया।

जब ये घटनाएँ हो रही थीं, तभी सप्त लोकों में घना अंधकार फैल गया। देवता रो उठे। मानों सारा संसार पाप-कर्म में फँस गया हो। तब अकलंक प्रभु ने निश्छल हृदय से—

ललाटनेत्र (शिव) के विध्वंसक अस्त्र को प्रयुक्त किया। उसके प्रयोग करने पर पलक मारने के भीतर ही राक्षस का तामस अस्त्र यों अदृश्य हो गया, जैसे स्वप्न का दृश्य जागरण होते ही अदृश्य हो जाता है।

सत्य के सम्मुख असत्य के समान अपने तामसास्त्र को अदृश्य होते देखकर रावण ने आँखों से आग उगलते हुए और ओठ चबाते हुए बाज के पंखों से युक्त, चुने हुए अति कठोर बाण शत्रुदमन प्रभु के मनोहर शरीर में गहरे गड़ाकर गर्जन किया।

और, उसने उन पवित्रमूर्त्ति पर उस आसुरास्त्र को प्रयुक्त कर दिया, जिसने देवों के यश को खा डाला था, जिसने अपने कृत्यों से देवेन्द्र को चकित कर दिया था तथा जो अत्युग्र था।

देवों को युद्ध में पराजित करनेवाला, किसी भी लोक के किसी व्यक्ति को जीतनेवाला तथा पर्वतों को चूर-चूर करनेवाला वह (आसुर) अस्त्र ब्राह्मणों के पूज्य प्रमुख देव (राम) की ओर अति वेग से चला।

'क्षणभर में यह आसुरास्त्र सारे संसार को निगल जायगा'—यों सोचकर जो देवता यत्र-तत्र विकल हो खड़े थे, आनन्द से उनके हर्षनाद करते हुए, राम ने उस आसुरास्त्र पर आग्नेयास्त्र का ऐसे प्रयोग किया, जैसे वज्र पर अग्नि बरसा रहे हों और उसे विध्वस्त कर दिया।

तब रावण ने एक क्षण में शत कोटि शर छोड़े। वे शर ऐसे थे कि यम भले ही (अपने कार्य में) चूक जाय, तो भी वे बाण चूकनेवाले नहीं थे; सब समुद्रों को पी जाने की शक्ति रखनेवाले थे, मेरु को चूर-चूरकर धूल बना सकते थे, अपने वेग से पवन को पीछे छोड़कर जानेवाले थे और सब लोकों को पार कर सकते थे।

कुछ ऋषि कहते—'अहो! कैसा हस्त-चातुर्य है।' कुछ कहते—'यह शर नहीं है, यह भी कोई माया है।' कुछ कहते—'शरों के लिए अब कहाँ स्थान शेष है।' कुछ कहते—'इस (रावण) ने इतना भयंकर युद्ध कभी नहीं किया था।'

वेदों के द्वारा प्रतिपाद्य अनुपम भगवान् (राम) ने सारे आकाश को अपने पंखों से ढकनेवाले उन बाणों को एक पलक में ही, अपने अर्द्धचन्द्र बाणों के द्वारा उनके विराट् सिरे से तीक्ष्ण अग्रभाग तक चीर डाला।

ब्रह्मांड-भर में, बड़ी तपस्या करके शक्ति प्र[illegible] करनेवालों में सबसे प्रमुख रावण ने यह सोचते हुए कि मैं अब अत्यन्त शक्तिशाली अस्त्रों क[illegible] छोड़ूँगा, दशरथ-पुत्र पर मायास्त्र का प्रयोग किया।

देवता यह सोचकर कि रावण ने अपने योग्य भीषण अस्त्र का प्रयोग किया है, जिससे वह सारी सृष्टि को जड़ से जला देगा, लुढ़क गये। वानर, 'हम मिट गये' ऐसा सोचकर तितर-बितर हो भागे। पर, उत्तम भगवान् ने उस अस्त्र को पहचान लिया।

उस मायास्त्र को, जो इस प्रकार आ रहा था, मानों वह आदिशेष के फन पर रहनेवाली धरती के मनुष्यों के जीवन का ही अन्त कर देगा, पर्वत-समान तथा विविध रजत-मय आभरणों के योग्य भुजाओंवाले राम ने गांधर्व नामक भयंकर अस्त्र से काट दिया।

अब रावण ने सोचा—पूर्व में ब्रह्मा से निर्मित, इस पृथ्वी को अपने वश में करने में हिरण्य का सहायक, पूर्वकाल में मधु नामक असुर के द्वारा प्रयुक्त एक गदायुध मेरे पास है। उससे इसके प्राण लूँगा।—यों सोचकर रावण ने राम पर उस गदा का प्रयोग किया।

वह गदा ऐसी थी, जो पूर्व में देवों को पराजित करने में दारुक (नामक असुर) की सहायक बनी थी, अनुपम मेरु एवं मंदर की समता करती थी, धूप के समान कांति-वाली थी, सारा संसार एक युग तक ढकेलता रहे, तो भी नहीं डिगनेवाली थी तथा जिसने देवों के सिरों को भंग किया था।

जिसने पहले पीतवर्णवाले बड़े पक्षी को (अर्थात्, जटायु को) मारा था, जो सूर्य से भी अधिक प्रकाशयुक्त थी। जब वह गदायुध चला, तब सब लोग यह सोचकर कि यह ब्रह्मांड पानी के घड़े के समान फूट जायगा, भय-व्याकुल हुए। आकाश विचलित हुआ और मंदर भय-त्रस्त हो गया।

अरुण कमल के समान नयनोंवाले राम ने उसे देखा और देवेन्द्र के सहस्र नेत्रों में भी जो न समा सके, ऐसे सौ नोंकों से युक्त, कमल-कोरक समान, अत्युज्ज्वल शर प्रयुक्त कर उस दिव्य शक्ति से पूर्ण गदायुध के टुकड़े करके यों बिखेर दिये, ज्यों उसके पहले ही एक सौ टुकड़े होकर पड़ा हो।

तब उस विनाश पानेवाले (रावण) ने सोचा—ओह! इसने अपना धनुः-कौशल दिखाया। अब व्यर्थ ही इसपर ऐसे अस्त्र क्यों छोड़ूँ, जो इसे नहीं मार सकते हैं। मैं उस मायास्त्र का प्रयोग करूँगा, जिससे यह अपनी सेना-सहित विशाल युद्धभूमि में विध्वस्त हो जायगा।

रावण ने उस अस्त्र की पूजा की। अपने इष्टदेव की प्रार्थना की। उस अस्त्र-मंत्र के ऋषि एवं छन्द का उच्चारण किया और अपने धनुष में शर-संधान करके ऐसे छोड़ा कि वह अस्त्र दसों दिशाओं एवं गगन-प्रदेश में भर गया।

मायास्त्र का प्रयोग होते ही ऐसे लगा, जैसे राम-लक्ष्मण के द्वारा अबतक निहत सब राक्षस सप्राण होकर सारे अंतरिक्ष में भर गये हों और गरज रहे हों।

मानों इन्द्रजित्, उसका भाई अतिकाय, कुंभ, निकुंभ आदि बड़े सेनापति तथा महोदर आदि मंत्रि—सभी असंख्य रूप धारण करके गगन को ढकते हुए ऐसे गरज उठे हों कि मेघ भी जिससे झर जायँ।

घट-समान बड़े कर्णोंवाला पर्वताकार राक्षस (कुंभकर्ण), अन्य वीर तथा रावण

की प्रधान-सेना के सब वीर तथा हाथी, अश्व एवं अन्यान्य वाहन—सभी दिखाई पड़ने लगे।

रोष-भरी अनेक सहस्र समुद्र (संख्यावाली) अपार राक्षस-सेना दिशाओं में सर्वत्र ऐसे भर गई, जैसे भगवान् के वर से वह पुनः सजीव हो उठी हो।

वह सारी सेना, अपने मारनेवालों के नाम ले-लेकर यह कहती हुई बढ़ आई कि हमें क्या जीतोगे? हम भी क्या मरनेवाले हैं? आज हम अपनी वीरता दिखलायेंगे। आओ, आओ!—उसे देखकर देवता एवं मुनि काँप उठे।

जैसे वासुकि आदि सर्प धरती को फोड़कर पाताल से निकल आये हों—यों अनेक भूत और पिशाच पर्वत जैसे शरीरों के साथ गगन को भी अपने लिए अपर्याप्त करते हुए उठ आये। उनके कानों में समुद्र के मध्यस्थ मकरों के कुंडल थे।

मायास्त्र के प्रभाव से उत्पन्न, धर्म को मिटानेवाले, अनैतिक मार्ग पर चलनेवाले, अनेक राक्षस, चतुर्मुख को एवं सत्र-यज्ञ करनेवाले मुनियों को भय-त्रस्त करते हुए विविध शस्त्र धारण करके खड़े हो गये।[1]

मरकर पुनः जीवन प्राप्त कर उठे हुए उन राक्षसों की अपेक्षा दुगुने प्रभाव से युक्त उज्ज्वल चन्द्रकला-समान दंष्ट्राओं से युक्त, व्याप्त होनेवाली अविद्या से युक्त एवं समुद्र के जैसे विशाल असुर और मुक्तादामों से भूषित विद्याधर-संघ सब दिशाओं में भर गये।

वे फाँदकर चलनेवाले सिंह जैसे और वक्र केसरोंवाले शरभ जैसे थे। सब दिशाओं का एवं पृथ्वी का सामना कर सकते थे। वे ऐसे फैल गये, जैसे युगांतकाल की प्रचंड अग्नि और समुद्र एक साथ उमड़ आये हों। वे अत्युज्ज्वल वज्र एवं कठोर शस्त्र धारण किये हुए थे।

यह सारा दृश्य देखकर प्रभु ने मातलि से पूछा—क्या यह सब माया है, या विधि का कृत्य है, या वीर-वलयधारी राक्षसों के तप का प्रभाव है; अथवा क्या है? यदि तुम समझते हो, तो बताओ। तब मातलि ने कहा—

हे पावस की घोर घटा-सदृश छटावाले! जैसे कोई मूढ़ व्यक्ति एक सूई बनाकर लोहे के बड़े काम करनेवाले लुहार के पास ले जाता है और उससे मोल लेने को कहता है—वैसे ही कठोर दिग्गजों के दाँतों से खोदे गये वक्षवाला यह रावण, अनिवार्य मायास्त्र का प्रयोग कर रहा है।

तुम्हारा नाम-स्मरण करने मात्र से अनेक व्याधियाँ तथा दुःखदायी कर्म-विपाक सब मिट जाते हैं। हे ऐसे प्रसिद्ध नामवाले! जैसे तीक्ष्ण दाँतोंवाले सर्प का घातक विष-प्रभाव अमोघ मंत्रोच्चारण से मिट जाता है और जिस प्रकार तुम्हारा स्मरण करनेवालों का जन्म-बंधन मिट जाता है, वैसे ही तुम्हारे अस्त्र के प्रभाव से यह (मायास्त्र) मिट जायगा।

वेदों के शिरोभूत उपनिषदों के लिए भी अवर्णनीय, अगम्य एवं अप्रतिपाद्य भगवान् (राम) ने अति प्रभावशाली ज्ञानास्त्र को यह कहकर प्रयुक्त किया कि चाहे यह रावण का तप-प्रभाव हो, चाहे शारीरिक बल हो, चाहे सत्य ही हो। जैसे भी हो, इसे मिटा दो।

---

१. इस पद्य से आगे के अनेक पद्यों तक श्लेष, यमक आदि शब्दालंकारों की अद्भुत छटा दिखाई गई है।—अनु०

सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेवाला धर्म को छोड़कर अन्य किसी मार्ग पर नहीं चलता। उसके प्राप्त होने पर जिस प्रकार जन्म से प्राप्त अविद्या रूप तथा आत्म स्वरूप को भुलानेवाली माया मिट जाती है; उसी प्रकार रामचन्द्र का ज्ञानास्त्र चलने पर वह मायास्त्र मिट गया।

नीलकंठ, चक्रधारी विष्णु एवं उन (चक्रधारी) के नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा लोक-कंटक राक्षसों के प्राण हरण करने पर तुले हुए थे। सब देवों से काम करानेवाले रावण ने सब वस्तुओं का नाश करने का विचार करके सम्मुख पड़े हुए एक शूल को हाथ में उठा लिया।

जिसमें सहस्र घंटियाँ बज रही थीं, जिसको देखकर देवता आशंकित होकर दुःख पा रहे थे, ऐसे शूल को वीर-वलयधारी रावण ने इस विचार से कि वह (शूल) शत्रुओं की शूरता को मिटा देगा, दर्शकों की दृष्टि उसपर पड़ने के पहले ही वेग से चलाया। राम ने उस शूल को आते देखा।

आगे बढ़ते हुए उस त्रिशूल को देखकर तीन अग्नियाँ भी त्रस्त हो चलीं। देवता भाग चले। वानर भाग चले। उस (त्रिशूल) का प्रकाश सब लोकों में फैल गया। उस-पर से किसी की दृष्टि हट नहीं पाती थी।

देवता अत्यन्त व्याकुल एवं शिथिल होते हुए राम से कहने लगे—हे वदान्य! रावण ने जिस त्रिशूल को चलाया है, उसे काटने की शक्ति तुम में ही है और किसी के लिए इसको काटना असंभव है। भीषण मुखवाले इस क्रूर त्रिशूल-रूपी काल को जीतो! जीतो!

अपने वेग से वज्र को भी त्रस्त करनेवाले उस त्रिशूल पर राम ने अनेक तीक्ष्ण शर प्रयुक्त किये। किन्तु, पवन-वेग से चले हुए वे शर ऐसे ही बिखर गये, जैसे उन राम का निरंतर ध्यान करनेवाले परम भक्त जनों पर उन (राम) का ध्यान कभी नहीं करनेवाले पापियों के पाप-कृत्य व्यर्थ हो जाते हैं।

राज्य देनेवाले उन वीर (राम) ने सब दिव्य अस्त्र प्रयुक्त किये। किन्तु, वे अस्त्र असत्य एवं पाप के समान उस त्रिशूल का कुछ नहीं बिगाड़ सके। तब प्रभु, शाप-वचन के समान तीक्ष्ण उस त्रिशूल की शक्ति को देखकर खड़े रहे और कुछ निश्चय नहीं कर पाये कि क्या करना चाहिए।

तब देवता यह सोचकर कि राम प्रतिकार करने का कोई उपाय न जानकर चुप हो गये हैं, भय से कातर हुए। धर्म-देवता थर-थर काँपने लगे। मनुष्य-भाव में स्थित राम अपने दिव्य प्रभाव का स्मरण नहीं कर सके। इतने में वह भयंकर त्रिशूल उनके समीप आ गया।

जब वह त्रिशूल घंटियाँ बजाते हुए, अग्नि उगलते हुए पुष्पमाला से भूषित प्रभु के वक्ष के निकट संहार करने के लिए आ पहुँचा, तभी राम ने अत्यन्त क्रोध के साथ हुंकार किया। उस हुंकार से वह त्रिशूल अनेक सौ टुकड़े होकर बिखर गया।[1]

१. वाल्मीकिरामायण में कथा है कि मातलि ने एक महाशक्ति-आयुध राम को दिया, जिससे उन्होंने रावण के त्रिशूल को मिटा दिया।—अनु०

वह देखकर देवता पुनः प्राण पाकर हर्षनाद कर उठे। भय से मुक्त हुए। पुष्पवर्षा करने लगे। उछलने लगे। नमस्कार करने लगे और कहने लगे—इस त्रिशूल को मिटा देनेवाले तुम ही आनेवाली सब विपदाओं को दूर कर सकोगे।

मेरा शूल किसी भी अस्त्र से नहीं टूटेगा, यह समझनेवाले रावण ने अपनी आँखों से राम के हुंकार-मात्र से उस शूल को टूटते हुए देखकर सोचा—जब यह राम मेरे शूल से आहत नहीं हुआ, तब यह अवश्य मुझे हरायगा। तब उसने विभीषण की बात का स्मरण किया।

मेरे सच्चे वरों को मारनेवाला यह क्या शिव है? नहीं तो क्या चतुर्मुख ब्रह्मा है? नहीं। कदाचित् वह विष्णु ही है क्या? वह भी नहीं। तो क्या कोई बड़ा तपस्वी है? नहीं। वह भी नहीं। कोई तपस्वी भी इतना पराक्रम नहीं दिखा सकता। यह वेदों का आदिकारणभूत परमपुरुष ही जान पड़ता है।

यह चाहे कोई भी हो। मैं अपने विलक्षण पराक्रम का त्याग नहीं करूँगा और दृढता से खड़ा रहकर विजय एवं यश प्राप्त करूँगा। यदि वह परमपुरुष स्वयं आकर मुझसे युद्ध करे और मुझे मार डाले, तो भी मैं युद्ध से विमुख नहीं होऊँगा—ऐसा विचार करके रावण और भी शरों का संधान करने लगा।

तब रावण ने निर्ऋति दिशा के अधिपति के शस्त्र का प्रयोग करने का विचार किया। तब वह अस्त्र उसके समीप आ पहुँचा। उसे हाथ में लेकर यम का पराक्रम भी मिटा देनेवाले अपने धनुष पर उसे संधान करके रक्त-नयनों से चिनगारियाँ उगलते हुए उसको प्रयुक्त किया।

उस अस्त्र से ऐसे भयंकर सर्प निकले, जो इस पृथ्वी को धारण करनेवाले दृढ कंठ-वाले आदिशेष के मन भी भय-विकंपित करते हुए असंख्य फन फैला रहे थे। अपार रूप में फुफकार भर रहे थे और ऐसे चल रहे थे, जैसे मेरु-पर्वत भी उनके लिए बहुत हल्की चीज हो।

वे अपने प्रत्येक मुख से विशाल समुद्र के समान विष उगल रहे थे। आँखों से आग उगल रहे थे। सारे अंतरिक्ष को ढकते हुए जा रहे थे। उज्ज्वल दाँतों से भरा हुआ उनका मुख भूतों के मुँह के जैसा भयंकर लगता था।

'यह अस्त्र (राम को) मारकर ही लौटेगा। विशाल धरती को समुद्रों-सहित पीकर ही रहेगा'—यों सोचकर सारा संसार काँप उठा। वे सर्प इस प्रकार चले, जिस प्रकार भयंकर आँखोंवाला राक्षस (रावण) सारे संसार को मिटाकर धूल बना देना चाहता हो।

इस प्रकार नाचते हुए सर्पों को अपने विषमय मुखों से सारी युद्धभूमि में आक्रमण करते हुए देखकर राम ने उन सर्वत्र फैले सर्पों को मिटाने के लिए सत्य से कभी न डिगनेवाले गरुडास्त्र का प्रयोग किया।

रावण के अस्त्र से उत्पन्न सर्प जितने प्रदेशों को भरकर फैले थे, उतने ही प्रदेशों में सारे अंतरिक्ष को भरते हुए, पवन-समान पंखों के वेग से युक्त, स्वर्णमय देह, वर्ण, नख एवं चोंच से शोभायमान तथा अतिविशाल पंखों से युक्त असंख्य गरुड प्रकट हुए।

अपने मुँहों से अग्नि बरसाते हुए संख्यातीत गरुड पक्षी ऐसे प्रकट हुए, जैसे जलाने को अशक्य लंका में आग लगाने के लिए स्वर्गवासियों ने मशालें उठा ली हों।

उन गरुड पक्षियों ने, उन सर्पों को अपने नाखूनों से ऐसे उठा लिया, जैसे कमल-नालों को उठा रहे हों और अपने चोंच-रूप करवाल से काटकर खाने लगे। तब उन सर्पों के फनों पर के माणिक्य अग्निशिखाओं के जैसे चमक उठे।

उन गरुडों के पंखों से निकली हवा से शिवजी के आभूषणों के सर्प भी त्रस्त हो उठे। तब अन्य सर्पों के डरकर भागने की बात क्या कहें?

तब रावण ने अत्यन्त रुष्ट होकर उसास भरते हुए, अग्निकण उगलते हुए, वज्र-समान भयंकर बाण छोड़कर सारे अंतरिक्ष को भर दिया।

किन्तु वे सब शर, उनके तीक्ष्ण अग्रभाग में राम के शर लगने से वेग से मुड़कर गिर गये और कुछ शर उस क्रूर राक्षस (रावण) के वक्ष में जाकर गड़ गये।

उस भयंकर युद्ध में त्रिनेत्र (शिव) के पर्वत को उठानेवाले उस बलवान् (रावण) की सब विद्याएँ भूल गईं। उसकी शक्ति शिथिल पड़ने लगी और राम की शक्ति और उत्साह बढ़ने लगे।

ब्राह्मणों के द्वारा अध्ययन करने योग्य वेदों के सत्य अर्थभूत राम ने क्रूर राक्षसों के अधिपति रावण के उठे हुए एक सिर को अर्द्धचन्द्र बाण से काटकर नीचे गिरा दिया।

प्रभंजन और आदिशेष के युद्ध से जैसे मेरु का शिखर टूटकर समुद्र में जा गिरा हो, वैसे ही आर्य राम का शर लगने से राक्षस का बलवान् सिर कटकर, अग्निमय होकर समुद्र में गिर पड़ा।

स्वर्ग के निवासी (आनन्दित होकर) ऐसे कूदे कि भूमि पर का त्रिकूट-पर्वत चूर-चूर हो गया। वे धूल उछालने लगे, गाने लगे, प्रार्थना करने लगे, नाचने लगे, उछलने लगे और राम का यश गाने लगे।

जैसे कोई मरा हुआ प्राणी अपने संचित कर्म के प्रभाव से तुरन्त जन्म लेकर उठ जाता है, वैसे ही उस (रावण) का सिर, क्रोध से ओठ चबाता हुआ, पुनः निकल आया। यदि उसकी तपस्या अत्युत्तम न होती, तो क्या ऐसा हो सकता था?

कटकर भी, जैसे वह कटा ही नहीं हो, यों उत्पन्न हुआ वह सिर बड़े क्रोध के साथ, वर्षा के समान, महिमामय प्रभु की निन्दा-वचन कहने लगा।

जो सिर विष उगलती आँखों के साथ शीघ्र जाकर समुद्र में गिरा, वह पर्वत-शिखर के समान सब ओर जाने लगा और शब्दायमान समुद्र का जल पीता हुआ मेघ के जैसे गरज उठा।

जब राम ने उसका सिर काट डाला, तब महान् वज्र भी काँप जाय, यों गरजने-वाले रावण ने, रोष के साथ सबके द्वारा प्रशंस्यमान, सर्व अक्षरों में प्रथम (अकार) अक्षर-स्वरूप उस भगवान् (राम) की भुजाओं पर चौदह बाण छोड़े।

दृढ चक्र को धारण करनेवाले राम यह जानते थे कि यह (रावण) सिर कटने पर भी पुनः उसे प्राप्त करने की तपस्या से युक्त है, इसलिए उन्होंने उस नीच (रावण) के

उस हाथ को, जिसमें चन्द्रकला-समान धनुष था, काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

जब राम के विजयी शर ने उसके एक हाथ को काट डाला, तब एक दूसरे हाथ ने निकलकर कटे हुए हाथ के धनुष को ले लिया। कोई नहीं जान सका कि उसका हाथ कब कटा और दूसरा हाथ कब निकला।

तब रावण ने (राम के) मनोहर रथ की रास हाथ में लेकर उसे हाँकनेवाले मातलि के बल को मिटाने के लिए, अपने कटे हाथ को उठाकर फेंका। तब उसके हाथ के रोंगटे काँटे के जैसे खड़े हो गये।

जब उज्ज्वल वज्रमय करवाल धारण करनेवाले राक्षस ने अपना पुष्ट तथा भारी हाथ फेंका, तब वह हाथ मातलि के वक्ष पर आ लगा, जिससे हृदय की दृढता कभी नहीं खोनेवाला मातलि अपने मुँह से रुधिर उगलता हुआ विकल हो उठा।

जब मातलि कटे हाथ की चोट से व्याकुल हो रहा था, तब उस रावण ने, जिसने पूर्व में कामर (नामक राग) गाकर शिवजी के हाथ से सान पर नहीं चढ़ाये जानेवाले तीक्ष्ण करवाल (ऐसा करवाल, जिसे कभी सान पर चढ़ाने की आवश्यकता न हो) प्राप्त किया था, उसके प्राण लेने के विचार से उसपर एक तोमर चलाया।

वह तोमर आया, तो ऐसा लगा कि मातलि के प्राण आज ही समाप्त हो जायेंगे। किन्तु, सबको अपना दास बनानेवाले (अर्थात्, सबके स्वामी) राम ने एक पंचमुखास्त्र चलाकर उस तोमर को चूर-चूर कर डाला।

रावण के शत-शत सिर एक के बाद एक लगातार निकलते रहने पर भी ज्ञान के अनुपम अधिपति राम ने अपना हस्त-कौशल दिखाते हुए, सहस्रों बाण चलाकर उन सब सिरों को काटकर गिरा दिया।

रावण के कटे हुए सिर समुद्र की वीचियों में, ऊँचे पहाड़ों पर, दिशाओं में सर्वत्र ऐसे गरजते हुए गिर रहे थे, जैसे बिजलियाँ गिर रही हों।

वे सिर बड़े पर्वतों को चूर-चूर करते हुए गिरे। विशाल गगन पर के नक्षत्रों को गिराते हुए उनसे जा टकराये। समुद्र में गिरकर उसका सारा जल मुँह से यों पी लिया कि बड़े-बड़े मत्स्य निराश्रय हो गये।

दीर्घ काल से पुण्यफल का अनुभव करते रहने के पश्चात् उस पुण्य के साथ ही उसके सब शुभ फल समाप्त हो जाते हैं। जो प्राणी पहले रावण को नमस्कार करते हुए उसकी परिक्रमा करते थे, वे अब उसके सामने ही उन कटे सिरों से आँखें निकाल रहे थे।

महान् बलशाली रावण ने अपनी भुजपंक्ति में धारण किये गये खड्ग, शूल, मूसल, दृढ वज्र, गदा, परशु आदि भयंकर शस्त्रों को राम पर ऐसे चलाया, जैसे वज्र को ही गिरा रहा हो।

तब पुरुषश्रेष्ठ महान् वीर (राम) यह सोचते हुए कि अब क्या करना चाहिए, इसे जीतने का क्या उपाय है, उसके सारे शरीर में शर चुभोने लगे।

उस (रावण) के मेघ को परास्त करनेवाले वक्ष में, कंधों में, विष को हरानेवाली आँखों में, जीभ में—यों उस वंचक के सारे शरीर में इस प्रकार शर चुभा दिये कि उसका वह शरीर शर रखने का तूणीर-जैसा प्रतीत होने लगा।

वे शर रावण के मुँहों में भर गये। उसकी आँखों को ढक दिया। वक्ष में सर्वत्र गड़ गये। उसकी देह को भेदकर निकल गये और ब्रह्मांड के परे भी जाकर भर गये।

(राम के) शर उसके रोम-रोम में लगकर उसके शरीर को ऐसे भेदकर चले कि उसके प्राण दब गये। उसका बल शिथिल हो गया। वह वैर और रोष से भरकर कातर हो खड़ा रहा।

जो रावण पहले देवों के नगर में भी संचरण करता था, वह विकलबुद्धि होकर रथ पर पड़ा रहा। उसकी देह के रुधिर से समुद्र के मध्य रहनेवाले मत्स्य मर गये।

देवता आनन्द से कोलाहल करते हुए उछल-उछलकर नाचने लगे। पाप पसीना-पसीना होकर शोक से उद्विग्न हो गिरा। तब रावण का सारथि उसे मूर्च्छित जानकर उसके मनोहर रथ को घुमाकर ले गया।

ज्योंही रावण अपने हाथों से शस्त्रों को नीचे गिराकर प्रज्ञाहीन होकर गिरा, त्योंही देवों का उद्धार करने के लिए साहस-पूर्ण कार्य करनेवाले राम धर्म का विचार करके शर छोड़ना बन्द करके शान्त हो रहे।

तब मातलि ने राम से कहा—बड़ी तपस्या से संपन्न रावण यदि प्रज्ञा प्राप्त कर लेगा, तब उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे। अतः, जब वह मूर्च्छा में पड़ा है, तभी उसे मार डालिए। तब महान् वीर (राम) ने उत्तर दिया—

जब रावण शस्त्रों को नीचे डालकर, प्रज्ञाहीन होकर पड़ा है, तब क्या मैं युद्ध के धर्म को त्यागकर इस दशा में उसे मार डालूँ? यह उचित नहीं है। अब मेरा मन युद्ध को बिलकुल त्याग देना चाहता है।

उस समय, ऊँची ध्वजाओं से युक्त रथों पर भयभीत होकर बैठे रहनेवाले राक्षसों में से कौन ऐसा था, जिसने राम की प्रशंसा नहीं की? इतने में महिमावान् देवों को भयभीत करते हुए, रावण मूर्च्छा से उठा।

क्रूरता प्रकट करनेवाली आँखों से युक्त वंचनाशील रावण प्रज्ञा प्राप्त करके उठा। उसने ऊँचे रथ पर स्थित राम को विशाल दिशाओं में न देखकर पीछे की ओर मुड़ा और क्रोध के साथ घूरकर (राम को) देखा।

अरे! देवों के देखते हुए तुमने अपना रथ घुमा लिया। वीर धनुर्धारी (राम) मुझे देखकर मंदहास कर रहा है। तुमने बड़ा अपराध किया यह कहकर वह सारथि पर रुष्ट हुआ और बोला—

हे असह्य वंचना से युक्त! मैंने तुझे ऊँचा उठाया। तू ऐश्वर्यवान् बना। किन्तु, तूने ऐसा काम किया, जिससे शत्रु लोग मुझे कायर समझेंगे। अब तू मुझसे नहीं बचेगा। वह इस प्रकार क्रुद्ध होकर उठा और—

अपने करवाल को कटाक्ष से देखकर उसे ऊपर उठाया। तब उस सारथि ने झट रावण के चरणों पर सिर झुकाकर कहा—आप कृपा करके मेरे मनोभाव को ठीक-ठीक समझें और अपने प्रलयाग्नि समान क्रोध को छोड़ दें।

हे प्रभु ! तुम पराक्रम करने से विरत होकर मूर्च्छित हो गये थे। यदि उस दशा में एक क्षण भी मैं वैसे ही खड़ा रहता, तो तुम्हारे प्राण निकल गये होते। तुम्हें कुछ विपदा उत्पन्न न हो, इसीलिए मैंने ऐसा कार्य किया। तुम्हारे इस दास का कार्य सदा सच्चा होता है।

सारथि का यह कर्त्तव्य है कि अपने रथी को श्रांत अथवा बलवान् देखकर उसके अनुसार कार्य करे। जब विपदा आसन्न दिखाई दे, तो उसके प्राणों को शिथिल न पड़ने दे और उसे अन्यत्र हटा ले जाय। अतः, खड्ग से मेरा सिर काटना उचित नहीं है।

यों कहकर सारथि ने नमस्कार किया। तब रावण ने विचार करके उसपर दया दिखाई। फिर, आज्ञा दी कि इस विजयी रथ को लौटाकर (युद्ध में) ले चलो। वह रथ राम के सम्मुख आया। तब राम ने उस वंचक (रावण) को देखा।

रावण ने यम से भी अधिक भयंकर अनेक कोटि शर बरसाये। कदाचित् यह दूसरा ही राक्षस तो नहीं है—ऐसी भ्रांति उत्पन्न करते हुए पहले से भी तिगुने बल के साथ भयंकर युद्ध किया। उसको देखनेवाले भय से काँप उठे।

राम ने सोचा—जहाँ धूम है, वहाँ अग्नि अवश्य होती है। वैसे ही, जबतक इस (रावण) के हाथ में धनुष है, तबतक मेरी विजय नहीं हो सकती। यह सोचकर राम ने एक ऐसे शर को प्रयुक्त किया, जिसमें वज्र छिपा था।

विष्णु (के अवतार राम) ने यों शर चलाकर, धरती का भार वहन करनेवाले हाथियों को भी जीतनेवाले रावण के भीषण तथा दीर्घ धनुष के दो टुकड़े कर दिये!

ब्रह्मा से निर्मित वह धनुष जब सहस्र नामवाले (विष्णु के अवतार राम) के महान् शर से टूट गया, तब देवता उछल-उछलकर नाचते हुए बोल उठे कि अब हमें अपनी तपस्या का फल प्राप्त हो गया।

किन्तु, रावण बारी-बारी से अनेक दृढ धनुष उठाता ही रहा। राम भी अनेक शरों से उन सब धनुषों को काट-काटकर विभिन्न दिशाओं में बिखेरते रहे।

दिग्गजों के दाँतों से टकराकर उनको तोड़ देनेवाले दृढ वक्ष से युक्त रावण ने राम के वक्ष पर मूसल, भाला, गदा, शूल, खड्ग आदि शस्त्र फेंके, जिससे लक्ष्मी देवी वहाँ से हट जायँ।

राम ने उन शस्त्रों को दूर हटा दिया और उन सबको चूर-चूर करके समुद्र में यों फेंक दिया, ज्यों वे समुद्र को पाट देनेवाले हों। फिर, उन दोष-रहित (राम) ने विचार किया—कोई शस्त्र इसे नहीं मार सकता, तो मुझे क्या करना चाहिए।

सूक्ष्म सिकता-कण से भी अधिक तथा बुद्धिमानों के विवेक से भी सूक्ष्म तीक्ष्ण शर इसकी पुतलियों की तारा को भेदकर पार हो गये। इसके घावों में घुस गये। फिर भी इसको कुछ नहीं कर सके। अब क्या करना चाहिए?

यह विचार कर, प्रभु ने यह निर्णय किया कि नारायण के नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मदेव का अस्त्र इसके वक्ष में प्रयुक्त करूँगा।

उस सुन्दर वीर ने आदि में उत्पन्न होकर, जिसने सारी सृष्टि रची थी, उन आदि-

ब्रह्मदेव के अस्त्र की पूजा की, फिर धनुष पर उसका संधान करके अपने मंदर-पर्वत जैसे कंधे तक डोरी को खींचा।

जिसने पूर्व में त्रिपुरों को जला डाला था, जिसने सुन्दर शाखाओं से युक्त सात वृक्षों (सालवृक्षों) को काट दिया था और जिसने वालि का वध किया था, ऐसे एक शर का संधान कर (ब्रह्मास्त्र मंत्र से उसे अभिमंत्रित करके) राम ने शत्रुओं के शर से निर्भीक हृदयवाले रावण पर प्रयुक्त किया।

विष्णु (के अवतार राम) का वह शर पवन एवं अग्नि के वेग और ताप को भी भेद करके चतुर्मुख होकर चला।

उसके अमित तेज से घना अंधकार फट गया। प्रलयकालिक सूर्य भी उससे मंद पड़कर जुगनू-जैसा हो गया। विशाल चक्रवाल पर्वत के बाहर स्थित समुद्र भी उमड़ चला।

उसी क्षण पुरुषोत्तम के चक्र के साथ वह ब्रह्मास्त्र उस क्रूर (रावण) के वक्ष में प्रविष्ट हो गया। तब पृथ्वी, दिशाएँ और अंतरिक्ष अस्त-व्यस्त हो चकराने लगे।

राघव का वह पवित्र शर तीन करोड़ वर्ष-पर्यंत की गई (रावण की) तपस्या को, आदिब्रह्मदेव के द्वारा प्रदत्त इस वर को कि तैंतीस करोड़ देवों में से कोई तुम्हें हरा नहीं सकेगा तथा सब दिशाओं तथा संसार में विजय पानेवाले (उस रावण के) भुजबल को मिटाता हुआ रावण के वक्ष में प्रविष्ट हुआ और उसकी सारी देह को भेदकर, उसके प्राण पीकर बाहर निकल गया।

रामचन्द्र का वह वेगवान् शर, हर्षनाद करनेवाले देवों, ब्राह्मणों तथा मुनियों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए, धरती को पाटते हुए, देवों के द्वारा की गई पुष्पवर्षा से अनुसृत होते हुए क्षीरसमुद्र में जा डूबा और पुनः पर्वताकार रथवाले रावण के तरंगायमान प्रभूत रुधिर-समुद्र के ऊपर से चलकर नीलाचल-सदृश प्रभु (राम) के तूणीर के भीतर जाकर स्थिर हुआ।

काले मेघ से जैसे बिजलियाँ गिरती हैं, वैसे ही रावण की भुजपंक्तियों से तथा मालाभूषित वक्ष से रत्न-पुंज एवं आभरण-राशि टूटकर बिखर गये। उसकी आँखों से धूम, अग्निकण और रुधिर उमड़ चले। यों शिखर-समान वह राक्षस (रावण) रथ के ऊपर से सिर नीचे की ओर औंधा होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

(रावण का) भयंकर सिंह का जैसा क्रोध शांत हो गया। मन शांत हो गया। छल मिट गया। शत्रुओं को मिटानेवाली बड़ी-बड़ी भुजाओं की शक्ति मिट गई। काम-मोह मिट गये। पराक्रम मिट गया। प्राणहीन होकर पड़े हुए उस धर्महीन के मुख, उस दिन से भी तिगुने प्रकाश से चमक उठा, जिस दिन उसने अपने में शांत रहनेवाले मुनियों के सिर तथा अस्तित्व को दबाते हुए उन्हें पराजित किया था।

तब रामचन्द्र ने मातलि को आज्ञा दी कि अपने इस रथ को पृथ्वी पर उतार लो। तब उस सारथि से प्रेरित रथ पृथ्वी पर उतर आया। तब कमनीय आकारवाले धर्मरक्षक पवित्रमूर्त्ति (राम) ने तरंगायमान होकर गगन को छूनेवाले रुधिर-प्रवाह में पड़े हुए (रावण) की देह को देखा।

मातलि को यह कहकर कि तुम रथ लेकर स्वर्ग में चले जाओ, राम ने उसे भेज दिया। पृथ्वी पर आने पर भाई तथा अन्य वानर-वीरों ने उनको घेर लिया। फिर, लक्ष्मी-पति ने युद्ध में कभी पीठ न दिखानेवाले वीर (रावण) के निहत होकर पड़े हुए शरीर को अपनी आँखों से भली भाँति अवलोका।

तरंगायमान समुद्र से आवृत पृथ्वी की रक्षा करनेवाले पराक्रम से युक्त महान् वीर (राम) के धनुष से निकले बाण से युद्धक्षेत्र में निहत होकर, मन का सारा पाप छोड़कर मरकर गिरे हुए उस (रावण) के सिरों पर, भुजाओं पर, विशाल पीठ पर, हाथों पर, असंख्य वानर लपककर चढ़ गये और नाचने लगे, जैसे पहाड़ पर चढ़े हों।

राम ने देखा कि सुरभित केसरोंवाले पुष्पहारों में बैठनेवाले भ्रमर जिनपर मँड़राते रहते हैं, ऐसे पुष्पहारों से पार्श्वों में संयुक्त (रावण की) पीठ पर दिग्गजों के दाँत अपूर्व कला से युक्त किसी आभरण के जैसे ही, उन्हीं (दंतों) के द्वारा उत्पादित चिह्नों[1] के मध्य ऐसे शोभित हो रहे थे, जैसे मेघवन के बीच में चन्द्रकला एवं उस (चन्द्र) से पृथक् होकर पड़ा हुआ उसका कलंक साथ-साथ संचरण कर रहे हों।

राम (रावण के) निकट आकर खड़े हुए। कमल-समान नयनोंवाले उन (राम) का क्रोध, जो पल्लव-समान कोमल देवी (सीता) के निमित्त से उत्पन्न हुआ था, उस दर्पवान् (रावण) के उज्ज्वल आकार के साथ ही, समाप्त हो गया। उस (रावण) की पीठ पर घावों के दाग देखकर उन्होंने अपने मन में सोचा कि अब उनका यह पराक्रम व्यर्थ हो गया[2] और मंदहास करके बोल उठे—

इस (रावण) ने सचमुच ही तीनों लोकों पर विजय पाई थी। परन्तु, इसका वध करने से मेरे भुजबल की जो मनोहर प्रशंसा हो सकती है, वह (प्रशंसा) युद्ध से भागते समय इसकी पीठ पर उत्पन्न घावों के इन चिह्नों के कारण कलंकित हो जाती है।

कार्त्तवीर्य नामक व्यक्ति से यह रावण बाँधा गया था—ऐसा प्रवाद है। यह सुनकर मेरे मन में (रावण से युद्ध करने से) ग्लानि उत्पन्न हुई थी। अब मैं अपनी आँखों से इसकी पीठ पर घाव देख रहा हूँ। शिवजी के कैलास की बात रहने दो।[3]

फिर, राम ने विभीषण के प्रति कहा—हे आभरणभूषित वक्षवाले! भोजन की कामना से (अर्थात्, भोजन करते हुए जीवित रहने की कामना से), शत्रुओं के परिहास का पात्र बनकर अपने यश को मिटाकर, युद्ध में पीठ दिखाकर भागनेवालों के जैसे ही इस

---

१. भाव यह है—दिग्गजों से रावण जब भिड़ा था, तब उनके दाँत उसके वक्ष पर लगकर टूट गये थे। वे दंतखंड उसकी पीठ पर से निकल आये और वैसे ही रह गये। वे रावण के महान् पराक्रम के सूचक बने थे। यह बात आगे के पद्यों में स्पष्ट होती है।—अनु०

२. भाव यह है—रावण के पीठ पर घावों के दाग देखकर राम ने समझा कि वह रावण कभी युद्ध में पीठ दिखाकर भागा था, जिससे वे घाव उत्पन्न हुए थे। अतः, ऐसे भगोड़े पर उन्होंने जो पराक्रम दिखाया, उसका कुछ महत्त्व नहीं है।—अनु०

३. भाव यह है—शिवजी के कैलास पर्वत को उठाते समय उसके नीचे दबकर रावण रोया था। वह बात छोड़ दी जाय, किन्तु इसकी पीठ पर जो घाव दिखाई दे रहे हैं, उनसे इसकी बलहीनता अच्छी तरह प्रकट होती है।

रावण पर मैंने जो विजय पाई है, वह प्रशंसनीय नहीं है। इसके वध से मुझे शाश्वत यश नहीं मिलेगा।

राम की ये बातें सुनकर, विभीषण अश्रुओं की धारा बहाने लगा। वह उष्ण निःश्वास भरकर, शोक से म्लानचित्त होकर बोला—हे प्रभु! ऐसे असुन्दर वचन कहना उचित नहीं है। फिर तो जैसे प्राण वहन करना ही असह्य हो गया हो, यों विकल होकर उसने कहा—

हे प्रभु! (रावण पर) कार्त्तवीर्य अर्जुन एवं वालि ने जो विजय पाई थी, वह (रावण के प्रति) देवों के दिये शाप के कारण संभव हुआ था। यह सत्य है कि माता से भी अधिक पूजनीय उन (सीता) देवी की इसने जो इच्छा की थी, वह व्याधि एवं आपका क्रोध न होते, तो क्या इस (रावण) को कोई वीर जीत सकता था? (कोई नहीं।)

यह (रावण) संसार की सीमाओं तक शत्रुओं को खोजता हुआ गया था और विशाल दिशाओं की सीमा पर स्थित पर्वताकार दिग्गजों के साथ भिड़ गया था। उस समय उन गजों के दंत पूर्ण रूप से इसके वक्ष के भीतर पीठ तक गड़ गये। उसी कारण से इसकी पीठ पर घाव के चिह्न दिखाई पड़ रहे हैं। अन्यथा शत्रुओं के शस्त्र इसका क्या कर सकते थे?

दिग्गजों के वे दाँत (टूटकर) इसके वक्ष के आभरण बन गये। युद्धों में शंखध्वनि के साथ बड़े पराक्रम से जो यम-समान शर इसपर आकर लगे थे, उनके वेग से एवं हनुमान् के अति प्रखर मुष्टिघात से वे सब दाँत पीठ पर आ निकले थे।

हे स्वामिन्, विचार करने पर विदित होगा कि (इसकी पीठ पर के) ये घाव कैसे उत्पन्न हुए थे। कठोर विष भले ही शिवजी को खा डाले, गरुड को भले ही साँप काट खाये, तो भी इस लोक के ही तथा बाहर के अन्य लोकों के बड़े शत्रुओं को मारनेवाले सभी प्रकार के शस्त्र भी इसपर आक्रमण करने की शक्ति तक नहीं रखते थे।

हे विजयी! पूर्वकाल में समुद्र में डूबनेवाली पृथ्वी को उठानेवाले आदि वराह भगवान् से लेकर सभी देव, जो पहले यह कहते थे कि अहो! हम कब इस रावण की पीडा से त्राण पायेंगे, अब कह रहे हैं कि तुमने हमको इस दुःख से मुक्त कर दिया। फिर संशयग्रस्त होकर कह रहे हैं कि क्या रावण सचमुच निहत हो गया।[१]

तब प्रभु बोले—'ऐसी बात है?' फिर संशय एवं ग्लानि से मुक्त हुए और अपनी भुजाओं की ओर देखा। फिर कहा—हे विभीषण! क्या मरे हुए व्यक्ति से वैर रखना चाहिए? वह ठीक नहीं है। अतः (तुम इसके प्रति अपना वैर भूलकर) शास्त्रोक्त विधान से इसकी अंतिम क्रिया संपन्न करो।

उदार राम ने विभीषण से यह बात कही और जो देवता दुःख से मुक्त होकर उन (राम) की प्रस्तुति करते हुए आनन्दित हो आये थे, उनसे मिलने के लिए गये। इधर विभीषण भी अपने कर्त्तव्य में निरत हुआ।

करुणामय राम ने आज्ञा दी कि अब रावण के सब प्रकार के बुरे कार्य (उसके मर जाने से) क्षम्य हो गये हैं। अतः, तुम, जो अभी वृद्धि पाने योग्य हो, उसकी अंतिम क्रिया

१. यह पद्य प्रक्षिप्त-सा लगता है।—अनु०

पूर्ण करो। तब विभीषण अत्यन्त शोक से उद्विग्न होकर रावण के शरीर पर ऐसे गिरा, जैसे एक पर्वत पर दूसरा पर्वत गिरा हो।

अमिट क्षमाभाव से पूर्ण विभीषण, विवेक से शांत करने योग्य मन की वेदना को कम करते हुए मुक्त कंठ से रो उठा। उसे देखकर संसार के सब प्राणी एवं देव, मुनि आदि सभी करुणा से द्रवित हो उठे।

हे अपरिमेय शक्ति से युक्त भाई! हे भाई! हे असुरों के लिए प्रलय-समान! हे अमरों के लिए यम बने हुए! कोई भी विष बिना खाये किसी के प्राण नहीं हरता। किन्तु जानकी नामक विष ने आँखों से देखने मात्र से तुम्हारे प्राण हर लिये। तुम भी युद्धक्षेत्र में मरे पड़े हो! मैं तुम्हारा भाई तुमको छोड़कर चला गया था, क्या तुम अभी मेरी बातों पर विचार करनेवाले हो?

जब तुम अपनी भौंहों को सिकोड़ते थे, तब उससे विचलित होकर दिग्गज भी अपने स्थान से भाग जाते थे। मैंने तुमसे कहा था—'किसी के प्राण-समान कुलीना पत्नी पर बिना विचार किये कामना रखना अमिट अपयश का ही कारण बनेगा', किन्तु तब तुम मुझ-पर क्रुद्ध हुए। अब क्रोध शांत होने पर क्या मेरी बातों को समझते हो? सारे राक्षस-कुल को मिटाकर भी स्वयं अपनी उन्नति करने की कामना से तुमने युद्ध करने की जो इच्छा की थी, क्या वह अब मिट गई है।

हे पर्वत-समान कंधोंवाले! मैंने कहा था—पूर्व में जो वेदवती नामक नारी (तुम्हारे कारण) अग्नि में प्रवेश करके मर गई थी, वही यह (सीता) है, जो सारे संसार की माता के समान है। किन्तु तुमने मेरी बात नहीं सुनी। घोर युद्ध में अपने सारे कुल के मिटते रहने पर भी तुमने युद्ध छोड़कर संधि नहीं की। अब तुम मर गये। क्या राघव के भुजबल को प्रत्यक्ष देखकर निष्प्राण हो गये हो?

सुरभित कमल पर आसीन (ब्रह्म) देव एवं परशुधारी (शिव) के दिये गये वर सब तुम्हारे सिरों के साथ ध्वस्त हो गये। सीता का हरण करके उसे लाते समय तुमने नहीं जाना हो, तो अब यह समझ रहे हो न कि रामचन्द्र देवाधिदेव (भगवान् विष्णु) ही हैं।

क्या तुम वीरों के प्राप्य लोक में जा पहुँचे हो? या सबसे उत्तम देव ब्रह्मा के लोक में जा पहुँचे हो? क्या चन्द्रकला को धारण करनेवाले शिव के लोक में जा पहुँचे हो? हे भाई! कौन निर्भय होकर तुम्हारे प्राणों को ले गये हैं? यह सब रहने दो। अब मन्मथ देव अपने सब खेल समाप्त कर चुके न?

तुमने अपने अति बलवान् बहनोई (शूर्पणखा के पति) को मार डाला था। क्या ओंठ चबाती हुई (क्रोध प्रकट करके) शूर्पणखा ने ही अति क्रूर षड्यन्त्र करके तुमसे इस प्रकार बदला लिया है? हे वीर! नरकवासी और स्वर्गवासी पापी एवं पुण्यवान, सब लोग हमारे शत्रु हैं। अतः, तुम किनसे जाकर मिलनेवाले हो! हाय! तुम कितने दीन हो गये?

विजयलक्ष्मी का, कला की अधिष्ठात्री देवी का तथा कीर्त्तिलक्ष्मी का आलिंगन करनेवाले तुम्हारे हाथों ने ईर्ष्या से भरकर, देवों के लिए भी अगम्य प्रभाव से युक्त, पातिव्रत्य में प्रसिद्ध लक्ष्मी के अवतार सीता देवी को छूना चाहा और तुम अपने प्राण खोकर

अमिट अपयश के भागी बने। हे कामोन्मत्त! दिग्गजों के दाँतों को तोड़कर बलिष्ठ बने अपने वक्ष से अब तुम धरती का आलिंगन कर रहे हो।

इस प्रकार उद्विग्न होकर रोनेवाले विभीषण को जांबवान् ने अपने हाथों से सँभाला और कहा—हे पर्वत-समान उभरे कंधोंवाले! विधि के विधान को जानना असंभव है। ऐसे विवेक को छोड़कर तुम शोक में डूब रहे हो। यह उचित नहीं है। विभीषण अपने मन को किंचित् स्वस्थ करके हटा। तभी मय की पुत्री दीर्घ नयनोंवाली (मंदोदरी) ने राक्षस (रावण) की मृत्यु का समाचार सुना।

अनेक लक्ष राक्षस-स्त्रियाँ अपने सुन्दर केशपाशों को बिखेरे हुए, रोती-कलपती हुई उसके साथ निकलीं। यों स्मरण और विस्मरण से रहित चित्तवाली होकर मंदोदरी भी आ पहुँची।

दया और धर्म को ही अपना साथी बनाकर जीवों की रक्षा करनेवालों के उत्तम कुल में उत्पन्न हुए किसी व्यक्ति के ग्लानि-रहित कुकृत्य के समान ही, राक्षसियों के विलखने की ध्वनि सर्वत्र फैल गई। (अर्थात्, उत्तम कुल में उत्पन्न कोई मनुष्य नीच काम करे, तो वह बात शीघ्र सर्वत्र फैल जाती है। वैसे ही रोदन-ध्वनि लंका में सर्वत्र व्याप्त हो गई।)

नूपुरों को बजाते हुए, मंजीरों के शब्द होते हुए, राक्षसियाँ नगर के सब गोपुरों से निकलीं। कुछ राक्षसियाँ, यह कहकर कि इन्द्र का वैर मिट गया, अपने भारी शरीर को छोड़कर स्वर्ग के मार्ग पर चलीं।

कुछ राक्षसियाँ घोर घटा के समान गगन-मार्ग से आईं। उनकी चिल्लाहट वज्र-ध्वनि के समान थीं। उसकी छटा बिजली के समान चमकी। उनके आभरणों का प्रकाश इन्द्रधनुष का दृश्य उपस्थित कर रहा था। उनकी काजल-लगी आँखों से आँसुओं की वर्षा हो रही थी।

सिर पर हाथ जोड़े हुए, अश्रुधाराएँ मुख से स्तन-तट पर बरसाते हुए, वे राक्षसियाँ एकत्र होकर आईं और रावण के पर्वतों से भी ऊँचे कंधों पर यों गिरीं, ज्यों समुद्र की वीचियों पर हंसिनियाँ गिरी हों।

वे राक्षसियाँ घेरकर (रावण) के सिरों का, भुजाओं का, पादों का, वक्ष का यों सारे शरीर का बारी-बारी से आलिंगन करतीं, रोतीं और मूर्च्छित होकर गिर जातीं।

यदि विचार किया जाय कि उन राक्षसियों को अबतक क्या दुःख था, तो यही कहना होगा कि वह दुःख प्रणय-कलह का ही दुःख था। वैसा दुःख होने पर भी उस (रावण) से पुनः समागम होने की आशा में वे अपना समय व्यतीत करती थीं। अब वे राक्षसियाँ रावण के पर्वताकार अंगों पर एक के ऊपर एक होकर गिरीं, मानों वे उसके प्राणों का ही आलिंगन कर रही हों।

यक्षिणियों, राक्षसियों, नागस्त्रियों, मोहहीन सिद्ध जाति की स्त्रियों तथा विद्याधर-स्त्रियों ने अपरिवर्त्तनीय प्रेम के कारण बुद्धिभ्रष्ट होकर क्रमहीन रूप में उस रावण का आलिंगन किया।

वे यह कहकर रोने लगीं —तुमने धर्महीन होकर सीता को अपने मन में रखा था। क्या अब भी उसे नहीं भूले हो ? तुम अपने अधर-रूपी पुष्प का मधु हमें नहीं दे रहे हो ? आँखें खोलकर नहीं देख रहे हो। हम पर करुणा नहीं कर रहे हो। क्या तुम मर गये हो ?

मयपुत्री (मंदोदरी) मन की धीरता एवं शरीर-बल से युक्त रावण के वक्ष पर इस प्रकार पड़ी रही, मानों वीचियों से पूर्ण समुद्र के मध्य बिजली पड़ी हो और यों रोई कि वृक्ष और पर्वत भी द्रवित हो उठे।

हे माई ! हे माई ! मुझ, क्रूर की यह कैसी दशा हुई ? क्या राक्षसराज के मरने के पश्चात् ही मुझे मरना था ? हाय, मैंने पहले से जो सोच रखा था (कि यदि रावण के मर जाने की संभावना उत्पन्न होगी, तो उससे पहले मैं मर जाऊँगी), वह व्यर्थ हो गया। क्या यह वही मुकुट से भूषित सिर है, जो पृथ्वी पर मेरे सम्मुख गिरा हुआ है ? (हे नाथ) क्या अबसे तुम मुझे अपना मुख नहीं दिखाओगे ? रावण की मृत्यु कैसे हो गई ? कैसे हो गई ? क्या पाप का यही परिणाम होता है ?

श्वेत अर्कपुष्प से भूषित जटावाले (शिव) के हिमाचल को जिस शरीर ने उठाया था, उस सुन्दर देह में उस (राम) के शर ऊपर से नीचे तक चुभे हुए हैं। क्या वे प्राणों के रहने के स्थान को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ही एक तिल भर भी स्थान न छोड़कर यों बेध डाला है ? अथवा, क्या यह सोचकर कि मधुपूर्ण पुष्पों से भूषित जानकी को अपने मन के बंधन में रखनेवाली कामना कहीं छिपी हुई है, यह सोचकर उन शरों ने देह में सर्वत्र घुसकर यों टटोला है ?

उस एक (अर्थात् , अनुपम राम) के धनुष से निकले शरों ने मुक्ताओं से भूषित इस वक्ष को पर्वत की कंदरा के जैसे भेद डाला और वे इस लोक से परे बहुत दूर चले गये। रावण युद्ध का बल खोकर, धीरता खोकर, वर-प्रभाव खोकर इस प्रकार (पहले से) भिन्न दशा में पड़ा है। मैं मिट्टी ! (मेरा सर्वनाश हुआ)। निर्मम होकर उस बाण ने इसके प्राण पी डाले। क्या मनुष्य में इतनी शक्ति होती है ?

स्त्रियों का भूषण बनी हुई जानकी की अनुपम सुन्दरता, उनका पतिव्रत्य, ऊँचे कंधोंवाले रावण की कामना, उस शूर्पणखा की कटी हुई नासिका, चक्रवर्त्ती दशरथ की आज्ञा से व्रत धारण कर (रामचन्द्र का) भीषण अरण्य में आगमन— ये सब अन्त में देवेन्द्र के तपःफल के रूप में परिणत हो गये। अहो !

मैं यह सोचकर गर्व करती रहती थी कि देवों का, दिग्गजों का, शिव का, ब्रह्मा का, कमलाक्ष विष्णु का तथा अन्य सबसे अधिक बलवान् रावण का कभी अंत नहीं होनेवाला है। मैंने यह कब सोचा था कि तुम्हारे द्वारा बड़ी श्रद्धा से की गई समुद्र-समान तपस्या का एवं उससे उत्पन्न दुर्लभ वर-रूपी रक्षा का भी अंत कर देने में दक्ष कोई मनुष्य होगा ?

मैंने सोचा था—साढ़े तीन करोड़ वर्षों की आयु तथा वह भुजबल, जिसे बड़े विद्वान् भी मापने में असमर्थ हैं—कभी नहीं मिटेंगे। तुम्हारी तपस्या को अति शक्तिशाली समझकर मैं निश्चिंत रहती थी। मैंने कब सोचा था कि तुम्हारे वरप्रभाव-रूपी तरंगायमान अपार क्षीरसागर को अंत में सीता नामक आमन विकृत कर नष्ट कर देगा।

कौन ऐसे हैं, जो सृष्टि के रहस्य को जान सकते हैं? ऊपर के सात लोक और नीचे के सात लोक जिस वीर से भयत्रस्त रहते थे, वही वीर आज स्वर्ग पहुँच गया। मन्मथ गाँठवाले इक्षु-धनुष से भ्रमरों की डोरी पर पुष्पबाण चढ़ाकर दिन-भर जिसकी भुजाओं पर प्रयुक्त करता था, वह अनुपम लक्ष्यभूत व्यक्ति आज मनुष्यों के बाण का लक्ष्य बन गया और अपार बल से उन (मनुष्यों) ने इसे मार डाला।

मैंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि यह राम क्षीरसागर पर अमृत के समान रहकर निद्रा करनेवाला नारायण ही है। तुमने किंचित् भी विचार किये बिना उस उत्तम की पत्नी का हरण कर ले आये। उसके फलस्वरूप यह देखो, तुम्हारे वक्ष की क्या दशा हो गई है?

यों रोती हुई वह (मंदोदरी) शोकोद्विग्न हुई। फिर उठी। उस (रावण) के स्वर्णाभरणों से भरे वक्ष पर अपना हाथ फेरा। फिर हट गई। जोर से चिल्लाकर बिलखती हुई मूर्च्छित हो गिर पड़ी।

स्वर्ग की स्त्रियाँ, विद्याधर-स्त्रियाँ, पाताल की नागस्त्रियाँ, तपस्या में निरत मुनियों की स्त्रियाँ, पातिव्रत्य से संपन्न मनुष्य-स्त्रियाँ—सब स्त्रियाँ उस मंदोदरी) की प्रशंसा करने लगीं।

फिर, विभीषण ने यथाविधि अग्नि-प्रतिष्ठा करके वेदोक्त विधान से अंतिम संस्कार रचकर शोक-भरे हृदय के साथ अति सुन्दर रूपवाले अपने भाई (रावण) को चिता पर रखा।

विभीषण ने अगरु, चन्दन आदि से बनी उस चिता पर रावण की देह को रखा। उस समय अन्य सब शब्दों को दबानेवाले शंख की ध्वनि होने लगी।

श्वेत छत्र और ध्वजा से संयुत उस चिता को राक्षस-स्त्रियाँ चारों ओर से घेरकर खड़ी थीं। विभीषण ने यथाविधि अग्नि-प्रदान किया।

घड़ों में भरे जल से भी अधिक अश्रुजल बहाकर विभीषण ने सब अंतिम-कृत्य पूर्ण किये और मयपुत्री मंदोदरी, जो अपने पति के साथ ही निष्प्राण-सी हो गई थी, अग्नि की आहुति बनी।

विभीषण ने अन्य राक्षसों का भी अंतिम संस्कार यथोक्त रूप में यों किया, ज्यों और कोई इतनी श्रद्धा से अंतिम संस्कार करनेवाले नहीं हों। जलांजलि दी। फिर, विजयी वीर (राम) के शब्दायमान वीर-वलयों से भूषित श्रीचरणों के निकट जा पहुँचा।

विभीषण प्रणाम करके खड़ा रहा। उदार स्वभाववाले राम ने उसे देखकर कहा—हे विवेकशील! तुम्हारे मन का दुःख दूर हो। अनादि काल से यही क्रम चलता आ रहा है, इस प्रकार कहकर उन्होंने उस (विभीषण) के अपार शोकभार को दूर किया। (१-२५३)

अध्याय ३७

प्रत्यागमन पटल

रामचन्द्र ने अपनी शरण में आये विभीषण से कहा—'हे मनु द्वारा प्रतिपादित मार्ग के ज्ञाता तथा अन्य शास्त्रों के ज्ञान से युक्त ! चिन्ता मत करो।' फिर, अपूर्व तपस्या के फल से युक्त विभीषण को सांत्वना दी और महान् तपस्या के व्रत से युक्त अपने भाई (लक्ष्मण) से कहा—

सूर्यपुत्र, वायुपुत्र तथा अन्य सब वानर-वीरों के साथ जाकर तुमलोग आदि भगवान् के द्वारा प्रकाशित (वेद) ग्रन्थों के विधान के अनुसार इस नीतिमान् (विभीषण) को (लंका के राज्य का) उत्तम मुकुट पहनाओ।

यह कहकर विजयी वीर (राम) ने अपने अनुज तथा अन्य वीरों को विदा किया। तब सब देवता तथा दिक्पाल वहाँ आकर अपने-अपने योग्य (राज्याभिषेक के) कार्य करने लगे।

पूर्ण विजय से युक्त देवता, पृथ्वी के चारों ओर के समुद्रों के जल, अनेक पुण्य-तीर्थों के जल, सिंह की प्रतिमा से युक्त आसन तथा अन्य सभी आवश्यक उपकरण ले आये।

सुगंधित कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के आज्ञानुसार हिरण के जैसे मुखवाले मय ने, रत्नों एवं स्वर्ण से एक ऐसा उज्ज्वल मंडप निर्मित किया, जिसे देखकर गंगा को जटा में धारण करनेवाले शिव आदि देवता भी आश्चर्यचकित हो गये।

देवों ने सत्यमय वेदों में वर्णित विधि के अनुसार दिव्य तीर्थों का जल लेकर विभीषण का अभिषेक किया। सब के अधिपति राम की आज्ञा के अनुसार युवक सिंह-सदृश (लक्ष्मण) ने स्वयं अपने हाथों से मुकुट पहनाया।

जैसे कोई नीलवर्ण पर्वत अपने शिखर पर सूर्य को धारण करके एक रत्नमय आसन पर विराजमान हुआ हो, उसी प्रकार प्रभूत लंका के निवासियों का राजा (विभीषण) विजय से संपन्न हो सिंहासन पर शोभित हुआ। तब सब राक्षसों ने उसका जय-नाद किया।

देवों तथा सिद्धों ने बड़े प्रेम से सुरभित पुष्पों को उसपर बरसाया। त्रिभूतियों तथा मुनियों ने उसे आशीर्वाद देकर उसपर पुष्प डाले।

यों मुकुटभूषित राक्षसराज ने, लक्ष्मण के श्रीचरणों को नमस्कार करके विविध प्रकार से उनका सत्कार करके वज्रघोष से यह कहा—

हे पर्वतों को लज्जित करनेवाले कंधों से युक्त (राक्षस-वीरो !) मेरे लंका में लौटकर आने तक तुम इस नगर पर राज्य करते रहो। यों प्रार्थना करके वह विजयमाला से भूषित महान् वीर (राम) के चरणों के निकट आ पहुँचा।

राक्षसराज विभीषण जब वानरों के महाराज के साथ आकर राम के चरणों

पर नतमस्तक हुआ, तब लक्ष्मी से अधिष्ठित वक्षवाले प्रभु राम ने उसे अपने गले से लगा लिया और—

वेदों को प्रकाशित करनेवाले विष्णु के अवतार (राम) ने कहा—अविनश्वर धर्माचरण से युक्त हे वीर ! तुम ऐसे राज्य करते रहो कि तीनों लोकों के निवासी तुम्हें नमस्कार करें और तुम दिव्य महिमा, नीतिक्रम, धर्म, इन सबके अनुकूल रहकर और परलोक के फल, यश और पुण्य को शाश्वत रूप में प्राप्त करो।

अपनी माता (कैकेयी) के वचन का पालन करनेवाले प्रभु ने अनेक उत्तम नीति-वचनों का उपदेश देकर फिर विभीषण से कहा—'हे उत्तम यश से पूर्ण ! तुम अपने कुल के लोगों के साथ मिल-जुलकर जीवन बिताओ।' फिर, बलवान् हनुमान् को देख-कर कहा—

जब इधर यह सब हो रहा था, तभी राम ने अपने कर्त्तव्य का विचार कर हनुमान् से कहा—तुम जाओ और प्रवाल-समान अरुण अधरवाली मनोहर कलापी-समान छटा से युक्त उस (सीता) देवी को सारा समाचार सुनाओ।

चिरंजीवी मारुति राम को नमस्कार करके उस अशोकवन में जा पहुँचा, जहाँ उत्तम कमलपुष्प पर आसीन लक्ष्मी (के अंशभूत सीता) वन्दिनी बनी हुई थीं और सारा वृत्तान्त उन देवी को इस प्रकार सुनाया, जिस प्रकार कोई मुरझाई हुई लता को पुनः पल्लवित करने के लिए जल सींच रहा हो।

पर्वत-समान कंधोंवाला हनुमान् अनेक बार राम-नाम का उच्चारण करता हुआ, गाता हुआ, दाईं ओर से घूम-घूमकर आनन्द से नाचता हुआ, काँपते हुए अपने दोनों हाथों को जोड़कर सिर पर रखे हुए (सीता देवी के सम्मुख) खड़ा हुआ और बोला।

हे मुग्धता से युक्त देवी ! तुम्हारी जय हो। हे आभरण-भूषित ! जय हो। तुम्हारी जय हो। तुम सुख से जियो। तुम्हारा मंगल हो। पूज्य प्रभु नामक मत्त गज ने क्रूरता की पराकाष्ठा बने हुए राक्षस को रौंद डाला है। जय हो।

उस (रावण) के सिर भूधरों के जैसे पड़े हैं। रत्नाभरणों से भूषित जो भुजाएँ समुद्र में उठनेवाली तरंगों के समान उठती थीं, वे उसकी देह के साथ अब मिट्टी में अचंचल पड़ी हैं।

महिमामय प्रभु की आज्ञा से एवं क्रूरता से रहित विभीषण के प्रेम के कारण ही लंका में स्त्री-जाति बच गई। उनके अतिरिक्त और कुछ भी (लंका में) जीवित रहने का श्रेय नहीं पा सका है।—यों हनुमान् ने कहा।

जब हनुमान् ने पीने योग्य अमृत-समान ये वचन कहे, तब सीता देवी (आनन्द के कारण) यों पुष्ट हुईं, ज्यों चन्द्रकला ही, दिन-दिन बढ़कर पूर्ण होने पर भी अपने में एक हिरण का चिह्न (रूपी कलंक) को देखकर उस (कलंक) से रहित होने के लिए अब एक साथ ही षोडश कलाओं से भर गई हो और कलंक से रहित दिखाई पड़ रही हो (अर्थात्, पूर्ण चन्द्र ही सीताजी के मुख के रूप में प्रकट हुआ)।

सर्प से (राहु या केतु से) ग्रस्त होकर मुक्त हुए चन्द्र के समान उन (सीता)

के कुमुद-समान अधर तथा मुख प्रफुल्ल हो उठे। आनन्दपूर्ण प्रेम के कारण उनके उरोज दुगुने पीन हो गये, जिनके भार से कृश कटि और भी विकंपित हो गई।

उन (सीता) के मन में उमड़नेवाली आनन्द की उमंगें, उज्ज्वल कंकणों को तोड़ते हुए बढ़नेवाली भुजाएँ, कटिवस्त्र को भी स्रस्त करते हुए बढ़नेवाला मध्य भाग या उनका उरोज, न जाने इनमें से कौन भाग पहले अभिवृद्ध हुआ, पता नहीं चलता था।

उनकी सुन्दर भौंहें वक्र हुईं, स्तन पीन हो प्रस्वेद से भर गये। तब स्खलित वाणी बोलनेवाली वह (सीता) सोचती कुछ और कहती कुछ थी। क्या अत्यधिक आनन्द का गुण भी मद्य के समान ही होता है !

गार्हस्थ्य के कलंक को दूर करनेवाली उत्तम स्वभाव से युक्त वह (सीता), इस प्रकार की दशा से युक्त हो गई कि क्या कहना है, कैसे वचन कहने हैं—इस विषय में कुछ सोच न सकने के कारण दीर्घकाल तक मौन रहीं।

नीति को जानकर उसके अनुसार चलनेवाले हनुमान् ने निवेदन किया—आप मौन हो गई हैं। क्या असीम आनन्द के उमड़ने के कारण कुछ उत्तर नहीं सोच पाने से यों हो गई हैं, अथवा यह समझकर कि 'इस दूत की बात झूठी होगी', चुप हो गई हैं। तब स्त्रियों में अत्युत्तम उन देवी ने कहा—

मैं ऐसे आनन्द से भर गई हूँ, जिससे बढ़कर दूसरा (आनन्द) नहीं है। इस-लिए मैं कुछ उत्तर नहीं सोच पा रही हूँ और यह समझकर कि इसका कुछ उत्तर ही नहीं है, चुप हो गई हूँ। क्या किसी को भाग्य मिलने पर वह उसे उन्मत्त भी बना देता है ?

पहले तुमने कहा था कि इस कठोर बंधन से आपको मुक्त करूँगा। उसके पश्चात् वैसे ही करके तुमने वह आनन्द-समाचार सुनाया। तुम्हें मैं क्या पुरस्कार दूँ, यहीं सोचकर चुप हो गई हूँ।

हे उत्तम स्वभाववाले ! (यदि मैं तुमको) तीनों लोक दे दूँ, तो भी वह पुरस्कार तुम्हारे योग्य नहीं होगा। वे (लोक) मिट जायेंगे। वे पर्याप्त नहीं होंगे। तुमको मैं केवल सिर झुकाकर नमस्कार ही करती हूँ।

मैं इसी सोच में पड़ी हूँ कि तुम्हें कुछ नहीं दे सकती। कलंकहीन तथा सान पर चढ़ाये गये रत्न-समान हे दूत ! मैं अब क्या करूँ, तुम्हीं कहो।

हे माता ! हे अरण्य में आनन्द से संचरण करनेवाले कलापी-तुल्य ! आपसे मुझे यही वर प्राप्त हो कि आपके आनन्द के अनुकूल मनुकुलश्रेष्ठ प्रभु के समीप आपको पहुँचा दूँ। इस सेवा से बढ़कर मुझे और कुछ नहीं चाहिए। —यों हनुमान् ने कहा।

फिर, हनुमान् ने निवेदन किया—हे मेरी माता ! निष्कलंक रत्न-समान, प्रफुल्ल पुष्प-सदृश, उज्ज्वल मुखवाली त्रिजटा को छोड़कर अन्य राक्षसियों को मैं मार डालना चाहता हूँ। (अतः, आज्ञा दें)।

ये (राक्षसियाँ) न कहने योग्य दुर्वचन कहकर आपको खा जाने की धमकी देती थीं और दौड़कर आप पर आक्रमण करती थीं। इनके पर्वताकार शरीर को मैं अभी अपने नखों से चीरकर इन्हें यम का भोजन बनाऊँगा।— यों हनुमान् ने कहा।

हनुमान् के वचन सुनकर कि 'इन राक्षसियों की देह को चीरकर, आँतों को निकालकर इनको मार डालूँगा', वे राक्षसियाँ झट सीता की शरण में जाकर कहने लगीं—हे माता ! आपके चरण ही अब हमारी सच्ची शरण है। हमारी रक्षा कीजिए।

तब उस माता (सीता) ने उनसे 'डरो नहीं। डरो नहीं।' कहकर अभयदान दिया और हनुमान् को देखकर कहा—हे पवित्र गुणवाले ! इन राक्षसियों ने उस राक्षस (रावन) की आज्ञा के अनुसार ही कठोर वचन कहे थे, अन्यथा इन्होंने क्या कष्ट दिया? कुछ भी नहीं।

हे जन्म देनेवाली माता की अपेक्षा मुझपर अधिक वात्सल्य रखनेवाले ! मेरे पाप-परिणाम के रूप में ही ये सब कष्ट मुझे प्राप्त हुए थे। ये राक्षसियाँ सब कूबड़ी (मंथरा) के समान क्रूर नहीं हैं। हे शुद्ध विवेक से सम्पन्न ! विगत विषयों की परवाह मत करो।

विशाल चंद्रमंडल को कलंक देनेवाली सुन्दरता से पूर्ण वदन से शोभायमान उन (सीता) देवी ने फिर कहा—क्रूर पापों के आवासभूत इन विवेकहीन राक्षसियों के मन को दुःख मत दो। तुम मुझे यही वर दो।

तब हनुमान् ने 'मेरे प्रभु की पत्नी, आप उत्तम स्त्री की जैसी दया हो, वैसा ही हो' कहा और नमस्कार कर खड़ा रहा। उधर महिमामय (राम) ने विभीषण से कहा—'तुम जाकर मेरी पत्नी को अलंकार के साथ ले आओ।'

यों आज्ञा पाते ही अन्धकार हट गया, धूप हट गई। मेघमध्य-स्थित बिजली के गुण से युक्त विभीषण अशोकवन में आ पहुँचा और उन लक्ष्मी (के अंशभूत सीता) के चरणों पर नतमस्तक हुआ।

फिर, विभीषण ने सीताजी से निवेदन किया—हे स्वामिनी ! शत्रु पर इच्छित विजय प्राप्त हो गई। वेदज्ञों के ध्यान का विषय बने हुए प्रभु (राम) आपको देखना चाहते हैं। देवता भी आपके दर्शन करने के लिए आये हैं। प्रभु ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं आपको उनके समीप ले जाऊँ। अतः, आप मन का दुःख दूरकर आभूषणों से विभूषित होकर चलने की कृपा करें।

तब सीताजी ने उस (विभीषण) से कहा—हे वीर ! यह उचित होगा कि देवता, मुनि, हमारे प्रभु (राम) तथा कुलीन पातिव्रत्य से युक्त दिव्य स्त्रियाँ मुझे इसी दशा में देखें, जिस दशा में यहाँ मैं अबतक रही। उसके पश्चात् जैसे तुम कह रहे हो, वैसे आभूषण धारण करना संगत होगा।

जब सीताजी ने इस प्रकार कहा, तब विभीषण ने निवेदन किया—'नीलशैल-सदृश प्रभु की जो आज्ञा थी, मैंने उसे निवेदित किया।' तब उस उत्तम नारी (सीता) ने 'ठीक है' यह कहकर सहमत हुई। उस समय तिलोत्तमा आदि देवस्त्रियाँ उन (सीता) का शृंगार करने के लिए आईं।

मेनका, रंभा, उर्वशी आदि अप्सराएँ स्नान-योग्य कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों

से मिश्रित चन्दन लेकर (जबसे रावण ने बन्दिनी बनाकर रखा, तबसे) भोजन त्याग कर रहनेवाली उन उत्तम स्त्री के निकट आ पहुँचीं।

समस्त उत्तम स्त्री-लक्षणों की निधि, पातिव्रत्य धर्म का आभरण, सौन्दर्य नामक स्वर्ण की कसौटी, अमृत के संग उत्पन्न अमृत (लक्ष्मी का अंश), धर्म की माता बनी हुई, उन सीता के केशों को रंभा ने धीरे-धीरे यों विभक्त करके सुलझाया, जैसे विष्णु भगवान् ही समस्त वेदों को (व्यास का अवतार लेकर) विभक्त कर सुलझा रहे हों।

देवस्त्रियों ने सीता के इक्षुरस तथा अमृत-समान मधुर वचन बोलनेवाले, प्रवाल-समान अधरों के मध्य स्थित मुक्ता-समान दंतपक्ति को स्वच्छ कराया। मिट्टी-लगे रत्न को जैसे सान पर चढ़ाकर चमकाया जा रहा हो, वैसे ही सुगन्धित तेल लगाकर (सीताजी को) यथाविधि, मंगलगानों के साथ स्नान कराया।

जैसे मनोहर प्रवाल-लता क्षीरफेन से आवृत हुई हो, वैसे ही उनके शरीर पर धवल चन्दन का लेप किया। वक्ष पर कुंकुम-लेप अंकित किया। 'करुविल' (कपित्थ ?) के पुष्प जैसे वर्णवाले रेशमी वस्त्र पहनाये। उनकी मनोहर कटि के अनुरूप मेखला पहनाई।

इन्द्राणी के पहनने के योग्य, चन्द्र की देवियों (अर्थात्, तारिकाओं) के जैसे मोतियों से युक्त स्वर्णाभरण पहनाये। नवीन सिंदूर और प्रवाल-समान उनके अधरों पर तांबूल रचाया और मंत्रोच्चारण-सहित नीराजन देकर रक्षा भी दी।

जैसे चन्द्र-मंडल के मध्य हरिण हो, वैसे ही सीताजी विमान के मध्य विराजमान हुईं। देवस्त्रियाँ उनको घेरकर चलीं। वानर तथा राक्षस दौड़े आये। इस प्रकार: गौरवपूर्ण विभीषण देवाधिदेव (राम) के निकट (सीताजी को) ले चला।

इधर से देव, मुनि, उनकी देवियाँ, प्रवाल-सम मुँहवाली विद्याधर-स्त्रियाँ एवं त्रिलोक में स्थित विभिन्न प्रकार की असंख्य स्त्रियाँ, आनन्दमय वचन बोलती हुई एकत्र हो खड़ी रहीं।

इस प्रकार, सभी, उत्तम कुल में सजात एवं पातिव्रत्य-धर्म का आभूषण बनी हुई उन (सीता) के पार्श्वों में, आगे, पीछे—चारों ओर घिर आये। तब राक्षसों ने भीषण शब्द कर उन सबसे हट जाने को कहा, तो वह शब्द काले समुद्र के गर्जन के समान प्रतिध्वनित हुआ।

उस समय प्रफुल्ल कमल-समान अपने सुन्दर वदन पर कोप-चिह्न प्रकट करके राम ने प्रश्न किया—'यह कैसा शब्द है ?' तब कपटरहित ऋषियों ने उत्तर दिया।

उन मुनियों के वचन सुनने के पूर्व ही (अर्थात्, सुनते ही झट) राम के अधर फड़क उठे। वे कोप-भरी हँसी हँसते हुए विभीषण की ओर घूरकर बोले—हे पवित्र शास्त्रों के ज्ञान से सम्पन्न ! क्या यह उचित है कि तुम अनुचित कार्य करो।

हे माननीय शास्त्रों में दक्ष ! तुमसे किसने यह कहा कि जहाँ भीषण युद्ध हुआ था, उस स्थान को देखने की इच्छा से, कुतूहल के साथ, बड़ी दिशाओं से आकर एकत्र होनेवाले देवों तथा अन्य लोगों को भगा दो।

हे वीर ! परशुधारी (शिव), चक्रधारी (विष्णु) तथा कमलभव (ब्रह्मा) भी अपनी अपनी स्त्री को साथ रखते हैं। (जब त्रिमूर्त्ति ही स्त्री का इतना आदर करते हैं), तब अन्य लोगों के बारे में क्या कहना है ? अतः, देवों तथा मुनियों के संग कौतूहलवश देखने के लिए आनेवाले स्त्रीजनों को क्यों भगाते हो ?

अतः, हे राक्षसराज ! इन साधुचरित्र लोगों को रोकना उचित नहीं है। यों अरुण नयनोंवाले तथा वेदों के प्रभु (राम) ने कहा। तब पवित्र गुणवाला विभीषण खिन्न होकर, उष्ण निःश्वास भरता हुआ निर्दोष मन तथा देह से काँप उठा।

इधर पातिव्रत्य में अरुंधती-समान (सीता) देवी युद्धक्षेत्र के समीप आ पहुँचीं। बलवान् बाज, गिद्ध, भूत—इन सबकी भूख मिटाकर राक्षस-शरीरों का भोज देनेवाले उन धनुर्धारी वीर (राम) के मनोहर युद्धवेष को देखने की उमंग से उन (सीता) का मन एवं आँखें विकसित हो उठीं, और—

उन्होंने अपने मन में कहा—मेरे सच्चारित्र्य को मेरे पति को बताकर, मेरे पति के पराक्रमपूर्ण रूप को संसार के सम्मुख प्रकटकर, मेरे कुल-गौरव को प्रख्यात कर, इस संसार को भी सुरक्षित रखनेवाले इस कपिश्रेष्ठ (हनुमान्) को मेरा पातिव्रत्य चिर जीवन प्रदान करे।

फिर, किंचित् भी दोष से हीन उन देवी ने सोचा—'मेरी यह देह (राक्षस के स्पर्श से) अशुद्ध हो गई है। अतः, मेरे प्राण निकल जायेंगे, कुछ आशा नहीं है। इतने में सीताजी ने अपने सम्मुख हरे पत्ते के रंगवाले, प्रवाल-समान अधरवाले तथा हाथ में धनुष रखनेवाले प्रभु को देखा।

देवस्त्रियों से घिरी वह सीता, विमान पर आरूढ होकर चलीं, मानों अस्थिर शरीर से पृथक् हुए अपने प्राणों को पुनः पाकर उन्हें अपनाने के लिए आ रही हों। सीता अपना मुख (राम को) दिखाती हुई विमान से धरती पर उतर पड़ीं।

सीता यह सोचकर निश्चिंत हुईं कि किसी भी जन्म में मेरा जो साथी है और जो जन्म-बंधन से मुक्त होने पर भी मेरा साथी रहनेवाला है, उस प्रभु को मैंने पुनः प्राप्त कर लिया। अतः, अब मैं उन्हें भूल जाऊँ, तो भी कोई अहित नहीं होगा ; अथवा मैं मर जाऊँ, तो भी कोई अहित नहीं होगा।

करुणावान् प्रभु ने पातिव्रत्य की देवी, स्त्रीत्व के गुणों की निधि, सौन्दर्य की खान, स्थिर यश का कारण बनी हुई, अपने से बिछुड़ी हुई उन करुणामय धर्ममूर्त्ति को देखा।

अपने युगल स्तनों पर प्रभूत अश्रुधारा बहाते हुए, (पति के) चरणों को नमस्कार करते हुए, कलापी-तुल्य, पातिव्रत्य के प्राण बनी हुई, उन देवी को प्रभु ने फन उठाये सर्प के समान रोष के साथ देखा और यों कहा—

तुम नीतिभ्रष्ट राक्षस की विशाल लंका में निवास करती थी। वहाँ दबी पड़ी थी। षड्रस भोजन के लोभ में जीवन सुरक्षित किये रही। चारित्र्य मिट जाने

पर भी तुम मरी नहीं। अब तुम संकोच छोड़कर यहाँ क्यों आई हो? क्या यह सोचती हो कि यह राम मुझे प्यार करेगा?

मैंने समुद्र को पारकर, चमकती हुई बिजली-जैसे शस्त्रों को धारण करनेवाले राक्षसों का समूल नाश कर, फिर निरंतर युद्ध करके उस बड़े शत्रु का नाश किया, तो यह सब तुमको पुनः ले जाने के लिए नहीं, किन्तु अपयश से अपने को बचाने के लिए मैंने ऐसा किया है।

हे प्रेमरहित! असंख्य प्राणियों का मांस तुमने अमृत से भी अधिक चाव से खाया, खूब मधु पिया, यों तुम जीवित रही। अब क्या तुम मुझे मेरे योग्य भोजन दे सकोगी?

आभरणों में जड़े रत्नों के समान तुम्हारे उज्ज्वल गुण अब मिट गये हैं। तुम उत्तम कुल में उत्पन्न होकर कीड़े के समान मिट्टी से उत्पन्न हुई थी। तुमने अपने उस (जन्म) के योग्य ही कार्य किये हैं।

स्त्रीत्व के योग्य गुण, गौरव, कुलीनता, पातिव्रत्य की दृढ़ता, सच्चारित्र्य, विवेक, यश, सत्य—ये सब गुण तुम एक नारी के उत्पन्न होने से उसी प्रकार मिट गये, जिस प्रकार दान से रहित राजा की कीर्त्ति मिट जाती है।

उत्तम कुल में उत्पन्न नारियाँ पंचेन्द्रियों का दमन करती हैं। सच्चारित्र्य को दृढ़ता से अपनाकर जटा धारण करके निरवधि तपस्या में निरत रहती हैं। यदि कुछ अपयश उत्पन्न हो जाय, तो अपने प्राण त्यागकर उस अपयश को मिटा देती हैं।

मैं अधिक क्या कहूँ? तुम्हारा अनुचित आचरण मेरे मन को दुःख दे रहा है। तुम्हें अब यही करना है कि तुम मर जाओ। यदि मरना नहीं चाहती हो, तो किसी भी स्थान में जाकर रहो (किन्तु, मेरे साथ नहीं रह सकती हो)।

रामचन्द्र ने जब ये बातें कहीं, तब मुनि, देवता, असंख्य स्त्रियाँ, राक्षस, वानर-समूह, भालू आदि सभी मुक्त कंठ से रो पड़े।

धरती पर दृष्टि गड़ाये खड़ी हुई, कमल पर आसीन (लक्ष्मी के अवतार वह सीताजी) असह्य वेदना के कारण, जैसे घाव में छड़ी डालकर कुरेदा गया हो, दोनों नेत्रों से रक्तमय अश्रु बहाती हुई, निःश्वास भरती हुई निष्प्रज्ञ-सी खड़ी रहीं।

उस समय सीताजी की वही दशा हुई, जो बालू से भरी मरुभूमि में जल की तृष्णा से बहुत पीडित होनेवाली तथा मुमूर्षु बनी हुई उस हरिणी की होती है, जो विशाल सरोवर को देखकर भी बाधा उत्पन्न किये जाने से उसमें उतर नहीं पाती और विकल होती है।

यों कुछ काल तक भ्रान्त-सी खड़ी रहने के पश्चात् सीताजी ने अरुण रेखाओं से भरी बड़ी-बड़ी आँखों से अश्रुवर्षा करती हुई जगत् को देखकर कहा—'मैं अबतक जो प्राण रोके रही, क्या उसका यही परिणाम है? क्या मेरा अच्छा भाग्य इतना ही फल देकर समाप्त हो गया?' फिर, (राम के प्रति) बोलीं—

हे उदारगुण! मारुति ने लंका में आकर मुझसे कहा था कि तुम यहाँ आने-

वाले हो। उससे सांत्वना पाकर ही मैं जीवित रही। क्या उस उत्तम (हनुमान्) ने मेरी दशा के बारे में तुमसे कुछ नहीं कहा ? हाय ! कदाचित् उसमें (हनुमान् में) दूत बनने के लक्षण किंचित् मात्र भी नहीं रहे।

हे पुरुषोत्तम ! मैंने इतने दिनों तक बड़ी कठिनाई से जो तप किया, जो सच्चारित्र्य सुरक्षित रखा, जो पातिव्रत्य बचाया—यह सब क्या इसी कारण से कि तुम अपने हृदय में उन्हें नहीं मानो। (क्या मेरे सारे प्रयत्न) उन्मत्त के कार्यों के जैसे ही व्यर्थ हो गये !

मैं सारी धरती में श्रेष्ठ पतिव्रता हूँ। मेरी मनोदशा को ब्रह्मा भी नहीं बदल सकता। किन्तु, संसार के लोगों के नेत्र-समान प्रभु (राम) मेरे चारित्र्य को उस रूप में नहीं देखते हैं, तो अब कौन देवता उनके विचार को बदल सकता है ?

कमलभव (ब्रह्मा), वृषभवाहन (शिव) तथा शंखधारी धर्मस्वरूप (विष्णु) हस्तामलक के समान सब विषयों को स्पष्ट जान सकते हैं। किन्तु, स्त्रियों के हृदय को वे यथार्थ रूप में नहीं जान सकते।

हे वेदस्वरूप ! यदि ऐसा है, तो अब मैं अपने शुद्ध पातिव्रत्य के रूप को किसे कहकर समझा सकती हूँ ? ऐसी दशा में मृत्यु के समान उत्तम वस्तु मेरे लिए और कुछ नहीं है। तुमने जो हमारे लिए आज्ञा दी है, वह ठीक है। मेरा भाग्य भी उसके अनुकूल ही है।—यों सीता ने कहा।

कंकणों से शब्दायमान करों से युक्त सीताजी ने अनुज (लक्ष्मण) को बुलाकर कहा कि अग्नि प्रज्वलित करो। शोक से पूर्ण हृदयवाले उन (लक्ष्मण) ने संसार के सब प्राणियों के लिए आशा बने उन (राम) को नमस्कार करके देखा, तो उन्होंने भी आँखों के संकेत से वैसा ही करने को कहा।

तब लक्ष्मण ने प्राणरहित-से होकर बड़े शोक से अश्रुवर्षा करते हुए यथाविधि उस स्थान पर अग्नि प्रज्वलित की। कमल पर आसीन रहनेवाली (लक्ष्मी का अवतार सीता) उस अग्नि के समीप गई।

देवों के अतिरिक्त समस्त प्राणियों के लिए माता बनी वह (सीता देवी) ज्योंही अग्नि के निकट पहुँचीं, त्योंही चारों वेद तथा अक्षय धर्म एवं समस्त प्राणी मुँह खोलकर रो पड़े।

सीताजी अग्नि की परिक्रमा करने लगीं, तो सारा प्राणिवर्ग तथा स्वर्ग आदि सब लोक अपने-अपने स्थान से विचलित होकर चक्कर काटते हुए रो पड़े और राम को देखकर कह उठे—'हे प्रभु ! ऐसा प्रचंड कोप करना उचित नहीं है।'

इन्द्र की पत्नी प्रभृति सब देवस्त्रियाँ अंतरिक्ष में रहकर रोती-कलपती हुई लाल रेखाओं से युक्त अपनी आँखों पर अपने अरुण कर-पल्लवों से मार-मारकर विकल हो उठीं।

ब्रह्मा आदि बड़े देवता भी काँप उठे। भूमि को धारण करनेवाले आदिशेष के फन भी कुंठित हो गये। सारा संसार व्याकुल हो उठा, जैसे उस (आदिशेष) का विष सर्वत्र

व्याप्त हुआ हो। सूर्य आदि ज्योतिष्पिंड स्थानभ्रष्ट हो गये। समुद्रों में रोदन-ध्वनि उठ गई।

तब पीन स्तनों से युक्त कंकणधारिणी (सीताजी) ने अग्नि को प्रणाम कर कहा—'हे अग्निदेव! मन, वचन और कार्य—त्रिकरणों में किसी से भी यदि मैं कलंकवती होऊँ, तो तुम मुझे जला दो।' फिर, उन्होंने वन्यतुलसी-मालाधारी प्रभु को नमस्कार किया।

सीताजी झट उस अग्नि में प्रवेश कर गईं, मानों वे गंभीर तथा अपार जल में स्थित अरुण कमलवाले अपने आवास में ही जा रही हों। तब अग्नि स्वयं सीताजी के पातिव्रत्य की अग्नि से ऐसी जल गई, जैसे श्वेत वर्ण की रूई हो।

अग्निदेव सीतादेवी के प्रवेश करने से संतप्त हो उठे। वे वेदों में प्रतिपादित भगवान् (राम) की जोर से दुहाई देते हुए, रोते हुए, अपने दोनों कर जोड़े हुए, सीताजी को उठाकर प्रकट हुए।

राम के कोप के कारण सीताजी के शरीर में जो स्वेद उत्पन्न हुआ था, वह भी नहीं सूखा। उनके केशों में रहनेवाले पुष्प, उनमें स्थित मधु एवं भ्रमर जल में भिगोकर निकाले गये जैसे शीतल दिखाई पड़े। अब उनके बारे में और क्या कहा जाय?

जो लोक अपने-अपने स्थान से विचलित हो चकराने लगे थे, वे अब स्थिर हो गये। करुणा से द्रवित सब प्राणी स्वस्थ हुए। अरुन्धती आदि स्त्रियाँ ग्लानि एवं दीनता से मुक्त हुईं और नाचने लगीं।

निंदा को अपने में कभी न स्थान देनेवाले अग्निदेव ने राम से कहा—'तुमने मेरी निर्बलता का विचार किये बिना पातिव्रत्य की दिव्य तेजोमय अग्नि से मुझे जला दिया। मैंने कुछ अपराध नहीं किया था, फिर भी तुमने मुझपर भी (सीता पर जैसे क्रुद्ध हुए, वैसे ही) क्रोध किया।'

उस समय राम ने पूछा—कौन हो तुम? अग्नि में प्रकट होकर तुम क्या कर रहे हो? दुराचार से युक्त इस नारी को तुमने जलने से क्यों बचाया? किसके कहने से तुमने ऐसा किया? स्पष्ट बताओ।

तब अग्नि ने उत्तर दिया—मैं अग्निदेव हूँ। जब इस लोकमाता के पातिव्रत्य का तेज मुझे जलाने लगा, तब उसे न सहन कर मैं मंद पड़ गया। हे सर्वोत्तम! मेरी यह दशा देखकर भी क्या तुम इन पतिव्रता पर संशय करते हो?

हे उज्ज्वल कंधोंवाले! वेद यह सत्य वचन कहते हैं कि 'हे अग्नि! कुलीन स्त्रियाँ विवाह-बन्धन से यदि पृथक् होने की संकटापन्न स्थिति में पड़ जायँ या उनके चारित्र्य के संबंध में कोई संदेह उत्पन्न हो जाय, तो उनकी पवित्रता की रक्षा करना। क्योंकि, विवाह-कृत्य तेरे सम्मुख (अर्थात्, तुझे ही साक्षी बनाकर) किया जाता है।'

असत्य-रहित हनुमान् के वचन तुमने नहीं माने और सीताजी को स्वीकार नहीं किया। अब संदेहास्पद विषयों को हस्तामलक के समान स्पष्ट प्रकट करनेवाले मेरे जैसे पुरुष के प्रमाण-वचनों को मानकर इस पतिव्रता देवी को स्वीकार करो।

देव, मुनि, त्रिलोक के समस्त प्राणी, सभी (सीता को अग्नि में प्रविष्ट होते देख-

कर) आँखें पीट-पीटकर रोने लगे थे। कदाचित् तुमने उनका रोदन नहीं सुना। अहो! धर्म के विरुद्ध ऐसा कार्य तुमने कैसे किया!

यदि यह महान् पतिव्रता क्रोध करे, तो क्या बादल बरसेंगे? धरती फटे बिना स्थिर रहेगी? धर्म सुचारु रूप से चल सकेगा? संसार स्थिर रहेगा? यदि यह देवी शाप दे, तो कमलभव ब्रह्मा भी क्या नष्ट नहीं हो जायगा?

जले हुए रूपवाले अग्निदेव ने, इस प्रकार के अनेक उत्तम वचन कहकर सीताजी को प्रभु के पार्श्व में लाकर रख दिया। तब देवता नाचने लगे तथा अन्य सब प्राणी अत्यन्त आनंदित हुए। तब उदार प्रभु (राम) बोले—

'तुम संसार के सब प्राणियों के अचूक साक्षी हो। तुमने इस (सीता) के बारे में कहा कि यह अनिंदनीय तथा दोषहीन चरित्रवाली है। अब यह सीता परित्याग के योग्य नहीं है।' अत्यन्त कृपालु प्रभु ने इस प्रकार कहा।

तब देवों ने चतुर्मुख से निवेदन किया—'भगवान् अपने द्वारा उत्पन्न की हुई माया में अन्य जीवों के जैसे ही स्वयं भी डूबकर, अपने यथार्थ स्वरूप को न पहचाननेवालों के जैसे ही रहते हैं। इन तुलसीमाला-भूषित राम को उनका यथार्थ स्वरूप समझाओ। उसके लिए अब समय आ गया है।' तब विष्णु से पृथक् न होनेवाले (अर्थात्, उनके नाभि-कमल में आसीन रहनेवाले) ब्रह्मदेव कहने लगे—

हे राम! हे महिमामय! तुम अपने को अति पुरातन सूर्यकुल में उत्पन्न एक मनुष्य-मात्र मत समझो। तुम अपने यथार्थ स्वरूप के बारे में मेरा यह निवेदन सुनो। चारों वेदों के अन्त में (अर्थात्, वेदान्त में) जो सत्य प्रतिपादित हुआ है, वह तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई पदार्थ स्थिर रहनेवाला नहीं है।

सारी सृष्टि का आदिकारण मूलप्रकृति है। उस मूलप्रकृति के विकार से उत्पन्न तत्त्व, उन तत्त्वों के परे सबके लिए दुर्ज्ञेय पुरुष (अर्थात्, जीवात्मा)– ये सब तुम्हीं हो। यह अति विशाल जगत् तुम्हारी माया से ही उत्पन्न है।

हे करुणामय! आदि और अन्त—इन दोनों प्रकार की सीमाओं से रहित तथा अपने महत्त्व को स्वयं ही जाननेवाले वेदों के सिर (अर्थात्, उपनिषदें) जिसे परमपुरुष कहते हैं, वह (परमपुरुष) तुम्हीं हो। वे परमपुरुष के रूप में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी देवता को नहीं मानते।

मेरे लिए, अष्टरूपात्मक (शिव) के लिए, देवेन्द्र के लिए, मुनियों के लिए तथा समस्त प्राणियों के लिए तुम्हीं परमात्मा (अर्थात्, आश्रयभूत) हो—इस सत्य को जो जानते हैं, वे कर्मों के निरंतर तथा अकाट्य बंधन से मुक्ति पा जाते हैं।

मुझसे सृष्टि पानेवाले प्राणी, अपनी उत्पत्ति के कारणभूत माता एवं पिता के संबंध-रूपी माया में डूबकर अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानते हुए दुःखग्रस्त होते हैं, जो प्राणी इस सत्य को पहचानते हैं, वे तुम्हीं को आदिकारणभूत परमतत्त्व जानकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

वेद, जिनको जानना कठिन है, यही कहते हैं कि पचीस तत्त्वों का विवेचन

करने पर यही विदित होता है कि इन सबके ऊपर तुम्हीं परमतत्त्व हो। तुम्हारे परे कुछ नहीं है। इस कथन के साक्षी संसार के महात्मा लोग ही हैं। लोक-व्यवहार में एक साक्षी का दूसरा साक्षी आवश्यक नहीं होता। (अर्थात्, एक साक्षी के साक्ष्य को सत्य प्रमाणित करने के लिए दूसरा साक्षी अपेक्षित नहीं होता।)

हे चुनी हुई तुलसी-माला को धारण करनेवाले! प्रमाणों के द्वारा किसी विषय के बारे में 'है' या 'नहीं है', यह जानने की क्रिया तुम्हारे लिए सम्भव नहीं है। (भाव यह है कि तुम्हारे अतिरिक्त अन्य सब प्रत्यक्ष, अनुमान, श्रुति आदि प्रमाणों के आधार पर ही कार्य करते रहते हैं; किन्तु परमात्मा स्वयं प्रमाणभूत है। अतएव, अन्य प्रमाण उसके लिए नहीं हैं)। उपनिषदें भी तुम्हारे सारे रहस्य को संपूर्ण रूप से नहीं जान पाती हैं, तो भी (ज्ञान) दृष्टि से यह जानकर कहती हैं कि तुम हो।

जो तुम्हारी करुणा के पात्र नहीं होते, उनको तुम्हारे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में पंचेन्द्रियाँ बाधक बनती हैं। इन पंचेन्द्रियों को जीतना अत्यन्त दुष्कर है। अतः, लोग बार-बार जन्म लेते और मरते रहते हैं एवं दुःख में डूबे रहते हैं। इन दुःखों से मुक्त होने के लिए तुम्हारे चरणों के अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है।

तुम्हारे लिए उत्पत्ति नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। अति शक्तिशाली मूलप्रकृति तुम्हीं से उत्पन्न है, अन्य सभी तत्त्व उसी मूल प्रकृति से प्रकट हुए हैं। अतः, अग्नि आदि पाँचों भूत प्रलयकाल में पृथक्-पृथक् होकर विलीन हो जाते हैं। किन्तु, तुम्हारा नाश कभी नहीं होता।

जिस प्रकार मेघ बिजली को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार तुम उत्पन्न होकर फिर विनष्ट होते रहनेवाले इन लोकों का उत्पादन करने के लिए, धर्म की रक्षा करने के लिए, अनादिब्रह्मभूत तुम मेरी सृष्टि करते हो और इन लोकों के साथ ही मेरा नाश भी कर देते हो। मुझे भी तुम अपना यथार्थ स्वरूप पूरा नहीं दिखाते हो। यों निगूढ रहकर तुम अपने स्वरूप को मुझमें संपूर्णरूप से छिपाते भी नहीं हो।

हे आदिपदार्थभूत! तुम मेरे द्वारा इस सृष्टि का निर्माण करते हो। स्वयं विष्णु होकर (इस सृष्टि की) रक्षा करते हो। शिव का रूप लेकर (इस सृष्टि का) विनाश करते हो। यह ऐसे ही है, जैसे सूर्य प्रकट होकर दिन का आरम्भ करके (फिर अस्तमन-वेला में) उसे समाप्त करता रहता है।

अनन्त संपत्ति पाकर जब हम गर्व करने लगते हैं, तब दानव और राक्षस हम सबका अहंकार मिटाते हुए हमसे भीषण युद्ध कर हमें भयभीत कर भगा देते हैं। तब हम दुःखी होकर तुम्हारी शरण में जाते हैं। तब उन राक्षसों एवं दानवों को मिटाकर हमारी रक्षा करने के लिए तुम जन्म लेते हो और मनुष्य-रूप धारण करते हो, जो तुम्हारे लिए योग्य नहीं है। अहो! क्या यही तुम्हारा कर्त्तव्य है?

जो ओंकार का तत्त्व यथार्थ रूप में जानते हैं, वे तुम्हारे तत्त्व को जाननेवाले कहलाते हैं। तुमको ओंकारवाच्य तत्त्व समझने पर वे द्विविध कर्मों के बंधन से छूट जाते हैं।

जो यह नहीं समझते कि ओंकारवाच्य ही परमपुरुष है, वे तुम्हें ओंकारवाच्य के सम्बन्ध में सत्य हो या नहीं हो, यों संशयग्रस्त हो दीर्घकाल तक पड़े रहते हैं।

तुम्हारा स्वरूप ऐसा है। हमको तथा तीनों लोकों को जन्म देकर सबको अपने आचरण द्वारा गार्हस्थ्य के महत्त्व को दिखलानेवाली (सीतादेवी) को व्यर्थ ही क्रोध में आकर अस्वीकार मत दीजिए।—यों सबसे पूर्व में, स्वयं विष्णु से उत्पन्न होकर विविध रूपों में प्राणिजगत् का निर्माण करनेवाले ब्रह्मा ने कहा।

जब ब्रह्मा ने यों कहा, तब वृषभवाहन रुद्र (शिव) ने कहा—हे बलवान्! तुमने कदाचित् अपने स्वरूप को पूर्ण रूप से नहीं समझा। तुम अनादि परमब्रह्म हो। तीनों लोकों की माता जो सीता हैं, वे तुम्हारे वक्ष पर आसीन लक्ष्मी का ही अवतार हैं।

हे प्रभु! सब पुरातन लोग जिनके सुन्दर गर्भ से उत्पन्न होते हैं, वह सीता ऐसे दुराचरण से युक्त नहीं हैं कि उनका त्याग किया जाय। कंकण-भूषित इन देवी के संबंध में तुम ठीक-ठीक न सोचकर यदि इन्हें छोड़ दोगे, तो सब प्राणी मिट जायेंगे। अतः, इनके बारे में निंदा के विचार मत रखें।—यों शिवजी ने प्रशंसा करके कहा।

शिवजी ने फिर कुछ समय तक विचार कर उन दशरथ से, जो अपने उदार-गुण कुमार के वियोग से मृत्यु प्राप्त कर विष्णुलोक में जा पहुँचे थे, कहा—हे शक्तिशाली! तुम अपने पुत्र से मिलकर उसके मन को सांत्वना दो और उन्हें समझाकर अपने दीर्घ संताप को भी मिटा लो।

चक्रवर्त्ती (दशरथ) उन आदि भगवान् की आज्ञा से अपने प्रिय पुत्र का संदर्शन करने की कामना से उमंग से भरकर पृथ्वी पर आये। उनके आते ही अनुपम वेदों के प्रभु राम ने उनके कमल-चरणों पर गिरकर नमस्कार किया।

दशरथ महाराज ने अपने चरणों पर गिरे हुए कुमार को उठाकर अपने पर्वताकार वक्ष से लगा लिया। अपने अश्रु-प्रवाह से उनको सिंचित किया। और, इस विचार से कि हम उत्तम जीवन प्राप्त कर चुके हैं, आनंद से भर गये। उनकी सारी मनोव्यथा दूर हो गई। फिर, राम के सम्मुख खड़े होकर कहा—

उस दिन केकयराजपुत्री का वर-रूपी छल जो मेरे हृदय में प्रविष्ट हुआ था, वह अबतक वैसे ही था। आज उत्तम आभरणों से भूषित तुम्हारे वक्ष-रूपी अयस्कान्त के लगने से वह शूल निकल गया।

हे मनोहर ऊँचे कंधोंवाले! तुमने मेरा पुत्र होकर मेरे लिए इतना गौरव प्राप्त किया कि सत्पुत्र प्राप्त कर अत्यधिक महत्त्व से युक्त कोई भी पिता मेरी चरणधूलि के भी समान नहीं रहा। तुम्हारे कारण मैं पाप-रहित लोगों के लिए भी दुर्लभ उत्तम लोक को प्राप्त कर अमिट यश का भागी बना हूँ।

हे सुन्दर! पहले (अर्थात्, जब मैं पृथ्वी पर जीवित था, तब) जिन देवों तथा ऋषियों को मैं नमस्कार करता था वे (देव तथा ऋषि) मुझे देखकर कैसे हाथ जोड़ रहे हैं। देखो, तुमने ऐसा किया है कि मैं ब्रह्मा के समान होकर ब्रह्मांड से भी ऊपर स्थित लोक-विशेष में रहता हूँ।

यों कहकर पर्वत-समान कंधोंवाले दशरथ ने अपने पुत्र का पुनः-पुनः आलिंगन किया। फिर, वे सीता के निकट गये। सीताजी ने उनके दोनों चरणों को नमस्कार किया। अवर्णनीय कीर्त्ति से युक्त दशरथ ने उन (सीता) देवी को वात्सल्य के साथ गले लगाकर कहा—

हे बेटी! (राम ने) तुम्हारे पातिव्रत्य के तेज को लोगों में प्रकट करने के लिए ही तुझे अग्निप्रवेश करने को कहा था। उस बात को मन में मत रखो। संसार में संदेहग्रस्त व्यक्ति ऐसी शपथ करवाते हैं। अतः, गंगा नदी से सिंचित देश के राजा उस (राम) पर तुम क्रोध मत करो।

सोने को अग्नि में तपाने से उसकी स्वच्छता प्रकट हो जाती है। इस तत्त्व को मन में रखना उचित है। उत्तम गुणवाले (राम) ने यह सोचकर कि फिर ऐसा उपयुक्त समय नहीं आयगा, तुम्हारे सतीत्व को प्रकट करने के लिए ही अग्निप्रवेश करने को कहा और संसार के सम्मुख तुम्हारा महत्त्व प्रकट किया।

स्त्री का जन्म पाकर उत्तम पातिव्रत्य से संपन्न अरुन्धती आदि के लिए भी अपूर्व आभरण-समान, प्रतिमा-समान हे पुत्रि! तुम्हारा जन्मस्थान स्वयं धरती है। तुम वैकुंठ से (विष्णु के अवतीर्ण होते समय) संसार में अवतीर्ण हुई। अब तुम्हारे असंख्य सद्गुणों में कोई कलंक नहीं रहा।

यों कहकर उन उत्तम (दशरथ) ने यह जाना कि आभरण-भूषित उन (सीता) के मन में किंचित् भी क्रोध नहीं है। इससे वे बहुत आनंदित हुए। फिर, प्रेम से भरकर आँसू बहाते हुए वहाँ स्थित लक्ष्मण को यों गाढालिंगन में बाँध लिया, जैसे स्वयं अपना ही आलिंगन कर रहे हों।

दशरथ ने लक्ष्मण का आलिंगन किया और अपने आँसुओं को लक्ष्मण की जटाओं पर यों बहाया, ज्यों उसे स्नान करा रहे हों और कहा—हे पुत्र! तुम अपने भाई के साथ अरण्य में आये। उससे तुमने अपने असंख्य जन्मों को तथा मेरे मन के दुःखों को दूर कर दिया।

हे तात! तुमने अपने पराक्रम से इन्द्र के बड़े शत्रु के साथ युद्ध कर उसे मिटा दिया। उस पराक्रम की भी प्रशंसा देवता निरंतर करते रहते हैं। तुमने इस संसार को दुःख देनेवाले वैर को मिटाकर धर्म को सुरक्षित किया।

पुनः दशरथ ने राम से कहा—हे उत्तम गुणवाले पुत्र! मैं तुमको एक वर देता हूँ। माँगो। तब राम ने कहा—मैं स्वयं ऊपर के लोकों में आकर आप के दर्शन करने की इच्छा रखता था। किन्तु, आपने स्वयं यहाँ आकर मुझे दर्शन दिये। इससे बढ़कर प्राप्य वस्तु मेरे लिए और क्या है?

तब दशरथ ने कहा—'ठीक है, फिर भी एक वर माँगो।' इसपर सुन्दर मूर्त्ति (राम) बोले—'आपने जिनको क्रूर कहकर अस्वीकार कर दिया था, उन मेरे लिए पूज्य देवी-समान कैकेयी एवं मेरे अनुज भरत को पुनः मेरी माता एवं अनुज के रूप में आप स्वीकार करें—यही वर दें।' राम की बात सुनकर सब प्राणी उत्साह से हर्षध्वनि कर उठे।

तब दशरथ ने कहा—'हे वत्स ! सुनो । वह निर्दोष भरत तो मेरे लिए योग्य (पुत्र) ही है । किन्तु, तुम्हारे प्राप्य राजमुकुट को रोककर जिसने तुमको इस तपस्वी-वेष में वन में भेजा, उस पापिन (कैकेयी) पर मेरा क्रोध कभी शान्त न होगा ।

तब राम ने उत्तर दिया—किंचित् भी चूके बिना प्राणियों की समुचित रक्षा करना राजधर्म है । मैंने यह सोचकर कि इसके निर्वाह में अनेक अपराध संभव हैं, मैंने इसे अपनाने का विचार किया था । अतः, मैंने ही दोष किया था । किन्तु, मेरी जननी ने नहीं (किया) । राम के ये वचन सुनकर दशरथ का क्रोध शान्त हुआ ।

सब वरों से परे रहनेवाले (राम) ने जब ऐसा वर माँगा, तब देवता बोल उठे—असंख्य शत्रुओं से भरे अरण्य में इन (राम) को भेजनेवाली कैकेयी के प्रति दशरथ ने दो वर दिये थे । अब राम को भी वे (दशरथ) दो वर दे रहे हैं । अहो, ये वर भी कैसे हैं ।

स्वर्ग एवं अन्य लोकों के निवासियों के द्वारा प्रशंसित सत्य के लिए जिन्होंने अपने प्राण त्याग किये थे, वे कीर्त्तिमान् (दशरथ) राम को वर से अनुगृहीत कर, अतिसुन्दर (राम), अनुज लक्ष्मण एवं कमल में निवास करनेवाली (लक्ष्मी के अवतार सीता) को पृथ्वी पर रहने की अनुमति देकर किसी प्रकार विमानारूढ हो ऊपर के लोक को चले गये ।

तब वहाँ एकत्र देवों ने दीर्घ धनुर्धारी (राम) को देखकर कहा—हे वीर ! तुम अपनी इच्छा के अनुकूल वर माँगो । तब राम ने कहा—अवर्णनीय घोर युद्ध में जो वानर राक्षसों से निहत हो गये हैं, वे सब जीवित हो जायँ ।

और दूसरा वर यह माँगा कि विशाल समुद्र जैसी वानर-सेना जिन अरण्यों, पर्वतों तथा अन्य प्रान्तों में जायगी, वहाँ सर्वत्र उस (सेना) को शाक, फल, मधु तथा स्वच्छ जल प्राप्त होते रहें ।

वर प्रदान करने की शक्ति रखनेवाले ब्रह्मा, शिव, ऋषिश्रेष्ठ देव सब पृथक् पृथक् राम की प्रस्तुति करके बोले—हे दुःखकारक जन्म-व्याधि से मुक्ति प्रदान करनेवाले ! तुम्हारी कृपा से वानर-सेना जीवित हो उठेगी ।

युद्ध आरंभ होने से समाप्त होने तक जितने वानर मरकर गिरे थे, वे सब जीवित हो उठे और हर्षध्वनि करते हुए मन एवं आँखों को आनंदित करते हुए कमल-नयन प्रभु के चरणों पर आकर नत हुए ।

कुंभकर्ण, इन्द्रजित् तथा भीषण युद्ध में प्रज्वलित क्रोध से युक्त रावण आदि राक्षस-वीरों से जो वानर निहत हुए थे, वे सब जीवित होकर राम के निकट आकर हर्षध्वनि करने लगे, तो देवों ने राम से कहा—

हे राम ! कृष्णपक्ष के मध्य में (अर्थात्, अष्टमी तिथि में तुम लंका के पास) सुवेल पर्वत पर आकर ठहरे थे । लंका के प्राचीर के चारों ओर से वानर-सेना से आक्रमण करवाया, शस्त्र-प्रयोग में कुशल राक्षसों के कुल का नाश किया । उस (कृष्ण) पक्ष के अंतिम दिन (अमावास्या तिथि में) रावण का वध किया ।

अब इस संसार में छली राक्षस नहीं बचे—यों तुमने राक्षसों को मिटा दिया । हे सद्योविकसित कमल-समान हाथोंवाले ! तुम माता की बात मानकर जिन चौदह वर्षों के

लिए वन में आये थे, वे वर्ष, जिनके बारे में सब लोग सोचते रहते थे कि ये कब बीतेंगे, कब बीतेंगे, अब समाप्त हो रहे हैं। आज पंचमी तिथि आ गई है।[1]

हे विजयी वीर ! यदि तुम आज ही यहाँ से प्रस्थान करके भरत के पास नहीं पहुँचोगे, तो वह (भरत) अग्नि में प्रवेश करके अपने प्राण त्याग देगा। अतः, उसे ऐसा करने से रोकने के लिए तुम्हें अभी चल देना चाहिए—यह कहकर देवता चले गये। तब रामचन्द्र भरत के निकट पहुँचने का विचार करने लगे।

राम ने विभीषण से कहा—आज चौदह वर्ष समाप्त होनेवाले हैं। यदि भरत मर जायगा, तो मेरा वंश मिट जायगा। अतः, क्या अभी वहाँ पहुँचने का कोई उपाय है ? तब बलवान् विभीषण ने नमस्कार करके उत्तर दिया—आज ही वहाँ पहुँचा सकनेवाला एक विमान है।

फिर, विभीषण ने कहा—हे उदार ! रावण ने कुवेर की बड़ी संपत्ति हरण कर ली थी। उसके साथ इस विमान का भी अपहरण किया था। सत्तर समुद्रवाली (वानर) सेना उसपर चढ़ सकती है। यहाँ के सब लोग उसपर चढ़ सकते हैं ? यदि उस पर आरूढ हो जायँ, तो आज ही सुन्दर अयोध्या में पहुँच जायँगे।

फिर, विभीषण ने निवेदन किया--'यक्षराज (कुवेर) से अपहृत किया गया वह पुष्पक विमान वेदों के स्वामी ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त है। दोषहीन महात्माओं के मन के जैसे परिशुद्ध है। देवों को भी विस्मय में डालनेवाले वेग से युक्त है। वह विमान यहाँ है।' तब राम ने उसे लाने की आज्ञा दी।

एक क्षणकाल में ही राक्षसराज वह विमान ले आया। वह ऐसे आया, जैसे अनेक ब्रह्मांड एकरूप होकर आये हों। गगन में सहस्र सूर्य प्रकट हुए हों। इस प्रकार, असंख्य रत्नों से प्रकाशमान वह विमान सब दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ आया।

जब वह विमान पृथ्वी पर उतरा, तब अच्छे विचारवाले प्रभु राघव, यह सोचकर आनंदित हुए कि हमारा कार्य पूर्ण होगा (अर्थात्, आज ही भरत के पास पहुँच जायँगे) और उसपर आरूढ हो गये। देवों ने जयजयकार किया और पुष्पवर्षा की।

जब त्रिजटा ने अपनी कटि को दुखाते हुए (झुककर) सीता को नमस्कार किया, तब सीता ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम किंचित् भी दुःख मत करना और देवस्त्री के समान इस लंका में रहना। फिर, वे राम के निकट (विमान पर) जा पहुँचीं। शत्रुघातक शूलवाले लक्ष्मण भी विमान पर आरूढ हुए।

---

१. रामचन्द्र फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि की संध्या के समय लंका के निकट पहुँचे थे। उसी दिन रात को वानर-सेना ने लंका पर घेरा डाला था। नवमी के दिन युद्ध का आरंभ हुआ था। छह दिनों के युद्ध में कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, मूलबल—सबका वध हुआ था। सातवें दिन अमावस को रावण से अंतिम युद्ध हुआ था और उसी रात के द्वितीयार्द्ध में रावण का वध हुआ था। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को रावण का अंतिम संस्कार, द्वितीया को विभीषण का राज्याभिषेक, तृतीया को सीता की अग्निपरीक्षा, क्रमशः हुई थी। चतुर्थी के दिन रामचन्द्र ने लंका से प्रस्थान किया था। चतुर्थी के दिन ही पंचमी तिथि का प्रवेश हो गया था, अतः इस पद्य में कहा गया है कि पंचमी तिथि आ गई है। पंचमी को चौदह वर्ष की अवधि समाप्त हुई थी। —अनु०

प्रलयकाल में समस्त ब्रह्मांड को निगलनेवाले (विष्णु भगवान्) के सुन्दर उदर के समान स्थित, वायुवेग को भी परास्त करनेवाले, मन की समता करनेवाले तथा गगन में चमकनेवाले विमान पर आरूढ कालमेघ-समान प्रभु ने विभीषण से कहा—

दोषहीन प्रभु ने विभीषण को प्रेम के साथ देखकर कहा—हे पुष्प-मालाओं से भूषित सिरवाले! तुमसे एक बात कहनी है, तुम्हारे आश्रय में जो आये हैं, उन सबका हित करते हुए, देश के सब लोगों के द्वारा प्रशंसित होते हुए राज्य करते रहो।

हे संसार को नीति का मार्ग बतानेवाले आचरण से युक्त! अनादि चतुर्वेदों के स्वामी बने हुए ब्रह्मदेव को अपने कुलपुरुष के रूप में प्राप्त करनेवाले! अब तुम शत्रुओं से भी प्रशंसित लंकानगर में जाओ।

असीम यश से युक्त प्रभु ने सुग्रीव से कहा—हे सुग्रीव! तुम्हारी सहायता से मैंने दस कंठोंवाले राक्षस का वध किया। तुम अपने नगर को जाओ और शत्रुसेना के शस्त्रों से पीडित क्लान्त वानरों की शिथिलता को दूर करो।

फिर, वालिपुत्र (अंगद) जांबवान, पनस, नील, आदि सभी वानर-सेनापतियों से तथा अपार समुद्र को पार करके लौट आनेवाले साकार करुणा जैसे हनुमान् से भी विदा लेने को कहा।

राम के ये बातें कहते ही उन सबके शरीर तथा मन काँप उठे। नेत्रों से अश्रु बह चले। उन्होंने राम के अरुण कमल जैसे चरणों पर सिर रखकर प्रणाम करके निवेदन किया—यदि हम आपसे बिछुड़ जायेंगे, तो जीवित नहीं रहेंगे।

राम पर हृदय में दृढ प्रेम रखनेवाले विभीषण आदि ने निवेदन किया—आप ऐसी कृपा करें कि जब आप विशाल प्राचीरों से युक्त अयोध्या में स्वर्ग तथा उज्ज्वल मुक्ताओं से निर्मित राजमुकुट धारण करें, तो उस वैभव को हम भी देख सकें, तबतक हम भी आपके साथ रहें।

उदारगुण राम ने उनके प्रेम-भरे वचनों को सुनकर और उनके कंपन को देखकर कहा—तुम लोग विकल मत हो, पहले मैंने भी वैसे ही विचार किया था। तो भी तुमलोगों के विचार जानने के लिए ही मैंने ऐसा कहा।

राम की यह बात सुनकर कपिराज, उसकी विशाल सेना, लंकाधिपति आदि सभी पृथ्वी के रक्षक राम के चरणों को नमस्कार करके यों आनंदित हुए, ज्यों वे सशरीर ही स्वर्ग पहुँच गये हों।

तब राम ने अनुमति दी कि कपिराज सुग्रीव, उसकी सेना, हनुमान् आदि सेनापति, वीर-कंकणधारी विभीषण सब लोग विमान पर आराम से आरूढ होकर बैठ जायें।

राम के इतना कहते ही सूर्यपुत्र (सुग्रीव) सेनापति, सत्तर 'समुद्र' वानर-सेना, अविनश्वर प्राचीरों से युक्त लंकानगर के राजा (विभीषण), उसकी समुद्र-समान राक्षस-सेना सभी विमान पर आरूढ होकर एक ओर आसीन हो गये।

वह विमान ऐसा था कि चौदह भुवनों के सब प्राणी उसपर आरूढ हो जायँ,

तब भी उस विमान पर स्थान शेष रह जाय। उस विमान के बारे में मुक्त लोग ही (जो सम्पूर्ण ज्ञान से युक्त होते हैं) कुछ कह सकते हैं। अन्य कौन उसका वर्णन कर सकता है?

उत्तम गुणों से विभूषित रामचन्द्र पुष्पक-विमान पर विराजमान हुए। उनके चारों ओर सत्तर 'समुद्र' वानर-सेना, सूर्यपुत्र, लंकाधिपति (विभीषण), उसकी राक्षस-सेना, लक्ष्मण तथा जनकपुत्री सभी सविनय आसीन हुए।

वह विमान, जिसपर रामचन्द्र आरूढ थे, ब्रह्मांड के समान था। उसपर कमलनयन राक्षसविजयी प्रभु (राम) समस्त लोकों के परे (अर्थात्, परमपद में प्रतिष्ठित) संख्यातीत गुणों से विशिष्ट, जन्म-बंधन और मरण से रहित होकर, अनादि चतुर्वेदों के लिए भी अगम्य रहनेवाले परमात्मा के समान शोभायमान थे

मधुपूर्ण पुष्पमाला से भूषित अरुणकिरण सूर्य के पुत्र ने, समुद्र-रूपी परिखा से आवृत लंका के राजा ने तथा विजयी सेना के लोगों ने उदारगुण राम के आदेश से मनुष्य-रूप धारण कर लिये।

पूर्व दिशा में उदित होकर पश्चिम में अस्त होनेवाला सूर्य मानों दक्षिण में उदित होकर उत्तर की ओर जा रहा हो, यों वह विमान गगन में निर्बाध चल पड़ा। तब प्रभु ने शूलतुल्य नेत्रोंवाली सीता से ये बातें कहीं।

राम ने ज्योंही लंका की परिक्रमा करके जाने की बात सोची, त्योंही वह विमान उस बलवती नगरी के पूर्वद्वार पर (परिक्रमा करता हुआ) आ पहुँचा। राम ने सीताजी को वह स्थान दिखाकर कहा—'यहीं पर नील के हाथ से बृहदन्त्र (नामक राक्षस) मरकर गिरा था।' इतने में वह विमान यमदिशा (दक्षिण) के द्वार पर आया। तब राम ने (सीताजी से) कहा—'यहीं पर सुपार्श्व निहत हुआ था।'

ज्योंही विमान पश्चिम के द्वार पर आया, राम बोले—'वेग से उड़नेवाले पर्वतों के पंख जिसने काटे थे, उस इन्द्र को परास्त करनेवाले (इन्द्रजित्) को अनुज लक्ष्मण ने यहीं पर निहत किया था।' इतने में उत्तरद्वार पर पहुँचकर राम बोले—'यहीं पर रावण के दस सिर कटे और वह मारा गया।' वे आगे कहने लगे—

हे सुन्दर ललाटवाली! जब तुमसे बिछुड़े हुए अनेक दिन बीत गये, तब मैंने उत्तमशील सूर्यपुत्र (सुग्रीव) से मित्रता कर ली। उसके पश्चात् हनुमान् ने लंका में आकर तुम्हें धैर्य दिया और वहाँ से लौटकर मुझे तुम्हारा समाचार दिया था। फिर, राम ने कहा—देखो, वानर-सेनापतियों के द्वारा (समुद्र पर) निर्मित सेतु यही है।

हे स्वर्ण-कंकणधारिणी! इस सेतु की महिमा को विष्णु के नाभि-कमल में उत्पन्न ब्रह्मा भी नहीं जान सकता। मैं क्या कहूँ, फिर भी सुनो। जो नर, अपने पालक-पोषक स्नेही माता-पिता तथा गुरु से द्रोह करे, जो अपने बंधुजनों का अपकार करे, वैसे महान् पापी भी इस सेतु के दर्शन-मात्र से पावन होकर देव-समान बन जाते हैं।

हे स्वर्ण-कंकणधारिणी! पूर्वकाल में इन्द्र से डरकर जो गंधमादन नामक पर्वत विशाल समुद्र में छिपा था और जिसके दर्शन-मात्र से सब पाप मिट जाते हैं, वह पर्वत यही है,

देखो। उस पर्वत से मिलाकर यह सेतु बाँधा गया है, जिससे इसकी पावनता और भी अधिक बढ़ गई है।

गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी आदि जल से भरी पुण्यनदियों में स्नान करने से सब पाप मिटते हैं। किन्तु, शंखों से पूर्ण तरंगायमान समुद्र पर बाँधे गये इस सेतु नामक तीर्थस्थान के दर्शन-मात्र से समस्त पाप मिट जाते हैं।

गो-हत्या, गुरु-हत्या, ब्रह्महत्या. स्त्री-हत्या, शिशु-हत्या, अपनी शरण में आगत व्यक्तियों की हत्या जैसे अधम कार्य करनेवाले पापी भी यदि इस सेतु में स्नान करेंगे, तो वे देवताओं के लिए भी वन्दनीय बन जायेंगे।

मैंने नौकाओं के जाने के लिए अपने धनुष की नोक से (सेतु के मध्य) भेदकर मार्ग बना दिया है। इस स्थान पर स्नान करने पर पंचमहापाप भी कट जाते हैं और (ऐसे स्नान करनेवालों को) इक्कीस जन्म तक कोई व्याधि नहीं होती। वे लोग देवों से भी पूजे जाते हैं।

हे कमल पर आसीन रहनेवाली (लक्ष्मी)! ललाटनेत्र की जटा पर रहनेवाली गंगानदी भी, इस खेद से कि 'मैं सेतु के समान नहीं हो सकी', बड़ी तपस्या करती रहती है। तो, इस सेतु की पवित्रता के बारे में और क्या कहना है?[1]

शत्रुओं के घातक धनुष को धारण करनेवाले राम ने विष को पराजित करनेवाली (उतनी काली) तथा कर्ण-पर्यन्त बढ़ी हुई आँखोंवाली, अरुण अधर, कृश कटि एवं कलापितुल्य छटा से युक्त सीता से सेतु की सारी महिमा सुनाई। इतने में विमान 'धर्मशयन' नामक स्थान पर आया, तो राम बोले—'इसी स्थान में वरुणदेव मेरे आग्नेयास्त्र से त्रस्त होकर मेरी शरण में आया था।'

फिर राम (भिन्न-भिन्न स्थानों को दिखाकर) बोले—'वह तमिल-मुनि (अर्थात्, अगस्त्य) का निवासभूत महत्त्वपूर्ण 'पोदिय' पर्वत है। वह 'तिरुमालिरुं शोलै (कुंज) जोलै'—नामक पर्वत-स्थान है, जहाँ परमतत्त्वभूत विष्णु विराजमान हैं। वह 'अनन्त-पर्वत (तिरुपति) है।' तब सीताजी ने पूछा—'हनुमान् किस स्थान पर मिला था।' राम ने ऋष्यमूक पर्वत को दिखाकर कहा—

असीम सामर्थ्य एवं धीरता से पूर्ण, मकरों से भरे समुद्रों को भी पार करने की शक्ति रखनेवाले वानर के राजा वाली को यहीं मैंने निहत किया था। शास्त्रोक्त नीति को मानकर धर्ममार्ग पर चलनेवाले, संतों का स्वभाव रखनेवाले, सूर्यपुत्र (सुग्रीव) का नगर यही है।

तब सीताजी ने कहा—हे प्रभु! यदि यही किष्किन्धानगर हो, तो मेरा एक निवेदन सुनिए। जब यहाँ अनेक समुद्र (संख्यावाले) सैनिक हैं, तो मैं अकेली स्त्री ही अयोध्या में पहुँचूँ, वह उतना उचित नहीं जान पड़ता। अतः, मधुपूर्ण पुष्पों से अलंकृत केशोंवाली इस नगर की स्त्रियों को भी अपने साथ ले चलें, तो अच्छा हो।

राम ने सीता की वह बात सुग्रीव से कही। सुग्रीव ने सत्यवान् हनुमान् से

---

१. ऊपर के छह पद्य प्रक्षिप्त मालूम होते हैं। इनमें सेतु के माहात्म्य का वर्णन किया गया है।—अनु०

कहा--'हे वीर ! तुम शीघ्र जाकर वानर-स्त्रियों को ले आओ।' तब कलंकरहित हृदय वाला हनुमान् जाकर उन वानर-स्त्रियों को ले आया।

हनुमान् वानर-स्त्रियों के एक बड़े समुदाय को एक क्षणकाल में ले आया। सुरभित केशोंवाली उन (वानर-) स्त्रियों ने आकर अपने राजा सुग्रीव को नमस्कार किया, फिर राम एवं सीता के चरणों पर नतमस्तक हुईं।

जब यों अनेक मंगल-द्रव्य लाकर उन वानर-स्त्रियों ने स्त्रीरत्न (सीता-) देवी के चरणों पर रखा और नमस्कार किया, तो सीताजी बहुत आनन्दित हुईं। पुष्पक-विमान मनोवेग से आगे बढ़ चला।

जब विमान आगे बढ़ा, तब (शतरंज के) गोटे के समान स्तनोंवाली देवी से राम ने कहा—हे सुन्दरि ! यह स्थान गोदावरी-प्रदेश है। इस प्रांत में स्थित वह ऊँचा स्थान ही मुझसे तुम्हारे बिछुड़ने का स्थान है।

फिर, राम ने कहा—सुगन्धित पुष्पों से भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाले केशभार से युक्त सुन्दरि ! यही दंडकारण्य है, जहाँ उपासक और यज्ञ करनेवाले महात्मा निवास करते हैं। वह देखो, वही देवेन्द्र के लिए भी पूज्य बना हुआ चित्रकूट-पर्वत है। यही भरद्वाज महर्षि का आश्रम है।

जब राम सीता से यह कह रहे थे, तभी अपना उपमान न रखनेवाले मुनिवर (भरद्वाज) ने अपने मन में यह जान लिया कि मेरे स्वामी मेरे स्थान में आ पहुँचे हैं। वे आनन्दित होकर अनेक मुनियों के साथ स्वागत करने के लिए आकर खड़े रहे।

महिमामय राम ने एक हाथ में छाता और कमंडलु और दूसरे हाथ में दंड लिये हुए तत्त्वज्ञान से पूर्ण भरद्वाज मुनि को अपने सम्मुख ऐसे आते हुए देखा, मानों महान् तपस्या का फल ही साकार होकर आ रहा हो।

महान् मेरु की कंदरा में बसनेवाले सिंह के जैसे शोभायमान तथा किंचित् भी दया एवं स्नेह से हीन मनवाले राक्षसों को निहत करनेवाले महावीर राम ने मन में सोचा कि पुष्पक-विमान पृथ्वी पर उतर जाय।

विचार-मात्र से वह पुष्पक-विमान सब लोगों को लिये यों धरती पर उतर गया, ज्यों स्वर्गलोक ही उतर आया हो। रामचन्द्र शीघ्र आगे बढ़कर सब वेदों के ज्ञाता उन तपोधन (भरद्वाज) के चरणों पर नत हुए।

उन महानुभाव (भरद्वाज) ने अपने चरणों पर गिरे राम को उठाकर उत्तम आशीर्वादों के साथ आलिंगन-पाश में बाँध लिया। उनका सिर सूँघा। फिर, हर्ष से उत्पन्न आँसू-रूपी कलश-जल से मनोहर नयनोंवाले (राम) की जटाओं की धूल धो डाली। काले तथा दीर्घ केशोंवाली सीता एवं लक्ष्मण ने भी उन मुनिवर के चरणों को नमस्कार किया। उन दोनों को उन अपूर्व तपस्या-संपन्न ऋषिवर ने आशीर्वाद दिये। आनन्द से द्रवित होकर अश्रु बहाये तथा यों आनन्दित हुए, ज्यों अमृत का ही पान कर रहे हों।

वानरराज (सुग्रीव), राक्षसराज (विभीषण) तथा अन्य वीरों ने भी भरद्वाज को नमस्कार किया। मुनिवर ने सबको आशीर्वाद दिया। फिर, मुनियों के बड़े समुदाय के

सहित, वेदों का वाचन करते हुए वे तत्त्वज्ञान से ज्ञेय प्रभु तथा लक्ष्मी (के अंश सीता) को अपनी पर्णशाला में ले आये।

ऋषिश्रेष्ठ ने पर्णशाला में जाकर शास्त्रोक्त विधान से उनके अनेक सत्कार किये। फिर, सूर्यवंशश्रेठ राम को अश्रुसिक्त नयनों से बार-बार देखकर उन मुनिवर ने एक बात कही—

मुनियों, देवों तथा तीनों लोकों के निवासियों को भयभीत करके उन्हें अनेक दुःख देनेवाले कठोरचित्त तथा क्रूरकर्मी राक्षसों का समूल उन्मूलन करनेवाले दीर्घ धनुष से युक्त हे वीर! (हमारे सब अभीष्ट अब पूर्ण हुए), अब हम क्या कहें?

हे रक्षक! तुमने विराध, खर, हिरण (रूपधारी मारीच), बल से संपन्न विराध, सप्त सालवृक्ष, वाली का वक्ष, मकरों से पूर्ण समुद्र, कुंभकर्ण का बड़प्पन, रावण का वक्ष—सबको अपने तीक्ष्ण शरों से मिटाया और सब लोकों की रक्षा की।

हे ज्ञानस्वरूप! तुम चित्रकूट से चलकर, उसके दक्षिण में स्थित सब बाधाओं को दूर कर पुनः अब उत्तर में आकर मेरे आश्रम में ठहरे हो। अबतक के सब वृत्तांत मैं स्मरण कर रहा हूँ। मैं भूला नहीं हूँ। तुम आज-भर हमारे अतिथि बनकर यहाँ रहो, यों मुनि ने प्रार्थना की।

पुनः भरद्वाज ने राम से कहा—हाथ के दीर्घ धनुष को झुकाकर सत्यवान देवताओं की विपदाओं को दूर कर सब लोकों की रक्षा करनेवाले और मरकत-समान देहकांति तथा अरुण नेत्रोंवाले हे उदार पुरुष! अस्खलित नीतिवाले भरत के बारे में अब तुम्हें बताता हूँ—

भरत स्वेदयुक्त शरीरवाला है। आँखों से अश्रु बहाता हुआ, त्रिकरणों के व्यापारों से विरक्त होकर रहता है। मन में शोक-पीडित रहता है। सदा दक्षिण दिशा की ओर ही दृष्टि किये रहता है और कहीं दृष्टि फेरता ही नहीं। वह साक्षात् दुःख एवं भय के समान ही दीख पड़ता है।

भरत पंचेन्द्रियों का दमन करके शाक-फलों का आहार करता है। अश्वों का आहार बननेवाली घास की शय्या पर लेटता है। रात-दिन तुम्हारे नाम का जप करता रहता है। प्राचीन राजधानी (अयोध्या) में न जाकर (उसके निकट) नंदिग्राम में रहता है।

फिर, भरद्वाज ने कहा—राक्षसराज (रावण) की नीलशैल-सदृश बीस भुजाओं को तथा कुलपर्वतों की समता करनेवाले दस मुकुटधारी सिरों को काटनेवाले हे वीर! मैं कभी तुमसे पृथक् नहीं हुआ (अर्थात्, मैं निरंतर तुम्हारा स्मरण करता रहा हूँ)।

तब राम ने भरद्वाज से कहा—विद्युत्-समान पार्वती को अर्धभाग में रखनेवाले (शिव) तथा कमलभव (ब्रह्मा) जिसकी प्रशंसा करते रहते हैं, ऐसी तपस्या से संपन्न हे महात्मा! तुम्हें नमस्कार करके, तुम्हारी कृपा का पात्र होकर मैं धन्य हुआ। मेरी समता करनेवाला संसार में कोई नहीं रहा।

राम की यह बात सुनकर तत्त्वज्ञान-संपन्न मुनिवर ने उनको प्रेम से देखकर कहा—'सान पर चढ़ाये तीक्ष्ण शूल से युक्त हे वीर! मैं एक बात कहता हूँ, सुनो। मैं तुम्हें कोई

वर देना चाहता हूँ। तुम माँगो। तब राम ने प्रार्थना की—आप ऐसा वर प्रदान कीजिए, जिससे विजयी वानर-संघ सर्वदा सुखी जीवन व्यतीत करे।

वानर जहाँ भी अपने इच्छानुसार संचरण करें, वहाँ उनके लिए वर्षाकाल के समान ही कंद, फल, शाक, स्वच्छ जल, मधु—सब समृद्ध और सुलभ रहें। उन महान् तपस्वी ने कहा—'वैसा ही हो।'

फिर, अपूर्व तपस्या-संपन्न मुनिवर ने राम से कहा—'हे रक्षक! मैं तुमको एवं तुम्हारे साथ आगत सारी सेना को मधुर भोज दूँगा।' इसके बाद उन्होंने त्रिविध अग्नि में (अर्थात्, त्रेताग्नि में) आहुति दी, जिससे वहाँ स्वर्गलोक का भोग उपस्थित हो गया।

भरद्वाज ने सुग्रीव और उसके सेवकों तक के सब वानरों को अपार भोग (अर्थात् भोजन) प्रदान कर तृप्त किया और राम का भी राजा के योग्य सत्कार में किंचित् भी कमी किये बिना भोजनादि प्रदान किये। तब कमलनयन प्रभु ने हनुमान् को बुलाकर कहा—

'हे मारुति! हमारे अयोध्या पहुँचने के पूर्व ही तुम शीघ्र जाओ और भरत को हमारा कुशल-समाचार दो। उसके मन के संताप को शांत करके उसका वृत्तांत और मनोभाव जानकर आओ।' यह कहकर चिह्न के रूप में अपनी अँगूठी दी। हनुमान् वह अँगूठी लेकर चले।

हनुमान् अपने पिता (वायु) के वेग को तथा राम के बाण के वेग को भी मंद करता हुआ एवं अपने मन से भी आगे बढ़ता हुआ चला। मार्ग में गुह को राम के आगमन का समाचार देकर फिर गगनमार्ग से (भरत के निकट) पहुँचा।

अबतक हम यश का आश्रय बने हुए राम का दक्षिण दिशा में गमन तथा उनके अन्य कार्यों के बारे में कहते रहे। अब हम प्रसिद्ध तथा शत्रुओं के लिए दुर्गम अयोध्या का वृत्तांत कहेंगे।

नंदिग्राम में भरत प्रतिदिन निरंतर अपने अग्रज (राम) के वीर-वलयभूषित चरणों की पादुकाओं की पूजा करते रहते थे और अपनी पाँचों इन्द्रियों का दमन करके रहते थे।

शोकरूपी बड़ी अग्नि उन्हें घेरकर रहती थी और उनकी अस्थियों को भी गलाती रहती थी। ऐसा जान पड़ता था, जैसे अपूर्व प्रेम ही अब (भरत के रूप में) साकार हो गया हो।

(राम के वन-गमन का) स्मरण करने मात्र से उनकी दोनों विशाल आँखों से अश्रु बह चले थे। जल-संपन्न, सस्य तथा वनों से समृद्ध देश में रहते हुए भी वे कंद-मूल के अतिरिक्त और कुछ आहार नहीं लेते थे।

जब दृष्टि उठाकर देखते, तब दक्षिण-दिशा में ही देखते और यह सोचते हुए कि सूर्यकुल में उत्पन्न प्रभु अपना वचन अवश्य रखेंगे, अवश्य आयेंगे, निःश्वास भरते हुए रो पड़ते थे।

(हमारे) पीनेवाले जल तथा जीवात्माओं के लिए आत्मा बने हुए, सर्वपूज्य प्रभु (राम) के पट्टाभिषेक के जल की सीमा जबतक नहीं दिखाई पड़ेगी, तबतक उन (भरत) के अश्रुजल की भी कोई सीमा नहीं दिखाई पड़ेगी।

ऐसे भरत, जो पुष्पमालाओं से अलंकृत (राम की) पादुकाओं की पूजा में निरत थे, सहसा सोचने लगे कि उन (राम) के अयोध्या लौटने का समय कब है ?

यह सोचकर उन्होंने सेवकों को आज्ञा दी कि ज्यौतिष के सच्चे विद्वानों को ले आओ। ज्यौतिषियों ने शीघ्र आकर कहा कि 'पराक्रमी प्रभु के प्रत्यागमन का समय आज ही है।'

वह वचन सुनते ही संपत्ति से विरक्त, सत्य ज्ञानवान् भरत वन-गमन के समय कहे हुए राम के वचनों का स्मरण करके अत्यन्त शोकमग्न होकर मूर्च्छित हो गये।[1]

(कुछ क्षण बाद) भरत मूर्च्छा से जागे। प्रफुल्ल अरुण कमल-जैसे उनके नयनों से आँसू झरे। उनका मन (राम के न आने पर) अत्यन्त विह्वल हुआ। उनके प्राण शिथिल हुए।

भरत ने सोचा—'उन्होंने मुझे यह वचन दिया था कि ज्योंही अवधि समाप्त होगी, त्योंही मैं आ जाऊँगा। वे मेरे शोक को तथा माता कौसल्या के अपने प्रति प्रेम को भी नहीं भूल सकते। इन सबका बोझ अपने ऊपर रहते हुए वे यदि नहीं लौटे हैं, तो कदाचित् दुर्भाग्य से कोई बड़ी बाधा उपस्थित हो गई है !

मेरे उन वीर भाई का सामना करनेवाले कौन हैं ? त्रिमूर्त्ति भी उनके सम्मुख नहीं खड़े हो सकते और तीनों लोकों में कोई उनके समान शक्तिशाली भी नहीं है।' यह सोचकर वे (भरत) किंचित् स्वस्थ हुए।

फिर, भरत ने सोचा—'कदाचित् मेरे भाई ने यह तो नहीं सोचा कि यदि वह (अर्थात्, भरत) और राज्य करना चाहता हो, तो करे और इसीलिए वे नहीं आये ?'—यों सोचकर भरत अत्यन्त विकल हुए और अपने कर्त्तव्य का निर्णय करने लगे।

'ठीक है। रामचन्द्र चाहें तो वन में रहें या इस देश में रहें। वे कुछ भी करें। किन्तु, मैं यों चिंता में पड़कर दुःखी रहना नहीं चाहता। मैं अपने प्राणों के साथ ही मन के दुःख को भी दूर कर दूँगा।'

इस प्रकार, विविध विचार करने के उपरान्त अपने सेवकों को आज्ञा दी कि मेरे अनुज (शत्रुघ्न) से यहाँ आने को कहो। उन दूतों ने यह समाचार शत्रुघ्न को सुनाया। शत्रुघ्न यह समाचार सुनते ही भरत के सम्मुख उपस्थित हुए।

भरत ने अपने अनुज को नमस्कार करते हुए देखा, तो उन्हें अपने अश्रुओं से सिक्त वक्ष से गले लगा लिया और शोक के साथ बोले—हे तात ! मैं एक वर माँगता हूँ। वह वर अवश्य तुमसे मुझे मिलना चाहिए।

वह बात यह है—नियत दिन को रामचन्द्र नहीं आये। अतः, अब मैं प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर अपने प्राण त्याग करूँगा। तुम मेरी बात का विरोध मत करो और यह राज्य स्वीकार करो।—यों भरत ने कहा।

---

१. राम ने चित्रकूट में भरत को वचन दिया था कि ज्योंही चौदह वर्ष की अवधि पूर्ण होगी, त्योंही वे अयोध्या में पहुँच जायेंगे। किन्तु, अब उस अवधि के पूर्ण होते हुए भी, राम के आने का कोई लक्षण न देखकर भरत मूर्च्छित हो गये।—अनु०

वह वचन सुनते ही शत्रुघ्न ने अपने दोनों विशाल करों से अपने कर्ण-रंध्रों को बंद कर लिया। मानों विष खा लिया हो, यों विकल हो खड़े रहे। उनके नेत्र और मन काँप उठे।

वे (शत्रुघ्न) पृथ्वी पर गिर पड़े। एक के बाद एक आनेवाली हिचकियों से उनका कंठ रुँध गया। निःश्वास भरते हुए वे उठ खड़े हुए। उनके हृदय में ताप की ज्वाला भड़क उठी। फिर, अपने बड़े भाई से कहा—हे शोक में डूबे हुए भाई! मैंने आपके प्रति क्या अपराध किया है?

जब राम राज्य को त्यागकर वन में शासन करने गये, तब उनकी रक्षा के लिए एक भाई उनका अनुगामी बनकर गया। उन दोनों के प्रत्यागमन की अवधि बीत जाने पर एक भाई अपने प्राणों को छोड़ने के लिए सन्नद्ध हो रहे हैं, तब क्या मैं ही एक ऐसा भाई हूँ, जो बिना ग्लानि के यह राज्य करता रहूँगा?

राम के वन चले जाने के पश्चात् इस आशंका से कि 'आपको ऐसा अपयश न उत्पन्न हो कि भरत समृद्धि से युक्त नगर में जीवन व्यतीत करता रहा'—आप नगर से बाहर रहकर कठोर तपस्या में निरत रहे। मेरे संबंध में आपकी यह धारणा है कि आपके अग्नि-प्रवेश के पश्चात् भी मैं जीवित ही रहूँगा। किन्तु, आपके अग्नि-प्रवेश के पश्चात् मेरा जीवित रहना वैसा ही है, जैसे आपके रहते ही आपको हटाकर मेरा श्वेतच्छत्र धारण कर लेना।

मुक्ता की कांति से निर्मित-जैसे लगनेवाले, रजत के धवल प्रकाश से युक्त तथा अरुण कमल-समान नयनोंवाले शत्रुघ्न के यों कहने पर, भरत ने कहा रामचन्द्र इसीलिए नहीं आये हैं कि मैं यहाँ राज्य कर रहा हूँ। यदि मैं मर जाऊँगा, तो वे इस राज्य को वैसे ही अव्यवस्थित नहीं छोड़ देंगे। तुरन्त आकर यहाँ शासन करेंगे। अतः, तुम शीघ्र अग्नि प्रज्वलित करो (जिसमें प्रवेशकर मैं प्राण त्याग करूँ)।

उसी समय, वह समाचार अयोध्या में पहुँचा। उसे सुनकर विष्णु (के अवतार राम) को जन्म देनेवाली, उपमा-रहित सतीत्व से संपन्न, कौसल्या देवी छाती पीटती हुई रो पड़ी और यह कहती हुई कि 'हे पुत्र! यदि तुम मरोगे, तो इस लोक के सब प्राणी मर जायेंगे' सत्वर दौड़ी चली आई। उस समय उनका शरीर इस प्रकार तप्त हो रहा था, मानों वह अग्नि से ही बना हो।

मंत्रिगण, सेनापति, बंधुजन, स्त्रियाँ, ब्राह्मण, समृद्ध अयोध्या के अन्य सब लोग, सिरपर हाथ रखे, रोते हुए कौसल्या के पीछे-पीछे आये। इन्द्र आदि देव तथा मुनिगण उनकी प्रशंसा करने लगे। गगन की देवस्त्रियाँ उनको नमस्कार करने लगीं। यों रोती-कलपती हुई वे (कौसल्या) भरत के निकट आ पहुँचीं।

अजस्र अश्रु-प्रवाह से युक्त आँखों तथा खुले हुए केशपाश के साथ कौसल्या देवी, शिथिल देह से लड़खड़ाती हुई आईं और प्रज्वलित अग्नि एवं भरत के बीच में खड़ी हो गईं। प्रेमस्निग्ध हृदयवाले भरत ने स्तब्ध होकर उनके चरणों को नमस्कार किया। तब कौसल्या ने भरत को दृढता से पकड़ लिया और बोलीं—

चक्रवर्त्ती (दशरथ) ने जो किया और पुत्र (राम) ने जो किया, वह मेरे पूर्वजन्म के पाप के कारण था। उसके पश्चात् जो-जो हुआ, वह सब दुर्दैव ने किया। किन्तु, अब मेरे बेटे! तू क्या करने जा रहा है?

यदि तू ऐसा करेगा, तो इस देश के सब लोग ऐसा ही करेंगे। हमारे कुल के सब राजा और सेनाएँ मर मिटेंगी। हम माताएँ भी ऐसा ही करेंगी। अनुपम धर्म भी अग्निसात् हो जायगा। सारा संसार ही अव्यवस्थित हो जायगा।

हे तात! तेरा चरित्र धर्म का सार है। हमने धर्म के विरुद्ध कुछ भी तुझमें नहीं देखा। तूने अपने महत्त्व को नहीं जाना। कल्पान्त होने पर भी तेरी महिमा नहीं मिटेगी।

हे महिमामय! अनेक कोटि राम भी तेरे प्रेम के समान नहीं हैं। तू साकार पुण्य है। इस प्रकार तू यदि मर जायगा, तो धरती, स्वर्ग तथा समस्त प्राणी क्या मरे बिना रह सकेंगे?

यदि राम आज नहीं आया, तो वह कल ही आकर तुझसे मिलेगा। यह मत समझना कि वह अपने इस वचन से कि 'मैं चौदह वर्ष के पश्चात् अवश्य लौट आऊँगा', चूक जायगा। यदि वह नहीं आये, तो (जानना चाहिए कि) कुछ-न-कुछ विपदा उत्पन्न हो गई होगी।

शास्त्रों में प्रतिपादित धर्म तेरे अतिरिक्त कुछ नहीं है। ऐसे पवित्र चरित्र से युक्त हे पुत्र! क्या एक राम के मर जाने से तू इस संसार के असंख्य दुर्लभ प्राणिवर्ग को समूल मिटने देगा?

हे बेटे! कुछ लोगों का मरना, बिछुड़ जाना तथा मोहग्रस्त होकर पुनः जन्म लेना—यह सब लोक की रीति है। अतः, इसे जानकर बंधन (अर्थात्, एक दूसरे के प्रति आसक्ति) को भूलकर विरक्ति का आश्रय लेना ही दृढ पुरुषार्थ होता है। इस प्रकार पवित्र हृदयवाली उन (कौसल्या) देवी ने कहा।

तब भरत ने कौसल्या से कहा—राम के वचन एवं इस सूर्यवंश की रीति के मिट जाने पर मैं अपने प्राण रखकर जीवित रहना नहीं चाहता। मैं अपनी पूर्वकृत शपथ को पूरा करूँगा। यह मत समझना कि मेरे पुत्र ने मेरी बात का तिरस्कार किया।

मैं भी तो उन चक्रवर्त्ती (दशरथ) का ही पुत्र हूँ, जिन्होंने सत्य वचन के लिए अपने प्यारे प्राणों को छोड़कर स्वर्गलोक के लिए प्रस्थान किया। (अपनी शपथ को पूर्ण करना) क्या वन में जानेवाले काकुत्स्थ (राम) का ही कार्य है? क्या दूसरों के लिए भी वह दोषहीन कर्त्तव्य नहीं है?

माता और पिता के वचन मानना और योग्य प्रेम के बंधन को समूल तोड़ देना क्या प्रभु (राम) का ही कार्य हो सकता है? क्या यह उन्हीं को शोभा देगा? मैं वैसा कार्य करने को कदापि सहमत नहीं होऊँगा। मैं मरकर दोषहीन बनूँगा और अपनी शपथ पूर्ण करूँगा।

इस प्रकार कहने तथा आर्त्तस्वर में बड़ी रुदन-ध्वनि करनेवाले लोगों के सामने

जब भरत अग्नि की पूजा करके उसमें प्रवेश करने को सन्नद्ध हुए, तभी पर्वताकार मारुति उनके सम्मुख आ पहुँचा।

प्रभु आ गये! आर्य राम आ गये! सत्य के शरीर-समान आप यदि अपने प्राण त्याग देंगे, तो क्या वे जीवित रह सकेंगे? हनुमान् यों बोलते हुए (भीड़ में) प्रविष्ट हुए और अपने हाथों से उस अग्नि को बुझा दिया।

अग्नि को बुझा देने के पश्चात्, भरत के कमल-समान चरणों पर अपना सिर रखकर मारुति ने नमस्कार किया और अपने हाथ से अपना मुँह ढककर (बड़ी विनम्रता से) मारुति ने कहा—आप मेरा एक निवेदन स्वीकार करें।

हे आर्य! राम ने अपने लौटने की जो अवधि बताई थी, अभी उसमें चालीस घड़ियाँ शेष हैं। यदि मेरी यह बात असत्य हो, तो यह श्वान-तुल्य दास स्वयं पहले अग्नि में प्रवेश करके अपने प्राण त्याग करेगा।

हे अक्षुण्ण सत्य से युक्त! बात यह है। जबतक उज्ज्वल सूर्य पूर्व दिशा में स्थित उदयाचल पर प्रकट न हो, तबतक आप इस दास की बात मानकर शांति रखें। यदि तबतक राम नहीं आयें, तो आप इस लोक के साथ ही अपने प्राण-त्याग कर सकते हैं।

कमलपुष्प की माला धारण करनेवाले भरद्वाज महर्षि ने प्रभु को मधुर भोजन देकर उनका सत्कार करना चाहा। अतएव, वे उन मुनिवर के आश्रम में टिक गये। नहीं तो वे (राम) किंचित् भी विलंब नहीं करते? अब और एक बात सुनिए—

देवाधिदेव (राम) ने कृपा करके आपको अपना एक चिह्न भेजा है। उसे मैं लाया हूँ। हे दोषहीन विचारवाले उसे आप देखें—यह कहकर हनुमान् ने राम की दी हुई अँगूठी भरत को दिखाई।

ज्योंही भरत ने वह अँगूठी देखी, त्योंही वहाँ एकत्र जनता तथा राम के अनुज (भरत) की ऐसी दशा हुई, जैसी विष खाकर मरनेवाले को मरते समय अमृत पिलाये जाने पर होती है।

उस समय रोनेवाले सब मुँह आनन्द-ध्वनि कर उठे। अश्रुवर्षा करनेवाली आँखों की दशा बदल गई। झुके हुए सिर उत्साह से उठ गये। सबके हाथ वायुकुमार के प्रति प्रणाम करने के लिए उठ गये।

भरत, अपने सम्मुख नमस्कार करते हुए हनुमान् को स्वयं बार-बार नमस्कार करके नाच उठे। उस अँगूठी को अपने हाथ में लेकर मुख पर लगाते हुए ऐसे फूल उठे कि जो यह कह रहे थे कि क्या भरत राम के लौटने तक उनके प्रेम का विषय बनने के लिए जीवित रह सकेंगे? अब भरत को देखकर (अपनी पुरानी बात पर) लज्जित होने लगे।

रामचन्द्र से बिछुड़ने के समय से अबतक कठोर शोक के अतिरिक्त और कुछ अनुभव नहीं करनेवाले भरत का फूँकने पर उड़ जानेवाला (उतना कृश) शरीर (अँगूठी को देखते ही) इस प्रकार फूल उठा कि ऐसा लगने लगा कि ये कोई दूसरे व्यक्ति हैं। उनके कंधे पर्वत के समान उच्छ्वसित हो उठे।

आनन्दकी अधिकता के कारण भरत रोते और हँसते अँगूठी लिये अपने करों से

हनुमान् को नमस्कार करते, उछलते, कूदते, नीचे गिरते, स्तब्ध मन से खड़े रहते, फूले नहीं समाते, स्वेद से भर जाते, लोगों के सँग नाचते, अपने बड़े हाथों से ताली बजाते।

'हे पापियो ! अब नाचो, नाचो !' कहकर चिल्लाते। 'प्रभु के पास अब दौड़ो ! दौड़ो !' कहते। 'प्रभु के अपार यश को गाओ ! गाओ !' कहते। 'इस दूत (हनुमान्) की चरण-धूलि सिर पर लगाओ ! लगाओ !' कहते।

षड्‌यंत्र करनेवाली कैकेयीजी[1] अब वैसी छल नहीं कर पायेंगी और अब शान्त हो जायेंगी—कहकर भुजाओं पर ताल ठोंकते, अपने झुके पैरों को चारों ओर घुमाकर नाचते हुए गा उठते।

(भरत) वहाँ के ब्राह्मणों को प्रणाम करते। राजाओं को प्रणाम करते। दासियों को प्रणाम करते। अपने-आपको प्रणाम करते। कुछ न जानकर चुप खड़े रहते। प्रेम भी तो मद्य का गुण रखता है।

इस दशा में स्थित भरत ने फिर हनुमान् को देखकर पूछा—तुम कौन हो ? कृपा करके हमें बताओ। तुम कोई भी हो। फिर भी, त्रिमूर्त्तियों में से एक देव की समता करनेवाले हो—यह मैं अनुमान से जान रहा हूँ।

तुम वेदज्ञ (ब्राह्मण) के वेष में आये हो। फिर भी, तुमको सृष्टि के शासक त्रिमूर्त्तियों में से एक मानता हूँ। अपना वृत्तान्त मुझे सुनाओ—यों भरत ने कहा। तब शब्दायमान वीर-वलयधारी हनुमान् बोला—

हे राजन् ! मैं एक वानर हूँ। वायु का पुत्र, (संतति के लिए) तपस्या करने-वाली अंजना देवी के गर्भ से उत्पन्न हूँ। आपके अग्रज (राम) की सेवा करनेवाला भृत्य हूँ। अपने सहज रूप को बदलकर आया हूँ।

प्रभु की दासता करनेवाले, श्वान-समान तुच्छ मुझ वानर के वेष को आप अपने कमल-समान नयनों से देखें—यह कहकर अपना सहज रूप लेकर हनुमान् यों खड़ा हुआ कि स्वर्गवासी उसके सिर को अपने सम्मुख देखने लगे। (अर्थात् , गगन तक बढ़कर महान् आकार में खड़ा हुआ।)

अंजना देवी के शिशु के उस रूप को देखकर दीर्घ धनुर्धारी दोनों वीर (अर्थात्, भरत और शत्रुघ्न) एवं ब्रह्मा के पुत्र (वसिष्ठ) सोचने लगे—'अहो ! कैसा अद्भुत रूप है !' सारी जनता भय से विकल हो गई।

तब भरत ने हनुमान् से कहा—तुम इतने ऊँचे हो कि हमारी बात तुम्हारे कुंडल-भूषित कानों तक नहीं पहुँच सकती। अतः, अपने इस अनश्वर रूप को संकुचित कर लो।

तब सूर्यशिष्य (हनुमान्) आदर से अपने भीम रूप को छोटा करके खड़ा हो गया। तब भरत ने उसे अपार संपत्ति तथा मनोहर आभरण प्रदान किये।

धनुर्धारी (भरत) ने गाय, वस्त्र, उत्तम नवरत्न, हाथी, अश्व, रथ, जल से समृद्ध भूमि आदि दान किये।

---

१. 'कैकेयीजी'—शब्द यहाँ निन्दासूचक है।—अनु०

(भरत ने) फिर, अपने अनुज से कहा—प्राचीरों से आवृत हमारी अयोध्या में रहनेवाले सब लोगों के बीच महान् शब्दवाले नगाड़े बजवाकर यह घोषणा करवा दो कि 'प्रभु का स्वागत करने के लिए सब लोग एकत्र होकर चलें।'

यह भी घोषणा करवा दो कि 'तोरण लगावें। वस्त्रावृत सुन्दर मंगल-कलश स्थापित करें। हाथियों, अश्वों और रथों का यथाविधि अलंकार करें।'

यह भी घोषणा करवा दो कि अयोध्या के स्वर्णमय प्राचीराग्र से भरद्वाज मुनि के आश्रम तक उत्तम मुक्ताओं का वितान लगावें तथा नगर को नवीन रूप में अलंकृत करें।

भरत की आज्ञा पाकर पर्वताकार दृढ धनुर्धारी शत्रुघ्न ने उनके चरणों को नमस्कार करके, शास्त्रों के ज्ञान से संपन्न सुमंत्र को (वह आज्ञा) सुनाई।

ज्ञान के समुद्र जैसे सुमंत्र ने वह बात सुनी, तो अकलंक प्रेम से आनन्दित हो उठा और घोषणा करनेवाले ('वल्लुव' नामक जाति के) लोगों को यह आज्ञा दी कि 'मनोहर कांतिमय रत्नों से शोभायमान नगर-वीथियों में घूमकर नगाड़े बजाते हुए घोषणा कर दो।'

वल्लुव लोगों ने हाथियों पर से नगाड़े बजा-बजाकर सर्वत्र घोषणा की कि 'आज गगन और दिशाओं को पार करनेवाले (अमित) यश से युक्त चक्रवर्ती राम का स्वागत करने के लिए नगर के लोग, राजकुल एवं समस्त सेना चले।'

नगाड़े की ध्वनि सुनते ही असीम आनन्द से भरकर राजाओं, ब्राह्मणों तथा पौरजनों से शब्दायमान वह अयोध्यानगर वीचियों से पूर्ण समुद्र के समान उमड़ उठा।

'अनघ (राम) का स्वागत करने के लिए चलो'—यह घोषणा उस स्वर्ण के समान थी, जो किसी अत्यन्त दरिद्र व्यक्ति को मिल जाय और उस घोषणा के समान थी, जो पूर्व में राम के विवाह के लिए जनकपुर जाने के लिए की गई थी।

साठ सहस्र अक्षौहिणी सेना, राजकुल के लोग तथा नगर के नर-नारी यों उमगते हुए चले, जैसे किसी संपत्ति की खोज करनेवाले को वह संपत्ति स्वयं आकर उसके हाथ लग जाय।

तीनों माताएँ स्वर्ण की पालकियों पर आरूढ होकर, देवताओं की स्तुति करती हुई चलीं। राजा भरत, अपने ही समान ऋषियों तथा बंधुजनों से घिरे हुए हनुमान् के कमल-समान कर को पकड़कर चले।

भरत रामचन्द्र की दो पादुकाओं को ही मुकुट के समान अपने सिर पर धारण करके, दोनों ओर चँवर डुलते हुए, सप्त समुद्रों के जैसे हाथियों के चिंघाड़ते हुए, अनुपम श्वेतच्छत्र की छाया में चले।

इसी समय सूर्य मानों यह सोचकर ही कि 'मेरे भक्त राम का स्वागत करने के लिए पृथ्वी पर चलकर भरत जा रहा है। उसके कमल समान मनोहर चरणों को अपने ताप द्वारा पथरीला मार्ग जला देगा', अस्त हो गया हो।

सन्मार्ग पर चलनेवाले भरत ने, जो हनुमान् के कर को पकड़े हुए जा रहे थे,

हनुमान् से पूछा—लक्ष्मी के अधिपति वे प्रभु कहाँ ठहरे थे? उनका पूरा वृत्तांत हमें सुनाओ।

भरत के यों प्रश्न करने पर हनुमान् ने नमस्कार करके कहा—'हे सुगंधित पुष्पों की माला धारण करनेवाले! हमारे प्रभु के अयोध्यानगर में रहते समय और वन के लिए प्रस्थान करते समय जो घटित हुआ है, उनके बारे में कहने की क्या आवश्यकता है?

फिर, हनुमान् ने, रामचन्द्र के चित्रकूट में निवास से प्रारंभ कर दशकंठ के वध तक घटित होने तथा अपने (हनुमान् के) अयोध्या आने तक का सब वृत्तांत सुनाने का विचार किया।

पर्वत-समान दृढ धनुर्धारी पुरुषोत्तम राम दक्षिण में स्थित चित्रकूट को छोड़कर फिर महा बलवान् विराध नामक राक्षस का वध करके अनेक तपस्वी-सत्तमों के निवासभूत दंडकारण्य में जा पहुँचे।

उस वन में स्थित ऋषियों ने राम से विनती की कि 'हे नीतिमान्! राक्षसों की असह्य पीडा से हम अपने तपःकर्म से स्खलित हो गये हैं।' तब राम ने कहा—'मैं निश्चय ही पापियों का विनाश करूँगा। मेरे वचन से आप लोग अपने मन के सब ताप को दूर कर दें।'

रामचन्द्र दस वर्ष तक उस दंडकारण्य में रहे, उसके पश्चात् असंख्य ऋषियों के वचन के अनुसार अनुपम तमिल-मुनि (अगस्त्य) के आश्रम में जा पहुँचे। संताप-हीन ऋषियों ने आनंदित होकर प्रभु का स्वागत किया।

चुल्लू में समुद्र के जल को भरकर पी जानेवाले मुनिवर (अगस्त्य) ने विशाल नेत्रोंवाले राम के सम्मुख जाकर उनका आलिंगन किया और (राम को) धनुष, अनुपम वेग से जानेवाले बाणों से पूर्ण तूणीर, कवच एवं दृढ करवाल दिये।

उसके पश्चात् वे महावीर प्रवाल-समान अरुण अधरवाली कलापी-तुल्य अपनी देवी तथा सत्य-यश से भूषित अनुज के साथ आगे गये और गृद्धराज (जटायु) के दर्शन करके मेघों से आवासित पंचवटी में ठहरे।

कुछ दिनों के पश्चात् एक दिन महान् पापिनी राक्षसी (शूर्पणखा) वहाँ आ पहुँची और कोमल हृदयवाली सीता को उठा ले जाना चाहा। तब लक्ष्मण ने मूर्च्छित हुई सीता को धैर्य देकर उस राक्षसी के नाक, कान आदि अंग काट डाले। उस राक्षसी ने खर के पास जाकर सब बातें बताईं।

खर, त्रिशिर तथा दूषण तीनों तीन अग्नियों के समान प्रज्वलित हो भड़क उठे और बड़ी भीषण सेना को साथ लेकर आ पहुँचे। रामचन्द्र अपने धनुष की ओर दृष्टिपात करें, इसके पूर्व ही (वे सब राक्षस) अग्नि में रूई के समान जल गये। शूर्पणखा लंका वापस चली गई।

शूर्पणखा ने बीस भुजाओंवाले राक्षस (रावण) को सब बातें सुनाईं। वह भड़क उठा। वह दसों दिशाओं को भयभीत करते हुए माया-मृग को भेजकर स्वयं त्रिदंडधारी तपस्वी का वेष धारण किया और उन लक्ष्मी (के अंश सीता) को धरती के साथ उठाकर ले गया।

सीता को उठाकर ले जाते समय जटायु उसके सम्मुख आया। उसने जटायु से युद्ध करके उसे मार गिराया और संतप्त हृदयवाली (सीताजी) को अशोक वन में बंदी बनाकर रखा। इधर प्रभु माया-मृग का वध करके लौटे और अनुज लक्ष्मण के साथ चलते हुए आहत होकर गिरे हुए जटायु को देखा।

उस जटायु के अंतिम संस्कार करके मनोहर ललाटवाली सीता को खोजते हुए दक्षिण दिशा में गये। मार्ग में उसके शाप के साथ कबंध नामक राक्षस के प्राणों को मिटाकर उसे मुक्ति दी। फिर, उनकी प्रतीक्षा में रहनेवाली शबरी का आतिथ्य स्वीकार किया।

उस शबरी के कथनानुसार वे सूर्यपुत्र के निकट गये। उससे मित्रता की और उसे वचन दिया कि बाली से मिलनेवाले दुःख से तुम्हें मुक्त करूँगा। उन्होंने ऐसा शर चलाया कि सप्त सालवृक्ष तथा बाली का दृढ वक्ष भिद गये और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सुग्रीव को राजगद्दी प्रदान की।

वर्षा ऋतु व्यतीत होने के पश्चात् हमारे राजा (सुग्रीव) गवय, ऋषभ, नील, मैन्द, जांबवान्, शतबली, पनस, बालिपुत्र (अंगद) आदि वानर-सेनापतियों के साथ एक बड़ी वानर-सेना लेकर प्रभु के पास आ पहुँचे।

सत्तर 'समुद्र' वानर-सेना गंभीर जलधि के समान उमड़ आई। सूर्यपुत्र ने प्रत्येक दिशा में दो-दो 'समुद्र' संख्या में सेना को सीता का अन्वेषण करके एक मास के भीतर लौट आने की आज्ञा देकर भेजा।

यह दास दो 'समुद्र' संख्या वानर-सेना के साथ दक्षिण दिशा में जाकर, बालिपुत्र एवं जांबवान् की प्रेरणा से पर्वतमध्य-स्थित लंका में जा पहुँचा और सीता के दर्शन किये। वहाँ से लौटकर इस दास ने समाचार सुनाया, तो समुद्र-समान वानर-सेना दक्षिण समुद्र के तीर पर आ पहुँची।

ज्ञान के समान, पुष्पमालाओं से भूषित भुजाओंवाले विभीषण ने बीस भुजाओं-वाले अपने भाई से कहा कि तुम सीता को छोड़ दो, नहीं तो तुम्हारी आयु समाप्त हो जायगी। पर, रावण ने उसे तिरस्कृत किया। तब विभीषण वहाँ से हटकर प्रभु की शरण में आ पहुँचा।

प्रभु ने उस (विभीषण) को अभय प्रदान किया और लंका का राज्य भी दिया। फिर, कुछ दिनों तक वरुण को तृप्त कर उसका साक्षात् करने के लिए दर्भ-शय्या पर व्रत करते रहे। वरुण के न आने से राम की आँखें क्रोध से लाल हो गईं, तब सप्त समुद्र तथा वरुण की देह झुलस गई।

फिर, वरुण प्रभु की शरण में आया। विजयी वानर-वीरों ने उत्साह के साथ समुद्र के मध्य शैलों से सेतु निर्माण किया। उस मार्ग से वे उज्ज्वल लंकानगरी में प्रविष्ट हुए। देवता भयमुक्त हुए।

प्रभु ने अपना धनुष झुकाकर कैलास को उठानेवाली (रावण की) भुजाओं को मत्त दिग्गजों के दाँतों से युक्त दृढ वक्ष को तथा दस सिरों को भेदकर गिरा दिया। साथ ही,

कुंभकर्ण के पैर और कंठ एवं छिन्न राक्षसों के समूह को धराशायी कर दिया। इस प्रकार उन्होंने देवों के संताप को मिटाया।

लक्ष्मण के एक बाण से इन्द्रजित् नामक अप्रतिकार्य प्रताप से युक्त राक्षस तथा उसके बंधुवर्ग सब विध्वस्त हुए। पुष्पवर्षा करनेवाले देवों ने उस दिन कबंधों को नाचते हुए देखा।

देव, मुनि, सिद्ध, उनकी स्त्रियाँ तथा तीनों लोकों के निवासी बारी-बारी से प्रभु की स्तुति करने लगे। फिर, अतसीपुष्प-समान रंगवाले प्रभु ने ज्ञानवानों में श्रेष्ठ विभीषण को सब कर्त्तव्य बताकर मृतकों के अंतिम संस्कार करने को कहा।

हे शत्रुमांस से सिक्त शूल को धारण करनेवाले वीर (भरत!) जिस समय चतुर्मुख, वृषभवाहन, हरिणमुख (मय) आदि मधु-भरे पुष्पों से भूषित प्रभु की स्तुति कर रहे थे, उस समय प्रभु ने देवों की माता (सीता) को अग्नि-प्रवेश करने को कहा। अग्निदेव ने उन (सीताजी) के पातिव्रत्य को प्रमाणित किया, तब वे शान्तक्रोध हुए।

सत्य से विचलित न होनेवाले दशरथ तब विमान पर आ पहुँचे। राम अनुज लक्ष्मण एवं हंसिनी-तुल्य सीताजी ने उनके चरणों को नमस्कार किया। चक्रवर्ती दशरथ) ने उनको गाढालिंगन में बाँधकर अश्रु-रूपी कलशजल से उनका अभिषेक किया। फिर, उन्होंने प्रभु से कहा—उत्तम गुणवाली सीता पर कृपा करो।

प्रभु ने उनसे वर माँगा कि मेरी जननी प्रेममयी (कैकेयी) को एवं उनके पुत्र भरत को आप पुनः मेरी जननी एवं अनुज के रूप में स्वीकार करें। दशरथ वह वर प्रदान करके चले गये। स्वर्ग के देवता भी वानरों के सुखी जीवन के लिए आवश्यक अनेक वर देकर चले गये।

निष्कलंक यश से युक्त लंकेश (विभीषण) ने सत्तर 'समुद्र' वानर, सड़सठ करोड़ राक्षस, एक चक्रवाले रथ पर आसीन उदार सूर्यपुत्र (सुग्रीव)— सबके आनन्द को बढ़ाते हुए पुष्पक-विमान ला दिया।

उत्तम प्रभु प्रेम के साथ आपका स्मरण करते हुए तथा सूर्यपुत्र, वानर-सेना, प्राचीन नगरी लंका के स्वामी (विभीषण) आदि से घिरे हुए, स्त्रीरत्न (सीताजी) के साथ उस उत्तम विमान पर आरूढ हुए और भरद्वाज के आश्रम में आ पहुँचे।

आपके प्रति अगाध प्रेम के कारण रामचन्द्र ने मुझे आपके पास यह कहकर भेजा है कि 'इस अँगूठी को दिखाकर उस (भरत) का संताप दूर करना', प्राचीन समुद्र को पारकर (राम पर) भक्ति रखने के कारण सारी लंका को अग्निसात् करनेवाले हनुमान ने इस प्रकार कह सुनाया।

वायु के उत्तम पुत्र के इस प्रकार कहने पर भरत ने आँखों से आँसू बहाते हुए कहा—एक भाई, बड़े प्राचीरों से सुरक्षित लंका में, राक्षसों का वध करने में निरत हुए नीलमेघ (जैसे राम) के पीछे गया। मैं भी एक भाई हूँ, जो यहाँ रहकर यह सारा वृत्तांत सुनता हुआ दुःखी हो रहा हूँ। अहो! मेरा दास्य भी बहुत सुन्दर है!

यों मन में विह्वल होकर दोनों आँखों से आँसू बहाते हुए अपने दक्षिण कर से

हनुमान् के अरुण हस्त को पकड़े हुए भरत पैदल चलकर, उदयाचल पर मेरु की परिक्रमा करनेवाले सूर्य के उदय होने के पूर्व ही, जल से समृद्ध गंगा नदी के तट पर जा पहुँचे।

सूर्य ऐसे उदित हुआ, मानो हमारे प्रभु जो रावण का वध करके अयोध्या में लौट रहे हैं और भूदेवी तथा कमल पर आसीन लक्ष्मीदेवी को आनन्दित करते हुए जो मुकुट धारण करनेवाले हैं, उस मुकुट में लगाने योग्य, सान पर चढ़ाये हुए एक बहुत चमकीले रत्न को अपने सिर पर उठाये हुए पूर्व दिशा का स्वामी (इन्द्र) आ रहा हो।

भरत ने प्रातःकाल के योग्य सब कर्त्तव्य पूर्ण किये। राम की परस्पर समान चरणों की पादुकाओं को प्रणाम किया। फिर, वानर-वीर (हनुमान्) को देखकर कहा— 'हे अनेक शास्त्रों में व्युत्पन्न ! कदाचित् तुम्हारी बात में त्रुटि हो गई है। आरम्भ से विचार करने पर क्या तुम्हारे वचन का भी विरोध हो सकता है ?'

हे वीर ! यदि सत्तर समुद्र संख्या वानर-सेना एवं लंकेश की बड़ी सेना सब एकत्र होकर आ जातीं, तो क्या गम्भीर समुद्र के जैसा बहुत दूर तक व्याप्त होनेवाला उसका निर्घोष नहीं सुनाई पड़ता ? (किन्तु, कोई आहट नहीं सुनाई पड़ रही है।) अतः, तुम्हारी बात भी कैसी है !—यों भरत ने कहा।

हे महिमामय ! भरद्वाज का आश्रम यहाँ से दो योजन दूर पर ही तो है ? तरंगायमान समुद्र-समान सत्तर समुद्र सेना अगर उस आश्रम में है, तो क्या ऐसी निश्शब्दता छाई रहती ? हमारे प्रभु कहाँ हैं ?—यों हनुमान् की बात पर संदेह करते हुए भरत ने कहा।

भरत के यह कहते ही हनुमान् ने उनको नमस्कार करके कहा—हे अत्युत्तम तपस्या में निरत रहनेवाले ! वरदायी भरद्वाज के द्वारा, देवों की पूजा करके दिये गये मधुर भोजन को पाकर सारी सेना मस्त हो सो गई होगी। यह निश्चित है।

हे प्रभु ! देवों के द्वारा दिये गये अरण्य में भ्रमरों से घिरे मधु, कंद, शाक, फल आदि को समृद्ध रूप में खाने से वानर सब कुछ शब्द किये बिना निद्रामग्न हो गये हैं। आप चिन्तित न हों।

आप एक क्षणकाल में अपने दोनों आँसू-भरे नयनों से हमारे प्रभु को आते हुए देखेंगे।—यों हनुमान् ने कहा। अब हम यह कहेंगे कि भरद्वाज आश्रम में सुन्दर तथा वक्र धनुष धारण करनेवाले कमलनयन (प्रभु) ने क्या किया।

अपूर्व तपस्या-संपन्न भरद्वाज ने षड्रस से युक्त भोजन समृद्ध रूप में दिया। रामचन्द्र, दीर्घ नेत्रों से युक्त सीतादेवी तथा अन्य बन्धुजन के साथ उनका दिया हुआ भोज स्वीकार करके हर्षित हुए। तब किरातराज गुह विशाल सेना के साथ वहाँ आ पहुँचा।

राम के दर्शन करके गुह के नयन और मन हर्ष से भर गये। आँसू बहाता हुआ वह उनकी परिक्रमा करके उनके कमल-समान चरणों पर दंडवत करके गिरा। प्रभु ने उसे उठाकर अपने भाई के जैसे ही अपने वक्ष से लगाकर उसे अपने गाढालिंगन में बाँध लिया। फिर पूछा— क्या तुम्हारे पुत्र और पत्नी अक्षय कुशल से पूर्ण हैं तो ?

गुह ने राम से कहा—इस दास को आपकी कृपा प्राप्त है। वे सब (अर्थात्, पत्नी-पुत्र) मेरे लिए उतने अमूल्य नहीं है। आपसे कभी पृथक् न होकर आपका अनु-

गमन करनेवाले अनुजदेव (लक्ष्मण) के जैसा आपका दास्य करने का सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हुआ। ऐसे अज्ञान से पूर्ण हृदयवाले मुझ दास का जीवन व्यतीत करना क्या सुन्दर कहा जा सकता है ?'

इस प्रकार के अनेक वचन कहकर व्यथित होनेवाले गुह को देखकर राम ने कहा—हे उत्तम ! तुम क्यों ऐसी बातें कह रहे हो ? मेरे लिए तुम भरत से भिन्न नहीं हो। जाओ, सुखी रहो। फिर, उस किरातराज ने लक्ष्मण के सुन्दर चरणों को नमस्कार किया और जगन्माता सीताजी के चरण-कमलों को दंडवत किया।

फिर, सर्वज्ञ प्रभु ने अपने बन्धु सुग्रीव आदि को गुह का परिचय दिया—यह जल से समृद्ध गंगा के दोनों तटों का राजा है। सब प्राणियों पर माता से भी अधिक प्रेम रखनेवाला है। नीति से स्खलित न होनेवाले किरातों का राजा है। इसका नाम गुह है। यह उदारगुण है और सब से प्रशंसनीय भी।'

राम के यह कहते ही वानरपतियों ने उस (गुह) को गले लगाया और मित्रता की। इतने में सूर्य भी धरणी को अंधकार से आवृत करता हुआ मेरु के उस पार चला गया।

प्रफुल्ल पुष्पों की माला से भूषित प्रभु ने संध्या-कृत्य संपन्न करके स्वर्णमय कर्णाभरणों से भूषित कलापी-तुल्य सीता-सहित विश्राम किया। अनुज (लक्ष्मण) और गुह समुद्र-समान सेना से घिरे हुए, सजग रहकर पहरा देते रहे। यों रात्रि व्यतीत हुई और सूर्य उदित हुआ।

शब्दायमान वीर-वलयों से भूषित राम ने प्रातःकाल के कर्त्तव्य पूर्ण किये। अपूर्व तपस्या-संपन्न भरद्वाज को नमस्कार करके उनसे विदा ली और अपने अनुज (लक्ष्मण) तथा उज्ज्वल आभरणों से भूषित सीताजी को साथ लेकर ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त पुष्पक-विमान पर आरूढ हुए। फिर, भरद्वाज तथा उनके साथी मुनियों के मन के द्वारा अनुसृत होते हुए अयोध्या की ओर चल पड़े।

जब पुष्पक-विमान गगन में निर्बाध उड़ता हुआ जा रहा था, तब मधुर फलों से पूर्ण अतिकमनीय सौन्दर्य से युक्त देवेन्द्र के नगर को भी मात करनेवाली अयोध्या का प्राचीर दिखाई दिया।

जब स्वर्णमय प्राचीरों से आवृत अयोध्या दिखाई पड़ी, तब ज्ञानरूप प्रभु ने अपने साथियों को देखकर कहा—किसी के भी द्वारा वर्णन करने को अशक्य अयोध्या नगर वह दिखाई दे रहा है। सब लोगों ने कर जोड़कर उसे नमस्कार किया।

जैसे गगन में एक ही साथ अनेक सहस्र सूर्य उदित हो गये हों, यों कांति बिखेरने-वाला वह स्वर्णमय विमान तथा राजाओं के राजा राम (भरत एवं हनुमान् के) दृष्टिपथ में आये।

हनुमान् ने भरत से कहा—हे महिमामय ! प्रफुल्ल कमल जैसे नयनोंवाले राम, समुद्र-समान वानर-सेना, सती नारियों के आभरण-समान सीता देवी तथा तुम्हारे अनुज धनुर्धारी (लक्ष्मण)—आ रहे हैं, देखो।

चौदहों भुवनों के प्राणी भी उस विमान पर आरूढ हो जायँ, तो भी उसपर पर्याप्त स्थान बचा रहे, ऐसे उस अनुपम स्वर्णमय विमान पर प्रलयकाल में भी बिनाश से रहित प्रभु दिखाई दे रहे हैं।—यों हनुमान् ने आने को उद्यत राम को दिखलाया।

स्वर्णमय कांतिवाले मेरु की कंदरा के मध्य विद्युत् के साथ शोभायमान, नील मेघ के जैसे दिखाई पड़नेवाले राम ज्योंही प्रकट हुए, त्योंही उनकी अगवानी करने के लिए आई हुई जनता में ऐसी हर्षध्वनि उठी कि वह दक्षिण की नगरी लंका के भी पार सुनाई पड़ी।

अनुज भरत ने कमल-समान नयनों से युक्त अपने प्राण-समान भाई को इस प्रकार आते हुए देखा, मानों सत्य की रक्षा करने के लिए मांसमय देह का त्याग कर विष्णुलोक में गये हुए उनके पिता (दशरथ) ही आ रहे हों।

जैसे खोई हुई संपत्ति के पुनः प्राप्त होने पर किसी की दरिद्रता संपूर्ण रूप से मिट गई हो, ऐसे ही भरत का समस्त शोक दूर हो गया। मनुकुल-श्रेष्ठ राम को प्रणाम करने के लिए भरत ने हनुमान् के कर को (जिसे वे अबतक पकड़े हुए थे) छोड़ दिया।

उस समय हनुमान् वहाँ से (गगन में) उड़कर उस विमान के पास पहुँचा और चक्रधारी (राम) के सम्मुख आनंद के अश्रुओं से सिक्त वक्ष के साथ प्रणाम करता हुआ खड़ा रहा।

फिर, हनुमान् ने राम से निवेदन किया—हे लक्ष्मी से अलंकृत वक्षवाले! श्वान-समान इस दास ने प्रज्वलित अग्नि में कूदने को सन्नद्ध पर्वत-समान कंधोंवाले भरत को आपके आगमन का समाचार सुनाकर बचाया। उससे सारा लोक जीवित रह गया।

तब राम ने हनुमान् से कहा—हे सत्यवान्! हे माता से भी अधिक प्रेममय! हमारे पाप-परिणाम मिटाने पर भी न मिटकर उत्तरोत्तर बढ़ते ही जा रहे थे। किंतु, उन सब विपदाओं से बचाने के लिए हमें तुम जैसा एक व्यक्ति प्राप्त हुआ है। यह हमारा बड़ा भाग्य ही है।

यों कहकर पर्वतों के समान पुष्ट कंधोंवाले प्रभु ने हनुमान् को गाढालिंगन में बाँध लिया। फिर कहा—महान् उपकार करनेवाले तुम्हारे बारे में, अपने पिता के बारे में, अपने अनुज (लक्ष्मण) के बारे में तथा अपनी माता (कौसल्या) के बारे में मैं क्या (प्रशंसा के शब्द) कह सकता हूँ?

तब रामचन्द्र की परस्पर समान पादुकाओं को अपने सिर पर लिये, कर जोड़े, 'भीतर प्राण कुछ शेष है'—यों सूचना देनेवाली अतिकृश देह के साथ अत्यंत कीर्त्तिमान् भरत निकट आ पहुँचे।

पुरातन धर्म के साक्षी-जैसे बने हुए हनुमान् ने, समीप आये भरत को नमस्कार करके राम से कहा—अत्यंत लोभ के कारणभूत राज्य की रक्षा करनेवाले अपनी माता के विरुद्ध गये हुए तथा अपने भ्राता पर अनुपम भक्ति रखनेवाले इन भाई को देखें।

हनुमान् ने भरत को दिखाया। उनको देखकर प्रफुल्ल पुष्पों की माला से भूषित राम की जो दशा हुई, उसका वर्णन करना हो, तो (कह सकते हैं कि) उनकी वही दशा हुई, जो पिता को विमान पर आये हुए देखकर हुई थी।

तब राम ने मन में सोचा कि 'अब मैं अयोध्या के निवासियों को, साठ सहस्र अक्षौहिणी सेना को, माताओं को एवं अन्य लोगों को देखूँगा।' तब झट वह विमान समतल भूमि पर उतर आया।

ज्योंही राम के द्वारा आरूढ़ वह विमान पृथ्वी पर उतरा, त्योंही सब प्राणियों ने ऐसा अनुभव किया कि जैसे वह विमान पृथक्-पृथक् उन प्राणियों को स्वर्गलोक का आनन्द देने के लिए ही आया हो।

उस समय माताओं के पास रामचन्द्र, अपनी माँ के पास आये हुए बछड़े के समान बन गये। माया से मुक्त लोगों के मन के लिए विलय का स्थान बन गये। अपने उत्तम अनुजों (भरत और शत्रुघ्न) की आँखों की पुतली बन गये। सबके लिए उनका दर्शन ऐसा था, जैसे व्याधिग्रस्त शरीर से निकले हुए प्राण पुनः लौट आये हों।

दीन प्राणियों के लिए रामचन्द्र का आगमन ऐसा था, जैसे उनकी माता ही आ मिली हो। उनपर भक्ति रखनेवालों के लिए (उनका आगमन ऐसा था), जैसे उनको अलभ्य अमृत मिल गया हो। उत्तम मुनियों को ऐसा लगा, मानों (परमात्मा) अव्यक्त रहकर सम्मुख प्रकट हो गया हो और सुन्दर नयनोंवाली स्त्रियों के लिए वे मत्त करनेवाले मद्य के समान लगे।

उस देश के लोगों के लिए राम के अतिरिक्त अन्य कोई प्राण ही नहीं थे। उनके वियोग से कुमुद-भरे खेतों से युक्त कोशल देश एवं अयोध्या के लोग अत्यन्त विकल होकर जीवन व्यतीत कर रहे थे। अब उनके आगमन से पुरुषों तथा आम के टिकोरे-जैसी आँखोंवाली स्त्रियों की ऐसी दशा हुई, जैसे चित्रस्थ प्रतिमाएँ चैतन्य पाकर सजीव हो गई हों।

सुगंधित चूर्ण, चंदन, घृत, वर्त्तुल रेखाओं से युक्त सीपियों से उत्पन्न मोती, पुष्प, लगाम से युक्त अश्वों के मुखों से झरनेवाला फेन, गजों के विविध रंगवाले त्रिविध मदजल, कस्तूरी से अलंकृत स्त्रियों की आँखों से झरनेवाले अश्रु—ये सब गिरकर समुद्र से अधिक मात्रा में उमड़ चले।

जब सब लोग ऐसी दशा को प्राप्त हो रहे थे, तब विमान निकट आ पहुँचा। राम की तीनों माताएँ, अनुज, यज्ञोपवीत से शोभायमान वसिष्ठ—सब लोग स्वर्णमय विमान पर चढ़ गये। तब रामचन्द्र ने पहले अपने कुलगुरु के चरणों को साष्टांग प्रणाम किया।

वसिष्ठ ने राम को उठाकर उन्हें आशीर्वाद दिया और सब विपदाओं को दूर करते हुए बार-बार उनका आलिंगन किया। फिर, लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया, तो उनको वसिष्ठ ने उठाकर अनेक आशीर्वाद दिये।

फिर, राम ने पहले कैकेयी के चरणों को प्रणाम किया। उसके पश्चात् घने कुंतलोंवाली अन्य दोनों माताओं को प्रणाम किया। उन माताओं ने वात्सल्य के साथ उन्हें उठाकर गले लगाया और अपने कमल-समान नयनों से अश्रु बहाकर उनको अभिषिक्त किया।

हंसिनी के समान गतिवाली सीताजी ने भी उपर्युक्त क्रम से सबको नमस्कार किया। अपना उपमान न रखनेवाले लक्ष्मण ने सब माताओं को प्रणाम किया। उन

माताओं ने उन (लक्ष्मण) का गाढ आलिंगन करके आशीर्वाद देकर कहा—राम का भाई बनने की योग्यता एक तुममें ही है। तुम चिरंजीवी रहो। -

भरत ने राम की दोनों पादुकाओं को भेंट के रूप में समर्पित करके उनके कमल-समान चरण-युगल पर गिरकर नमस्कार किया। सिसकी भरकर रोनेवाले उन भरत को देखकर राम कुछ कहना भूलकर स्तब्ध-से खड़े रहे और फिर, उन्हें ऐसे आलिंगन में बाँध लिया, जैसे प्राण एवं शरीर एक हो गये हों। यों आलिंगनबद्ध राम अश्रु बहाने लगे।

इस प्रकार जब राम ने भरत का आलिंगन किया, तब उनकी आँखों से बहनेवाले आँसुओं की बाढ़ से, यौवन के सौन्दर्य को कुंठित करनेवाली भरत की मलिन जटाएँ धुल गईं। राम ने अपने भाई का सिर सूँघा। उनकी ऐसी दशा हुई, जैसे गाय ने अपने (खोये) बछड़े को पा लिया हो।

उस समय वीर-वलयधारी इन्द्र के मद को दबानेवाले इन्द्रजित् का वध करनेवाले (लक्ष्मण) ने, वेगगामी अश्व, गज, रथ आदि समस्त वैभव को राम की पाद-रक्षाओं को समर्पित करनेवाले (भरत) के सुगंधित कमल-समान चरणों पर अपनी स्वर्णवर्ण जटा रखकर दंडवत किया।

सब लोग यह सोचकर दुःखी हो रहे थे कि राम के साथ वन में रहकर कष्ट भोगनेवाले (लक्ष्मण) की देह अधिक कृश है या शोकभार से अयोध्या में विकल रहनेवाले (भरत) की देह अधिक कृश है—किसकी देह अधिक कृश हुई है? उसी समय कमल-समान विशाल नयनों से अश्रु बहानेवाले भरत ने आजानुलंबी हाथों से लक्ष्मण को उठाकर गाढालिंगन में बाँध लिया।

तीनों के अनुज शत्रुघ्न ने सिरपर हाथ जोड़े, देवाधिदेव राम के चरणों को तथा वीर-वलय से भूषित लक्ष्मण के चरणों को नमस्कार किया। उन दोनों ने उन (शत्रुघ्न) को उठाकर गले लगाया। फिर, उन (शत्रुघ्न) ने हंसिनी-तुल्य सीताजी को प्रणाम किया।

राम ने अपने अनुज भरत एवं उनके साथ रहनेवाले शत्रुघ्न को अपने दोनों हाथों से आलिंगन करके उनको अपने प्राण-समान मित्रों का परिचय कराया। स्थिर प्राण-समान (सुग्रीव आदि) मित्रों ने भरत एवं शत्रुघ्न को नमस्कार किया।

सुगंधित पुष्पमाला से भूषित वक्षवाले भरत ने वानरपति, वालिपुत्र, कुमुद, जांबवान्, नील तथा अन्य वानरों को एवं राक्षसराज विभीषण को देखकर पृथक्-पृथक् उचित आदर-वचन कहकर उनका सत्कार किया।

तब सुन्दर कंधों से शोभायमान सुमंत्र मंत्रिगण तथा सेनापतियों एवं सिंदूर-भूषित गज जैसे राजकुल के लोगों के साथ वहाँ आया।

रोदन और हर्ष—दोनों अहमहमिका के साथ बढ़ रहे थे। यों सुमंत्र राम को नमस्कार कर अश्रुभरे नयनों के साथ खड़ा रहा। राम ने उसको गले लगाया। अनुज (लक्ष्मण) ने भी उसे गले लगाया। तब सुमंत्र ने कहा—'अब इस भूमि को कोई विपदा नहीं रही।'

तब अपना उपमान न रखनेवाले वीर (राम) ने कहा—सारी सेना विमान पर

चढ़े। तब अयोध्या से आई सेना उस विमान पर यों चढ़ी जैसे उमड़नेवाला समुद्र मेघों के मध्य समा गया हो। फिर, वह (सेना) राम तथा लक्ष्मण के चरणों को नमस्कार कर खड़ी रही।

गगन के देवताओं ने यह कहते हुए कि सुगंधित पुष्पों से अलंकृत इस पुष्पक-विमान का उपमान ब्रह्मांड को अपने में समानेवाला विष्णु का उदर भी नहीं होगा तथा अपार वेदों के ज्ञाता वामन मुनि (अगस्त्य) का चुल्लू भी नहीं होगा (जिस चुल्लू में सारा समुद्र समा गया था), उसपर पुष्प बरसाये।

उस विमान से नगाड़ों की ध्वनि, वेदों की ध्वनि, शंखनाद, संगीतनाद तथा सब लोगों के शब्द ऐसे उठे, जैसे वज्र-समुदाय तथा सप्तसमुद्र एक साथ मिलकर दिगंतों तक व्याप्त होनेवाले शब्द कर रहे हों। वे सब शब्द गगन के देवताओं के जय-जयकार के शब्द से दब गये।

वहाँ से उठकर वह विमान गगन-मार्ग से अयोध्या की ओर चलने लगा, तो ऐसा लगा, मानों इस पृथ्वी के निवासी भूमि के साथ उठकर स्वर्ग का संदर्शन करने के लिए तुमुल शब्द करते हुए जा रहे हों।

देवों के द्वारा बरसाये गये पुष्पों के साथ वह विमान चलकर नन्दिग्राम में इस प्रकार आ पहुँचा, जैसे देवताओं और देवेन्द्र को साथ लेकर अमरावती नगर ही वहाँ आ पहुँचा हो। (१–३५८)

●

अध्याय ३८

राजमुकुट-धारण पटल

प्रभु (रामचन्द्र) प्रिय भाई भरत तथा अन्य भ्राताओं के संग नन्दिग्राम में जा पहुँचे। (वहाँ पहुँचकर) उन्होंने अपने सुरभिमय जटाओं को निकाल दिया। बाल बनवाने के पश्चात् सब लोगों ने सरयू के पावन जल में स्नान किया। फिर, सब मंगल अलंकारों से शोभायमान हुए। उन्हें देखकर देवता भी आनन्द-मग्न हो गये।

(शत्रुओं के) रक्त से युक्त शूल को धारण करनेवाले प्रभु नैऋत दिशा में स्थित नन्दिग्राम से चलकर उत्तम वेदों के समान श्वेत अश्वों से युक्त, सूर्य-समान उज्ज्वल तथा स्वर्णमय रथ पर आरूढ हुए और अयोध्या की ओर चले।

प्रभु ऐसे रथ पर विराजमान होकर चले, जो प्रलयकाल तक शाश्वत रहनेवाला था। गज-समान लक्ष्मण सात हाथ ऊँचे छत्र सँभाले हुए थे। शत्रुओं का हनन करनेवाले भाई (अर्थात् शत्रुघ्न) धवल चामर डुला रहे थे और धूलि को भी दबानेवाला आनंदाश्रु (अत्यधिक अश्रु) बहानेवाले भाई भरत हाथ में बागडोर लेकर सारथ्य कर रहे थे।

उत्तम विभीषण तथा उज्ज्वलकिरण (सूर्य) के पुत्र (सुग्रीव) विजयी दाँतोंवाले गजों पर आरूढ होकर मेघ-समान प्रभु के रथ के दोनों पार्श्वों में चल रहे थे। पुष्प-भूषित

मुकुटधारी वालिपुत्र आगे-आगे जा रहा था। आदिशेष के समान वीर हनुमान् पीछे-पीछे जा रहा था।

सड़सठ कोटि वानर-वीर, अपनी-अपनी योग्यता के अनुकूल उत्तम सज्जा से अलंकृत हो, मानुष-रूप धारण किये, अपनी वीरता से लोगों का आदर प्राप्त करते हुए, श्वेत छत्र, चन्दन-लेप तथा पुष्पमालाओं से युक्त हो गजारूढ होकर चले।

मुखपट्टधारी महान् गजों, पीतस्वर्ण-निर्मित रथों, मंडलाकार श्वेतच्छत्रों, पार्श्वों में डुलनेवाले चामरों तथा उन्नत सिरों पर गगनचुंबी उज्ज्वल किरणों से खचित रत्नमय किरीटों से युक्त हो हाथ जोड़े हुए अट्ठारह देशों के राजा राम को घेरकर चले।

वानर-स्त्रियाँ, देवस्त्रियों का रूप धारण कर, दोषहीन हाथियों, किंकिणी-भूषित अश्वों तथा अन्य वाहनों पर आरूढ होकर सीताजी को यों घेरकर चलीं, ज्यों नक्षत्र चन्द्रमंडल को घेरकर चलते हैं। इस प्रकार सीताजी उज्ज्वल वर्णवाले सुन्दर विमान पर आरूढ होकर चलीं।

देवता एवं ऋषि, सब दिशाओं में पुष्पों की घनी एवं निरंतर वर्षा कर रहे थे। भूमि पर सर्वत्र पुष्प-ही-पुष्प दिखाई दे रहा था। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ दिखाई ही नहीं देता था। अतः, भूमि का नाम सार्थक हो गया।[1]

जो गज चौदह वर्ष तक ग्रीष्म ऋतु के जलहीन मेघों के समान, मद-रहित होकर रहे, अब वे सब अलंकारों से सज्जित होकर, कपोलों से यों मदजल बहाते हुए चले, मानों चौदह वर्ष के पश्चात् प्रभु के वन से लौट आने पर उनके हृदय में जो आनन्द भर गया, उसे ही वे प्रकट कर रहे हों।

किंकिणियों से भूषित अश्व यों हिनहिना उठे, मानों मूक व्यक्ति ने बोलने की शक्ति प्राप्त कर ली हो, या मेघ गरज उठे हों। पुष्पवृक्ष यों पुष्पित हो गये, मानों (उनके पुष्पित होने की) ऋतु ही आ गई हो। शत्रुओं पर जैसे धनुष झुकते हों, यों झुकी हुई भौंहोंवाली रमणियों के शरीर में स्वर्णमय दाग प्रकट हुए।[2]

उस शुभ मुहूर्त्त में वैभव तथा महत्त्व से युक्त प्रभु (राम) अयोध्या पहुँचे। माताओं को प्रणाम किया। विष्णु-मन्दिर में पहुँचकर अपने कुलदेव रंगनाथ के सम्मुख दंडवत किया और भूमिदेवी तथा कमल-निवासिनी लक्ष्मी के दर्शन किये। (रंगनाथ-लक्ष्मी एवं भूमिदेवी के दर्शन एक ही साथ होते हैं।)

अयोध्या के नर-नारी जो अपने वस्त्रों को सँभालने (अर्थात् बदलने) की बात ही भूल गये थे, अब (वनवास के पश्चात्) रामचन्द्र के आगमन से यों आनन्दित हुए कि उनके वस्त्र खिसक रहे थे और वे बार-बार (उन वस्त्रों को) सँभाल रहे थे। वे पुलकित होकर उछल-उछल पड़ते थे। वे ऐसे लगते थे, जैसे मद्यपान से मत्त एवं वस्त्रहीन हो नाच रहे हों।

---

१. तमिल में 'भू' का उच्चारण 'पू' भी होता है। 'पू' शब्द के दो अर्थ हैं : भूमि और पुष्प। अतः, इस पद्य में यह कहा है कि पुष्पावृत होने से 'भू' का यह 'पू' नाम सार्थक हो गया।—अनु०

२. प्रेम के कारण युवतियों की देह में पीले-पीले दाग-से निकल आते हैं। उनकी ओर संकेत है।—अनु०

उस अद्भुत अवसर से उत्पन्न आनन्द की घबराहट में वेश्याओं के वस्त्रों को राजाओं ने पहन लिया। स्वर्णमय आभरणधारिणी रमणियों के वस्त्रों को ब्राह्मणों ने पहन लिया। जो चन्दन-लेप से युक्त नहीं थे, वे भी जनता की भीड़ में पड़कर स्वयं चन्दन-लिप्त हो गये।

अर्द्धचंद्र-समान ललाटवाली अयोध्या की रमणियाँ, जो प्रभु के राज्य छोड़कर चौदह वर्ष के लिए वन चले जाने से आनन्द-रहित होकर अपने प्रियतमों की संगति छोड़ कर रहती थीं, अब प्रभु के आगमन से प्रसन्न हुईं और अपने अंगों को आभरणों से यों अलंकृत कर लिया कि उन्हें देखकर पुरुषों के मन विचलित हो उठे।

देवलोकवासियों के शरीर की दिव्य सुगंधि तथा उससे भिन्न मर्त्यलोक की सुगंधि दोनों मिलकर एक दूसरे पर व्याप्त हो गई, जिससे मर्त्यलोक की रमणियों एवं देवलोक की रमणियों के मन में मान उत्पन्न हो गया और दोनों निःश्वास भरने लगीं।[१]

ऐसे समय में राम ने भरत को देखकर कहा—पवित्रहृदय विभीषण को, सूर्यपुत्र सुग्रीव को तथा वानरों को एवं सबको हमारे प्राचीन प्रासाद के सुन्दर दृश्य दिखाओ।

राम के यह कहते ही भरत ने नमस्कार किया और सबको लेकर चले। देवताओं के साथ मर्त्यलोक के निवासी भी जिसकी वन्दना करते हैं, उस लक्ष्मी देवी के निवासभूत, मेरु-समान उन्नत दिव्य राजप्रासाद में सभी प्रविष्ट हुए।

सदा अविचल चित्तवाले विभीषण आदि वीर, सर्वत्र हीरक, माणिक्य, इन्द्रनील, मरकत आदि रत्नों की किरणों के फैलने से विस्मय से भर गये और भ्रांतचित्त हो स्तब्ध खड़े रहे।

विष्णु के वक्षःस्थल पर विराजमान कौस्तुभमणि के समान उज्ज्वल उस प्रासाद को देखकर विभीषण आदि ने उसके बारे में भरत से प्रश्न किया। तब भरत ने कहा—पुराकाल में कमलनिवासी ब्रह्मा ने सुन्दर कंधोंवाले इक्ष्वाकु की तपस्या से प्रसन्न होकर इस (प्रासाद) को प्रदान किया था।

कमलभव ब्रह्मा के द्वारा इक्ष्वाकु को प्रदत्त इस प्रासाद में निरंतर लक्ष्मी निवास करती है। भरत की यह बात सुनकर विभीषण आदि ने कहा—'क्या इसके प्रभाव का वर्णन हम जैसे लोग कर सकते हैं?' फिर, उन्होंने हाथ जोड़कर प्रासाद को नमस्कार किया और एक दूसरे मंडप में जा पहुँचे।

वहाँ के सब दृश्यों को देखकर लोग प्रसन्न हुए। इसी समय सूर्यपुत्र ने भरत को देखकर पूछा—'हे पवित्रचरित्र! विशाल-नयन प्रभु के कंकण धारण करने का दिन क्यों अभी तक निश्चित नहीं किया गया?' तब महिमामय भरत ने कहा—

---

१. भाव यह है कि देवताओं के शरीर में मर्त्यलोक की गंध पाकर अप्सराएँ यह सोचकर रूठ गईं कि उन देवों ने मानवियों से संगम किया है। वैसे ही मानुष-स्त्रियाँ अपने प्रियतमों में दिव्य गन्ध पाकर कुछ सन्देह कर मान कर बैठीं।—अनु०

सप्तसमुद्रों तथा सर्वतीर्थों के जल एकत्र करना किंचित् कठिन कार्य है। तब एक चक्रवाले रथ से युक्त सूर्य के पुत्र (सुग्रीव) ने हनुमान् की ओर देखा। संकेत पाते ही वह (हनुमान्) समुद्रों से आवृत सब धरती को पार कर चल पड़ा।

तब भरत ने सुमंत्र से कहा—ऋषिसत्तम वसिष्ठ तथा अन्य सब मुनियों एवं विप्रों को बुलाओ। रथ चलाने में समर्थ उस सुमंत्र के सूचना देते ही सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के पुत्र, पवित्र तथा महान् तपस्यावाले वसिष्ठ आ पहुँचे। सबने उठकर उनके चरणों को नमस्कार किया।

भरत ने उन (वसिष्ठ) को आसन दिया। उसपर आसीन होकर महर्षि ने कहा—उत्तम भूमिदेवी के साथ तथा कमल पर आसीन लक्ष्मी के साथ रामचन्द्र हर्षित होकर चिरकाल तक राज्य करते रहें। उनके योग्य कंकण-धारण करने के लिए शुभ दिन कल ही है।

बृहस्पति-तुल्य अनेक ज्योतिषियों तथा वसिष्ठ ने चंद्र-समान श्वेतच्छत्रधारी दशरथ-पुत्र राम के राज्याभिषेक के लिए योग्य दिन तथा मुहूर्त्त का निर्णय किया और सर्वत्र समाचार भेजा।

आदरणीय दूतों ने तीनों लोकों में जाकर (राम के राज्याभिषेक की) सूचना दी। तीनों लोकों के सब लोग अयोध्या में आ पहुँचे। किसी गली में भी कोई बचा नहीं रह गया। अब क्या चतुर्मुख के लिए भी यह संभव है कि वे उन अभ्यागतों संख्या बता सकें।

तब वसिष्ठ महर्षि के साथ भरत, सूर्यपुत्र, राक्षसराज, जांबवान्, वालिपुत्र तथा दोषहीन पराक्रमवाले अन्य सब वीर उठकर गये तथा ईर्ष्या नामक गुण से सर्वथा रहित चित्तवाले प्रभु (राम) को नमस्कार करके यह निवेदन किया—

'हे वीर! तुम्हारे मुकुट-धारण के योग्य शुभदिन कल ही है। उसके योग्य कर्त्तव्य पूर्ण करो।' मन्मथ को जलानेवाले ललाटनेत्र तथा कोमल 'पूलै' नामक पुष्पों से शोभायमान शिवजी के समान प्रभाववाले वसिष्ठ ने राम से इस प्रकार कहा।

तब ब्रह्मा की आज्ञा से शास्त्रज्ञ मय ने शिल्पशास्त्रोक्त विधान से विनम्र चित्त-सहित भली भाँति नाप-जोखकर विशाल मंडप का निर्माण किया।

सुग्रीव की यह आज्ञा पाकर कि 'चारों दिशाओं के समुद्रों के जल एवं पुण्य-नदियों के जल आज ही ले आओ', संजीवन-पर्वत को उठा लानेवाला हनुमान् प्रलयकालिक पवन के वेग से सब जल ले आया।

अनेक राजा, अपनी-अपनी महिमा के योग्य चन्द्र-समान व्याप्त श्वेतच्छत्रों की छाया में, अनेक शत रत्नकुंभों में सरयू का पवित्र जल लेकर, काहल आदि वाद्यों के साथ आये।

जिसके हीरकमय पैरों पर माणिक्य के फलक थे, जिसपर स्वर्ण के पत्र चढ़े थे, और रत्नखचित थे, ऐसे एक मनोहर सिंहासन को स्फटिकमय तल पर रखा गया। उसपर आभरण-भूषित पुष्ट कंधोंवाले प्रभु राम, लक्ष्मी के अंशभूत सीताजी के साथ विराजमान हुए।

मंगलगीत गाये जाने लगे। वेदध्वनि सुनाई पड़ने लगी। शंखनाद प्रतिध्वनित हुआ। ताल एवं मर्दल बज उठे। दोषहीन शब्दवाले अन्य अनेक वाद्य शब्दायमान हो उठे। पुष्पों की वर्षा हुई। देवताओं ने पृथक्-पृथक् आकर हमारे प्रभु का अभिषेक किया।

महान् तपस्वी, वेदज्ञ विप्र, मंत्रिगण तथा अन्य विद्वान् गुरुजन—सबने रामचन्द्र का अभिषेक किया। फिर, सूर्यपुत्र (सुग्रीव) तथा दोषहीन लंकेश (विभीषण) ने अभिषेक किया।

जब त्रिविक्रम का चरण सप्तलोकों में गया था, तब ब्रह्मदेव ने उसको अपने कमंडलु-जल से सिक्त किया था। उस चरण-जल को शिव ने अपनी जटा में धारण किया था। किन्तु, अब सिंह-समान प्रभु के मनोहर मुकुट पर जो अभिषेक-जल प्रवाहित हुआ, उसे वे (शिव) कैसे और कहाँ धारण कर सकेंगे?—यों सब संशय करने लगे।

राम सीता के साथ ऐसे विराजमान हुए, जैसे मरकत-पर्वत, कमलपुष्पों से भरी तरंगायमान गंगा के जलबिंदुओं से पूर्ण, दोनों कानों तक फैलनेवाले शूल-समान नयनों से युक्त कलापी के संग विराजमान हो। इस प्रकार शोभायमान सीता-राम के दर्शन से सब लोग जन्म-व्याधि से मुक्त हो गये।

दिव्य प्रभाववाले तीर्थों के जल से अभिषेक का कार्य संपन्न करने के लिए आवश्यक व्रत आदि वसिष्ठ मुनि (राम से) करा सकें—इसके लिए जो सामग्री आवश्यक थी, उसे विप्रों से जानकर संशय-रहित चित्तवाले सुमंत्र ने प्रस्तुत किया। इन्द्र के ऐश्वर्य के योग्य सब वस्तुएँ वहाँ उपस्थित हुईं।

हनुमान् ने सिंहासन को सँभाला। अंगद हाथ में करवाल लेकर खड़ा रहा। भरत ने श्वेतच्छत्र पकड़ा। दोनों भाइयों ने चामर डुलाये। सुरभित कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी से संयुक्त वेण्णैल्लूर (ग्राम) के अधिपति शडयप्प के वंश के कुलपुरुषों ने मुकुट लाकर दिया। उस मुकुट को वसिष्ठ ने लेकर राम के सिर पर पहनाया।[1]

क्षीरसमुद्र में उत्पन्न लक्ष्मी एवं भूमि जिनके कंधों पर विश्राम करती है, ऐसे प्रभु (राम) ने अत्युत्तम दिन में, शुभ मुहूर्त में त्रिलोक को आनंदित करते हुए, बृहस्पति तथा शुक्राचार्य के समान पुरोहितों के द्वारा विहित विधान के अनुसार अपने सिर पर राजमुकुट धारण किया।

प्रेम-भरे वसिष्ठ ने वेदोक्त विधान से अयोध्या में रामचन्द्र के सिर पर मुकुट पहनाया। उस समय ऐसा लगता था, मानों त्रिलोक-निवासियों के सिर पर वह उज्ज्वल किरीट पहनाया गया हो। त्रिलोक के निवासियों के आनन्द की ऐसी दशा थी।

विशाल भूमि नामक स्त्री जो चिरकाल तक तपस्या करने के पश्चात् अपने योग्य

---

१. कंबर (कंबन) के आश्रयदाता थे 'शडयप्प' नामक दानी, जो 'वेण्णैल्लूर' ग्राम के प्रमुख व्यक्ति थे। वे 'वेलाला' नामक जाति के व्यक्ति थे, जो खेती-बारी और व्यापार करते थे। तमिलनाड में चोलराजा सूर्यवंशी माने जाते थे और उन राजाओं के मुकुट-धारण के समय यह प्रथा थी कि 'वेलाला' जाति के व्यक्ति मुकुट लाते थे, तभी राजा उसे पहनते थे। कंबन ने सूर्यवंशी चक्रवर्ती रामचन्द्र के मुकुट-धारण के प्रसंग में भी अपने आश्रयदाता का स्मरण करके उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।—अनु०

पति को प्राप्त कर, बीच में उससे वियुक्त होकर अत्यन्त दुःखी हो रही थी, अब उस पीड़ा से मुक्त होकर, अपने हाथ फैलाकर, उस पति (अर्थात् राम) का अपने स्तन-भार को संयुक्त कर आलिंगन किया।

शास्त्रज्ञ वसिष्ठ के कथित विधान के अनुसार अभीष्ट देनेवाले राम ने अपने भाई भरत को रत्न-किरीट पहनाया और यौवराज्य का पद देकर शासन चलाने की आज्ञा दी एवं नित्य नूतन अपरिमेय आनंद प्राप्तकर सुखी हुए। (१–४२)

अध्याय ३९

विदाई पटल

जो भूमि का आभरण था और स्वर्ण एवं रत्न से निर्मित स्तंभों से युक्त था, ऐसे मनोहर मंडप के मध्य उत्तम रत्न-खचित सिंहासन पर दशरथ-पुत्र (राम) सीता देवी के साथ यों विराजमान हुए, ज्यों बिजली के संग मेघ।

विशाल समुद्र के मध्य ज्यों बिजली पड़ी हो, त्यों उन (राम) के वक्षःस्थल पर मुक्ताहार शोभायमान हो रहा था। उनका मुकुट सहस्रकिरण (सूर्य) की समता करता था। अयोध्या में अवतीर्ण रामचन्द्र यों विराजमान हो रहे थे, मानों कोई कालमेघ कमलपुष्पों से युक्त होकर अनुपम आसन पर विराजमान हो।

मरकत-शैल पर ज्यों चंद्रिका फैली हो, त्यों प्रभु की दोनों भुजाओं पर, उनके दोनों पार्श्वों में कान तक फैले नयनों तथा बाल-स्तनों से शोभायमान रमणियों के कर-कमलों से डुलाये जानेवाले चामरों की कांति फैल रही थी। उरग, नर, देव आदि स्तुति करते हुए खड़े थे।

रामचन्द्र के तिलक-शोभित उज्ज्वल ललाट की कांति जब चौदहों लोकों में फैली, तब गगन का चन्द्रमा भी उसके सम्मुख मंद पड़ गया। श्वेतच्छत्र यों उठा हुआ था, ज्यों राक्षसाधिपति रावण का सपरिवार विनाश करनेवाला उनका यश ही उठा हुआ हो।

मंगलगीत गाये जा रहे थे। वेदज्ञ ब्राह्मण स्वस्ति-वाचन कर रहे थे। शंख ध्वनित हो रहे थे। विविध वाद्य शब्दायमान हो रहे थे। मीन-समान नयनों एवं कमल-समान मुख तथा रक्त अधर से युक्त रमणियाँ नर्त्तन कर रही थीं।

(मंडप में) मुकुटों की पंक्ति यों अपार प्रकाश फैला रही थी कि समुद्र के मध्य से प्रकट होनेवाला सूर्य भी लज्जित हो जाय। पर्वत-समान ऊँचे द्वार पर राजाओं की भीड़ आकर ज्यों-ज्यों प्रभु के चरणों को नमस्कार करती थी, त्यों-त्यों उनके चरण अरुणारुण हो उठते थे।

मंत्रणाचतुर मंत्री घेरकर खड़े थे। वेदज्ञ ब्राह्मण आशीर्वाद दे रहे थे। सेनापति

जयकार कर रहे थे। सिंदूर-समान और लाल प्रवाल-तुल्य अधरवाली सुंदरियाँ मंगलगान कर रही थीं। यों हमारे प्रभु (राम) देवेन्द्र का उपमान बनकर विराज रहे थे।

इसी समय मैन्द, तुमिन्द, कुंभ, अंगद, हनुमान, कुमुद, शतबली, दधिमुख, गोमुख, गजमुख आदि सब वानर-वीर आ पहुँचे।

यों सत्तर 'समुद्र' वानरों के साथ सूर्यकुमार ने आकर नमस्कार किया। मधुस्रावी पुष्पों की माला धारण करनेवाला विभीषण, करवालधारी राक्षसों के साथ आकर नमस्कार करके खड़ा रहा।

तरंगायमान गंगा में चलनेवाली नावों का स्वामी, पर्वत-समान दृढ कंधोंवाला तथा सिंह-समान पराक्रम से युक्त गुह चित्तियोंवाले व्याघ्र की पूँछ को कमरबंद के रूप में पहने हुए आँखों को घुमाते हुए अपनी सेना के साथ आया।

उदार प्रभु ने उन सबकी ओर अपार प्रेम से भरकर, विकसित वदन के साथ यों देखा, मानों उनका गाढालिंगन ही कर रहे हों। फिर कहा—अनिन्दनीय पराक्रम से युक्त वीरो! सुखासीन होओ।

सन्मार्गगामी, उत्तमज्ञानी, चारों वेदों के अध्येता, उचित वचन कहने में दक्ष, अपार विद्वत्ता के धनी तथा विविध शास्त्रों में निष्णात व्यक्ति राजाधिराज प्रभु (राम) के पार्श्व में यथायोग्य उपस्थित हुए।

जल-भरे समुद्र से आवृत पृथ्वी के राजा, मधु से भरे उद्यानों से शोभायमान उस प्राचीन नगर अयोध्या में, लक्ष्मी-सहित सर्पशय्या पर रहनेवाले विष्णु (के अवतार राम) की स्तुति करते रहे। यों दो मास व्यतीत हुए।

विशाल क्षीरसमुद्र में सब देवताओं से घिरे हुए रहनेवाले, दृढ धनुर्धारी तथा लक्ष्मी के साथ शोभायमान प्रभु ने अयोध्या में अवतार लेकर, उन देवों के कष्टों को मिटा-कर, सब राक्षसों का नाश करके आगे जो किया, उसका अब वर्णन करेंगे।

सब वेदज्ञ ब्राह्मणों को रत्न, स्वर्ण, भूमि, गो आदि का अनन्त दान देकर तथा जिसने जो कुछ माँगा, उसे वह सब देकर प्रभु ने वीर-वलयधारी राजाओं को अपने निकट बुलाया।

उन सब राजाओं को प्रभु ने प्रसन्न चित्त एवं प्रफुल्ल वदन से देखा। भूमि, शिबिका, माला, रत्नमुकुट, स्वर्णवलय, अश्व, गज, रथ, वस्त्र आदि वस्तुएँ उन्हें भेंट कीं।

क्षीरसमुद्रशायी प्रभु ने सूर्यपुत्र (सुग्रीव) को वह रत्न-कटक दिया, जिसे देवेन्द्र ने दशरथ को, शंबरासुर का वध करने पर दिया था। इसके अतिरिक्त दाँतोंवाले पर्वताकार गज, रथ, अश्व तथा वस्त्र दिये।

भूमि के अंगदाभरण-समान अंगद को विजयी प्रभु ने वह अंगदाभरण दिया, जिसे ब्रह्मदेव ने इक्ष्वाकु महाराज को दिया था। इस भूमि पर अंगद की महिमा को समझ कर उसका वर्णन कौन कर सकता है?

फिर, उस अंगद को प्रभु ने मुक्ताहार, क्षौम वस्त्र, अश्व, मत्तगज आदि देकर कहा—इस पृथ्वी पर अपनी उपमा न रखनेवाले! तुम सूर्यपुत्र के संग स्नेह के साथ रहना।

फिर, प्रभु ने वायुपुत्र (हनुमान्) को प्रेम से देखकर कहा—तुम जैसा उपकार करने में समर्थ और कौन होगा ? तुमने उस दिन मेरा जो उपकार किया, उसका प्रत्युपकार कुछ नहीं हो सकता है। आभरणभूषित कंधोंवाले ! मैं तुम्हें गाढालिंगन में बाँध लूँगा !

राम का यह वचन सुनकर विनम्रता एवं संकोच से सिर झुकाये, मुँह बंद किये, सेना के सम्मुख एक कोने में हनुमान् खड़ा रहा। उसको प्रेम से देखकर प्रभु ने हीरक एवं रत्नमय आभरण, चौम वस्त्र, गज, तुरग आदि दिये।

तब राम ने मनोहर कमलपुष्प के आसन को छोड़कर स्वर्ण-प्राचीरों से युक्त मिथिला में अवतीर्ण, मधुर बोलीवाली लक्ष्मी (के अवतार सीता) की ओर देखा। तब उन (सीताजी) ने वेदों में प्रशंसित सरस्वती के द्वारा प्रदत्त अपने मुक्ताहार को उतारकर दुःख के समय उनका उपकार करनेवाले हनुमान् को वात्सल्य के साथ दिया।

फिर, प्रभु ने नक्षत्र-मंडल को परास्त करनेवाली मुक्तामाला, गज, अश्व, वस्त्र, आभरण आदि जांबवान् को दिये।

वायु के मित्र, अग्निदेव के पुत्र नील को प्रभु ने नवरत्नहार, मुक्तादाम, रङ्गी पट तथा उपमा-रहित किंकिणीमाला तथा वेगवान् अश्व आदि दिये।

ब्रह्मा को उत्पन्न करनेवाले आदिदेव (विष्णु के अवतार राम) ने शतवली नूपुर तथा स्वर्णाभरणों से भूषित अश्व, दृढ दंतोंवाले गज, स्वर्णाभरण तथा वस्त्र दिये।

उज्ज्वल रत्नाभरणों से भूषित भुजाओंवाले प्रभु ने केसरी (नामक वानर- को एक अनुपम रत्नाभरण, वस्त्र तथा वडवा-समान अश्व दिये।

धान के खेतों से पूर्ण कोशल देश के प्रभु ने नल, कुमुद, तार, पनस तथा अन्‍ सभी वानर-वीरों को अनुपम रत्नाभरण, चौमवस्त्र, अश्व, गज आदि दिये।

यों, समस्त वानर-वीरों को पुरस्कार देकर प्रभु ने मधुर वचन कहे और कृपा का ऐसा कटाक्षपात किया, जिससे सत्तर समुद्र वानर-वीर इस पृथ्वी में सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।

विद्युत्-समान मुकुटधारी रक्तनेत्र विभीषण को देखकर प्रभु ने कहा—चराचरात्मक इस सृष्टि में अपना उपमान तुम्हीं हो, और कोई तुम्हारा उपमान नहीं है। लोहा कभी भले ही स्वर्ण की भी समता करे, किन्तु तुम्हारी समता करनेवाला कोई नहीं है।

आदिशेष के ऊपर शयन करनेवाले प्रभु ने विभीषण से यह वचन कहकर फिर उसे दिव्य मणिकटक, अति बलवान् गज, रथ, अश्व, वस्त्र, सुगंधित द्रव्य आदि प्रदान किये।

फिर, शृंगबेरपुर के अधिपति गुह को देखकर प्रभु ने कहा—'तुम कलंक-रहित मित्र को अब मैं क्या कहूँ ?' फिर मत्तगज, अश्व, स्वर्णाभरण वस्त्र आदि देकर उसको विदा किया।

हनुमान्, अंगद, जांबवान्, सूर्यपुत्र सबको देखकर करुणासमुद्र ने कहा—तुमसे यह कहना कि अब तुम विदा होओ—विचार के लिए भी असह्य है। किन्तु, तुम लोगों के राज्यों की रक्षा भी होनी चाहिए। अतः, तुम अब जाओ।'

लंकाधिपति (विभीषण) से भी प्रभु ने ऐसे ही वचन कहकर जाने की आज्ञा दी। तब अत्यन्त विवेकवाले सुग्रीव, गुह, विभीषण आदि विकलचित्त हो गये। फिर, अपने

मन की व्याकुलता को दूर करके सोचा कि प्रभु की आज्ञा के अनुसार करना ही ठीक है।

सन्मार्गगामी वे सब भरत, अनुजदेव (लक्ष्मण) शत्रुघ्न, महान् तपस्वी वसिष्ठ, तीनों माताएँ, मिथिला की देवी (सीता), अभीष्ट वर देनेवाले रामचन्द्र – सबकी परिक्रमा के साथ वंदना करके, आज्ञा पाकर अपने-अपने नगर को प्रस्थित हो गये।

मन में प्रेम से पूर्ण, उत्तम स्वभाववाले, विजयमालाधारी विभीषण ने गुह को उसके गाँव में छोड़ा। सूर्यपुत्र को किष्किंधा में छोड़ा और स्वयं करवाल-समान दाँतोंवाले राक्षसों से घिरा हुआ गगन-पथ से चलकर समुद्र से आवृत लंका में जा पहुँचा।

रामचन्द्र ने उन सब साथियों को विदा किया और प्रेमपूर्ण भरत आदि भाइयों के साथ पृथ्वी-भर में मनुधर्म के अनुसार शासन संचालित करते हुए, लक्ष्मी एवं भूमिदेवी को किंचित् भी कष्ट न हो—इसका खयाल रखते हुए उनकी रक्षा करते रहे।

क्षीरसमुद्र में योगनिद्रा करनेवाले तथा अयोध्या में अवतीर्ण हुए उदार प्रभु (राम) चौदहों लोकों के निवासियों के द्वारा 'हमारे प्रभु' कहकर प्रशंसित होते हुए, अपने यों के संग धर्म में स्थिर रहकर पृथ्वी की रक्षा करते रहे।

परमात्मा रामावतार लेकर अवतीर्ण हुआ और रावण का वध करके अपने यों के साथ भूमि की रक्षा करता रहा। इस पुण्यचरित को जो सुनेंगे और पढ़ेंगे, वे के राजा होंगे तथा यम को भी जीतने की शक्ति प्राप्त करेंगे। (१–३८)